॥ श्रीः ॥

विद्याभवन संस्कृत ग्रन्थमाला

७५



॥ श्रीः ॥

# कौटिलीयम्

# अर्थशास्त्रम्

हिन्दीव्याख्योपेतम्

व्याख्याकारः—

**वाचस्पति गैरोला**

अध्यक्ष : पाण्डुलिपि-विभाग, हिन्दी संग्रहालय,

हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग



**चौखम्बा विद्याभवन**

वाराणसी २२१००१

प्रकाशक—

**चौखम्बा विद्याभवन**

( भारतीय संस्कृति एवं साहित्य के प्रकाशक तथा वितरक )

चौक ( बनारस स्टेट बैंक भवन के पीछे ),

पो० बा० नं० ६९

वाराणसी २२१००१



तृतीय संस्करण १९८४

मूल्य १२५–००

अन्य प्राप्तिस्थान—

**चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन**

( भारतीय संस्कृति एवं साहित्य के प्रकाशक तथा वितरक )

के० ३७/११७, गोपाल मन्दिर लेन

पो० बा० नं० १२९

वाराणसी २२१००१

मुद्रक—

**श्रीजी मुद्रणालय**

वाराणसी

THE

VIDYABHAWAN SANSKRIT GRANTHAMALA

75

# ARTHAŚĀSTRA

OF

# KAUṬILYA

AND

## THE CĀṆAKYA SŪTRA

*Edited With*

INTRODUCTION, HINDI TRANSLATION & GLOSSARY

*By*

Shri Vachaspati Gairola

*Head of the Manuscript Department*

Hindi Sangrahalaya, Hindi Sahitya Sammelan, Allahabad.

CHOWKHAMBA VIDYABHAWAN

VARANASI

© CHOWKHAMBA VIDYABHAWAN
(*Oriental Booksellers & Publishers*)
CHOWK ( Behind The Benares State Bank Building )
Post Box No. 69
VARANASI 221001

Third Edition
1984

*Also can be had of*
CHAUKHAMBA SURBHARATI PRAKASHAN
(*Oriental Booksellers & Publishers*)
K. 37/117, Gopal Mandir Lane
Post Box No. 129
VARANASI 221001

महामहोपाध्याय

पं० गणपति शास्त्री

की

पुण्यस्मृति

में

# भूमिका

## समिति : सभा

**समिति** : प्राचीन भारत में शासन-व्यवस्था के परिचालन के लिए आज की भाँति सभायें तथा समितियाँ नियुक्त होती थीं। उदाहरण के लिए प्रौढ़ों की **राजसभा**, जनता की **सार्वजनिक सभा**, व्यापारियों तथा व्यवसायियों का **मण्डल** ( पूग ), राज्यों का 'संघ' और कुटुम्बों ( कुलों ) की **ग्रामसभायें**। ये ही सभायें कानून बनातीं तथा उसको जनता में क्रियान्वित करती थीं। इन सभाओं का प्रमुख कार्य जनता का प्रतिनिधित्व करना और राजा के निर्वाचन तथा सार्वजनिक भलाई के लिए अपनी राय देना था। **कौटिल्य के 'अर्थशास्त्र'** में **सभा : समिति** की गंभीर व्याख्या की गयी है।

यदि हम **सभा : समिति** के इतिहास की खोज करते हैं तो उसके बीज हमें मानव-सभ्यता के मूल में बिखरे दिखायी देते हैं। मनुष्य की उदयवेला से ही उसके इतिहास का आरम्भ होता है।

वैदिक साहित्य के अध्ययन से हमें विदित होता है कि उस समय राष्ट्रीय जीवन-सम्बन्धी सार्वजनिक कार्यों को संपन्न करने के लिए **समिति** की व्यवस्था थी। यह **समिति** सर्वसाधारण प्रजाजनों ( **विशः** ) द्वारा आयोजित तथा स्वीकृत होती थी। उसी के द्वारा राजा का चुनाव होता था। वह इतनी महत्त्वपूर्ण थी कि उसमें सभी लोगों का उपस्थित होना अनिवार्य बताया गया है (**ऋग्वेद** १०।१७३।१; **अथर्ववेद** ६।८७।१ )। राजनीतिक दृष्टि से इस लोकसंस्था का दूसरा भी महत्त्व था; क्योंकि उसी के द्वारा राजा के अतिरिक्त राजव्यवस्था का भी संचालन होता था। यही कारण है कि **ऋग्वेद** ( १०।१९१।३ ) में उसकी नीति तथा मंत्रणा के लिए शुभकामना प्रकट की गयी है। निर्वाचित राजा के लिए 'समिति' की प्रत्येक बैठक में उपस्थित होना आवश्यक था ( **ऋग्वेद** ९।९२।६ )।

समिति में उपस्थित प्रत्येक वक्ता इस बात के लिए यत्नशील रहता था कि उसका भाषण ओजस्वी, सर्वप्रिय और आकाट्य सिद्ध हो ( **अथर्ववेद** २।२७ )। **अथर्ववेद** के इस वचन से यह ध्वनि निकलती है कि **समिति के** वक्ताओं के विभिन्न मत होते थे और उनमें विभिन्न दृष्टियों से जनहित **की**

चिन्तना की जाती थी। इस समिति में राजनीतिक विषयों के अतिरिक्त शिक्षा और ज्ञान-संबंधी बातों पर भी वाद-विवाद हुआ करता था। मूलतः वह एक **धर्मपालिका** या **न्यायपालिका** भी होती थी।

**समिति** के सदस्य समाज के विभिन्न समुदायों या क्षेत्रों ( वर्गों ) के प्रतिनिधि होते थे। उस युग में प्रतिनिधित्व के सिद्धान्त का आदर होता था। ग्राम-संघटन के प्रतिनिधि को **ग्रामणी** कहा जाता था। यहाँ तक कि **ग्रामणी** के नाम पर **ग्राम** शब्द का व्यवहार हुआ ( **काशिका** ५।३।११२ )। इस प्रकार गाँवों, व्यापारियों, दार्शनिकों और राजनीतिकों के अपने-अपने प्रतिनिधि होते थे। वे प्रतिनिधि **समिति** के प्रमुख अंग थे। **अथर्ववेद** में इन समितियों और ग्रामों की बड़ी स्तुति की गयी है ( १२।१।५६ )। वैदिक काल के परवर्ती समाज में समिति के संघटन के मुख्य आधार **ग्राम** ही हुआ करते थे।

इस प्रकार की **समिति** की ऐतिहासिक प्राचीनता के संबंध में ठीक-ठीक पता नहीं चलता है। **अथर्ववेद** ( ७।१२ ) में उसको अनादि और प्रजापति की कन्या कहा गया है। उसके अस्तित्व और कार्यों का प्रमाण सर्वप्रथम **ऋग्वेद** तथा **अथर्ववेद** में और उसके बाद **छान्दोग्य उपनिषद्** में मिलता है।

**ऋग्वेद** ( ६।२८।६; ८।४।९; १०।३४।६० ) के अनेक स्थलों पर **समिति : सभा** की विशेषताओं पर कई तरह से प्रकाश डाला गया है। वहाँ उसको एक ऐसा समुदाय बताया गया है, जिसको सामाजिक व्यवहारों तथा सार्वजनिक मामलों पर विवाद करने का पूरा अधिकार था।

लगभग सूत्रग्रन्थों के निर्माण ( ५०० ई० पूर्व ) के समय से **समिति** की जगह **परिषद्** ( **पर्षत्** ) ने ले ली थी ( **पारस्कर गृह्यसूत्र** ३।१३।४ )। इस प्रकार हमें विदित होता है कि सार्वजनिक संघटनों या संस्थाओं के लिए **समिति** शब्द का प्रयोग वैदिककाल में ही होने लगा था।

**सभा** : **समिति** के अतिरिक्त वेदकालीन सार्वजनिक संस्था **सभा** के अस्तित्व का भी पता चलता है। **अथर्ववेद** ( ७।१२।१-४ ) में उसको **समिति** की बहिन और प्रजापति की दो कन्याओं में से एक माना गया है। सायणाचार्य ने उसकी व्याख्या करते हुए लिखा है कि 'नरिष्ठा' ( सभा ) बहुत से लोगों के उस निर्णय को कहते हैं, जिसका कथमपि उल्लंघन न हो सके। उसका निर्णय अमान्य नहीं हो सकता है, क्योंकि वह समुदाय की वस्तु है और एकस्वर में कही हुई बात है।

इस संबंध में स्वर्गीय विद्वान् डॉ० काशीप्रसाद जायसवाल का कथन है कि संभवतः वह चुने गये लोगों की एक स्थायी संस्था होती थी और **समिति** के अधीन होकर कार्य करती थी ( **हिन्दू राजतंत्र** १, पृष्ठ २६ )। यह सभा प्रमुखतया राष्ट्रीय न्यायालय का कार्य करती थी।

**वाजसनेयी संहिता** में प्रयुक्त **सभाचार** ( ३०।६ ) और अथर्ववेद में प्रयुक्त **सभासद** ( ३।१९।१; ७।१२।२; १६।५५।६ ) शब्द का अभिप्राय उस व्यक्ति से बताया गया है, जो सभा में उपस्थित होकर न्याय करता है। **महाभारत** ( ४।१।२४ ) में **सभास्तार** का प्रयोग न्यायाधीश के लिए किया गया है। उसमें एक जगह ( ५।३५।३८ ) यह कहा गया है कि वह सभा, सभा नहीं है, जिसमें प्रौढ़ लोग न हों; और वे प्रौढ, प्रौढ नहीं, जो नियम घोषित न कर सकें। **अथर्ववेद** ( ६।८८; ५।१० ) में उसको जनता की आवाज और न्याय का एकमात्र निदर्शन करने वाली कहा गया है। **ऋग्वेद** ( १०।१९१।३ ) में एक विशेष बात इस संबंध में यह भी कही गयी है कि राज्य की अभ्युन्नति के लिये राजा और **सभा** में भेद होना परमावश्यक है।

इस प्रकार यद्यपि सभी प्राचीन ग्रंथों के उद्धरणों से यह स्पष्ट है कि **समिति** तथा 'सभा' के अधिकारों में कुछ अन्तर अवश्य था, किन्तु उसका संवैधानिक ढाँचा लगभग एक ही था।

## आदिम आर्यसंघों का स्वरूप

आदिम आर्य-संघों की संघटन-व्यवस्था की ओर आधुनिक लेखकों का ध्यान तब गया जब वे सर्वथा ध्वस्त हो चुके थे और उनकी जगह वर्ग-शासन-सत्ता एवं नये युद्धों ने ले ली थी; अर्थात् जब गृहयुद्ध, शासनसत्ता, कर, कानून और आचार के आन्तरिक संघटन के बनाने का प्रश्न समाज के सामने उपस्थित हुआ था। इस दृष्टि से वैदिक साहित्य में साम्य-संघ के आंतरिक विधानों के बारे में कुछ नहीं कहा गया है; उसमें न तो धन की चर्चा है न व्यक्तिगत अधिकारों का विवेचन और न दण्ड के लिये कोई व्यवस्था ही। उसमें संसार, मनुष्य, अग्नि, पशु, धन आदि की उत्पत्ति कैसे हुई, इन्हीं प्रश्नों पर अधिकतर विचार किया गया है। ब्राह्मण-ग्रन्थों में अवश्य ही आचार, सत्ता और व्यवहार के सम्बन्ध में जिज्ञासायें प्रगट की गयी हैं। वैदिक साहित्य की अपेक्षा **महाभारत** और स्मृतियों में यह बात हमें अधिक स्पष्ट रूप में देखने को मिलती है कि आदिम आर्यसंघों और परवर्ती सामाजिक संघटनों में क्या अन्तर था एवं उनके संचालन का स्वरूप क्या था।

**प्रागैतिहासिक संघ** : इतिहासकारों ने प्रागैतिहासिक मानव-सभ्यता के विकास को उसकी प्रमुख प्रवृत्तियों के आधार पर **प्रस्तर, कांस्य** या **लौह** आदि अनेक अवस्थाओं में विभक्त किया है। प्रागैतिहासिक मानव ने अपनी जीविकोपार्जन के साधन अन्न, वस्त्र, आश्रय-स्थान आदि के लिये प्रकृति से संघर्ष किया। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये उसने जितने साधनों का उपयोग किया, जितने व्यक्ति संघटित हुए, उन व्यक्तियों की जो योग्यता, कार्यक्षमता आदि थी वे सब मिलकर उस युग की उत्पादन शक्तियाँ कहलायीं। उत्पादन की ये शक्तियाँ समाज की आवश्यकता और क्रियाशीलता के अनुसार सदा ही बदलती रहती हैं।

सबसे पहले मनुष्य जब संघटनों की ओर प्रवृत्त होकर अपने सामाजिक जीवन का निर्माण करने में अग्रसर हो रहा था, उसका परिचय इतिहासकारों ने एक **जांगल** मानव के रूप में प्राप्त किया। कंद मूल और फल ही उसका आहार था। उसने पत्थरों के औजार तैयार किये; रगड़ से वह आग भी पैदा कर चुका या; धनुष-बाण का भी वह आविष्कार कर चुका था; वह गाँवों में बसने लग गया था, और टोकरियाँ बुनना तथा अस्त्र-शस्त्र बनाना भी उसने सीख लिया था। मनुष्य की दूसरी उन्नतावस्था **बर्बरयुग** के नाम से कही गयी है। इस युग में मिट्टी की कला अधिक विकसित हुई। पशु-पालन और पौधे उगाना इस युग की बड़ी विशेषताओं में हैं। मकान बनाने के लिये ईंटों और पत्थरों का प्रयोग भी इस युग में होने लगा था। इस युग में भोजन के लिये मांस तथा दूध पर्याप्त रूप में उपलब्ध था। लेखन-कला का जन्म भी इसी युग में हुआ। **सभ्यता** के तीसरे युग में पहुँच कर मनुष्य ने सारी जांगल प्रवृत्तियों और बर्बर स्वभाव को छोड़कर श्रम के विभाजन तथा उत्पादन की दिशा में अधिक उन्नति की। इस युग में विनिमय और उत्पादन की नयी शक्तियों ने वर्ग-भेद, शोषण, दासता, विरोध और निजी संपत्ति को जन्म दिया, जिससे पूरे समाज में क्रांति हुई।

**ऐतिहासिक संघ** : मनुष्य के आर्थिक जीवन के इतिहास का आरम्भ उत्पादन की शक्तियों, वितरण की अवस्थाओं और विनिमय के माध्यमों के जन्म से होता है। आर्ययुगीन प्राग्भारतीय समाज में इन शक्तियों, अवस्थाओं तथा माध्यमों का क्या स्वरूप था, इसका विवरण हमें भारत के प्राचीन साहित्य के अनुशीलन से प्राप्त होता है।

ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से भारतीय समाज की चार अवस्थायें बतायी गयी हैं : कृतयुग, त्रेतायुग, द्वापरयुग और कलियुग। हिन्दू समाज के

इन चारों युगों का संचालक **धर्म** रहा है। धर्म अर्थात् रहन-सहन का ढंग; शासन सत्ता के नियम, विवाह-संबंध आदि। हिन्दू-साहित्य के प्राचीनतम प्रमाण वेद, धार्मिक प्रवृत्ति से परिचालित उक्त युग-परिवर्त्तन को किस रूप में प्रस्तुत करते हैं, इसका परिचय श्री डांगे के शब्दों में इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है "पूरा वेद-साहित्य सिर्फ एक माँग उपस्थित करता है। और उस माँग को पूरा करने के लिए उपायों को खोजता है। वह माँग **धन** है। इस धन के दो रूप हैं। एक है **अन्न** और दूसरा है **प्रजा** ( मनुष्य ) **धन** या **अन्न** उस समाज के उत्पादन के साधनों, आर्थिक उत्पादन की क्रियाशीलता का द्योतक है जिसका सीधा संबंध **प्रजा** से जुड़ा है। इन दो प्रश्नों पर सभी वेद-संहिताओं में बहुत मात्रा में सामग्री मिलती है" ( पृ० ७३ )।

**अग्नि की उत्पत्ति** : आर्ययुगीन मानव के सामने पहिली समस्यायें भोजन, निवास, आग और आत्मरक्षा की थी। कृतयुग में जब कि मनुष्य नितांत ही जंगली अवस्था में था, उसको कई कारणों से, जैसे—भोजन, रोग तथा शत्रुओं के कारण, एक स्थान से दूसरे स्थान में भटकना पड़ा। प्रकृति के विरोध में, आत्मरक्षा के लिए, उसने निरन्तर संघर्ष किया। धीरे-धीरे उसने आग का पता लगाया, जिसका श्रेय महर्षि अंगिरस को है ( **ऋग्वेद** ५।२।८; १०३२।६; ५।११।६ )। आग का पता लग जाने से तत्कालीन जन-जीवन में महान् क्रांतिकारी परिवर्त्तन हुआ। उसको प्राकृतिक शक्ति के रूप में देखा गया। एक ओर तो उसका उपयोग पशुओं तथा मछलियों के मांस को भूनने में किया गया और दूसरी ओर उसको शत्रुबाधा को दूर करने तथा भूत-प्रेतादि को भगाने वाली महाशक्ति के रूप में भी पूजा जाने लगा ( **ऋग्वेद** ३।१५।१; )। धीरे-धीरे मनुष्य ने समझा कि ये पशु, जो दूध देते हैं, जिनका मांस खाकर जीवित रहा जा सकता है; उनकी रोमयुक्त खाल को ओढ़ कर सर्दी दूर की जा सकती है और उनकी हड्डियों तथा उनके सींगों से उपयोगी औजार भी बनाये जा सकते हैं।

अग्नि की सहायता से मनुष्य की उन्नति का एक दूसरा रूप सामने आया। ज्यों ही उसको यह ज्ञात हुआ कि अग्नि के द्वारा कच्चे लोहे को पिघला कर बड़े-बड़े असंभव कार्य भी संभव हो सकते हैं, कि समाज का ढांचा ही बदल गया; किन्तु मनुष्य की यह सूझ बहुत बाद की है। जांगल युग से बर्बर युग में पहुँच कर, अर्थात् कृतयुग के आविष्कारों का विकास कर जब उसने त्रेतायुग में प्रवेश किया तो प्रकृति के सामने उसने अपनी जिन दुर्बलताओं को स्वीकार किया था, उन पर उसने विजय प्राप्त कर ली। उसने अपने

यायावरीय जीवन को समाप्त कर बस्तियाँ बसायीं; उसने अनियमित भोजन-व्यवस्था को नियमित बनाया; वस्त्रों के द्वारा उसने अपनी नग्नता को ढका। इस प्रकार की विकासावस्था में पहुँच कर उसने उत्पादन की नई प्रणाली, सामाजिक संघटन के नये ढंग और कला के नवीन स्वरूपों को जन्म दिया।

**यज्ञ की सृष्टि :** अग्नि का पता लग जाने के बाद यज्ञ की सृष्टि हुई। यज्ञ, जो कि ब्रह्म के अस्तित्व के रूप में प्रतिष्ठित हुआ और जिसके द्वारा भविष्य के लिए आदिम साम्यसंघ के तत्त्वों का निर्माण हुआ। यज्ञ और ब्रह्म के संबंध में श्री डांगे का कथन है कि "आर्यों के साम्यसंघ का नाम ही ब्रह्म है और यज्ञ उस समाज की उत्पादन प्रणाली है। आदिम साम्यसंघ और उत्पादन की सामूहिक प्रणाली का यही रूप था। उत्पादन की इस प्रणाली तथा विराट् ब्रह्म के स्वरूप अथवा साम्यसंघ का ज्ञान वेद है। हिन्दू-परंपरा ने इतिहास को इसी तरह से लेखबद्ध किया है; और आर्य-इतिहास के सबसे प्राचीन युग-आदिम साम्यवाद के युग को समझने के लिए यही एक कुञ्जी है" ( **भारत :** आदिम साम्यवाद से दासप्रथा तक का इतिहास, पृ० ७८-७९ )।

**सत्र** यज्ञ में आदिम साम्यसंघ के प्रचुर तत्त्व समाविष्ट हुए मिलते हैं। यह यज्ञ एक सामूहिक आयोजन के रूप में सम्पन्न होता था। इसके आयोजन में भी सामूहिक श्रम होता था और उसका फल-विभाजन भी सामूहिक रूप में हुआ करता था। जब तक कि प्राचीन आर्यसंघों में व्यक्तिगत सम्पत्ति, वर्गभेद और शासनसत्ता का जन्म नहीं हुआ था, उनकी सामूहिक उत्पादन-प्रणाली का नाम **यज्ञ** था, जिनका ज्ञान वेदों में सुरक्षित है। "इस यज्ञ ने आर्यों के साम्यसंघ को समुन्नत, धनवान् और वैभवशाली बनाकर उसे नष्ट होने से बचा लिया था ·····जब मानव-समाज प्रगति के पथ पर और आगे बढ़ा और उसने धातुओं को पिघलाना सीखकर हंसिया या खुरपी बनाना सीख लिया था, तब भी आर्यों के धार्मिक विधिकर्म अपने पूर्वजों की भाँति देवताओं को प्रसन्न करने के लिए और उन्हीं की भाँति धन प्राप्त करने के लिए उन पूर्वजों के कार्यों का अनुसरण करते थे—वे उन्हीं छन्दों को गाते थे ·····प्राचीन काल में **यज्ञ** एक यथार्थ था। बाद में वह मिथ्या वस्तु हो गयी थी। समाज के उत्तराधिकारियों ने इस अस्तित्वहीन **यज्ञ** को अपने उत्तराधिकार में पाया। इन उत्तराधिकारियों में अतीत काल की विचारधारा और उसके व्यवहार के कुछ अवशेष थे। वे उस यज्ञ को विधि रूप में और मंत्रों के छंदों को इस आशामय विश्वास से अपने साथ लिये रहे मानो उसके

अनुकरण द्वारा धन और आनंद की उपलब्धि हो सकती है" ( डांगे पृ० ६१–९२ )।

**उत्पति और श्रम का विभाजन :** यद्यपि आदिम साम्यसंघ की उत्पादन-शक्तियों में विकास हो रहा था; फिर भी श्रम की मात्रा बढ़ जाने पर भी जीवन में दरिद्रता बढ़ रही थी। सत्र श्रम के द्वारा जो श्रम-विभाजन की व्यवस्था थी भी उसके द्वारा ऐसी आशा नहीं थी कि जीवन में एक ऐसी स्थिति आ सकेगी, जिससे स्थायी रूप से आर्थिक हित का विकास हो सकेगा। यद्यपि इन उत्पादन के आरंभिक साधनों में विकास नहीं हो पाया था; तथापि सारे उत्पादन पर उत्पादकों का ही नियंत्रण था। उत्पादन के इन अविकसित साधनों के कारण आदिम साम्यसंघ ( कम्यून ) में श्रम-विभाजन की रीति का अभाव रहा। इसका एक बहुत बड़ा कारण यह भी था कि तब तक समाज में न तो वर्ण-भेद की विधायें पैदा हुई थीं और समाज का आकार बहुत छोटा था। पूरे साम्यसंघ का निर्माण **विशों** ( बस्ती के निवासी ) द्वारा होता था।

आदिम साम्यसंघ में विभिन्न वर्णों की उत्पत्ति और श्रम-विभाजन की प्रणाली का उदय धीरे-धीरे हुआ। सत्र यज्ञों के युग में हम इतना अन्तर अवश्य पाते हैं कि जहाँ पुरुषों का कार्य शिकार करना, युद्ध करना, पशु-पालन था वहाँ नारी घर का प्रबन्ध करती थीं, भोजन बनाती थीं, पशुओं को पालती थीं और बस्ती की निकटतम भूमि में अन्न उपजाती थीं। किन्तु ये इतने अस्पष्ट प्रमाण हैं कि इनके द्वारा ठीक तरह से श्रम-विभाजन की वास्तविक रूपरेखा नहीं समझी जा सकती है।

वस्तुतः यज्ञ के अनुयायी आर्यों का प्राचीन समाज एक **गण-संघटन** था। उस संघटन के सभी सदस्य कुटुम्ब से एवं रक्त से संबंधित थे और उसको स्वयंचालित सशस्त्र संघटन कहा जा सकता है। इस प्रकार के प्राचीनतम दस गण थे, जिनके नाम हैं : यदु, तुर्वश, द्रुह्यु, अणु, पुरु, अंग, बंग, कलिंग, पुंड्र और सुह्म।

**विवाह सम्बन्ध :** आर्य-समूहों के संघटन का एक ठोस आधार **गोत्र** शब्द से प्रकट होता है। हिन्दुओं की विवाह-संबंधी व्यवस्था के लिए सगोत्र-असगोत्र को दृष्टि में रखना आवश्यक होता है। अपनी आदिम अवस्था में आर्य लोग अपने गोत्र के अंतर्गत ही विवाह करते थे; किन्तु बाद में, जब कि वे जनसंख्या में बढ़कर अलग-अलग क्षेत्रों में फैल चुके थे और उनका आर्थिक स्तर तथा

विचार का धरातल अधिक व्यापक हो गया था, तब सगोत्र विवाह निषिद्ध ठहराये जाने लगे थे, जैसा कि आज भी प्रचलित है ( **डाँगे**, पृ० १०७ )।

हिन्दुओं की विवाह-व्यवस्था के सम्बन्ध में इतिहासकारों के विचार बहुत ही उलझे हुए रहे हैं। हिन्दुओं में बहु-पतित्व या बहु-पत्नीत्व का आधार पशुओं की यौन-प्रवृत्ति को मानने वाले कुछ पूँजीवादी बुद्धिजीवी विद्वानों का कहना है कि आरंभ में पुरुष-नारी के बीच यौन-सम्बन्ध का आधार प्राकृतिक था; किन्तु इधर नयी खोजों के द्वारा यह स्पष्ट हो गया है कि आरम्भ में भी पुरुष-नारी का यौन-सम्बन्ध समाज द्वारा ही नियन्त्रित होता था; उनके सम्बन्धों की नैतिकता या आचार-विचार का नियंत्रण न तो ईश्वर के हाथ में था और न प्रकृति के हाथों में ही।

व्यावहारिक दृष्टि से और शास्त्रीय दृष्टि से देखा जाय तो हिन्दुओं में विवाह की जो प्रणाली आज प्रचलित है, अपने प्रकृत रूप में वह ऐसी ही नहीं थी। **महाभारत** ( आदिपर्व, १२२ ) में लिखा है कि कलियुग के चारों विवाह और परिवार का स्वरूप सर्वथा नया था, जो कि कुछ आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए एक नया सामाजिक प्रयोग था और वह प्राकृतिक नहीं था। **महाभारत** ( शा० प० २०६, ४२–४४ ) में युगों के अनुसार यौन-सम्बन्धों के चार रूप बताये गये हैं, जिनके नाम हैं : **संकल्प, संस्पर्श, मैथुन** और **द्वंद्व**।

डाँगे जी ने अपनी पुस्तक ( पृ० १११ ) में इन चार प्रकार के यौन-सम्बन्धों की व्याख्या करते हुए कहा है "**सङ्कल्प** यौन-सम्बन्ध वे होते थे जिनमें कोई बंधन नहीं था। यह सम्बन्ध किन्हीं दो व्यक्तियों में हो सकता था, जो इसकी कामना या इच्छा करते थे। इस कामना पर कोई भी समाजिक या व्यक्तिगत रोक नहीं थी। **संस्पर्श** वह यौन-संबंध था जिसमें अपने अत्यन्त निकट संबंधियों के साथ यौन-संबंध स्थापित करने पर रोक लगा दी गयी थी और एक गोत्र में विवाह करने का निषेध कर दिया गया था। उस समय भिन्न-भिन्न गोत्र आपस में यह संबंध स्थापित करते थे। प्राकृतिक वैवाहिक संबंध की अन्तिम अवस्था **मैथुन** है। यहाँ से यूथ-विवाह का अंत हो जाता है। जब तक पति-पत्नी की इच्छा रहती थी, तब तक वे एक कुटुम्ब में बँधे रहते थे और दूसरे नर-नारियों से यौन-संबंध नहीं स्थापित करते थे। **द्वन्द्व** यौन-संबंध का वह रूप है जो **कलियुग** में प्रचलित है और जिसके अनुसार एक पति और एक पत्नी का जोड़ा होता है। यौन-संबंध के इस रूप के अनुसार नारी, पुरुष की दासी होती है; और वह ( पुरुष ) व्यक्तिगत सम्पत्ति के अधिकार और

एकाधिपत्य की शक्ति लेकर निरन्तर नारी के हितों का विरोधी बना रहता है।"

**समान वितरण :** जैसे-जैसे जनसंख्या बढ़ती गयी, वैसे-वैसे उत्पादन की आदिम पद्धतियाँ बदलने लगीं। गण-गोत्र टूटने लगे और पूरे एशिया महाद्वीप में, जहाँ जिसको सुविधा मिली, वहीं लोग बसने लगे। जिन स्थानों पर कोई न था वहाँ बस्तियाँ बसाई जाने लगीं और जहाँ पहिले ही से लोग बस चुके थे, वहाँ अधिकार जमाने के लिए युद्ध होने लगे। अधिकारलिप्सा की भावना ने लूट-मार और युद्धों की वृद्धि कर दी थी। युद्ध में शत्रुओं को जब बंदी बनाया जाता था तो उनमें से कुछ को वीरता, सुन्दरता या कलाविद् आदि होने के कारण गण में शामिल कर दिया जाता था, जो कि पूरी तरह गण के सम्बन्धी तथा सदस्य मान लिये जाते थे; लेकिन जिनको साम्यसंघ की छोटी आर्थिक अवस्था में नहीं खपाया जा सकता था उन्हें, परिश्रम द्वारा अधिक फल की प्राप्ति न होने की संभावना से, मार दिया जाता था। उनको साम्यसंघ का शत्रु समझा जाता था और **पुरुषमेघ** की योजना कर उन्हें अग्नि में बलिदान कर दिया जाता था। बाद में उन्हें मारा नहीं दिया जाता था, बल्कि उनके बदले अग्नि में घी की आहुति देकर उन्हें छोड़ दिया जाता था या **दास** बना लिया जाता था। विकास की अवस्थाएँ ज्यों-ज्यों आगे बढ़ती गयीं, श्रम का मूल्य बढ़ने लगा। ऐसी दशा में युद्ध बंदियों को आर्य लोग अग्नि में झोंक देने या भगा देने की अपेक्षा अपना दास बनाने लगे थे। "व्यक्तिगत संपत्ति और वर्ग समाज के उदय होने के साथ-साथ आर्यों के समाज ने शीघ्र ही देखा कि आचारशास्त्र का एक नियम—जो सामूहिकतावादी व्यवस्था में सबके हितों को साधता हुआ भुखमरी से सबकी रक्षा करने और साम्यसंघ के हर सदस्य के बीच एक समान की वितरण शर्त थी—किस प्रकार से अपने विरोधी रूप में प्रकट हुआ। किस तरह वही नियम उत्पीड़न, एकाधिपत्य, थोड़े से शोषकों के वर्ग के पास संपत्ति के संचय कराने में सहायक हुआ और बहु-संख्यक श्रमिकों, दुर्बलों, रोगियों, वृद्धों, दरिद्रों तथा असंख्य गरीब गृहस्थों, **नये कलियुग** की संस्कृति में दासों और चाकरों के लिए भुखमरी का कारण बन गया" ( **डांगे, पृ० १४१** )।

**वर्ण-विभाजन :** आर्यजातियों की प्रथम विकासावस्था में उत्पादन, कार्य और श्रम की अनेकता के कारण श्रम का विभाजन शुरू हुआ। इससे साम्य-संघ के सदस्यों के बीच भेद पड़ने लगा, और फलत: वे अलग-अलग कार्यों को अपना कर वर्गों में विभक्त होने लगे। लेकिन विकास की इस पहिली

स्थिति में व्यक्तिगत संपत्ति की भावना न होने के कारण उन वर्णों में पारस्परिक विरोध या द्वेष उत्पन्न नहीं हुआ था। विकास की दूसरी अवस्था में आर्यों के विभिन्न गणों के बीच संपर्क और संघर्ष होना आरम्भ हुआ; और तभी से अतिरिक्त उत्पादन का विनिमय प्रारम्भ हुआ। इन वर्णों ने अपने को अन्य विरोधी वर्गों में बाँट लिया था और आदिम साम्यसंघ सदा के लिए छिन्न-भिन्न होकर उनके बीच गृहयुद्ध या वर्गयुद्ध आरम्भ हो गया।

ऐसी स्थिति में उन्नतिशील साम्यसंघ को बाध्य होकर युद्ध-संचालन और सुरक्षा-संबंधी कार्यों को विशेष रूप से निर्वाचित व्यक्तियों एवं अधिकारियों के हाथ में सौंप देना पड़ा। जिन्होंने युद्ध का संचालन और सुरक्षा के अधिकारों को अपने हाथ में लिया वे क्षत्र हो गए। जिन्होंने ऋतुओं का विचार, बाढ़ तथा नदियों आदि की गति को जानने का कार्य संभाला वे **ब्राह्मण** कहलाये और बाकी जो लोग बच गये थे उन्हें **विश** या सामान्य लोग कहा जाने लगा, जिनकी संख्या सबसे अधिक थी। ये लोग पशु-पालन, कृषि, दस्तकारी आदि कार्य करते थे। धीरे-धीरे जब श्रम की सामूहिक स्थिति टूटने लगी तो विनिमय के साधन धन-संपत्ति का सर्वाधिकार क्षत्र ( प्रजापतियों ) तथा ब्राह्मण ( गणपतियों ) के हाथों में संचित होने लगा। इस प्रकार समाज दो प्रमुख वर्गों में बँट गया। एक ओर तो धन-संपत्ति वाले क्षत्र तथा ब्राह्मण थे और दूसरी ओर परिश्रम करने वाले विश तथा अन्य लोग हो गये। सारा समाज अमीरों और गरीबों में बँट गया। ऐसे समाज में दास या शूद्रों के लिए कोई स्थान न था। ये दास या शूद्र आर्य थे, जिन्हें युद्ध में बंदी बनाया जाता था तथा दूसरों के हाथ बेचा जा सकता था। उनका न कोई परिवार था न कोई देवता।

**सर्वहारा वर्ग** : यज्ञ-फल के उत्पादन का उपयोग पहिले सब लोग समानरूप से करते थे; किन्तु बाद में अकेले ब्राह्मण ही उनके स्वामी बन गये। क्षत्र सरदारों का भी यही हाल था। केवल विश ही ऐसे थे जो शूद्रों के साथ मिल कर कठोर परिश्रम करके भी दरिद्रता का जीवन बिता रहे थे। श्री डांगे महोदय ने अपनी पुस्तक में वैदिक युग में सर्वथा असमान समाज का स्वरूप और उसके प्रति ऋग्वेद के कवि का विक्षोभ इस प्रकार उद्धृत किया है।

"क्या ईश्वर के हाथों में मनुष्य के लिए अकेला दण्ड भूख है? अगर देवता की यह इच्छा है कि गरीब लोग भूख से मरें, तो धनी लोग अमर क्यों नहीं हैं? मूर्ख ( धनी ) के पास भोजन का जमा होना किसी की भलाई नहीं करता। वह सिर्फ अपने-आप ही खाता है, अपने दोस्तों को भोजन नहीं देता है। लोग उसकी बुराई करते हैं" ( **ऋग्वेद** १०।११७ )।

तत्कालीन समाज के सर्वाहारी वर्ग के प्रति शेष जनता की धारणा कितनी विक्षुब्ध तथा द्वेषयुक्त थी, इसका एक उदाहरण डांगे जी ने उद्धृत किया है, जिसमें कहा गया है कि :—

"हमारे पास अनेक काम, अनेक इच्छाएँ और अनेक संकल्प हैं। बढ़ई की कामना आरे की आवाज सुनने की है। वैद्य, रोगी की कराह सुनने की अभिलाषा रखता है। ब्राह्मण को यजमान की अभिलाषा है। अपनी लकड़ी, पंखा, निहाई और भट्ठी को लेकर लुहार किसी धनी की राह देख रहा है। मैं एक गायक हूँ। मेरा बाप वैद्य है। मेरी माँ अन्न कूटती है। जिस तरह से चरवाहे गायों के पीछे दौड़ते हैं, हम लोग उसी तरह से धन के पीछे दौड़ रहे हैं" ( ऋग्वेद ९।११२।१-३ )।

इस प्रकार सारा समाज श्रम के अभाव में दुःखी और उपयुक्त जीविका पाने के लिए विकल था। धन-संपत्ति का सारा उत्तराधिकार कुछ ही व्यक्तियों ने हड़प लिया था और शेष सारा बृहत् समाज, सारे शिल्पज्ञ, कलाकार और कारीगर आजीविका के लिये तड़प रहे थे। जन-सामान्य की इस सामूहिक माँग ने तत्कालीन समाज में एक नयी क्रांति को जन्म दिया।

इस क्रांति का पहिला प्रभाव तो प्राचीन साम्यसंघ की एकता पर पड़ा। उसमें आत्म-विरोध बढ़ते जा रहे थे और शनैः-शनैः उसके टुकड़े-टुकड़े हो रहे थे। प्राचीन यज्ञ-गण-गोत्र के विरोध में उत्पादन के नये सम्बन्ध उग रहे थे। दास प्रथा के आधार पर निर्मित व्यक्तिगत-संपत्ति की व्यवस्था अब समानता और स्वाधीनता के आधार पर निर्मित नयी व्यवस्था के आगे ध्वस्त होने लग गयी थी। आर्य-गण अब गृह-युद्ध से बुरी तरह घिर गये थे।

वर्ण-व्यवस्था के कारण जिस नयी आर्थिक व्यवस्था का जन्म हुआ था और जो निरन्तर ही विकसित हो रही थी उसने आर्यों की प्राचीन अखण्ड गण-व्यवस्था को पराभूत कर लिया था। अपनी स्थिति को स्थिर बनाये रखने के लिये गणों ने **हवन** और **दान** के पुराने नियमों के पालनार्थ आवाज उठायी और प्राचीन प्रथा के अनुसार उत्पादन के उपभोग, वितरण तथा उपयोग का नारा लगाया; किन्तु उनके ये उपदेश अब सफल न हो सके। यद्यपि गणों के बीच धनी और निर्धन दोनों प्रकार के लोग थे, तथापि धनी वर्ग ही लाभान्वित था। ब्रह्म-क्षत्र वर्ण के संपत्तिशाली वर्ग विशों और शूद्रों के श्रम के शोषक बने हुए थे; दासों और पशुओं का एकाधिकार स्वामित्व वे पहिले ही से प्राप्त कर चुके थे। यही कारण थे, जिससे वर्ण-भेद, वर्ग-भेद में बदल गया और आत्मयुद्ध तथा गृह-युद्ध की भावना तेजी से उमड़ पड़ी।

व्यक्तिगत संपत्ति का एक दुष्परिणाम यह भी हुआ कि साम्यसंघ के परिवार और घर तक विच्छिन्न हो गये। पितृसत्ता की प्रबलता ने मातृसत्ता को दबा दिया, जिसके कारण पतियों से पत्नियों का और पुत्रों से माताओं का विरोध उठ खड़ा हुआ और यद्यपि अब भी प्राचीन **श्रुति** को ही प्रमाणिक माना जाता रहा; किन्तु व्यावहारिक दृष्टि से **सूत्रग्रंथों** तथा **स्मृतिग्रंथों** को ही अपनाया जाने लगा था ( डाँगे, पृ० १८० )।

विश लोकतंत्र की अवस्था अब बहुत ही दयनीय हो गई थी। संपत्तिशाली ब्रह्म-क्षत्र परिवारों ने उनको भी चूस डाला था। वे जितना ही गरीब होते जा रहे थे, उतना ही विजित दासों की ओर झुकते जा रहे थे और ब्रह्म-क्षत्र वर्ग से उनके विरोध की खाई उतनी ही चौड़ी होती जा रही थी। मेहनतकश विश वर्ग की इस दुर्दशा ने गाँवों और नगरों के विरोध को जन्म दिया। इस स्थिति से सत्ताधारी ब्रह्म-क्षत्र-वर्ग भयभीत था कि कहीं मेहनतकश शूद्र और गरीब विश मिलकर सारे समाज को उलट न दें। सारी शासनसत्ता को, व्यक्तिगत संपत्ति को तथा पितृसत्ता को नष्टकर प्राचीन समानता की स्थापना न कर दें।

मेहनतकश श्रमिक जनता के इस विरोध, वैमनस्य एवं क्रांति ने परवर्ती साम्राज्यों जन्म दिया। यद्यपि महाभारत-युद्ध ( ३०००–२००० ई० पू० ) से पहिले हिन्दू दास शासन व्यवस्था की पूर्ण प्रतिष्ठा नहीं हो सकी थी, फिर भी इतना स्पष्ट है कि अर्ध दास और अर्ध सामन्ती राज्यों की वृद्धि ने गणसंघों का उन्मूलन करना आरम्भ कर दिया था। महाभारत-युद्ध के बाद पूर्व की ओर गंगा की वादी में दास-राज्यों का अस्तित्व प्रकाश में आने लग गया था।

**अराजक और वैराज्य-संघ** : निश्चित रूप से यह बताना कि भारतीय इतिहास के परवर्ती साम्राज्यों का उदय कब हुआ था, जरा कठिन है। आर्यों की प्राचीन सभ्यता और संस्कृति का संबंध बहुधा अफगानिस्तान, सिंधु नदी के मैदानों, दक्षिणस्थ हिमालय और पंजाब के प्रदेशों से था। यहीं पर आर्य **गणों** द्वारा वर्ण, संपत्ति, वर्ग और दासता को विकसित किया जाना समीचीन प्रतीत होता है। आदिम साम्य-युग की जिस गण-व्यवस्था के सम्बन्ध में पहिले बताया गया है, परवर्ती समय तक यद्यपि उनमें से बहुत गण ध्वस्त तथा क्षीण हो चुके थे, तथापि उनका अस्तित्व सर्वथा विलुप्त नहीं हुआ था, और इस प्रकार के दीर्घजीवी गणों में **अर्याणी**, **गणार्याणीः जुवार्याणी**, **दो-रज्जणी**, **वी-रज्जणी** और **विरुद्ध रज्जणी** आदि का नाम उल्लेखनीय है, जिनका हवाला **आचारांग जैनसूत्रों** में देखने को मिलता है।

कौटिल्य के **अर्थशास्त्र** में (पृ० ५६२-५६३) अराजक और **वैराज्य** नामक दो गणों का उल्लेख किया है। **अराजक** व्यवस्था से आधुनिक विद्वानों ने **अराजकतावाद** का अभिप्राय निकाला है; किन्तु इन गणों की वास्तविकता यह थी कि प्राचीन समय के अनुसार अभी भी वे एक साथ मिलकर रहते थे और एक साथ भोजन करते थे। अराजक गणसंघों का जैसा चित्रण हमें **अथर्ववेद** (३।३०।५–६) में देखने को मिलता है, ठीक वैसी ही स्थिति उक्त गणों की परवर्ती समय तक भी बनी रही। **अर्थशास्त्र** के उक्त प्रसंग में बताया गया है कि उनके समाज में **अपने पराये** की कोई द्विविधा ही पैदा नहीं हुई थी। किन्तु दास राज्यों के शक्तिसंपन्न हो जाने पर **अराजक** जैसे आदिम साम्य-संघों की परम्परा के गणों का निरन्तर ध्वंस होता जा रहा था।

दूसरे प्रकार के वे गण थे, जिनकी व्यवस्था वैराज्य-पद्धति पर थी। यद्यपि इस प्रकार के गणों ने अपना कोई राज्य तथा राज्यतंत्र का विकास नहीं किया; फिर भी इनमें श्रम-विभाजन, संपत्ति की विषमता और पितृसत्तात्मक दासता का विकास हो चुका था। इन वैराज्यों की लोकतंत्र व्यवस्था लोकसभा द्वारा संचालित होती थी।

**अराजक** और **वैराज्य** गणों के अतिरिक्त **जानवरों** का भी एक समाज था, जिसमें लोकतंत्रवादी व्यवस्था थी; किन्तु यह लोकतंत्र आदिम गण-संघों के लोकतंत्र जैसा नहीं था। उसमें त्रिवर्णों का ही शासन था; उसमें शूद्र दासों की सुरक्षा के लिए कोई व्यवस्था नहीं थी। इस प्रकार की जानपद व्यवस्था के गणराज्य उत्तरकुरुओं तथा उत्तरमाद्रों के थे, जो उत्तर भारत के हिमालय प्रदेश में रहते थे। ये लोग बड़े शक्तिसंपन्न और अपने चरम उत्कर्ष पर थे।

पश्चिमी भारत में इसी समय गण-संघटन की एक **स्वराज्य** शासनप्रणाली प्रचलित थी। उसका परिचालन **ज्येष्ठों** की एक समिति द्वारा होता था, जो पैत्रिक हुआ करती थी और जिसका आयोजन चुनाव द्वारा होता था। यद्यपि **स्वराज्य** का शाब्दिक अर्थ स्व-शासन प्रणाली होता है; किन्तु इस प्रकार की व्यवस्था उसमें नहीं थी। उसका संचालन **ज्येष्ठ** द्वारा होता था, जो **स्वराट्** होता था।

इस प्रकार हम देखते हैं कि आदिम साम्यसंघ अपनी पुरातन विशेषताओं को छोड़कर अब व्यक्तिगत संपत्ति, वर्ग संकीर्णता, स्वामित्व, दासत्व और धनी-निर्धन के रूप में बदल गया था। उसकी प्राकृतिक लोकतंत्र व्यवस्था का अन्त होने लग गया था। अभिजातकुल अब राजकुलों में परिवर्तित हो गये थे।

"जब **गण** ने व्यक्तिगत संपत्ति, वर्ण और दासता को विकसित कर लिया, तो वह **राज्यम्** हो गया और वह निर्वाचित नेतृत्व जो 'शासन करने' के लिए चुना जाता था, **राजन्** हो गया।" ( डाँगे, पृ० १६१ )।

**वर्ताशस्त्रोपजीवी संघ** : कौटिल्य ने ( **अर्थशास्त्र**, पृ० ६६६ ) प्राचीन **गण**-संघों में **शस्त्रोपजीवी** या **आयुधजीवी** और **राजशब्दोपजीवी** का उल्लेख किया है। इन संघों उल्लेख कौटिल्य से पूर्व वैयाकरण पाणिनि भी कर चुके थे, किन्तु उनकी समुचित व्याख्या न तो पाणिनि का भाष्य-लेखक ही कर सका और न आधुनिक विद्वानों ने ही की। यहाँ तक डा० जायसवाल जैसे प्रकाण्ड अर्थशास्त्रविद् विद्वान् ने भी उक्त संघों के संबंध में स्पष्ट रूप से कुछ नहीं कहा। इन गणों का परिचय और उनकी पारस्परिक भिन्नता का स्पष्ट विवेचन डाँगे जी ने किया है। उन्हीं के शब्दों में इस प्रसंग को यहाँ उद्धृत किया जाता है :

"**आयुधजीवी** और **शस्त्रोपजीवी** संघों का अर्थ उन **गणों** से है, जो अब भी अपनी उस प्राचीन विशेषता को लिये हुए थे जिसके अनुसार उस **गण** के सभी सदस्य सशस्त्र होते थे। लेकिन सामाजिक संघटन की इसी एक विशेषता का उल्लेख क्यों किया गया? यह इसलिये कि उस समय तक गणसदस्यों ने किसी ऐसे वर्ग-शासन और स्थायी वर्ग-विभाजन को विकसित नहीं किया था जिसमें केवल शासकवर्ग के हाथों में, अथवा निःशस्त्र श्रमिक जनता के विरुद्ध सेना के हाथों में शस्त्र की शक्ति केन्द्रित होती थी और उसके द्वारा निःशस्त्र जनता शासित होती थी। इस विशेषता का उल्लेख इसलिए किया गया है कि उस समय तक **गण** का निर्वाचित नेतृत्व एक सशस्त्र पैतृक अभिजात वर्ग में परिणत नहीं हो गया था। राजतांत्रिक वर्ग शासन-सत्ता के लेखक, गण की इस विशेषता की ओर स्वभावतया आकर्षित हुए थे। यह सैनिक लोकतंत्र था। फिर भी उस आदिम साम्यसंघ से इसका रूप भिन्न था, जिसमें किसी भी वर्ग की सत्ता नहीं थी। इस गण में संपत्ति-भेद प्रवेश कर चुका था। कृषि (वार्त्ता) व्यापार, मुद्रा, धन तथा पितृसत्तात्मक दासता का उदय भी उन **गणों** में होने लगा था। लेकिन वर्गों के आत्म-विरोध इतने तीव्र नहीं हो उठे थे कि निर्धन श्रमशील आर्य विशों का नाश करने की अथवा उनको निःशस्त्र करने की आवश्यकता आ जाती। **गण** के अन्दर सब लोग श्रम करते थे और शूद्र दासों को छोड़कर सब लोग शस्त्र धारण करते थे। उस सशस्त्र श्रमिक गण में नेतृत्व के पद पर संपत्तिशालियों को चुना जाता था। इस प्रकार के **वार्त्ता-शस्त्रोपजीवी अथवा आयुधजीवी संघों** का अस्तित्व भारत में हम ३०० वर्ष ईसा पूर्व तक पाते हैं। उन संघों में से कुछ के नाम इस प्रकार हैं :

"१ वृक, २ दामानि, ३ 'तथा अन्य', ( ३–८ ) छह त्रिगर्तों का मण्डल ( इस मंडल के छह सदस्य कौण्डोपरथ, दाण्डकी, कौष्टकी, जलमानि, ब्राह्म गुप्त और जानकि होते थे ), ९ यौधेय तथा अन्य, १० पार्श्व तथा अन्य, ११ क्षुद्रक, १२ मालव, १३ कठ, १४ सौभूति, १५ शिबि, १६ पारल, १७ भागल १८ कंबोज, १९ सुराष्ट्र, २० क्षत्रिय, २१ श्रेणी, २२ ब्रह्माणक, २३ अंबष्ठ" ( डांगे पृ० १९३ )

इनमें से अधिकांश गणों का निवासस्थान बाह्रीक प्रदेश था। यह वाह्रीक प्रदेश सिन्धु नदी की घाटी में पंजाब से लेकर सिन्ध के दक्षिण तक फैला हुआ था। जिन छह त्रिगर्तों का ऊपर उल्लेख किया गया है, वे जम्मू के निकट हिमालय के पर्वतीय जिलों में रहते थे। इन गण-संघों में सैनिक लोकतंत्र का प्रभुत्व था और उनमें इतना दृढ़ संगठन था कि सिंधु नदी के तट पर सिकन्दर की शक्तिशाली सेना को उनसे हार माननी पड़ी थी।

**राजशब्दोपजीवी संघ** : प्राचीन गणतंत्रों के प्रसंग में कौटिल्य ने **राजशब्दोपजीवी** नामक एक दूसरी श्रेणी के गणों का उल्लेख किया है। ( **अर्थशास्त्र**, पृ० ६६९ )। श्रेणी के गणों में लिच्छवी, मल्ल, शाक्य, मौर्य, कुकुर, माद्र, अंधक-वृष्णी, कुरु और पांचाल आदि को रखा जा सकता है। इन गणों में संपत्ति-भेद, गण-युद्ध और लोकतंत्र की शिथिलता के कारण उनकी शासन-व्यवस्था इतनी दुर्बल हो चुकी थी कि उनमें नेतृत्व का आधार पैतृक-परंपरा मात्र रह गया था। उनके निर्वाचित व्यक्तियों की सभाएँ **राजन्** कहलाती थीं। अकेले लिच्छवियों के ७,७०७ **राजन्** थे। ये लोग शासन-सत्ता को चलाने के लिए कार्यकारिणी सभाओं, अफसरों तथा नायकों का निर्वाचन करते थे। इसी लिए कौटिल्य के इन गण-संघों को, उनकी कार्य-व्यवस्था के अनुरूप **राजशब्दोपजीवी संघ** कहा है।

दण्डप्रधान दास-व्यवस्था की विजय और विश लोकतंत्रों के दमन के बाद समाज में भयंकर शोषण और आर्थिक विकास का आरंभ हुआ। विस्तृत भूमि-खंडों को कृषियोग्य बनाया गया और इतिहास में पहली बार **प्रादेशिक राज्य** का अस्तित्व प्रकाश में आने लगा। इस प्रकार की वर्ग-विशिष्ट **राजतंत्रवादी** राज्य-व्यवस्था ने पशुधन तथा स्वतंत्र प्रजा का बहिष्कार कर दिया और शांति के उद्देश्यों पर आधारित गण के साम्यसंघ को समाप्त कर दिया। यहीं से राज्य-व्यवस्था और दण्ड-व्यवस्था का आरंभ हुआ।

## हिन्दु प्रजातन्त्रों की स्थापना

वैदिक युग के बाद का लोक-जीवन अपने-अपने वर्ग का स्वतंत्र शासन करने की ओर तीव्र गति से प्रवृत्त हो रहा था। वैदिक युग में प्रचलित राज-शासन की जगह् बाद में प्रजातंत्र ने ले ली थी। मेगस्थनीज ने ( **मेगस्थनीज,** पृ० ३८,४० ) परंपरागत, दंत-कथाओं के आधार पर यही बताया है कि वैदिक काल के उत्तरवर्ती समाज ने राजा के द्वारा शासन की प्रथा का अंत कर दिया था और भारत के विभिन्न भागों में प्रजातंत्र शासन की प्रतिष्ठा होने लग गयी थी।

प्राचीन भारत में प्रजातंत्र शासन-प्रणाली के परिचायक गणतंत्रों और संघराज्यों के संबंध में हमें बौद्धों के धर्मग्रन्थों में प्रचुर सामग्री देखने को मिलती है। भिक्षुओं की गणना के संबंध में **महावग्ग** ( डेविड्स तथा ओल्डेन-बर्ग का अनुवाद, खंड १३, पृ० २६९ ) में कहा गया है कि सब भिक्षुओं को एक जगह एकत्र करके उनकी गणना या तो **गण** की रीति पर की जाती थी या गोटी के द्वारा मत एकत्र किये जाते थे और मताधिकार के लिए शला-काएँ ली जाती थीं। **महावग्ग** में एक शब्द **गणपूरक** ( खंड १३, पृ० ८०७ ) आया है, जिसका अर्थ है गण की पूर्ति करने वाला। संभवतः **गणपूरक** एक प्रधान अधिकारी होता था। डा० जायसवाल ने इसी आधार पर गण शब्द का अर्थ **पार्लियामेंट** या **सिनेट** दिया है और यह माना है कि उन्हीं के द्वारा तब प्रजातंत्र राज्यों का शासन होता था ( **हिन्दू-राजतंत्र**, १, पृ० ३० )।

**गण** शब्द के अतिरिक्त **संघ** शब्द का भी प्राचीन ग्रन्थों में उल्लेख हुआ है। वैयाकरण पाणिनि ने **संघ** शब्द को **गण** के अर्थ में प्रयुक्त किया है (**अष्टा-ध्यायी** ३।३।८६)। आरंभ में संघ से प्रजातंत्र का ही बोध होता था, इसका प्रभाव हमें **मज्झिमनिकाय** ( १।४।५।३५ ) में भी देखने को मिलता है। पाणिनि ने क्षुद्रक, मालव ( **अष्टाध्यायी** ४।२।२५ ), त्रिगर्त ( ५।३।११६ ) आंध्र, वृष्णि ( ५।३।११४ ) आदि प्रजातंत्र के संघटनों का उल्लेख किया है। वे संघ दो प्रकार के थे। एक तो **गण** और दूसरा **निकाय**। गण एक राज-नीतिक सभा या पंचायत थी। यद्यपि सभी वर्गों के लोग इसके सदस्य हो सकते थे, तथापि शासन करने वाला मंत्रिमण्डल केवल क्षत्रियों का ही होता था। इसका कार्यसंचालन बहुमत से होता था। **निकाय** एक अराजनीतिक समुदाय होता था, जिसमें वंशगत भेदभाव का अभाव होता था। उसका कार्य भी बहुमत पर था। निष्कर्ष यह है कि उस समय गण और संघ प्रजातंत्र ही थे। भाष्यकार पतंजलि ने उक्त दोनों शब्दों की बारीकी के संबंध में प्रकाश डालते हुए लिखा है कि **गण** शब्द तो शासन-प्रणाली का पर्यायवाची था और

संघ शब्द से राज्य का अर्थ लिया जाता था। संघ उसे इसलिए कहा गया है, क्योंकि वह एक संस्था या एक समूह था ( **महाभाष्य** ५।१।५९ )।

कुछ दिन पूर्व मोनियर विलियम, डा० फ्लीट, डा० थामस और डा० जायसवाल आदि विद्वानों में '**गण**' शब्द की प्राचीनता तथा उसके उपयुक्त अभिप्राय को सिद्ध करने के लिए बड़ा विवाद रहा। मोनियर विलियम्स और डा० फ्लीट ने **गण** को ट्राइब ( Tribe ) के अर्थ में ग्रहण किया था, जिसका प्रतिवाद डा० जायसवाल ने और उनकी प्रेरणा से डा० थामस ने किया ( **जर्नल, रायल एशियाटिक सोसाइटी**, १९१४, पृ० ४१३, १०१०; १९१५, पृ० ५३३; १९१६, पृ० १६२ )।

**गण** शब्द का उपयुक्त अभिप्राय जानने के लिए **जातक, महाभारत, धर्मशास्त्र, अमरकोश, अवदानशतक** और जैनग्रन्थों में बिखरी हुई प्रचुर सामग्री देखने योग्य है ( **हिन्दू-राजतंत्र**, १, पृ० ३५-३७ )। इन सभी ग्रन्थों में गण शब्द प्रजातंत्र का ही बोधक है।

प्राचीन भारत के संघराज्यों तथा गणराज्यों के संबंध में वैयाकरण पाणिनि ( ५०० ई० पूर्व ) ने बहुत सी बातें बतायी हैं। पाणिनि के मत से **संघ** शब्द राजनीतिक संघों की या गणों अथवा प्रजातंत्रों की प्रकृति को प्रकट करने वाला एक पारिभाषिक शब्द है। पाणिनि यद्यपि धार्मिक संघों से परिचित था; किन्तु उसने कहीं भी जैन-बौद्ध संघों का निर्देश नहीं किया। इसका अभिप्राय यही हो सकता है कि या तो वह जैन-बौद्धों के संघों से परिचित न था या तब तक वे संघ प्रकाश में नहीं आये थे। यही बात कात्यायन ( ४०० ई० पूर्व ) के दृष्टिकोण से भी प्रकट होती है। पाणिनि और कात्यायन ने वाहीक ( वाहीक देश का अर्थ है नदियों का देश। यह शब्द 'वह' धातु से निकला जान पड़ता है, जिसका अर्थ 'बहना' है। वाहिनी का एक अर्थ नदी भी होता था। इस वाहीक देश के अंतर्गत सिंध और पंजाब दोनों थे—डा० जायसवाल : **हिन्दू-राजतंत्र**, १, पृ० ४६ तथा फुटनोट; सिल्वेन लेबी : **इण्डियन एंटीक्वेरी**, भाग ३४, पृ० १८ ( १९०६ ); **महाभारत**, कर्णपर्व ४४।७।) देश के कुछ संघों का उल्लेख किया है ( क्रमशः **अष्टाध्यायी** ५।३।११४–११७, **वार्तिक** ४।१।१६८ ) जिससे प्रतीत होता है कि उन प्रजातंत्रमूलक संघों के सदस्य ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा दूसरी जातियों के लोग भी हो सकते थे। पाणिनि ने उक्त संघों को **आयुधजीवी** अर्थात् 'आयुध के द्वारा अपनी जीविका का निर्वाह करने वाले' बताया है। कौटिल्य ने उक्त संघों को **शस्त्रोपजीवी** ( **अर्थशास्त्र**, पृ० ६६९ ) कहा है। कौटिल्य ने शस्त्रोपजीवी संघों के विपरीत भाव रखने

वाले **राजशब्दोपजीवी** दूसरे संघों का भी उल्लेख किया है ( **अर्थशास्त्र**, पृ० ६६९ )। डा० जायसवाल ने उक्त संघों के संबंध में कहा है कि "यदि हम **उपजीवी** शब्द को 'मानना' या 'धर्म आदि का पालन करना' इस अर्थ में लें तो इससे यह भाव निकलता है कि जो संघ शस्त्र-अस्त्र का व्यवहार करने अथवा युद्धकला में निपुण हुआ करते थे, वे **शस्त्रोपजीवी** कहलाते थे, और जो संघ **राजशब्दोपजीवी** कहलाते थे, उनके शासक राजा की उपाधि धारण करते थे। यही बात हम दूसरे शब्दों में यों कह सकते हैं कि शस्त्रोपजीवी संघों में जो लोग होते थे, वे सब युद्धों में बहुत निपुण हुआ करते थे और राजशब्दोपजीवी संघों के शासक या प्रधान सदस्य राजा की उपाधि धारण करते थे" ( **हिन्दू-राजतंत्र**, १, पृ० ४४, ८१–८२ )। इस दृष्टि से पाणिनि द्वारा प्रोक्त आयुधजीवी संघों का अभिप्राय युद्धकलाविशारद होना ही युक्तिसंगत जान पड़ता है।

वैयाकरण पाणिनि ने तत्कालीन प्रजातंत्र के परिचायक ६ **समाजों** का उल्लेख किया है, जिनके नाम हैं ( १ ) मद्र, ( २ ) वृजि ( **अष्टाध्यायी** ४।२।१३५ ), ३. राजन्य ( ४।३।५३ ), ४. अंधकवृष्णी ( ६।२।३४ ), ५. महाराज और ६. भर्ग (४।३।९७)। इन सभी **समाजों** में प्रजातंत्र शासन प्रणाली प्रचलित थी।

बुद्धकालीन धार्मिक संघ भारतीय साहित्य और पुरातन भारतीय राजनीति, दोनों के लिए महान देन छोड़ गये हैं। इन भिक्षुसंघों की रचना यद्यपि धार्मिक भावना के आधार पर हुई थी; किन्तु उनका संचालन एवं संघटन अपने समकालीन राजनीतिक संघों की प्रणाली पर सम्पन्न होता था; और वे इतने सफल सिद्ध हुए कि अल्पकाल में ही उनकी बहुश्रुति एवं लोकप्रियता धरती के कोने-कोने तक फैल गयी। उनके द्वारा एक ओर तो मानव जाति की शांति तथा प्रेम की दिशा में महत्त्वपूर्ण कार्य हुआ और दूसरी ओर सामाजिक अभ्युन्नति के क्षेत्र में प्रजातंत्र की भावना को अधिक उभरने के लिए बल मिला। इस सम्बन्ध में डा० जायसवाल का कहना है कि "बौद्धसंघ के जन्म का इतिहास सारे संसार के त्यागियों के सम्प्रदायों के जन्म का इतिहास है। इसलिए भारतीय प्रजातंत्र के संघटनात्मक गर्भ से बुद्ध के धार्मिक संघों के जन्म का इतिहास केवल इस देश वालों के लिए ही नहीं; बल्कि सारे संसार के लिए भी विशेष मनोरंजक है" ( **हिन्दू-राजतंत्र**, १, पृ. ६१ )।

बौद्धकालीन प्रजातंत्र राज्यों का विस्तार पूर्व में गोरखपुर तथा बलिया के जिलों से भागलपुर जिले तक और मगध के उत्तर तथा हिमालय के दक्षिण

तक था। ऐसे जनतंत्र राज्यों में शाक्य, कोलिय, लिच्छिवी, विदेह ( वृजी ), मल्ल, मोरिय, बुली और मग्ग का नाम उल्लेखनीय है ( —डेविड्स का अनुवाद—**महापरिनिब्बान सुत्तन्त**, पृ० ६, २१-२७; Dialogues of the Buddha, पृ० २, १७६-६०; Buddhist India, पृ० २२-२३ )।

मेगस्थनीज, एरियन और कर्टियस आदि यूनानी विद्वानों ने भारतीय प्रजातंत्रों के सम्बन्ध में अपनी आँखों देखा प्रामाणिक वृत्तांत दिया है। उन्होंने तत्कालीन भारतीय राज्य-व्यवस्था के दो रूप बताये हैं : एक तो वह जिसमें एकराजस्व शासन प्रणाली प्रचलित थी और दूसरा वह जिसमें प्रजातन्त्र शासन प्रणाली वर्तमान थी। इस प्रकार की शासन प्रणाली वाले तत्कालीन संघ-राज्यों, स्वतंत्रसंघों और राजाधीन गणतन्त्रों में यूनानी इतिहासकारों ने कथई ( कठ ), अद्रेस्तई, सौभूति, क्षुद्रक, मालव, शिवि, अग्रश्रेणी, आर्जुनायन, अंबष्ठ, क्षत्रिय, मुसिकनि, ब्रचमनोई, पटल, फेगेल ( भगल ), यौधेय, अरट्ट, शयेड, गोपालव और कौंडिवृषस् आदि की नामावली तथा उनका इतिहास, अथ च उनमें से अधिकांश राज्यों के साथ हुए युद्धों का वर्णन दिया है। ( मेगस्थनीज, एरियन १२; एरियन : अनाबेसिस, ५, २२, २ ए; इन्वेजियन ऑफ इंडिया बाई अलेक्जेंडर दि ग्रेट; कर्टियस भाग ६, प्रक० ४; डॉ० जायसवाल : **हिन्दू-राजतन्त्र** १, पृ० ८३-१०८ )।

ऊपर कहे गये इतने अधिक संघराज्यों या गणराज्यों की उपलब्धि से हमें विदित होता है कि प्राचीन भारत में अनेक प्रकार की शासन-प्रणालियाँ प्रचलित थीं। प्राचीन भारत की प्रजातन्त्रीय शासन-प्रणाली के परिचायक उक्त राज्यों के सम्बन्ध में हमें संस्कृत-साहित्य और पुरातत्त्व में प्रचुर सामग्री देखने को मिलती है। इन विभिन्न शासन-प्रणालियों का स्वरूप-दर्शन, भौज्य शासन-प्रणाली, द्वैराज्य शासन-प्रणाली, अराजक शासन-प्रणाली, उग्र शासन-प्रणाली और राजन्य शासन-प्रणाली आदि में किया जा सकता है।

शक्तिशाली मौर्य साम्राज्य की प्रतिष्ठा हो जाने के बाद यद्यपि बहुत-से पुराने प्रजातन्त्र मौर्य राजाओं की नीति की लपेट में आकर मौर्य साम्राज्य में विलयित हो चुके थे, कुछ को सर्वथा नष्ट किया जा चुका था; फिर भी कुछ सुदृढ़ संघात राज्य बच गये थे, जिनका अस्तित्व शुंगकाल में तथा उसके बाद तक बना रहा। ऐसे संघातों में योधेय, मद्र, मालव, क्षुद्रक, शिवि, आर्जुनायन, वृष्णि, राजन्य, महाराज, जनपद, वामरथ, शालंकायन और औदुम्बर आदि का नाम उल्लेखनीय है।

डा० जायसवाल ने, प्राचीन भारत में प्रतिष्ठित ८२ प्रजातंत्रों की नामावली दी है ( हिन्दू-राजतंत्र, १, पृ० २६७-२७०, परिशिष्ट ख ), जिससे भारतीय जन-जीवन में प्रजातन्त्र के प्रति अदम्य निष्ठा और आत्मोन्नयन के लिए अडिग आस्था का पता चलता है ।

जिन इतिहासकारों का यह कहना है कि भारत में प्रजातन्त्र की स्थापना अधिक प्राचीन नहीं है उनको भारतीय इतिहास की जानकारी नहीं है। वास्तविकता यह है कि जिस युग के भारत में अनेक प्रकार की शासन-प्रणालियाँ प्रचलित हो चुकी थीं, उस समय तक योरप के अनेक देशों में शासन-सूत्र का आरम्भ हो ही रहा था । जहाँ तक प्रजातन्त्रात्मक शासन का प्रश्न है इसकी स्थापना तो वहाँ और भी बाद में हुई ।

**संघात राज्य**—आचार्य कौटिल्य ने संघात राज्यों की शासन-प्रणाली और उनके संघटन के सम्बन्ध में अनेक बातें बतायी हैं । महाबलशाली मौर्य साम्राज्य की एकराज शासन-व्यवस्था में अपने अस्तित्व को बनाये रखने की शक्ति इन्हीं संघात राज्यों में पायी गयी । ये संघात प्रजातन्त्र के पोषक थे और उन्होंने एकराज शासन का सदा बहिष्कार किया । इन प्रजातन्त्रवादी संघातों को वश में करने के लिए कौटिल्य ने साम और दान नीति को उपयुक्त बताया है; क्योंकि शक्ति और संघटन की दृष्टि से वे इतने शक्तिशाली होते थे कि उनको जीतना सर्वथा असंभव था ।

कौटिल्य का सुझाव है कि "किसी संघ को प्राप्त करना, जीतना, मित्रता संपादित करने या सैनिक सहायता प्राप्त करने की अपेक्षा अधिक उत्तम है । जिन्होंने मिलकर अपना संघ बना लिया हो, उनके साथ साम और दान की नीति का व्यवहार करना चाहिए; क्योंकि वे अजेय होते हैं । जिन्होंने अपना इस प्रकार का संघ न बनाया हो, उन्हें दण्ड और भेद की नीति से जीतना चाहिए ।" ( अर्थशास्त्र, पृ० ६६६ )

इस विवरण से प्रतीत होता है कि जो गण या प्रजातन्त्र राज्य बलवान् होते थे और मिलकर अपना संघात बना लेते थे, मौर्यों की एकराज व्यवस्था में भी वे स्वच्छंद रूप से रहते थे, किन्तु संघातरहित राज्य भेद या दण्ड से वश में किये जा सकते थे । यह भी पता चलता है कि उन संघबद्ध गणों के साथ समानता का व्यवहार किया जाता था और आवश्यकता होने पर साम-दान के द्वारा उनसे मित्रता गाँठकर उनसे सैनिक सहायता भी प्राप्त की जाती थी । अशोक के शिलालेखों में पाये जाने वाले योन, कंबोज, गांधार, राष्ट्रिक, पितिनिक, नामक-भोज, आंध्र और पुलिंद आदि ऐसे ही अंतर्भुक्त

पड़ोसी हैं जिनको कि **अपरांत** कहा गया है, प्रजातन्त्र राज्य थे, जिनमें से कुछ तो अपने सुदृढ़ संघातों में बद्ध होकर बहुत बाद तक बने रहे; जैसे कि राष्ट्रिक, भोजक आदि; और कुछ संघातरहित गणराज्यों को मौर्य साम्राज्य ने स्वायत्त कर सदा के लिए विच्छिन्न कर दिया था।

इस प्रकार हिन्दू प्रजातन्त्र का इतिहास बहुत प्राचीन है और प्रत्येक युग की शासन-प्रणाली में प्रजा की अभिरुचियों एवं धारणाओं को अधिक सम्मान के साथ अपनाया जाता रहा है। प्राचीन भारत के संघातराज्यों का अविजित शासन इस बात का प्रमाण है कि राज्यों के निर्माण-विकास में प्रजा का कितना महत्त्वपूर्ण सहयोग प्राप्त था।

## अर्थशास्त्र में वर्णित संघराज्यों का वृत्तान्त

कौटिल्य ने अपने **अर्थशास्त्र** में तत्कालीन संघराज्यों के वृत्तांत के लिए स्वतन्त्र अधिकरण ( ११ वाँ अधिकरण ) की रचना की है। इन संघराज्यों के वृत से हमें उनके सुदृढ़ संघटन और साम्राज्य के प्रति उनकी रीति-नीति का अच्छा परिचय मिलता है। यद्यपि प्रतापी सिकन्दर के आक्रमणों ने तत्कालीन भारत के बहुत-से छोटे राज्यों को ध्वस्त कर दिया था, तथापि उससे एक बड़ा कार्य यह हुआ कि विघटित छोटे-छोटे राज्यों को एक संघटित संघराज्य की स्थापना के लिए प्रेरित किया।

कौटिल्य ने दो प्रकार के संघराज्यों का उल्लेख किया है : एक तो राजा उपाधि धारण करने वाले राजशासित राज्य और दूसरे बिना राजा की उपाधि धारण करने वाले संघराज्य। इन संघराज्यों की उपयोगिता के संबंध में कौटिल्य का अभिमत है कि 'दण्डलाभ और मित्रलाभ, दोनों की अपेक्षा संघलाभ उत्तम होता है। संघटित होने के कारण संघराज्यों को बलवान्-से-बलवान् शत्रु भी दबा नहीं सकता।' ( **अर्थशास्त्र**, पृ० ६६६ )

राजा की उपाधि धारण करने वाले जिन संघराज्यों के सम्बन्ध में कौटिल्य ने प्रकाश डाला है उनके नाम हैं : लिच्छिविक, वृजिक, मल्लक, मद्रक, कुकुर, कुरु और पांचाल। दूसरी श्रेणी के, बिना राजा की उपाधि वाले संघराज्यों को कौटिल्य ने शस्त्र, व्यापार और कृषि द्वारा जीविका-निर्वाह करने वाले बताये हैं। उनके नाम हैं : कांबोज, सुराष्ट्र, क्षत्रिय और श्रेणी आदि ( अर्थशास्त्र, पृ० ६६६ )। विजय की इच्छा रखने वाले राजा को किस रीति-नीति से इन संघराज्यों को स्वायत्त करना चाहिए अथवा मित्रता द्वारा

उनसे किस प्रकार लाभ उठाना चाहिए, इसका विस्तार से वर्णन किया गया है। ( **अर्थशास्त्र**, पृ० ६६९-६७५ )।

ऐतिहासिक दृष्टि से अब हम उक्त संघराज्यों और उनकी प्रजातन्त्रात्मक शासन-प्रणाली पर विचार करेंगे।

**लिच्छवी :** भारतीय इतिहास के प्रकाण्ड विद्वान् डा० विन्सेंट स्मिथ ने लिखा है कि लिच्छवियों का सम्बन्ध तिब्बत से था। इस सम्बन्ध में पहिली दलील तो उन्होंने यह दी है कि लिच्छवियों के बीच तिब्बत में प्रचलित यह प्रथा वर्तमान थी कि वे अपने मृतकों को यों ही जंगल में फेंक आते थे; और दूसरा आधार उन्होंने यह दिया है कि लिच्छवियों की न्याय-प्रणाली तिब्बत में प्रचलित न्याय-प्रणाली से बहुत-कुछ मिलती-जुलती है (**अर्ली हिस्ट्री आफ इण्डिया**, तीसरा संस्करण, पृ० १५५ )। इसी अभिमत को स्मिथ साहब अपने एक निबन्ध 'लिच्छवियों का तिब्बती रक्त-संबंध' में बहुत पहिले प्रकट कर चुके थे ( **इण्डियन एंटीक्वेरी**, पृ० २३३-२३५, १९०३ )। इन आधारों पर उन्होंने लिच्छवियों का मूल-निवास तिब्बत बताया है।

किन्तु डा० जायसवाल ने संस्कृत के नाटकों, सनातनी हिन्दुओं में प्रचलित सामाजिक तथा धार्मिक रीति-रिवाजों और **मनुस्मृति** में उल्लिखित प्रमाणों के आधार पर यह सिद्ध किया है कि शव-संस्कार की उक्त प्रथा का पुरातन हिन्दुओं में व्यापक रूप से प्रचार था। इस सम्बन्ध में उन्होंने 'अट्ठकथा' के प्रामाणिक विवरण को भी उद्धृत करते हुए डा० स्मिथ की इस धारणा का भी खंडन किया है कि लिच्छवियों की न्याय-प्रणाली, तिब्बतियों की न्याय-प्रणाली से मिलती है। लिच्छवियों की न्याय-प्रणाली, को डा० जायसवाल ने **महाभारत** में प्रतिपादित ( शांतिपर्व, अध्याय १०७ ) गणतन्त्रों की न्याय-प्रणाली पर आधारित बताया है ( **हिन्दू-राजतन्त्र**, १, पृ० २४६-२५४ )।

व्याकरण-व्युत्पत्ति के अनुसार **लिच्छु** के अनुयायी या वंशज लिच्छवी कहलाते हैं। यह नाम उनकी आकृति के अनुसार पड़ा हुआ मालूम होता है। बौद्धग्रन्थ **महापरिनिब्बान सुत्त** ( ५।१९ ) में लिच्छवियों के पड़ोसी वाशिष्ठ मल्ल कहे गये हैं। लिच्छवियों का मूल-निवास वैशाली था, जिनकी वंशपरम्परा आर्यों से संबद्ध है। वे विशुद्ध भारतीय थे। विदेह और लिच्छवि, दोनों एक ही राष्ट्रीय नाम **वृजि** से प्रसिद्ध थे। दोनों ही एक राष्ट्र या एक जाति की दो शाखायें थीं ( **हिन्दू-राजतन्त्र**, १, पृ० २५४ )।

**वृज्जी :** अर्थशास्त्रकार ने जहाँ वृज्जियों का उल्लेख किया है, वहाँ विदेहों को ही लिया है। पाणिनि ने **वृजिक** और **मद्रक** शब्दों के लिए जो अर्थ दिया है ( **अष्टाध्यायी** ४।२।१३१ ) उसी को अर्थशास्त्रकार ने भी ग्रहण किया है। कात्यायन ने भी मद्रों और वृजियों के प्रजातन्त्री उदाहरण दिये हैं; अर्थात् मद्र का भक्त ( राजभक्त ) मद्रक और वृजी का भक्त वृजिक कहा जायेगा ( **अष्टाध्यायी वार्तिक** ४।३।१००; **महाभाष्य,** ४।२।४५; ५।३।५२ ) कौटिल्य ने ऊपर **राजशब्दोपजीवी** संघों में मद्रक और वृजिक रूपों का ही उल्लेख किया है। वृजियों की शासन-प्रणाली कुलिक ( उच्चकुलोत्पन्न ) आधार पर थी। उसके न्यायालय के तीन प्रमुख अधिकारी हुआ करते थे। सेनापति, उपराज और राजा। वृजि लोग दाक्षिणात्य थे।

वृजियों के संबंध में हमें बौद्ध ग्रन्थ **'दीघनिकाय'** में पुष्कल सामग्री देखने को मिलती है। प्रसंग ऐसा है कि एक समय मगध के राजा की ओर से उसका महामन्त्री भगवान् बुद्ध के पास इस आशय की एक जिज्ञासा लेकर आया कि वज्जियों ( वृजियों ), लिच्छवियों और विदेहों पर उसे आक्रमण करना चाहिए या नहीं। उसके उत्तर में बुद्ध ने अपने शिष्य आनन्द को सम्बोधित करते हुए वृजियों के संबंध में सात प्रश्न किये थे। इन सात प्रश्नों में उन्होंने वृजियों की शासन-प्रणाली और उनके सुदृढ़ संघटन पर प्रकाश डाला है। ( **डाइलाग्स आफ दि बुद्धा,** भाग २, पृ० ७६-८५; **सेक्रेड बुक्स आफ दि ईस्ट,** भाग ११, पृ० ३-६; **हिन्दू-राजतन्त्र,** भाग १, पृ० ५९-६१ )।

**मल्ल :** लिच्छवियों और वृजियों की ही भाँति मल्लों का उल्लेख भी विभिन्न ग्रन्थों में पाया जाता है। **मज्झिमनिकाय** में संघों और गणों के प्रसंग में कहा गया है कि "हे गोतम, यह बात संघों और गणों के सम्बन्ध में है; जैसे वज्जि और मल्ल" ( **मज्झिमनिकाय** १।४।५।३५ )। एक जैन-ग्रंथ में **गण** शब्द की व्याख्या करते हुए कहा गया है कि **गण** मनुष्यों का वह समूह है जिसका मुख्य गुण मनयुक्त ( सचित्त ) अथवा विवेक युक्त होता है; जैसे मल्लों का गण ( **अभिधानराजेन्द्र,** खण्ड ३, पृ० ८१२ )।

प्रो० रायस डेविड्स तथा डा० जायसवाल का अभिमत है कि मल्लों का राज्य बहुत विस्तृत था। उसका विस्तार गोरखपुर जिला से पटना तक फैला हुआ था। वह दो भागों में विभक्त था, जिसमें एक की राजधानी कुशीनगर और दूसरे की पावा में थी। **डायलाग्स आफ दि बुद्धा,** भाग २, पृ० १७९—१७९०; **हिन्दू-राजतंत्र,** भाग १, पृ० ६२ ) राजनीतिक दृष्टि से वृजियों **और मल्लों, दोनों का प्राचीन भारत के संघ राज्यों में सर्वोच्च स्थान था।**

मल्लों के बृहद् **संथागार** ( सार्वजनिक भवन—House of Communal Law ) का उल्लेख **महापरिनिब्बान सुत्त** ( ६।२३ ) में हुआ है। इसमें लिखा गया है कि बुद्ध भगवान् के निर्वाण की सूचना देने के लिए आनंद जब मल्लों के यहाँ पहुँचा तो उस समय उक्त संथागार में मल्ल लोग एकत्र होकर उसी विषय पर विचार कर रहे थे। जैनों के **'कल्पसूत्र'** ( पृ० १२८ ) से विदित होता है कि विदेहों और लिच्छवियों ने एक **संयुक्त लीग** की स्थापना की थी, जिसमें नौ सदस्य मल्लों के थे।

लिच्छवियों के प्रसंग में पहिले बताया गया है कि वे मल्लों के पड़ोसी थे। मल्लों को **महापरिब्बान सुत्त** ( ५।१६ ) में वाशिष्ठ कहा गया है, जो आर्यों का एक प्रसिद्ध गोत्र था। डा० जायसवाल का कहना है कि मौर्य राज्य की स्थापना के बाद मल्लों की प्रजातंत्र शासन-प्रणाली समाप्त हो चुकी थी, किन्तु ११वीं शताब्दी तथा उसके बाद तक तिरहुत तथा नेपाल में उनके भिन्न-भिन्न वंश प्रतिष्ठित-प्रकाशित होते रहे। गोरखपुर और आजमगढ़ में आज भी मल्लों के वंशज बचे हुए हैं, जो कि व्यापार आदि से जीविकोपार्जन करते हैं **हिन्दू-राजतंत्र** भाग १, पृ० ७७ )।

**मद्रक** : मद्रकों का इतिहास बहुत प्राचीन है। **यजुर्वेद** ( १५।११।१३ ) और **ऐतरेय ब्राह्मण** ( ८।१४ ) में जिस प्रजातंत्री शासन-प्रणाली का उल्लेख मिलता है, उसमें उत्तर मद्र और उत्तर कुरु भी सम्मिलित हैं। पाणिनि की **अष्टाध्यायी** में मद्रों का उल्लेख दिशा के विचार से हुआ है, जिससे प्रतीत होता है कि उनके शासन के दो विभाग थे। (**अष्टाध्यायी** ४।२।१०८, ७।३।१३ )। एक गुप्तकालीन शिलालेख ( **फ्लीट : गुप्त इन्सक्रिप्शन्स**, पृ० ८ ) से विदित होता है कि पाणिनि के समय में मद्र लोगों की प्रजातंत्र शासन-प्रणाली प्रचलित थी और उनकी यह स्थिति लगभग चौथी शताब्दी ई० पूर्व तक बनी रही, मद्रों के दो कुल थे : एक तो उत्तर में और दूसरा दक्षिण में। दोनों की शासन-प्रणाली भिन्न-भिन्न थी। इस संबंध में हमें यह भी पता चलता है कि उत्तर-कुरुओं के प्रकाश में आने तक उत्तर मद्रों का अस्तित्व पौराणिक कोटि में चला गया था। उनका वैभव अब कथा-कहानियों भर में ही रह गया था। ( **मिलिंदपह्न**, खंड १, पृ० २-३ )।

**महाभारत** ( कर्णपर्व, अध्याय ११, ४४ ) से हमें पता चलता है कि उत्तर मद्रों की राजधानी शाकल ( संभवतः स्यालकोट ) थी। उन्होंने शाकल के आसपास के प्रदेश का नाम अपने नाम पर मद्र रख छोड़ा था। **मिलिंदपह्न** के उल्लेखानुसार दूसरी शताब्दी ई० पूर्व में उक्त शाकल नगर मिनेंडर

के कब्जे में चला गया था ( **गुप्त इन्सक्रिप्शन्स**, पृ० ८ )। संभवतः उसी समय मद्र लोग उत्तर को छोड़कर दक्षिण में गये, जहाँ उस समय गुप्तों का सुख-संपन्न शासन स्थापित था ( **हिन्दू-राजतंत्र**, भाग १, पृ० १२६ )। मद्रों की मुठभेड़ समुद्रगुप्त के साथ हुई थी। इसके बाद उनका कोई इतिहास नहीं मिलता है।

मद्रों की एक विशेषता उनके सिक्कों में दिखाई देती है। उन्होंने हस्ताक्षर-युक्त सिक्के चलाये थे। उनका कोई भी ऐसा सिक्का नहीं मिला है, जिस पर किसी प्रकार का लेख न खुदा हो।

**कुकुर** : कौटिल्य ने जिस राजा-शासित कुकुर संघ का उल्लेख किया है, वह अंधक वृष्णी के संयुक्त संघ का एक अंग था। पश्चिम भारत में प्रथम शताब्दी के अंत में उपलब्ध होने वाले शिलालेखों में कुकुरों का उल्लेख मिलता है ( **एपिग्राफिया इण्डिका**, भाग ८, पृ० ४४, ६० )। कुकुरों के संबंध में अधिक विवरण उपलब्ध नहीं होता है। संभवतः १५० ई० पूर्व के बाद रुद्र-दामन् का राज्य प्रतिष्ठित हो जाने पर कुकुरों का अस्तित्व उसी में खो गया।

**कुरु** : कुरुओं का इतिहास बहुत पुराना जान पड़ता है। वैदिक युग में हिन्दू समाज के जिन विभिन्न वर्गों ( विशों ) का उल्लेख मिलता है उनमें कुरुओं का नाम भी आता है। वे स्वयं को आर्य कहा करते थे ( मेक्डानल तथा कीथ : **वैदिक इण्डेक्स** )।

कुरुओं को कौटिल्य ने प्रजातंत्रवादी बताया है; किन्तु **ऐतरेय ब्राह्मण** ( पृ० ८।१४ ) में कुरुओं और पांचालों को एकराजत्व शासन-प्रणाली वाले संघ बताया गया है। बुद्ध के समय में उनके राज्य का अस्तित्व धुंधला पड़ गया था। संभवतः बुद्ध के बाद और कौटिल्य से पूर्व ही उन्होंने प्रजातंत्र को अपनाया होगा।

**पांचाल** : पांचालों के संबंध में जैसा बताया गया है कि पहिले वे एक राजस्व शासन के पोषक रहे हैं; किन्तु कुरुओं की ही भाँति बुद्ध के निर्वाण के बाद वे भी प्रजातंत्रवादी हो गये थे, जिस रूप उल्लेख कौटिल्य ने किया है। पांचालों का राज्य मौर्यों के उपरान्त भी बना रहा।

**काम्भोज** : राजा की उपाधि धारण करने वाले उक्त राजसंघों के अति-रिक्त कौटिल्य ने शस्त्र, व्यापार और कृषि द्वारा जीविका-निर्वाह करने वाले गणतंत्रों में काम्बोज, सुराष्ट्र, क्षत्रिय तथा श्रेणी आदि का उल्लेख किया है।

काम्भोजों का मूल स्थान पूर्वी अफगानिस्तान ( काबुल नदी, आधुनिक

कंबोह के तट पर ) था। अशोक के शिलालेखों में उनका उल्लेख गांधारों के बाद आया है ( पाँचवाँ अभिलेख )। पाणिनि ने कांबोजों का उल्लेख किया है ( **अष्टाध्यायी** ४।१।१७५ ), जिससे प्रतीत होता है कि कांबोजों में जो राजा होता था वह एकराज होता था अथवा निर्वाचित शासक होता था। कौटिल्य के समय में कांबोजों की शासन-व्यवस्था, पाणिनि के दृष्टिकोण की अपेक्षा सर्वथा बदली हुई दिखाई देती है। कांभोज का शब्दार्थ है: निकृष्ट भोज। कांबोज भी उसका पर्याय है।

यास्क ( ७०० ई० पूर्व ) के कथनानुसार कांभोजों की मातृभाषा संस्कृत थी; किन्तु उनकी भाषा में पड़ोसी ईरानियों की भाषा के रूप मिल गये थे ( **निरुक्त** २।१।३।४ )।

**सुराष्ट्र** : सुराष्ट्र लोग काठियावाड़ के निवासी थे। बलभी के ५८ ई० पूर्व के शिलालेखों ( जिनका प्रामाणिक वंशक्रम डा० जायसवाल ने तैयार किया है, देखिए जे० बी० ओ० आर० एस०, १, १०१; १९१४; **एपिग्रफिया इण्डिका**, भाग ८, पृ० ४४ ) और रुद्रदामन् के जूनागढ़ वाले शिलालेखों ( **एपिग्राफिया इण्डिका**, भाग ८, पृ० ६० ), जिनकी स्थिति दूसरी शताब्दी ई० की है, से विदित होता है कि सुराष्ट्र लोग मौर्य-साम्राज्य के बाद भी बने रहे। किन्तु दूसरी शताब्दी ई० के लगभग उनके संघटन का महत्त्व लोप हो गया था; उसके बाद उनका कोई स्वतंत्र अस्तित्व न रह गया था ( **हिन्दू-राजतंत्र** १, पृ २१६ )।

**क्षत्रिय : श्रेणी** : क्षत्रियों और श्रेणियों के संबंध में कहा गया है कि ये सिंध के रहने वाले, एक-दूसरे के पड़ोसी थे **इरियन**, भाग ६, प्रकरण १५ )। यूरोपीय विद्वानों ने क्षत्रियों को एक विशिष्ट उपजाति ( Xathroi ) कहा है किन्तु **अर्थशास्त्र** से विदित होता है कि वह नाम एक विशिष्ट राजनीतिक संघ का था। श्रेणियों के लिए भिन्न-भिन्न नाम दिये गये हैं ( **ऐश्यंट इण्डिया**, इट्स इन्वेजन बाई अलेक्जेंडर दि ग्रेट. पृ. ३६७ )। ऐसा प्रतीत होता है कि श्रेणी लोग कई उपवर्गों में विभाजित थे और जिन श्रेणियों से सिकन्दर की मुठभेड़ हुई थी वे अग्र या प्रथम श्रेणी थे। आधुनिक सिंधी खत्री, प्राचीन क्षत्रियों के वंशज हैं।

अग्र श्रेणियों के संबंध में कहा गया है कि वे बड़े वीर थे। अपनी पराजय के समय उन्होंने अपने स्त्री-बच्चों को उसी प्रकार आग में जला डाला था जैसे जौहर के समय राजपूत अपने स्त्री-बच्चों को जला डालते थे (**कर्टियस**, भाग ९

प्रक० ४, **अलेक्जेंडर**, पृ० २३२ )। प्राचीन भारत के राजसंघों में क्षत्रियों और श्रेणियों का अधिकता से उल्लेख पाया जाता है।

## मंत्रिपरिषद्

प्राचीन भारत में राष्ट्र-संघटन की दृष्टि से **मंत्रिपरिषद्** का महत्त्वपूर्ण स्थान है। उसकी उत्पत्ति वैदिक युग की राष्ट्रीय सभा से हुई, किन्तु बाद में हिन्दू राज्यों के अभ्युदय तथा उन्नयन की दृष्टि से उसकी उपयोगिता निरन्तर बढ़ती गयी। धर्म, अर्थ, शासन, न्याय आदि विषयों पर लिखे गये ग्रन्थों में मंत्रिपरिषद् पर इसीलिए गंभीरता से विचार किया गया कि एक चिरस्थायी एवं सर्वांगीण साम्राज्य की सुरक्षा-व्यवस्था के लिये उसकी पर आवश्यकता है।

कौटिल्य ने मंत्रियों की इस सभा को **'मंत्रिपरिषद्'** ही कहा है (**अर्थशास्त्र**, पृ० ४७ ) इससे पहले **जातक** ( खण्ड ६, पृ० ४०५, ४३१ ) **महावस्तु** ( खंड २, पृ० ४१६-४४२ ) और अशोक के शिलालेखों ( तीसरा, छठा ) में उसको **परिसा** कहा गया है। धर्मसूत्र, धर्मशास्त्र और अर्थशास्त्र विषय के ग्रन्थों में कहा गया है **मंत्रिपरिषद्** की स्वीकृति तथा उसके सहयोग के बिना राजा को कोई भी कार्य नहीं करना चाहिए। मनु ने कहा है कि छोटे-बड़े सभी कार्य राजा को **मंत्रिपरिषद्** के साथ विचार करके करने चाहिए ( **मनुस्मृति** ७।३०–३१, ५५, ५६ )। याज्ञवल्क्य ( **याज्ञवल्क्यस्मृति** १।३११ ) तथा अन्य ग्रन्थ-कारों ने भी यही बात कही है।

कौटिल्य यद्यपि एक राज्य-शासन-प्रणाली का समर्थक रहा है, जिसमें राजा ही एकमात्र कर्ता-धर्ता होता है, किन्तु **मंत्रिपरिषद्** की अनिवार्यता को उसने भी माना है। उसका कहना है कि राजा को अपने प्रत्येक महत्त्वपूर्ण कार्य **मंत्रिपरिषद्** के परामर्श से करने चाहिए और संदिग्ध या विवादग्रस्त विषयों में जो बहुमत द्वारा समर्थित हों उसी के अनुसार कार्य करना चाहिए ( **अर्थशास्त्र**, पृ० ४७ )। कौटिल्य ने कहा है कि इन्द्र का **सहस्राक्ष** अभिधान इसलिये हुआ कि उसकी **मंत्रिपरिषद्** में एक हजार बुद्धिमान् सदस्य थे। वे ही उसके नेत्र कहे जाते थे ( **अर्थशास्त्र**, पृ० ४७ )।

संपूर्ण प्रजा, सारा राज्य और यहाँ तक कि राजा भी **मंत्रिपरिषद्** पर निर्भर है। **अर्थशास्त्र** की दृष्टि से मंत्री के बिना राजा का कोई अस्तित्व नहीं है। राजा और मंत्री के पारस्परिक संबंध और राज्य के लिये उनकी क्या आवश्यकता है, इसकी चर्चा करते हुए कौटिल्य ने लिखा है कि राजा और

मंत्री साम्राज्यरूपी शकट के दो पहिये हैं, जिनके बिना वह राज्य-शकट आगे नहीं बढ़ सकता है। ( **अर्थशास्त्र**, पृ० १९ )। मंत्री ही राजा का ऐसा सहायक है, जो विपत्ति के समय उसकी रक्षा और प्रमाद के समय उसको सावधान करता है।

**मंत्रिपरिषद्** की योजना का मुख्य उद्देश्य है प्रत्येक राजकीय समस्या पर विचार करना और राज्य की उन्नति के लिये योजनाएँ बनाना। सभी राजकार्यों को मंत्रणा के बाद ही क्रियान्वित करने का कौटिल्य ने विधान किया है। इस मंत्रणा को राजा एकाकी नहीं कर सकता। अकेले में विचारित कार्यक्रमों की सफलता संदिग्ध होती है। इसलिए समुचित परामर्श के लिये **मन्त्रिपरिषद्** की अनिवार्यता स्वयं सिद्ध है।

कौटिल्य का कहना है कि अज्ञात विषय को जान लेना, ज्ञात विषय का निश्चय करना, निश्चित विषय को स्थायी रूप देना, मतभेद हो जाने पर संशय का निराकरण करना, किसी विषय का आंशिक ज्ञान होने पर ही उस सारे विषय को हृदयंगम करना ये सभी कार्य **मन्त्रिपरिषद्** के अधीन होते हैं। इसलिए मन्त्रियों का अत्यन्त बुद्धिमान् होना आवश्यक है ( **अर्थशास्त्र**, पृ० ४४ )।

किसी भी सुविचारित गुप्त विषय के रहस्य को सुरक्षित रखने के लिये कौटिल्य ने बड़ा जोर दिया है। कौटिल्य का कहना है कार्यान्वित होने से पहले ही किसी गुप्त योजना का फूट जाना, राजा और **मंत्रिपरिषद्** दोनों के लिये अनिष्ट का कारण हो सकती है ( **अर्थशास्त्र**, पृ० ४३ )। इसलिए मंत्र की सुरक्षा के लिये पहली आवश्यकता यह है कि मंत्रणा-गृह अत्यन्त सुरक्षित हो। दूसरे में राजा तथा उसके पारिषद् इतने संयमी एवं विचारवान् होने चाहिये कि उनकी किसी चेष्टा से उनके गुप्त रहस्यों का भेद प्रकट न हो सके। मंत्र की सुरक्षा के लिये तीसरी आवश्यकता इस बात की है कि मंत्रणा में भाग लेने वाला कोई भी व्यक्ति मादक वस्तुओं का सेवन न करता हो ( **अर्थशास्त्र**, पृ० ४३–४४ )।

कौटिल्य ने मंत्र के पाँच अंग बताये हैं : कार्य आरंभ करने का तरीका, योग्य पुरुषों का सहयोग तथा द्रव्य-संचय, देश तथा काल का विचार, अनर्थों से आत्मरक्षा और अपनी अभीष्ट सिद्धि का विचार।

मनु ( **मनुस्मृति** ७।५७ ) और कौटिल्य ( **अर्थशास्त्र**, पृ० ४६ ) दोनों इस बात में सहमत हैं कि राजा को चाहिये कि पहले वह सब मंत्रियों से अलग-अलग परामर्श करे और तब उन सबको एक साथ बैठा कर उनके साथ विचार करे। बृहस्पति ( **बृहस्पतिशास्त्र** १।४, ५ ) का तो यहाँ तक कहना है

कि प्रत्येक ऐसा कार्य भी, जो कि सर्वथा न्यायसंगत एवं धर्मानुमोदित हो, उसको भी मन्त्रियों की संमति-स्वीकृति से ही करना चाहिये।

**मन्त्रियों की संख्या : मन्त्रिपरिषद्** की अनिवार्यता को सभी आचार्यों ने स्वीकार किया है, किन्तु उसके सदस्यों की संख्या कितनी होनी चाहिये इस सम्बन्ध में उनकी राय एक नहीं है। मन्त्रियों की संख्या के प्रसंग में कौटिल्य ने बृहस्पति और शुक्राचार्य के मतों को उद्धृत किया है। इस प्रसंग में कौटिल्य ने न तो अपना ही अभिमत दिया है और न उक्त दो आचार्यों के अतिरिक्त किसी तीसरे पुरातन आचार्य को उद्धृत किया है। इससे यही निष्कर्ष निकलता है कि बृहस्पति और शुक्राचार्य का मत ही कौटिल्य को अभीष्ट था।

आचार्य बृहस्पति के अनुयायी विद्वानों के मतानुसार मन्त्रियों की संख्या सोलह और शुक्राचार्य के समर्थक विद्वानों के अनुसार बीस बतायी गयी है। कौटिल्य ने इस सम्बन्ध में केवल इतना ही कहा है कि परिषद् में मन्त्रियों की संख्या इतनी होनी चाहिये कि जिससे वे सभी कार्यों को सफलतापूर्वक सम्पादन करते हुए राज्य की उन्नति करते रहें।

कौटिल्य ने **मन्त्रिपरिषद्** के प्रमुख चार सदस्य बताये हैं, श्रेष्ठता के अनुसार जिनका क्रम है : मन्त्री, पुरोहित, सेनापति और युवराज ( **अर्थशास्त्र**, पृ० ३३ ) इनके अतिरिक्त पौर, जानपद आदि भी परिषद् के सदस्य होते थे।

**मन्त्रिपरिषद्** वस्तुतः राष्ट्रपरिषद् थी। उसके कार्यों की सीमा मन्त्रियों तथा राजा तक ही सीमित नहीं थी, अपितु वह सारे राष्ट्र के कार्यों, विभिन्न विभागीय अध्यक्षों की रीति-नीति को निर्धारित करने वाली परिषद् थी। उसका अधिकार क्षेत्र बहुत व्यापक था।

**मन्त्री और अमात्य :** कौटिल्य के अनुसार मन्त्री और अमात्य दो अलग-अलग पद थे। कौटिल्य ने लिखा है कि 'इस प्रकार राजा को चाहिए कि यथोचित गुण, देश, काल और कार्य की व्यवस्था को देखकर वह सर्वगुण-सम्पन्न व्यक्तियों को अमात्य बना सकता है; किन्तु सहसा ही उनको मन्त्रिपद पर नियुक्त न करे ( **अर्थशास्त्र**, पृ० २३ )।

इससे स्पष्ट है कि मन्त्री और अमात्य, दो भिन्न-भिन्न पद थे और अमात्य की अपेक्षा मन्त्री का पद बड़ा था। कदाचित् बात यह रही होगी कि मन्त्री, **मन्त्रिपरिषद्** का सदस्य भी होता था और राजा को भी सुझाव दे सकता था; जब कि अमात्य **मन्त्रिपरिषद्** का सदस्य तो होता था किन्तु उसको मन्त्रिपद

प्राप्त करने का अधिकार नहीं था। कौटिल्य की विवेचन-प्रणाली से हमें यह भी विदित होता है कि **मन्त्रिपरिषद्** के निर्णय बहुमत पर आधारित थे। बहुमत द्वारा स्वीकृत-समर्थित कार्यों को ही कौटिल्य ने क्रियान्वित करने का विधान किया है।

**राजा :** कौटिल्य के **'अर्थशास्त्र'** और उसके जीवन-सम्बन्धी ध्येयों का अध्ययन कर यह बात स्पष्ट रूप से समझ में आ जाती है कि कौटिल्य का उद्देश्य एक ऐसे विराट् साम्राज्य की स्थापना करना था, जिसकी शासन-सत्ता निरंकुश हो और जिसके अतुल बल-वैभव के समक्ष किसी को भी शिर उठाने का साहस न हो, फिर भी उसकी नीति के अन्तराल में लोक-कल्याण की एक व्यापक भावना विद्यमान थी, जिसका उल्लंघन उसने कभी भी नहीं किया और सम्भवतः यही एक भारी कारण रहा कि कौटिल्य की निरंकुश नीति में प्रजातन्त्री विचारों का आश्चर्यमय समन्वय था।

कौटिल्य का निर्देश है कि राजा का पहिला कर्तव्य प्रजा को प्रसन्न रखना है। वस्तुतः राजा नाम की कोई हस्ती ही कौटिल्य के सामने नहीं दिखाई देती है; प्रजा ही सब कुछ है। राजा का अपना कोई हित या सुख अथवा अभीष्ट नहीं होना चाहिए। वह तो प्रजा की सुख-सुविधाओं एवं प्रजा के अभीष्टों की व्यवस्था करने वाला एक व्यवस्थापक मात्र है। उस विराट् प्रजा के कुशल-क्षेम के लिए किन-किन बातों और किन-किन साधनों की आवश्यकता है, इसकी सारी जिम्मेदारी और सारा भार राजा के ऊपर निर्भर है। ( **अर्थशास्त्र** पृ० ६२–६३ ) कदाचित् इसी लिए विशाखदत्त के **मुद्राराक्षस** नाटक में एक बार चन्द्रगुप्त अपने परतन्त्र जीवन के लिए इतना झुँझला पड़ता है कि सारा राजपाट छोड़ देने के लिए वह उत्तेजित हो उठता है।

इसलिए राजा के चारित्रिक गुणों के सम्बन्ध में कौटिल्य ने जो सीमाएँ निर्धारित की हैं, उन तक पहुँचना प्रत्येक व्यक्ति के वश की बात नहीं है। सत्कुलोत्पन्न, दैवबुद्धि, बलवान्, धार्मिक, सत्यवादी, तत्त्ववक्ता, कृतज्ञ, उच्चादर्श-युक्त, उत्साही, शीघ्र कार्य करने वाला, समर्थ सामंतों से युक्त, दृढ़निश्चयी और विद्या-व्यसनी; राजा के चरित्र के ये प्रधान गुण हैं। ( **अर्थशास्त्र**, पृ० १८ ) इनके अतिरिक्त उसकी बुद्धि में शास्त्रों को सुनने की उत्कण्ठा, शास्त्रोपदेश को ग्रहण करने की क्षमता, तदनुसार आचरण करने का संयम और तर्क-वितर्क के द्वारा तत्त्व की बात को जान लेने की निपुणता होनी चाहिए।

शौर्य, अमर्ष, शीघ्रता और दक्षता, ये चार बातें उसके उत्साह में होनी चाहिये, इन बातों के साथ-साथ उसमें वे सभी बातें भी होनी चाहिए, जिनके कारण वह विराट् प्रजा के उच्चादर्शों को जान सके और अपने उन्नत गुणों को प्रजा में क्रियान्वित कर सके। राजा के चरित्र की यह सम्पदा ( पूंजी ) है।

राजा के सदाचरण पर कौटिल्य ने बड़ा जोर दिया है। अपने आचरण को विशुद्ध बनाये रखने के लिए राजा को जितेन्द्रिय होना चाहिए; उसको वृद्धजनों का सहवास करना चाहिए; उसको परस्त्री, परधन और हिंसा आदि कार्यों से सदा दूर रहना चाहिए; अधिक शयन करना तथा लोभ, मिथ्या-व्यवहार, उद्धतवेष एवं अनर्थकारी कार्यों को त्याग देना चाहिए; अधर्मकारी तथा अनर्थकारी कार्यों से उसको दूर रहना चाहिए; धर्म और अर्थ को क्षति न पहुँचाने वाले काम का सेवन करना चाहिए; यदि वह धर्म, अर्थ और काम इन तीनों में से किसी एक का अधिक सेवन करता है तो अपने लिए वह नाशकारी अनर्थ को पैदा करता है।

कौटिल्य का सुझाव है कि राजा के आचरण पर ही उसके कर्मचारियों का आचरण निर्भर है। यदि वह प्रमादी होगा तो उसके कर्मचारी भी प्रमाद करने लगेंगे और यह भी असंभव नहीं कि प्रमादी राजा के कर्मचारी उसके शत्रु से सन्धि करके एक दिन उसका सर्वस्व ही समाप्त कर डालेंगे। इसके विपरीत यदि राजा उदार, परिश्रमी और विवेकशील होगा तो उसका सारा भृत्यवर्ग उसके इन गुणों को अपनायेगा। इसलिए, कौटिल्य का कहना है कि, उक्त बातों पर ध्यान रखकर राजा को चाहिए कि यत्नपूर्वक सावधानी से वह अपनी उन्नति की ओर सचेष्ट रहे।

ऐसा तभी सम्भव है यदि उसकी कार्य-व्यवस्था का ढंग निश्चित रूप से विचारपूर्वक संपन्न होता रहे। राजा की कार्य व्यवस्था नियमित ढंग से संचालित होती रहे, इसके लिए कौटिल्य ने रात और दिन को दो भागों में विभक्त कर प्रत्येक भाग को आठ-आठ उप-भागों में बाँट दिया है। ब्राह्ममूहूर्त में उठने के बाद रात्रि में शयनपर्यन्त राजा को किस समय क्या कार्य करना चाहिए, इसका कौटिल्य ने ब्यौरेवार विवरण दिया है।

राजा के प्रमुख कर्तव्य हैं यज्ञ, प्रजापालन, न्याय, दान, शत्रु-मित्र से उचित व्यवहार, विभिन्न विषयों के प्रकांड विद्वानों को उनके उपयुक्त स्थानों पर नियुक्त करना। ( **अर्थशास्त्र**, पृ० ६३-६४ ) इसी को अच्छी नीति (सुशासन) कहा गया है और ऐसी नीति के अनुसार आचरण करने वाले राजा की सभी विघ्न-बाधायें दूर होकर उसकी उन्नति एवं कल्याण होता है।

प्राचीन भारत की एकराजत्व शासन-प्रणाली को दृष्टि में रखकर स्वभावतः होना तो यह चाहिये था कि सर्वसत्तामान शासक ( राजा ) ही सम्पूर्ण राज-सत्ता का एकाधिकारी व्यक्ति होता, किन्तु अर्थशास्त्र तथा न्यायशास्त्र विषयक ग्रन्थों में जो नीति-नियम निर्धारित हैं उनको देखकर ही यह बात स्पष्ट हो जाती है कि हिन्दू राजा की स्थिति एक वेतनभोगी सेवक से बढ़कर कुछ न थी। राजा और राजपरिवार का वेतन ( वृत्ति ) निर्धारित था, जो कि देश की आय तथा देश की स्थिति पर निर्भर था। राजमाता, पटरानी, दूसरी रानियाँ, राजकुमार और दूसरे राजपरिवार के व्यक्तियों के लिये वेतन नियत था ( **अर्थशास्त्र**, पृ० ४२०-४२२ )। राजा को यद्यपि **स्वामी** कहा जाता था, किन्तु उसके अधिकार की सीमाएँ अपराधियों के दमन तक ही सीमित थीं। सार्वजनिक बहुमत से वह बँधा रहता था। वह पौरजानपद की राष्ट्र-संघटन की शक्ति के अधीन था। इस दृष्टि से उसकी स्थिति राष्ट्र के एक सेवक या भृत्य से बढ़कर नहीं थी। उसका कोई स्वतन्त्र व्यक्तित्व और उसकी कोई व्यक्तिगत रुचि-अरुचि नहीं हुआ करती थी। हिन्दू राजा की यह दास या भृत्य जैसी स्थिति ही वस्तुतः नैतिक दृष्टि से उसे स्वामित्व के उच्चासन पर अडिग बनाये रखी रही। राज्यरूपी वृक्ष का मूल बताते हुए **शुक्रनीतिसार** ( ५।१२ ) में उसकी स्थिति को बड़े अच्छे ढंग से दर्शाया गया है। कहा गया है कि "राजा, राज्यरूपी वृक्ष का मूल है, मन्त्रि-परिषद् उसका धड़ या स्कंध हैं, सेनापति उसकी शाखाएँ हैं, सैनिक उसके पल्लव है, प्रजा उसके पुष्प हैं, देश की सम्पन्नता उसके फल हैं और समस्त देश उसका बीज है।"

इसलिये यदि राजा न हो तो प्रजा और राष्ट्र की क्या स्थिति हो सकती है, यह स्पष्ट हो जाता है।

हिन्दू राजनीति की दृष्टि से राज्य एक ऐसी पुनीत थाती है जो राजा को इसलिये सौंपी जाती है कि वह प्रजा की सुख-समृद्धि और कल्याण-कामना के लिए सतत यत्नशील बना रहे। प्रत्येक राज्याभिषेक के समय अभिषिक्त राजा को यह कह कर इस पुनीत थाती को सौंपा जाता था कि "यह राष्ट्र तुम्हें सौंपा जाता है। तुम इसके संचालक, नियामक और उत्तरदायित्व के दृढ़ वाहन-कर्ता हो। यह राज्य तुम्हें कृषि के कल्याण, सम्पन्नता, प्रजा के पोषण के लिए दिया जाता है ( **शुक्लयजुर्वेद** ९।२२ )।

इसलिये राजा के लिये पहिली प्रतिज्ञा राष्ट्रहित और प्रजा की हित-कामना की हुआ करती थी। हिन्दुओं की एकराजता का यह महान आदर्श, जिसका

एकमात्र उद्देश्य प्रजा की भलाई या, संसार की तत्कालीन राजनीति के इतिहास में अपना अनन्य स्थान रखता है। वस्तुतः वह एक नागरिक राज्य था, जिसके प्रांतीय शासक या मांडलिक सदा ही नागरिक हुआ करते थे। इस एकराज शासन की अनेक प्रणालियाँ प्रलचित थीं जैसे **राज्य, महाराज्य, आधिपत्य** और **सार्वभौम**। सार्वभौम शासन-प्रणाली का विकास आगे चलकर **चक्रवर्ती** शासन-प्रणाली के रूप में प्रकट हुआ। कौटिल्य ने इसके संबंध में कहा है कि 'सारी भूमि या भारत; देश है। उसमें हिमालय से लेकर समुद्र तक सीधे उत्तर-दक्षिण एक हजार योजन में चक्रवती क्षेत्र है' ( **अर्थशास्त्र**, पृ० ५९० )। ये शासन प्रणालियाँ भी आगे-आगे बदलती रहीं, किन्तु उन सभी में प्रजा-कल्याण की भावना सदा ही बनी रही।

## शासन-व्यवस्था

वैदिक साहित्य में हमें दो प्रकार की राजतंत्रात्मक शासन पद्धतियों के दर्शन होते हैं : नियंत्रित और अनियंत्रित। इन पद्धतियों के स्वामी ( राजा ) का यह दावा रहा है कि उसकी उत्पत्ति दैवी है, जो या तो बिना किसी प्रकार के विरोध के देश पर अधिकार कर लेता था अथवा विरोध को दबाकर बलात् सारे शासन को स्वायत्त कर लेता था। नियंत्रण की दशा में तो वह जनता की रजामंदी से ही जनता पर अधिकार करता था और दूसरी अनियंत्रित दशा में अपने बल द्वारा उस पर काबू करता था। ये दोनों प्रकार की पद्धतियाँ वंशगत थीं। अनियंत्रित राज्य बलपूर्वक भी प्राप्त किया जा सकता है ऐसा विधान हमें **अथर्ववेद** ( ४।२२ ) में भी देखने को मिलता है। साथ ही वैदिक ग्रन्थों में हमें यह भी देखने को मिलता है कि नियंत्रित राज्यतंत्र में राजा या तो चुना जाता है या स्वीकार किया जाता था। ( देखिए : **ऋग्वेद** १।२४।८; १०।१७५।१; **अथर्ववेद** ३।४।२ )।

तत्कालीन गण आधुनिक प्रजातंत्र के स्वरूप थे। उन गणों ( सभा या समूह ) का अध्यक्ष जनता द्वारा निर्वाचित होता था। इस प्रकार के प्राचीन गणों में शाक्य, मल्ल, विज्जी, लिच्छवी, मालव, क्षुद्रक, समवस्ताई, पहला, योधेय, कुनिन्द, शिवि, अर्जुनायन आदि प्रमुख हैं। इन सभी गणों का मुखिया ( राजा ) वंशगत होता था और उनके सार्वजनिक कार्यों का संचालन निर्वाचित सभासदों की एक कमेटी द्वारा संपन्न होता था। इनकी शासनपद्धति राजतंत्रात्मक थी; किन्तु उनकी संघ-व्यवस्था प्रजातंत्रात्मक थी। **गौतमबुद्ध** के समय तक अस्तित्व में आये गणों का उल्लेख रायस डेविड्स की **बुद्धिस्ट इंडिया** में किया गया है, जिनके नाम हैं : कपिलवस्तु के शाक्य, सुमसुमार की

पहाड़ियों के भाग, अलकप्पा के बुली, केशपट्ट के कलामा, रामगाँव के कालया कुशीनगर के मल्ल, पावा के मल्ल, पिप्पलिवन के मौर्य, विमिथा के विदेह और वैशाली के लिच्छवी या विज्जी। इन प्रजातन्त्रात्मक गणराज्यों का संचालन प्रौढ़ों की एक राजसभा, एक सार्वजनिक सभा ( संघ ) और ग्रामीणों की पंचायत द्वारा हुआ करता था। सारे शासन का आधार ग्राम्यसंघटन था। ग्राम का मुखिया ( ग्रामीण ) ही कर के भुगतान तथा ग्राम सम्बन्धी दूसरे शासन-प्रबंधों के लिए उत्तरदायी समझा जाता था। एक प्रबंधक के नियंत्रण में पाँच से दस गाँव तक होते थे। इसे गोप ( जिला ) कहा गया है। इसी प्रकार के चार ग्राम-समूहों ( गोपों ) का समूह-पति होता था, जिसके शासक को **स्थानिक** और उसके ऊपर का शासक **नागरिक** नाम से कहा जाता था। नागरिक अर्थात् राजधानी का प्रमुख। इन सबके ऊपर देख-रेख के लिए जिस अधिकारी की नियुक्ति की जाती थी उसको **समाहर्ता** कहा जाता था। ( **अर्थशास्त्र**, पृ० ९९-१०२ )।

शासन-व्यवस्था के प्रसंग में कौटिल्य ने नगर की व्यवस्थापिका सभा ( नगर पालिका ) का बहुत ही विस्तार से वर्णन किया है। उसके छह विभाग बताये गये हैं। प्रत्येक विभाग का संचालन पाँच समस्यों के हाथ में हुआ करता था। एक विभाग का कार्य कारीगरों ( कलाकारों ) की निगरानी करना था; दूसरे विभाग के हाथ में विदेशियों की देखरेख तथा उनके आवास आदि की व्यवस्था थी; तीसरा विभाग जनगणना, स्वास्थ्य तथा आय-व्यय से संबंधित था; चौथा विभाग मुद्रा तथा विनिमय, तौल, चुंगी, पासपोर्ट आदि का कार्य करता था; पाँचवाँ विभाग निर्मित वस्तुओं की निगरानी के लिये नियुक्त था; और छठा विभाग केवल कर-वसूली का था।

**विभागीय अध्यक्ष :** धर्म और शासन के क्षेत्र के कार्य करने वाले जिन प्रमुख विभागीय अध्यक्षों का कौटिल्य ने (**अर्थशास्त्र**, पृ० ३३) उल्लेख किया है, उनकी सूची डा० जायसवाल ने ( **हिन्दू राज्यतंत्र**, भाग २;पृ० २६१–२६२ ) इस प्रकार दी है :

१. मंत्री
२. पुरोहित
३. सेनापति–सेना-विभाग का मंत्री
४. युवराज
५. दौवारिक–राजप्रासाद का प्रधान अधिकारी
६. अंतर्वंशिक–राजवंश के गृहकार्यों का प्रधान अधिकारी

७. प्रशास्तृ या प्रशास्ता–कारागारों का प्रधान अधिकारी
८. समाहर्ता–माल-विभाग का मंत्री
९. सन्निधाता–राजकोष का मंत्री
१०. प्रदेष्टा–राजाज्ञाओं का प्रचार करने वाला
११. नायक–सैनिकों का प्रधान अधिकारी
१२. पौर–राजधानी का प्रधान शासक
१३. व्यावहारिक–न्यायकर्ता, न्यायाधीश
१४. कार्मांतिक–खानों और कारखानों आदि का प्रधान अधिकारी
१५. सभ्य–मंत्रि-परिषद् का अध्यक्ष
१६. दण्डपाल–सेना के निर्वाह का कार्य करने वाला प्रमुख अधिकारी
१७. अंतपाल या राष्ट्रांतपाल–सीमाप्रांतों का प्रधान अधिकारी
१८. दुर्गपाल–शत्रुओं से देश की रक्षा करने वाला अधिकारी

उक्त अठारह प्रकार के राज्याधिकारियों को कौटिल्य ने तीन भागों में विभक्त किया और उसी क्रम से उनका वेतन निर्धारित किया है। पहिली श्रेणी में मंत्री, पुरोहित, सेनापति और युवराज; दूसरी श्रेणी में दौवारिक, अंतर्वंशिक, प्रशास्तृ, समाहर्ता, सन्निधाता; और तीसरी श्रेणी में प्रदेष्टा, नायक, पौर, व्यावहारिक, कार्मांतिक, सभ्य, दण्डपाल, दुर्गपाल तथा अंतपाल को रखा गया है। इन तीनों श्रेणियों के अधिकारियों का वेतन प्रतिवर्ष क्रमशः ४८००० पण ( रौप्य ), २४००० पण, और १२००० पण निर्धारित किया है ( **अर्थशास्त्र**, पृ० ४२०-४२२ )।

## राजदूत

राजनीति के क्षेत्र में राजदूत का आज जो महत्त्वपूर्ण स्थान माना जाता है, प्राचीन भारत में भी उसको ऐसा ही गौरव प्राप्त था। रामायण, महाभारत धर्मशास्त्र और कौटिल्य द्वारा उद्धृत पुरातन अर्थशास्त्रकारों की दृष्टि में राजदूत का एक जैसा प्रतिष्ठित स्थान माना गया है। कुछ आचार्यों ने तो आज की भाँति, राजदूत को, मंत्रि-परिषद् का एक सदस्य स्वीकार किया है। कौटिल्य ने राजदूत को राजा का मुख माना है। ( **अर्थशास्त्र**, पृ० ५० ) राजा का मुख उसको इसलिये कहा गया है कि अपने राष्ट्र में राजा जैसी व्यवस्था और जैसे नीति-नियम निर्धारित करता है, परराष्ट्र में राजा का वही कार्य राजदूत करता है। परराष्ट्र संबंधी कार्यों में वह राजा का प्रतिनिधि माना जाता है।

**मनुस्मृति** ( ७।६३-६४ ) में राजदूतों की योग्यता के संबंध में कहा गया है कि वह बहुश्रुत आकार तथा चेष्टाओं के विकार से हृदयस्थ भावों को पकड़ने वाला, स्मृतिमान, दर्शनीय, दक्ष, सत्कुलीन, राजभक्त, देश-काल का ज्ञाता, पवित्र आचरण करने वाला, वाग्मी और समस्त शास्त्रों का ज्ञाता होना चाहिए। **महाभारत** ( शांति० ८५।२८ ) में भी दूत के यही विशेषण गिनाये गये हैं।

राजदूतों को किस ढंग से प्रस्थान करना चाहिये और उनके आचार-व्यवहार के क्या तरीके होने चाहिए, इस संबंध में कौटिल्य ने बड़ी बारीकी से विचार किया है। इस संबंध में उसका कहना है कि प्राणबाधा उपस्थित हो जाने पर भी राजदूत को चाहिये कि वह अपने राजा के संदेश को अविकल रूप में दूसरे राजा के सामने पेश करे। ( **अर्थशास्त्र**, पृ० ५० )

राजदूत पर जहाँ एक साथ इतनी जिम्मेदारियाँ और प्राणभय तक की भारी विपत्तियाँ निर्भर हैं, वहाँ उसकी सुरक्षा तथा उसके महत्त्वपूर्ण कार्यों को दृष्टि में रखकर उसको कुछ विशेषाधिकार भी दिये गये हैं। सबसे पहिला विशेषाधिकार उसको आत्मरक्षा का दिया गया है। सभी धर्म-शास्त्रकारों और राजनीति के आचार्यों ने एकमत होकर इस बात व्यवस्था दी है कि राजदूत अवध्य है। कौटिल्य ने तो यहाँ तक कहा है कि राजदूत भले ही चांडाल हो, वह अवध्य है, क्योंकि दूत का धर्म अपने मालिक का संदेश पहुँचाना भर है ( **अर्थशास्त्र**, पृ० ५० ) **रामायण** में भी कहा गया है कि दूत चाहे साधु हो या असाधु; वह तो दूसरे का भेजा हुआ एवं दूसरे की बात को कहने वाला होता है। इसलिए दूत का वध सर्वथा निषिद्ध है ( **रामायण सुन्द०** सर्ग ५२ श्लो० १३ )। **महाभारत** ( शांति० अध्या० ८५, श्लो० २७ ) में तो कहा गया है कि क्षात्रधर्मरत जो राजा सत्यवादी दूत का वध करता है उसके पितर भ्रूण-हत्या के भागी होते हैं।

राजदूत के संबंध में ऐसे नीति-नियम निर्धारित थे, जिनको प्राचीन काल में भी अंतरराष्ट्रीय स्वीकृति प्राप्त थी। कदाचित् कोई दूत ऐसा महान अपराध कर भी बैठता था, जो वैधानिक दृष्टि से क्षम्य नहीं होता था, तब भी उसको सजा दी जाती थी, प्राणदण्ड नहीं, जैसे कि रावण के अनुरोध पर धर्मवेत्ता विभीषण ने हनूमान के लिए दण्ड निर्धारित किया था।

कौटिल्य ने दूतों की तीन श्रेणियाँ बतायीं हैं : १ **निसृष्टार्थ**, २ **परिमितार्थ** और ३ **शासनहर** ( **अर्थशास्त्र**, पृ० ४९ )। पहिली श्रेणी के दूतों का प्रमुख कार्य अपने राजा का संदेश ले जाना और अपने राजा के लिये संदेश

लाना था। उन्हें समयानुसार यह भी अधिकार प्राप्त था कि अपने राजा की कार्यसिद्धि के लिये वे स्वयं भी अपनी ओर से बात-चीत कर सकते हैं। इस श्रेणी के दूतों में अमात्य की सारी योग्यतायें बतायी गयी हैं। दूसरी श्रेणी के परिमितार्थ दूतों के लिये अमात्य की तीन-चौथाई योग्यताएँ निर्धारित की गयी हैं। परिमितार्थ दूत की पहुँच कुछ निर्धारित सीमाओं तक ही रखी गई हैं, जिससे कि उसका ऐसा नामकरण हुआ। तीसरे शासनहर दूतों का एकमात्र कार्य संदेशों का आदान-प्रदान करना था।

## गुप्तचर

कौटिल्य की अर्थनीति में गुप्तचरों का स्थान बहुत ऊँचा है। गुप्तचर ( खुफिया विभाग ) का जैसा एकमात्र उद्देश्य आज अपराधों का पता लगाना मात्र माना जाता है, पुराने भारत में इस उद्देश्य को नितांत ही गौण समझा जाता रहा है। वस्तुतः गुप्तचरों की आवश्यकता राजनीति के क्षेत्र में इसलिए आवश्यक प्रतीत हुई जिससे शासक को प्रजा के कष्टों, क्लेशों और पीड़ाओं का पता लग सके। प्रजा की सुख-शांति में बाधा उत्पन्न करने वालों और राजकीय नियमों के पालन करने-कराने में रोक लगाने वालों का दमन कैसे हो, इसकी सूचना राजा तक पहुँचाना, गुप्तचरों का प्रमुख कार्य था।

क्योंकि समाज में अनेक वर्ग और उन वर्गों में भी अनेक उपवर्ग होते हैं। इसलिए, समाज के ओर-छोर तक के छिद्रों का पता लगाने वाले गुप्तचरों के तौर-तरीकों में भी विविधता का होना स्वाभाविक-सा है। इस दृष्टि से कौटिल्य ने कार्य भेद से गुप्तचरों के नौ विभाग किये हैं, जिनके नाम हैं : ( १ ) कापटिक, ( २ ) उदास्थित, ( ३ ) गृहपतिक, ( ४ ) वैदेहक, ( ५ ) तापस, ( ६ ) सत्री, ( ७ ) तीक्ष्ण, ( ८ ) रसद और ( ९ ) भिक्षुकी।

राज्य की सुव्यवस्था, शासन का पूर्णतया पालन और प्रजा की सुख-शांति का बहुत-कुछ दायित्व गुप्तचरों पर निर्भर है। ऊपर जिन नौ प्रकार के गुप्तचरों का निर्देश किया गया है, उनकी कार्य-विधि और उनके पारस्परिक सहयोग का ढंग कैसा होना चाहिए, इसका विस्तार से विवेचन एक पूरे प्रकरण में किया गया है।

इन गुप्तचरों के कार्यों का अध्ययन करने के बाद हमें पता लगता है कि प्राचीन भारत की शासन-व्यवस्था का यह गुप्तचर-विभाग कितना उपयोगी और ठोस था। उनका संघटन, उनके गुप्त रहस्य और उनकी संकेत-प्रणाली इतनी जटिल, किन्तु इतनी व्यवस्थित थी कि उस समय की अन्तरराष्ट्रीय

राजनीति के किस हिस्से में क्या हो रहा है, इसका ज्ञान राजा को गुप्तचरों के द्वारा ही प्राप्त होता था।

## पुर और जनपद की स्थापना

शासन-व्यवस्था और सुख-सुविधा की दृष्टि से कौटिल्य ने समग्र राष्ट्र को दो भागों में विभक्त किया है : **पुर** और **जनपद**। पुर से उनका अभिप्राय नगर, दुर्ग या राजधानी से और जनपद से शेष सारे राष्ट्र से है। राज्य की सात प्रकृतियों में जनपद और दुर्ग ( पुर ) को इसीलिए अलग-अलग माना गया है।

पुर ( राजधानी ) के प्रमुख अधिकारी को **नागरिक** कहा गया है और उसी प्रकार जनपद की शासन-व्यवस्था का दायित्व **समाहर्ता** पर निर्भर किया है ( **अर्थशास्त्र**, पृ० ९९ )। राजधानी में शांति-सुरक्षा बनी रहे, इसके लिए कौटिल्य ने नगर में प्रवेश करने वाले नवागंतुक व्यक्तियों की देख-रेख, नगर-रक्षकों की व्यवस्था, संदिग्ध व्यक्तियों पर निगरानी, अग्निभय की रक्षा का प्रबन्ध, और नगरवासियों के स्वास्थ्य-लाभ के लिए यथोचित व्यवस्था आदि जितनी भी आवश्यक बातें हैं सबको ध्यान में रखा है।

जनपद की स्थापना किस प्रकार की जानी चाहिए, इस संबन्ध में कौटिल्य ने विस्तार से प्रकाश डाला है। जनपद की सबसे छोटी बस्ती को ग्राम और दस ग्रामों के संघटन से **संग्रहण** नामक राजकीय कार्यालय की स्थापना का निर्देश किया है ( **अर्थशास्त्र**, पृ० ७७ )। दस-दस ग्रामों के उक्त क्रम से दो सौ ग्रामों का संघटन करके एक **क्षेत्र** का निर्माण और उसमें **खार्वटक** नाम की बस्ती ( शासन स्थान ) बसाये जाने की व्यवस्था दी गई है ( **अर्थशास्त्र**, ७७ )। फिर चार-सौ गाँवों का संघटन कर उनके शासन के लिए **द्रोणमुख** की स्थापना होनी चाहिए ( **अर्थशास्त्र**, ७७ )। फिर आठ-सौ गांवों के बीच पूर्वोक्त विधि से **स्थानीय** नामक राजकीय कार्यालय को स्थापित करना चाहिए ( **अर्थशास्त्र**, ७७ )। इसी प्रकार जनपद के सीमान्त पर अंतपालों की संरक्षता में दुर्गों का निर्माण करना चाहिए, जिनसे कि जनपद में शत्रुओं को न आने दिया जाय ( **अर्थशास्त्र**, पृ० ८५ )। जनपद की कुछ अंतपाल रहित सीमाओं पर व्याध, शबर, पुलिंद, चाण्डाल और अन्य वनचर जातियों को बसा कर वहाँ की सुरक्षा का भार उन्हीं को सौंप देना चाहिए (**अर्थशास्त्र**, पृ० ७७)।

जनपद को ऐसी भूमि में बसाया जाना चाहिए जहाँ नदियाँ, पर्वत, वन

हों; जहाँ अल्पश्रम से ही अधिक उपज की प्राप्ति हो; जहाँ अच्छी-अच्छी खानें, हाथियों के जंगल हों; जहाँ की जलवायु नागरिकों के स्वास्थ्यलाभ के लिए उपयोगी सिद्ध हो; जहाँ तरह-तरह के पशु हों; जहाँ परिश्रमी किसान हों; जहाँ की प्रजा दण्ड तथा कर को सहन करने की क्षमता रखती हो। कौटिल्य ने इसको उत्तम जनपद कहा है ( **अर्थशास्त्र**, पृ० ७७–८१ )।

**दण्ड** : समाज के सभी वर्ग, अथ च, समस्त प्रजा अपने-अपने धर्मपालन में एकनिष्ठ रहे, इसकी देख-रेख का सारा दायित्व राजा पर निर्भर है। अपने-अपने धर्मों का सम्यक् पालन प्रजाजन तभी कर सकते हैं जब उन्हें अपने अधिकारों को भोगने और अपने कर्तव्यों को निबाहने के लिए पूरी सुविधायें प्राप्त हों। समाज निर्बाधित रूप में अपने-अपने धर्मों ( कर्तव्यों ) के प्रति निष्ठावान् बना रहे, उसको उसके अधिकारों की पूरी सुविधायें सुलभ होती रहें, इसी हेतु **न्याय** की आवश्यकता हुई।

कौटिल्य जैसे प्रकाण्ड राजनीतिज्ञ ने, जिसके जीवन का अधिकांश भाग राजनीति के क्षेत्र में क्रियात्मक रूप से बीता, न्याय की दिशा में बहुत ही बारीकी से विचार किया है। न्याय-व्यवस्था को उसने दो भागों में बाँटा है : ( १ ) **व्यवहार** और ( २ ) **कण्टकशोधन**।

नागरिकों के पारस्परिक कलहों के मूल कारणों का पता लगाकर उनकी विवेचना करना और तब निरपेक्ष्य होकर दोषी को दण्ड तथा निर्दोषी को मुक्ति देना, कौटिल्य की न्याय-स्थापना का यह पहिला व्यवहार पक्ष है। न्याय-व्यवस्था के दूसरे पक्ष का संबंध राज-कर्मचारियों से है; किन्तु उसके अन्तर्गत पूंजीपति और दुर्जन लोगों का भी समावेश किया गया है। अर्थात् राजकर्मचारियों, व्यवसायियों और दुर्जनों से प्रजा की किस प्रकार रक्षा की जाय, इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए कण्टकशोधन नामक न्याय के दूसरे पक्ष की स्थापना की गयी है।

न्याय-व्यवस्था के लिए कौटिल्य ने जिस **व्यवहार** शब्द का प्रयोग किया है वह बहुत ही उपयुक्त बैठता है। आचार्य कात्यायन ने **व्यवहार** शब्द की निष्पत्ति करते हुए लिखा है वि=नानार्थ; अव=संदेह; और हार=हरण। इस नानार्थ संदेह के हरण याने दूर करने के उपायों का दिग्दर्शन ही **व्यवहार** के अंतर्गत किया है। कौटिल्य के **अर्थशास्त्र** ( पृ० २५५–२६० ) में अपने प्रकार के व्यवहार-मार्गों पर बड़ी सूक्ष्मता से विचार किया गया है।

कण्टकशोधन के लिए कौटिल्य ने जो व्यवस्था दी है उससे ऐसा अवगत होता है कि समाज में छोटे-से-छोटे छिद्रों और नितांत परोक्ष रूप में घटित होने वाले शोषणों का उसने बड़ी बारीकी से अध्ययन किया था। इन कण्टकों की तीन प्रमुख श्रेणियाँ बतायी गयी हैं। पहिली श्रेणी में तो कर्मकार ( व्यवसायी ), जैसे धोबी, जुलाहे, सुनार, वैद्य, दूसरी श्रेणी में प्रजा को पीड़ित करने वाले दुष्ट जन और तीसरी श्रेणी में राजकर्मचारियों की लूट-खसोट, गबन तथा कूटकर्म आदि के लिए व्यवस्था दी गयी है।

न्याय की अवस्थिति दण्ड पर निर्भर है। इस हेतु बृहद् **धर्मस्थ** अधिकरण में कौटिल्य ने दण्ड-व्यवस्था पर विस्तार से प्रकाश डाला है। कौटिल्य की दण्ड-व्यवस्था को पढ़ कर उसकी तत्त्वग्राही बुद्धि का परिचय तो मिलता है, किन्तु इस उद्देश्य के प्रतिपादन में उसने इतना अधिक समय लगा दिया कि उसके द्वारा कल्पित उस निष्कण्टक साम्राज्य की सत्यता पर पाठक को संदेह होने लगता है और दण्ड-ही-दण्ड की एकांत व्यवस्था से वह भयभीत भी हो उठता है।

कौटिल्य की दण्ड-व्यवस्था के प्रमुख तीन अंग हैं: अर्थदण्ड, शरीरदण्ड और कारागारदण्ड। इनमें भी विकल्प दिये गये हैं। दण्ड का पहिला सिद्धांत अपराध पर आधारित है। जैसा अपराध वैसा दण्ड। फिर अपराधी के सामर्थ्य के अनुसार, अपराधी के ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि वर्ण के अनुसार, अपराधी की विशेष परिस्थिति के अनुसार, अनेक ढंगों पर दण्ड को निर्धारित किया गया है।

अपराधियों के सुधार और वंदीगृहों की सुव्यवस्था पर भी कौटिल्य ने विचार किया है। बंदी बनाये गये स्त्री-पुरुषों के लिए ऐसे अनेक कार्य सुझाये गये हैं, जिनको सीख लेने के बाद कारामुक्त होने पर वे लाभदायी सिद्ध हो सकें, और अपराध की जो सबसे बड़ी समस्या रोजी-रोटी की रही है, उसकी पूर्ति हो सके।

कौटिल्य का विचार है कि प्रत्येक मनुष्य अरिषड्वर्ग से पराभूत है, इसलिए उसका सर्वदा निर्लिप्त, निर्दोष बना रहना संभव नहीं है। काम, क्रोध, लोभ, मान, मद और हर्ष ये छहों शत्रु न जाने कब मनुष्य को उद्वेजित करके उसको अधर्म तथा दुराचरण की ओर ले जाते हैं। यदि ऐसी स्थिति आ गयी तो निश्चय ही समाज में **मत्स्यन्याय** फैल जायेगा, अर्थात् बलवान् निर्बल को निगल जायेगा। ( **अर्थशास्त्र**, पृ० १६ )

इन्हीं सब बातों को ध्यान में रखकर दण्ड की व्यवस्था की गयी है।

प्रत्येक व्यक्ति अपने-अपने धर्म ( कर्तव्य ) का पालन करे और सदाचार में प्रवृत्त रहे, कौटिल्य की व्यवस्था का यह प्रमुख उद्देश्य है, किन्तु धर्म और सदाचार की अवरोधक प्रवृत्तियों का दमन कैसे संभव हो, इसके लिए दण्ड की व्यवस्था की गयी। कौटिल्य की यह दण्ड-व्यवस्था बहुत ही वैज्ञानिक है। जिस रूप में कि मनुष्य का धर्म बना रहे और समाज में लोक कल्याण के आदर्श प्रतिष्ठित रहें, वैसे विधान से दण्ड की व्यवस्था की गयी है। इस संबंध में कौटिल्य का अभिमत है कि अपराधियों के लिए ऐसा दण्ड निर्धारित होना चाहिए जो कि उद्वेगकर न हो, मृत्युदण्ड से प्रजा दण्ड देने वाले का ही तिरस्कार करने लगती है, उचित दण्ड ही कल्याणकर होता है, भली-भाँति विचार करके निर्धारित किया गया दण्ड प्रजा को धर्म, अर्थ और काम में लगाये रखता है, ईर्ष्या, द्वेष और अज्ञान के द्वारा अविचारित दण्ड जीवनमुक्त वानप्रस्थों और परिव्राजकों तक को कुपित कर देता है, फिर भला गृहस्थ लोगों के संबंध में तो उसकी कल्पना करना भी भयावह है। ( **अर्थशास्त्र**, पृ० १३ )

कौटिल्य के मतानुसार दण्ड का बहुत बड़ा स्थान है, क्योंकि आन्वीक्षकी, त्रयी, वार्ता और दण्ड, इन चारों विद्याओं में दण्डनीति ही एक ऐसी बलवती विद्या है, जिसके द्वारा शेष तीनों विद्याओं का सुविधापूर्वक संचालन किया जा सकता है। ( **अर्थशास्त्र**, १२ ) वस्तुतः कौटिल्य की दण्ड-व्यवस्था की योजना का संपूर्ण आधार लोककल्याण और लोकरक्षा के निमित्त जान पड़ता है।

## वर्णाश्रम व्यवस्था

प्राचीन ग्रंथों का अनुशीलन करने पर हमें तत्कालीन जन-समुदाय तीन प्रमुख वर्गों में विभक्त हुआ मिलता है : क्षत्र ( योद्धा ), ब्रह्मन् ( पुरोहित ) और विश ( श्रमिक )। क्षत्र लोग समाज के नेता, शासक, राजा एवं सरदार रहे, ब्रह्मन् अपनी बौद्धिक शक्ति के कारण राजा के सचिव, न्यायाधीश तथा धार्मिक नेता या अनुशासक के पदों पर अधिष्ठित थे, और विश वर्ग के लोग कृषक, व्यापारी के रूप में व्यापार, वाणिज्य एवं उद्योग-धंधों के द्वारा संपत्ति का उपार्जन करते रहे। जन-समूह का यह त्रिविध वर्ग-भेद जब तक श्रम-विभाजन की दृष्टि से अपने कर्तव्यों में ईमानदार बना रहा तब तक तो उसने अच्छी उन्नति की, किन्तु जब वह अधिकार-लिप्सु तथा शोषक बन कर शेष समाज की उपेक्षा करने लगा तो स्वभावतः उसके पतन की भूमिका तैयार होने लगी थी। उनकी इन पतनोन्मुख स्थितियों एवं प्रवृत्तियों पर प्रकाश

डालने से पूर्व यहाँ भारत की कुछ प्राचीन आदिम मूल जातियों का उल्लेख करना आवश्यक समझा जा रहा है।

**ऋग्वेद** ( ५।७६।१२९।३, ६।४६।७ ) में जिन पाँच भूमियों (पंच-क्षिति) का उल्लेख किया गया है, वे पाँच भूमियाँ वस्तुतः उन पाँच नदियों के आस-पास की भूमियाँ थीं, जिनके कारण **पंचनद** का नाम इतिहास में देखने को मिलता है। इन पाँच भूमियों में बसने वाले एक ही स्तर के लोग धीरे-धीरे पाँच विभिन्न जातियों में ( पंचजन, ऋक् ६।११।४, ६।५१।११, ७।३२।३२, ९।६५।३२ ) में बँट गयीं, जिनकी आजीविका खेती थी और इसीलिये जिन्हें पाँच कृषि-जीवियों ( पंच कृषिवी : ऋक्० २।२।१०, ४।३८।१०।२ ) के नाम से स्मरण किया गया। ये पाँच जातियाँ आरंभ में बड़ी उद्योगी थीं और नदियों के उर्वर तटों पर कृषि एवं चरागाह के द्वारा जीविकोपार्जन किया करती थीं, इन्हीं के द्वारा हिमालय से लेकर कन्याकुमारी तक की व्यापक सभ्यता का निर्माण हुआ ( मैक्समूलर : **इंडिया : ह्वाट कैन इट टीच अस**, पृ० ९५-९६-१८९९ )। पाँच आर्य परिवारों के परिचायक पुरुष, तुर्वस्, वेदस्, अनुस् और द्रुह्यस्, इन्हीं पाँच जातियों के प्रतीक थे।

ये पाँच जातियाँ अपने व्यावसायिक विभेदों के कारण पाँच वर्णों में विभक्त हो गये थे, जिनके नाम थे : भंन्यी, योद्धा, व्यापारी, दास और काले चमड़े वाले। लम्बी अवधि तक इन जातियों के बीच अंतर्जातीय विवाह और सहभोज की स्थिति बनी रही। किन्तु काले चमड़े वाले आर्यों ने जब यहाँ के मूल निवासी दस्युओं ( दासों ) के साथ सेवक भावना का आचरण करना आरंभ किया और वंश, जन्म, जाति आदि की प्रमुखता स्वीकार की जाने लगी तो सहभोज तथा अंतर्जातीय विवाहों की परंपरा तो जाती ही रही, वरन् उनके बीच गहरी खाई भी पड़ने लग गयी थी।

ऐसा प्रतीत होता है कि जातियों के जन्मना निर्णय करने का सिद्धांत पुराणकाल तक स्वीकृत नहीं हुआ था ( **विष्णुपुराण**, खंड ३ अध्याय ८ )। जातक कथाओं ( उद्दालक ४।२९३, चाण्डाल ४।३८८, सतक्लम्म २।८२, चित्तसंभूत ४।३९० ) तथा अन्य बौद्ध ग्रंथों ( जे० आर० ए० एस० पृ० ३४६, १८९४ ) से यह बात स्पष्ट होती है कि जातियों की उच्चता तथा निम्नता का निर्णय बौद्धिक क्षमता के आधार पर था। उदाहरण के लिये विश्वामित्र ने क्षत्रिय कुल में जन्म लेकर भी अपने उन्नत कर्मों और ऊँची प्रतिभा के कारण ब्राह्मणत्व प्राप्त कर लिया था। लेकिन चारों वर्णों की भिन्नता का

सिद्धांत बहुत पहिले ही से चला आ रहा था ( आर० सी० मजूमदार : **कारपोरेट लाइफ इन ऐंशिएंट इण्डिया**, पृ० ३६४ )।

अपनी चतुराई और बुद्धि के प्रभाव से ब्राह्मणों ने धार्मिक तथा सामाजिक क्षेत्र में श्रेष्ठता प्राप्त कर ली थी। यद्यपि वे शासक नहीं रहे, फिर भी पुरोहितों, सचिवों, न्यायाधीशों के सारे शासन-संचालन संबंधी अधिकार उन्हें प्राप्त थे और उन्होंने ही चारों वर्णों के लिए एवं आश्रम संबंधी व्यवस्था के लिए नियम भी बनाये।

श्रम के इस वंशगत विभाजन के कारण समाज में अनेक जातियाँ पनपने लगीं थीं। भारत की पुरातन समाज-व्यवस्था में हमें देखने को मिलता है कि राजनीतिक दृष्टि से भले ही उसने अनेक पराजयों को देखा था, किन्तु घोर आपत्ति और कठिन संकट में भी एकता की भावना को उसने खोया नहीं। अनेक श्रेणियों, वर्गों, वर्णों, जातियों, भाषाओं और धर्मों के बावजूद भी भारतीय जनता की नैतिक तथा बौद्धिक शक्ति कभी भी क्षीण नहीं हुई।

कौटिल्य ने वर्णाश्रम की व्यवस्था से मर्यादित समाज को सुखकर और मुक्तिदायी बताया है। यह मर्यादित वर्णाश्रम-व्यवस्था अपने-अपने धर्म के पालन में बतायी गयी है ( **अर्थशास्त्र**, पृ० १३ )।

वर्णाश्रम की व्यवस्था का महत्त्व हिन्दू समाज में लगभग अनादि है। प्राचीन भारत में व्यष्टि और समष्टि के क्रिया-क्षेत्रों को एक दूसरे से भिन्न माना गया है; किन्तु उनकी पूर्णता पारस्परिक समन्वय में ही बतायी गयी है। कुछ व्यक्तिगत नियम ऐसे हैं, जिनका पालन करके या जिनको जीवन में उतार कर व्यक्ति अपना उत्थान कर स्वयं को इस योग्य बना पाता है कि वह दूसरे का या सारे मानव समाज का उत्थान कर सके। व्यक्ति और समष्टि के उत्थान हेतु प्राचीन भारत में जो नियम-निर्देश निर्धारित किये गये थे, उन्हीं को **वर्णाश्रम** नाम दिया गया।

वर्ण-व्यवस्था का उद्देश्य व्यक्ति को सामूहिक हित-चिंतना की ओर ले जाता है, जब कि आश्रम-व्यवस्था उसको व्यक्तिगत उन्नयन की ओर आकर्षित करती है, जिससे कि तप तथा त्याग के द्वारा वह अपने कलुषों एवं असन्तोषों को भस्म कर स्वयं को इस योग्य बना पाता है कि समाज के अभ्युदय में वह उपयोगी सिद्ध हो सके।

वर्णाश्रम-व्यवस्था की इसी मर्यादा को कौटिल्य ने अपनाया है और उसी के कल्याणमय स्वरूप को उन्होंने यों रखा है।

गृहस्थ-जीवन के दायित्व से निवृत्ति प्राप्त करने के संबंध में हमारे पूर्वाचार्यों ने विशेष नियम निर्धारित किये हैं। सामान्यतया गृहस्थ जीवन के कर्तव्यों से ५० वर्ष की आयु के बाद छुटकारा पाया जा सकता है; किन्तु उससे पूर्व कुछ अनिवार्य शर्तों को पूरा करना आवश्यक बताया गया है। मनु ( ६।१ ) ने कहा है कि 'द्विज को चाहिए कि दृढ़ प्रतिज्ञ होकर इन्द्रियों को वश में करके वह वन में निवास करे।' साथ ही उसने अवकाश ग्रहण करने के संबंध में कहा है ( ६।२ ) कि 'जब शरीर की त्वचा में सिकुड़न पड़ जाय और बाल फूलने लगें, तब उस व्यक्ति को गृहस्थ से अवकाश ले लेना चाहिए।' ( **अर्थशास्त्र**, पृ० ८० ) ने कहा है कि 'जो व्यक्ति मैथुन-भोग्य-अवस्था को पार कर जाता है, वह अपनी संपत्ति का सम्यक् वितरण करके साधु हो सकता है।'

संन्यास या वानप्रस्थ-जीवन ग्रहण करने से पूर्व एक बात यह भी कही गई है कि जब तक कोई व्यक्ति अपने पुत्र के पुत्र को नहीं देख लेता, वह अवकाश ग्रहण करने का अधिकारी नहीं है। इसका आशय यह है कि अवकाश ग्रहण करने से पूर्व प्रत्येक व्यक्ति को अपने पुत्र को इस योग्य बना देना चाहिए कि वह परिवार और समाज की भलाई के लिए गृहस्थ के कर्त्तव्यों का भार वहन के सर्वथा योग्य हो सके। कौटिल्य ने इस शर्त का उल्लंघन करने वाले व्यक्तियों को अपराधी घोषित किया है और कहा है 'यदि कोई व्यक्ति अपनी पत्नी और अपने पुत्रों के भरण-पोषण का प्रबंध किये बिना तपस्वी का जीवन ग्रहण कर लेता है तो वह दण्ड का भागी है।'

समाज और परिवार की उन्नति को दृष्टि में रखकर अपने कर्तव्यों का पूरी तरह निर्वाह करता हुआ प्रत्येक व्यक्ति वानप्रस्थ और उसके बाद पवित्र सन्यास-जीवन धारण कर सकता है। हिन्दुओं की धर्म-व्यवस्था में वैयक्तिक आत्मोन्नति की कामना करने वाले प्रत्येक व्यक्ति के लिए यह आवश्यक बताया गया है कि पहिले वह नैतिक, पारिवारिक और सामाजिक जीवन की मंजिलों को क्रमशः पार कर उसके बाद वानप्रस्थ या संन्यास का ऊँचा जीवन बिता सकता है।

समाज की अभ्युन्नति और जीवन में सदाचार एवं नैतिकता बनाये रखने के लिए हिन्दुओं की धर्म-व्यवस्था में आदि से ही विवाह को एक श्रेष्ठ आदर्श के रूप में ग्रहण किया गया है। हिन्दुओं के धर्मग्रन्थों में विवाह के लिए भिन्न गोत्र की व्यवस्था पर बड़ा जोर दिया गया है, जिसके फलस्वरूप पति और

पत्नी के विभिन्न रक्तों ( गोत्रों ) का संमिश्रण होकर अच्छो संतति को पैदा किया जा सके। इस व्यवस्था ने समाज में विभिन्न परिवारों को संघटित करने में बड़ी सहायता की। विवाह के लिए सम-स्वभाव के दम्पती को ही आवश्यक बताया गया है। सम-स्वभाव अर्थात् ऐसे परिवार जो व्यवसाय, आर्थिकस्तर, धर्म और विचारों में एकता रखते हों। एकता की इसी भावना ने पहिले तो विच्छिन्न व्यक्ति-समूहों को कुछ विशिष्ट जातियों में एकत्र किया और बाद में भी उन्हीं संघटित जातियों के द्वारा बृहद् राष्ट्र की नींव पड़ी।

## न्याय और व्यवस्था

प्राचीन भारत की राज्य-व्यवस्था में धर्म का सर्वोच्च स्थान रहा है। समाज के सभी वर्ग और सारी कार्य-प्रणाली के मूल में धर्म के नीति-निर्देश समन्वित थे। समाज का सबसे बड़ा व्यवस्थापक राजा भी धर्म के बन्धन से इस प्रकार बंधा था कि इस दिशा में कोई संस्कार-संशोधन करने का उसे कोई अधिकार ही नहीं था। धर्मसूत्रों और मनुस्मृति आदि ग्रन्थों में राजा को धर्म का ही एक अंग माना गया है। हिन्दू राज्य-व्यवस्था में जिस युग में राजा को सभी अधिकार प्राप्त थे तब भी राजा से धर्म को उच्च स्थान प्राप्त था। **मनुस्मृति** में तो राजा को अर्थदण्ड देने तक की बात कही गई है ( ८।३३६ )। **अर्थशास्त्र** में तो राजा को इतनी छूट दी गई है कि वह कानून बना सकता है; किन्तु धर्मशास्त्र में वह बात भी नहीं है। अर्थशास्त्र ( **अर्थशास्त्र**, पृ० २५९ ) में साथ ही यह भी कहा गया है कि राजा ऐसा कानून नहीं बना सकता है जो धर्म के विरुद्ध हो और जिससे राजा को मन-माना अधिकार प्राप्त हो सके।

प्राचीन भारत में, जब कि हिन्दू-शासन-प्रणाली सर्वथा एक राजत्व पर आधारित थी, न्याय-विभाग, शासन-विभाग से अलग रखा जाता था। उस समय राजनीति के प्रकाण्ड विद्वान् तथा श्रेष्ठ नैतिक आचरण वाले पुरोहित, राजनीतिज्ञ और ब्राह्मण लोग मंत्री नियुक्त किये जाते थे और वही न्यायाधीश भी हुआ करते थे। धर्म-संबंधी सारी शासन-व्यवस्था पुरोहितों के हाथ में थी। उस पुरोहित न्यायाधीश पर राजा का कोई अंकुश नहीं होता था।

इस प्रकार की कानूनी अदालत का नाम **सभा** था, जिसमें न्यायाधीशों की सहायता के लिए समाज के लोगों की एक स्वतन्त्र संस्था भी हुआ करती थी। मनु के मतानुसार तीन पंच, न्यायाधीशों की सहायता के लिए हुआ करते थे ( **मनुस्मृति** ८।१० ) और जो कानून पारित किया जाता था, उसका ठीक

तरह से अर्थ बताने के लिए एक विद्वान् ब्राह्मण हुआ करता था ( ७।२० )। किन्तु कौटिल्य ने लिखा है कि न्याय-व्यवस्था का सारा भार राज्य के अर्थ-शास्त्रविद् तीन सदस्यों और तीन अमात्यों के ऊपर निर्भर होना चाहिए।

मुकदमों की निष्पक्ष जांच हो और न्याय की दिशा में किसी प्रकार का दोष न आने पावे, इसका निरीक्षण करने के लिए **वृद्धों** की व्यवस्था थी। ये वृद्ध आजकल के ज्यूरियों जैसे थे। इस प्रकार के लगभग ७, ५ या ३ ज्यूरी होते थे (**शुक्रनीतिसार** ४।५।३६–३७)। राजा अपनी परिषद् के साथ मुकदमा सुनता था, जिसमें प्रधान न्यायाधीश भी हुआ करते थे। किसी भी मामले की अपील करने के लिए उच्च न्यायालय होता था (**नारद**, प्रस्ता० १।७; **बृहस्पति** १।२९; **याज्ञवल्क्य** २।३० )। जिन मुकदमों को राजा सुनता था, उनका फैसला वह अपनी परिषद् तथा जजों के परामर्श से करता था। सभी न्यायों का निर्णय राजा के नाम से होता था।

उच्च न्यायालय के सर्वप्रधान न्यायाधीश को **प्राड्विवाक** कहा जाता था। वही न्याय-विभाग का मंत्री भी हुआ करता था। धर्मशास्त्र विभाग का अलग मंत्री था, जिसको **पंडित** ( धर्माधिकारी ) कहा जाता था। दोनों के कार्य अलग-अलग थे। न्याय की दिशा में प्राड्विवाक का कार्य ज्यूरी का बहुमत जानकर धर्म या कानून के अनुसार यह बतलाना होता था कि अभियुक्त वास्तव में दोषी है कि नहीं, और तब उसके बाद राजा को परामर्श देना था। 'पंडित' या धर्माधिकारी का यह कार्य होता था कि लोक में जिन-जन धर्मों का व्यवहार किया जा रहा है, वे धर्मशास्त्रसंमत हैं या नहीं और तब राजा से वह ऐसे कानून बनवाने की सिफारिश करता था जो लोक को हितकारी सिद्ध हों।

इस प्रकार न्याय और व्यवस्था की दृष्टि से राजा सर्वदा ही **प्राड्विवाक** और **धर्माधिकारी** के अधीन हुआ करता था। समाज में जहाँ भी जिस दिशा में ऐसी आशंका होती कि धर्म और न्याय के द्वारा निर्दिष्ट नियमों का पालन नहीं हो रहा है, वहाँ के लिये वह प्रजा को इस बात के लिए सावधान करता था कि वह **प्राड्विवाक** तथा **धर्माधिकारी** की आज्ञाओं पर चले।

न्याय-व्यवस्था की शरण में जाने या मुकदमों के लिए मनु ने १८ कारण गिनाये हैं ( **मनुस्मृति** ८।४–७ ) जिनके नाम हैं : ऋण और धरोहर का भुगतान न करना; बिना स्वामित्व का विक्रय करना; साझीदारों के संबंध में गड़बड़ी हो जाना; दान दी हुई वस्तु को पुनः वापिस लेना; पारिश्रमिक का

भुगतान न करना; समझौतों को भंग करना; क्रय-विक्रय की व्यवस्था का उल्लंघन करना; स्वामी तथा भृत्य के बीच विवाद पैदा होना; सीमा संबंधी अड़चन का उपस्थित होना; किसी को मारना; किसी का अपमान करना; किसी की चोरी करना; हिंसा तथा व्यभिचार करना; वैयक्तिक कर्तव्यों को न निभाना; पैतृक सम्पत्ति के बँटवारे में मतभेद हो जाना; और जुआ तथा पांसा आदि खेलना।

इस प्रकार के किसी भी विवाद के उपस्थित हो जाने पर कौटिल्य का कहना है कि न्यायाधीश को चाहिये कि वह किसी भी वादी-प्रतिवादी को न धमकाये; या अपमान करे; या न्यायालय से बाहर निकाले। किसी मामले में व्यक्तिगत दबाव नहीं डालना चाहिए। मुकदमे का लेखक वादी-प्रतिवादी के बयानों में न तो अस्पष्ट बयानों को टाले और न ही स्पष्ट कही हुई बातों को अन्यथा या संदिग्ध रूप में लिखे। प्रधान न्यायाधीश का कर्तव्य था कि वह प्रत्येक निर्णीत मुकदमे का पुनर्निरीक्षण करे और उसके सभी पहलुओं को अच्छी तरह से देखे। न्याय की प्रभावशाली व्यवस्था का परिचय हमें कौटिल्य के उस वाक्य से मिलता है, जिसमें लिखा गया है कि "जब राजा किसी निरपराध व्यक्ति को दण्ड देता है तो उस किये गये अर्थदण्ड का **तीस गुना** द्रव्य राजा को वरुण देवता के निमित्त जल में फेंकना पड़ता है, जो कि बाद में ब्राह्मणों में बाँट दिया जाता है (**अर्थशास्त्र**, पृ० ४०२)। इससे पता चलता है कि पूरी सावधानी रखने के बावजूद भी न्याय में त्रुटि रह जाने की संभावना थी और राजा तक उस सर्वोच्च न्याय-व्यवस्था से नियमित था। **अर्थशास्त्र** में उद्धृत अपराधों और अपराधियों की सूची को देखकर पता चलता है कि न्याय की दिशा में कौटिल्य के विचार कितने परिष्कृत और कितने ठोस थे।

कौटिल्य की कानून-व्यवस्था के अनुसार राज्य के सभी व्यक्ति एकसमान माने गये हैं। यहाँ तक कि जिस ब्राह्मण के प्रति पक्षपात का दोषारोपण किया जाता है, अपराध के आगे वह भी अन्य जातियों के समान दण्डभागी माना गया है। स्वयं राजा के लिये दण्ड-व्यवस्था निर्धारित करके कौटिल्य की न्याय-व्यवस्था में जनतन्त्र की भावना को सर्वोपरि स्वीकार किया गया है। एक सामाजिक व्यक्ति का परिवार के प्रति, माता-पिता, पति-पत्नी, पुत्र, शासक, शासित, नौकर, श्रमिक, व्यापारी, कलाकार, धोबी, ग्वाला और ग्राहक आदि के प्रति क्या कर्तव्य है, इसकी भी व्यापक व्याख्या कौटिल्य ने की है।

बलात्कार, व्यभिचार जैसे सामाजिक तथा नैतिक पतन के कार्यों के लिए कौटिल्य ने कठोर दण्ड निर्धारित किये हैं। चरित्र सम्बन्धी ऊँचाई के लिए कौटिल्य की न्याय-व्यवस्था बड़ी ही उपयोगी है।

## राज्य की आर्थिक आय के साधन

कौटिल्य की साम्राज्य-व्यवस्था का आर्थिक ढाँचा औद्योगिक आधार-भूमि पर खड़ा है। कौटिल्य की अर्थ-नीति के प्रमुख सिद्धान्त तीन हैं। पहिले सिद्धांत के अन्तर्गत ऐसे उद्योगों ( Industries ) को रखा गया है, जिन पर राज्य का स्वामित्व हो और जो राज्य के द्वारा ही संचालित एवं संघटित हों। इन उद्योगों की पूँजी ( Capital ), श्रम ( Labour ) और प्रबन्ध ( Management ) का दायित्व राज्य पर ही निर्भर रहे। इस प्रकार की औद्योगिक अर्थनीति का परोक्ष उद्देश्य एक सशक्त, आत्म-निर्भर और सर्वसाधनसंपन्न राज्य की प्रतिष्ठा करना था। इस प्रकार के महत्त्वपूर्ण उद्योगों ( Key Industries ) में सोना, चाँदी, शिलाजीत, ताँबा, शीशा, टिन, लोहा, मणि, लवण आदि आकर उद्योगों ( Industry of mines ) का प्रमुख स्थान है।

दूसरे प्रकार के उद्योगों का सम्बन्ध जनता से है। इस श्रेणी के उद्योग राज्य के नागरिकों की निजी सम्पत्ति ( Private Property ) के रूप में माने गये हैं। उनके संघटन, संचालन और पूंजी, श्रम एवं प्रबन्ध का दायित्व भी नागरिकों पर ही निर्भर है। उन पर जनता का ही पूर्ण स्वामित्व है। ऐसे उद्योगों में खेती, सूत, शिल्प, गो-पालन, अश्व-पालन, हस्ति-पालन, सुरा, मांस, वेश्यालय और नट-नर्तक गायक-वादक आदि की गणना की जा सकती है।

कौटिल्य की अर्थनीति का तीसरा सिद्धांत समाज में ऐसी सुव्यवस्था बनाये रखने से संबद्ध है, जिसके अनुसार राज्य के समस्त उत्पादन ( Production ), वितरण ( Distribution ) और उपभोग ( Consumption ) पर शासन-सत्ता का नियन्त्रण बना रहेगा।

उक्त सभी उद्योगों तथा व्यवसायों पर राज्य का स्वामित्व ( State Ownership ) इसलिए माना गया है कि राज्य का अर्थबल सशक्त बना रहे और समाज के सभी वर्ग क्रियाशील बने रहें।

धर्म-दर्शन, काव्य, कला और अर्थ आदि साहित्य के जितने भी अंग हैं, उनमें धर्म-अर्थ-काम एवं मोक्ष, इस वर्गचतुष्टय की उपयोगिता पर अनेक प्रकार से विचार किया गया है। अर्थशास्त्र, क्योंकि ऐहिक जीवन से संबद्ध क्रिया व्यापारों की ही विवेचना प्रस्तुत करता है, अतः उसमें मोक्ष को छोड़कर

त्रिवर्ग के संबंध में ही प्रकाश डाला गया है। धर्म, अर्थ और काम, इन तीनों का पारस्परिक संबंध बताते हुए कौटिल्य ने यह स्वीकार किया है कि उनमें प्रमुखता अर्थ की है और शेष दोनों धर्म तथा काम, अर्थ पर ही निर्भर हैं। इसी लिए त्रिवर्ग की समुचित उपलब्धि के लिए अर्थ की अनिवार्यता को स्वीकार किया गया है। यही अर्थ जब राज्यकर के रूप में या रक्षा के पुरस्कार हेतु अथवा सेवा के प्रतिदान के निमित्त शासन को प्राप्त होकर एक संरक्षित स्थान पर एकत्र कर रखा जाता है तब उसी को राजकोष के नाम से कहा जाता है।

राष्ट्र की समुन्नति और सुरक्षा के निमित्त जितने भी उपाय तथा साधन बताये गये हैं, उनमें कोष का प्रमुख स्थान है। इसी हेतु कोष-विभाग के कर्मचारियों से लेकर कोष की सुरक्षा, उसकी वृद्धि के उपाय, उसकी आय के साधन और उसके क्षय के कारणों पर कौटिल्य ने बड़ी सूक्ष्मता से विचार किया है।

अर्थ-विभाग के सबसे बड़े अधिकारी को **समाहर्त्ता** कहा गया है। वह समाज के विभिन्न वर्गों पर, राष्ट्र की विभिन्न वस्तुओं पर, गाँवों, नगरों तथा घरों पर, व्यावसायियों तथा शिल्पियों पर और भूमि पर जो राज्यांश निर्धारित है, उसका संचय करता है तथा उसका पूरा ब्यौरा अपनी निबन्ध-पुस्तक ( Sealed Register ) में अंकित रखता है।

अर्थ-विभाग के अन्य अधिकारियों तथा कर्मचारियों में **सन्निधाता** ( भंडारों का अधिकारी ), **स्थानिक** ( जनपद के चतुर्थांश का अधिकारी ), **गोप** ( गाँवों का अधिकारी ), प्रदेष्टा ( स्थानिक तथा गोप का सहायक अधिकारी ) **अक्षपटलाध्यक्ष** ( अकाउंट जनरल ), **कोषाध्यक्ष**, **अर्थकारणिक** ( मुख्य अकाउंटेंट ) **कार्मिक** ( अर्थकारणिक का अधीनस्थ कर्मचारी ), **गाणनिक्य** ( जिलों का हिसाब-किताब रखने वाले कर्मचारी ), **सांख्यानक** ( गणना करने वाले ), **लेखक** ( क्लर्क ), **नीवीग्राहक**, **गोपालक**, **अपयुक्त**, **निधानक**, **निबंधक**, **प्रतिग्राहक**, **दायक** और **मंत्रिवैयावृत्यक** आदि का नाम उल्लेखनीय है।

राजकोष के संचय के साधनों में, जिन्हें कि कौटिल्य ने **आयशरीर** कहा है, दुर्ग, राष्ट्र, खान, सेतु, वन, व्रज और वणिक्पथ प्रमुख हैं।

राज्य की आर्थिक व्यवस्था पर ही उसकी उन्नति के सभी जरिये निर्भर हैं। इसलिए राजकोष के उक्त आय-स्रोतों के अलावा अर्थदण्ड सम्बन्धी पौतव कर ( नाप-तौल का कर ), नागरिकों द्वारा प्राप्त राज्यांश, कृषिकर, उपज का

अंश, बलि कर, धार्मिक कर, वणिक कर और व्यावसायिक वस्तुओं के आयात-निर्यात से जो आमदनी होती थी उसको भी राजकोष में जमा कर दिया जाता था।

## राजकर

हिन्दुओं की राज्य-व्यवस्था के इतिहास में राजकर का मौलिक महत्त्व माना गया है। क्योंकि राजकर का सम्बन्ध प्रजा से होता था, इस दृष्टि से राजकर को निर्धारित करने के सारे नीति-नियम यद्यपि धर्म-ग्रन्थों द्वारा निर्धारित किये जाते थे, तथापि उसको लागू करने से पूर्व उस पर समाज की स्वीकृति प्राप्त करना अनिवार्य होता था। इस प्रकार धर्मशास्त्र द्वारा निर्धारित और समाज द्वारा स्वीकृत जो राजकर होता था, शासन-व्यवस्था चाहे जैसी भी रहे, किन्तु राजकर के नियमों में किसी भी प्रकार का अवरोध नहीं आने पाता था। यही कारण था कि राजकर के सम्बन्ध में राजा-प्रजा के बीच कोई विवाद खड़ा नहीं हुआ। कई ग्रन्थों में इस प्रकार के अनेकों उदाहरण मिलते हैं कि राजकर के सम्बन्ध में जो धर्म द्वारा प्रतिपादित नियम थे, उनका अतिक्रमण करने का साहस बड़े-से-बड़े शासक भी नहीं कर सके थे।

**अर्थशास्त्र** के एक प्रसंग ( **अर्थशास्त्र**, पृ० ४१४-४१९ ) में कहा गया है कि सेल्युकस के आक्रमण के समय जब प्राप्त राजकर से कार्य न सध पाया था तो चन्द्रगुप्त के महामात्य कौटिल्य ने प्रजा से धन संग्रह करने में अपना सारा बुद्धिबल लगा दिया था। इसके लिए उन्हें बड़े विलक्षण उपायों का आश्रय लेना पड़ा था। अन्त में चन्द्रगुप्त ने अपनी प्रजा से अनुग्रह की भिक्षा माँगते हुए कहा था 'आप लोग मुझ पर अपना प्रेम सूचित करने के लिए धन दें।' उसने इस विपत्ति से रक्षा के लिए देव-मन्दिरों तक से धन वसूल किया था।

राज्य की सारे आय-व्यय पर मन्त्रि-परिषद् का अधिकार होता था। राजा और राजकर के सम्बन्ध में **महाभारत** ( शांति० ७१।१० ) एक सुन्दर प्रसंग उपस्थित करता है। उसमें लिखा है कि 'षष्ठांश बलिकर ( आयात-निर्यात ), अपराधियों से मिलने वाला जुरमाना और उनके द्वारा अपहृत धन, जो कुछ भी न्यायतः प्राप्त हो, वह सब तुम्हारे वेतन के रूप में होगा; और वही तुम्हारी आय के द्वार या राजकर होगा।' **नारदस्मृति** ( १८।४८ ) में लिखा हुआ है कि 'राजाओं को पूर्व निश्चित नियमों के अनुसार जो धन प्राप्त हो और भूमि की उपज का जो षष्ठांश प्राप्त हो, वह सब राजकर होगा,

और प्रजा की रक्षा करने के पुरस्कार स्वरूप वह राजा को मिलेगा।' अपनी रक्षा के फलस्वरूप प्रजा का प्रतिनिधि पुरोहित राज्याभिषेक के समय राजा से यह कहता था कि 'हम तुम्हारे निर्वाह के लिए तुम्हारा उचित अंश (भाग) तुम्हें दिया करेंगे' ( **शुक्रनीतिसार** १।१८८ )।

इन सभी उल्लेखों से हमें राजकर की सुव्यवस्था के संबंध में कितनी आस्थापूर्ण विचारधारा का पता लगता है।

राजकर सम्बन्धी नियमों के प्रसंग में दूसरी अनेक बातों के अतिरिक्त **महाभारत** ( १२।८८।४ ) में एक महत्त्व की बात यह कही गयी है कि 'राजकर ऐसा होना चाहिए जो प्रजा पर भारस्वरूप सिद्ध न हो; राजा को अपना आचरण उस मधुमक्खी के समान रखना चाहिए जो वृक्षों को बिना कष्ट पहुँचाये उनसे मधु एकत्र करती है।' ( **अर्थशास्त्र**, पृ० ४१९ ) कुछ निरर्थक वस्तुओं के आयात पर प्रतिबंध लगाते हुए कौटिल्य ने लिखा है कि 'जो वस्तुएँ राष्ट्र के लिए दुःखदायक हों; जो निरर्थक और केवल शौक के लिए हों; उन पर अधिक कर लगा करके उनका आयात कम करना चाहिए ( **अर्थशास्त्र**, पृ० ४१२-४१९ )। इनके अतिरिक्त कुछ पदार्थ ऐसे भी थे जिनका निर्यात वर्जित था और देश में जिनका अधिक आयात करने के लिए किसी प्रकार का शुल्क नहीं लिया जाता था; यथा अस्त्र-शस्त्र आदि; धातु; सेना के काम में आने वाले रथ आदि अप्राप्य या दुर्लभ पदार्थ; अनाज और पशु आदि; ( **अर्थशास्त्र** वही )। कुछ अवस्थाओं में विशेष कर लगाने का भी नियम था। इस सम्बन्ध में कहा गया है कि जो लोग विदेश से अच्छी सुरायें आदि लाते थे अथवा घर में अरिष्ट आदि बनाते थे उन पर इतना अधिक कर लगाया जाता था जिससे राज्य में बिकने वाली ऐसी चीजों की कम बिक्री का हरजाना निकल आये ( **अर्थशास्त्र** वही )।

## आधुनिक समाजवाद

अठारहवीं शताब्दी के जितने भी महान् दार्शनिक हुए उन्होंने भी संसार की सारी वस्तुओं को विवेक की कसौटी पर परखा।

आधुनिक समाजवाद की उत्पत्ति में प्रमुख दो कारण है : एक तो पूंजीपतियों तथा श्रमिकों का श्रेणी-विरोध और दूसरा उत्पादन में व्याप्त अराजकता। बुद्धि और तर्क के द्वारा प्रत्येक वस्तु के अस्तित्व का औचित्य सिद्ध करना ही समाजवादी क्रांति को जन्म देने वाले, महापुरुषों का ध्येय रहा है। समाज और राज्य का जो बासीपन था, परम्परा की जो रूढियाँ थीं, अंध-

विश्वासों की जो मिथ्याएँ थीं, उनकी जगह सच्चाई, प्रकाश, न्याय और समानता ने ले ली थी। समाजवाद के अभ्युदय का यह अठारहवीं शताब्दी का स्वरूप था। इस नयी क्रांति के बाद पहिले तो उस समय के सामन्ती ठाकुरों तथा पूंजीवादियों के बीच संघर्ष हुआ और इसी बीच शोषकों तथा शोषितों का संघर्ष भी जारी था। यह संघर्ष था पूंजीवादी वर्ग का और मजदूर वर्ग का ( **फ्रेडरिक एंगेल्स, समाजवाद** : वैज्ञानिक और काल्पनिक, पृ० ६ )।

१८वीं शताब्दी में फ्रांसीसी समाजवादी क्रांति के पोषक हुए मोरेली, मैब्लीकी, सेंट साइमन, फूरिये और ओवेना। इनमें सेंट साइमन का नाम विशेषतया उल्लेखनीय है। फ्रांसिसी क्रांति के समय यद्यपि उसकी अवस्था तीस साल से भी कम थी, फिर भी उसका दृष्टिकोण इतना व्यापक और व्यक्तित्व इतना प्रतिभाशाली था कि उसके बाद जितने भी अर्थशास्त्री हुए हैं, उनके विचारों में जितनी बातें देखने को मिलती हैं उन सबका मूल साइमन की रचनाओं में है।

फूरिये ने सामाजिक विकास के पूरे इतिहास को जांगल, बर्बर, पितृसत्तात्मक और सभ्य—इन चार भागों में विभक्त किया है। अपने समसामयिक दार्शनिक हीगेल की ही भाँति फूरिये ने भी द्वन्द्ववाद की प्रणाली का आश्रय लेकर यह दर्शाया है कि अंत में जाकर मनुष्य जाति का भी नाश हो जायेगा। उसने पूंजीवादी प्रवृत्तियों के समर्थक लेखकों की बड़ी खिल्ली उड़ाई है। वह एक सिद्धहस्त व्यंग्यकार भी था और उसने तत्कालीन समाज में व्याप्त धोखेबाजी तथा व्यावसायिक मनोवृत्ति का बड़ा ही सजीव रूप उतारा है ( वही, पृ० १६ )। फूरिये के विचारों के अनुसार समाज की उक्त बुराइयों को सुधारने का महत्त्वपूर्ण प्रयत्न किया, रावर्ट ओवेन ने। उसने समाज की पूर्ण साम्यवादी ढंग से संघटन की दिशा में भी यत्न किया ( वही, पृ० २० )।

अब तक समाजवाद का उद्देश्य था एक दोषरहित समाज-व्यवस्था का निर्माण करना किन्तु अब उसका उद्देश्य हो गया है पूंजीपति और मजदूर वर्गों के और उनके पारस्परिक संघर्षों के आर्थिक घटनाक्रमों के इतिहास का अध्ययन करना। इस समीक्षित सिद्धांत के द्वारा यह पता लग सका है कि अतीत का सारा इतिहास वर्ग-संघर्षों का इतिहास रहा है और वर्गों के उदय के मूल में एक मात्र कारण रही हैं, आर्थिक परिस्थितियाँ ( वही, पृ० २७–२८ )।

अब तक दार्शनिकों ने इतिहास को अतिभौतिकवादी, द्वंद्ववादी, आदर्श-

वादी ढंग से परखने का यत्न किया और यह स्वीकार किया कि मनुष्य की चेतना ही उसकी सत्ता का आधार रही है; किन्तु अब भौतिकवादी ढंग से इतिहास की गवेषणा करने पर यह सिद्ध हो गया है कि मनुष्य की सत्ता को उसकी चेतना का आधार प्राप्त है। अब आवश्यकता इस बात को दिखाने की है कि ऐतिहासिक विकास की एक निश्चित अवस्था में पूँजीवाद का उत्पन्न होना अनिवार्य है; और इसलिए उस अवस्था के परिपक्व हो जाने पर उसका पतन भी निश्चित है।

इतिहास-संबंधी इस भौतिकवादी धारणा का महान् आविष्कारक था, मार्क्स। मार्क्स ने यह सिद्ध किया है कि उत्पादन और उत्पादित वस्तुओं का विनिमय ही समाज-व्यवस्था का आधार रहा है। इस आधार पर सामाजिक परिवर्तनों तथा राजनीतिक क्रांतियों का पता लगाने के लिए हमें न तो सत्य, न्याय एवं विचारों की खोज करनी चाहिए; बल्कि यह देखना चाहिए कि उस युग की उत्पादन तथा विनियम-प्रणाली में क्या-क्या परिवर्तन हुए। यह एक बहुत बड़ा सत्य अर्थशास्त्रियों ने खोज निकाला है कि किसी युग की ठीक परिस्थितियों का सही ज्ञान, उस युग की दार्शनिक विचारधारा से प्राप्त न होकर उस युग की आर्थिक परिस्थितियों से उपलब्ध हो सकता है।

उत्पादन और विनिमय का तुमुल संघर्ष आज भी पूरी शक्ति पर है। भारत जैसे देश में, जहाँ कि समाजवादी व्यवस्था का आगमन एक नये युग के समान माना जायेगा और जिसके आगमन की माँग दिनों-दिन बढ़ रही है, उत्पादन तथा विनिमय का माध्यम बहुत ही असंतुलित है। इस असंतुलन एवं असंगति को दूर करने का केवल एक ही तरीका है कि :

"सर्वहारा वर्ग राजसत्ता पर अधिकार कर ले। इस सत्ता के सहारे उत्पादन के साधनों को पूँजीवादियों के दुर्बल हाथों से छीन करके उन्हें सार्वजनिक सम्पति बना दिया जाय। इस कार्य द्वारा उत्पादन के साधनों को पूँजी के बन्धनों से वह मुक्त कर देगा और अपने सामाजिक स्वरूप की प्रतिष्ठा करने का उन्हें सु-अवसवर देगा। उस अवस्था में समाज का उत्पादन पहिले से बनी योजना के अनुसार संभव हो सकेगा। उत्पादन का विकास हो जाने से समाज में विभिन्न वर्गों का अस्तित्व अनावश्यक और निरर्थक बन जायेगा। जैसे-जैसे सामाजिक उत्पादन के क्षेत्र से अराजकता दूर होगी, वैसे-ही-वैसे राज्य के राजनीतिक अधिकारों का भी अन्त हो जायेगा। मनुष्य अपने सामाजिक संघटन का स्वामी बन जायेगा; अतः वह प्रकृति का

और अपने आपका भी स्वामी बन जायेगा। इतिहास में पहिली बार मनुष्य पूर्णतः स्वतन्त्र होगा।" ( वही, पृ० ४८ )

ऐंगेल्स के अतिरिक्त मार्क्स, लेनिन और स्तालिन का भी दृष्टिकोण यही रहा है; और आज भी यही स्थिति हमारे सामने विचारणीय है। १८५३ ई० में कोलोन में कम्युनिस्ट लीग के सदस्यों के सजा पाने के बाद मार्क्स राजनीति के आंदोलन से दूर हो गये। उसके बाद दस वर्ष तक उन्होंने ब्रिटिश म्युजियम में अर्थशास्त्र पर उपलब्ध विपुल सामग्री का अध्ययन किया। उनका यह अध्ययन १८५९ ई० में **अर्थशास्त्र की समालोचना** ( भाग १ ) पुस्तक के रूप में फलित हुआ, जिसमें **मूल्य** और **मुद्रा** सम्बन्धी मार्क्सीय सिद्धान्तों की विस्तृत व्याख्या देखने को मिलती है। अर्थशास्त्र के क्षेत्र में संप्रति सर्वाधिक लोकप्रिय पुस्तक **दास कापीटल, क्रिटीक देर पोलीटीशन ईकोनोमी, एर्स्टेर बांट** का प्रथम खण्ड १८६७ ई० में हाम्बुर्ग से प्रकाशित हुआ। यह पुस्तक युगप्रवर्तक के रूप में सिद्ध हुई। इस पुस्तक में समाजवादी दृष्टिकोण से पूंजीवादी उत्पादन और उसके फलाफल की विस्तृत व्याख्या की गयी है।

विज्ञान के इतिहास में मार्क्स ने जिन महत्त्वपूर्ण बातों का पता लगाकर अपने यश को अमर बनाया उनमें से 'पहिली तो वह क्रांति है, जो संसार के इतिहास को देखने-परखने के दृष्टिकोण से उन्होंने की है। मार्क्स ने यह सिद्ध कर दिया है कि अब तक का सारा इतिहास वर्ग-संघर्षों का इतिहास रहा है; अब तक के सीधे और जटिल, सभी राजनीतिक संघर्षों की जड़ में सामाजिक वर्गों के राजनीतिक और सामाजिक शासन की समस्या ही रही है। समस्या यह रही है कि पुराने वर्ग अपनी मिल्कियत बनाये रखें या नये पनपते हुए वर्ग इस मिल्कियत पर हॉवी हो जाँय।"

इन बातों पर गम्भीरता से विचार किये जाने पर मार्क्स के अनुसंधान से "इतिहास को पहिली बार अपना वास्तविक आधार मिला। यह आधार एक बहुत ही स्पष्ट सत्य था, जिसकी ओर लोगों का ध्यान नहीं गया था। यानी यह कि मनुष्य को सबसे पहिले खाना, पीना, कपड़ा पहनना और घर में रहना होता है। इसलिए उसे काम भी करना होता है। इसके हल हो जाने पर ही प्रधानता पाने के लिए मनुष्य एक-दूसरे से झगड़ सकते हैं और राजनीति, धर्म, दर्शन आदि को अपना समय दे सकते हैं। अंततः इस स्पष्ट सत्य को अपना ऐतिहासिक आधार प्राप्त हुआ।"

"मार्क्स ने जिस दूसरी महत्त्वपूर्ण बात का पता लगाया है, वह पूंजी और श्रम के सम्बन्ध की निश्चित व्याख्या है। दूसरे शब्दों में उसने यह दिखा दिया कि वर्तमान समाज में उत्पादन की जो पूंजीवादी पद्धति चालू है, उसके द्वारा किस तरह पूंजीपति, मजदूर का शोषण करता है। जब एक बार अर्थशास्त्र ने यह सिद्धांत बना लिया कि सभी तरह की संपत्ति और **मूल्य** का मूलस्रोत श्रम ही है तो, यह प्रश्न भी अनिवार्य रूप से सामने आता है कि इस सिद्धान्त से हम इस तथ्य का मेल कैसे करें कि मजदूर अपने श्रम से जिस मूल्य का निर्माण करता है वह सब उसे नहीं मिलता, वरन् उसका एक अंश उसे पूंजीपति को दे देना पड़ता है" ( फ्रेडरिक एंगेल्स : **कार्ल मार्क्स और उनके सिद्धांत** पृ० ८–१०, डा० रामविलास शर्मा का अनुवाद )।

समाजवादी दृष्टिकोण से इतिहास की इन नयी धारणाओं का परिणाम महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुआ। इनसे पता लगा कि पहिले इतिहास की गति वर्ग-विरोध और वर्ग-संघर्षों के बीच रही है; शासक और शासित, शोषक और शोषित का अस्तित्व बराबर बना रहा है। मार्क्स से पूर्व की समूची ऐतिहासिक प्रगति विशेषाधिकार प्राप्त एक अल्पसंख्यक समुदाय पर निर्भर थी। मार्क्स के विवेचन के बाद समाज की वे उत्पादक शक्तियाँ, जो पूंजीवादी नियंत्रण की सीमाओं को लाँघ चुकी हैं, अब उस संघटित सर्वहारा वर्ग की ताक में हैं जिससे उस पर अधिकार कर ऐसी स्थिति उत्पन्न हो कि जन-साधारण का उत्पादन में ही भाग न हो, बल्कि, सामाजिक संपत्ति के वितरण और उसके संचालन में भी उसका हाथ रहे, जिससे कि उत्पादक शक्तियों और उत्पादन, दोनों में उत्तरोत्तर वृद्धि हो।

मार्क्स के बाद एंगेल्स, लेनिन और स्टालिन आदि अर्थशास्त्रियों एवं क्रांतिकारी राजनीतिज्ञों ने भी आज के वैज्ञानिक समाजवाद का मूल आधार यही माना है।

मानव-इतिहास में **विकास के नियम** की पहिली खोज मार्क्स ने की थी। उसने एक अभूतपूर्व सत्य का उद्घाटन किया कि किसी भी युग में जीविका के तात्कालिक भौतिक साधनों का उत्पादन ही समाज के आर्थिक विकास का मूल कारण रहा है। उसने बताया कि कला, धर्म, विज्ञान, राजनीति, साहित्य आदि के लिए समय देने से पूर्व यह आवश्यक है कि मनुष्य जाति के लिए रोटी, रोजी, वस्त्र और रहने के साधन सुलभ हों।

मार्क्स के विचारों में सच्चाई, आत्मबल, विश्वास और विश्लेषण की जो

अनेक बातें एक साथ दिखायी देती हैं उनका सबसे बड़ा कारण यह रहा है कि वे अपने युग के सबसे लांछित और प्रताडित व्यक्ति थे। उनकी वाणी में अनुभव और अध्ययन की छाप थी। मार्क्स और एंगेल्स के सह-यत्न से प्रस्तुत और कम्युनिस्ट लीग ( **बुन्ददेर कम्युनिस्टेन** ) के दूसरे अधिवेशन में ( लंदन, नव० १८४७ ) में पढ़ा गया **कम्युनिस्ट पार्टी का घोषणा-पत्र** संसार के साम्यवादी इतिहास में अपना नाम रखता है। इस घोषणा-पत्र ने संसार के आगे एक नयी रूपरेखा यह प्रस्तुत की कि गतिमूलक द्वन्द्ववाद विकास का सबसे व्यापक और आधारभूत सिद्धान्त है। मार्क्स ने जर्मनी का प्राचीन दर्शन, इंग्लैंड का पुरातन ( क्लैसिकल ) अर्थशास्त्र और फ्रांस का समाजवाद, इन १९वीं शताब्दी की तीन सैद्धांतिक विचारधारा को एक सूत्र में गूंथ कर **मार्क्सवाद** को जन्म दिया; जिसको आज **वैज्ञानिक समाजवाद** कहा जाता है।

**मार्क्स का भौतिक दर्शन :** मार्क्स ने दार्शनिक भौतिकवाद को स्वीकार किया है। मार्क्स के अनुसार संसार की एकता उसके अस्तित्व में न होकर उसकी भौतिकता में है। भूत या प्रकृति के अस्तित्व की पद्धति का नाम ही गति है। **गति** के बिना **भूत** का कोई अस्तित्व नहीं है। विचार और चेतना मानव-मस्तिष्क की उपज है; और मानव-प्रकृति की उपज है, जिसका विकास उसके साथ-साथ हुआ। इस दृष्टि से यह सिद्ध होता है कि मार्क्स का शेष प्रकृति से कोई विरोध नहीं है; बल्कि मानव-मस्तिष्क, प्रकृति की उपज होने के कारण शेष प्रकृति के साथ उसका साम्य ही स्वीकार करते हैं।

**हेगेल के द्वन्द्ववाद का समर्थन :** मार्क्स और ऐंगेल्स, दोनों ने हेगेल के **द्वंद्ववाद** को जर्मनी के पुरातन दर्शन की सबसे महत्त्वपूर्ण देन बताई है; क्योंकि उसमें विकास के व्यापक सिद्धांत और प्रसार के लिये गंभीर तत्त्व वर्तमान है। मार्क्स के मतानुसार द्वंद्ववाद की कसौटी प्रकृति है और यह मानना होगा कि आधुनिक प्रकृति-विज्ञान ने इस कसौटी के लिए बहुत-सी सामग्री और दिन-पर-दिन बढ़ने वाली सामग्री दी है ( लेनिन का लेख : **कार्ल मार्क्स और उनकी देन; कार्ल मार्क्स और उनके सिद्धांत, पृ० २०** )।

हेगेल के दर्शन में एक क्रांतिकारी पहलू था। उसके द्वंद्वात्मक भौतिकवाद के लिये ऐसे दर्शन की कतई आवश्यकता-अपेक्षा नहीं समझी गयी है जो विज्ञान से शून्य या परे हो। वस्तुतः द्वंद्वात्मक दर्शन के लिए कुछ भी अंतिम, त्रिकाल सत्य और पवित्र नहीं है। उसकी दृष्टि से हरेक वस्तु में क्षण-भंगुरता है।

आवागमन के अबाधक्रम को छोड़कर निरंतर नीचे से ऊपर की ओर अविराम गति से अग्रसर होना ही चिरंतन है। चितंनशील मस्तिष्क में द्वंद्वात्मक दर्शन इसी को उत्क्रांत करता है ( वही, पृ० २१; तथा ऐंगेल्स : **डूरिंग का मत-खंडन**, पृ० ३१ )।

**वर्ग-संघर्ष :** इतिहास से हमें विदित होता है कि जातियों और समाजों के संघर्ष से ही क्रांति का बीजारोपण हुआ है। आज का समाज दो प्रमुख हिस्सों में बँटा है : पूंजीवादी और श्रमजीवी। पूंजीवादी वर्ग के विरुद्ध जितने भी वर्ग खड़े हैं उनमें मजदूर वर्ग ही एक ऐसा है, जिसने वास्तविक क्रांति को जन्म दिया है। निम्न मध्य-वर्ग में छोटे कारखानेदार, दूकानदार, दस्तकार आदि जितने भी हैं उन्होंने भी अपने अस्तित्व को बनाये रखने के लिये पूंजी-पति-वर्ग से ही संघर्ष किया है; किन्तु उनके संघर्ष में क्रांति के तत्त्व न होकर रूढिवादिता अधिक है। बलिक मार्क्स ने उनको प्रतिक्रियावादी कहा है, क्योंकि वे इतिहास के पहियों को पीछे की ओर घुमाने की कोशिश करते हैं ( देखिए कम्युनिस्ट घोषणा पत्र )। संयोगवश उनके संघर्ष में यदि क्रांति का आभास भी मिलता है तब भी वे अपने वर्तमान हितों की अपेक्षा अपने भविष्य के स्वार्थों की ही रक्षा करते हैं।

आधुनिक समाजवाद की यही रूपरेखा है और मार्क्स तथा ऐंगेल्स प्रभृति अर्थशास्त्रियों ने मानवता के सुख-चैन और कल्याण के लिए इसी को एक मात्र साधन स्वीकार किया है।

## आचार्य कौटिल्य और उनका अर्थशास्त्र

आचार्य कौटिल्य का महाव्यक्तित्व एक पारंगत राजनीतिज्ञ के रूप में मौर्य साम्राज्य के विपुल यश के साथ एकप्राण होकर, एक ओर तो भारत के राजनीतिक इतिहास में अपनी कीर्ति-कथा को अमर बनाये है और दूसरी ओर अपनी अतुलनीय, अद्‌भुत कृति के कारण संस्कृत साहित्य के इतिहास में अपने विषय का एकमात्र विद्वान् होने का गौरव उन्हें प्राप्त है। इन असाधारण खूबियों के कारण ही आचार्य कौटिल्य के नाम-माहात्म्य की कथाएँ पुराणों से लेकर काव्य, नाटक और कोष-ग्रन्थों में सर्वत्र परिव्याप्त हैं। कौटिल्य द्वारा नंद-वंश का विनाश और मौर्य-वंश की प्रतिष्ठा से सम्बन्धित **विष्णुपुराण** में एक कथा आती है :

'महाभदन्त तथा उसके नौ पुत्र १०० वर्ष तक राज्य करेंगे। अन्त में कौटिल्य नामक एक ब्राह्मण उस राज्य-परम्परा के अंतिम उत्तराधिकारी नंदवंश

का विनाश करेगा। नंद-वंश के समूल विनष्ट हो जाने के उपरान्त उसकी जगह मौर्य-वंश के पहले प्रतापी शासक चन्द्रगुप्त का कौटिल्य राज्याभिषेक करेंगे। उसका पुत्र बिन्दुसार और बिन्दुसार का पुत्र अशोक होगा। (**महाभदन्तः तत्पुत्राश्चैकं वर्षशतमवनीपतयो भविष्यन्ति। नवैव। तान्नन्दान् कौटिल्यो ब्राह्मणः समुद्धरिष्यति। तेषामभावे मौर्याश्च पृथ्वीं भोक्ष्यन्ति। कौटिल्य एव चन्द्रगुप्तं राज्येऽभिषेक्ष्यति। तस्यापि पुत्रो बिन्दुसारो भविष्यति। तस्याप्यशोकवर्धनः**)।

इस पुराण-प्रोक्त विवरण से दो मोटी बातों का पता लगता है कि मगध के राज्य-सिंहासन पर पहले नन्द-वंश का अधिकार था और उसके बाद कौटिल्य के कौशल से मगध की राज-सत्ता छिन कर मौर्य-वंश के हाथों में आयी। इस दृष्टि से मौर्य-वंश की सत्यता पर आधारित आचार्य कौटिल्य के सही व्यक्तित्व का पता लगाने के लिये नंद-वंश की प्रामाणिक जानकारी उससे भी पूर्व मगध की शासन-परम्परा से परिचय प्राप्त करना आवश्यक हो जाता है।

## मगध की शासन परम्परा

मगध या मागध भारतीय इतिहास का एक सुपरिचित अति प्राचीन नाम है। वेदों से लेकर पुराणों तक सर्वत्र मागध भूमि और मगध-वंश की चर्चाएँ उल्लिखित हैं। पुराणों से यह भी विदित होता है कि महाभारत युद्ध से पूर्व मगध में बार्हद्रथों का राज्य स्थापित हो चुका था और चेदि नरेश उपरिचर के पुत्र बृहद्रथ सर्वप्रथम मगधनरेश की उपाधि से विभूषित भी हो चुके थे। इनके पुत्र जरासन्ध और पौत्र सहदेव महाभारत युद्ध के समकालीन व्यक्ति थे। इनकी २३ वीं पीढ़ी के बाद मगध के राजसिंहासन पर अवन्तिनरेश चन्द्र-उद्योत का अधिकार हुआ। तदनन्तर गिरिव्रज का शिशुनागवंश मगध पर अधिष्ठित हुआ, जिसके उत्तराधिकारियों की ऐतिहासिक परम्परा है : शिशुनाग, काकवर्ण, क्षेत्रधर्मन्, छत्राजीत और बिम्बसार। इनमें बिम्बसार ही सर्वाधिक प्रतापी नरेश था, जो कि तीर्थंकर महावीर स्वामी एवं गौतम बुद्ध का समकालीन हुआ।

बिम्बसार से मगध राज-वंश की परंपरा क्रमशः अजातशत्रु, दर्शक, उदयाश्व (उदायी), नंदिवर्धन् तक पहुँच कर अंत में महानंदि के हाथों में आयी। महानंदि इस वंश का अन्तिम एवं महाबलशाली सम्राट् हुआ, जिससे एक शूद्रा स्त्री द्वारा नंद नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ। इसी शूद्रा-पुत्र नंद ने मगध की राजगद्दी पर नंद-वंश की प्रतिष्ठा की।

ऐतिहासिक खोजों से विदित है कि ५८५-३१५ वि० पूर्व ( ६३२-३७२ ई० पू० ) तक मगध की शासन-सत्ता शिशुनाग-वंश के अधीन रही और तदनन्तर नन्द-वंश उत्तराधिकारी हुआ, जिसका प्रथम यशस्वी सम्राट् महापद्म-नन्द था। ८८ वर्ष राज्योपरान्त वह दिवंगत हुआ। तदनन्तर लगभग २२ वर्ष तक उसके उत्तराधिकारियों का अस्तित्व बने रहने के बाद मगध की राज्य-लक्ष्मी मौर्यों के अधीनस्थ हुई। चन्द्रगुप्त मौर्य-वंश का पहला सम्राट् हुआ, जिसको पंचनद की ओर से नंद-वंश के विरोध में उभाड़ कर स्वाभिमानी ब्राह्मण-पुत्र चाणक्य मगध की ओर लाया।

भारतीय इतिहास का उदीयमान नक्षत्र और मौर्य-वंश के महाप्रतापी सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य ने विष्णुगुप्त नामक एक अद्भुत कुटिल मति राजनीतिज्ञ ब्राह्मण की सहायता से मगध के नन्द-वंश को विनष्ट कर तथा शक्तिशाली यवनराज सिकन्दर के सम्पूर्ण प्रयत्नों को विफल कर लगभग ३२१ ई० पूर्व में एक विराट् साम्राज्य की स्थापना की थी, जिसको इतिहासकारों ने मौर्य-साम्राज्य के नाम से पुकारा। चन्द्रगुप्त सामान्य क्षत्रिय-वंश से प्रसूत था। लगभग २४ वर्ष तक मगध की राजगद्दी पर उसका एकछत्र शासन रहा।

ग्रीक सेनापति सेल्यूकस के राजदूत मेगस्थनीज की अनुपलब्ध कृति **इण्डिका** के अन्यत्र उद्धृत अंशों से और चन्द्रगुप्त के महामात्य कौटिल्य के **अर्थशास्त्र** से विदित होता है कि चन्द्रगुप्त मौर्य एक असाधारण दिग्विजयी सम्राट् हुआ है और उसने अपने राज्यकाल में धार्मिक, राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक और बौद्धिक उन्नति के लिए अविरल प्रयत्न किये।

## कौटिल्य के नाम का निराकरण

मगध की शासन-परम्परा में नन्द-वंश और तदनन्तर मौर्य-साम्राज्य की प्रतिष्ठा का ऐतिहासिक अध्ययन करने के पश्चात् आचार्य कौटिल्य के नाम-निराकरण की बात सामने आती है। आचार्य कौटिल्य की ख्याति दूसरे ही नामों से है। उनका एक लोक-विश्रुत नाम चाणक्य भी है। चाणक्य उन्हें चणक का पुत्र होने के कारण और कौटिल्य उन्हें कुटिल राजनीतिज्ञ होने के कारण कहा जाता है। वे दोनों नाम उनके पितृ-प्रदत्त न होकर वंश-नाम या उपाधि नाम हैं।

कौटिल्य का वास्तविक पितृ-प्रदत्त नाम विष्णुगुप्त था। कौटिल्य के इस विष्णुगुप्त नाम का हवाला आचार्य कामंदक के **नीतिसार** में उपलब्ध होता है, जिसकी रचना ४०० ई० के लगभग हुई। आचार्य कामन्दक कृत **नीतिसार**

के आरंभिक अंश में हमें चार बातों की जानकारी होती है। पहली बात तो यह कि कौटिल्य ने **अर्थशास्त्र** की रचना की, दूसरी बात यह कि कामान्दक के नीति-ग्रंथ का आधारभूत वही **अर्थशास्त्र** था, तीसरी बात यह कि कौटिल्य ने नन्द-वंश का उन्मूलन कर उसकी जगह मौर्य-वंश को प्रतिष्ठित किया और चौथी बात यह कि कौटिल्य का असली नाम विष्णुगुप्त था। **नीतिसार** का सारांश इस प्रकार है :

**नीतिसार** उसी विद्वान् के ग्रन्थ का आधार है, जिसके वज्र ने पर्वत की तरह अविचल, अडिग नन्द-वंश को उखाड़ फेंका था, जिसने चन्द्रगुप्त को पृथ्वी का स्वामित्व दिया और जिसने अर्थशास्त्र रूपी महार्णव से नीतिशास्त्र रूपी नवनीत का दोहन किया, ऐसे उस महामति विष्णुगुप्त नामक विद्वान् को नमस्कार है।

नीतिशास्त्रामृतं धीमानर्थशास्त्र महोदधे।
समुद्दध्रे नमस्तस्मै विष्णुगुप्ताय वेधसे॥

—नीतिसार

विष्णुगुप्तस्तु कौटिल्यश्चाणक्यो द्रामिलो गुलः।
वात्स्यायनो मल्लनागः पाक्षिलस्वामिनावपि॥
वात्स्यायनो मल्लनागः कौटिल्यश्चणकात्मजः।
द्रामिलः पाक्षिलः स्वामी विष्णुगुप्तो गुलश्च स।

—हेमचन्द्र

वात्स्यायनस्तु कौटिल्यो विष्णुगुप्तो वराणकः।
द्रामिल पाक्षिल स्वामी मल्लनागो वलोऽपि च॥

—यादवप्रकाश-वैजयन्ती

कात्यायनो वररुचिर्मयजिच्च्य पुनर्वसुः।
कात्यायनस्तुकौटिल्यो विष्णुगुप्तो वराणकः॥
द्रामिलपाक्षिल स्वामी मल्लनागो गुलोऽपि च।

—भोजराज नाममल्लिका

**नीतिसार** के अतिरिक्त संस्कृत के कतिपय कोष-ग्रन्थों से भी आचार्य विष्णुगुप्त के पर्यायवाची नामों का पता लगता है, जिनमें कौटिल्य और चाणक्य के अतिरिक्त अनेक अप्रचलित नाम देखने को मिलते हैं। ये नाम प्राचीन और मध्यकालीन सभी ग्रन्थों में मिलते हैं। विभिन्न कोष-ग्रन्थों की इस नामावली की उपलब्धि से आचार्य कौटिल्य के वास्तविक नाम और उनके लिए प्रयुक्त होने वाले दूसरे नामों का स्वतः ही निराकरण हो जाता है।

## अर्थशास्त्र का प्रणेता

कामन्दकीय **नीतिसार** के पूर्वोक्त प्रमाणों से सुनिश्चित है कि **अर्थशास्त्र** का निर्माण आचार्य कौटिल्य ने किया। कुछ दिन पूर्व विदेशी विद्वानों के एक वर्ग ने यहाँ तक सिद्ध करने की चेष्टा की थी कि **अर्थशास्त्र** एक जाली ग्रन्थ है और जिसके नाम को उसके साथ जोड़ा गया है, वह कौटिल्य भी एक कल्पित नाम है। विदेशी विद्वानों की इन भ्रांत धारणाओं को व्यर्थ सिद्ध करने वाली नयी खोजों का सविस्तार उल्लेख आगे किया जायेगा। यहाँ तो इतना ही बता देना यथेष्ट है कि **अर्थशास्त्र** का प्रणेता विष्णुगुप्त कौटिल्य ही था।

**अर्थशास्त्र** में समाप्ति-सूचक एक श्लोक आता है, जिसका निष्कर्ष है कि इस ग्रन्थ की रचना उसने की, जिसने की शस्त्र, शास्त्र और नन्द राजा द्वारा शासित पृथ्वी का एक साथ उद्धार किया—

येन शास्त्रं च शस्त्रं च नन्दराजगता च भूः।
अमर्षेणोद्धृतान्याशु तेन शास्त्रमिदं कृतम्॥

—अर्थशास्त्र, पृ० ७७१

**अर्थशास्त्र** के इस श्लोक में वर्णित नन्दराज द्वारा शासित राजसत्ता को विनष्ट कर उसकी जगह मौर्य साम्राज्य की प्रतिष्ठा करने वाले अद्भुत राजनीति-विशारद आचार्य कौटिल्य का निर्देश पुराण और नीति ग्रन्थों के अनुसार पहिले किया जा चुका है। इससे प्रमाणित है कि **अर्थशास्त्र** का निर्माता कौटिल्य ही था। उक्त श्लोक में कौटिल्य की अहंवादिता का आभास मिलता है, जो कि सर्वथा युक्त है। ऐसा विदित होता है कि आचार्य कौटिल्य **अर्थशास्त्र** के निष्णात पंडित तो थे ही, साथ ही दूसरे शास्त्रों और शस्त्र-विद्याओं में भी कुशल थे।

**अर्थशास्त्र** और कौटिल्य के सम्बन्ध में कुछ दिन पूर्व जो विवाद चल पड़ा था, आधुनिकतम अनुसन्धानों ने उसको सर्वथा व्यर्थ सिद्ध कर अन्तिम रूप से यह प्रमाणित कर दिया है कि **अर्थशास्त्र** का निर्माता आचार्य विष्णुगुप्त कौटिल्य ही था।

## अर्थशास्त्र का उद्धार

**अर्थशास्त्र** और उसके निर्माता कौटिल्य के सम्बन्ध में जितना विवाद रहा, उससे कहीं अधिक भ्रमपूर्ण धारणाएँ उसके स्थिति-काल के सम्बन्ध में प्रचारित हुईं। आचार्य कौटिल्य की जीवन-सम्बन्धी जानकारी और उनके अद्भुत ग्रन्थ **अर्थशास्त्र** की छान-बीन करने में विदेशी विद्वानों का वर्षों तक

घोर विवाद चलता रहा। इस तर्क-वितर्क और वाद-विवाद की परंपरा में जिन देशी-विदेशी विद्वानों का भरपूर हाथ रहा उनमें पं० शामशास्त्री, महामहोपाध्याय पं० गणपतिशास्त्री, श्री काशीप्रसाद जायसवाल, श्री नरेन्द्रनाथ लाहा, श्री राधाकुमुद मुकर्जी, श्री देवदत्त रामकृष्ण भंडारकर, श्री रमेश मजूमदार, श्री उपेन्द्र घोषाल, श्री प्राणनाथ विद्यालंकार, श्री विनयकुमार सरकार और श्री जयचन्द विद्यालंकार प्रमुख हैं। इसी प्रकार विदेशी विद्वानों में श्री हिलेब्रांट, श्री हर्टल, याकोबी साहब, श्री विसेंट स्मिथ, श्री औटो स्टाइन, डा० जौली, डा० विंटरनित्स और डा० कीथ के नाम उल्लेखनीय हैं।

कौटिल्य **अर्थशास्त्र** के उद्धारक के रूप में पं० शामशास्त्री का नाम **अर्थशास्त्र** की महानता के साथ अमर हो चुका है। श्री शास्त्री जी ने मैसूर राज्य से प्राप्त कर इस महाग्रन्थ के कुछ अंशों को पहले-पहल १९०५ ई० में **इण्डियन एण्टीक्वेरी** में सानुवाद प्रकाशित किया और बाद में १९०९ ई० में सम्पूर्ण ग्रन्थ को बड़ी शुद्धता के साथ प्रकाशित भी किया। पं० शामशास्त्री ने ग्रन्थ के विस्तृत उपोद्‌घात में बड़े पाण्डित्यपूर्ण प्रमाणों के आधार पर **अर्थशास्त्र** के सम्बन्ध में तीन बातों का विशेष रूप से उल्लेख किया। पहली बात तो उन्होंने यह बतायी कि आचार्य कौटिल्य चन्द्रगुप्त मौर्य के आमात्य थे, दूसरी बात उन्होंने यह दिखायी कि **अर्थशास्त्र** कौटिल्य की ही कृति है और तीसरा निराकरण उन्होंने यह भी किया है कि **अर्थशास्त्र** का यही प्रामाणिक मूलपाठ है। पं० शामशास्त्री ने **अर्थशास्त्र** के जिस अनुवाद को प्रकाशित किया था, ट्रावनकोर राज्य से प्रकाशित कामन्दकीय **नीतिसार** की टीका में उद्‌धृत **अर्थशास्त्र** के अंशों से उनका मिलान ठीक नहीं बैठता है।

## अर्थशास्त्र विषयक विवाद

पं० शामशास्त्री की दो बातों का, कि **अर्थशास्त्र** कौटिल्य की ही कृति है और वह अपने मूलरूप में उपलब्ध है, समर्थन हिलब्रांट, हर्टल, याकोबी ( १९१२ ई० ) और स्मिथ ने भी किया। श्री विसेंट स्मिथ ने अपने प्रसिद्ध इतिहास ग्रन्थ **अर्ली हिस्ट्री आफ इण्डिया** के तीसरे संस्करण ( १९१४ ई० ) में शास्त्री जी की उक्त स्थापनाओं को मान्यता देकर उन पर अपने समर्थन की अन्तिम मुहर लगायी।

स्मिथ साहब के उक्त इतिहास-ग्रन्थ के लगभग आठ वर्ष बाद विदेशी विद्वानों के एक वर्ग ने कौटिल्य, उनके **अर्थशास्त्र** और उसकी प्रामाणिकता एवं रचना-काल के बारे में अविश्वास की नयी मान्यताओं को स्थापित किया। उनके मतानुसार कौटिल्य, ग्रन्थकार का वास्तविक नाम न होकर

एक कल्पित नाम है एवं **अर्थशास्त्र** तीसरी शती का रचा हुआ एक जाली ग्रन्थ है। ओटोस्टाइन महोदय ने **मेगस्थनीज ऐण्ड कौटिल्य** नामक अपनी तुलनात्मक पुस्तक में मेगस्थनीज और कौटिल्य के सम्बन्ध में पारस्परिक विरोध दिखाने की चेष्टा की है। ओटोस्टाइन के बाद डा० जौली ने इस क्षेत्र को संभाला और उन्होंने जिन नयी सूझों की उद्भावना की वे आज भी हमारे सामने हैं।

१९२३ ई० में डा० जौली की, पंजाबी संस्कृत सीरीज, लाहौर से एक पुस्तक प्रकाशित हुई, जिसका नाम है—**अर्थशास्त्र ऑफ कौटिल्य**। अपनी इस पुस्तक की प्रस्तावना में डाक्टर साहब ने यह सिद्ध किया कि **अर्थशास्त्र** तीसरी सदी में लिखा गया एक जाली ग्रन्थ है। उसके रचयिता कौटिल्य को डा० जौली ने एक कल्पित राज-मन्त्री कहा है।

डा० जौली के उक्त मत को अतर्क्य कहकर डा० विंटरनित्स ने अपने ग्रन्थ **ए हिस्ट्री आफ इण्डियन लिटरेचर** ( १९२७ ई० ) में जौली साहब के मत की ही पुष्टि की। इसके पश्चात् डा० कीथ ने १९२८ ई० में **सर आशुतोष स्मारक ग्रन्थ** के प्रथम भाग में एक लेख लिखकर भरपूर शब्दों में यह सिद्ध किया कि **अर्थशास्त्र** की रचना ३०० ई० से पहले की कदापि नहीं हो सकती है। इससे भी आगे बढ़कर उक्त लेख में एक नयी बात उन्होंने यह भी जोड़ दी कि सम्पूर्ण **अर्थशास्त्र** एक अप्रामाणिक रचना है।

डा० जौली के भ्रमपूर्ण प्रचार और प्रस्तावना में उद्धृत उनके तर्कों को डा० जायसवाल ने खंडित किया और प्रामाणिक आधारों को साक्षी रखकर स्पष्ट किया कि **अर्थशास्त्र** जैसा संस्कृत साहित्य का महान् ग्रन्थ जाली नहीं है। उसका रचयिता कौटिल्य एक कल्पित व्यक्ति न होकर सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य का महामात्य था। **अर्थशास्त्र** उसी की कृति है, जो प्रामाणिक रूप में संप्रति उपलब्ध है और जिसकी रचना ४०० ई० पू० में हुई ( विस्तृत विवरण के लिए डा० जायसवाल–**हिन्दू-राजतन्त्र** परिशिष्ट 'ग' 'पहिले खण्ड के अतिरिक्त नोट' पृ० ३२७–३६७ )।

इसी प्रकार श्री जयचंद विद्यालंकार ने डा० कीथ द्वारा अपने निबन्ध में उपस्थित किये गये तर्कों एवं उनकी युक्तियों की विस्तृत आलोचना करके दूसरे इतिहासकारों की इस राय से कि कौटिल्य चन्द्रगुप्त मौर्य ( ३२५–२७३ ई० पूर्व ) के राजमन्त्री थे और **अर्थशास्त्र** उन्हीं की कृति है, जो अपने प्रामाणिक रूप में उपलब्ध है, अपना अभिमत कौटिल्य **अर्थशास्त्र** के ३०० ई० पू० के लगभग रचे जाने के समर्थन में पेश किया ( चन्द्रगुप्त विद्यालंकार : **भारतीय इतिहास की रूपरेखा** २, पृ० ५४७, ६७३-७०० )।

## अर्थशास्त्र का व्यापक प्रभाव

संस्कृत-साहित्य के कतिपय ग्रन्थकारों की कृतियों पर **अर्थशास्त्र** का पर्याप्त प्रभाव है, जिससे उसकी सार्वभौम मान्यता का सहज में ही पता चलता है। ईसवी पूर्व प्रथम शताब्दी में वर्तमान संस्कृत के सुपरिचित महाकवि कालिदास से लेकर याज्ञवल्क्य, वात्स्यायन, विष्णुशर्मा, विशाखदत्त तथा बाण प्रभृति महाकवियों, स्मृतिकारों, गद्यकारों और नाटककारों की सातवीं शताब्दी ई० तक की रची गयी कृतियाँ **अर्थशास्त्र** से प्रभावित हैं। वैसे भी स्वतन्त्र रूप से **अर्थशास्त्र** का दाय लेकर अनेक तद्विषयक कृतियाँ संस्कृत में निर्मित हुईं, किन्तु दूसरे विषय के जिन ग्रन्थों में कौटिल्य **अर्थशास्त्र** का महत्त्व एवं उसकी शैली का अनुकरण है, उनकी संख्या भी पर्याप्त है।

महाकवि कालिदास ( १०० ई० पू० ) के **रघुवंश**, **कुमारसंभव** और **शाकुन्तल** अत्यधिक रूप से **अर्थशास्त्र** से प्रभावित हैं। इसी प्रकार **याज्ञवल्क्य-स्मृति** ( १५० ई० ) भी **अर्थशास्त्र** के प्रभाव से अछूती नहीं। आचार्य वात्स्यायन ( ३०० ई० ) ने तो अपने **कामसूत्र** का एकमात्र आधार कौटिल्य का **अर्थशास्त्र** स्वीकार किया है और इसी हेतु इन दोनों का प्रकरण-विभाजन भी एक जैसा है। ( मिलाइये, **अर्थशास्त्र** २।१, १०।७, १७।५५, १०।७३, ९।१, ७।१५, १।२, ८।३ क्रमशः **रघुवंश** १५।९, **कुमारसंभव** ६।७३, **रघुवंश** १७। ४९, १२।५५, १७।५६, १७।७६, १७।८९, १८।५० तथा **शाकुन्तल** २।५ **कामसूत्रमिदं प्रणीतम्। तस्यायं प्रकरणाधिकरणसमुद्देशः**; **कामसूत्र** १।१ )।

संस्कृत के जन्तु-विषयक कथाओं का एकमात्र प्रतिनिधि ग्रन्थ **पञ्चतन्त्र** संप्रति अपने मूल में उपलब्ध नहीं है, जिसकी रचना ३०० ई० पू० मानी जाती है और अपने विषय का जिसे दुनिया के जन्तु-कथा-काव्यों में पहिला स्थान प्राप्त है, तथापि उसके विभिन्न छायारूपों में विष्णु शर्मा कृत **पञ्चतन्त्र** ही प्रधान माना जाता है, जिनकी रचना कथमपि ३०० ई० के बाद की नहीं है। इस कथा-ग्रन्थ में चाणक्य के **अर्थशास्त्र** को **मनुस्मृति** और **कामसूत्र** की भाँति अपने विषय का एकमात्र प्रतिनिधि ग्रन्थ कह कर स्मरण किया गया है। ( **ततो धर्मशास्त्राणि मन्वादीनि, अर्थशास्त्राणि चाणक्यादीनि, कामशास्त्राणि वात्स्यायनादीनि।**) **पञ्चतन्त्र** के प्रथम अध्याय में एक दूसरे स्थल पर **अर्थशास्त्र** को **'नयशास्त्र'** नाम से भी अभिहित किया गया है।

संस्कृत-साहित्य का एक नाटक **मुद्राराक्षस** है, जिसके रचयिता विशाख-दत्त ६०० ई० के लगभग हुए। यह नाटक एक प्रकार से आचार्य कौटिल्य

की आंशिक जीवनी है। **मुद्राराक्षस** से महामति कौटिल्य के अतुल व्यक्तित्व का परिचय प्राप्त किया जा सकता है।

विशाखदत्त के समकालीन कथाकार एवं काव्यशास्त्री आचार्य दण्डी ने कौटिलीय दण्डनीति के अध्ययन पर जोर दिया ही है, वरन् उस दण्डनीति के स्वरूप के सम्बन्ध में भी एक ऐतिहासिक विवरण प्रस्तुत किया है। दण्डी का कथन है कि 'आचार्य विष्णुगुप्त निर्मित उस दण्डनीति का अध्ययन करो, जिसको उन्होंने मौर्य ( चन्द्रगुप्त ) के लिये छः हजार श्लोकों में संक्षिप्त किया था। जो भी इस उत्तम ग्रन्थ को पढ़ेगा उसको उत्तम फल मिलेगा।' (**अधीष्व तावद्दण्डनीतिम्। तदिदमिदानीमाचार्यविष्णुगुप्तेन मौर्यार्थे षड्भिः श्लोकसहस्रैः संक्षिप्ता। सैवेयमधीत्य सम्यगनुष्ठीयमानयथोक्तकार्यक्षमेति** )।

**कादम्बरी** जैसे बृहत्कथा काव्य के निर्माता बाणभट्ट ( ७०० ई० ) ने कौटिल्य शास्त्र का उल्लेख तो किया है, किन्तु मालूम नहीं किस दृष्टि से उन्होंने उसको निकृष्ट शास्त्र की संज्ञा दी है। बाण का कथन है कि 'उन लोगों के लिये क्या कहा जाय जो अति नृशंस कार्य को उचित बताने वाले कौटिल्य के शास्त्र को प्रमाण मानते हैं'। ( **किं वा तेषां सांप्रतं येषामतिनृशंसप्रायोपदेशं कौटिल्यशास्त्रप्रमाणम्** ।

## अर्थशास्त्र और उसकी परंपरा

बृहद् हिन्दू जाति के राजनीतिशास्त्र-विषयक साहित्य का निर्माण लगभग ६५० ई० पूर्व में हो चुका था। यह कल्पसूत्रों की रचना का समय था। कौटिलीय **अर्थशास्त्र** के सैकड़ों शब्दों में एवं उसकी लेखन-शैली पर कल्पसूत्रों की शब्दावली एवं उनकी रचना-शैली का प्रभाव स्पष्ट लक्षित होता है। ( प्रो० प्राणनाथ विद्यालंकार, कौटिल्य अर्थशास्त्र की प्रस्तावना )।

इससे प्रतीत होता है कि अर्थशास्त्र-विषयक ग्रन्थों का निर्माण कल्पसूत्रों ( ७०० ई० पू० ) के बाद और विशेष रूप से **बौधायन-धर्मसूत्र** ( ५०० ई० पू० ) के बाद होना आरम्भ हो गया था। बौद्ध-धर्म के प्राण-सर्वस्व जातक-ग्रन्थों का रचनाकाल तथागत बुद्ध से पूर्व अर्थात् लगभग ६०० ई० पू० बैठता है। इन जातकों के अध्ययन से स्पष्ट है कि उस समय तक अर्थशास्त्र को एक प्रमुख विज्ञान के रूप में परिगणित किया जाने लगा था। ( **फास्बोल जातक**, जिल्द २, पृष्ठ ३०, ७४ )।

सूत्रकाल की समाप्ति ( २०० ई० पू० ) के लगभग अर्थशास्त्र एक प्रामाणिक शास्त्र के रूप में समाहित हो चुका था। सूत्र-ग्रन्थों में अर्थशास्त्र-विषयक चर्चाओं को देख कर उसकी मान्यता का सहसा अनुमान लगाया जा सकता है

( **आपस्तंब-धर्मसूत्र** २, ५, १०, १४ )। **गृह्यसूत्र** में तो आदित्य नामक एक अर्थशास्त्रविद् आचार्य का उल्लेख तक मिलता है ( **आश्वलायन गृह्यसूत्र** ३, १३, १६ )। **महाभारत** में हिन्दू राजनीतिशास्त्र का सिलसिलेवार इतिहास मिलता है और इस परंपरा के कतिपय प्राचीन आचार्यों की सूची भी उसमें उल्लिखित है ( **महाभारत**, शान्तिपर्व, अध्याय ५८, ५६ )।

**अर्थशास्त्र** की प्राचीन परम्परा का अध्ययन करते समय इस सम्बन्ध में एक बात जानने योग्य यह है कि आरम्भ में दण्डनीति और शासन-सम्बन्धी कार्यों का उल्लेख भी **अर्थशास्त्र** के लिए ही होता था, किन्तु कौटिल्य के बाद **अर्थशास्त्र** से केवल जनपद-सम्बन्धी कार्यों का ही विधान होने लगा था। अर्थ की व्याख्या करते हुए कौटिल्य ने लिखा है कि 'अर्थ का अभिप्राय है मनुष्यों की बस्ती, अर्थात् वह प्रदेश जिसमें मनुष्य बसते हों। अर्थशास्त्र उस शास्त्र को कहते हैं, जिसमें राज्य की प्राप्ति और उसके पालन के उपायों का वर्णन हो।' ( **अर्थशास्त्र**, पृ० ७६५ )। आचार्य उष्ण के राजनीतिशास्त्र-विषयक ग्रन्थ को **दण्डनीतिशास्त्र** ( विशाखदत्त : **मुद्राराक्षस** १।७ ) और आचार्य बृहस्पति के ग्रन्थ को **अर्थशास्त्र** ( वात्स्यायन : **कामसूत्र** १ ) इसी लिए कहा जाने लगा था। इसी परम्परा के अनुसार महाभारतकार ने भी प्रजापति के ग्रन्थ को **राजशास्त्र** कहकर स्मरण किया है (**महाभारत**, शांतिपर्व, अ०५९)। इसी प्रकार कौटिल्य के **अर्थशास्त्र** में जो ग्रन्थकार ऐतिहासिक व्यक्ति माने गये हैं, वे शांतिपर्व में देवी-विभूति तथा पौराणिक रूप में स्मरण किये गये हैं ( जायसवाल : **हिन्दू-राजतन्त्र** १, पृ० ६ का फुटनोट )।

समस्त पूर्ववर्ती आचार्य-परंपरा के सिद्धान्तों और उनकी वे कृतियाँ, जो कि सम्प्रति अनुपलब्ध हैं, उन सब का एक साथ निष्कर्ष हम कौटिल्य के **अर्थशास्त्र** में पाते हैं। कौटिल्य ने अपने पूर्ववर्ती लगभग अठारह-उन्नीस अर्थ-शास्त्रविद् आचार्यों का उल्लेख किया है; जिनसे विचार ग्रहण कर उन्होंने अपने अद्भुत ग्रन्थ का निर्माण किया। इस प्राचीन आचार्म-परंपरा के परिचय से ऐसा प्रतीत होता है कि अर्थशास्त्र का निर्माण बहुत पहले से होने लगा था और विभिन्न ग्रन्थों में आदर के साथ उल्लेख किया जाने लगा था, जिसकी व्यापक व्याख्या हम कौटिल्य के **अर्थशास्त्र** में पाते हैं।

ई० पूर्व ४०० के अनन्तर और ४०० के बीच में रचे गये धर्मशास्त्र-विषयक ग्रन्थों में सर्वत्र ही हमें **अर्थशास्त्र** की विस्तृत चर्चाएँ और प्राचीन अर्थशास्त्रियों के सिद्धान्तों का उल्लेख देखने को मिलता है। किन्तु ये सभी चर्चाएँ बिखरी हालत में उपलब्ध होती हैं। आचार्य कामन्दक ने ४०० ई० के लगभग एक

पद्यमय ग्रन्थ **नीतिसार** लिखा, जो कि आचार्य शुक्र कृत **शुक्रनीतिसार** का संस्करण मात्र था और आधुनिक विद्वानों ने कामन्दकीय **नीतिसार** के उन उद्धरणों को, जिनको कि मध्ययुग के बाद वाले स्मृतिशास्त्र के टीकाकारों ने उद्धृत किया है, मिलान करने पर पता लगाया कि कामन्दक के **नीतिसार** का १७वीं शताब्दी के लगभग पुनः संस्करण हुआ।

ईसा की छठीं और सातवीं शताब्दी में विरचित अग्नि और मत्स्य आदि पुराणों में भी यद्यपि **अर्थशास्त्र** सम्बन्धी चर्चाएँ और तत्सम्बन्धी कुछ आचार्यों के नाम उपलब्ध होते हैं, तथापि वे विशेष महत्त्व के नहीं हैं। नवम-दशम शताब्दी के दो ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं। पहिले अर्थशास्त्र विषयक ग्रन्थ **बृहस्पतिसूत्र** को डा० एफ० डब्ल्यू० थामस ने खोज कर सम्पादित एवं प्रकाशित किया। यह ग्रन्थ अपने मूलरूप में बहुत प्राचीन था, किन्तु जिस रूप में आज वह उपलब्ध है, वह नवम-दशम शताब्दी का पुनः संस्करण है। इसी प्रकार दूसरा ग्रन्थ दसवीं शताब्दी में विरचित सूत्रात्मक शैली का **नीतिवाक्यामृत** है, जिसके रचयिता का नाम सोमदेव था। यह सोमदेव **कथासरित्सागर** का रचयिता ११वीं शताब्दी के काश्मीर देशीय सोमदेव से पृथक् व्यक्ति था।

तदनन्तर १०वीं शताब्दी से लेकर १४वीं शताब्दी तक की कोई कृति उपलब्ध नहीं होती। अर्थशास्त्र विषयक ग्रंथों की निर्माण-परम्परा लगभग १८वीं शताब्दी तक पहुँचती है। अर्थशास्त्र का यह अन्तिम समय नितान्त अवनति का रहा है। १४वीं से १८वीं शताब्दी तक के ग्रन्थकारों में चन्द्रशेखर, मित्रमिश्र और नीलकंठ प्रमुख हैं, जिनके ग्रन्थों का नाम क्रमशः **राजनीति रत्नाकर** ( जायसवाल, बिहार, उड़ीसा, रिसर्च सोसाइटी ), **वीरमित्रोदय** ( चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी से प्रकाशित ) और **राजनीतिमयूख** ( स्व० बा० गोविन्ददास, वाराणसी के पुस्तकालय में सुरक्षित ) है। चन्द्रशेखर के ग्रंथ में दो अन्य अर्थशास्त्र-विषयक ग्रन्थों के नाम उद्धृत हैं, जिनमें से एक ग्रन्थ **राजनीतिकल्पतरु** के रचयिता का नाम लक्ष्मीधर और दूसरे विलुप्त नामक ग्रन्थकार का **राजनीतिकामधेनु** है।

इस प्रकार आचार्य कौटिल्य, उनका अर्थशास्त्र और उस परम्परा का आकण्ठ अध्ययन करने के पश्चात् हमें विदित होता है कि संस्कृत-साहित्य की अभिवृद्धि में **अर्थशास्त्र** का महत्त्वपूर्ण योग रहा है और आचार्य कौटिल्य काल्पनिक व्यक्ति न होकर एक युगविधायक महारथी के रूप में संस्कृत भाषा की महानताओं के साथ अजर एवं अमर हो चुके हैं।

# प्रस्तुत संस्करण

'कौटिलीय अर्थशास्त्र' के साथ डॉ० शाम शास्त्री और महामहोपाध्याय गणपति शास्त्री का नाम अमर है। डॉ० शाम शास्त्री का अंग्रेजी अनुवाद और म० म० गणपति शास्त्री का संस्कृतानुवाद इस विषय की सर्वांगीण, शोधपूर्ण और प्रामाणिक कृतियाँ हैं।

'कौटिलीय अर्थशास्त्र' का प्रस्तुत संस्करण म० म० गणपति शास्त्री के संस्करण पर आधारित है। स्व० शास्त्री जी ने 'अर्थशास्त्र' का गम्भीर अध्ययन करने के उपरान्त उसके मूल भाग को विषय और प्रसङ्ग के अनुसार अलग-अलग वर्गों, वाक्यों और वाक्यखण्डों में विभाजित किया है। उनकी यह स्वतन्त्र देन है।

प्रत्येक सूत्र के आगे संख्या डालने की अवैज्ञानिक पद्धति स्व० शास्त्री जी के संस्करण में नहीं अपनायी गयी है। बल्कि उन्होंने मूल पाठ के प्रत्येक पैराग्राफ को इस ढङ्ग से संयोजित किया है कि अर्थसङ्गति की दृष्टि से वह भग्नतया विच्छिन्न न होने पावे। डॉ० शाम शास्त्री का दृष्टिकोण भी यही रहा है।

प्रस्तुत हिन्दी अनुवाद के प्रत्येक पैराग्राफ पर संख्या का उल्लेख इसलिये किया है कि नीचे उसका अनुवाद पढ़ने में सुगमता हो। अधिकरण, प्रकरण और अध्याय का जो क्रम सभी संस्करणों में है वही इस संस्करण में भी देखने को मिलेगा।

पुस्तक के अन्त में चाणक्य-सूत्रों को भी जोड़ दिया गया है। आचार्य कौटिल्य के नाम पर चाणक्य सूत्रों को जोड़ना ऐतिहासिक दृष्टि से यद्यपि असङ्गत है, किन्तु अध्येताओं की सुविधा के लिये उनका समावेश करना भी आवश्यक समझा गया है।

डॉ० शाम शास्त्री और म० म० गणपति शास्त्री के संस्करणों के अतिरिक्त उदयवीर शास्त्री के हिन्दी अनुवाद से भी मैंने सहायता ली है। इस हेतु इन सभी महानुभावों का मैं विशेष रूप से आभारी हूँ। श्रद्धेय श्री रामचंद्र झा के सत्परामर्शों के लिये मैं अनुगृहीत हूँ।

**—वाचस्पति गैरोला**

# विषय-सूची

## ( १ ) विनयाधिकारिक : पहला अधिकरण



## ( २ ) अध्यक्षप्रचार : दूसरा अधिकरण

## ( ३ ) धर्मस्थीय : तीसरा अधिकरण



## ( ४ ) कण्टक-शोधन : चौथा अधिकरण

## ( ५ ) योग-वृत्त : पाँचवाँ अधिकरण



## ( ६ ) मण्डल-योनि : छठा अधिकरण



## ( ७ ) षाड्गुण्य : सातवाँ अधिकरण

## ( ८ ) व्यसनाधिकारिक : आठवाँ अधिकरण



## ( ९ ) अभियास्यत्कर्म : नौवाँ अधिकरण



## ( १० ) साङ्ग्रामिक : दसवाँ अधिकरण

—: ० :—

॥ श्रीः ॥

कौटिलीयम्

# अर्थशास्त्रम्

ॐ

नमः शुक्रबृहस्पतिभ्याम् ।

(१) पृथिव्या लाभे पालने च यावन्त्यर्थशास्त्राणि पूर्वाचार्यैः प्रस्थापितानि प्रायशस्तानि संहृत्यैकमिदमर्थशास्त्रं कृतम् ।

(२) तस्यायं प्रकरणाधिकरणसमुद्देशः ।

---

कौटिल्य का

# अर्थशास्त्र

ॐ

शुक्राचार्य और बृहस्पति के लिए नमस्कार है ।

( १ ) पृथिवी की प्राप्ति और उसकी रक्षा के लिए पुरातन आचार्यों ने जितने भी अर्थशास्त्र-विषयक ग्रन्थों का निर्माण किया उन सबका सार-संकलन कर प्रस्तुत अर्थशास्त्र की रचना की गई है ।

( २ ) इस अर्थशास्त्र के प्रकरणों और अधिकरणों का निरूपण इस प्रकार है :

(१) विद्यासमुद्देशः ॥ १ ॥ वृद्धसंयोगः ॥ २ ॥ इन्द्रियजयः ॥ ३ ॥ अमात्योत्पत्तिः ॥ ४ ॥ मन्त्रिपुरोहितोत्पत्तिः ॥ ५ ॥ उपधाभिः शौचाशोचज्ञानममात्यानाम् ॥ ६ ॥ गूढपुरुषोत्पत्तिः ॥ ७ ॥ गूढपुरुषप्रणिधिः ॥ ८ ॥ स्वविषये कृत्याकृत्यपक्षरक्षणम् ॥ ९ ॥ परविषये कृत्याकृत्यपक्षोपग्रहः ॥ १० ॥ मन्त्राधिकारः ॥ ११ ॥ दूतप्रणिधिः ॥ १२ ॥ राजपुत्ररक्षणम् ॥ १३ ॥ अवरुद्धवृत्तम् ॥ १४ ॥ अवरुद्धे च वृत्तिः ॥ १५ ॥ राजप्रणिधिः ॥ १६ ॥ निशान्तप्रणिधिः ॥१७॥ आत्मरक्षितकम् ॥१८॥

इति विनयाधिकारिकं प्रथममधिकरणम् ।

(२) जनपदविनिवेशः ॥ १ ॥ भूमिच्छिद्रविधानम् ॥ २ ॥ दुर्गविधानम् ॥ ३ ॥ दुर्गविनिवेशः ॥ ४ ॥ संनिधातृनिचयकर्म ॥ ५ ॥ समाहर्तृसमुदयप्रस्थापनम् ॥ ६ ॥ अक्षपटलेगाणनिक्याधिकारः ॥ ७ ॥ समुदयस्य युक्तापहृतस्य प्रत्यानयनम् ॥ ८ ॥ उपयुक्तपरीक्षा ॥ ९ ॥ शासनाधिकारः ॥ १० ॥ कोशप्रवेश्यरत्नपरीक्षा ॥ ११ ॥ आकरकर्मान्तप्रवर्तनम् ॥१२॥ अक्षशालायां सुवर्णाध्यक्षः ॥ १३ ॥ विशिखायां सौवर्णिकप्रचारः ॥ १४ ॥ कोष्ठागाराध्यक्षः ॥ १५ ॥ पण्याध्यक्षः ॥ १६ ॥ कुप्याध्यक्षः ॥ १७ ॥ आयुधागाराध्यक्षः ॥ १८ ॥ तुलामानपौतवम् ॥ १९ ॥ देशकालमानम्

---

## पहला अधिकरण : विनयाधिकारिक-( राजवृत्ति )-निरूपण

( १ ) १. विद्या-विषयक विचार; २. वृद्धजनों की संगति; ३. इन्द्रियजय; ४. अमात्यों की नियुक्ति; ५. मन्त्री और पुरोहित की नियुक्ति; ६. गुप्त उपायों से अमात्यों के आचरणों की परीक्षा; ७. गुप्तचरों का निरूपण; ८. गुप्तचरों की कार्यों पर नियुक्ति; ९. अपने देश में कृत्य-अकृत्य पक्ष की सुरक्षा; १०. शत्रुदेश में कृत्य-अकृत्य पक्ष को मिलाना; ११. मंत्राधिकार; १२. दूतों की कार्यों पर नियुक्ति; १३. राजपुत्र की रक्षा; १४. नजरबन्द राजकुमार का व्यवहार; १५. नजरबन्द ( राजकुमार ) के प्रति राजा का व्यवहार; १६. राजा के कार्य-व्यापार; १७. राजभवन का निर्माण; १८. आत्मरक्षा का प्रबन्ध ।

## दूसरा अधिकरण : अध्यक्षों का निरूपण

( २ ) १. जनपदों की स्थापना; २. भूमि को उपयोगी बनाने का विधान; ३. दुर्गों का निर्माण; ४. दुर्गविनिवेश; ५. सन्निधाता के कार्य; ६. समाहर्त्ता का कर-संग्रह कार्य; ७. अक्षपटल में गाणनिक के कार्य; ८. गबन किए गये राजधन को पुनः प्राप्त करना; ९. उपयुक्त परीक्षा; १०. शासनाधिकार; ११. कोष में रखने योग्य रत्नों को परीक्षा; १२. खान के कार्यों का संचालन; १३. अक्षशाला में स्वर्णाध्यक्ष का कार्य; १४. विशिखा में सौवर्णिक का व्यापार; १५. कोष्ठागार का अध्यक्ष; १६. पण्य का अध्यक्ष; १७. कुप्य का अध्यक्ष; १८. आयुधागार का अध्यक्ष;

॥ २० ॥ शुल्काध्यक्षः ॥ २१ ॥ सूत्राध्यक्षः ॥ २२ ॥ सीताध्यक्षः ॥२३॥ सुराध्यक्षः ॥ २४ ॥ सूनाध्यक्षः ॥ २५ ॥ गणिकाध्यक्षः ॥ २६ ॥ नावध्यक्षः ॥ २७ ॥ गोऽध्यक्षः ॥ २८ ॥ अश्वाध्यक्षः ॥ २९ ॥ हस्त्यध्यक्षः ॥ ३० ॥ रथाध्यक्षः ॥ ३१ ॥ पत्यध्यक्षः ॥३२॥ सेनापतिप्रचारः ॥३३॥ मुद्राध्यक्षः ॥ ३४ ॥ विवीताध्यक्षः ॥ ३५ ॥ समाहर्तृप्रचारः ॥ ३६ ॥ गृहपतिवैदेहकतापसव्यञ्जनाः प्रणिधयः ॥३७॥ नागरिकप्रणिधिः ॥३८॥

इत्यध्यक्षप्रचारो द्वितीयमधिकरणम् ।

(१) व्यवहारस्थापना ॥ १ ॥ विवादपदनिबन्धः ॥ २ ॥ विवाहसंयुक्तम् ॥ ३ ॥ दायविभागः ॥ ४ ॥ वास्तुकम् ॥ ५ ॥ समयस्यानपाकर्म ॥ ६ ॥ ऋणादानम् ॥ ७ ॥ औपनिधिकम् ॥ ८ ॥ दासकर्मकरकल्पः ॥ ९ ॥ संभूयसमुत्थानम् ॥ १० ॥ विक्रीतक्रीतानुशयः ॥ ११ ॥ दत्तस्यानपाकर्म ॥ १२ ॥ अस्वामिविक्रयः ॥ १३ ॥ स्वस्वामिसंबन्धः ॥ १४ ॥ साहसम् ॥ १५ ॥ वाक्पारुष्यम् ॥ १६ ॥ दण्डपारुष्यम् ॥ १७ ॥ द्यूतसमाह्वयम् ॥ १८ ॥ प्रकीर्णकानि ॥ १९ ॥

इति धर्मस्थीयं तृतीयमधिकरणम् ।

(२) कारुकरक्षणम् ॥ १ ॥ वैदेहकरक्षणम् ॥ २ ॥ उपनिपातप्रतीकारः

---

१९. तोल-माप का निश्चय; २०. देश और काल का मान; २१. शुल्क का अध्यक्ष; २२. सूत का अध्यक्ष; २३. कृषि का अध्यक्ष; २४. आबकारी का अध्यक्ष; २५. वधस्थान का अध्यक्ष; २६. वेश्यालयों का अध्यक्ष; २७. परिवहन का अध्यक्ष; २८. पशुओं का अध्यक्ष; २९. अश्वशाला का अध्यक्ष; ३०. गजशाला का अध्यक्ष; ३१. रथसेना का अध्यक्ष; ३२. पैदल सेना का अध्यक्ष; ३३. सेनापति का कार्य; ३४. मुद्राविभाग का अध्यक्ष; ३५. चरागाह का अध्यक्ष; ३६. समाहर्त्ता का कार्य; ३७. गृहपति, वैदेहक तथा तापस के वेष में गुप्तचर; और ३८. नागरिक के कार्य।

## तीसरा अधिकरण : न्याय का निरूपण

(१) १. व्यवहार की स्थापना; २. विवाद पदों का विचार; ३. विवाह-सम्बन्धी विचार; ४. दाय-विभाग; ५. वास्तुक; ६. समय ( प्रतिज्ञा ) का न छोड़ना; ७. ऋण लेना; ८. धरोहर-सम्बन्धी नियम; ९. दास और श्रमिकों के नियम; १०. साझेदारी का हिस्सा; ११. क्रय-विक्रय-सम्बन्धी बयाना; १२. देने का वचन देकर फिर न देना; १३. अस्वामि-विक्रय; १४. स्व-स्वामि-सम्बन्ध; १५. साहस; १६. वाक्पारुष्य; १७. दण्डपारुष्य; १८. द्यूत-समाह्वय; और १९. प्रकीर्णक।

## चौथा अधिकरण : कण्टक-शोधन

(२) १. शिल्पियों से देश की रक्षा; २. व्यापारियों से देश की रक्षा; ३. दैवी

॥ ३ ॥ गूढाजीविनां रक्षा ॥ ४ ॥ सिद्धव्यञ्जनैर्माणवप्रकाशनम् ॥ ५ ॥ शङ्कारूपकर्माभिग्रहः ॥ ६ ॥ आशुमृतकपरीक्षा ॥ ७ ॥ वाक्यकर्मानुयोगः ॥ ८ ॥ सर्वाधिकरणरक्षणम् ॥ ९ ॥ एकाङ्गवधनिष्क्रयः ॥ १० ॥ शुद्धश्चित्रश्च दण्डकल्पः ॥ ११ ॥ कन्याप्रकर्म ॥ १२ ॥ अतिचारदण्डः ॥ १३ ॥

इति कण्टकशोधनं चतुर्थमधिकरणम् ।

(१) दाण्डकर्मिकम् ॥ १ ॥ कोशाभिसंहरणम् ॥ २ ॥ भृत्यभरणीयम् ॥ ३ ॥ अनुजीविवृत्तम् ॥ ४ ॥ सामयाचारिकम् ॥ ५ ॥ राज्यप्रतिसंधानम् ॥ ६ ॥ एकैश्वर्यम् ॥ ७ ॥

इति योगवृत्तं पञ्चममधिकरणम् ।

(२) प्रकृतसम्पदः ॥ १ ॥ शमव्यायामिकम् ॥ २ ॥

इति मण्डलयोनिः षष्ठमधिकरणम् ।

(३) षाड्गुण्यसमुद्देशः ॥ १ ॥ क्षयस्थानवृद्धिनिश्चयः ॥ २ ॥ संश्रयवृत्तिः ॥ ३ ॥ समहीनज्यायसां गुणाभिनिवेशः ॥ ४ ॥ हीनसंधयः ॥ ५ ॥ विगृह्यासनम् ॥ ६ ॥ संधायासनम् ॥ ७ ॥ विगृह्ययानम् ॥ ८ ॥ संधाययानम् ॥ ९ ॥ संभूयप्रयाणम् ॥ १० ॥ यातव्यामित्रयोरभिग्रहचिन्ता ॥ ११ ॥ क्षयलोभविरागहेतवः प्रकृतीनाम् ॥ १२ ॥ सामवायिकविपरि-

---

आपत्तियों का प्रतीकार; ४. गुप्त षड्यन्त्रकारियों से देश की रक्षा; ५. सिद्ध पुरुषों के बहाने प्रलोभन-विद्याओं का प्रकाशन; ६. सन्देह, वस्तु और कार्य के द्वारा चोरों को पकड़ना; ७. आशुमृत की परीक्षा; ८. वाक्यकर्मानुयोग; ९. सभी राजकीय विभागों की रक्षा; १०. एक अङ्ग का वध या उसकी जगह द्रव्यदण्ड; ११. शुद्धदण्ड और चित्रदण्ड; १२. कुँवारी कन्या से सम्भोग करने का दण्ड; और १३. अतिचार का दण्ड ।

### पाँचवाँ अधिकरण : योगवृत्त-निरूपण

(१) १. दंडव्यवस्था; २. कोश का संग्रह; ३. भृत्यों का भरण-पोषण; ४. राज्य-कर्मचारियों का व्यवहार; ५. व्यवस्था का यथोचित पालन; ६. राज्य का प्रतिसंधान और ७. एकैश्वर्य ।

### छठा अधिकरण : प्रकृतियों का निरूपण

(२) १. प्रकृतियों के गुण; और २. शांति तथा उद्योग ।

### सातवाँ अधिकरण : छह गुणों का निरूपण

(३) १. छह गुणों का उद्देश्य; २. क्षय, स्थान तथा वृद्धि का निश्चय; ३. बलवान् का आश्रय; ४. सम, हीन तथा बलवान् आदि राजाओं का चरित; ५. हीन संधि; ६. विग्रह कर के आसन; ७. संधि कर के आसन; ८. विग्रह कर के यान; ९. संधि कर के यान; १०. सामूहिक प्रयाण; ११. यातव्य और शत्रु के प्रति यान का

मर्शः ।। १३ ।। संहितप्रयाणिकम् ।। १४ ।। परिपणितापरिपणितापसृताश्च संधयः ।। १५ ।। द्वैधीभाविकाः संधिविक्रमाः ।। १६ ।। यातव्यवृत्तिः ।। १७ ।। अनुग्राह्यमित्रविशेषाः ।। १८ ।। मित्रहिरण्यभूमिकर्मसंधय ।। १९ ।। पार्ष्णिग्राहचिन्ता ।। २० ।। हीनशक्तिपूरणम् ।। २१ ।। बलवता विगृह्योपरोधहेतवः ।। २२ ।। दण्डोपनतवृत्तम् ।। २३ ।। दण्डोपनायिवृत्तम् ।। २४ ।। संधिकर्म ।। २५ ।। संधिमोक्षः ।। २६ ।। मध्यमचरितम् ।। २७ ।। उदासीनचरितम् ।। २८ ।। मण्डलचरितम् ।। २९ ।।

इति षाड्गुण्यं सप्तममधिकरणम् ।

(१) प्रकृतिव्यसनवर्गः ।। १ ।। राजराज्ययोर्व्यसनचिन्ता ।। २ ।। पुरुषव्यसनवर्गः ।। ३ ।। पीडनवर्गः ।। ४ ।। स्तम्भनवर्गः ।। ५ ।। कोशसङ्गवर्गः ।। ६ ।। बलव्यसनवर्गः ।। ७ ।। मित्रव्यसनवर्गः ।। ८ ।।

इति व्यसनाधिकारिकमष्टममधिकरणम् ।

(२) शक्तिदेशकालबलाबलज्ञानम् ।। १ ।। यात्राकालाः ।। २ ।। बलोपादानकालाः ।। ३ ।। संनाहगुणाः ।। ४ ।। प्रतिबलकर्म ।। ५ ।। पश्चात्कोपचिन्ता ।। ६ ।। बाह्याभ्यन्तरप्रकृतिकोपप्रतीकारः ।। ७ ।। क्षयव्ययलाभविपरिमर्शः ।। ८ ।। बाह्याभ्यन्तराश्चापदः ।। ९ ।। दूष्यशत्रुसंयुक्ताः ।।१०।।

---

निर्णय; १२. प्रकृतियों के क्षय, लोभ और विराग के हेतु; १३. सामवायिक राजाओं का विचार; १४. मिलकर आक्रमण; १५. परिपणित, अपरिपणित और अपसृत संधि; १६. द्वैधीभाव-सम्बन्धी सन्धि और विक्रम; १७. यातव्य-सम्बन्धी व्यवहार; १८. अनुग्राह्य मित्रविशेष; १९. मित्रसंधि, हिरण्यसंधि, भूमिसंधि और कर्मसंधि; २०. पार्ष्णिग्राह-चिन्ता; २१. दुर्बल का शक्ति-संचय; २२. बलवान् से विरोध कर के दुर्ग-प्रवेश के कारण; २३. दंडोपनतवृत्त; २४. दंडोपनायिवृत्त; २५. सन्धिकर्म; २६. सन्धि-मोक्ष; २७. मध्यम का चरित; २८. उदासीन का चरित; और २९. राजमंडल का चरित ।

## आठवाँ अधिकरण : व्यसनों का निरूपण

(१) १. प्रकृतियों के व्यसन; २. राजा और राज्य के व्यसनों पर विचार; ३. सामान्य पुरुषों के व्यसन; ४. पीडनवर्ग; ५. स्तम्भनवर्ग; ६. कोषसंगवर्ग; ७. बलव्यसनवर्ग और ८. मित्रव्यसनवर्ग ।

## नवाँ अधिकरण : आक्रमण का निरूपण

(२) १. शक्ति, देश और काल के बलाबल का ज्ञान; २. आक्रमण का समय; ३. सेनाओं के तैयार होने का समय; ४. सैन्य-संगठन ५. शत्रुसेना से मुकाबला; ६. पश्चात्कोपचिन्ता; ७. बाह्य और आभ्यन्तर प्रकृति के कोप का प्रतीकार; ८. क्षय, व्यय और लाभ का विचार; ९. बाह्य और आभ्यन्तर आपत्तियाँ; १०. राजद्रोही

**अर्थानर्थसंशययुक्ताः ॥ ११ ॥ तासामुपायविकल्पजाः सिद्धयः ॥ १२ ॥**

**इत्यभियास्यत्कर्म नवममधिकरणम् ।**

**(१) स्कन्धावारनिवेशः ॥१॥ स्कन्धावारप्रयाणम् ॥२॥ बलव्यसनावस्कन्दकालरक्षणम् ॥ ३ ॥ कूटयुद्धविकल्पाः ॥ ४ ॥ स्वसैन्योत्साहनम् ॥ ५ ॥ स्वबलान्यबलव्यायोगः ॥ ६ ॥ युद्धभूमयः ॥ ७ ॥ पत्त्यश्वरथहस्तिकर्माणि ॥ ८ ॥ पक्षकक्षोरस्यानां बलाग्रतो व्यूहविभागः ॥ ९ ॥ सारफल्गुबलविभागः ॥ १० ॥ पत्त्यश्वरथहस्तियुद्धानि ॥ ११ ॥ दण्डभोगमण्डलासंहतव्यूहव्यूहनम् ॥ १२ ॥ तस्य प्रतिव्यूहसंस्थापनम् ॥ १३ ॥**

**इति साङ्ग्रामिकं दशममधिकरणम् ।**

**(२) भेदोपादानानि ॥ १ ॥ उपांशुदण्डः ॥ २ ॥**

**इति सङ्घवृत्तमेकादशमधिकरणम् ।**

**(३) दूतकर्म ॥ १ ॥ मन्त्रयुद्धम् ॥ २ ॥ सेनामुख्यवधः ॥ ३ ॥ मण्डलप्रोत्साहनम् ॥ ४ ॥ शस्त्राग्निरसप्रणिधयः ॥ ५ ॥ विवधासारप्रसारवधः ॥ ६ ॥ योगातिसंधानम् ॥ ७ ॥ दण्डातिसंधानम् ॥ ८ ॥ एकविजयः ॥ ९ ॥**

**इत्याबलीयसं द्वादशमधिकरणम् ।**

---

और शत्रुजन्य आपत्तियाँ; ११. अर्थ, अनर्थ तथा संशयसंबंधी आपत्तियाँ; १२. उन आपत्तियों के प्रतीकारों के उपायों से प्राप्त होनेवाली सिद्धियाँ ।

## दसवाँ अधिकरण : संग्राम का निरूपण

(१) १. छावनी का निर्माण; २. छावनी का प्रयाण; ३. आपत्ति एवं आक्रमण के समय सेना की रक्षा; ४. कूटयुद्ध के भेद; ५. अपनी सेना को प्रोत्साहन; ६. अपनी और पराई सेना का प्रयोग; ७. युद्ध के योग्य भूमि; ८. पदाति, अश्व, रथ तथा हाथी आदि सेनाओं के कार्य; ९. पक्ष, कक्ष तथा उरस्य आदि विशेष व्यूहों का सेना के परिमाण के अनुसार व्यूहविभाग; १०. सार तथा फल्गु बलों का विभाग; ११. चतुरंग सेना का युद्ध; १२. दंडव्यूह, भोगव्यूह, मंडलव्यूह, असंगतव्यूह और उनके प्रकृतिव्यूह तथा विकृतिव्यूह की रचना; १३. उक्त दंडादि व्यूहों के प्रतिव्यूहों की रचना ।

## ग्यारहवाँ अधिकरण : संघवृत्त-निरूपण

(२) १. भेदकप्रयोग; २. उपांशुदंड ।

## बारहवाँ अधिकरण : आबलीयस का निरूपण

(३) १. दूतकर्म; २. मंत्रयुद्ध; ३ सेनापतियों का वध; ४. राजमंडल की सहायता; ५. शस्त्र, अग्नि और रथों का गूढ़ प्रयोग; ६. विवध, आसार और प्रसार का नाश; ७. योगातिसंधान; ८. दंडातिसंधान; ९. एकविजय ।

**(१) उपजापः ॥ १ ॥ योगवानम् ॥ २ ॥ अपसर्पप्रणिधिः ॥ ३ ॥ पर्युपासनकर्म ॥ ४ ॥ अवमर्दः ॥ ५ ॥ लब्धप्रशमनम् ॥ ६ ॥**

**इति दुर्गलम्भोपायस्त्रयोदशमधिकरणम् ।**

**(२) परघातप्रयोगः ॥ १ ॥ प्रलम्भनम् ॥ २ ॥ स्वबलोपघात-प्रतीकारः ॥ ३ ॥**

**इत्यौपनिषदं चतुर्दशमधिकरणम् ।**

**(३) तन्त्रयुक्तयः ॥ १ ॥**

**इति तन्त्रयुक्तिः पञ्चदशमधिकरणम् ।**

**(४) शास्त्रसमुद्देशः पञ्चदशाधिकरणानि सपञ्चाशदध्यायशतं साशीतिप्रकरणशतं षट् श्लोकसहस्राणीति ।**

**(५) सुखग्रहणविज्ञेयं तत्त्वार्थपदनिश्चितम् ।**
**कौटिल्येन कृतं शास्त्रं विमुक्तग्रन्थविस्तरम् ॥**

इति प्रकरणाधिकरणसमुद्देशः ।

---

## तेरहवाँ अधिकरण : दुर्गप्राप्ति का निरूपण

(१) १. उपजाप; २. योगवामन; ३. गुप्तचरों का शत्रुदेश में निवास; ४. शत्रु के दुर्ग को घेरना; ५. शत्रु के दुर्ग को तोड़ना; ६. जीते हुए दुर्ग में शांति कायम करना ।

## चौदहवाँ अधिकरण : औपनिषदिक-निरूपण

( २ ) १. शत्रुवध के प्रयोग; २. प्रलंभन योग; ३. शत्रुद्वारा अपनी सेना पर किये गए घातक प्रयोगों का प्रतीकार ।

## पन्द्रहवाँ अधिकरण : तंत्रयुक्ति का निरूपण

( ३ ) तंत्रयुक्तियाँ ।

( ४ ) इस प्रकार सम्पूर्ण कौटिलीय अर्थशास्त्र में पन्द्रह अधिकरण; एक सौ पचास अध्याय; एक सौ अस्सी प्रकरण और छह हजार श्लोक हैं ।

[ उक्त श्लोकसंख्या अक्षरों की गणना से दी गई है । बत्तीस अक्षरों का एक अनुष्टुप् छन्द होता है । यदि इस कौटिलीय अर्थशास्त्र के अक्षरों को अनुष्टुप् छन्द में बांध दिया जाय तो छह हजार श्लोक बनते हैं । ]

( ५ ) इस अर्थशास्त्र में तत्त्वार्थ और पदों का प्रयोग किया गया है । व्यर्थ विस्तार से यह ग्रन्थ सर्वथा मुक्त है । सरलमति बालक भी इस ग्रन्थ को सुखपूर्वक समझ सकते हैं । इस अर्थशास्त्र को कौटिल्य ने बनाया है ।

प्रकरण एवं अधिकरण का निरूपण समाप्त ।

| प्रकरण १ | विद्यासमुद्देशः आन्वीक्षकीस्थापना |
|---|---|
| अध्याय १ | |

(१) आन्वीक्षकी त्रयी वार्ता दण्डनीतिश्चेति विद्याः।

(२) त्रयी वार्ता दण्डनीतिश्चेति मानवाः। त्रयीविशेषो ह्यान्वीक्षकीति।

(३) वार्ता दण्डनीतिश्चेति बार्हस्पत्याः। संवरणमात्रं हि त्रयी लोकयात्राविद इति।

(४) दण्डनीतिरेका विद्येत्यौशनसाः। तस्यां हि सर्वविद्यारम्भाः प्रतिबद्धा इति।

(५) चतस्र एव विद्या इति कौटिल्यः। ताभिर्धर्माथौं यद्विद्यात्तद्विद्यानां विद्यात्वम्।

(६) साङ्ख्यं योगो लोकायतं चेत्यान्वीक्षकी। धर्माधर्मौ त्रय्यामर्थानर्थौ वार्तायां नयापनयौ दण्डनीत्याम्। बलाबले चैतासां हेतुभिरन्वीक्षमाणा-

---

## विद्या-विषयक विचार : आन्वीक्षकी

(१) आन्वीक्षकी, त्रयी, वार्ता और दण्डनीति—ये चार विद्यायें हैं।

(२) मनु सम्प्रदाय के अनुयायी आचार्य त्रयी, वार्ता और दण्डनीति, इन तीन विद्याओं को मानते हैं। उनका मत है कि आन्वीक्षकी का समावेश त्रयी के अन्तर्गत हो जाता है।

(३) आचार्य बृहस्पति के अनुयायी विद्वान् केवल दो ही विद्यायें मानते हैं: वार्ता और दण्डनीति। उनके मतानुसार त्रयी तो दुनियादार ( लोकयात्राविद् ) लोगों की आजीविका का साधन मात्र है।

(४) शुक्राचार्य के अनुयायी विद्वानों ने तो केवल दण्डनीति को ही विद्या माना है, और उसी को सम्पूर्ण विद्याओं का स्थान एवं कारण स्वीकार किया है।

(५) किन्तु आचार्य कौटिल्य उक्त चारों विद्याओं को मानते हैं और उनकी यथार्थता धर्म तथा अधर्म के ज्ञान में बताते हैं।

(६) सांख्य, योग और लोकायत ( नास्तिक दर्शन ), ये आन्वीक्षकी विद्या के अन्तर्गत हैं। इसी प्रकार त्रयी में धर्म-अधर्म का, वार्ता में अर्थ-अनर्थ का और दण्डनीति में सुशासन-दुःशासन का ज्ञान प्रतिपादित है। त्रयी आदि विद्याओं की प्रधानता-

**न्वीक्षकी लोकस्योपकरोति; व्यसनेऽभ्युदये च बुद्धिमवस्थापयति; प्रज्ञा-वाक्यक्रियावैशारद्यं च करोति।**

**(१) प्रदीपः सर्वविद्यानामुपायः सर्वकर्मणाम्।**
**आश्रयः सर्वधर्माणां शश्वदान्वीक्षकी मता॥**

इति कौटिलीयार्थशास्त्रे विनयाधिकारिके प्रथमाधिकरणे विद्यासमुद्देशे आन्वीक्षकीस्थापना नाम प्रथमोऽध्यायः।

—: ० :—

---

अप्रधानता ( बलाबल ) को, भिन्न-भिन्न युक्तियों से, निर्धारित करती हुई आन्वीक्षकी विद्या लोक का उपकार करती है; सुख-दुःख से बुद्धि को स्थिर रखती है; और सोचने, विचारने, बोलने तथा कार्य करने में सक्षम बनाती है।

( १ ) यह आन्वीक्षकी विद्या सर्वदा ही सब विद्याओं का प्रदीप, सभी कार्यों का साधन और सब धर्मों का आश्रय मानी गई है।

विनयाधिकारिक प्रथम अधिकरण में पहला अध्याय समाप्त।

—: ० :—

प्रकरण १ | अध्याय २

# त्रयीस्थापना

(१) सामर्ग्यजुर्वेदास्त्रयस्त्रयी । अथर्ववेदेतिहासवेदौ च वेदाः । शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दोविचितिर्ज्योतिषमिति चाङ्गानि ।

(२) एष त्रयीधर्मश्चतुर्णां वर्णानामाश्रमाणां च स्वधर्मस्थापनादौपकारिकः ।

(३) स्वधर्मो ब्राह्मणस्याध्ययनमध्यापनं यजनं याजनं दानं प्रतिग्रहश्चेति । क्षत्रियस्याध्ययनं यजनं दानं शस्त्राजीवो भूतरक्षणं च । वैश्यस्याध्ययनं यजनं दानं कृषिपाशुपाल्ये वणिज्या च । शूद्रस्य द्विजातिशुश्रूषा वार्ता कारुकुशीलवकर्म च ।

(४) गृहस्थस्य स्वकर्माजीवस्तुल्यैरसमानर्षिभिर्वैवाह्यमृतुगामित्वं देवपित्रतिथिभृत्येषु त्यागः शेषभोजनं च ।

(५) ब्रह्मचारिणः स्वाध्यायोऽग्निकार्याभिषेकौ भैक्षव्रतत्वमाचार्ये प्राणान्तिकी वृत्तिस्तदभावे गुरुपुत्रे सब्रह्मचारिणि वा ।

## विद्या-विषयक विचार : त्रयी

( १ ) साम, ऋक् तथा यजु, इन तीनों वेदों का समन्वित नाम ही त्रयी ( तीनों वेद ) है । अथर्ववेद और इतिहासवेद ही वेद कहे जाते हैं । शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्दोविचिति ( विचिति=विचार, विवेक ) और ज्योतिष, ये छह वेदांग हैं ।

( २ ) त्रयी में निरूपित यह धर्म, चारों वर्णों और चारों आश्रमों को अपने-अपने धर्म ( कर्तव्य ) में स्थिर रखने के कारण लोक का बहुत ही उपकारक है ।

( ३ ) ब्राह्मण का धर्म अध्ययन-अध्यापन, यज्ञ-याजन और दान देना तथा दान लेना है । क्षत्रिय का धर्म है पढ़ना, यज्ञ करना, दान देना, शस्त्रबल से जीविकोपार्जन करना और प्राणियों की रक्षा करना । वैश्य का धर्म पढ़ना, यज्ञ करना, दान देना, कृषिकार्य एवं पशुपालन और व्यापार करना है । इसी प्रकार शूद्र का अपना धर्म है कि वह ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य की सेवा करे; खेती, पशु-पालन तथा व्यापार करे; और शिल्प ( कारीगरी ), गायन, वादन एवं चारण, भाट आदि का कार्य करे ।

( ४ ) गृहस्थ अपनी परम्परा के अनुकूल कार्यों द्वारा जीविकोपार्जन करे; सगोत्र तथा असगोत्र समाज में विवाह करे; ऋतुगामी हो; देव, पितर, अतिथि और भृत्यजनों को देकर सबसे अन्त में भोजन करे ।

( ५ ) ब्रह्मचारी का धर्म है कि वह नियमित स्वाध्याय करे; अग्निहोत्र रचे; नित्य

**(१) वानप्रस्थस्य ब्रह्मचर्यं भूमौ शय्या जटाऽजिनधारणमग्निहोत्राभिषेकौ देवतापित्र्यतिथिपूजा वन्यश्चाहारः ।**

**(२) परिव्राजकस्य संयतेन्द्रियत्वमनारम्भो निष्किञ्चनत्वं सङ्गत्यागो भैक्षमनेकत्रारण्यवासो बाह्याभ्यन्तरं च शौचम् ।**

**(३) सर्वेषामहिंसा सत्यं शौचमनसूयाऽऽनृशंस्यं क्षमा च ।**

**(४) स्वधर्मः स्वर्गायानन्त्याय च । तस्यातिक्रमे लोकः सङ्करादुच्छिद्येत ।**

**(५) तस्मात्स्वधर्मं भूतानां राजा न व्यभिचारयेत् ।**
**स्वधर्मं संदधानो हि प्रेत्य चेह च नन्दति ॥**

**(६) व्यवस्थितार्यमर्यादः कृतवर्णाश्रमस्थितिः ।**
**त्रय्या हि रक्षितो लोकः प्रसीदति न सीदति ॥**

इति कौटिलीयार्थशास्त्रे विनयाधिकारिके प्रथमाधिकारणे विद्यासमुद्देशे त्रयीस्थापना द्वितीयोऽध्यायः ।

—: ० :—

---

स्नान करे; भिक्षाटन करे; जीवनपर्यन्त गुरु के समीप रहे; गुरु की अनुपस्थिति में गुरुपुत्र अथवा अपने किसी समान शाखाध्यायी के निकट रहे ।

( १ ) वानप्रस्थी का धर्म है : ब्रह्मचर्यपूर्वक रहना; भूमि पर शयन करना; जटा, मृगचर्म को धारण किये रहना; अग्निहोत्र तथा प्रतिदिन स्नान करना; देव, पितर एवं अभ्यागतों की सेवा-पूजा करना और वन के कन्द-मूल-फल पर निर्वाह करना ।

( २ ) संन्यासी का धर्म है : जितेन्द्रिय होना; वह किसी भी सांसारिक कार्य को न करे; निष्किचन बना रहे; एकाकी रहे; प्राणरक्षा मात्र के लिए स्वल्प आहार करे; समाज में न रहे; जंगल में भी एक ही स्थान पर न रहता रहे; मन, वचन, कर्म से अपना भीतर तथा बाहर पवित्र रखे ।

( ३ ) प्रत्येक वर्ण और प्रत्येक आश्रम का धर्म है कि वह किसी भी प्रकार की हिंसा न करे; सत्य बोले; पवित्र बना रहे; किसी से ईर्ष्या न करे; दयावान् और क्षमाशील बना रहे ।

( ४ ) अपने धर्म का पालन करने से स्वर्ग और मोक्ष की प्राप्ति होती है । उसका पालन न करने से वर्ण तथा कर्म में संकरता आ जाती है, जिससे लोक का नाश हो जाता है ।

( ५ ) इसलिए राजा का कर्तव्य है कि वह प्रजा को धर्म और कर्म मार्ग से भ्रष्ट न होने दे । अपनी प्रजा को धर्म और कर्म में प्रवृत्त रखने वाला राजा लोक और परलोक में सुखी रहता है ।

( ६ ) पवित्र आर्यमर्यादा में अवस्थित, वर्णाश्रमधर्म में नियमित और त्रयी धर्म से रक्षित प्रजा दुखी नहीं होती, सदा सुखी रहती है ।

विनयाधिकारिक प्रथम अधिकरण में दूसरा अध्याय समाप्त ।

—: ० :—

प्रकरण १

अध्याय ३

# वार्तादण्डनीतिस्थापना

(१) कृषिपाशुपाल्ये वाणिज्या च वार्ता। धान्यपशुहिरण्यकुप्यविष्टि-प्रदानादौपकारिकी। तया स्वपक्षं परपक्षं च वशीकरोति कोशदण्डाभ्याम्।

(२) आन्वीक्षकीत्रयीवार्तानां योगक्षेमसाधनो दण्डः। तस्य नीति-र्दण्डनीतिः। अलब्धलाभार्था; लब्धपरिरक्षणी; रक्षितविवर्धनी; वृद्धस्य तीर्थेषु प्रतिपादनी च।

(३) तस्यामायत्ता लोकयात्रा। तस्माल्लोकयात्रार्थी नित्यमुद्यतदण्डः स्यात्। न ह्येवंविधं वशोपनयनमस्ति भूतानां यथा दण्ड इत्याचार्याः।

(४) नेति कौटिल्यः। तीक्ष्णदण्डो हि भूतानामुद्वेजनीयः। मृदुदण्डः परिभूयते। यथार्हदण्डः पूज्यः। सुविज्ञातप्रणीतो हि दण्डः प्रजा धर्मार्थ-कामैर्योजयति।

## विद्या-विषयक विचार : वार्ता और दण्डनीति

( १ ) कृषि, पशुपालन और व्यापार, ये वार्ताविद्या के विषय हैं। यह विद्या, धान्य, पशु, हिरण्य, ताम्र आदि खनिज पदार्थ और नौकर-चाकर आदि की देने वाली परम उपकारिणी है। इसी विद्या से उपार्जित कोश और सेना के बल पर राजा स्वपक्ष तथा परपक्ष को वश में कर लेता है।

( २ ) आन्वीक्षकी, त्रयी और वार्ता, इन सभी विद्याओं की सुख-समृद्धि दण्ड पर निर्भर है। दण्ड ( शासन ) को प्रतिपादित करने वाली नीति ही दण्डनीति कह-लाती है। वही अप्राप्त वस्तुओं को प्राप्त कराती है; प्राप्त वस्तुओं की रक्षा करती है; रक्षित वस्तुओं की वृद्धि करती है और वही संवर्द्धित वस्तुओं को समुचित कार्यों में लगाने का निर्देश करती है। उसी पर संसार की सारी लोकयात्रा निर्भर है। इस-लिए लोक को समुचित मार्ग पर ले चलने की इच्छा रखने वाला राजा सदा ही उद्यतदण्ड ( दण्ड देने के लिए प्रस्तुत ) रहे।

( ३ ) पुरातन आचार्यों का अभिमत है कि 'दण्ड के अतिरिक्त कोई दूसरा उपाय नहीं है, जिससे सभी प्राणियों को सहज ही वश में किया जा सके'।

( ४ ) किन्तु आचार्य कौटिल्य इस युक्ति से सहमत नहीं हैं। उनका कहना है कि 'कठोर दण्ड देने वाले राजा ( निष्ठुर शासक ) से सभी प्राणी उद्विग्न हो उठते

**(१) दुष्प्रणीतः कामक्रोधाभ्यामज्ञानाद्वानप्रस्थपरिव्राजकानपि कोपयति, किमङ्ग पुनर्गृहस्थान्। अप्रणीतो हि मात्स्यन्यायमुद्भावयति। बलीयानबलं हि ग्रसते दण्डधराभावे। तेन गुप्तः प्रभवतीति।**

**(२) चतुर्वर्णाश्रमो लोको राज्ञा दण्डेन पालितः।**
**स्वधर्मकर्माभिरतो वर्तते स्वेषु वेश्मसु॥**

इति कौटिलीयार्थशास्त्रे विनयाधिकारिके प्रथमाधिकरणे विद्यासमुद्देशे वार्त्तास्थापना दण्डनीतिस्थापना च तृतीयोऽध्यायः।

—: ० :—

---

हैं; किन्तु दण्ड में ढिलाई कर देने से भी लोक, राजा की अवहेलना करने लगता है। इसलिए राजा को समुचित दण्ड देने वाला होना चाहिए।'

( १ ) भली भाँति सोच-समझ कर प्रयुक्त दण्ड प्रजा को धर्म, अर्थ और काम में प्रवृत्त करता है। काम-क्रोध के वशीभूत होकर अज्ञानतापूर्वक अनुचित रीति से प्रयुक्त किया हुआ दण्ड, वानप्रस्थ और परिव्राजक जैसे निःस्पृह व्यक्तियों को भी कुपित कर देता है; फिर गृहस्थलोगों पर ऐसे दण्ड की क्या प्रतिक्रिया होगी, सोचा ही नहीं जा सकता है ! इसके विपरीत, यदि दण्ड से व्यवस्था सर्वथा ही तोड़ दी जाय तो उसका कुप्रभाव यह होगा कि जैसे छोटी मछली को बड़ी मछली खा जाती है, वैसे ही बलवान् व्यक्ति, निर्बल व्यक्ति का रहना दूभर कर देगा। दण्ड-व्यवस्था के अभाव में सर्वत्र ही अराजकता फैल जाती है और निर्बल को बलवान् सताने लगता है; किन्तु दण्डधारी राजा से रक्षित दुर्बल भी बलवान् बना रहता है।

(२) राजाकी दण्ड-व्यवस्था से रक्षित चारों वर्ण-आश्रम, सारा लोक, अपने-अपने धर्मकर्मों में प्रवृत्त होकर निरन्तर अपनी-अपनी मर्यादा पर बने रहते हैं।

विनयाधिकारिक प्रथम अधिकरण में तीसरा अध्याय समाप्त।

—: ० :—

| प्रकरण २ | |
|---|---|
| अध्याय ४ | |

# वृद्ध-संयोगः

(१) तस्माद्दण्डमूलास्तिस्रो विद्याः। विनयमूलो दण्डः प्राणभृतां योगक्षेमावहः।

(२) कृतकः स्वाभाविकश्च विनयः। क्रिया हि द्रव्यं विनयति नाद्रव्यम्। शुश्रूषाश्रवणग्रहणधारणविज्ञानोहापोहतत्त्वाभिनिविष्टबुद्धिं विद्या विनयति नेतरम्।

(३) विद्यानां तु यथास्वमाचार्यप्रामाण्याद्विनयो नियमश्च।

(४) वृत्तचौलकर्मा लिपिं संख्यानं चोपयुञ्जीत। वृत्तोपनयनस्त्रयीमान्वीक्षकीं च शिष्टेभ्यः, वार्त्तामध्यक्षेभ्यः, दण्डनीतिं वक्तृप्रयोक्तृभ्यः।

(५) ब्रह्मचर्यं चाषोडशाद्वर्षात्। अतो गोदानं दारकर्म च। अस्य नित्यश्च विद्यावृद्धसंयोगो विनयवृद्ध्यर्थं तन्मूलत्वाद्विनयस्य।

## वृद्धजनों की संगति

( १ ) यही कारण है कि आन्वीक्षकी, त्रयी और वार्ता, इन तीनों विद्याओं का अस्तित्व दण्डनीति पर आधारित है। शास्त्रविहित उचित रीति से प्रयुक्त दण्ड प्रजा के योगक्षेम का साधक होता है।

( २ ) विनय ( शिक्षा ) दो प्रकार का होता है : १. कृतक ( कृत्रिम, बनावटी, नैमित्तिक ) और २. स्वाभाविक ( स्वतःसिद्ध )। शिक्षा सुपात्र को ही योग्य बना सकती है, अपात्र को नहीं। विद्या से वही योग्य हो सकते हैं, जो कि शुश्रूषा, श्रवण, ग्रहण, धारण, विज्ञान, ऊहापोह ( तर्क-वितर्क ) में विवेक तथा बुद्धि से काम लेते हैं।

( ३ ) विभिन्न विद्याओं के विभिन्न आचार्यों के मतानुसार ही शिष्य का शिक्षण और नियमन होना चाहिए।

( ४ ) मुण्डन-संस्कार के बाद वर्णमाला और अङ्कमाला का अभ्यास करे। उपनयन के बाद सदाचारशील विद्वान् आचार्यों से त्रयी तथा आन्वीक्षकी, विभागीय अध्यक्षों से वार्ता और वक्ता-प्रयोक्ता विशेषज्ञों (सन्धि, विग्रह, यान, आसन, द्वैधीभाव आदि के आचार्यों) से दण्डनीति की शिक्षा ग्रहण करे।

( ५ ) सोलह वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य का पालन करे। तदनन्तर समावर्तन संस्कार ( केशान्त कर्म ) और विवाह करे। विवाह के बाद अपने विनय ( शिक्षा ) की वृद्धि

**(१) पूर्वमहर्भागं हस्त्यश्वरथप्रहरणविद्यासु विनयं गच्छेत्। पश्चिममितिहासश्रवणे। पुराणमितिवृत्तमाख्यायिकोदाहरणं धर्मशास्त्रमर्थशास्त्रं चेतीतिहासः। शेषमहोरात्रभागमपूर्वग्रहणं गृहीतपरिचयं च कुर्यात्। अगृहीतानामाभीक्ष्ण्यश्रवणं च।**

**(२) श्रुताद्धि प्रज्ञोपजायते; प्रज्ञाया योगो योगादात्मवत्तेति विद्यासामर्थ्यम्।**

**(३) विद्याविनीतो राजा हि प्रजानां विनये रतः।**
**अनन्यां पृथिवीं भुङ्क्ते सर्वभूतहिते रतः॥**

इति कौटिलीयार्थशास्त्रे विनयाधिकारिके प्रथमाधिकरणे
वृद्धसंयोगः चतुर्थोऽध्यायः।

—: ० :—

---

के लिए सदा ही विद्यावृद्ध पुरुषों का सहवास करे, क्योंकि सारा विनय उन्हीं पर निर्भर है।

( १ ) दिन का पहिला भाग हाथी, घोड़ा, रथ, अस्त्र-शस्त्र आदि विद्याओं की शिक्षा में बिताये। दिन के दूसरे भाग को इतिहास सुनने में लगाये। पुराण, इतिवृत्त, आख्यायिका, उदाहरण (मीमांसा), धर्मशास्त्र और अर्थशास्त्र, ये सभी विषय इतिहास हैं। दिन और रात के बाकी बचे समय में नये ज्ञान का अर्जन और अधीत ज्ञान का मनन-चिन्तन करे। जो विषय एक बार सुनने में बुद्धिस्थ न हो सके, उसको बार-बार सुने।

( २ ) क्योंकि शास्त्र-श्रवण से बुद्धि का विकास होता है; उससे योगशास्त्रों में रुचि और योग से आत्मबल प्राप्त होता है। यही विद्या का सुपरिणाम है।

( ३ ) जो विद्वान् राजा प्राणिमात्र की हितकामना में लगा रहता है और प्रजा के शासन तथा शिक्षण में तत्पर रहता है, वह चिरकाल तक पृथिवी का निर्बाध शासन करता है।

विनयाधिकारिक प्रथम अधिकरण में चौथा अध्याय समाप्त।

—: ० :—

| प्रकरण ३ |
|---|
| अध्याय ५ |

# इन्द्रिय-जयः अरिषड्वर्गत्यागः

(१) विद्याविनयहेतुरिन्द्रियजयः; कामक्रोधलोभमानमदहर्षत्यागात्कार्यः। कर्णत्वगक्षिजिह्वाघ्राणेन्द्रियाणां शब्दस्पर्शरूपरसगन्धेष्वविप्रतिपत्तिरिन्द्रियजयः।

(२) शास्त्रार्थानुष्ठानं वा। कृत्स्नं हि शास्त्रमिदमिन्द्रियजयः। तद्विरुद्धवृत्तिरवश्येन्द्रियश्चातुरन्तोऽपि राजा सद्यो विनश्यति। यथा दाण्डक्यो नाम भोजः कामाद् ब्राह्मणकन्यामभिमन्यमानः सबन्धुराष्ट्रो विननाश। करालश्च वैदेहः। कोपाज्जनमेजयो ब्राह्मणेषु विक्रान्तस्तालजङ्घश्च भृगुषु। लोभादैलश्चातुर्वर्ण्यमत्याहारयमाणः सौवीरश्चाजबिन्दुः। मानाद्रावणः परदारानप्रयच्छन्। दुर्योधनो राज्यादंशं च। मदाद् डम्भोद्भवो भूताव-

---

## काम-क्रोधादि छह शत्रुओं का परित्याग

( १ ) विद्या और विनय का हेतु इन्द्रियजय है; अतः काम, क्रोध, लोभ, मान, मद और हर्ष के त्याग से इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करनी चाहिए। कान, त्वचा, नेत्र, जीभ और नासिका को उनके विषयों : शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध में प्रवृत्त न होने देना ही इन्द्रियजय कहलाता है।

( २ ) अथवा शास्त्रों में प्रतिपादित कर्तव्यों के सम्यक् अनुष्ठान को ही इन्द्रियजय कहते हैं। सारे शास्त्रों का मूल कारण इन्द्रियजय है। शास्त्रविहित कर्तव्यों के विपरीत आचरण करने वाला इन्द्रिय-लोलुप राजा सारी पृथिवी का अधिपति होता हुआ भी शीघ्र ही नष्ट हो जाता है। उदाहरणस्वरूप भोजवंशीय दाण्डक्य नामक राजा कामवश ब्राह्मणकन्या का अपहरण करने के अपराध में, उसके पिता के शाप से, सपरिवार एवं सराष्ट्र विनष्ट हो गया। यही गति विदेह देश के राजा कराल की भी हुई। क्रोधवश राजा जनमेजय भी ब्राह्मणों से कलह कर बैठा और वह भी उनके शाप से नष्ट हो गया। इसी प्रकार भृगुवंशियों से कलह करने पर तालजंघ की भी दुर्गति हुई। लोभाभिभूत होकर इला का पुत्र पुरूरवा, चारों वर्णों से अत्याचारपूर्वक धन का अपहरण करने के कारण, उनके अभिशाप से मारा गया। यही हाल सौवीर देश के राजा अजबिन्दु का भी हुआ। अभिमानी रावण पर-पत्नी के अपहरण के अपराध से और दुर्योधन अपने भाइयों को राज्य का भाग न देने के अन्याय से मारे

मानी हैहयश्चार्जुनः। हर्षाद्वातापिरगस्त्यमत्यासादयन्वृष्णिसंघश्च द्वैपायनमिति।

(१) एते चान्ये च बहवः शत्रुषड्वर्गमाश्रिताः।
सबन्धुराष्ट्रा राजानो विनेशुरजितेन्द्रियाः॥
शत्रुषड्वर्गमुत्सृज्य जामदग्न्यो जितेन्द्रियः॥
अम्बरीषश्च नाभागो बुभुजाते चिरं महीम्॥

इति कौटिलीयार्थशास्त्रे विनयाधिकारिके प्रथमेऽधिकरणे इन्द्रियजये अरिषड्वर्गत्यागः पञ्चमोऽध्यायः।

—: ० :—

---

गये। मदोन्मत्त राजा डम्भोद्भव अपनी प्रजा का तिरस्कार करता रहा; अन्त में नर-नारायण के साथ युद्ध करते हुए वह भी विनाश को प्राप्त हुआ। इसी कारण हैहयराज अर्जुन, परशुराम के हाथ से मारा गया। हर्ष के वशीभूत होकर वातापि नाम का असुर, अगस्त्य ऋषि के साथ प्रवञ्चना करते हुए और यादवसंघ, द्वैपायन ऋषि के साथ कपट के अपराध में शापवश मृत्युमुख में जा पहुँचे।

( १ ) कामादि छह शत्रुओं के वश में होकर, ऊपर गिनाये गए राजाओं के अतिरिक्त दूसरे भी बहुत से राजा, सबन्धु-बान्धव एवं सराज्य नष्ट हो गये। किन्तु जामदग्न्य ( परशुराम ), अम्बरीष और नाभाग ( नभाग का पुत्र ) जैसे जितेन्द्रिय राजाओं ने चिरकाल तक इस पृथिवी का निष्कण्टक राज्य भोगा।

विनयाधिकारिक प्रथम अधिकरण में पाँचवाँ अध्याय समाप्त।

—: ० :—

प्रकरण ३

अध्याय ६

# राजर्षिवृत्तम्

(१) तस्मादरिषड्वर्गत्यागेनेन्द्रियजयं कुर्वीत। वृद्धसंयोगेन प्रज्ञां, चारेण चक्षुरुत्थानेन योगक्षेमसाधनं, कार्यानुशासनेन स्वधर्मस्थापनं, विनयं विद्योपदेशेन, लोकप्रियत्वमर्थसंयोगेन, हितेन वृत्तिम्।

(२) एवं वश्येन्द्रियः परस्त्रीद्रव्यहिंसाश्च वर्जयेत्। स्वप्नं लौल्यमनृतमुद्धतवेषत्वमनर्थसंयोगं च; अधर्मसंयुक्तमानर्थसंयुक्तं च व्यवहारम्।

(३) धर्मार्थाविरोधेन कामं सेवेत। न निःसुखः स्यात्। समं वा त्रिवर्गमन्योन्यानुबन्धम्। एको ह्यत्यासेवितो धर्मार्थकामानामात्मानमितरौ च पीडयति।

## साधु-स्वभाव राजा की जीवनचर्या

( १ ) इसलिए, काम-क्रोधादि छहों शत्रुओं का सर्वथा परित्याग करके इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करे। विद्वान् पुरुषों की सङ्गति में रहकर बुद्धि का विकास करे। गुप्तचरों द्वारा स्वराष्ट्र एवं परराष्ट्र के वृत्तान्त को अवगत करे। उद्योग के द्वारा राज्य के योग-क्षेम का सम्पादन करे। राजकीय नियमों द्वारा अपने-अपने धर्म पर दृढ़ बने रहने के लिए प्रजा पर नियन्त्रण रखे। शिक्षा के प्रचार-प्रसार से प्रजा को विनम्र और शिक्षित बनावे। प्रजाजनों को धन-सम्मान प्रदान कर अपनी लोकप्रियता को बनाये रखे। दूसरों का हित करने में उत्सुक रहे।

( २ ) इस प्रकार इन्द्रियों को वश में रखता हुआ वह ( राजा ) पराई स्त्री, पराया धन और हिंसाप्रवृति को सर्वथा त्याग दे। कुसमय शयन करना, चञ्चलता, झूठ बोलना, अविनीत वृत्ति बनाये रखना, इस प्रकार के आचरणों को और इस प्रकार के आचरण वाले लोगों की सङ्गति को वह छोड़ दे। उसको चाहिए कि वह अधर्माचरण और अनर्थकारी व्यवहार का भी परित्याग कर दे।

( ३ ) काम का भी वह सेवन करे; किन्तु उससे धर्म और अर्थ को किसी प्रकार की क्षति न पहुँचे। सर्वथा सुखरहित जीवन-यापन न करे। परस्पर अनुबद्ध धर्म, अर्थ और काम, इस त्रिवर्ग का सन्तुलित उपभोग करे। इस त्रिवर्ग का असन्तुलित उपभोग बड़ा दुःखदायी सिद्ध होता है।

**(१) अर्थ एव प्रधान इति कौटिल्यः; अर्थमूलौ हि धर्मकामाविति।**

**(२) मर्यादां स्थापयेदाचार्यानमात्यान् वा। य एनमपायस्थानेभ्यो वारयेयुः। छायानालिकाप्रतोदेन वा रहसि प्रमाद्यन्तमभितुदेयुः।**

**(३) सहायसाध्यं राजत्वं चक्रमेकं न वर्तते।**
**कुर्वीत सचिवांस्तस्मात्तेषां च शृणुयान्मतम् ॥**

इति कौटिलीयार्थशास्त्रे विनयाधिकारिके प्रथमाधिकरणे इन्द्रियजये राजर्षिवृत्तं षष्ठोऽध्यायः।

—: ० :—

---

( १ ) आचार्य कौटिल्य का अभिमत है कि 'धर्म, अर्थ और काम, इन तीनों में अर्थ प्रधान है, धर्म और काम अर्थ पर निर्भर हैं'।

( २ ) गुरुजन और अमात्यवर्ग राजा की मर्यादा को निर्धारित करें। वे ही राजा को अनर्थकारी कार्यों से रोकते रहें। यदि वह एकान्त में प्रमाद करता हुआ बेसुध हो तो समय-सूचक यन्त्र द्वारा अथवा घंटा आदि बजाकर उसको उद्‌बुद्ध करें।

( ३ ) एक पहिये की गाड़ी की भाँति राजकाज भी बिना सहायता-सहयोग से नहीं चलाया जा सकता है। इसलिए राजा को चाहिए कि वह सुयोग्य अमात्यों की नियुक्ति कर उनके परामर्शों को हृदयंगम करे।

विनयाधिकारिक प्रथम अधिकरण में छठवाँ अध्याय समाप्त।

—: ० :—

प्रकरण ३ | अध्याय ७

# अमात्यनियुक्तिः

(१) सहाध्यायिनोऽमात्यान् कुर्वीत, दृष्टशौचसामर्थ्यत्वादिति भारद्वाजः। ते ह्यस्य विश्वास्या भवन्तीति।

(२) नेति विशालाक्षः। सहक्रीडितत्वात् परिभवन्त्येनम्। ये ह्यस्य गुह्यसधर्माणस्तानमात्यान् कुर्वीत, समानशीलव्यसनत्वात्। ते ह्यस्य मर्मज्ञभयान्नापराध्यन्तीति।

(३) साधारण एष दोष इति पराशरः। तेषामपि मर्मज्ञभयाकृताकृतान्यनुवर्तेत।

(४) यावद्भ्यो गुह्यमाचष्टे जनेभ्यः पुरुषाधिपः।
अवशः कर्मणा तेन वश्यो भवति तावताम्॥

## अमात्यों की नियुक्ति

( १ ) आचार्य भारद्वाज का अभिमत है कि 'राजा, अपने सहपाठियों को अमात्य पद पर नियुक्त करे; क्योंकि उनके हृदय की पवित्रता से वह सुपरिचित होता है; उनकी कार्यक्षमता को भी वह जान चुका होता है। ऐसे ही अमात्य राजा के विश्वासपात्र होते हैं'।

( २ ) आचार्य विशालाक्ष का कहना है कि 'ऐसा उचित नहीं। एक साथ खेलने, तथा उठने-बैठने के कारण सहपाठी अमात्य राजा का तिरस्कार कर सकते हैं। इसलिए अमात्य उनको बनाना चाहिए जो कि गुप्तकार्यों में राजा का साथ देते रहे हों। समान शील और समान व्यसन होने के कारण ऐसे लोग गुप्त बातों का भेद खुल जाने के भय से, राजा का अपमान नहीं करते हैं'।

( ३ ) आचार्य पराशर के मत से आचार्य विशालाक्ष की युक्तियाँ दोषपूर्ण हैं। पराशर का कहना है कि यह बात तो दोनों ही पक्षों पर एक समान चरितार्थ होती है। ऐसा करने से यह भी तो संभव है कि गुप्त बातों का भेद खुल जाने के भय से राजा ही अमात्य की कठपुतली बन जाय ! क्योंकि :

( ४ ) राजा जिन लोगों से जितना ही अपनी गुप्त बातें प्रकट करता है, उतना ही शक्ति से क्षीण होकर वह उनके वश में हो जाता है।

**(१) य एनमापत्सु प्राणाबाधयुक्तास्वनुगृह्णीयुस्तानमात्यान् कुर्वीत, दृष्टानुरागत्वादिति ।**

**(२) नेति पिशुनः । भक्तिरेषा न बुद्धिगुणः । संख्यातार्थेषु कर्मसु नियुक्ता ये यथादिष्टमर्थं सविशेषं वा कुर्युस्तानमात्यान् कुर्वीत, दृष्टगुणत्वादिति ।**

**(३) नेति कौणपदन्तः । अन्यैरमात्यगुणैरयुक्ता ह्येते । पितृपैतामहानमात्यान् कुर्वीत, दृष्टापदानत्वात् । ते ह्येनमपचरन्तमपि न त्यजन्ति, सगन्धत्वात् । अमानुषेष्वपि चैतद् दृश्यते—गावो ह्यसगन्धं गोगणमतिक्रम्य सगन्धेष्वेवावतिष्ठन्ते इति ।**

**(४) नेति वातव्याधिः । ते ह्यस्य सर्वमपगृह्य स्वामिवत् प्रचरन्तीति । तस्मान्नीतिविदो नवानमात्यान् कुर्वीत । नवास्तु यमस्थाने दण्डधरं मन्यमाना नापराध्यन्तीति ।**

---

( १ ) इसलिए जो पुरुष राजा की प्राणघातक आपत्तियों में रक्षा करें, उनको अमात्य नियुक्त करना चाहिए । उनके अनुराग की परीक्षा राजा कर चुका होता है ।

( २ ) आचार्य पिशुन इसको भक्ति कहते हैं । उनका कहना है कि 'प्राणों की चिन्ता न करके राजा की सहायता करना भक्ति है, सेवाधर्म है; वह बुद्धि का प्रमाण नहीं; जो कि अमात्य का सर्वोच्च गुण है । इसलिए अमात्य पद पर उन्हीं को नियुक्त करना चाहिए जो कि विशिष्ट राजकीय कार्यों पर नियुक्त होकर अपने कार्यों को विशेष योग्यता के साथ संपन्न करके दिखा दें, क्योंकि इस ढंग पर उनके बुद्धि-वैशिष्ट्य की परीक्षा हो जाती है' ।

( ३ ) आचार्य कौणपदन्त उक्त मत को नहीं मानते । उनका कहना है कि 'ऐसे लोग अमात्योचित गुणों से शून्य होते हैं । अमात्यपद जिनको वंश-परम्परा से उपलब्ध रहा हो, उन्हीं को इस पद पर नियुक्त करना चाहिए । वे ही उसकी सम्पूर्ण रीति-नीति से सुपरिचित होते हैं । यही कारण है कि वे अपना अपकार होने पर भी, परम्परागत सम्बन्ध के कारण राजा को नहीं छोड़ते । यह बात पशु-पक्षियों तक में देखी जाती है : गाय, अपरिचित गोष्ठ को छोड़कर परिचित गोष्ठ में ही जाकर ठहरती है' ।

( ४ ) आचार्य वातव्याधि, आचार्य कौणपदन्त के अभिमत के समर्थक नहीं हैं । उनकी मान्यता है कि 'इस प्रकार के अमात्य; राजा के सर्वस्व को अपने अधीन करके, राजा के समान स्वतन्त्र वृत्ति वाले हो जाते हैं । इसलिए नीतिकुशल राजा नये व्यक्तियों को ही अमात्य नियुक्त करे । नये अमात्य, दण्डधारी राजा को यम का दूसरा अवतार समझ कर, उसकी कभी भी अवमानना नहीं करते हैं ।'

**(१) नेति बाहुदन्तीपुत्रः। शास्त्रविददृष्टकर्मा कर्मसु विषादं गच्छेत्। अभिजनप्रज्ञाशौचशौर्यानुरागयुक्तानमात्यान् कुर्वीत, गुणप्राधान्यादिति।**

**(२) सर्वमुपपन्नमिति कौटिल्यः। कार्यसामर्थ्याद्धि पुरुषसामर्थ्यं कल्प्यते सामर्थ्यतश्च।**

**(३) विभज्यामात्यविभवं देशकालौ च कर्म च।**
**अमात्याः सर्व एवैते कार्याः स्युर्न तु मन्त्रिणः॥**

इति विनयाधिकारिके प्रथमाऽधिकरणेऽमात्योत्पत्तिनामकः सप्तमोऽध्यायः।

—: ० :—

---

( १ ) आचार्य बाहुदन्तीपुत्र ( इन्द्र ) के मत से यह भी ठीक नहीं है। वे कहते हैं 'नीतिशास्त्रपारंगत, किन्तु क्रियात्मक अनुभव से शून्य व्यक्ति राजकार्यों को नहीं कर सकता है। इसलिए जो लोग कुलीन, बुद्धिमान, विश्वासपात्र, वीर और राजभक्त हों, उनको अमात्य पद पर नियुक्त करना चाहिए। उनमें गुणों की प्रधानता होती है।'

( २ ) आचार्य कौटिल्य के मतानुसार, भारद्वाज से लेकर बाहुदन्तीपुत्र तक की विचार-परम्परा, अपने-अपने स्थान पर ठीक है। 'किसी भी पुरुष के सामर्थ्य की स्थिति उसके कार्यों की सफलता पर निर्भर है, और उसकी यह कार्यक्षमता उसकी विद्या-बुद्धि के बल पर ही आँकी जा सकती है।' इसलिए :

( ३ ) राजा को चाहिए कि वह सहपाठी आदि की भी सर्वथा अवहेलना न करे। उसके लिए वह परमावश्यक है कि वह विद्या, बुद्धि, साहस, गुण, दोष, देश, काल और पात्र का विचार करके ही अमात्यों की नियुक्ति करे; किन्तु उन्हें अपना मन्त्री कदापि न बनाये।

विनयाधिकारिक प्रथम अधिकरण में सातवाँ अध्याय समाप्त।

—: ० :—

प्रकरण ४ | अध्याय ८

# मन्त्रि-पुरोहितयोर्नियुक्तिः

**(१) जानपदोऽभिजातः स्ववग्रहः कृतशिल्पश्चक्षुष्मान् प्राज्ञो धारयिष्णुर्दक्षो वाग्मी प्रगल्भः प्रतिपत्तिमानुत्साहप्रभावयुक्तः क्लेशसहः शुचिर्मैत्रो दृढभक्तिः शीलबलारोग्यसत्त्वसंयुक्तः स्तम्भचापल्यवर्जितः संप्रियो वैराणामकर्तेत्यमात्यसंपत्। अतः पादार्धगुणहीनौ मध्यमावरौ।**

**(२) तेषां जनपदमवग्रहं चाप्ततः परीक्षेत, समानविद्येभ्यः शिल्पं शास्त्रचक्षुष्मत्तां च; कर्मारम्भेषु प्रज्ञां धारयिष्णुतां दाक्ष्यं च; कथायोगेषु वाग्मित्वं प्रागल्भ्यं प्रतिभानवत्त्वं च; आपद्युत्साहप्रभावौ क्लेशसहत्वं च; संव्यवहाराच्छौचं मैत्रतां दृढभक्तित्वं च; संवासिभ्यः शीलबलारोग्यसत्त्वयोगमस्तम्भमचापल्यं च; प्रत्यक्षतः संप्रियत्वमवैरित्वं च।**

---

## मन्त्री और पुरोहित की नियुक्ति

**मन्त्री की योग्यता :**

( १ ) स्वदेशोत्पन्न, कुलीन, अवगुणशून्य, निपुण सवार एवं ललितकलाओं का ज्ञाता, अर्थशास्त्र का विद्वान्, बुद्धिमान्, स्मरणशक्तिसम्पन्न, चतुर, वाक्पटु, प्रगल्भ ( दबंग ), प्रतिवाद तथा प्रतिकार करने में समर्थ, उत्साही, प्रभावशाली, सहिष्णु, पवित्र, मित्रता के योग्य, दृढ़, स्वामिभक्त, सुशील, समर्थ, स्वस्थ, धैर्यवान्, निरभिमानी, स्थिरप्रकृति, प्रियदर्शी और द्वेषवृत्तिरहित पुरुष प्रधानमन्त्री पद के योग्य है। जिनमें इसके एक-चौथाई या आधी योग्यताएँ हों उन्हें मध्यम या निकृष्ट मन्त्री समझना चाहिए।

( २ ) मन्त्री नियुक्त करने से पूर्व राजा को चाहिए कि वह प्रामाणिक, सत्यवादी एवं आप्त पुरुषों के द्वारा उनके निवासस्थान तथा उनकी आर्थिक स्थिति का; सहपाठियों के माध्यम से उनकी योग्यता तथा शास्त्रप्रवेश का; नये-नये कार्यों में नियुक्त कर उनकी बुद्धि, स्मृति तथा चतुराई का; व्याख्यानों एवं सभाओं के माध्यम से उनकी वाक्पटुता, प्रगल्भता एवं प्रतिभा का; आपत्तियों से उनके उत्साह, प्रभाव तथा सहिष्णुता का; व्यवहार से उनकी पवित्रता, मित्रता एवं दृढ़ स्वामिभक्ति का; सहवासियों एवं पड़ोसियों के माध्यम से उनके शील, बल, स्वास्थ्य, गौरव, अप्रमाद तथा स्थिरवृत्ति का पता लगाये और उनके मधुरभाषी स्वभाव तथा द्वेषरहित प्रकृति की परीक्षा स्वयं राजा करे।

(१) प्रत्यक्षपरोक्षानुमेया हि राजवृत्तिः। स्वयंदृष्टं प्रत्यक्षं, परोपदिष्टं परोक्षं, कर्मसु कृतेनाकृतावेक्षणमनुमेयम्। यौगपद्यात्तु कर्मणामनेकत्वादनेकस्थत्वाच्च देशकालात्ययो मा भूदिति परोक्षममात्यैः कारयेदित्यमात्यकर्म।

(२) पुरोहितमुदितोदितकुलशीलं षडङ्गे वेदे दैवे निमित्ते दण्डनीत्यां चाभिविनीतमापदां दैवमानुषीणाम् अथर्वभिरुपायैश्च प्रतिकर्तारं कुर्वीत। तमाचार्यं शिष्यः, पितरं पुत्रो, भृत्यः स्वामिनमिव चानुवर्तेत।

(३) ब्राह्मणेनैधितं क्षत्रं मन्त्रिमन्त्राभिमन्त्रितम्।
जयत्यजितमत्यन्तं शास्त्रानुगतशस्त्रितम्॥

इति विनयाधिकारिके प्रथमाधिकरणे मन्त्रिपुरोहितयोर्नियुक्तिर्नामाष्टमोऽध्यायः।

—: ० :—

---

( १ ) प्रत्यक्ष, परोक्ष और अनुमेय, राजा के व्यवहार की ये तीन विधियाँ हैं। स्वयं देखा हुआ प्रत्यक्ष, दूसरों के माध्यम से जाना हुआ परोक्ष और सम्पादित कार्यों से किये जाने वाले कार्यों का अनुमान करना ही अनुमेय कहलाता है। कार्यों की विधियाँ और उनके विधान एक जैसे नहीं हैं। राजा उन कार्यों को अकेला नहीं कर सकता है। जिससे कार्यों के सम्पादन में देश-काल का अतिक्रमण न हो, एतदर्थ, अमात्यों के द्वारा परोक्षरूप से राजा उन कार्यों को कराये। इसी हेतु अमात्यों की नियुक्ति और परीक्षा के लिए ऊपर वैसा विधान किया गया है।

## पुरोहित की योग्यता :

( २ ) उच्चकुलोत्पन्न; शील-गुणसम्पन्न; वेद-वेदाङ्गों का ज्ञाता; ज्योतिषशास्त्र, शकुनशास्त्र, दण्डनीति में पारङ्गत; अथर्ववेद में निर्दिष्ट उपायों द्वारा दैवी तथा मानुषी विपत्तियों का प्रतिकार करने वाला; इन योग्यताओं से सम्पन्न पुरोहित को नियुक्त करना चाहिए। जैसे आचार्य के पीछे शिष्य, पिता के पीछे पुत्र और स्वामी के पीछे भृत्य चलता है, वैसे ही राजा को पुरोहित का अनुगामी होना चाहिए।

( ३ ) इस प्रकार ब्राह्मण पुरोहित से संवर्धित, सर्वगुणसम्पन्न योग्य मन्त्रियों के परामर्श से अभिरक्षित और शास्त्रोक्त अनुष्ठानों का आचरण करने वाला राजकुल युद्ध के बिना भी अजेय एवं अलभ्य वस्तुओं को सहज ही में स्वायत्त कर लेता है।

विनयाधिकारिक प्रथम अधिकरण में आठवाँ अध्याय समाप्त।

—: ० :—

प्रकरण ५

अध्याय ९

# उपधाभिः शौचाशौचज्ञानममात्यानाम्

(१) मन्त्रिपुरोहितसखः सामान्येष्वधिकरणेषु स्थापयित्वाऽमात्यानुपधाभिः शोधयेत् ।

(२) पुरोहितमयाज्ययाजनाध्यापने नियुक्तममृष्यमाणं राजावक्षिपेत् । सत्रिभिः शपथपूर्वमेकैकममात्यमुपजापयेत्—अधार्मिकोऽयं राजा, साधु धार्मिकमन्यमस्य तत्कुलीनमवरुद्धं कुल्यमेकप्रग्रहं सामन्तमाटविकमौपपादिकं वा प्रतिपादयामः । सर्वेषामेतद्रोचते, कथं वा तवेति ? प्रत्याख्याने शुचिरिति धर्मोपधा ।

(३) सेनापतिरसत्प्रतिग्रहणावक्षिप्तः सत्त्रिभिरेकैकममात्यमुपजापयेल्लोभनीयेनार्थेन राजविनाशाय—सर्वेषामेतद्रोचते, कथं वा तवेति ? प्रत्याख्याने शुचिरित्यर्थोपधा ।

---

## गुप्त उपायों से अमात्यों के आचरणों की परीक्षा

( १ ) सामान्य पदों पर अमात्यों की नियुक्ति करके, मन्त्री और पुरोहित के सहयोग से राजा, गुप्त उपायों के द्वारा उनके आचरणों की परीक्षा करे ।

( २ ) धर्मोपधा से राजा, पुरोहित को किसी नीच जाति के यहाँ यज्ञ करने तथा पढ़ाने के लिए नियुक्त करे । जब पुरोहित इस कार्य के लिए निषेध करे तो राजा उसको उसके पद से च्युत कर दे । वह पदच्युत पुरोहित गुप्तचर स्त्री-पुरुषों के माध्यम से शपथपूर्वक प्रत्येक अमात्य को राजा से भिन्न कराये । वह कहे 'यह राजा बड़ा अधार्मिक है । हमें चाहिए कि उसके स्थान पर, उसके ही वंशज किसी श्रेष्ठ पुरुष को, किसी धार्मिक व्यक्ति को, समीप के किसी सामन्त को, अथवा किसी जंगल के स्वामी को, या जिसको भी एकमत होकर हम निश्चित कर लें, उसको, नियुक्त करें । मेरे इस प्रस्ताव को सब ने स्वीकार कर लिया है । बताओ, तुम्हारी क्या राय है ?' पुरोहित की यह बात सुनकर यदि अमात्य उसको स्वीकार न करे तो उसे पवित्र हृदय वाला समझना चाहिए । गुप्त धार्मिक उपायों द्वारा अमात्य के हृदय की पवित्रता की परीक्षा को 'धर्मोपधा' कहते हैं ।

( ३ ) अर्थोपधा से राजा, किसी निन्दनीय या अपूज्य व्यक्ति का सत्कार करने के लिए, सेनापति को आदेश दे । राजा की इस बात से जब सेनापति रुष्ट हो जाय

**(१) परिव्राजिका लब्धविश्वासान्तःपुरे कृतसत्कारा महामात्रमेकैक-मुपजपेत्—राजमहिषी त्वां कामयते। कृतसमागमोपाया महानर्थश्चते भवि-ष्यतीति। प्रत्याख्याने शुचिरिति कामोपधा।**

**(२) प्रवहणनिमित्तमेकोऽमात्यः सर्वानमात्यानावाहयेत्। तेनोद्वेगेन राजा तानवरुन्ध्यात्। कापटिकच्छात्रः पूर्वावरुद्धस्तेषामर्थमानावक्षिप्तमेकै-कममात्यमुपजपेत्—असत्प्रवृत्तोऽयं राजा, सहसैनं हत्वाऽन्यं प्रतिपादयामः। सर्वेषामेतद्रोचते, कथं वा तवेति ? प्रत्याख्याने शुचिरिति भयोपधा।**

**(३) तत्र धर्मोपधाशुद्धान् धर्मस्थीयकण्टकशोधनेषु स्थापयेत्, अर्थो-**

---

तो राजा उसको भी पदच्युत कर दे। वह पदच्युत अपमानित सेनापति गुप्तभेदियों द्वारा अमात्य को धन का प्रलोभन देकर उसे पूर्वोक्त विधि से राजा के विनाश के लिए उकसाये। वह कहे 'मेरी इस युक्ति को सभी ने स्वीकार कर लिया है। बताओ, तुम्हारी क्या सम्मति है ?' सेनापति की यह बात सुनकर अमात्य यदि उसका विरोध करे तो समझ लेना चाहिए कि वह पवित्र हृदय वाला है। गुप्त आर्थिक उपायों द्वारा अमात्य के हृदय की पवित्रता की परीक्षा को ही 'अर्थोपधा' कहते हैं।

( १ ) कामोपधा से राजा किसी सन्यासिनी का वेष धारण करने वाली विशेष गुप्तचर स्त्री को अन्तःपुर में ले जाकर उसका अच्छा स्वागत-सत्कार करे और फिर वह एक-एक अमात्य के निकट जाकर कहे 'महामात्य, महारानी जी आप पर आसक्त हैं। आपके समागम के लिए उन्होंने पूरी व्यवस्था कर दी है। इससे आपको यथेष्ट धन भी प्राप्त होगा।' अमात्य यदि उसका विरोध करे तो उसे पवित्रचित्त समझना चाहिए। गुप्त कामसम्बन्धी उपायों द्वारा अमात्य के हृदय की पवित्रता की परीक्षा को ही 'कामोपधा' कहते हैं।

( २ ) भयोपधा से नौका-विहार के लिए एक अमात्य दूसरे अमात्यों को बुलाये; इस प्रस्ताव पर राजा उत्तेजित होकर उन सब को दण्डित कर दे। तदनन्तर राजा द्वारा पहले अपकृत हुआ कपट-वेषधारी छात्र ( छात्र के वेश में गुप्तचर ) उस तिरस्कृत एवं दण्डित अमात्य के निकट जाकर उससे कहे 'यह राजा बहुत ही बुरा है। इसका वध करके हम किसी दूसरे राजा को उसके स्थान पर नियुक्त करें। सभी अमात्यों को यह स्वीकृत है। कहिए, आपकी क्या राय है ?' अमात्य यदि उसका विरोध करे तो उसको शुचिचित्त समझना चाहिए। गुप्तभय सम्बन्धी उपायों द्वारा अमात्य की शुचिता की परीक्षा को ही 'भयोपधा' कहते हैं।

## परीक्षित अमात्यों की नियुक्ति

( ३ ) जो अमात्य धर्मपरीक्षा में खरे उतरें उन्हें धर्मस्थानीय (दीवानी कचहरी)

**पधाशुद्धान् समाहर्तृसन्निधातृनिचयकर्मसु, कामोपधाशुद्धान् बाह्याभ्यन्तर-विहाररक्षासु, भयोपधाशुद्धानासन्नकार्येषु राज्ञः । सर्वोपधाशुद्धान् मन्त्रिणः कुर्यात् । सर्वत्राशुचीन् खनिद्रव्यहस्तिवनकर्मान्तेषूपयोजयेत् ।**

**(१) त्रिवर्गभयसंशुद्धानमात्यान् स्वेषु कर्मसु ।**
**अधिकुर्याद् यथाशौचमित्याचार्या व्यवस्थिताः ।।**

**(२) न त्वेव कुर्यादात्मानं देवीं वा लक्ष्मीश्वरः ।**
**शौचहेतोरमात्यानामेतत् कौटिल्यदर्शनम् ।।**

**(३) न दूषणमदुष्टस्य विषेणेवाम्भसश्चरेत् ।**
**कदाचिद्धि प्रदुष्टस्य नाधिगम्येत भेषजम् ।।**

**(४) कृता च कलुषा बुद्धिरुपधाभिश्चतुर्विधा ।**
**नागत्वाऽन्तर्निवर्तेत स्थिता सत्त्ववतां धृतौ ।।**

---

तथा कण्टकशोधन ( फौजदारी कचहरी ) सम्बन्धी कार्यों में नियुक्त करना चाहिए । अर्थपरीक्षा में उत्तीर्ण अमात्यों को समाहर्ता ( टैक्स कलक्टर ) तथा सन्निधाता ( कोषाध्यक्ष ) के पदों पर रखना चाहिए । कामोपधा में परीक्षित अमात्यों को बाहरी विलास-स्थानों ( विहारों ) तथा भीतरी अन्तःपुर-सम्बन्धी रक्षा का व्यवस्था-भार सौंपना चाहिए । भयपरीक्षा में उत्तीर्ण अमात्यों को राजा अपना अङ्गरक्षक नियुक्त करे । इनके अतिरिक्त जो अमात्य सभी परीक्षाओं में खरे उतरे हों उन्हें मन्त्रिपद पर नियुक्त किया जाना चाहिए; और सभी परीक्षाओं में असफल अमात्यों को खदानों, हाथियों और जङ्गलों आदि की परिश्रम-साध्य व्यवस्था का भार सौंपना चाहिए ।

( १ ) सभी पुरातन अर्थशास्त्रविद् आचार्यों का यही अभिमत है कि 'धर्म, अर्थ, काम और भय द्वारा परीक्षित पवित्र अमात्यों को, उनकी कार्यक्षमता के अनुसार कार्यभार सौंपना चाहिए ।'

( २ ) किन्तु, इस सम्बन्ध में आचार्य कौटिल्य का एक संशोधन यह है कि 'अमात्यों की परीक्षा अवश्य ली जाय; पर उस परीक्षा का माध्यम राजा अपने को तथा रानी को न बनाये ।

( ३ ) क्योंकि कभी-कभी किसी निर्दोष अमात्य को छल-प्रपञ्चयुक्त इन गुप्त-रीतियों से ठगा जाना, पानी में विष घोल देने के समान हो जाता है । सम्भव हो सकता है कि उक्त रीतियों से बिगड़ा हुआ अमात्य फिर कभी भी सुधर न सके । क्योंकि :

( ४ ) छल-छद्म जैसे कपट उपायों के द्वारा ठगे गये चरित्रवान पुरुष की बुद्धि

(१) तस्माद् बाह्यमधिष्ठानं कृत्वा कार्ये चतुर्विधे ।
शौचाशौचममात्यानां राजा मार्गेत सत्त्रिभिः ।।

इति विनयाधिकारिके प्रथमाधिकरणे उपधाभिः शौचाशौच-
ज्ञानममात्यानां नवमोऽध्यायः ।

—: o :—

---

तब तक चैन नहीं लेती, जब तक उसने अभीष्ट को प्राप्त न कर लिया हो ( अर्थात् अपने अपमान का बदला न ले लिया हो ) ।

( १ ) इसलिये सर्वोत्तम यही है कि उक्त चारों उपायों से परीक्षण के लिए राजा, किसी बाह्य वस्तु को माध्यम बनाये और गुप्तचरों द्वारा अमात्यों के चरित्र की परीक्षा करे ।

विनयाधिकारिक प्रथम अधिकरण में नवाँ अध्याय समाप्त ।

—: o :—

| प्रकरण ६ |
|---|
| अध्याय १० |

# गूढपुरुषोत्पत्तिः

(१) उपधाभिः शुद्धामात्यवर्गो गूढपुरुषानुत्पादयेत् । कापटिकोदास्थितगृहपतिवैदेहकतापसव्यञ्जनान् सत्रितीक्ष्णरसदभिक्षुकीश्च ।

(२) परमर्मज्ञः प्रगल्भश्छात्रः कापटिकः । तमर्थमानाभ्यामुत्साह्य मन्त्री ब्रूयात्—राजानं मां च प्रमाणं कृत्वा यस्य यदकुशलं पश्यसि तत्तदानीमेव प्रत्यादिशेति ।

(३) प्रव्रज्याप्रत्यवसितः प्रज्ञाशौचयुक्त उदास्थितः । स वार्ताकर्मप्रदिष्टायां भूमौ प्रभूतहिरण्यान्तेवासी कर्म कारयेत् । कर्मफलाच्च सर्वप्रव्रजितानां ग्रासाच्छादनावसथान्प्रतिविदध्यात् । वृत्तिकामांश्चोपजपेत्—एतेनैव वेषेण राजार्थश्चरितव्यो भक्तवेतनकाले चोपस्थातव्यमिति । सर्वप्रव्रजिताश्च स्वं स्वं वर्गमुपजपेयुः ।

---

## गुप्तचरों की नियुक्ति

### ( स्थायी गुप्तचर )

( १ ) धर्मोपधा आदि उपायों के द्वारा अमात्यवर्ग की परीक्षा कर लेने के अनन्तर राजा गुप्तचरों की नियुक्ति करे। कापटिक, उदास्थित, गृहपतिक, वैदेहक, तापस, सत्री, तीक्ष्ण, रसद और भिक्षुकी आदि अनेक प्रकार के गुप्तचर होते हैं।

( २ ) दूसरों के रहस्यों को जानने वाला, बड़ा प्रगल्भ ( दबंग ) और विद्यार्थी की वेष-भूषा में रहने वाला गुप्तचर 'कापटिक' कहलाता है। इस गुप्तचर को धन, मान और सत्कार से सन्तुष्ट कर मन्त्री उससे कहे 'जिस-किसी की भी तुम हानि होते देखो, राजा को और मुझे प्रमाण मान कर तत्काल ही तुम मुझे सूचित कर दो।'

( ३ ) बुद्धिमान्, सदाचारी, संन्यासी के वेष में रहने वाले गुप्तचर का नाम 'उदास्थित' है। वह अपने साथ बहुत-से विद्यार्थी और बहुत-सा धन लेकर, वहाँ जाकर विद्यार्थियों द्वारा कार्य करवाये, जहाँ कृषि, पशुपालन एवं व्यापार के लिए भूमि नियुक्त है। उस कार्य को करने से जो लाभ हो, उससे वह सब संन्यासियों के भोजन, वस्त्र एवं निवास का प्रबन्ध करे। जो भी इस प्रकार की आजीविका की इच्छा करें, उन्हें सब तरह से अपने वश में कर ले और उनसे कहे 'तुम्हें इसी वेष में राजा का कार्य करना है। जब तुम्हारे वेतन तथा भत्ते का समय आये, यहाँ उपस्थित

**(१) कर्षको वृत्तिक्षीणः प्रज्ञाशौचयुक्तो गृहपतिकव्यञ्जनः। स कृषि-कर्मप्रदिष्टायां भूमाविति समानं पूर्वेण।**

**(२) वाणिजको वृत्तिक्षीणः प्रज्ञाशौचयुक्तो वैदेहकव्यञ्जनः। स वणिक्कर्मप्रदिष्टायां भूमाविति समानं पूर्वेण।**

**(३) मुण्डो जटिलो वा वृत्तिकामस्तापसव्यञ्जनः। स नगराभ्याशे प्रभूतमुण्डजटिलान्तेवासी शाकं यवसमुष्टिं वा मासद्विमासान्तरं प्रकाश-मश्नीयात्, गूढमिष्टमाहारम्। वैदेहकान्तेवासिनश्चैनं समिद्धयोगैरर्चयेयुः। शिष्याश्चास्यावेदयेयुः—असौ सिद्धः सामेधिक इति। समेधाशास्तिभिश्चा-भिगतानामङ्गविद्यया शिष्यसंज्ञाभिश्च कर्माण्यभिजनेऽवसितान्यादिशेदल्प-लाभमग्निदाहं चोरभयं दूष्यवधं तुष्टिदानं विदेशप्रवृत्तिज्ञानम् इदमद्य श्वो वा भविष्यतीदं वा राजा करिष्यतीति।**

---

हो जाना।' दूसरे संन्यासी भी अपने-अपने संप्रदाय के संन्यासियों को इसी प्रकार समझा-बुझा दें।

( १ ) बुद्धिमान्, पवित्र हृदय और गरीब किसान के वेष में रहने वाले गुप्तचर को 'गृहपतिक' कहते हैं। वह कृषिकार्य के लिए नियुक्त भूमि में जाकर 'उदास्थित' गुप्तचर के ही समान कार्य करे।

( २ ) बुद्धिमान्, पवित्र हृदय, गरीब, व्यापारी के वेष में रहने वाला गुप्तचर **'वैदेहक'** है। वह व्यापारकार्य के लिए नियुक्त भूमि में जाकर 'उदास्थित' गुप्तचर की भाँति कार्य करता हुआ रहे।

( ३ ) जीविका के लिए सिर मुँड़ाये या जटा धारण किये हुए, राजा का कार्य करने वाला गुप्तचर ही **'तापस'** है। वह कहीं नगर के समीप ही बहुत से मुंड या जटिल विद्यार्थियों को लेकर रहे और महीने दो महीने तक लोगों के सामने हरा शाक या मुट्ठीभर अनाज खाता रहे; वैसे छिपे तौर पर अपनी इच्छानुसार सुस्वादु भोजन करता रहे। वैदेहक तथा उसके अनुचर 'तापस' गुप्तचर की पूजा-अर्चना करें। शिष्यमंडली घूम-घूम कर यह प्रचार करे कि यह तपस्वी पूर्ण सिद्ध, भविष्य-वक्ता और लौकिक शक्तियों से संपन्न है। अपना भविष्य-फल जानने की इच्छा से आये हुए लोगों की पारिवारिक पहिचान, उनके शारीरिक चिह्नों के माध्यम से तथा अपने शिष्यों के संकेतों के अनुसार बतावे। ऐसा भी बतावे कि इन-इन कार्यों में थोड़ा लाभ का योग है। इसके अतिरिक्त वह, आग लगने, चोरी हो जाने; दुष्ट लोगों के वधस्वरूप इनाम देने; देश-विदेश के फल; यह कार्य आज होगा या कल; या इस कार्य को राजा करेगा; आदि बातें भी उसको बतावे।

**(१) तदस्य गूढाः सत्रिणश्च संवादयेयुः। सत्त्वप्रज्ञावाक्यशक्तिसम्पन्नानां राजभाव्यमनुव्याहरेन्मन्त्रिसंयोगं च। मन्त्री चैषां वृत्तिकर्मभ्यां विप्रयतेत।**

**(२) ये च कारणादभिक्रुद्धास्तानर्थमानाभ्यां शमयेत्, अकारणक्रुद्धान् तूष्णींदण्डेन राजद्विष्टकारिणश्च।**

**(३) पूजिताश्चार्थमानाभ्यां राज्ञा राजोपजीविनाम्।**
**जानीयुः शौचमित्येताः पञ्च संस्थाः प्रकीर्तिताः॥**

इति कौटलीयार्थशास्त्रे विनयाधिकारिके प्रथमाधिकरणे
गूढपुरुषोत्पत्तौ संस्थोत्पत्तिर्नाम दशमोऽध्यायः॥

—: ० :—

---

(१) इस प्रश्नोत्तर प्रसंग में 'तापस' गुप्तचर की दूसरे सत्री आदि गुप्तचर सहायहा करें। प्रश्नकर्ताओं में यदि धीर, बुद्धिमान्, चतुर लोग हों तो उनसे वह, राजा की ओर से, धन प्राप्त होने की बात कहे; मन्त्री के साथ भी उनकी मुलाकात का संयोग बताये। जब मंत्री से इन लोगों की मुलाकात हो तो उचित यह होगा कि ऐसे लोगों को मंत्री धन तथा आजीविका आदि देकर, गुप्तचर की भविष्यवाणी को सच्ची सिद्ध कर दे।

(२) जो लोग किसी कारणवश क्रुद्ध हो गए हों उन्हें धन एवं सम्मान देकर संतुष्ट किया जाय। जो बिना कारण ही क्रुद्ध हों तथा राजा से द्वेष रखते हों, उनका चुपचाप वध करवा डाले।

(३) इस प्रकार धन और मान से राजा द्वारा सम्मानित गुप्तचर तथा अमात्य आदि राजोपजीवी पुरुषों के सद्व्यवहारों को भली-भाँति जान लें। पाँच प्रकार के गुप्तचर पुरुषों की नियुक्ति और उनके कार्यों के विवरण का यही विधान है।

विनयाधिकारिक प्रथम अधिकरण में दसवाँ अध्याय समाप्त।

—: ० :—

| प्रकरण ७ | |
|---|---|
| अध्याय ११ | |

# गूढपुरुषप्रणिधिः

(१) ये चास्य सम्बन्धिनोऽवश्यभर्तव्यास्ते लक्षणमङ्गविद्यां जम्भकविद्यां मायागतमाश्रमधर्मं निमित्तमन्तरचक्रमित्यधीयानाः सत्रिणः संसर्गविद्या वा।

(२) ये जनपदे शूरास्त्यक्तात्मानो हस्तिनं व्यालं वा द्रव्यहेतोः प्रतियोधयेयुस्ते तीक्ष्णाः।

(३) ये बन्धुषु निःस्नेहाः क्रूराश्चालसाश्च ते रसदाः।

(४) परिव्राजिका वृत्तिकामा दरिद्रा विधवा प्रगल्भा ब्राह्मण्यन्तःपुरे कृतसत्कारा महामात्रकुलान्यधिगच्छेत्। एतया मुण्डावृषल्यो व्याख्याताः। इति सञ्चाराः।

## गुप्तचरों की नियुक्ति
## ( भ्रमणशील गुप्तचर )

( १ ) जो राजा के संबंधी न हों; किन्तु जिनका पालन-पोषण करना राजा के लिए आवश्यक हो; जो सामुद्रिक विद्या, ज्योतिष, व्याकरण आदि अंगों का शुभाशुभ फल बताने वाली विद्या; वशीकरण; इन्द्रजाल; धर्मशास्त्र; शकुनशास्त्र; पक्षिशास्त्र; कामशास्त्र तथा तत्संबंधी नाचने-गाने की कला में निपुण हों वे 'सत्री' कहलाते हैं। [ १०वें अध्याय में जिन गुप्तचरों का वर्णन किया गया है वे एक ही स्थान पर रहकर कार्य करने के कारण 'संस्था' कहलाते हैं। इस अध्याय में वर्णित गुप्तचर 'संचार' कहलाते हैं, जो कि घूम-घूम कर कार्य करते हैं। ]

( २ ) अपने देश में रहने वाले ऐसे व्यक्ति, जो द्रव्य के लिए अपने प्राणों की भी परवाह न करके हाथी, बाघ और साँप से भी भिड़ जाते हैं, उन्हें 'तीक्ष्ण' कहते हैं।

( ३ ) अपने भाई-बंधुओं से भी स्नेह न रखने वाले, क्रूरप्रकृति और आलसी स्वभाव वाले व्यक्ति 'रसद' ( जहर देने वाला ) कहलाते हैं।

( ४ ) आजीविका की इच्छुक, दरिद्र, प्रौढ, विधवा, दबंग ब्राह्मणी, रनिवास में संमानित, प्रधान अमात्यों के घर में प्रवेश पानेवाली 'परिव्राजिका' ( संन्यासिनी के वेश में खुफिया का काम करने वाली ) नाम की गुप्तचरी कहलाती है। इसी प्रकार मुंडा ( मुंडित बौद्ध-भिक्षुणी ) और वृषली ( शूद्रा ) आदि नारी गुप्तचरियों को भी जान लेना चाहिए। ये सभी 'संचार' नामक गुप्तचर हैं।

**(१) तान् राजा स्वविषये मन्त्रिपुरोहितसेनापतियुवराजदौवारिकान्तर्वंशिकप्रशास्तृसमाहर्तृसन्निधातृप्रदेष्टृनायकपौरव्यावहारिककार्मान्तिकमन्त्रिपरिषदध्यक्षदण्डदुर्गान्तपालाटविकेषु श्रद्धेयदेशवेषशिल्पभाषाभिजनापदेशान् भक्तितः सामर्थ्ययोगाच्चापसर्पयेत् ।**

**(२) तेषां बाह्यं चारं छत्रभृङ्गारव्यजनपादुकासनयानवाहनोपग्राहिणस्तीक्ष्णा विद्युः । तं सत्त्रिणः संस्थास्वर्पयेयुः ।**

**(३) सूदारालिकस्नापकसंवाहकास्तरककल्पकप्रसाधकोदकपरिचारका रसदाः कुब्जवामनकिरातमूकबधिरजडान्धच्छद्मानो नटनर्तकगायनवादकवाग्जीवनकुशीलवाः स्त्रियश्चाभ्यन्तरं चारं विद्युः । तं भिक्षुक्यः संस्थास्वर्पयेयुः ।**

---

( १ ) राजा को चाहिए कि वह, इन सत्री आदि गुप्तचरों को मंत्री, पुरोहित, सेनापति, युवराज, ड्योढ़ीदार, अन्तःपुररक्षक, छावनी-रक्षक, कलक्टर, कोषाध्यक्ष, कमिश्नर, हवलदार, नगरमुखिया, खदान-निरीक्षक, मन्त्रि-परिषद् का अध्यक्ष, सेनारक्षक, दुर्गरक्षक, सीमारक्षक और अटवीपाल आदि अधिकारियों के समीप, वेष, बोली, कौशल, भाषा तथा कुलीनता के आधार पर उनकी भक्ति और उनके सामर्थ्य की परीक्षा करके, तब रवाना करे ।

( २ ) उनमें से तीक्ष्ण नामक गुप्तचर का कर्तव्य है कि वह छत्र, चामर, व्यजन, पादुका, आसन, शिविका ( पालकी ) और घोड़े आदि बाहरी उपकरणों की देख-रेख करता हुआ अमात्य आदि की सेवा करे और उनके व्यवहारों को जाने । तीक्ष्ण गुप्तचर द्वारा जानी हुई बातों को सत्री नामक गुप्तचर स्थानिक कापटिक आदि गुप्तचरों को बता दे ।

( ३ ) सूद ( रसोइया ), आरालिक ( मांस पकाने वाला ), स्नापक ( नहलाने वाला ), संवाहक ( हाथ-पैर दबाने वाला ), आस्तरक ( बिस्तर बिछाने वाला ), कल्पक ( नाई ), प्रसाधक ( शृंगार करने वाला ) और उदक-परिचारक ( जल भरने वाला ) आदि विभिन्न रूप-नामों में रह कर रसद नामक गुप्तचर, मन्त्री आदि उच्च अधिकारियों के भेदों का पता लगाये । इसी प्रकार कुबड़े, बौने, किरात ( जङ्गली आदमी ), गूँगे, बहरे, मूर्ख, अन्धे आदि के वेष में गुप्तचर और नट, नाचने-गाने-बजाने वाले, कहानी कहने वाले, कूद-फाँद कर खेल दिखाने वाले, आदि के वेष में स्त्री गुप्तचर सब रहस्यों का पता लगा ले । भिक्षुकी वेष धारण करने वाली गुप्तचर महिला को चाहिये कि वह रसद आदि पुरुष गुप्तचरों से प्राप्त समाचारों को कापटिक आदि गुप्तचरों तक पहुँचा दे ।

**(१) संस्थानामन्तेवासिनः संज्ञालिपिभिश्चारसञ्चारं कुर्युः। न चान्योन्यं संस्थास्ते वा विद्युः।**

**(२) भिक्षुकीप्रतिषेधे द्वाःस्थपरम्परा मातापितृव्यञ्जनाः शिल्पकारिकाः कुशीलवा दास्यो वा गीतपाठचवाद्यभाण्डगूढलेख्यसंज्ञाभिर्वा चारं निर्हारयेयुः। दीर्घरोगोन्मादाग्निरसविसर्गेण वा गूढनिर्गमनम्।**

**(३) त्रयाणामेकवाक्ये सम्प्रत्ययः। तेषामभीक्ष्णविनिपाते तूष्णींदण्डः प्रतिषेधो वा।**

**(४) कण्टकशोधनोक्ताश्चापसर्पाः परेषु कृतवेतना वसेयुः सम्पातनिश्चारार्थं, त उभयवेतनाः।**

---

( १ ) संस्थाओं ( कापटिक आदि गुप्तचरों ) के विद्यार्थी अपनी विशिष्ट संकेत-लिपि द्वारा उस सूचना को राजा तक पहुँचावें। ऐसा करते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि संस्था-गुप्तचरों को संचार-गुप्तचर और संचार-गुप्तचरों को संस्था-गुप्तचर बिलकुल न जानने पावें।

( २ ) यदि अमात्य आदि के घरों में भिक्षुकी का अंतःप्रवेश निषिद्ध हो तो वह समाचार द्वारपालों के माध्यम से बाहर भिक्षुकी तक पहुँचे। यदि इसमें भी कुछ आशंका या असम्भव जान पड़े तो अंतःपुर के नौकरों के माता-पिता बनने का बहाना करके वृद्धा स्त्री-पुरुष भीतर प्रवेश करके रहस्य का पता लगायें। या तो रानियों के बाल सवाँरने वाली या नाचने-गाने वाली स्त्रियों अथवा दासियों द्वारा, अथवा निजी संकेतों वाले गीतों, श्लोकों, प्रार्थनाओं, या तो बाजों, बर्तनों, टोकरियों में गुप्त लेख रखकर, अथवा अन्य विधियों से, जैसा भी समय के अनुसार अपेक्ष्य हो, अंतःपुर के समाचारों को बाहर लाया जाय। यदि इन युक्तियों से भी सफलता न मिले तो गुप्तचर को चाहिए कि वह किसी भयङ्कर बीमारी अथवा पागलपन के बहाने से आग लगाकर या किसी को जहर देकर ( जिससे अंतःपुर में कोलाहल मच जाये ) चुपचाप बाहर निकल आवे।

( ३ ) परस्पर अपरिचित तीन गुप्तचरों द्वारा लाये गये समाचार यदि एक ही तरह से मिलें तो उन्हें ठीक समझना चाहिए। यदि वे परस्पर विरोधी समाचारों को लायें तो उन्हें या तो नौकरी से अलग कर दिया जाय अथवा चुपचाप पिटवाया जाय।

( ४ ) उक्त गुप्तचरों के अतिरिक्त 'कंटकशोधन' प्रकरण में आगे बताये गए गुप्तचरों को भी नियुक्त करना चाहिये। ऐसे गुप्तचर विदेशों में जाकर वहाँ की सरकार के वेतनभोगी नौकर बनें और उनके गुप्त रहस्यों को समझें। ये गुप्तचर मित्र-पक्ष और शत्रु-पक्ष दोनों ओर से वेतन लें।

(१) गृहीतपुत्रदारांश्च कुर्यादुभयवेतनान् ।
तांश्चारिप्रहितान् विद्यात् तेषां शौचं च तद्विधैः ॥
(२) एवं शत्रौ च मित्रे च मध्यमे चावपेच्चरान् ।
उदासीने च तेषां च तीर्थेष्वष्टादशस्वपि ॥
(३) अन्तर्गृहचरास्तेषां कुब्जवामनषण्डकाः ।
शिल्पवत्यः स्त्रियो मूकाश्चित्राश्च म्लेच्छजातयः ॥
(४) दुर्गेषु वणिजः संस्था दुर्गान्ते सिद्धतापसाः ।
कर्षकोदास्थिता राष्ट्रे राष्ट्रान्ते व्रजवासिनः ॥
(५) वने वनचराः कार्याः श्रमणाटविकादयः ।
परप्रवृत्तिज्ञानार्थाः शीघ्राश्चारपरम्पराः ॥
(६) परस्य चैते बोद्धव्यास्तादृशैरेव तादृशाः ।
चारसञ्चारिणः संस्था गूढाश्चागूढसंज्ञिताः ॥

---

( १ ) उभयवेतनभोगी इस प्रकार के गुप्तचरों के सम्बन्ध में विजय की इच्छा रखने वाले राजा को चाहिए कि वह उनके स्त्री-बच्चों को सत्कारपूर्वक अपने आधीन रखे । शत्रु की ओर से नियुक्त इस प्रकार के उभयवेतनभोगी गुप्तचरों की भी राजा जानकारी रखे और उनके माध्यम से अपने उभयवेतनभोगी गुप्तचरों की पवित्रता की भी परीक्षा करता रहे ।

( २ ) इस प्रकार विजिगीषु राजा को चाहिए कि वह शत्रु, मित्र, मध्यम तथा उदासीन राजाओं और उनके मन्त्री, पुरोहित, सेनापति आदि अठारह प्रकार के अधीनस्थ कर्मचारियों के निकट, सभी स्थानों पर, अपने गुप्तचरों को नियुक्त करे ।

( ३ ) इसके अतिरिक्त उन शत्रु, मित्र, मध्यम आदि राजाओं के घरों तथा उनके मन्त्री, पुरोहित आदि के घरों में भी काम करने वाले कुबड़े, बौने, नपुंसक, कारीगर स्त्रियाँ, गूंगे तथा दूसरे-दूसरे प्रकार के बहानों को लेकर म्लेच्छ जाति के पुरुषों को नियुक्त करना चाहिए ।

( ४ ) किलों में व्यापार करने वाले लोगों को, किले की सीमा पर सिद्ध तपस्वियों को, राज्य के अन्तर्गत अन्य स्थानों पर कृषक तथा उदास्थित पुरुषों को और राज्य की सीमा पर चरवाहों को, गुप्तचर वेष में नियुक्त करना चाहिये ।

( ५ ) जंगल में शत्रु की प्रत्येक गति-विधि का पता लगाने के लिए चतुर, वानप्रस्थी और जंगली लोगों को गुप्तचर नियुक्त करना चाहिए ।

( ६ ) इस प्रकार, प्रकट रूप से सामान्य स्थिति में रहते हुए ये गुप्तचर, शत्रु की ओर से नियुक्त सभी, तीक्ष्ण, कापटिक, उदास्थित आदि गुप्तचरों को अपने वर्ग के अनुसार ही चीन्हें ।

**(१) अकृत्यान् कृत्यपक्षीयैर्दशितान् कार्यहेतुभिः ।**
**परापसर्पज्ञानार्थं मुख्यानन्तेषु वासयेत् ।।**

इति कौटलीयार्थशास्त्रे विनयाधिकारिके प्रथमाधिकरणे गूढपुरुषोत्पत्तौ सञ्चारोत्पत्तिः, गूढपुरुषप्रणिधिर्नाम एकादशोऽध्यायः ।।

—: ० :—

---

( ४ ) शत्रु के किसी प्रलोभन या बहकावे में न फँसने वाले अपने विश्वस्त पुरुषों को, शत्रु के गुप्तपुरुषों का पता लगाने के लिए, राज्य की सीमा पर नियुक्त किया जाना चाहिए और उन्हें शत्रुपक्ष के लोगों को स्ववश करने के उपाय भी बता देने चाहिए ।

विनयाधिकारिक प्रथम अधिकरण में ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त ।

—: ० :—

| प्रकरण ८ | |
|---|---|
| अध्याय १२ | |

# स्वविषये कृत्याकृत्यपक्षरक्षणम्

(१) कृतमहामात्यापसर्पः पौरजानपदानपसर्पयेत् ।

(२) सत्त्रिणो द्वन्द्विनस्तीर्थसभाशालापूगजनसमवायेषु विवादं कुर्युः—सर्वगुणसम्पन्नश्चायं राजा श्रूयते । न चास्य कश्चिद् गुणो दृश्यते यः पौरजानपदान् दण्डकराभ्यां पीडयति इति ।

(३) तत्र येऽनुप्रशंसेयुः, तानितरस्तं च प्रतिषेधयेत्—मात्स्यन्यायाभिभूताः प्रजा मनुं वैवस्वतं राजानं चक्रिरे । धान्यषड्भागं पण्यदशभागं हिरण्यं चास्य भागधेयं प्रकल्पयामासुः । तेन भृता राजानः प्रजानां योगक्षेमवहाः । तेषां किल्विषं दण्डकरा हरन्ति, योगक्षेमवहाश्च प्रजानाम् ।

## अपने देश में कृत्य-अकृत्य पक्ष की सुरक्षा

( १ ) राजा को चाहिए कि महामंत्री, मंत्री, पुरोहित आदि के समीप गुप्तचर नियुक्त करने के पश्चात् वह अपने प्रति प्रजाजनों तथा नगरनिवासियों का अनुराग-द्वेष जानने के लिए वहाँ भी गुप्तचरों की नियुक्ति करे ।

( २ ) पहिले तो गुप्तचर आपस में ही लड़ने-झगड़ने लगें; और बाद में वे तीर्थस्थानों, सभा-सोसाइटियों, खाने-पीने की दूकानों, राजकर्मचारियों के बीच, तथा नाना प्रकार के लोगों में यह कहकर वाद-विवाद करें कि 'यह राजा तो सर्वगुण-संपन्न सुना जाता है; किन्तु इसमें कोई भी सद्गुण नहीं दिखाई दे रहा है। उल्टा वह नगरवासियों को दण्ड देकर एवं कर वसूली करके पीड़ा पहुँचा रहा है ।'

( ३ ) उसके बाद सुनने वालों की उचित-अनुचित प्रतिक्रिया को ताड़ता हुआ दूसरा गुप्तचर उसके विरोध में यों कहे—'देखो, जैसे छोटी मछली बड़ी मछली को खा जाती है, पुराकाल में वैसे ही बलवान लोगों ने निर्बल लोगों का रहना दूभर कर दिया था । इस अन्याय से बचने के लिए प्रजा ने मिलकर विवस्वान् के पुत्र मनु को अपना राजा नियुक्त किया; और तभी से खेती की उपज का छठा भाग, व्यापार की आमदनी का दसवाँ भाग तथा थोड़ा-सा सुवर्ण राजा के लिए कर रूप में निर्धारित भी कर दिया था । प्रजा के द्वारा निर्धारित भाग को पाकर राजाओं ने प्रजा के योगक्षेम का सारा दायित्व अपने ऊपर लिया । इस प्रकार ये निर्धारित दण्ड एवं कर प्रजा के उत्पीडनों को दूर करने में सहायक होते हैं, और प्रजा की भलाई एवं कल्याण के कारण सिद्ध होते हैं । यही कारण है कि जंगलों में एकान्त जीवन बिताने

**तस्मादुञ्छषड्भागमारण्यका अपि निवपन्ति—तस्यैतद् भागधेयं योऽस्मान् गोपायतीति। इन्द्रयमस्थानमेतद् राजानः प्रत्यक्षहेडप्रसादाः। तानवमन्यमानं दैवोऽपि दण्डः स्पृशति। तस्माद् राजानो नावमन्तव्याः इति क्षुद्रकान् प्रतिषेधयेत्।**

**(१) किंवदन्तीं च विद्युः।**

**(२) ये चास्य धान्यपशुहिरण्यान्याजीवन्ति, तैरुपकुर्वन्ति व्यसने अभ्युदये वा, कुपितं बन्धुं राष्ट्रं वा व्यावर्तयन्ति, अमित्रमाटविकं वा प्रतिषेधयन्ति, तेषां मुण्डजटिलव्यञ्जनास्तुष्टातुष्टत्वं विद्युः।**

**(३) तुष्टान् भूयः पूजयेत्। अतुष्टांस्तुष्टिहेतोस्त्यागेन साम्ना च प्रसादयेत्। परस्पराद्वा भेदयेदेनान् सामन्ताटविकतत्कुलीनावरुद्धेभ्यश्च। तथाप्यतुष्यतो दण्डकरसाधनाधिकारेण वा जनपदविद्वेषं ग्राहयेत्। विद्विष्टानुपांशुदण्डेन जनपदकोपेन वा साधयेत्। गुप्तपुत्रदारानाकरकर्मान्तेषु वा वासयेत् परेषामास्पदभयात्।**

---

वाले ऋषि-मुनि भी दाना-दाना करके बीने हुए अन्न का छठा भाग राजा को देते हैं; यह जानकर कि राजा का इस पर सनातन हक है, जिसके बदले में वह हमारी रक्षा करता है। इन्द्र और यम के समान ये राजा लोग भी प्रजाजनों का प्रत्यक्ष निग्रह एवं उनपर अनुग्रह करने वाले होते हैं। इसलिए जो उनका तिरस्कार करता है, निश्चित ही, उस पर दैवी विपत्तियाँ टूटती हैं। यही कारण है, जिनको दृष्टि में रख कर राजा का अपमान नहीं करना चाहिए।' इत्यादि बातों को कह कर राजा की निन्दा करने वालों को रोक दें।

( १ ) गुप्तचरों के लिए आवश्यक है कि वे अफवाहों पर भी ध्यान दें।

( २ ) जो लोग धान्य, पशु, हिरण्य आदि से राजा की सेवा करते हैं; विपत्ति और अभ्युन्नति के समय उसकी सहायता करते हैं; राजा के प्रति क्रुद्ध भाई तथा कुपित प्रजा को जो शान्त कर देते हैं; उनकी प्रसन्नता और उनके कोप पर भी मुण्ड एवं जटिल गुप्तचर निगाह रखें।

( ३ ) जो लोग राजा से सन्तुष्ट हों उन्हें धन और मान द्वारा और भी सन्तुष्ट करना चाहिए। जो किसी कारण अप्रसन्न हैं, उन्हें भी प्रसन्न करने के लिए धन आदि देना चाहिए; सान्त्वना भी देनी चाहिए; न हो तो इन असंतुष्ट व्यक्तियों में आपसी कलह करा दे; सामन्त, आटविक एवं उनके सम्बन्धियों से भी इनकी फूट डाल दे। इन उपायों के बावजूद भी यदि वे असन्तुष्ट ही बने रहें तो राजा को चाहिए कि अपने दण्डसम्बन्धी या करसम्बन्धी अधिकारों द्वारा वह सम्पूर्ण राष्ट्र के साथ उनका द्वेष करा दे। जब सारा जनपद उनका द्वेषी हो जाय तब या तो चुपचाप

(१) क्रुद्धलुब्धभीतावमानिनस्तु परेषां कृत्याः। तेषां कार्तान्तिक-नैमित्तिकमौहूर्तिकव्यञ्जनाः परस्पराभिसम्बन्धम् अमित्रप्रतिसम्बन्धं वा विद्युः।

(२) तुष्टानर्थमानाभ्यां पूजयेत्। अतुष्टान् सामदानभेददण्डैः साधयेत्।

(३) एवं स्वविषये कृत्यानकृत्यांश्च विचक्षणः।
परोपजापात् संरक्षेत् प्रधानान् क्षुद्रकानपि ॥

इति कौटलीयार्थशास्त्रे विनयाधिकारिके प्रथमाधिकरणे स्वविषये कृत्याकृत्यपक्षरक्षणं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥

—: ० :—

---

ही उनका बध करवा दिया जाय अथवा असन्तुष्ट जनपद से ही उनका दमन करा दिया जाय।

( १ ) इन लोगों के दमन के लिए एक दूसरा तरीका यह भी है कि राजा उनके स्त्री-बच्चों को अपने अधिकार में करले और उन्हें खदान के कार्य में भेज दिया जाय। क्योंकि ऐसा भी संभव है कि ये असन्तुष्ट लोग शत्रुपक्ष में जाकर मिल जाय। प्रायः ऐसा देखा गया है कि क्रोधी, लोभी, डरपोक और अपमानित लोग सहज ही शत्रु के वश में हो जाते हैं।

( २ ) जो व्यक्ति सन्तुष्ट हों, राजा उन्हें और भी धन-मान से सत्कृत करे। किन्तु असन्तुष्ट व्यक्तियों को साम, दाम, दण्ड, भेद जैसे भी बन पड़े, अपने वश में करे।

( ३ ) इस प्रकार बुद्धिमान् राजा को चाहिए कि अपने राज्य के छोटे-बड़े कृत्य अकृत्य लोगों को वह, किसी भी प्रकार, शत्रु के पक्ष में जाने से रोके।

विनयाधिकारिक प्रथम अधिकरण में बारहवाँ अध्याय समाप्त।

—: ० :—

प्रकरण ९

अध्याय १३

# परविषये कृत्याकृत्यपक्षोपग्रहः

**(१) कृत्याकृत्यपक्षोपग्रहः स्वविषये व्याख्यातः परविषये वाच्यः ।**

**(२) संश्रुत्यार्थान् विप्रलब्धः, तुल्यकारिणोः शिल्पे वोपकारे वा विमानितः, वल्लभावरुद्धः, समाहूय पराजितः, प्रवासोपतप्तः, कृत्वा व्ययमलब्धकार्यः, स्वधर्माद् दायाद्याद् वोपरुद्धः, मानाधिकाराभ्यां भ्रष्टः, कुल्यैरन्तर्हितः, प्रसभाभिमृष्टस्त्रीकः, काराभिन्यस्तः, परोक्तदण्डितः, मिथ्याचारवारितः, सर्वस्वमाहारितः, बन्धनपरिक्लिष्टः, प्रवासितबन्धुरिति क्रुद्धवर्गः ।**

**(३) स्वयमुपहतः, विप्रकृतः, पापकर्माभिख्यातः, तुल्यदोषदण्डेनोद्विग्नः, पर्यात्तभूमिः, दण्डेनोपहतः, सर्वाधिकरणस्थः, सहसोपचितार्थः, तत्कुलीनोपाशंसुः, प्रद्विष्टो राज्ञा, राजद्वेषी चेति भीतवर्गः ।**

## शत्रुदेश के कृत्य-अकृत्य पक्ष को मिलाना

( १ ) अपने देश में कृत्य-अकृत्य पक्ष को किस प्रकार सुरक्षित अथवा संगठित रखना चाहिए, इसका प्रतिपादन किया जा चुका है। शत्रुदेश के कृत्य-अकृत्य पक्ष को किस प्रकार अपने वश में करना चाहिए, अब इसका वर्णन किया जाता है।

( २ ) जिसको धन देने की प्रतिज्ञा करके धन न दिया गया हो; किसी शिल्प या उपकार सम्बन्धी कार्यों को समान रूप से करने वाले दो व्यक्तियों में से एक का तो सम्मान किया गया हो और दूसरे की अवमानना की गई हो; राजा के विश्वस्त कर्मचारियों ने जिसको राजभवन में प्रवेश करने से रोक दिया हो; स्वयं बुलाकर जिसका तिरस्कार किया गया हो; राजाज्ञा से प्रवासित होने के कारण दुःखित; व्यय करके भी जिसका अभीष्ट कार्य पूरा न हुआ हो, जिसको अपने धर्म तथा अधिकार से रोका गया हो; सम्मानित तथा अधिकारपूर्ण पद से जिसको च्युत किया गया हो; राजपुरुषों द्वारा जिसको बदनाम किया गया हो; जिसकी स्त्री को जबरदस्ती छीन लिया गया हो; जिसको जेल में ठूंस दिया गया हो; दूसरे के कहने मात्र से जिसको दण्ड दिया गया हो; झूठा इलजाम लगाकर जिस पर धार्मिक प्रतिबन्ध लगा दिया हो; जिसका सर्वस्व अपहरण किया गया हो; अशक्त कार्यों पर नियुक्त करके जिसको पीडित किया गया हो और जिसके बन्धु-बान्धवों को देश-निकाला दिया गया हो—इस प्रकार के सभी लोग 'क्रुद्धवर्ग' कहलाते हैं।

( ३ ) किसी लोभ के कारण हिंसा करके जो दूषित हो चुका हो; पाप कर्मों को करने में जो कुख्यात हो; अपने समान अपराधी को दण्डित हुआ देखकर जो

**(१) परीक्षीणोऽत्यात्तस्वः कदर्यो व्यसन्यत्याहितव्यवहारश्चेति लुब्धवर्गः।**

**(२) आत्मसम्भावितो मानकामः शत्रुपूजामर्षितो नीचैरुपहितस्तीक्ष्णः साहसिको भोगेनासन्तुष्ट इति मानिवर्गः।**

**(३) तेषां मुण्डजटिलव्यञ्जनैर्यो यद्भक्तिः कृत्यपक्षीयस्तं तेनोपजापयेत्।**

**(४) यथा मदान्धो हस्ती मत्तेनाधिष्ठितो यद्यदासादयति तत् सर्वं प्रमृद्गात्येवमयमशास्त्रचक्षुरन्धो राजाऽन्धेन मन्त्रिणाऽधिष्ठितः, पौरजानपदवधायाभ्युत्थितः। शक्यमस्य प्रतिहस्तिप्रोत्साहनेनापकर्तुम्। अमर्षः क्रियताम्—इति क्रुद्धवर्गमुपजापयेत्।**

**(५) यथा लीनः सर्पो यस्माद् भयं पश्यति तत्र विषमुत्सृजत्येवमयं राजा जातदोषाशङ्कस्त्वयि पुरा क्रोधविषमुत्सृजति। अन्यत्र गम्यताम्—इति भीतवर्गमुपजापयेत्।**

---

घबड़ा गया हो; भूमि का अपहरण करने वाला; जो दण्ड के द्वारा वश में किया गया हो; सभी राजकीय विभागों पर जिसका अधिकार हो; अपनी कार्यक्षमता से जिसने प्रभूत धन एकत्र कर लिया हो; जो राजा के किसी वंशज हिस्सेदार के निकट कुछ कामना से रहता हो; जिससे राजा शत्रुता रखता हो और जो राजा से शत्रुता रखता हो—इस प्रकार से सभी लोग 'भीतवर्ग' कहलाते हैं।

( १ ) जिसका सब धन-वैभव नष्ट हो गया; जो कायर, व्यसनी और अपव्ययी हो, वह 'लुब्धवर्ग' कहलाता है।

( २ ) अपने को महान् समझनेवाला; आत्मश्लाघी; शत्रु के सम्मान को सहन न करनेवाला; नीच लोगों द्वारा प्रशंसित; तीक्ष्णप्रकृति; साहसी और भोग्य-पदार्थों से कभी सन्तुष्ट न होनेवाला वर्ग ही 'मानीवर्ग' कहलाता है।

( ३ ) उक्त क्रुद्ध, लुब्ध, भीत आदि कृत्यपक्ष के लोगों में से जिस मुण्ड या जटिल गुप्तचर के जो-जो भक्त हों उसको वही गुप्तचर अपने वश में करे।

( ४ ) गुप्तचर, क्रुद्धवर्ग के लोगों को उनके स्वामी से यह कह कर फोड़े, 'देखो, जैसे उन्मत्त पीलवान से चलाया गया मतवाला हाथी अपने सामने जो कुछ भी देखता है, उसे कुचल डालता है, उसी प्रकार शास्त्ररूपी आँखों से हीन, अपने अंधे मंत्री के साथ रहता हुआ यह राजा राष्ट्र और प्रजा को नष्ट करने के लिए उद्यत है। ऐसी अवस्था में इस राजा से शत्रुता रखने वाले लोगों को उभाड़ देने से उसका अपकार किया जा सकता है। इस राजा के प्रति तुम्हें कुपित होना चाहिए।' यह कहकर क्रुद्धवर्ग को राजा से फोड़ दे।

( ५ ) भीतवर्ग को अपने वश में करने के लिए गुप्तचर ऐसा कहे—'देखो, जैसे डरा हुआ साँप जिससे भय खाता है उसी पर अपना विष उगल देता है, उसी प्रकार यह राजा भी तुमसे शंकित है और सर्वप्रथम यह तुम्हारे ऊपर क्रोधरूपी विष उगलने

**(१) यथा श्वगणिनां धेनुः श्वभ्यो दुग्धे न ब्राह्मणेभ्यः, एवमयं राजा सत्त्वप्रज्ञावाक्यशक्तिहीनेभ्यो दुग्धे नात्मगुणसम्पन्नेभ्यः। असौ राजा पुरुषविशेषज्ञः सेव्यताम्—इति लुब्धवर्गमुपजापयेत्।**

**(२) यथा चण्डालोदपानश्चण्डालानामेवोपभोग्यो नान्येषामेवमयं राजा नीचो नीचानामेवोपभोग्यो न त्वद्विधानामार्याणाम्। असौ राजा पुरुषविशेषज्ञः, तत्र गम्यताम्—इति मानिवर्गमुपजापयेत्।**

**(३) तथेति प्रतिपन्नांस्तान् संहितान् पणकर्मणा।**
**योजयेत यथाशक्ति सापसर्पान् स्वकर्मसु॥**

**(४) लभेत सामदानाभ्यां कृत्यांश्च परभूमिषु।**
**अकृत्यान् भेददण्डाभ्यां परदोषांश्च दर्शयेत्॥**

इति कौटिलीयार्थशास्त्रे विनयाधिकारिके प्रथमाधिकरणे
परविषये कृत्याकृत्यपक्षोपग्रहः त्रयोदशोऽध्यायः॥

—: ० :—

---

वाला है। तुम्हारे लिए यही उचित है कि तुम इस स्थान को छोड़ कर कहीं अन्यत्र चले जाओ।' यह कह कर भीतवर्ग का भेदन करे।

( १ ) लुब्धवर्ग को वश में करने के लिए गुप्तचर यों कहे, 'देखो जैसे चाण्डालों की गाय चाण्डालों के लिए ही दूध देती है, ब्राह्मणों के लिए नहीं, उसी प्रकार राजा भी बल, बुद्धि और वाक्शक्ति से हीन लोगों के लिए लाभदायक है, सर्वगुण-सम्पन्न लोगों के लिए नहीं। इसके विपरीत अमुक राजा बड़ा गुणज्ञ है, तुम्हें उसी के आश्रय में रहना चाहिए।' इस प्रकार लुब्धवर्ग को मिलाये।

( २ ) मानीवर्ग का भेदन करने के लिए गुप्तचर कहे 'देखो, जैसे चाण्डालों का कुँआ अकेले उन्हीं के लिए उपयोगी है, उसी प्रकार नीच राजा भी नीच लोगों के लिए ही सुखकर है, तुम्हारे जैसे श्रेष्ठ पुरुषों के लिए नहीं। किन्तु वह अमुक नाम का राजा स्वयं गुणी और गुणज्ञों का आदर करनेवाला है। तुम्हें उसी के आश्रम में जाकर रहना चाहिए।' इस प्रकार मानीवर्ग को उसके स्वामी से अलग करे।

( ३ ) इस प्रकार राजा अपने पक्ष में किये गए पुरुषों को शपथ, संधि आदि से विश्वास दिला कर उन्हें उन्हीं कार्यों में नियुक्त करे, जिन पर वे नियुक्त थे; किन्तु उनके पीछे गुप्तचरों को अवश्य रखे।

( ४ ) इस प्रकार राजा, शत्रुदेश में कृत्यपक्ष के पुरुषों को साम तथा दाम के द्वारा अपनी ओर मिलावे। परन्तु अकृत्यपक्ष के पुरुष उन्हें भेद तथा दण्ड के द्वारा अपनी ओर करते रहें और उनके सामने शत्रु के दोषों की बराबर चर्चा करते रहें।

विनयाधिकारिक प्रथम अधिकरण में परविषयक कृत्याकृत्यपक्षोपग्रह
नामक तेरहवाँ अध्याय समाप्त।

—: ० :—

# मन्त्राधिकारः

(१) कृतस्वपक्षपरपक्षोपग्रहः कार्यारम्भांश्चिन्तयेत्। मन्त्रपूर्वाः सर्वारम्भाः।

(२) तदुद्देशः संवृतः कथानामनिःस्रावी पक्षिभिरप्यनालोक्यः स्यात्। श्रूयते हि शुकशारिकाभिर्मन्त्रो भिन्नः श्वभिरन्यैश्च तिर्यग्योनिभिः। तस्मान्मन्त्रोद्देशमनायुक्तो नोपगच्छेत्। उच्छिद्येत मन्त्रभेदी।

(३) मन्त्रभेदो हि दूतामात्यस्वामिनामिङ्गिताकाराभ्याम्। इङ्गितमन्यथावृत्तिः। आकृतिग्रहणमाकारः।

(४) तस्य संवरणम् आयुक्तपुरुषरक्षणमाकार्यकालादिति। तेषां हि

---

## मंत्राधिकार

(१) अपने देश और शत्रुदेश के कृत्य-अकृत्य पक्ष को वश में करने के उपरान्त विजय की इच्छा रखने वाले राजा को चाहिए कि वह अपने देश में दुर्ग आदि तथा शत्रुदेश के सम्बन्ध में संधि-विग्रह आदि कार्यों पर विचार करे। इस प्रकार के सभी कार्यों को गम्भीर विचार-विनिमय के अनन्तर ही आरम्भ करना चाहिए।

(२) जिस स्थान पर बैठकर मन्त्रणा की जाय वह चारों ओर से इस प्रकार बन्द होना चाहिए कि जिससे वहाँ पक्षी तक न झाँक सके और कोई शब्द बाहर न सुनाई दे, क्योंकि अनुश्रुति है कि पुराकाल में किसी राजा की गुप्त मंत्रणा को तोता और मैना ने सुनकर बाहर प्रकट कर दिया था। इसी प्रकार कुत्ते तथा अन्य पशु-पक्षियों के सम्बन्ध में भी सुना जाता है। इसलिए राजा की आज्ञा के बिना कोई भी व्यक्ति किसी भी स्थिति में मंत्रणास्थल पर न जावे। यदि गुप्त मन्त्रणा के भेद को कोई फोड़ दे तो तत्काल ही उसको मरवा देना चाहिए।

(३) कभी-कभी बिना कहे ही दूत, अमात्य तथा राजा के हाव-भाव एवं मुद्रा द्वारा भी गुप्त भेद प्रकट हो जाते हैं। स्वाभाविक क्रियाओं के विपरीत भिन्न चेष्टाएँ 'इंगित' कहलाती हैं। चेष्टाओं को प्रकट करनेवाले अंग 'आकार' या 'आकृति' कहलाते हैं।

(४) इसलिए विजिगीषु राजा को चाहिए कि जब तक विचारित कार्यों के आरम्भ करने का समय नहीं आता तब तक अपने गुप्त भावों को दबाकर रखे।

**प्रमादमदसुप्तप्रलापकामादिरुत्सेकः प्रच्छन्नोऽवमतो वा मन्त्रं भिनत्ति। तस्माद् रक्षेन्मन्त्रम् ।**

**(१) मन्त्रभेदो ह्ययोगक्षेमकरो राज्ञस्तदायुक्तपुरुषाणां च। तस्माद् गुह्यमेको मन्त्रयेतेति भारद्वाजः। मन्त्रिणामपि हि मन्त्रिणो भवन्ति। तेषामप्यन्ये। सैषा मन्त्रिपरम्परा मन्त्रं भिनत्ति।**

**(२) तस्मान्नास्य परे विद्युः कर्म किञ्चिच्चिकीर्षितम् ।**
**आरब्धारस्तु जानीयुरारब्धं कृतमेव वा ॥**

**(३) नैकस्य मन्त्रसिद्धिरस्तीति विशालाक्षः। प्रत्यक्षपरोक्षानुमेया हि राजवृत्तिः। अनुपलब्धस्य ज्ञानमुपलब्धस्य निश्चयबलाधानमर्थद्वैधस्य संशयच्छेदनमेकदेशदृष्टस्य शेषोपलब्धिरिति मन्त्रिसाध्यमेतत्। तस्माद् बुद्धिवृद्धैः सार्धमासीत मन्त्रम् ।**

---

मंत्रियों की असावधानी के कारण या मद्यपान की बेहोशी में अथवा सोते समय आकस्मिक प्रलाप द्वारा या विषय-भोग की लालसा से अथवा अभिमान के भाव से गुप्त मंत्रणाएँ समय से पहिले ही प्रकट हो जाती हैं। आड़ में छिपकर सुननेवाले अथवा मन्त्रणाकाल में मूर्ख कहकर अपमानित हुआ व्यक्ति भी मन्त्र के भेद को फोड़ देता हैं। इसलिए इन सभी बातों को दृष्टि में रखकर राजा को चाहिए कि वह अपने गुप्त रहस्यों की सावधानी से रक्षा करे।

( १ ) आचार्य भारद्वाज का सुझाव है कि 'मन्त्र के प्रकट हो जाने पर राजा और उसके सलाहकारों की सुरक्षा खतरे में पड़ जाती है। इसलिए इस प्रकार की गुप्त मन्त्रणाओं पर राजा अकेला ही विचार करे; क्योंकि मन्त्रियों के भी अपने सलाहकार होते हैं। उनके भी दूसरे लोग परामर्शदाता होते हैं इसलिए इस मन्त्रि-परम्परा के कारण गुप्त बातों के प्रकट हो जाने का भय बना रहता है।

( २ ) 'इसलिए गुप्त मन्त्रणाओं को राजा के अतिरिक्त कोई न जानने पावे। केवल कार्यारम्भ करनेवाले व्यक्ति ही उसके आभास को जान सकें और उन्हें भी उसका परिणाम कार्य की समाप्ति के बाद ही ज्ञात हो।'

( ३ ) आचार्य विशालाक्ष कुछ संशोधन के साथ अपना विचार प्रकट करते हैं। उनका कहना है कि 'एक ही व्यक्ति द्वारा सोचा-विचारा हुआ मन्त्र सिद्धिदायक नहीं हो सकता। सभी राजकार्य प्रत्यक्ष और परोक्ष दो प्रकार के होते हैं; उनके लिए मन्त्रियों की अपेक्षा होती है। न जाने हुए कार्य को जानना, जाने हुए कार्य का निश्चय करना, निश्चित कार्य को दृढ करना, किसी कार्य में सन्देह उत्पन्न हो जाने पर विचार-विमर्श द्वारा उस संशय का निराकरण करना, आंशिक कार्य को पूरी तरह

**(१) न कञ्चिदवमन्येत सर्वस्य शृणुयान्मतम् ।
बालस्याप्यर्थवद् वाक्यमुपयुञ्जीत पण्डितः ॥**

**(२) एतन्मन्त्रज्ञानं नैतन्मन्त्ररक्षणमिति पाराशराः । यदस्य कार्यमभिप्रेतं तत्प्रतिरूपकं मन्त्रिणः पृच्छेत्—कार्यमिदमेवमासीदेवं वा यदि भवेत् तत् कथं कर्तव्यमिति । ते यथा ब्रूयुः तत् कुर्यात् । एवं मन्त्रोपलब्धिः संवृतिश्च भवतीति ।**

**(३) नेति पिशुनः । मन्त्रिणो हि व्यवहितमर्थं वृत्तमवृत्तं वा पृष्टमनादरेण ब्रुवन्ति प्रकाशयन्ति वा । स दोषः । तस्मात् कर्मसु ये येष्वभिप्रेतास्तैः सह मन्त्रयेत् । तैर्मन्त्रयमाणो हि मन्त्रबुद्धिं गुप्तिं च लभत इति ।**

---

विचारना इत्यादि सभी बातें मन्त्रियों में सहयोग से ही पूरी की जा सकती हैं । इसलिए विजिगीषु राजा को अत्यन्त बुद्धिमान् और पर्याप्त अनुभवी व्यक्तियों के साथ बैठकर विचार करना चाहिए ।

( १ ) 'राजा को चाहिए कि सलाह करते समय वह किसी को अवमानित न करे; सबकी बातों को ध्यानपूर्वक सुने; यहाँ तक कि बालक की भी सारगर्भित बात को ग्रहण करे ।'

( २ ) आचार्य पराशर के मतावलम्बी विद्वानों का कहना है कि 'आचार्य विशालाक्ष के उक्त कथन से मन्त्र का ज्ञान भले ही हो सकता है, मन्त्र की रक्षा नहीं । इसलिए राजा को जिस कार्य के लिए सलाह लेनी हो उस कार्य के समान ही दूसरे कार्य के सम्बन्ध में वह मन्त्रियों से पूछे । राजा किसी ऐतिहासिक घटना का हवाला देकर कहे कि अमुक कार्य इस ढंग से किया गया था; इसी कार्य को यदि इस ढंग से करना होता तो कैसे किया जाना चाहिए था । इसपर मन्त्री जो राय दें उसके अनुसार ही तत्समान अपने अभीष्ट कार्य को सम्पन्न करे। ऐसा करने से मन्त्र का ज्ञान भी हो जाता है और मन्त्र की रक्षा भी ।'

( ३ ) आचार्य पिशुन ( नारद ) इस मन्तव्य को नहीं मानते । उनकी स्थापना है 'क्योंकि इस तरह प्रकारान्तर से मन्त्रियों के सम्मुख किसी बात को रख देने से वे समझने लगते हैं कि राजा हमारी सलाह नहीं मानता और उसका हम पर विश्वास नहीं है । इसलिए वे पूर्वघटित एवं अघटित विषय पर लापरवाही से उत्तर देते हैं और उस बात को प्रकाशित भी कर देते हैं । यह तो मन्त्र के लिए बड़ा दोष है । इसलिए राजा को यही उचित है कि जो लोग जिन-जिन कार्यों पर नियुक्त एवं जिन-जिन विचारों के लिए उपयुक्त हैं उन्हीं के साथ वैसी सलाह करे । ऐसा करने से मन्त्रणा में अधिक परिमार्जन हो जाता है और उसकी सुरक्षा भी हो जाती है ।

**(१) नेति कौटिल्यः। अनवस्था ह्येषा। मन्त्रिभिस्त्रिभिश्चतुर्भिर्वा सह मन्त्रयेत। मन्त्रयमाणो ह्येकेनार्थकृच्छ्रेषु निश्चयं नाधिगच्छेत्। एकश्च मन्त्री यथेष्टमनवग्रहश्चरति। द्वाभ्यां मन्त्रयमाणो द्वाभ्यां संहताभ्यामवगृह्यते, विगृहीताभ्यां विनाश्यते। त्रिषु चतुर्षु वा नैकान्तं कृच्छ्रेणोपपद्यते महादोषम्। उपपन्नं तु भवति। ततः परेषु कृच्छ्रेणार्थनिश्चयो गम्यते, मन्त्रो वा रक्ष्यते।**

**(२) देशकालकार्यवशेन त्वेकेन सह द्वाभ्यामेको वा यथासामर्थ्यं मन्त्रयेत।**

**(३) कर्मणामारम्भोपायः पुरुषद्रव्यसंपद् देशकालविभागः विनिपातप्रतीकारः कार्यसिद्धिरिति पञ्चाङ्गो मन्त्रः। तानेकैकशः पृच्छेत् समस्तांश्च। हेतुभिश्चैषां मतिप्रविवेकान् विद्यात्। अवाप्तार्थः कालं नातिक्रामयेत्। न दीर्घकालं मन्त्रयेत। न च तेषां पक्ष्यैर्येषामपकुर्यात्।**

---

( १ ) आचार्य कौटिल्य उक्त मत से अपनी असहमति प्रकट करते हुए कहते हैं कि 'नारदमुनि की बताई हुई युक्तियों के अनुसार मन्त्र व्यवस्थित नहीं हो सकता। इसलिए तीन या चार मन्त्रियों को साथ बैठाकर राजा को मन्त्रणा करनी चाहिए। क्योंकि एक ही मन्त्री से सलाह करता हुआ राजा किसी कठिनतम कार्य के अड़ जाने पर उचित समाधान नहीं कर पाता और मन्त्री प्रतिद्वन्द्वी के रूप में मनमाना करने लगता है। दो मंत्रियों के साथ बैठकर भी वह सलाह करता है तो कोई असंभव नहीं कि वे दोनों मिलकर राजा को अपने वश में कर लें अथवा दोनों लड़ने लग जायँ तो सारी मंत्रणा ही धूल में मिल जायगी। यदि तीन या चार मंत्री सलाहकार होंगे तो उस अवस्था से इस प्रकार के अनर्थकारी महान् दोष के उत्पन्न हो जाने की संभावना नहीं है। कोई भी दोष उसमें सहसा ही नहीं आ सकता है। यदि चार से अधिक मन्त्री हो जायँ तो कार्य का निश्चय करना कठिन हो जाता है और उस दशा में मन्त्र की सुरक्षा में भी सन्देह हो जाता है।'

( २ ) इसलिए देश, काल और कार्य के अनुसार एक या दो मन्त्रियों के साथ भी राजा मन्त्रणा करे। अपनी विचार-शक्ति के अनुसार वह अकेला बैठकर कुछ कार्यों का स्वयं ही निर्णय करे।

( ३ ) मंत्र के पाँच अंग होते हैं : १. कार्यारंभ करने का उपाय, २. पुरुष तथा द्रव्य-संपत्ति, ३. देश-काल का विभाग, ४. विघ्न-प्रतीकार और ५. कार्यसिद्धि। मंत्र के विषय में राजा एक-एक मंत्री से अथवा एक साथ सभी मंत्रियों से परामर्श कर सकता है। मंत्रियों के भिन्न-भिन्न अभिप्रायों को वह युक्तियों के द्वारा समझे। भली-

**(१) मन्त्रिपरिषदं द्वादशामात्यान् कुर्वीतेति मानवाः।**

**(२) षोडशेति बार्हस्पत्याः।**

**(३) विंशतिमित्यौशनसाः।**

**(४) यथासामर्थ्यमिति कौटिल्यः।**

**(५) ते ह्यस्य स्वपक्षं परपक्षं च चिन्तयेयुः। अकृतारम्भमारब्धानुष्ठानमनुष्ठितविशेषं नियोगसम्पदं च कर्मणां कुर्युः। आसन्नैः सह कार्याणि पश्येत्। अनासन्नैः सह पत्रसम्प्रेषणेन मन्त्रयेत। इन्द्रस्य हि मन्त्रिपरिषदृषीणां सहस्रम्। स तच्चक्षुः। तस्मादिमं द्व्यक्षं सहस्राक्षमाहुः।**

**(६) आत्ययिके कार्ये मन्त्रिणो मन्त्रिपरिषदं चाहूय ब्रूयात्। तत्र यद् भूयिष्ठाः कार्यसिद्धिकरं वा ब्रूयुस्तत् कुर्यात्। कुर्वतश्चः—**

---

भाँति समझ-बूझ जाने पर अविलंब ही वह अपने निश्चय को कार्यरूप में परिणत कर दे। किसी कार्य को अधिक समय तक विचारते रहना उचित नहीं है। जिन लोगों का कभी अपकार किया हो, उनके साथ या उनके सहयोगियों के साथ कभी भी मंत्रणा नहीं करनी चाहिए।

## ( मन्त्रि-परिषद् का विचार )

( १ ) मनु के अनुयायी अर्थशास्त्रविदों का इस सम्बन्ध में कहना है कि 'मंत्रि-परिषद् में बारह अमात्यों की नियुक्ति की जानी चाहिए।'

( २ ) बृहस्पति के अनुयायी विद्वान् 'सोलह मन्त्रियों' के पक्ष में हैं।

( ३ ) शुक्राचार्य-पक्ष के आचार्य मन्त्रियों की संख्या 'बीस' रखना अधिक उपयुक्त समझते हैं।

( ४ ) आचार्य कौटिल्य का कहना है कि 'कार्य करने वाले पुरुषों के सामर्थ्य के अनुसार ही उनकी संख्या नियत होनी चाहिए।'

( ५ ) वे निर्धारित मन्त्री विजिगीषु राजा के और उसके शत्रु राजा के सम्बन्ध में विचार करें। जो कार्य प्रारम्भ न किये गए हों उन्हें प्रारम्भ करायें; प्रारम्भ किये कार्यों को पूरा करावें और जो कार्य पूरे हो चुके हों उनमें आवश्यकतानुसार संशोधन-संमार्जन करें। निष्कर्ष यह कि विभागीय अध्यक्ष अपने-अपने कार्यों को अंत तक अधिकाधिक निपुणता से सम्पन्न करें। जो मन्त्री राजा के सन्निकट हों, उनको साथ लेकर राजा उनके कार्यों का स्वयं ही निरीक्षण करे। किन्तु जो दूर हों, उनसे पत्र द्वारा परामर्श करता रहे। इन्द्र की मन्त्रि-परिषद् में एक हजार ऋषि थे, जो कि उसके कार्यों के निर्देशक थे। इसीलिए तो दो नेत्रों वाले इन्द्र को हजार आँखों वाला ( सहस्राक्ष ) कहा गया है।

( ६ ) अत्यावश्यक कार्य के आ जाने पर राजा, मन्त्रि-परिषद् का आयोजन कर

(१) नास्य गुह्यं परे विद्युश्छिद्रं विद्यात् परस्य च ।
गूहेत् कूर्म इवाङ्गानि यत्स्याद् विवृतमात्मनः ।।
(२) यथा ह्यश्रोत्रियः श्राद्धं न सतां भोक्तुमर्हति ।
एवमश्रुतशास्त्रार्थो न मन्त्रं श्रोतुमर्हति ।।

इति कौटिलीयार्थशास्त्रे विनयाधिकारिके प्रथमाधिकरणे
मन्त्राधिकारो नाम चतुर्दशोऽध्यायः ।।

—: ० :—

उससे परामर्श करे। उनमें से बहुसमर्थित तथा शीघ्र ही कार्यसिद्धि कर देने वाली राय के अनुसार कार्य सम्पादन करे।

( १ ) इस ढंग से कार्य करते हुए राजा के गुप्त रहस्यों को कोई बाहरी व्यक्ति नहीं जान पाता है, प्रत्युत वह दूसरों के दोषों की भी जान लेता है। राजा को चाहिए कि वह अपने गुप्त भावों को उसी प्रकार अपने मन में छिपाये रखे जिस प्रकार कि कछुआ अपने अंगों को छिपाये रखता है।

( २ ) जिस प्रकार वेदाध्ययन से शून्य ब्राह्मण किसी श्रेष्ठ पुरुष के यहाँ श्राद्ध नहीं कर सकता है, उसी प्रकार शास्त्रज्ञान से शून्य व्यक्ति मन्त्र को सुरक्षित नहीं रख पाता है।

विनयाधिकारिक प्रथम अधिकरण में मन्त्राधिकार नामक
चौदहवाँ अध्याय समाप्त।

—: ० :—

# दूतप्रणिधिः

(१) उद्धृतमन्त्रो दूतप्रणिधिः। अमात्यसम्पदोपेतो निसृष्टार्थः, पादगुणहीनः परिमितार्थः, अर्धगुणहीनः शासनहरः।

(२) सुप्रतिविहितयानवाहनपुरुषपरिवापः प्रतिष्ठेत। शासनमेवं वाच्यः परः, स वक्ष्यत्येवं, तस्येदं प्रतिवाक्यम्—एवमतिसन्धातव्यमित्यधीयानो गच्छेत्। अटव्यन्तपालपुरराष्ट्रमुख्यैश्च प्रतिसंसर्गं गच्छेत्। अनीकस्थानयुद्धप्रतिग्रहापसारभूमीरात्मनः परस्य चावेक्षेत। दुर्गराष्ट्रप्रमाणं सारवृत्तिगुप्तिच्छिद्राणि चोपलभेत। पराधिष्ठानमनुज्ञातः प्रविशेत्। शासनं च यथोक्तं ब्रूयात् प्राणाबाधेऽपि दृष्टे। परस्य वाचि वक्त्रे दृष्टयां च प्रसादं वाक्यपूजनमिष्टपरिप्रश्नं गुणकथासङ्गमासन्नमासनं सत्कार-

## संदेश देकर राजदूतों को शत्रु-देश में भेजना

(१) गुप्त मंत्रणा के निश्चित हो जाने पर ही दूत को शत्रुदेश की ओर भेजना चाहिए। दूत तीन प्रकार के होते हैं: १. निसृष्टार्थ, २. परिमितार्थ और ३. शासनहर। अमात्य के पूर्वोक्त गुणों से सम्पन्न **निसृष्टार्थ**, उनमें एक चौथाई गुणहीन **परिमितार्थ** और आधा गुणहीन **शासनहर** कहलाता है।

(२) पालकी आदि सवारी, घोड़े आदि वाहन, नौकर-चाकर और सोने-बिछाने आदि सामग्री की भली-भाँति व्यवस्था करके दूत को शत्रुदेश की ओर प्रस्थान करना चाहिये। दूत को पहिले ही से यह सोच-विचार कर लेना चाहिये कि 'मैं अपने स्वामी का सन्देश इस ढंग से कहूँगा; उसका यह उत्तर होगा तो मेरे प्रत्युत्तर की विधि इस प्रकार होगी; या किन-किन विधियों से उस शत्रु राजा को वश में करना होगा।' आदि-आदि। राजदूत को चाहिए कि वह शत्रुदेश के वनरक्षक, सीमारक्षक, नगरवासियों तथा जनपदवासियों से मित्रता गाँठे। साथ ही वह उभयपक्ष की सेनाओं के ठहरने योग्य युद्ध-भूमि और संयोग आने पर अपनी सेना के भाग सकने योग्य उपयुक्त स्थानों तथा रास्तों का भी निरीक्षण करे। साथ ही शत्रुपक्षी राजा के दुर्ग, उसके राज्य की सीमाएँ, आमदनी, उपज, आजीविका के साधन, राष्ट्ररक्षा के तरीके, वहाँ के गुप्त भेद एवं वहाँ की बुराइयों का पता लगाना भी दूत का ही कर्तव्य है। किसी शत्रु राजा के राज्य में प्रवेश करने से पूर्व दूत, उस राजा की आज्ञा प्राप्त कर ले। प्राणान्तक परिस्थिति के उपस्थित हो जाने पर भी वह अपने स्वामी का संदेश अविकल रूप में कहे। यदि शत्रु राजा की वाणी में, मुखमुद्रा में, दृष्टि में प्रसन्नता झलकती हो; वह दूत की बातों को आदरपूर्वक सुन रहा हो; दूत

**मिष्टेषु स्मरणं विश्वासगमनं च लक्षयेत् तुष्टस्य। विपरीतमतुष्टस्य। तं ब्रूयात्—दूतमुखा वै राजानस्त्वं चान्ये च। तस्मादुद्यतेष्वपि शस्त्रेषु यथोक्तं वक्तारः तेषामन्तावसायिनोऽप्यवध्याः, किमङ्ग पुनर्ब्राह्मणाः। परस्यैतद् वाक्यमेष दूतधर्मः इति।**

**(१) वसेदविसृष्टः; प्रपूजया नोत्सिक्तः; परेषु बलित्वं न मन्येत; वाक्यमनिष्टं सहेत; स्त्रियः पानं च वर्जयेत्; एकः शयीत; सुप्तमत्तयोर्हि भावज्ञानं दृष्टम्। कृत्यपक्षोपजापमकृत्यपक्षे गूढप्रणिधानं रागापरागौ भर्तरि रन्ध्रं च प्रकृतीनां तापसवैदेहकव्यञ्जनाभ्यामुपलभेत। तयोरन्ते-वासिभिश्चिकित्सकपाषण्डव्यञ्जनोभयवेतनैर्वा, तेषामसम्भाषायां याचक-**

---

को स्वेच्छया प्रश्न करने या अभीष्ट को प्रकट करने की स्वतन्त्रता हो; दूत के स्वामी राजा का कुशल-क्षेम तथा उसके गुणों के प्रति शत्रु राजा की उत्सुकता हो; दूत को वह आदरपूर्वक समीप ही बैठाये; राजकीय उत्सवों पर दूत को भी स्मरण करे और दूत के प्रत्येक कार्य पर शत्रु राजा का विश्वास हो; तो दूत को समझना चाहिए कि वह मुझ पर प्रसन्न है। यदि इसके विपरीत आचरण देखे, तो समझ ले कि शत्रु राजा उस पर रुष्ट है। इस प्रकार के रुष्ट हुए राजा से दूत कहे 'स्वामिन्, आप हों, अथवा दूसरे कोई भी राजा हों, दूत सभी का मुख होता है। उसी के माध्यम से राजा लोग पारस्परिक वार्ता-विनिमय करते हैं। इसलिए प्राणघातक स्थिति के आ जाने पर भी दूत सही संदेश ही निवेदित करते हैं। कोई चाण्डाल भी इस कार्य पर नियुक्त किया गया हो तो राजधर्म के अनुसार वह भी अवध्य है, उसी स्थान पर यदि ब्राह्मण हो तो उसके वध के सम्बन्ध में तो सोचा भी नहीं जा सकता है। दूसरे की कही हुई बात को ही दुहरा देना मात्र दूत का कार्य होता है।'

( १ ) जब तक शत्रुराजा उसे अपने राज्य से जाने की आज्ञा न दे तब तक वह वहीं रहे। शत्रुराजा द्वारा प्राप्त सम्मान पर वह गर्व न करे। शत्रुओं के बीच रहता हुआ अपने को वह बलवान् न समझे। किसी के कुवाक्य को भी वह पी ले। स्त्री-प्रसंग और मद्यपान को वह सर्वथा त्याग दे। अपने स्थान में एकाकी ही शयन करे। मद्य पीने तथा दूसरों के साथ शयन करने से प्रमादवश या स्वप्नावस्था में मन के गुप्त रहस्यों के प्रकट हो जाने का भय बना रहता है। दूत को चाहिये कि वह शत्रु-देश के कृत्यपक्ष को फोड़ देने का कार्य तथा अकृत्यपक्ष को वश में कर देने का कार्य अपने गुप्तचरों द्वारा जाने। राजा और अमात्य आदि उच्चाधिकारियों का पारस्परिक राग-द्वेग तथा राजा की बुराइयों का भेद वह तापस, वैदेहक आदि गुप्तचरों के द्वारा अवगत करे। अथवा तापस, वैदेहक आदि के शिष्यों, चिकित्सक तथा पाखण्डी के वेश में रहने वाले गुप्तचरों या उभयवेतनभोगी गुप्तचरों के द्वारा वह शत्रुराजा के रहस्यों का पता करता रहे। यदि इन गुप्तचरों से भी काम बनता न देखे तो, भिक्षुक, मत्त, उन्मत्त तथा सोते में प्रलाप करने वाले व्यक्तियों के माध्यम से शत्रु के

**मत्तोन्मत्तसुप्तप्रलापैः पुण्यस्थानदेवगृहचित्रलेख्यसंज्ञाभिर्वा चारमुपलभेत । उपलब्धस्योपजापमुपेयात् । परेण चोक्तः स्वासां प्रकृतीनां परिमाणं नाचक्षीत । सर्वं वेद भवानिति ब्रूयात्, कार्यसिद्धिकरं वा ।**

**(१) कार्यस्य सिद्धावुपरुध्यमानस्तर्कयेत् । किं भर्तुर्मे व्यसनमासन्नं पश्यन्, स्वं वा व्यसनं प्रतिकर्तुकामः, पार्ष्णिग्राहासारावन्तः—कोपमाटविकं वा समुत्थापयितुकामः, मित्रमाक्रन्दं वा व्यापादयितुकामः, स्वं वा परतो विग्रहमन्तःकोपमाटविकं वा प्रतिकर्तुकामः, संसिद्धं मे भर्तुर्यात्राकालमभिहन्तुकामः, सस्यकुप्यपण्यसङ्ग्रहं दुर्गकर्म बलसमुत्थानं वा कर्तुकामः, स्वसैन्यानां वा व्यायामदेशकालावाकाङ्क्षमाणः, परिभवप्रमदाभ्यां वा, संसर्गानुबन्धार्थी वा मामुपरुणद्धीति ज्ञात्वा वसेदपसरेद्वा । प्रयोजन-**

---

कार्यों का पता लगाता रहे । तीर्थस्थानों, देवालयों, गृहचित्रों तथा लिपिसंकेतों द्वारा भी वह वहाँ के वृत्तान्त जाने । ठीक-ठीक समाचार अवगत हो जाने पर वह तदनुसार भेदरूप उपायों का प्रयोग करे । दूत को चाहिए कि शत्रु के पूछे जाने पर भी वह अपने मन्त्रिपरिषद् का ठीक-ठीक परिचय न दे । 'आप तो सर्वज्ञ हैं' इतना कहकर बात को टाल दे । यदि इतना बताने पर भी शत्रुराजा को सन्तोष न हो तो उतना मात्र परिचय देना चाहिये, जितने से अपने कार्य की सिद्धि हो जाय ।

( १ ) कार्य सिद्ध हो जाने पर भी यदि शत्रुराजा दूत को अपने ही यहाँ रोके रखना चाहता है, तो दूत को, राजा की इस अप्रत्याशित नीति के सम्बन्ध में गम्भीरतापूर्वक विचार करना चाहिए । उसको विचार करना चाहिए कि 'क्या शत्रुराजा को मेरे स्वामी पर आनेवाली किसी सन्निकट विपत्ति का पता लग गया है । या कि वह मेरे जाने से पूर्व ही अपने किसी व्यसन का प्रतीकार करना चाहता है । अथवा वह पार्ष्णिग्राह ( स्वामिराजा का शत्रु एवं शत्रुराजा का मित्र ) तथा आसार ( शत्रुराजा के मित्र का मित्र ) को मेरे स्वामी के विरोध में युद्ध करने के लिए तो नहीं उकसाना चाहता । या उसका इरादा मेरे स्वामी के अमात्य आदि को उससे कुपित करने का तो नहीं है । या कि वह किसी आटविक को भिड़ाने की साजिश तो नहीं रच रहा है । उसकी योजना ऐसी तो नहीं है कि वह मित्र ( स्वामिराजा के सम्मुख प्रदेश का मित्रराजा ) तथा आक्रंद ( स्वामिराजा के पृष्ठप्रदेश का मित्र राजा ) आदि मित्रराष्ट्रों के राजाओं को मरवाना चाहता हो । या अपने ऊपर किये गये आक्रमण का, अपने अमात्य आदि के कोप का तथा अपने आटविक का प्रतीकार तो नहीं करना चाहता है । या कि वह मेरे स्वामी के इस प्रस्तुत आक्रमण को टालने तथा रोकने का यत्न तो नहीं कर रहा है । अथवा वह युद्ध की तैयारी के लिए धातुसंग्रह, किलाबन्दी तथा सैन्य-संग्रह तो नहीं कर रहा है । या वह सैन्य-शिक्षण तथा उचित देश-काल की आकांक्षा में तो नहीं है । अथवा किसी प्रकार के तिरस्कार, प्रीति, विवाह-सम्बन्ध, दोष-वैमनस्य आदि के लिए तो वह मुझे नहीं रोक रहा है ।'

**मिष्टमवेक्षेत वा। शासनमनिष्टमुक्त्वा बन्धवधभयादविसृष्टोऽप्यपगच्छेत्। अन्यथा नियम्येत।**

**(१) प्रेषणं सन्धिपालत्वं प्रतापो मित्रसङ्ग्रहः।**
**उपजापः सुहृद्भेदो दण्डगूढातिसारणम्॥**
**बन्धुरत्नापहरणं चारज्ञानं पराक्रमः।**
**समाधिमोक्षो दूतस्य कर्म योगस्य चाश्रयः॥**
**(२) स्वदूतैः कारयेदेतत् परदूतांश्च रक्षयेत्।**
**प्रतिदूतापसर्पाभ्यां दृश्यादृश्यैश्च रक्षिभिः॥**

इति कौटिलीयार्थशास्त्रे विनयाधिकारिके प्रथमाधिकरणे
दूतप्रणिधिर्नाम पञ्चदशोऽध्यायः॥

---

इस प्रकार के रहस्यों, कारणों और उद्देश्यों के सम्बन्ध में दूत अच्छी तरह से छान-बीन करे। रोके जाने के कारणों का ठीक-ठीक पता लग जाने पर वह उचित समझे तो रुके अन्यथा वहाँ से चल दें। अपने स्वामी की अभीष्ट-सिद्धि लिये वह चाहे तो उसी नगर में रुककर, गुप्त पुरुषों के द्वारा राजा तक सूचनाएँ पहुँचा कर, उनका प्रतीकार करवावे। अपने स्वामी का ऐसा संदेश, जिसको सुनकर शत्रुराजा क्रोधित हो उठे, सुनाने पर, दूत को बिना अनुमति लिये ही वहाँ से कूच कर देना चाहिए अन्यथा उसका पकड़ा जाना निश्चित है।

( १ ) शत्रुप्रदेश में अपने स्वामी का संदेश लेकर जाना; शत्रुराजा का संदेश लाने के लिए जाना, सन्धिभाव को बनाये रखना, समय आने पर अपने पराक्रम को दिखाना, अधिक से अधिक मित्र बनाना, शत्रु के कृत्यपक्ष के पुरुषों को फोड़ देना, शत्रु के मित्रों को उससे विमुख कर देना, तीक्ष्ण, रसद आदि गुप्तचरों एवं अपनी सेना को भगा देना, शत्रु के बांधवों एवं रत्नों का अपहरण ( स्वायत्त ) कर लेना, शत्रु के देश में रहकर गुप्तचरों के कार्यों का निरीक्षण करना, समय आने पर पराक्रम दिखाना, सन्धि की चिरस्थिति के निमित्त जमानत-रूप में रखे हुए राजकुमार को मुक्त कराना और मारण, मोहन, उच्चाटन आदि का प्रयोग करना, ये सभी दूत के कार्य हैं।

( २ ) राजा को चाहिये कि वह उपर्युक्त सभी कार्य दूतों के द्वारा करवाये और शत्रुओं के पीछे अपने दूतों या गुप्तचरों को लगाये रखे। अपने देश में तो वह शत्रु-दूतों के कार्यों का पता प्रकट रूप से लगाये, किन्तु शत्रुदेश में उनकी सूचनायें गुप्तरूप से संग्रह करवाये।

विनयाधिकारिक प्रथम अधिकरण में दूतप्रणिधि नामक पन्द्रहवाँ अध्याय समाप्त।

—: ० :—

# राजपुत्ररक्षणम्

(१) रक्षितो राजा राज्यं रक्षत्यासन्नेभ्यः परेभ्यश्च। पूर्वं दारेभ्यः पुत्रेभ्यश्च।

(२) दाररक्षणं निशान्तप्रणिधौ वक्ष्यामः।

(३) पुत्ररक्षणं जन्मप्रभृति राजपुत्रान् रक्षेत्। कर्कटकसधर्माणो हि जनकभक्षा राजपुत्राः।

(४) तेषामजातस्नेहे पितर्युपांशुदण्डः श्रेयानिति भारद्वाजः।

(५) नृशंसमदृष्टवधः क्षत्रविनाशश्चेति विशालाक्षः। तस्मादेकस्थानावरोधः श्रेयानिति।

(६) अहिभयमेतदिति पाराशराः। कुमारो हि विक्रमभयान्मां पिता रुणद्धीति ज्ञात्वा तमेवाङ्के कुर्यात्। तस्मादन्तपालदुर्गे वासः श्रेयानिति।

---

## राजपुत्रों से राजा की रक्षा

( १ ) निकटवर्ती सम्बन्धियों तथा शत्रुओं से सुरक्षित राजा ही राज्य की रक्षा कर सकता है। राजा को चाहिये कि सर्वप्रथम वह अपनी रानियों और अपने पुत्रों से अपनी रक्षा का प्रबन्ध करे।

( २ ) रानियों से किस प्रकार राजा को आत्मरक्षा करनी चाहिये, इसके उपाय आगे **निशान्तप्रणिधि** प्रकरण में बताये जायेंगे।

( ३ ) अपने पुत्रों से आत्मरक्षा करने के लिए राजा को चाहिए कि वह जन्म से ही राजपुत्रों पर कड़ी निगरानी रखे, क्योंकि केकड़े की भाँति राजपुत्र भी अपने पिता के भक्षक होते हैं।

( ४ ) इस सम्बन्ध में आचार्य भारद्वाज का कहना है कि 'यदि राजकुमारों में पितृभक्ति की भावना न दिखाई दे तो तो उनका चुपचाप वध कर डालना ही श्रेयस्कर है।'

( ५ ) आचार्य विशालाक्ष इसको पापकर्म कहते हैं। उनका कथन है कि 'निरपराध बच्चों को इस प्रकार मरवा डालना घोर पाप और अतिक्रूरता है, इस प्रकार तो क्षत्रियवंश ही सर्वथा नष्ट हो जायगा। इसलिए यदि राजकुमारों में पितृभक्ति न दिखाई दे तो उन्हें किसी स्थान में कैद करके रखा जाना उचित है।'

( ६ ) आचार्य पराशर के अनुयायी इसके भी विरुद्ध हैं। उनका अभिमत है कि 'यह तो सर्पभय के समान है। जैसे घर में घुसा हुआ साँप भयावह होता है,

**(१) औरभ्रकं भयमेतदिति पिशुनः। प्रत्यापत्तेर्हि तदेव कारणं ज्ञात्वान्तपालसखः स्यात्। तस्मात् स्वविषयादपकृष्टे सामन्तदुर्गे वासः श्रेयानिति।**

**(२) वत्सस्थानमेतदिति कौणपदन्तः। वत्सेनेव हि धेनुं पितरमस्य सामन्तो दुह्यात्। तस्मान्मातृबन्धुषु वासः श्रेयानिति।**

**(३) ध्वजस्थानमेतदिति वातव्याधिः। तेन हि ध्वजेनादितिकौशिकवदस्य मातृबान्धवा भिक्षेरन्। तस्माद् ग्राम्यधर्मेष्वेनमवसृजेयुः। सुखोपरुद्धा हि पुत्राः पितरं नाभिद्रुह्यन्तीति।**

**(४) जीवन्मरणमेतदिति कौटिल्यः। काष्ठमिव हि घुणजग्धं राज-**

---

उसी प्रकार पुत्र को कैद में रखना भी भयप्रद है, क्योंकि राजकुमार को जब यह पता चल जायगा कि पिता ने अपने वध के भय से उसे कैद में डाल रखा है, तो वह पिता के घर में रहता हुआ सरलता से उसके वध की योजना तैयार कर सकता है। इसलिए राज्य की सीमा के दूरस्थ दुर्ग में ही राजकुमार को रखना श्रेयस्कर है।'

( १ ) आचार्य पिशुन ( नारद ) इस युक्ति से सहमत नहीं हैं। उनका कहना है कि 'दूरस्थ दुर्ग में राजपुत्र को रखना उसी प्रकार भयावह है, जैसे आक्रमण करने से पूर्व मेढ़ा कुछ पीछे हट जाता है और पुनः दुगुने वेग से झपट पड़ता है। राजकुमार को जब अपने कैद होने का कारण विदित हो जायगा तो वह अपनी योजना को पूरा करने के लिए दुर्गपाल को मित्र बनाकर, उसकी सहायता से अपने पिता पर आक्रमण कर सकता है। इसलिए राजकुमार को, राज्य की सीमा से बाहर किसी पड़ोसी ( मित्र ) राजा के दुर्ग में रखना ही अधिक उपयुक्त है।'

( २ ) आचार्य कोणपदंत की कुछ दूसरी ही स्थापना है। उनकी स्थापना है कि 'राजकुमार को परराज्याश्रित करने का परिणाम यह होगा कि जैसे गाय का बछड़ा दूसरे के हाथ में सौंप देने से इच्छानुसार वह कभी भी गाय को दुह सकता है, वैसे ही राजकुमार का संरक्षक पड़ोसी राजा, राजकुमार को अपने वश में करके उचित-अनुचित रीति से इच्छानुसार विजिगीषु से धन आदि ले सकता है। इसलिए राजकुमार को ननिहाल में रख देना ही उचित जान पड़ता है।'

( ३ ) आचार्य वातव्याधि इस सलाह पर भी आपत्ति प्रकट करते हैं। उनका परामर्श है कि 'राजकुमार को उसके मातृकुल में रखना एक ध्वजा के समान है, जिसको मातृकुल वाले अपनी आमदनी का वैसा ही साधन बनाकर उपयोग कर सकते हैं, जैसा कि अदिति नाम की भिक्षुणी और कौशिक नाम के सँपेरे जीविका-निर्वाह के लिए अपने पेशेवर कौतुकों को दिखाते फिरते हैं। इसलिए राजकुमार को, उसकी इच्छानुसार, विषय-भोग में लिप्त रहने देना चाहिए, क्योंकि विषय-वासनाओं में उलझे हुए राजकुमारों को पिता से द्रोह करने का अवकाश ही नहीं मिलता है।'

( ४ ) आचार्य कौटिल्य इस सिद्धान्त को, जीते-जी राजपुत्रों की हत्या कर देने

**कुलमविनीतपुत्रमभियुक्तमात्रं भज्येत। तस्मादृतुमत्यां महिष्याम् ऋत्विजश्चरुमैन्द्रबार्हस्पत्यं निर्वपेयुः। आपन्नसत्त्वायां कौमारभृत्यो गर्भभर्मणि प्रजने च वियतेत। प्रजातायाः पुत्रसंस्कारं पुरोहितः कुर्यात्। समर्थं तद्विदो विनयेयुः।**

**(१) सत्रिणामेकश्चैनं मृगयाद्यूतमद्यस्त्रीभिः प्रलोभयेत्—पितरि विक्रम्य राज्यं गृहाणेति। तदन्यः सत्री प्रतिषेधयेद् इत्याम्भीयाः।**

**(२) महादोषमबुद्धबोधनमिति कौटिल्यः। नवं हि द्रव्यं येन येनार्थजातेनोपदिह्यते तत्तदाचूषति। एवमयं नवबुद्धिर्यद्यदुच्यते तत्तच्छास्त्रोपदेशमिवाभिजानाति। तस्माद् धर्ममर्थं चास्योपदिशेन्नाधर्ममनर्थं च।**

**(३) सत्रिणस्त्वेनं तव स्म इति वदन्तः पालयेयुः। यौवनोत्सेकात् परस्त्रीषु मनः कुर्वाणमार्याव्यञ्जनाभिः स्त्रीभिरमेध्याभिः शून्यागारेषु रात्रा-**

---

के समान अनर्थकारी बताते हैं। उनका कहना है 'राजकुमारों को इस प्रकार विषय-भोग में फँसाना उन्हें जीते ही मृत्यु के मुख में दे देना है। जिस प्रकार घुन लगी लकड़ी शीघ्र ही नष्ट हो जाती है, उसी प्रकार अशिक्षित राजकुमारों का कुल बिना युद्ध आदि के ही विनष्ट हो जाता है। इसलिए राजा को चाहिए कि जब रानी ऋतुमती हो, तो ( संतति की ) ऐश्वर्य, विद्या, बुद्धि के निमित्त ऋत्विक्, इंद्र और बृहस्पति आदि देवताओं के लिये हविदान किया जाय। जब महारानी गर्भवती हो जाय तो कौमारभृत्य अंग के ज्ञाता शिशु-चिकित्सकों के निर्देशानुसार गर्भ की पुष्टि तथा उसके सुखपूर्वक प्रजनन के लिए यत्न किया जाय। राजकुमार के पैदा हो जाने पर विद्वान् पुरोहित विधिपूर्वक उसका संस्कार करें। जब वह समझने योग्य हो जावे तो विभिन्न विषयों के पारंगत विद्वान् उसको शिक्षा दें।'

( १ ) आचार्य आंभ के मतानुयायियों का कहना है कि 'सत्रियों ( गुप्तचरों ) में से कोई एक सत्री राजकुमार को मृगया, द्यूत, मद्य और स्त्रियों का प्रलोभन दे। यह भी कहे कि पिता पर आक्रमण करके तुम राज्य को ले लो, फिर मौज करो। इस पर दूसरा सत्री कहे ऐसा करना बहुत बुरा है।'

( २ ) आचार्य कौटिल्य के मतानुसार राजकुमार के भीतर यह कुबुद्धि जगाना बहुत ही अनिष्टदायी है। उनका तर्क एवं सुझाव है कि 'सरलमति बालकों में ऐसी कुबुद्धि पैदा करना महादोष कहा जायगा। जैसे मिट्टी का नया वर्तन घी, तेल आदि जिस भी नये द्रव्य का स्पर्श पाकर उसी को चूस लेता है, ठीक वैसे ही, अपरिपक्व बुद्धिवाले बालक को जो कुछ भी सिखाया जाता है, उसको वह शास्त्र-उपदेश की भाँति अमिट रूप से बुद्धि में जमा लेता है। इसलिये सरलमति बालकों को धर्म, अर्थ का ही उपदेश देना चाहिए, अधर्म, अनर्थ का नहीं।'

( ३ ) सत्री लोग 'हम आपके ही हैं' इस अपनत्व को दर्शित करते हुए, राजपुत्र का पालन करें। यदि राजकुमार का युवा मन परस्त्री के लिए बेचैन हो उठता है

**वुद्वेजयेयुः। मद्यकामं योगपानेनोद्वेजयेयुः। द्यूतकामं कापटिकैः पुरुषैरुद्वेजयेयुः। मृगयाकामं प्रतिरोधकव्यञ्जनैस्त्रासयेयुः। पितरि विक्रमबुद्धिं तथेत्यनुप्रविश्य भेदयेयुः। अप्रार्थनीयो राजा, विपन्ने घातः, सम्पन्ने नरकपातः, संक्रोशः प्रजाभिरेकलोष्टवधश्चेति।**

**(१) विरागं प्रियमेकपुत्रं वा बध्नीयात्। बहुपुत्रः प्रत्यन्तमन्यविषयं वा प्रेषयेद्यत्र गर्भः पण्यं डिम्बो वा न भवेत्। आत्मसम्पन्नं सैनापत्ये यौवराज्ये वा स्थापयेत्।**

**(२) बुद्धिमानाहार्यबुद्धिर्दुर्बुद्धिरिति पुत्रविशेषाः। शिष्यमाणो धर्मार्थावुपलभते चानुतिष्ठति च बुद्धिमान्। उपलभमानो नानुतिष्ठत्याहार्यबुद्धिः। अपायनित्यो धर्मार्थद्वेषी चेति दुर्बुद्धिः।**

---

तो उस समय उसके संरक्षकों को चाहिए कि आर्यवेश धारण की हुई अपवित्र, घृण्य स्त्रियों को रात्रि के एकांत में राजकुमार के निकट भेज कर उसके मन में ऐसी घृणा तथा खिन्नता पैदा करायें कि परस्त्री की चाह से उसका मन सर्वथा फिर जाय। यदि वह मद्य पीने की इच्छा करे तो मद्य में कोई ऐसा पदार्थ मिलाकर उसको दिया जाय, जिससे कि मद्य के लिए उसकी अरुचि हो जाय। यदि वह जुआ खेलने की कामना करे तो छली-कपटी लोगों के साथ बैठाकर उसको इतना उद्विग्न किया जाय कि आगे से वह जूआ खेलने का नाम भी न ले। यदि वह शिकार खेलना चाहता है तो कपटवेश धारण किये हुए राजपुरुष बेचैन करके उधर से उसके मन को खिन्न कर दें। यदि वह पिता पर आक्रमण करने की इच्छा रखता है तो पहिले तो उसे बढ़ावा दिया जाय किन्तु ऐन मौके पर उससे कहें 'देखो, राजा के साथ कभी द्वेष नहीं करना चाहिए। यदि तुम असफल हो गए तो तुम्हारी मृत्यु अवश्यंभावी है और जीत भी गए तो पितृघातक होने के कारण तुमको घोर नरक भोगना पड़ेगा, सारी प्रजा तुमको लानत देगी और कोई असंभव नहीं कि एकमत होकर प्रजा तुम्हारा प्राणान्त कर दे। इसलिए तुम्हे इस भयंकर पाप-कर्म से बचना चाहिए।'

( १ ) यदि एक ही राजपुत्र हो, और वह भी पितृद्रोही निकले तो उसे कैद कर देना चाहिए। यदि पुत्र अधिक हों तो उस द्रोही पुत्र को सीमांत प्रदेश अथवा किसी दूसरे देश में प्रवासित कर देना चाहिए, जहाँ कि उचित अन्न-वस्त्र प्राप्त न हो और जहाँ की प्रजा की उसके प्रति कोई सहानुभूति न हो। इसके विपरीत जो राजपुत्र आत्मगुणसंपन्न हो, उसको सेनापति या युवराज के उच्च पद पर नियुक्त किया जाय।

( २ ) राजपुत्रों की तीन श्रेणियाँ हैं : १. बुद्धिमान्, २. आहार्यबुद्धि और ३. दुर्बुद्धि। जो धर्म और अर्थविषयक उपदेश को उचित रीति से ग्रहण करके तदनुसार आचरण करता है, वह 'बुद्धिमान्' है। जो धर्म और अर्थ को समझ तो लेता है,

(१) स यद्येकपुत्रः पुत्रोत्पत्तावस्य वियतेत । पुत्रिकापुत्रानुत्पादयेद्वा । वृद्धस्तु व्याधितो वा राजा मातृबन्धुकुल्यगुणवत्सामन्तानामन्यतमेन क्षेत्रे बीजमुत्पादयेत् । न चैकपुत्रमविनीतं राज्ये स्थापयेत् ।

(२) बहूनामेकसंरोधः पिता पुत्रहितो भवेत् ।
अन्यत्रापद ऐश्वर्यं ज्येष्ठभागि तु पूज्यते ॥

(३) कुलस्य वा भवेद्राज्यं कुलसङ्घो हि दुर्जयः ।
अराजव्यसनाबाधः शश्वदावसति क्षितिम् ॥

इति विनयाधिकारिके प्रथमाधिकरणे राजपुत्ररक्षणं नाम
षोडशोऽध्यायः ॥

—: ० :—

---

किन्तु तदनुसार अपना आचरण नहीं बना पाता उसे 'आहार्यबुद्धि' कहते हैं। जो बुराइयों में लीन तथा धर्म और अर्थ से द्वेष रखता है वह 'दुर्बुद्धि' है।

( १ ) यदि राजा का एक ही पुत्र हो और वह भी दुर्बुद्धि निकले तो राजा उस दुर्बुद्धि राजकुमार से ऐसा पुत्र पैदा कराने का यत्न करे, जो राजा बनने के योग्य हो। यदि ऐसा भी संभव न हो तो अपनी पुत्री के पुत्र को राज्य का उत्तराधिकार सँभालने के योग्य बनाये। यदि राजा बूढ़ा हो गया हो, या सदैव रुग्ण ही रहता हो, तो अपने किसी ममेरे भाई अथवा अपने ही कुल के किसी बंधु से या किसी गुणवान सामंत से अपनी स्त्री में नियोग कराकर पुत्र पैदा करवावे। किन्तु अयोग्य अशिक्षित पुत्र को राज्यभार न सौंपे।

( २ ) यदि अनेक पुत्रों में एक पुत्र दुर्बुद्धि हो तो उसे किसी दूसरे देश में भेज कर रोक रखे। वैसे राजा को चाहिए कि सर्वदा ही वह अपने पुत्रों की कल्याण-कामना करता रहे। यदि सभी पुत्र राजा को एक समान प्रिय हों, तो उस अवस्था में वह ज्येष्ठ पुत्र को ही राजा बनावे।

( ३ ) अथवा वे सभी भाई मिलकर राज्य को सँभालें, क्योंकि यदि राज्य का संचालन सामुदायिक ढंग से हुआ तो निश्चित ही वह राज्य दुर्जय होता है। सामुदायिक राज्य-व्यवस्था से एक बड़ा लाभ यह भी है कि एक व्यक्ति के व्यसनग्रस्त हो जाने पर दूसरे व्यक्ति उसके कार्य को सँभाल लेते हैं और इस प्रकार सर्वदैव प्रजा की सुखमय अवस्था पृथ्वी पर बनी रहती है।

विनयाधिकारिक प्रथम अधिकरण में राजपुत्ररक्षण
नामक सोलहवाँ अध्याय समाप्त।

—: ० :—

प्रकरण १३

अध्याय १७

# अवरुद्धवृत्तम्, अवरुद्धे च वृत्तिः

(१) राजपुत्रः कृच्छ्रवृत्तिरसदृशे कर्मणि नियुक्तः पितरमनुवर्तेत, अन्यत्र प्राणाबाधकप्रकृतिकोपपातकेभ्यः। पुण्यकर्मणि नियुक्तः पुरुषमधिष्ठातारं याचेत। पुरुषाधिष्ठितश्च सविशेषमादेशमनुतिष्ठेत्। अभिरूपं च कर्मफलमौपायनिकं च लाभं पितुरुपनाययेत्।

(२) तथाऽप्यतुष्यन्तमन्यस्मिन् पुत्रे दारेषु वा स्निह्यन्तमरण्याय आपृच्छेत्। बन्धवधभयाद् वा यः सामन्तो न्यायवृत्तिर्धार्मिकः सत्यवागविसंवादकः प्रतिग्रहीता मानयिता चाभिपन्नानां तमाश्रयेत। तत्रस्थः कोशदण्डसम्पन्नः प्रवीरपुरुषकन्यासम्बन्धमटवीसम्बन्धं कृत्यपक्षोपग्रहं वा कुर्यात्।

## नजरबन्द राजकुमार और राजा का पारस्परिक व्यवहार

### नजरबन्द राजकुमार का व्यवहार

( १ ) अपनी हैसियत से निम्न कार्य पर नियुक्त एवं कठिनाई से जीवन-यापन करने वाले राजपुत्र को चाहिए कि अपने पिता के आदेशों का वह पूर्णतः पालन करे। परन्तु किसी कार्य को करने में यदि प्राणभय, अमात्य आदि प्रकृतियों के कुपित होने का भय अथवा पातकभय हो तो राजपुत्र को चाहिए कि वह पिता के आदेशों का कदापि पालन न करे। किसी पुण्यकार्य में नियुक्त राजपुत्र अपने लिए एक संरक्षक ( अधिष्ठाता ) की माँग करे और उसके निर्देशानुसार वह राजा की आज्ञाओं का पालन करे। कार्य के अनुसार उसको जो कुछ फल प्राप्त हो और प्रजाजनों से उसको जो कुछ भी उपहार मिलें, उनको वह पिता के पास भिजवा दे।

( २ ) इस पर भी यदि राजा संतुष्ट न हो और दूसरे पुत्रों तथा स्त्रियों के साथ विशेष स्नेह-प्रेम प्रदर्शित करता रहे तो राजपुत्र को चाहिए कि वह अपने पिता की आज्ञा लेकर तपस्या आदि करने के लिए जंगल में चला जाय। अथवा ऐसा करने पर यदि उसको गिरफ्तार होने या मारे जाने का भय हो तो वह ऐसे राजा की शरण में चला जाय, जो न्यायपरायण, धार्मिक, सत्यवादी, धोखा न देनेवाला, शरणागत की रक्षा करनेवाला और आश्रय में आये हुए व्यक्ति का स्वागत-सत्कार करनेवाला हो। वहाँ रहकर वह धन-बल से संपन्न होकर किसी वीर पुरुष की कन्या से विवाह कर ले और तब अपने पिता के आटविक लोगों से मित्रता कर वहाँ के कृत्यपक्ष को अपने साथ मिलाने का यत्न करे।

**(१) एकचरः सुवर्णपाकमणिरागहेमरूप्यपण्याकरकर्मान्तानाजीवेत् । पाषण्डसङ्घद्रव्यमश्रोत्रियभोग्यं देवद्रव्यमाढ्यविधवाद्रव्यं वा गूढमनुप्रविश्य सार्थयानपात्राणि च मदनरसयोगेनातिसन्धायावहरेत । पारग्रामिकं वा योगमातिष्ठेत् । मातुः परिजनोपग्रहेण वा चेष्टेत । कारुशिल्पिकुशीलवचिकित्सकवाग्जीवनपाषण्डच्छद्मभिर्वा नष्टरूपस्तद्व्यञ्जनसखश्छिद्रे प्रविश्य राज्ञः शस्त्ररसाभ्यां प्रहृत्य ब्रूयात्—अहमसौ कुमारः, सहभोग्यमिदं राज्यमेको नार्हति भोक्तुं, तत्र ये कामयन्ते भर्तुं तानहं द्विगुणेन भक्तवेतनेनोपस्थास्य इति, इत्यवरुद्धवृत्तम् ।**

**(२) अवरुद्धं तु मुख्यपुत्रमपसर्पाः प्रतिपाद्यानयेयुः, माता वा प्रतिगृहीता । त्यक्तं गूढपुरुषाः शस्त्ररसाभ्यां हन्युः । अत्यक्तं तुल्यशीलाभिः स्त्रीभिः पानेन मृगयया वा प्रसज्य रात्रावुपगृह्यानयेयुः ।**

---

( १ ) यदि राजपुत्र को धन-बल की उपलब्धि न हो तो वह रासायनिक कर्मों के द्वारा मणि, मुक्ता, सुवर्ण, चाँदी आदि विक्रेय पदार्थों को बनाकर उनके अथवा दूसरे खनिज पदार्थों के व्यापार द्वारा अपनी जीविका चलाये। अथवा पाखंडी, अधर्मी पुरुषों की संचित कमाई को श्रोत्रिय के अतिरिक्त दूसरे लोगों के भोग्य द्रव्य को, देव-निमित्तक द्रव्य को या किसी धन-सम्पन्न विधवा के द्रव्य को चोरी करके अपना जीविकोपार्जन करे । या जहाजी व्यापारियों को औषधि आदि से बेहोश कर उन्हें धोखा देकर उनके धन का अपहरण करे । अथवा विजिगीषु राजा जब किसी दूसरे गाँव को चला जाय, तब उसके यहाँ से धन का अपहरण करे, अथवा अपनी माता के परिजनों को अपने अनुकूल बनाकर उनके द्वारा अपने उद्धार की चेष्टा करे । अथवा बढ़ई, लुहार, नट, वैद्य, भाट, कथावाचक, पाखंडी आदि पुरुषों के साथ अपने वेश को छिपाकर, किन्तु उनके सदृश न बनकर, अपने पिता के दोषों का पता लगाकर उन्हीं को पकड़ कर शस्त्र या जहर के द्वारा राजा को मारकर फिर अमात्य आदि से वह इस प्रकार कहे : 'मैं ही असली राजकुमार हूँ, साझे में भोगे जाने वाले राज्य को कोई भी अकेले नहीं भोग सकता है, जो राजकर्मचारी पूर्ववत् शान्ति से अपने पदों पर बने रहना चाहते हैं, उन्हें मैं दुगुना वेतन दूँगा ।' यहाँ तक नज़रबन्द राजकुमार के व्यवहार का निरूपण किया गया ।

## राजकुमार के प्रति राजा का व्यवहार

( २ ) अमात्य आदि मुख्य पुरुषों के पुत्र गुप्तरूप में जाकर नजरबन्द राजकुमार को यह दिलासा देकर मना ले आवें कि राजा उसको अवश्य ही युवराज बनायेगा । या राजा से सत्कृत राजपुत्र की माता ही उसको मना ले आवे । यदि वह राजपुत्र किसी भी तरीके से राजा का कहना न माने तो उस दशा में राजा को यही उचित

(१) उपस्थितं च राज्येन मदूर्ध्वमिति सान्त्वयेत् ।
एकस्थमथ संरुन्ध्यात् पुत्रवान् वा प्रवासयेत् ।।

इति विनयाधिकारिके प्रथमाधिकरणेऽवरुद्धवृत्तमवरुद्धे च
वृत्तिर्नाम सप्तदशोऽध्यायः ।।

—: ० :—

---

है कि उस सर्वथा परित्याज्य राजपुत्र को वह गुप्तचरों से शस्त्र या विष आदि के द्वारा मरवा डाले । यदि अभी तक राजा ने उसका परित्याग न किया हो तो ऐसी स्थिति में समान स्वभाव वाली स्त्रियों के द्वारा मद्य आदि पिलाकर या शिकार आदि के बहाने रात में गिरफ्तार कर उसको राजा के सामने लाये जाने का यत्न किया जाय ।

( १ ) अपने पास लाये जाने पर राजा उस राजकुमार से कहे कि 'मेरे बाद इस राज्य के स्वामी तुम्हीं बनोगे' ऐसा कहकर संतुष्ट करे । यदि वह एक ही पुत्र हो और अधार्मिक साबित हो तो उसे बन्दी बनाकर रखे और यदि अनेक पुत्र हों तो उसको देशनिकाला दे दे या मरवा डाले ।

विनयाधिकारिक प्रथम अधिकरण में अवरुद्धवृत्त नामक सत्रहवाँ अध्याय समाप्त ।

—: ० :—

# राजप्रणिधिः

(१) राजानमुत्तिष्ठमानमनूत्तिष्ठन्ते भृत्याः। प्रमाद्यन्तमनुप्रमाद्यन्ति। कर्माणि चास्य भक्षयन्ति। द्विषद्भिश्चातिसन्धीयते। तस्मादुत्थानमात्मनः कुर्वीत। नाडिकाभिरहरष्टधा रात्रिं च विभजेत्; छायाप्रमाणेन वा। त्रिपौरुषी पौरुषी चतुरङ्गुला च च्छाया मध्याह्न इति चत्वारः पूर्वे दिवसस्याष्टभागाः। तैः पश्चिमा व्याख्याताः।

(२) तत्र पूर्वे दिवसस्याष्टभागे रक्षाविधानमायव्ययौ च शृणुयात्। द्वितीये पौरजानपदानां कार्याणि पश्येत्। तृतीये स्नानभोजनं सेवेत;

## राजा के कार्य-व्यापार

( १ ) राजा के उन्नतिशील होने पर ही उसका सारा भृत्यवर्ग उन्नतिशील होता है। इसके विपरीत राजा के प्रमादी होने पर सारा भृत्यवर्ग प्रमाद करने लगता है। उस दशा में वह प्रमादित भृत्यवर्ग राज्यकार्यों को चुपचाप पी जाता है। ऐसा राजा शत्रुओं के धोखे में आ जाता है। इसलिए राजा को उचित है कि वह अपने आपको सदा ही उन्नतिशील बनाये रखे। राजकार्य को व्यवस्थित ढंग से संचालित करने के लिए वह दिन और रात को आठ-आठ घड़ियों में बाँट दे। अथवा पुरुष की छाया से भी वह समय का विभाजन कर सकता है। सूर्योदय से लेकर जब तक पुरुष की छाया तिगुनी लंबी रहे, वह दिन का पहिला आठवाँ हिस्सा है। इस छाया को 'त्रिपौरुषी' छाया कहते हैं। इसी प्रकार वह छाया जब एक पुरुष के बराबर लंबी रह जाय तो, वह दिन का दूसरा भाग है। उसको 'एकपौरुषी' छाया कहते हैं। तदनंतर वही 'एकपौरुषी' छाया घटकर जब चार अंगुल मात्र रह जाय तो वह दिन का तीसरा भाग है। उसको 'चतुरंगुली' छाया कहते हैं। उसके बाद का समय मध्याह्न कहलाता है। दिन का यह चौथा भाग है। मध्याह्न के उपरांत इसी क्रम से त्रिपौरुषी, पौरुषी, चतुरंगुला और दिनांत, ये चार भाग हैं। इस प्रकार दिन के ये आठ भाग हुए।

( २ ) पूर्वार्द्ध के प्रथम भाग में राजा रक्षा-संबंधी कार्यों का निरीक्षण करे और बीते हुए दिन के आय-व्यय की जाँच करे। दूसरे भाग में वह पुरवासियों तथा जनपदवासियों के कार्यों का निरीक्षण करे। तीसरे भाग में स्नान, भोजन तथा स्वाध्याय

**स्वाध्यायं च कुर्वीत। चतुर्थे हिरण्यप्रतिग्रहमध्यक्षांश्च कुर्वीत। पञ्चमे मन्त्रिपरिषदा पत्रसम्प्रेषणेन मन्त्रयेत; चारगुह्यबोधनीयानि च बुद्धयेत। षष्ठे स्वैरविहारं मन्त्रं वा सेवेत। सप्तमे हस्त्यश्वरथायुधीयान् पश्येत्। अष्टमे सेनापतिसखो विक्रमं चिन्तयेत्। प्रतिष्ठितेऽहनि सन्ध्यामुपासीत।**

**(१) प्रथमे रात्रिभागे गूढपुरुषान्पश्येत्। द्वितीये स्नानभोजनं कुर्वीत स्वाध्यायं च। तृतीये तूर्यघोषेण संविष्टश्चतुर्थपञ्चमौ शयीत। षष्ठे तूर्यघोषेण प्रतिबुद्धः शास्त्रमितिकर्तव्यतां च चिन्तयेत्। सप्तमे मन्त्रमध्यासीत; गूढपुरुषांश्च प्रेषयेत्। अष्टमे ऋत्विगाचार्यपुरोहितसखः स्वस्त्ययनानि प्रतिगृह्णीयात्; चिकित्सकमाहानसिकमौहूर्तिकांश्च पश्येत्। सवत्सां धेनुं वृषभं च प्रदक्षिणीकृत्योपस्थानं गच्छेत्।**

**(२) आत्मबलानुकूल्येन वा निशाहर्भागान् प्रविभज्य कार्याणि सेवेत।**

---

करे और चौथे भाग में बीते दिन की अवशिष्ट आमदनी को सँभाले तथा उसी भाग में विभिन्न कार्यों पर अध्यक्ष आदि की नियुक्ति भी करे। उत्तरार्ध के पाँचवें भाग में वह मंत्रि-परिषद् के परामर्श से पत्र भेजे तथा आवश्यक कार्यों के संबंध में विचार-विनिमय करे। इसी समय वह गुप्तचरों के कार्यों एवं गुप्त बातों के संबंध में जाने-सुने। छठे भाग में वह स्वतंत्र होकर स्वेच्छया विहार तथा विचार करे। सातवें भाग में वह हाथी, घोड़े, रथ तथा अस्त्र-शस्त्रों का निरीक्षण करे। अंतिम आठवें भाग में वह सेनापति के साथ युद्ध आदि के संबंध में विचार-विमर्श करे। दिनांत के बाद वह संध्योपासन करे।

( १ ) इसी प्रकार रात्रि के पहिले भाग में वह गुप्तचरों को देखे। दूसरे भाग में स्नान, भोजन, स्वाध्याय, तीसरे भाग में संगीत सुनता हुआ शयन करे और चौथे पाँचवें भाग तक सोता रहे। रात्रि के छठे भाग में संगीत के द्वारा जागा हुआ वह अर्थशास्त्रसंबंधी तथा दिन में संपादित किये जाने योग्य कार्यों पर विचार करे। सातवें भाग में गुप्त-मंत्रणा करे और गुप्तचरों को यथास्थान भेजे। रात्रि के अंतिम आठवें भाग में ऋत्विक्, आचार्य तथा पुरोहित के साथ स्वस्तिवाचन-सहित आशीर्वाद ग्रहण करे। इसी समय वह वैद्य, प्रधान रसोइयाँ और ज्योतिषी आदि से भी तत्संबंधी बातों पर परामर्श करे। इन सब कार्यों से निवृत हो वह बछड़े वाली गाय और बैल की प्रदक्षिणा करके राज-दरबार में प्रवेश करे।

( २ ) ऊपर का काल-विभाग सामान्य-दृष्टि से निरूपित किया गया है, वैसे शक्ति तथा अनुकूल परिस्थितियो के अनुसार स्वेच्छया राजा अपनी कार्य-व्यवस्था को स्वयं भी निर्धारित कर सकता है।

**(१) उपस्थानगतः कार्यार्थिनामद्वारासङ्गं कारयेत्। दुर्दर्शो हि राजा कार्याकार्यविपर्यासमासन्नैः कार्यते। तेन प्रकृतिकोपमरिवशं वा गच्छेत्। तस्माद्देवताश्रमपाषण्डश्रोत्रियपशुपुण्यस्थानानां बालवृद्धव्याधितव्यसन्यनाथानां स्त्रीणां च क्रमेण कार्याणि पश्येत्; कार्यगौरवादात्ययिकवशेन वा।**

**(२) सर्वमात्ययिकं कार्यं शृणुयान्नातिपातयेत्।**
**कृच्छ्रसाध्यमतिक्रान्तमसाध्यं वा विजायते॥**

**(३) अग्न्यगारगतः कार्यं पश्येद्वैद्यतपस्विनाम्।**
**पुरोहिताचार्यसखः प्रत्युत्थायाभिवाद्य च॥**

**(४) तपस्विनां तु कार्याणि त्रैविद्यैः सह कारयेत्।**
**मायायोगविदां चैव न स्वयं कोपकारणात्॥**

---

( १ ) राजा जब दरबार में हो तो प्रत्येक कार्यार्थी को वह बिना रोक-टोक प्रवेश करने की अनुमति दे दे। क्योंकि जो राजा कठिनाई से प्रजा को दर्शन देता है, उसके समीप रहने वाले कर्मचारी उसके कार्यों को उलट-पलट कर देते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि राजा के अमात्य आदि उससे कुपित हो जाते हैं, राजकार्य शिथिल पड़ जाते हैं, राजा अपने शत्रुओं के अधीन हो जाता है। इसलिए राजा को उचित है कि देवालय, ऋषि-आश्रम, धूर्तपाखंडियो के केंद्र, वेदपाठी ब्राह्मणों के संस्थान, पशुशाला आदि स्थानों का और बाल, वृद्ध, रुग्ण, दुखित, अनाथ तथा स्त्रियों से संबद्ध कार्यों का स्वयमेव विधिपूर्वक निरीक्षण करे। इनमें से यदि कोई कार्य अत्यावश्यक है, अथवा उसकी अवधि बीत रही है तो उसी का निरीक्षण राजा पहिले करे।

( २ ) राजा को चाहिए कि पहिले वह उस कार्य को देखे, जिसकी मियाद बहुत बीत चुकी है। उसको देखने में वह अधिक विलंब न करे। क्योकि इस प्रकार अवधि बीत जाने पर कार्य या तो कष्टसाध्य हो जाता है अथवा सर्वथा असाध्य हो जाता है।

( ३ ) राजा को चाहिए कि पुरोहित एवं आचार्य के साथ यज्ञशाला में उपस्थित होकर उन विद्वानों और तपस्वियों के कार्यों को खड़े ही खड़े अभिवादनपूर्वक देखे।

( ४ ) तपस्वियों तथा मायावी लोगों के कार्यों का निर्णय राजा, अकेला न करके वेदविद् विद्वानों के साथ बैठकर करे। अकेले वह उन लोगों के कोप का कारण न बने।

(१) राज्ञो हि व्रतमुत्थानं यज्ञः कार्यानुशासनम् ।
दक्षिणा वृत्तिसाम्यं च दीक्षितस्याभिषेचनम् ॥
(२) प्रजासुखे सुखं राज्ञः प्रजानां च हिते हितम् ।
नात्मप्रिय हितं राज्ञः प्रजानां तु प्रियं हितम् ॥
(३) तस्मान्नित्योत्थितो राजा कुर्यादर्थानुशासनम् ।
अर्थस्य मूलमुत्थानमनर्थस्य विपर्ययः ॥
(४) अनुत्थाने ध्रुवो नाशः प्राप्तस्यानागतस्य च ।
प्राप्यते फलमुत्थानाल्लभते चार्थसम्पदम् ॥

इति विनयाधिकारिके प्रथमाधिकरणे राजप्रणिधिर्नामाष्टादशोऽध्यायः ।

—: ० :—

---

( १ ) उद्योग करना, यज्ञ करना, अनुशासन करना, दान देना, शत्रु और मित्रों में—उनके गुण-दोषों के अनुसार समान व्यवहार करना, दीक्षा समाप्त कर अभिषेक करना, ये सब राजा के नैमित्तिक व्रत हैं ।

( २ ) प्रजा के सुख में राजा का सुख और प्रजा के हित में राजा का हित है । अपने आप को अच्छे लगने वाले कार्यों को करने में राजा का हित नहीं, बल्कि उसका हित तो प्रजाजनों को अच्छे लगने वाले कार्यों के संपादन करने में है ।

( ३ ) इसलिए राजा को चाहिए कि उद्योगशील होकर वह व्यवहार-संबंधी तथा राज्य-संबंधी कार्यों को उचित रीति से पूरा करे । उद्योग ही अर्थ का मूल है, और इसके विपरीत, उद्योगहीनता ही अनर्थों को देने वाली है ।

( ४ ) राजा यदि उद्योगी न हुआ तो उसके प्राप्त अर्थों और प्राप्तव्य अर्थों, दोनों का ही नाश हो जाता है; किंतु जो राजा उद्योगी है, वह शीघ्र उद्योग का मधुर फल पाता है और इच्छित सुख-संपदा का उपभोग करता है ।

विनयाधिकारिक प्रथम अधिकरण में अट्ठारहवाँ अध्याय समाप्त ।

—: ० :—

| प्रकरण १५ | |
|---|---|
| अध्याय १९ | **निशान्तप्रणिधिः** |

(१) वास्तुकप्रशस्ते देशे सप्राकारपरिखाद्वारमनेककक्ष्यापरिगतमन्तःपुरं कारयेत्।

(२) कोशगृहविधानेन वा मध्ये वासगृहं, गूढभित्तिसञ्चारं मोहनगृहं तन्मध्ये वा वासगृहं, भूमिगृहं वाऽऽसन्नकाष्ठचैत्यदेवतापिधानद्वारमनेकसुरुङ्गासञ्चारं प्रासादं वा गूढभित्तिसोपानं, सुषिरस्तम्भप्रवेशापसारं वा, वासगृहं यन्त्रवद्धतलावपातं कारयेद् आपत्प्रतीकारार्थम्। आपदि वा कारयेत्। अतोऽन्यथा वा विकल्पयेत्; सहाध्यायिभयात्।

(३) मानुषेणाग्निना त्रिरपसव्यं परिगतमन्तःपुरमग्निरन्यो न

---

## राजभवन का निर्माण और राजा के कर्त्तव्य

( १ ) वास्तुविद्या के विशेषज्ञ ( इञ्जीनियर ) जिस स्थान को उपयुक्त बतायें, उसी स्थान पर ऐसे अन्तःपुर का निर्माण कराना चाहिये, जिसके चारों ओर परकोटा एवं खाई और जिसमें अनेक ड्योढ़ियाँ हो।

( २ ) या कोशागार-निर्माण के विधानानुसार अन्तःपुर के बीच में राजा अपना महल बनवावे, या ऐसा मकान बनवाये, जिसकी दीवालों तथा गलियों ( रास्तों ) का पता न लगे, ऐसे मकान को मोहनगृह ( भूलभुलैया ) कहते हैं, उसके बीच में राजा अपने रहने का मकान बनवाये, या भूमि को खुदवा कर उसमें घर बनवाये, उस भूमिगृह के दरवाजे पर, समीप ही किसी देवता की मूर्ति स्थापित करवाये, उसमें जाने-आने के लिए गुप्त सुरंगें हों, या तो फिर ऐसा महल बनवाये, जिसकी दीवारों के भीतर गुप्त मार्ग हो, अथवा पोले खंभों के भीतर आने-जाने तथा चढ़ने-उतरने का रास्ता हो, अथवा आपत्तिकाल के निवारण के लिए यन्त्रों के आधार पर ऐसा वासगृह बनवाये जिसको इच्छानुसार नीचे-ऊपर तथा इधर-उधर हटाया जा सके, अथवा आपत्तिकाल के उपस्थित हो जाने पर ऐसे भवन का निर्माण करवाये। यदि राजा को इस बात की आशंका हो कि उसके समान ही दूसरा शत्रु राजा भी नीति-निपुण वास्तुकलाविद् है और वह गुप्तभवन-निर्माणसम्बन्धी सभी रहस्यों को जानता है तो वह अपनी बुद्धि के अनुसार उसमें परिवर्तन कर दे।

( ३ ) मनुष्य की हड्डी में बांस के रगड़ने से उत्पन्न अग्नि का स्पर्श, यदि अथर्व-

**दहति; न चात्रान्योऽग्निर्ज्वलति; वैद्युतेन भस्मना मृत्संयुक्तेन कनकवारिणाऽवलिप्तं च।**

**(१) जीवन्तीश्वेतामुष्ककपुष्पवन्दाकाभिरक्षीवे जातस्याश्वत्थस्य प्रतानेन वा गुप्तं सर्पा विषाणि वा न प्रसहन्ते। मार्जारमयूरनकुलपृषतोत्सर्गः सर्पान्भक्षयति। शुकः शारिका भृङ्गराजो वा सर्पविषशङ्कायां क्रोशति। क्रौञ्चो विषाभ्याशे माद्यतिः ग्लायति जीवञ्जीवकः; म्रियते मत्तकोकिलः; चकोरस्याक्षिणी विरज्येते। इत्येवम् अग्निविषसर्पेभ्यः प्रतिकुर्वीत।**

**(२) पृष्ठतः कक्ष्याविभागे स्त्रीनिवेशो गर्भव्याधिवैद्यप्रत्याख्यातसंस्था वृक्षोदकस्थानं च। बहिः कन्याकुमारपुरम्। पुरस्तादलङ्कारभूमिर्मन्त्रभूमिरुपस्थानं कुमाराध्यक्षस्थानं च। कक्ष्यान्तरेष्वन्तर्वंशिकसैन्यं तिष्ठेत्।**

---

वेद के मन्त्रोच्चारण के साथ-साथ बांई ओर से तीन परिक्रमा करते हुए, कराया जाय तो उस अंतःपुर को आग नहीं जला सकती; और न दूसरी अग्नि ही वहाँ जल सकती है। बिजली के गिरने से जले हुए पेड़ की राख लेकर उसमें उतनी ही मिट्टी मिला दी जाय और दोनों को धतूरे के पानी के साथ गूँथकर यदि उसका दीवारों पर लेपन किया जाय तब भी वहाँ दूसरी अग्नि असर नहीं कर सकती है।

( १ ) गिलोय, शंखपुष्पी, कालीपांढरी और करौंदे के पेड़ पर लगे हुए बंदे की माला आदि के रख देने; अथवा सहिजन ( सैजन ) के पेड़ के ऊपर पैदा हुए पीपल के पत्तो के बंदनवार बाँध देने से अंतःपुर में सर्प, विच्छू आदि विषैले जंतुओं तथा दूसरे विषों का कोई प्रभाव नहीं होता है। बिल्ली, मोर, नेवला और मृग आदि भी साँपों को खा जाते हैं। अन्न आदि में सर्प-विष की आशंका होने पर तोता, मैना और बड़ा भौंरा चिल्लाने लगते हैं। विष के समीप होने पर क्रौंच पक्षी विह्वल हो जाता है। जीवंजीव ( चकोर के समान एक पक्षी ) नामक पक्षी जहर को देखकर मुरझा जाता है। कोयल विष को देखकर मर जाती है। विष को देखकर चकोर की आँखें लाल हो जाती हैं। इन सब उपायों के द्वारा राजा अपने आप को तथा अंतःपुर को अग्नि, सर्प और विष के भय से बचा कर रखे।

( २ ) राजमहल के पीछे कक्ष्याभाग में रनिवास, उसके समीप ही प्रसूता, बीमार तथा असाध्य रोगिणी स्त्रियों के लिए अलग-अलग तीन आवास बनवाये जायँ और उन्हीं के साथ छोटे-छोटे उद्यान तथा सरोवरों का निर्माण किया जाय। बाहर की ओर राजकुमारियों और युवक राजकुमारों के लिए स्थान बनवाये जायँ। राजमहल के आगे हरी-हरी घास और फूलों से सजे हुए उपवन होने चाहिए। उसके

**(१) अन्तर्गृहगतः स्थविरस्त्रीपरिशुद्धां देवीं पश्येत् । न काञ्चिदभिगच्छेत् । देवीगृहे लीनो हि भ्राता भद्रसेनं जघान; मातुः शय्यान्तर्गतश्च पुत्रः कारूशम् । लाजान् मधुनेति विषेण पर्यस्य देवी काशिराजं, विषदिग्धेन नूपुरेण वैरन्त्यं, मेखलामणिना सौवीरं, जालूथमादर्शेन, वेण्यां गूढं शस्त्रं कृत्वा देवी विडूरथं जघान । तस्मादेतान्यास्पदानि परिहरेत् ।**

**(२) मुण्डजटिलकुहकप्रतिसंसर्गं बाह्याभिश्च दासीभिः प्रतिषेधयेत् । न चैनाः कुल्याः पश्येयुरन्यत्र गर्भव्याधिसंस्थाभ्यः । रूपाजीवाः स्नानप्रघर्षशुद्धशरीराः परिवर्तितवस्त्रालङ्काराः पश्येयुः । आशीतिकाः पुरुषाः पञ्चाशत्काः स्त्रियो वा मातापितृव्यञ्जनाः स्थविरवर्षवराभ्यागारिकाश्चावरोधानां शौचाशौचं विद्युः, स्थापयेयुश्च स्वामिहिते ।**

---

बाद मंत्रसभा का स्थान, फिर दरबार और तदनन्तर युवक राजकुमार, समाहर्त्ता-सन्निधाता आदि अध्यक्षों के प्रधान कार्यालय होने चाहिए । कक्ष्याओं के बीच-बीच में कंचुकी तथा अंतःपुररक्षकों की उपस्थिति रहे ।

( १ ) रनिवास के अंदर जाकर राजा किसी विश्वस्त बूढ़ी परिचारिका के साथ महारानी से मिले । अकेला किसी रानी के पास न जाये, क्योंकि ऐसा करने में कभी कभी बड़ा धोखा हो जाता है । कहा जाता है कि पहले कभी भद्रसेन नामक राजा के भाई वीरसेन ने उसकी रानी से मिलकर छिपे में भद्रसेन राजा को मार डाला था । इसी प्रकार माता की शय्या के नीचे छिपे हुए राजकुमार ने अपने पिता कारूश को मार डाला था । इसी प्रकार काशीराज की रानी ने धान की खीलों में मधु के बहाने विष मिलाकर अपने पति को मार डाला था । इसी भाँति विष में बुझे नूपुर के द्वारा वैरन्त्य राजा को और विष-बुझी करधनी की मणि से सौबीर राजा को, शीशे के द्वारा जालूथ राजा को और अपनी बेणी में शस्त्र छिपाकर बिडूरथ राजा को, उनकी रानियों ने धोखे में मार डाला था । इसलिए रानियों से मिलते समय, राजा को इस प्रकार की अदृष्ट विपत्तियों से सावधान रहना चाहिए ।

( २ ) राजा को चाहिए कि वह मुंडी, जटी इसी प्रकार के अन्य धूर्त और बाहर की दासियों के साथ रानियों का संपर्क न होने दे । रानियों के सगे-संबंधी भी उन्हें प्रसव या बीमारी की अवस्था के अतिरिक्त न देखने पावें । स्नान, उबटन के बाद सुंदर वस्त्राभूषणों से अलंकृत होकर वेश्याएँ राजा के निकट जायँ । अस्सी वर्ष की अवस्था के पुरुष तथा पचास वर्ष की बूढ़ी स्त्रियाँ माता-पिता की भाँति रानियों के हितचिंतन में रत रहें । अतःपुर के दूसरे वृद्ध तथा नपुंसक पुरुष रानियों के चरित्र का ध्यान रखें और उनको राजा की हितकामना में लगाये रखें ।

(१) स्वभूमौ च वसेत् सर्वः परभूमौ न सञ्चरेत् ।
न च बाह्येन संसर्गं कश्चिदाभ्यन्तरो व्रजेत् ॥
(२) सर्वं चावेक्षितं द्रव्यं निबद्धागमनिर्गमम् ।
निर्गच्छेदधिगच्छेद्वा मुद्रासंक्रान्तभूमिकम् ॥

इति विनयाधिकारिके प्रथमाधिकरणे निशान्तप्रणिधि-
र्नामैकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

—: o :—

---

( १ ) अंत.पुर के सभी परिचारक-परिचारिकायें अपने-अपने स्थानों पर ही रहें, एक दूसरे के स्थान पर न जाने पावें । इसी प्रकार भीतर का कोई भी आदमी बाहर के आदमियों से न मिलने पावे ।

( २ ) जो भी वस्तु महल से बाहर आवे तथा महल में जावे उसका भली-भाँति निरीक्षण कर और उसके संबंध के सारे विवरण रजिस्टर में लिख देने चाहिए । राजमहल के बाहर और भीतर जाने-आने वाली प्रत्येक वस्तु पर राजकीय मुहर लग जानी चाहिए ।

विनयाधिकारिक प्रथम अधिकरण में उन्नीसवाँ अध्याय समाप्त ।

—: o :—

| प्रकरण १६ | # आत्मरक्षितकम् |
|---|---|
| अध्याय २० | |

(१) शयनादुत्थितः स्त्रीगणैर्धन्विभिः परिगृह्येत; द्वितीयस्यां कक्ष्यायां कञ्चुकोष्णीषिभिर्वर्षवराभ्यागारिकैः, तृतीयस्यां कुब्जवामन-किरातैः, चतुर्थ्यां मन्त्रिभिः सम्बन्धिभिर्दौवारिकैश्च प्रासपाणिभिः।

(२) पितृपैतामहं महासम्बन्धानुबन्धं शिक्षितमनुरक्तं कृतकर्माणं जनमासन्नं कुर्वीत; नान्यतोदेशीयमकृतार्थमानं स्वदेशीयं वाप्यपकृत्योप-गृहीतम्। अन्तर्वंशिकसैन्यं राजानमन्तःपुरं च रक्षेत्।

(३) गुप्ते देशे माहानसिकः सर्वमास्वादबाहुल्येन कर्म कारयेत्। तद्राजा तथैव प्रतिभुञ्जीत, पूर्वमग्नये वयोभ्यश्च बलिं कृत्वा।

---

## आत्मरक्षा का प्रबंध

( १ ) प्रातःकाल राजा के बिस्तर से उठते ही, धनुष-बाण लिये स्त्रियाँ उन्हें घेर लें। शयनकक्ष से उठकर राजा जब दूसरे कक्ष में प्रवेश करे तो वहाँ कुर्ता, पगड़ी पहिने हुए नपुंसक तथा दूसरे सेवक राजा की देख-रेख के लिए उपस्थित रहें। तीसरे कक्ष में कुबड़े, बौने एवं निम्न जाति के परिजन राजा की रक्षा करें। चौथे कक्ष में मंत्रियों, संबंधियों और हाथ में भाला लिये द्वारपालों द्वारा राजा की रक्षा होनी चाहिए।

( २ ) वंश-परंपरा से अनुगत, उच्चकुलोत्पन्न, शिक्षित, अनुरक्त और प्रत्येक कार्य को भली-भाँति समझने वाले पुरुषों को राजा अपना अंगरक्षक नियुक्त करे। किंतु धन-संमान-रहित विदेशी व्यक्ति को तथा एक बार पृथक् होकर पुनः नियुक्त स्वदेशीय व्यक्ति को भी राजा अपना अंगरक्षक कदापि नियुक्त न करे। राजमहल की भीतरी सेना राजा और रनिवास की रक्षा करे।

( ३ ) माहानसिक ( पाकशाला का अध्यक्ष या निरीक्षक ) को चाहिए कि वह किसी एकांत स्थान में भोज्य पदार्थों का स्वाद ले-लेकर उन्हें सुस्वादु तथा सुरक्षा से तैयार कराये। भोजन के तैयार हो जाने पर राजा पहिले अग्नि तथा पक्षियों को बलि प्रदान कर, फिर स्वयं खावे।

**(१) अग्नेर्ज्वालाधूमनीलता शब्दस्फोटनं च विषयुक्तस्य, वयसां विपत्तिश्च। अन्नस्योष्मा मयूरग्रीवाभः शैत्यमाशु क्लिष्टस्येव वैवर्ण्यं सोदकत्वमक्लिन्नत्वं च। व्यञ्जनानामाशुशुष्कत्वं च क्वाथः श्यामफेन-पटलविच्छिन्नभावो गन्धस्पर्शरसवधश्च। द्रवेषु हीनातिरिक्तच्छायादर्शनं फेनपटलसीमान्तोर्ध्वराजीदर्शनं च। रसस्य मध्ये नीला राजी, पयसस्ताम्रा, मद्यतोययोः काली, दध्नः श्यामा, मधुनः श्वेता च। द्रव्याणामार्द्राणा-माशुप्रम्लानत्वमुत्पक्वभावः क्वाथनीलश्यामता च। शुष्काणामाशुशातनं वैवर्ण्यं च। कठिनानां मृदुत्वं मृदूनां कठिनत्वं च। तदभ्याशे क्षुद्रसत्त्व-वधश्च। आस्तरणप्रावरणानां श्याममण्डलता तन्तुरोमपक्ष्मशातनं च। लोहमणिमयानां पङ्कमलोपदेहता स्नेहरागगौरवप्रभाववर्णस्पर्शवधश्च। इति विषयुक्तलिङ्गानि।**

---

**विषमिश्रित पदार्थों की पहिचान**

( १ ) जिस अन्न में विष मिला हो उसे अग्नि में डालने से अग्नि और लपट, दोनों नीले रंग के हो जाते हैं तथा उसमें चट-चट का शब्द होता है। विषमिश्रित अन्न के खाने पर पक्षियों की भी मृत्यु हो जाती है। विषयुक्त अन्न की भाफ मयूर-ग्रीवा जैसे रंग की होती है; वह भोजन शीघ्र ही ठंडा हो जाता है; हाथ के स्पर्श या तोड़ने-मोड़ने से उसका रंग बदल जाता है, उसमें गाँठ-सी पड़ जाती है, और वह अन्न अधपका ही रह जाता है। विष मिली दाल जल्दी ही सूख जाती है, फिर से आँच पर रखा जाय तो मट्ठे की तरह वह फट जाती है, उसकी झाग काली तथा वह अलग-अलग हो जाती है, और उसका स्वाद, स्पर्श, उसकी सुगंध आदि सब जाते रहते हैं। विषयुक्त रसेदार तरकारी विरंगी-विकृत हो जाती है, उसका पानी अलग तैरता रहता है, और उसके ऊपर रेखा-सी खिच जाती है। यदि घी, तेल आदि रसिक पदार्थों में विष मिला हो तो उनमें नीले रंग की रेखाएँ तैरने लगती हैं, विष-मिश्रित दूध में ताम्रवर्ण की, शराब तथा पानी में काले रंग की, दही में श्यामवर्ण की और शहद में सफेद रंग की रेखाएँ दिखाई देती हैं। आम, अनार आदि द्रव्यों में विष मिला हो तो वे सिकुड़ जाते हैं, उनमें सडांध आने लगती है, और पकाने पर उनका वर्ण कुछ कालापन एवं भूरापन लिये होता है। यदि सूखे हुए पदार्थों में विष मिला हो तो वे छूते ही चूर-चूर होकर विवर्ण हो जाते हैं। विषमिश्रित ठोस पदार्थ मुलायम और मुलायम पदार्थ ठोस हो जाता है। विषमय वस्तु के समीप रेंगने वाले छोटे-छोटे कीड़े-मकोड़े मर जाते हैं। ओढ़ने-बिछाने के कपड़ों पर यदि विष का प्रयोग किया गया हो तो उनमें स्थान-स्थान पर धब्बे पड़ जाते हैं। यदि कपड़ा सूती हुआ तो उसका सूत और ऊनी हुआ तो उसकी रुआँ उड़ जाती है। सोने, चाँदी,

**(१) विषप्रदस्य तु शुष्कश्यामवक्त्रता वाक्सङ्गः स्वेदो विजृम्भणं चातिमात्रं वेपथुः प्रस्खलनं वाक्यविप्रेक्षणमावेशः कर्मणि स्वभूमौ चानवस्थानमिति ।**

**(२) तस्मादस्य जाङ्गलीविदो भिषजश्चासन्नाः स्युः ।**

**(३) भिषग्भैषज्यागारादास्वादविशुद्धमौषधं गृहीत्वा पाचकपोषकाभ्यामात्मना च प्रतिस्वाद्य राज्ञे प्रयच्छेत् । पानं पानीयं चौषधेन व्याख्यातम् ।**

**(४) कल्पकप्रसाधकाः स्नानशुद्धवस्त्रहस्ताः समुद्रमुपकरणमन्तर्वंशिकहस्तादादाय परिचरेयुः ।**

**(५) स्नापकसंवाहकास्तरकरजकमालाकारकर्म दास्यः कुर्युः;**

---

स्फटिक मणि आदि धातुओं पर यदि विष का प्रयोग किया गया हो तो उनकी आभा पंकिल दिखाई देती है, उनकी चमक, भारीपन और पहिचान आदि सब जाते रहते हैं। यहाँ तक विषमिश्रित पदार्थों के पहिचान की विधियों का निरूपण किया गया है।

## विष देने वाले की पहिचान

( १ ) विष देने वाले का मुँह सूख जाता है, उसके चेहरे का रंग बदल जाता है, बात-चीत करते हुए उसकी वाणी लड़खड़ाने लगती है, उसको पसीना, कंपकंपी तथा जंभाई आने लगती है, बेचैन होकर वह गिर पड़ता है, संदेहवश दूसरों की बातें वह ध्यानपूर्वक सुनने लगता है, बात-बात में वह आवेश करने लगता है; अपने कार्य और अपने स्थान पर उसका मन स्थिर नहीं रह पाता है।

( २ ) इसलिए विषविद्या के जानकार और वैद्य राजा के समीप अवश्य रहें।

( ३ ) वैद्य को चाहिए कि औषधालय में स्वयं खाकर परीक्षा की हुई औषधि को वह राजा के सामने लाकर उसमें से कुछ को पकाने-पीसने वाले लोगों को और कुछ स्वयं भी खाकर पुनः राजा को दे। इसी प्रकार जल तथा मद्य को भी, परीक्षा करने के उपरांत, राजा को देना चाहिए।

## परिजनों के कर्त्तव्य

( ४ ) दाढ़ी-मूंछ बनाने वाले नाई तथा वस्त्रालंकरण धारण कराने वाले परिचारकों को चाहिए कि वे स्नान करके स्वच्छ वस्त्र धारण किये हाथों को अच्छी तरह धोकर राजमहल के अंदर रहने वाले कंचुकी आदि से मुहर लगे हुए उस्तरा और वस्त्राभूषण को लेकर राजा की परिचर्या करें।

( ५ ) राजा को स्नान कराना, उसके अंगों को दबाना, बिस्तर बिछाना, कपड़े

**ताभिरधिष्ठिता वा शिल्पिनः। आत्मचक्षुषि निवेश्य वस्त्रमाल्यं दद्युः; स्नानानुलेपनप्रघर्षचूर्णवासस्नानीयानि स्ववक्षोबाहुषु च। एतेन परस्मादागतकं व्याख्यातम्।**

**(१) कुशीलवाः शस्त्राग्निरसवर्जं नर्मयेयुः। आतोद्यानि चैषामन्तस्तिष्ठेयुः, अश्वरथद्विपालङ्काराश्च।**

**(२) मौलपुरुषाधिष्ठितं यानवाहनमारोहेत्; नावं चाप्तनाविकाधिष्ठिताम्। अन्यनौप्रतिबद्धां वातवेगवशां च नोपेयात्। उदकान्ते सैन्यमासीत। मत्स्यग्राहविशुद्धमवगाहेत। व्यालग्राहपरिशुद्धमुद्यानं गच्छेत्।**

**(३) लुब्धकैः श्वगणिभिरपास्तस्तेनव्यालपराबाधभयं चललक्षपरिचयार्थं मृगारण्यं गच्छेत्।**

**(४) आप्तशस्त्रग्राहाधिष्ठितः सिद्धतापसं पश्येत्; मन्त्रिपरिषदा सामन्तदूतम्। सन्नद्धोऽश्वं हस्तिनं रथं वाऽऽरूढः सन्नद्धमनीकं गच्छेत्।**

---

धोना और माला बनाना आदि कार्यों को दासियाँ ही करें, अथवा दासियों की देख-रेख में उस कार्य के जानकार लोग करें। दासियों को चाहिए कि अपनी आँखों से देखकर ही वे राजा को वस्त्रालंकरण पहिनावे। स्नान के समय उपयोग में लाई जाने वाली वस्तुओं, जैसे—उबटन, चंदन, सुगन्धित चूर्ण ( पाउडर ) तथा पटवास आदि को, दासियाँ पहिले अपनी छाती एवं बाँह पर लगाकर अजमा लें और तदनंतर राजा पर उनका प्रयोग करें। यही बात दूसरे स्थान से आई हुई वस्तुओं के संबंध में भी जान लेनी चाहिए।

( १ ) खेल दिखाने वाले नट-नर्तक, हथियार, आग, विष आदि के अतिरिक्त दूसरे खेलों को ही राजा के सामने दर्शित करें। नट-नर्तकों के उपयोग में आने वाली सामग्री, जैसे—बादन, वस्त्र, घोड़े, अलंकरण आदि, राजमहल से ही दी जानी चाहिए।

( २ ) विश्वस्त प्रधान पुरुष के साथ होने पर ही राजा पालकी तथा घोड़े आदि यान-वाहनों पर चढ़े। विश्वस्त नाविक के रहने पर ही नौका पर चढ़े। दूसरी नाव पर बंधी एवं वायु से चालित नाव पर वह कदापि न बैठे। राजा जब नौका-बिहार करे तो, सुरक्षा के लिए, नदी के दोनों तटों पर सेना तैनात रहनी चाहिए। मछुओं द्वारा भलीभाँति जाँच किए गए घाट पर ही वह स्नान करे। इसी प्रकार संपेरों द्वारा परिशोधित उद्यान में ही वह भ्रमण करे।

( ३ ) चोर तथा व्याघ्र आदि से रहित, कुत्ते रखने वाले शिकारियों के साथ राजा, चलते हुए लक्ष्य पर निशाना साधने के उद्देश्य से जंगल में जाय।

( ४ ) दर्शनार्थ आये हुए किसी सिद्ध या तपस्वी से मिलते समय राजा, अपने विश्वस्त सशस्त्र पुरुष को साथ ले ले। अपने मंत्रि-परिषद् के साथ ही वह सामंत

**(१) निर्याणेऽभियाने च राजमार्गमुभयतः कृतारक्षं दण्डिभिरपास्तशस्त्रहस्तप्रव्रजितव्यङ्गं गच्छेत्। न पुरुषसम्बाधमवगाहेत। यात्रासमाजोत्सवप्रवहणानि च दशवर्गिकाधिष्ठितानि गच्छेत्।**

**(२)　यथा च योगपुरुषैरन्यान्राजाऽधितिष्ठति।**
**तथाऽयमन्यबाधेभ्यो रक्षेदात्मानमात्मवान्॥**

इति विनयाधिकारिके प्रथमाधिकरणे आत्मरक्षितकं विंशोऽध्यायः।

—: o :—

---

राजा के दूत से मिले। घोड़े, हाथी या रथ पर सवार युद्ध के लिए प्रस्थान करने वाली सेना का वह युद्धोचित कवच आदि पहिन कर सैनिक वेश में निरीक्षण करे।

( १ ) बाहर जाते या बाहर से आते समय राजा, हाथ में दण्ड लिये रक्षकों द्वारा दोनों ओर से सुरक्षित मार्ग पर चले। ऐसा प्रबंध हो कि रास्ते भर में कहीं भी राजा को शस्त्ररहित पुरुष, संन्यासी या लूला-लंगड़ा, अपंग व्यक्ति न दिखाई दे। पुरुषों की भीड़ में भी वह कदापि न घुसे। किसी देवालय, सभा, उत्सव तथा पार्टी आदि में वह शामिल होने जाय तो कम से कम दस सिपाही तथा सेनानायक उसके साथ उपस्थित रहें।

( २ ) विजय की इच्छा रखने वाला राजा जैसे अपने गुप्तचरों द्वारा दूसरों को कष्ट पहुँचाता है, उसी प्रकार दूसरों के द्वारा दिये गए कष्टों से भी वह अपनी रक्षा करे।

विनयाधिकारिक प्रथम अधिकरण में बीसवाँ अध्याय समाप्त।

—: o :—

दूसरा अधिकरण

# अध्यक्ष-प्रचार

प्रकरण १७ | अध्याय १

# जनपदनिवेशः

(१) भूतपूर्वमभूतपूर्वं वा जनपदं परदेशापवाहनेन स्वदेशाभिष्यन्दवमनेन वा निवेशयेत् ।

(२) शूद्रकर्षकप्रायं कुलशतावरं पञ्चशतकुलपरं ग्रामं क्रोशद्विक्रोशसीमानमन्योन्यारक्षं निवेशयेत् । नदीशैलवनगृष्टिदरीसेतुबन्धशाल्मलीशमीक्षीरवृक्षानन्तेषु सीम्नां स्थापयेत् ।

(३) अष्टशतग्राम्या मध्ये स्थानीयं, चतुश्शतग्राम्या द्रोणमुखं, द्विशतग्राम्याः खार्वटिकं, दशग्रामीसङ्ग्रहेण सङ्ग्रहणं स्थापयेत् ।

(४) अन्तेष्वन्तपालदुर्गाणि, जनपदद्वाराण्यन्तपालाधिष्ठितानि स्थापयेत् । तेषामन्तराणि वागुरिकशबरपुलिन्दचण्डालारण्यचरा रक्षेयुः ।

(५) ऋत्विगाचार्यपुरोहितश्रोत्रियेभ्यो ब्रह्मदेयान्यदण्डकराण्यभि-

---

## जनपदों की स्थापना

( १ ) राजा को चाहिए कि दूसरे देश के मनुष्य को बुलाकर अथवा अपनी देश की आबादी को बढ़ाकर वह पुराने या नये जनपद को बसाये ।

( २ ) प्रत्येक जनपद में कम से कम सौ घर और अधिक से अधिक पाँच सौ घर वाले, ऐसे गाँव बसायें जायँ जिसमें प्रायः शूद्र तथा किसान अधिक हों। एक गाँव दूसरे गाँव से कोस भर या दो कोस की दूरी से अधिक नहीं होना चाहिए, जिससे अवसर आने पर वे एक दूसरे की मदद कर सकें । नदी, पहाड़, जंगल, बेर के वृक्ष, खाई, तालाब, सेंमल के वृक्ष, शमी के वृक्ष और बरगद आदि के वृक्ष लगाकर उन बसाये हुए गाँवों की सीमा निर्धारित करे ।

( ३ ) आठ सौ गाँवों के बीच में एक **स्थानीय**; चार सौ गाँवों के समूह में एक **द्रोणमुख**; दो सौ गाँवों के बीच में एक **कार्वटिक** और दस गाँवों के समूह में **संग्रहण** नामक स्थानों की विशेष रूप से स्थापना करे ।

( ४ ) राज्य की सीमा पर अंतपाल नामक दुर्गरक्षक के संरक्षण में एक दुर्ग की भी स्थापना करे । जनपद की सीमा पर अंतपाल की अध्यक्षता में ही द्वारभूत स्थानों का भी निर्माण करे । उनके भीतरी भागों की रक्षा व्याध, शबर, पुलिन्द, चाण्डाल आदि बनचर जातियों के लोग करें ।

( ५ ) राजा को चाहिए कि वह ऋत्विक्, आचार्य, पुरोहित तथा श्रोत्रिय आदि ब्राह्मणों के लिए भूमिदान करे, किन्तु उनसे कर आदि न ले और उस भूमि को

**रूपदायकानि प्रयच्छेत् । अध्यक्षसङ्ख्यायकादिभ्यो गोपस्थानिकानीकस्थ-चिकित्साश्वदमकजङ्घाकरिकेभ्यश्च विक्रयाधानवर्जम् ।**

**(१) करदेभ्यः कृतक्षेत्राण्यैकपुरुषिकाणि प्रयच्छेत् । अकृतानि कर्तृभ्यो नादेयात् ।**

**(२) अकृषतामाच्छिद्यान्येभ्यः प्रयच्छेत् । ग्रामभृतकवैदेहका वा कृषेयुः । अकृषन्तोऽपहीनं दद्युः । धान्यपशुहिरण्यैश्चैनानुगृह्णीयात् । तान्यनु सुखेन दद्युः ।**

**(३) अनुग्रहपरिहारौ चैभ्यः कोशवृद्धिकरौ दद्यात् । कोशोपघातिकौ वर्जयेत् । अल्पकोशो हि राजा पौरजानपदानेव ग्रसते । निवेशसमकालं यथागतकं वा परिहारं दद्यात् । निवृत्तपरिहारान् पितेवानुगृह्णीयात् ।**

---

वापिस भी न ले । इसी प्रकार विभागीय अध्यक्षों, संख्यायकों ( क्लर्कों ), गोपों ( दस-दस गाँवों के अधिकारियों ), स्थानिकों ( नगर के अधिकारियों ), अनीकस्थों ( हस्तिशिक्षकों ), वैद्यों, अश्वशिक्षकों और जंघाकरिकों ( दूर देश में जीविकोपार्जन करने वाले लोगों ) आदि अपने अधिकारियों, कर्मचारियों और प्रजाजनों के लिए भी राजा भूमि-दान करे । किन्तु इस प्रकार पायी हुई जमीन को बेचने या गिरवी रखने के लिए वर्जित कर दे ।

( १ ) खेती के उपयोगी जो भूमि लगान पर जिस भी किसान के नाम दर्ज की जाय, उसके मर जाने के बाद राजा को अधिकार है कि वह उस भूमि को मृतक किसान के पुत्र आदि को दे या न दे ।

( २ ) किंतु ऐसी ऊसर या बंजर जमीन जिसको किसान ने अपने श्रम से खेती योग्य बनाया है, राजा को चाहिए कि उसे कभी भी वापिस न ले, ऐसी जमीन पर किसानों को पूर्ण अधिकार प्राप्त होना चाहिए । यदि कोई किसान किसी खेती योग्य भूमि को बिना जोते-बोये परती ही डाले रहता है तो राजा को चाहिए कि ऐसे किसान से उस भूमि को छीन कर किसी जरूरतमंद दूसरे किसान को दे दे । ऐसे जरूरतमंद किसान के न मिलने पर गाँव का मुखिया या व्यापारी उस जमीन पर खेती करे । खेती करने की शर्त पर यदि कोई जमीन को ले और उसमें खेती न करे तो उससे उसका हर्जाना वसूल करना चाहिए । राजा को चाहिए कि वह अन्न, बीज, बैल और धन आदि देकर किसानों की सहायता करता रहे और किसानों को भी चाहिए कि फसल कट जाने पर सुविधानुसार धीरे-धीरे वे उधार ली हुई वस्तुओं को राजा को वापिस कर दें ।

( ३ ) किसानों की स्वास्थ्य-वृद्धि और रुग्णता-निवारण के लिए राजा उन्हें परिमित धन देता रहे, जिससे कि वे धन-धान्य की वृद्धि करके राजकोष को समृद्ध बनावें । किन्तु इस प्रकार की सहायता से यदि राजकोष को कोई हानि पहुँचे, तो

**(१) आकरकर्मान्तद्रव्यहस्तिवनव्रजवणिक्पथप्रचारान्वारिस्थलपथ-पण्यपत्तनानि च निवेशयेत् ।**

**(२) सहोदकमाहार्योदकं वा सेतुं बन्धयेत् । अन्येषां वा बध्नतां भूमिमार्गवृक्षोपकरणानुग्रहं कुर्यात्; पुण्यस्थानारामाणां च सम्भूय सेतु-बन्धादपक्रामतः कर्मकरबलीवर्दाः कर्म कुर्युः । व्ययकर्मणि च भागी स्यात् । न चांशं लभेत ।**

**(३) मत्स्यप्लवहरितपण्यानां सेतुषु राजा स्वाम्यं गच्छेत् । दासा-हितकबन्धूननुशृण्वतो राजा विनयं ग्राहयेत् । बालवृद्धव्याधितव्यसन्य-नाथांश्च राजा बिभृयात्; स्त्रियमप्रजातां प्रजातायाश्च पुत्रान् ।**

---

राजा उसको बन्द कर दे; क्योंकि कोष के कम हो जाने पर राजा, नगर और जनपद-निवासियों को सताने लगता है। किसी नये कुल को बसाये जाने के लिए प्रतिज्ञात धन राजा को अवश्य देना चाहिए। अथवा राजकोष की आय के अनुसार स्वास्थ्य-सुधार के लिए राजा धन अवश्य खर्च करता रहे। यदि नगर और जनपद-निवासी राजा के द्वारा स्वास्थ्य-सुधार के लिए खर्च किए गए धन को चुका दें, तो पिता के समान राजा उन पर अनुग्रह करे।

( १ ) राजा को चाहिए कि वह आकर ( खान ) से उत्पन्न सोना-चाँदी आदि के विक्रय-स्थान, चंदन आदि उत्तम काष्ठ के बाजार, हाथियों के जंगल, पशुओं की वृद्धि के स्थान, आयात-निर्यात के स्थान, जल-थल के मार्ग और बड़े-बड़े बाजारों या बड़ी-बड़ी मंडियों की भी व्यवस्था कराये।

( २ ) भूमि की सिंचाई के लिए राजा को चाहिए कि नदियों पर बड़े-बड़े बाँध बँधवाये, अथवा वर्षा ऋतु के जल को भी बड़े-बड़े जलाशयों में भरवा दे। यदि प्रजाजन ऐसा कार्य करना चाहते हैं तो राजा को चाहिए कि उन्हें जलाशय के लिए भूमि, नहर के लिए रास्ता और आवश्यकतानुसार लकड़ी आदि सामान देकर उनका उपकार करे। देवालय और बाग-बगीचे आदि के लिए भी राजा, प्रजा की भूमिदान आदि से सहायता करे। गाँव के जो मनुष्य अन्य आवश्यक कार्यों के आ जाने पर उस सहकारी उद्योग में सम्मिलित न हो सकें तो वे अपने स्थान पर नौकर तथा बैल भेज कर सहयोग दें। यदि वे ऐसा भी न कर सकें तो अनुपात के अनुसार उनसे उनके हिस्से का सारा खर्च लिया जाय और कार्य समाप्त होने पर न तो उन्हें उसका साझीदार समझा जाय और न ही उसका लाभ उठाने दिया जाय।

( ३ ) इस प्रकार के बड़े-बड़े जलाशयों में उत्पन्न होने वाली मछली, प्लव पक्षी ( बतख की भाँति एक जलचर पक्षी ) और कमलदंड आदि व्यापार-योग्य वस्तुओं पर राजा का ही अधिकार रहे। यदि नौकर-चाकर, भाई, पुत्र, आदि अपने मालिक की आज्ञा का उलंघन करें तो राजा उन्हें उचित शिक्षा दे। राजा को चाहिए कि

**(१) बालद्रव्यं ग्रामवृद्धा वर्धयेयुराव्यवहारप्रापणात्; देवद्रव्यं च।**

**(२) अपत्यदारान् मातापितरौ भ्रातॄनप्राप्तव्यवहारान्भगिनीः कन्या विधवाश्चाबिभ्रतः शक्तिमतो द्वादशपणो दण्डोऽन्यत्र पतितेभ्यः; अन्यत्र मातुः।**

**(३) पुत्रदारमप्रतिविधाय प्रव्रजतः पूर्वः साहसदण्डः; स्त्रियं च प्रव्राजयतः। लुप्तव्यवायः प्रव्रजेदापृच्छ्य धर्मस्थान्, अन्यथा नियम्येत।**

**(४) वानप्रस्थादन्यः प्रव्रजितभावः, सुजातादन्यः सङ्घः, सामुत्थायिकादन्यः समयानुबन्धो वा नास्य जनपदमुपनिविशेत।**

**(५) न च तत्रारामा विहारार्थाः शालाः स्युः। नटनर्तनगायन-**

---

वह बालक, वृद्ध, व्याधिग्रस्त, विपत्तिपीड़ित और अनाथ व्यक्तियों का भरण-पोषण करे। संतानहीन ( बन्ध्या ) और पुत्रवती अनाथ स्त्रियों तथा उनके बच्चों की भी राजा रक्षा करे।

( १ ) नाबालिग बच्चे की सम्पत्ति पर गाँव के वृद्ध पुरुषों का अधिकार रहे। उसको वे बढ़ाते रहें और बालिग हो जाने पर उसकी सम्पत्ति को उसे वापिस कर दें। इसी प्रकार देव-सम्पत्ति पर भी ग्राम-वृद्धों का ही अधिकार हो, जो कि उसकी वृद्धि में तत्पर रहें।

( २ ) जब कोई पुरुष समर्थ होने पर भी, अपने लड़के-बच्चों, स्त्रियों, माता-पिता, नाबालिग भाई, अविवाहित तथा विधवा बहिन आदि का भरण-पोषण न करे तो राजा उसे बारह पणों ( सोने का सिक्का ) का दंड दे। किन्तु ये लड़के, स्त्री आदि यदि किसी कारण से पतित हो गए हों तो सम्बन्धी उनका भरण-पोषण करने के लिए बाध्य नहीं हैं। यह निषेध माता के सम्बन्ध में नहीं, माता यदि पतिता भी हो गई हो तो उसका भरण-पोषण और उसकी रक्षा करनी चाहिए।

( ३ ) पुत्र तथा स्त्री के जीवन-निर्वाह का उचित प्रबन्ध किये बिना ही यदि कोई पुरुष, संन्यास ग्रहण कर ले तो राजा को उसे प्रथम साहस दंड देना चाहिए। यही दंड उस पुरुष को भी दिया जाना चाहिए जो अपनी स्त्री को संन्यासिनी हो जाने को प्रेरित करे। जब मनुष्य के मैथुन-सम्बन्धी कामविकार शांत हो जाँय तब उसे धर्माधिकारी पुरुषों की अनुमति लेकर संन्यास आश्रम में प्रवेश करना चाहिए, इस राज्य-नियम का उल्लङ्घन करने वाले व्यक्ति को कारागार में बंद कर दिया जाय।

( ४ ) वानप्रस्थ के अतिरिक्त कोई दूसरा संन्यासी जनपद में न रहना चाहिए, इसी प्रकार राजभक्त जनसंघ के अतिरिक्त तथा स्थानीय सहकारी संस्थाओं के अतिरिक्त कोई दूसरी संस्था या दूसरा संघ राज्य में न पनपने पावे, जो द्रोह या फूट फैलाने वाला सिद्ध हो।

( ५ ) गाँवों में कोई भी नाट्यगृह, विहार तथा क्रीडा-शालाएँ नहीं होनी

वादकवाग्जीवनकुशीलवा वा न कर्मविघ्नं कुर्युः। निराश्रयत्वाद् ग्रामाणां क्षेत्राभिरतत्वाच्च पुरुषाणां कोशविष्टिद्रव्यधान्यरसवृद्धिर्भवतीति।

(१) परचक्राटवीग्रस्तं व्याधिदुर्भिक्षपीडितम्।
देशं परिहरेद्राजा व्ययक्रीडाश्च वारयेत्॥

(२) दण्डविष्टिकराबाधैः रक्षेदुपहतां कृषिम्।
स्तेनव्यालविषग्राहैर्व्याधिभिश्च पशुव्रजान्॥

(३) वल्लभैः कार्मिकैः स्तेनैरन्तपालैश्च पीडितम्।
शोधयेत्पशुसङ्घैश्च क्षीयमाणं वणिक्पथम्॥

(४) एवं द्रव्यद्विपवनं सेतुबन्धमथाकरान्।
रक्षेत्पूर्वकृतान्राजा नवांश्चाभिप्रवर्तयेत्॥

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीयेऽधिकरणे जनपदनिवेशः प्रथमोऽध्यायः;
आदितः एकविंशः॥

—: ० :—

---

चाहिए। नट, नर्तक, गायक, वादक, भाण और कुशीलव आदि गाँवों में अपना खेल दिखा कर कृषि आदि कार्यों में विघ्न उत्पन्न न करें। क्योंकि गाँवों में नाट्यशालाएँ आदि न होने से ग्रामवासी अपने-अपने कृषिकर्म में संलग्न रहते हैं, जिससे कि राज-कोष की अभिवृद्धि होती है और सारा देश धन-धान्य से समृद्ध होता है।

( १ ) राजा को चाहिए कि वह शत्रुओं, जंगली लोगों, व्याधियों एवं दुर्भिक्षों से अपने देश को बचावे। वह उन क्रीडाओं का भी बहिष्कार कराये जो धन का अप-व्यय और विलासप्रियता को बढ़ाने वाली हों।

( २ ) राजा को चाहिए कि दंड, विष्टि ( बेगार ), कर ( टैक्स ) आदि की बाधा से कृषि की रक्षा करे। इसी प्रकार चोर, हिंसक जंतु, विष-प्रयोग तथा अन्य कष्टों से भी किसानों के पशुओं की रक्षा करे।

( ३ ) वल्लभ ( राजप्रिय ), कार्मिक ( राज-कर वसूल करने वाले ), चोर, अंतपाल ( सीमारक्षक ) और व्याघ्र आदि, राजपुरुषों, लुटरों एवं हिंसक जंतुओं से ग्रस्त व्यापार-मार्गों का भी राजा परिशोधन करे। अर्थात् अपने देश से इन सब आपत्तियों को दूर करे।

( ४ ) इस प्रकार राजा प्रथम तो लकड़ी के जंगल, हाथियों के जंगल, सेतुबन्ध तथा खानों की रक्षा करे और तदुपरान्त आवश्यकतानुसार नये जंगल, सेतुबंध आदि का निर्माण करवाये।

अध्यक्ष-प्रचार नामक द्वितीय अधिकरण में प्रथम अध्याय समाप्त।

—: ० :—

| प्रकरण १८ | |
|---|---|
| अध्याय २ | |

# भूमिच्छिद्र-विधानम्

(१) अकृष्यायां भूमौ पशुभ्यो विवीतानि प्रयच्छेत्। प्रदिष्टाभयस्थावरजङ्गमानि च ब्राह्मणेभ्यो ब्रह्मसोमारण्यानि, तपोवनानि च तपस्विभ्यो गोरुतपराणि प्रयच्छेत्। तावन्मात्रमेकद्वारं खातगुप्तं स्वादुफलगुल्मगुच्छमकण्टकिद्रुममुत्तानतोयाशयं दान्तमृगचतुष्पदं भग्ननखदंष्ट्रव्यालं मार्गायुकहस्तिहस्तिनीकलभं मृगवनं विहारार्थं राज्ञः कारयेत्।

(२) सर्वातिथिमृगं प्रत्यन्ते चान्यन्मृगवनं भूमिवशेन वा निवेशयेत्।

(३) कुप्यप्रदिष्टानां च द्रव्याणामेकैकशो वा वनं निवेशयेत्; द्रव्यवनकर्मान्तानटवीश्च द्रव्यवनापाश्रयाः।

(४) प्रत्यन्ते हस्तिवनमटव्यारक्ष्यं निवेशयेत्। नागवनाध्यक्षः पार्वतं

---

## ऊसर भूमि को उपयोगी बनाने का विधान

( १ ) ऊसर भूमि में पशुओं के लिए चरागाहें बनवानी चाहिए। जिस भूमि को वृक्ष-लता एवं मृग आदि के लिए छोड़ दिया गया हो, ऐसे दो कोस तक फैल हुए जंगल को वेदाध्यायी ब्राह्मणों को वेदाध्ययन एवं सोमयाग के लिए दे देना चाहिए; इसी प्रकार के तपोवनों को तपस्वियों के लिए दे देना चाहिए। ऐसे ही दो कोस परिमाण के मृगवन को राजा अपने विहार के लिए तैयार कराये। उस विहारवन के दो दरवाजे हों, उसके चारों ओर खुदी हुई खाई हो, उसमें स्वादिष्ट फल, लता, गुल्म एवं वृक्ष हों, वह काँटेदार पेड़ों से रहित हो, उसमें कम गहरे सरोवर हों, मनुष्यों से परिचित मृग हो, मृगया के लिए वहाँ ऐसे व्याघ्र, हाथी, हथिनी तथा उनके बच्चे रखे गये हों, जिनके नख एवं दाँत न हों।

( २ ) उसके ही समीप एक दूसरा मृगवन ऐसा तैयार कराया जाय, जिसमें देश-देशांतरों के जानवर लाकर रखे गये हों।

( ३ ) **कुप्याध्यक्ष** प्रकरण में निर्दिष्ट चंदन, पलाश, अशोक आदि लकड़ी के लिए अलग-अलग वन बसाये जाँय। लकड़ी के जंगलों की सम्पूर्ण व्यवस्था, जंगलों के अध्यक्ष तथा जंगलों पर जीवन बिताने वाले पुरुष करें।

( ४ ) जनपद की सीमा पर जंगल के अध्यक्षों के संरक्षण में एक हस्तिवन भी स्थापित करना चाहिए। हस्तिवन के अध्यक्षों को आवश्यक है कि वे स्वयं तथा

**नादेयं सारसमानूपं च नागवनं विदितपर्यन्तप्रवेशनिष्कसनं नागवनपालैः पालयेत् । हस्तिघातिनं हन्युः । दन्तयुगं स्वयं मृतस्याहरतः सपादचतुष्पणो लाभः ।**

**(१) नागवनपाला हस्तिपकपादपाशिकसैमिकवनचरकपारिकर्मिकसखाहस्तिमूत्रपुरीषच्छन्नगन्धा भल्लातकीशाखाप्रतिच्छन्नाः पञ्चभिः सप्तभिर्वा हस्तिबन्धकीभिः सह चरन्तः शय्यास्थानपद्यालण्डकूलपातोद्देशेन हस्तिकुलपर्यग्रं विद्युः ।**

**(२) यूथचरमेकचरं निर्यूथं यूथपतिं हस्तिनं व्यालं मत्तं पोतं बद्धमुक्तं च निबन्धेन विद्युः । अनीकस्थप्रमाणैः प्रशस्तव्यञ्जनाचारान्हस्तिनो गृह्णीयुः । हस्तिप्रधानो हि विजयो राज्ञाम् । परानीकव्यूहदुर्गस्कन्धावारप्रमर्दना ह्यतिप्रमाणशरीराः प्राणहरकर्माणो हस्तिन इति ।**

---

अपने सहयोगी वनपालों के सहयोग से पर्वत, नदी, जलाशय तथा किसी जलमय स्थान से होकर हस्तिवनों के अंदर जाने वाले मार्गों की भली-भाँति देख-रेख रखे । हाथियों को मारने वाले प्रत्येक व्यक्ति को प्राणदण्ड की सजा मिलनी चाहिए । मृतक हाथी के दाँतों को उखाड़कर जो स्वयं ही राजपुरुषों के सुपुर्द कर दे, उसे सवा चार पण पुरस्कार स्वरूप दिया जाना चाहिए ।

( १ ) हस्तिवन के रक्षकों को चाहिए कि वे हस्तिपक ( महावत ), पादपाशिक ( हाथियों को जाल में फँसाने वाला ), सैमिक ( सीमारक्षक ) वनचरक ( जंगली मनुष्य ) और पारिकर्मिक ( हाथियों की परिचर्या में निपुण ) आदि पुरुषों को साथ लेकर जंगल में हाथियों के समूह का पता लगाये । अपने साथ वे हाथी के मल-मूत्र के गंध के समान किसी वस्तु को, हाथियों को वश में करने वाली पाँच-सात हथिनियों को भी साथ में लेकर और स्वयं को भल्लातकी ( भिलावे ) की शाखा में छिपाये हुए, हाथियों के पड़ाव, उनके पैरों के निशान, उनके मल-मूत्र त्यागने की जगह और उनके द्वारा गिराये गए नदी-कगारों आदि का सुराग लेकर हस्तिसमूहों का पता लगायें ।

( २ ) झुंड के साथ घूमने वाले, अकेले विचरण करने वाले, झुंड से फूटे हुए, झुंडप्रमुख, दुष्टप्रकृति, उन्मत, शिशुहस्ति, बंधनमुक्त आदि हाथियों से संबंधित जितने भी विवरण हैं, उनकी जानकारी, हस्तिवनरक्षक अपनी गणनापुस्तक ( स्टाकबुक ) से प्राप्त करें । हस्तिविद्या में निपुण पुरुषों के निर्देशानुसार श्रेष्ठ लक्षणों से युक्त हाथियों को ही पकड़ना चाहिए, क्योंकि हाथी ही राजा की विजय के प्रधान साधन हैं । भारी भरकम हाथी ही शत्रुसेना, उसकी व्यूह-रचना, उसके दुर्ग तथा उसकी छावनियों को कुचलने वाले और उसके प्राणों तक को ले लेने वाले होते हैं ।

(१) **कलिङ्गाङ्गगजाः श्रेष्ठाः प्राच्याश्चेति करूशजाः ।**
**दाशार्णाश्चापरान्ताश्च द्विपानां मध्यमा मताः ।।**

(२) **सौराष्ट्रिकाः पाञ्चनदाः तेषां प्रत्यवरा स्मृताः ।**
**सर्वेषां कर्मणा वीर्यं जवस्तेजश्च वर्धते ।।**

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीयेऽधिकरणे भूमिच्छिद्रविधानं द्वितीयोऽध्यायः;
आदितो द्वाविंशः ।।

—: ० :—

---

( १ ) कलिंग, अंग और पूर्वीय करूश देश के हाथी सर्वोत्तम गिने जाते हैं। दशार्ण तथा पश्चिम देश के हाथी मध्यम माने जाते हैं।

( २ ) गुजरात और पंजाब के हाथी अधम कहे जाते हैं। इस पर भी, प्रत्येक हाथी के बल, विक्रम, वेग और तेज का संवर्धन आदि उसको दी जाने वाली समुचित शिक्षा पर निर्भर है।

अध्यक्षप्रचार नामक द्वितीय अधिकरण में दूसरा अध्याय समाप्त ।

—: ० :—

प्रकरण १९ | अध्याय ३

# दुर्गविधानम्

(१) चतुर्दिशं जनपदान्ते साम्परायिकं दैवकृतं दुर्गं कारयेत्; अन्तर्द्वीपं स्थलं वा निम्नावरुद्धमौदकं, प्रास्तरं गुहां वा पार्वतं, निरुदकस्तम्बमिरिणं वा धान्वनं, खञ्जनोदकं स्तम्भगहनं वा वनदुर्गम् । तेषां नदीपर्वतदुर्गं जनपदारक्षस्थानं धान्वनवनदुर्गमटवीस्थानम् आपद्यपसारो वा ।

(२) जनपदमध्ये समुदयस्थानं स्थानीयं निवेशयेद् । वास्तुकप्रशस्ते देशे नदीसङ्गमे ह्रदस्य वा विशोषस्याङ्के सरसस्तटाकस्य वा वृत्तं दीर्घं चतुरश्रं वा वास्तुकवशेन प्रदक्षिणोदकं पण्यपुटभेदनमंसवारिपथाभ्यामुपेतम् । तस्य परिखास्तिस्रो दण्डान्तराः कारयेत् । चतुर्दश द्वादश दशेति

---

## दुर्गों का निर्माण

( १ ) जनपद-सीमाओं की चारों दिशाओं में राजा युद्धोचित प्राकृतिक दुर्ग का निर्माण करवाये । दुर्ग चार प्रकार के हैं—१. औदक २. पार्वत ३. धान्वन और ४. वनदुर्ग । चारों ओर पानी से घिरा हुआ टापू के समान गहरे तालाबों से आवृत स्थल-प्रदेश **औदकदुर्ग** कहलाता है । बड़ी-बड़ी चट्टानों अथवा पर्वत की कन्दराओं के रूप में निर्मित दुर्ग **पार्वतदुर्ग** कहलाता है । जल तथा घास आदि से रहित अथवा सर्वथा ऊसर भूमि में निर्मित दुर्ग **धान्वनदुर्ग** है । इसी प्रकार चारों ओर दलदल से घिरा हुआ अथवा काँटेदार सघन झाड़ियों से परिवृत दुर्ग **वनदुर्ग** कहलाता है । इनमें औदक तथा पार्वतदुर्ग आपत्तिकाल में जनपद की रक्षा के उपयोग में लाये जाते हैं । धान्वन और वनदुर्ग वनपालों की रक्षा के लिए उपयोगी होते हैं । अथवा आपत्ति के समय इन दुर्गों में भागकर राजा भी अपनी रक्षा कर सकता है ।

( २ ) राजा को चाहिए कि धनोत्पादन के मुख्य केन्द्र बड़े-बड़े स्थानीय नगरों का निर्माण करवाये । वास्तुविद्या के विद्वान् जिस प्रदेश को श्रेष्ठ बतायें, वहीं पर नगर बसाना चाहिए, अथवा किसी नदी के संगम पर, बड़े-बड़े तालाबों के किनारे, या कमलयुक्त जलाशयों के तट पर भी नगर बसाये जा सकते हैं । नगर का निर्माण संबंधित भूमि के अनुसार गोल, लंबा अथवा चौकोर, जैसा भी उचित हो, होना चाहिए । उसके चारों ओर छोटी-छोटी नहरों द्वारा पानी का प्रबन्ध अवश्य रहे । उसके इधर-उधर की भूमि में पैदा होने वाली बिक्री योग्य वस्तुओं का संग्रह तथा उनके विक्रय

**दण्डान् विस्तीर्णाः विस्तारादवगाधाः पादोनमर्धं वा त्रिभागमूला मूले चतुरश्राः पाषाणोपहिताः पाषाणेष्टकाबद्धपार्श्वा वा तोयान्तिकीरागन्तुतोयपूर्णा वा सपरिवाहाः पद्मग्राहवतीः ।**

**(१) चतुर्दण्डावकृष्ट परिखायाः षड्दण्डोच्छ्रितमवरुद्धं तद्विगुणविष्कम्भं खाताद्वप्रं कारयेत्; ऊर्ध्वचयं मञ्चपृष्ठं कुम्भकुक्षिकं वा हस्तिभिर्गोभिश्च क्षुण्णं कण्टकिगुल्मविषवल्लीप्रतानवन्तम् । पांसुशेषेण वास्तुच्छिद्रं वा पूरयेत् ।**

**(२) वप्रस्योपरि प्राकारं विष्कम्भद्विगुणोत्सेधमैष्टकं द्वादशहस्तादूर्ध्वमोजं युग्मं वा आचतुर्विंशतिहस्तादिति कारयेत् । रथचर्यासञ्चारं**

---

का प्रबन्ध भी वहाँ होना चाहिए । नगर में आने-जाने के लिए जलमार्ग और स्थलमार्ग दोनों की सुविधा होनी चाहिए । नगर के चारों ओर एक-एक दंड ( चार हाथ ) की दूरी पर तीन खाइयाँ खुदवानी चाहिए । वे खाइयाँ क्रमशः चौदह, बारह और दस दंड चौड़ी होनी चाहिए । जितनी वे चौड़ी हो उससे चौथाई अथवा आधी गहरी होनी चाहिए । अथवा चौड़ाई का तीसरा हिस्सा गहरी भी हो सकती है । उन खाइयों की तलहटी बराबर चौरस एवं मजबूत पत्थरों से बँधी हो । उनकी दीवारें पत्थर अथवा ईटों से मजबूत बनी हुई हों । कहीं-कहीं खाइयाँ इतनी कम गहरी हों कि जहाँ से जल बाहर की ओर छलकने लगे अथवा किसी नदी के जल से इन्हें भरा जा सके । उनमें जल के निकलने का मार्ग अवश्य रहना चाहिए । कमल के फूल तथा घड़ियाल आदि जलचर भी उनमें रहें ।

( १ ) खाई से चार दंड की दूरी पर छह दण्ड ऊँचा, सब ओर से मजबूत और ऊपर की चौड़ाई से दुगुनी नीव वाला एक बड़ा वप्र ( प्राकार या फसील ) बनवाया जाय । इसके बनवाने में वही मिट्टी काम में लाई जाय, जो खाई से खोदकर बाहर फेंकी गई है । प्राकार ( वप्र ) तीन प्रकार का होना चाहिए—१. ऊर्ध्वचय, २. मञ्चपृष्ठ और ३. कुम्भकुक्षिक, अर्थात् क्रमशः ऊपर पतला, नीचे चपटा और बीच में कुम्भाकार । इन प्राकारों को बनवाते समय, इनकी मिट्टी को हाथी और बैलों से अच्छी तरह रौंदवाना चाहिए, जिससे कि मिट्टी बैठकर मजबूत हो जाय । इनके चारों ओर काँटेदार विषैली झाड़ियाँ लगी होनी चाहिए । प्राकार बन जाने पर यदि मिट्टी बची रह जाय तो उसे उन्हीं गड्ढों में भर देना चाहिए, जहाँ से उसको खोदा गया है, अथवा उस अवशिष्ट मिट्टी से, प्राकार के जो छिद्र रह गए हों, उन्हें भरवा देना चाहिए ।

( २ ) वप्र बन जाने पर उसके ऊपर दीवार बनवानी चाहिए । वह दीवार चौड़ाई से दुगुनी ऊँची हो, कम-से-कम बारह हाथ से लेकर चौदह, सोलह, अठारह

**तालमूलमुरजकैः कपिशीर्षकैश्चाचिताग्रं पृथुशिलासंहितं वा शैलं कारयेत्; न त्वेव काष्ठमयम् । अग्निरवहितो हि तस्मिन्वसति ।**

**(१) विष्कम्भचतुरश्रमट्टालकमुत्सेधसमावक्षेपसोपानं कारयेत्, त्रिंशद्दण्डान्तरं च ।**

**(२) द्वयोरट्टालकयोर्मध्ये सहर्म्यद्वितलामध्यर्धायामां प्रतोलीं कारयेत् ।**

**(३) अट्टालकप्रतोलीमध्ये त्रिधानुष्काधिष्ठानं सापिधानच्छिद्रफलकसंहितमितीन्द्रकोशं कारयेत् ।**

**(४) अन्तरेषु द्विहस्तविष्कम्भं पार्श्वे चतुर्गुणायाममनुप्राकारम् अष्टहस्तायतं देवपथं कारयेत् ।**

**(५) दण्डान्तरा द्विदण्डान्तरा वाचार्याः कारयेद्; अग्राह्ये देशे प्रधावितिकां निष्कुहद्वारं च ।**

---

सम संख्याओं में, अथवा पन्द्रह, सत्रह आदि विषम संख्याओं में, अधिक-से अधिक चौबीस हाथ तक ऊँची होनी चाहिए। प्राकार का ऊपरी भाग इतना चौड़ा होना चाहिए जिस पर एक रथ आसानी से चलाया जा सके। ताड़ वृक्ष की जड़ के समान, मृदंग बाजे के समान, बंदर की खोपड़ी के समान आकार वाले ईट-पत्थरों की कंकरीटों से अथवा बड़े-बड़े शिलाखंडों से प्राकार का निर्माण करवाना चाहिए। लकड़ी का प्राकार कभी भी न बनवाना चाहिए, क्योंकि उसमें सदा आग लगने का भय बना रहता है।

( १ ) प्राकार के आगे एक ऐसी अट्टालिका बनवाये जिसकी लम्बाई, चौड़ाई और ऊँचाई प्राकार के बराबर हो। ऊँचाई के अनुपात से उस पर सीढ़ियाँ भी बनवानी चाहिए। ये अट्टालिकाएँ एक-दूसरी से तीस दंड की दूरी पर हों।

( २ ) दो अट्टालिकाओं के बीच, चौड़ाई से डेढ़गुना लम्बा **प्रतोली** नाम का एक घर बनवाना चाहिए, जिसकी दूसरी मंजिल में जनानखाना रहे।

( ३ ) अट्टालिका और प्रतोली के बीच में **इन्द्रकोष** नामक एक विशिष्ट स्थान बनवाया जाय। वह इतना ही बड़ा हो जिसमें तीन धनुर्धारी संतरी आसानी से बैठ सकें। उसके आगे छिद्रयुक्त एक ऐसा तख्ता लगा रहना चाहिए, जिससे धनुर्धारी बाहर की वस्तु देख सकें और भीतर से ही निशाना बाँध सकें, किन्तु बाहर के लोग उन्हें न देख सकें।

( ४ ) प्राकार के साथ ही एक ऐसा **देवपथ** ( गुप्तमार्ग या सुरंग ) बनवाना चाहिए जो अट्टालक, प्रतोली तथा इन्द्रकोष के बीच में दो हाथ चौड़ा और प्राकार के पास आठ हाथ चौड़ा हो।

( ५ ) इसी प्रकार एक दंड या दो दंड की दूरी पर **चार्या** अर्थात् प्राकार आदि पर चढ़ने उतरने का स्थान बनवाना चाहिए। प्राकार के ऊपर ही जिस स्थान को

**(१) बहिर्जानुभञ्जनीत्रिशूलप्रकरकूपकूटावपातकण्टकप्रतिसराहिपृष्ठतालपत्रशृङ्गाटकश्वदंष्ट्रार्गलोपस्कन्दनपादुकाम्बरीषोदपानकैः छन्नपथं कारयेत् ।**

**(२) प्राकारमुभयतो मण्डपकमध्यर्धदण्डं कृत्वा प्रतोलीषट्तलान्तरं द्वारं निवेशयेत्; पञ्चदण्डादेकोत्तरवृद्धयाष्टदण्डादिति चतुरश्रम् । द्विदण्डं वा । षड्भागमायामादधिकमष्टभागं वा ।**

**(३) पञ्चदशहस्तादेकोत्तरमष्टादशहस्तादिति तुलोत्सेधः ।**

**(४) स्तम्भस्य परिक्षेपाः षडायामा द्विगुणो निखातः चूलिकायाश्चतुर्भागः ।**

**(५) आदितलस्य पञ्च भागाः शाला वापी सीमागृहं च । दशभागिकौ**

---

कोई न देख सके, प्रधावितिका तथा उसके पास ही निष्कुहद्वार भी बनवाने चाहिए। बाहर से छोड़े गये बाण आदि से सुरक्षित रहने के लिए छिपने योग्य आड़ को प्रधावितिका कहते हैं। उसमें निशाना मारने के लिए जो छिद्र बनाया जाता है, उसको निष्कुहद्वार कहा जाता है।

( १ ) प्राकार की बाहरी भूमि में शत्रुओं के घुटनों को तोड़ देने वाले खूँटे, त्रिशूल, अँधेरे गड्ढे, लौह-कंटक के ढेर, साँप के काँटे, ताड़पत्रों के समान बने हुए लोहे के जाल, तीन नोकवाले नुकीले काँटे, कुत्ते की दाढ़ के समान लोहे की तीक्ष्ण कीलें, बड़े-बड़े लट्ठे, कीचड़ से भरे हुए गड्ढे, आग और जहरीले पानी के गढ़े आदि बनाकर दुर्ग के मार्ग को पाट देना चाहिए।

( २ ) जिस स्थान पर किले का दरवाजा बनवाना हो, वहाँ पहिले प्राकार के दोनों भागों में डेढ़ दण्ड लम्बा-चौड़ा मण्डप ( चबूतरा ) बनाया जाय। तदनन्तर उसके ऊपर प्रतोली के समान छह खम्भे खड़े करके द्वार का निर्माण करवाया जाय। द्वार का निर्माण पाँच दंड परिधि से करना चाहिए, और तदनन्तर एक-एक दंड बढ़ाते हुए अधिक से अधिक आठ दंड तक उसकी परिधि होनी चाहिए; अथवा, कुछ विद्वानों के मत से दरवाजा दो दंड का हो। या नीचे के आधार के परिमाण से छठा तथा आठवाँ हिस्सा अधिक ऊपर का दरवाजा बनवाया जाय।

( ३ ) दरवाजे के खम्भों की ऊँचाई पन्द्रह हाथ से लेकर अठारह हाथ तक होनी चाहिए।

( ४ ) खम्भों की मोटाई उसकी ऊँचाई से छठा हिस्सा होनी चाहिए। मोटाई से दुगुना भाग भूमि में गाड़ दिया जावे और चौथाई भाग खम्भे के ऊपर चूल के लिए छोड़ दिया जावे।

( ५ ) प्रतोलिका के तीन तल्लों में से पहिले तल्ले के पाँच हिस्से किए जाँय।

**समत्तवारणौ द्वौ प्रतिमञ्चौ अन्तरम् आणिः। हर्म्यं च समुच्छ्रयादर्धतलं स्थूणावबन्धश्च। आर्धवास्तुकमुत्तमागारं त्रिभागान्तरं वा, इष्टकावबद्धपार्श्वं, वामतः प्रदक्षिणसोपानं गूढभित्तिसोपानमितरतः।**

**(१) द्विहस्तं तोरणशिरः, त्रिपञ्चभागिकौ द्वौ कवाटयोगौ, द्वौ द्वौ परिघौ, अरत्निरिन्द्रकीलः, पञ्चहस्तमणिद्वारं, चत्वारो हस्तिपरिघाः।**

**(२) निवेशार्धं हस्तिनखः मुखसमः। संक्रमोऽसंहार्यो वा भूमिमयो वा निरुदके।**

**(३) प्राकारसमं मुखमवस्थाप्य त्रिभागगोधामुखं गोपुरं कारयेत्; प्राकारमध्ये कृत्वा वापीं पुष्करिणीद्वारं, चतुःशालमध्यर्धान्तराणिकं**

---

उनमें से बीच के हिस्से में बावड़ी बनवाई जाय, उसके दायें-बायें शाला और शाला के छोरों पर सीमागृह बनवाये जाँय। शाला के किनारों पर भी आमने-सामने छोटे-छोटे दो चबूतरे बनवाये जाँय जिन पर बुर्ज भी हों। शाला और सीमागृह के बीच में आणि ( एक छोटा दरवाजा ) होना चाहिए। मकान की दूसरी मंजिल की ऊँचाई पहिली मंजिल की ऊँचाई से आधी होनी चाहिए, उसकी छत के नीचे सहारे के लिए छोटे-छोटे खंभे भी होने चाहिए। मकान की तीसरी मंजिल को **उत्तमागार** कहते हैं, उसकी ऊँचाई डेढ़ दंड होनी चाहिए। उत्तमागार परिमाण द्वार का तृतीयांश होना चाहिए। उसके पार्श्व भाग पक्की ईंटों से मजबूत होने चाहिए। उसकी बाईं ओर घुमावदार सीढ़ियाँ और दाहिनी ओर गुप्त सीढ़ियाँ होनी चाहिए।

( १ ) किले के दरवाजे का ऊपरी बुर्ज दो हाथ लम्बा होना चाहिए। दोनों फाटक तीन या पाँच तख्तों की पर्त के बने हों। किवाड़ों के पीछे दो-दो अर्गलाएँ होनी चाहिए। किवाड़ों को बन्द करने के लिए एक अरत्नी परिमाण ( एक हाथ ) की इन्द्रकील ( चटखनी ) होनी चाहिए। फाटक के बीच में पाँच हाथ का एक छोटा सा दरवाजा जुड़ा होना चाहिए। पूरा दरवाजा इतना बड़ा होना चाहिए कि जिसमें चार हाथी एक साथ प्रवेश कर सकें।

( २ ) द्वार की ऊँचाई का आधा, हाथी के नाखून के आकार-प्रकार का, मजबूत लकड़ी का बना हुआ ऐसा मार्ग होना चाहिए जिससे यथा अवसर किले में टहला जा सके। जहाँ जल का अभाव हो वहाँ मिट्टी का ही मार्ग बनवाना चाहिए।

( ३ ) प्राकार की ऊँचाई जितना किंतु उसके तृतीयांश जितना, गोह के मुँह के आकार का एक **नगरद्वार** भी बनवाना चाहिए। प्राकार के बीच में एक बावड़ी बनाकर उससे संबद्ध एक द्वार भी बनवाये। उस द्वार को **पुष्करिणी** कहते हैं। जिस दरवाजे के आसपास चार शालाएँ बनाई जाँय और उस दरवाजे में पुष्करिणी द्वार से डयोढ़ा दरवाजा लगा हो। उसका नाम **कुमारीपुरद्वार** है। जो दरवाजा

**कुमारीपुरं, मुण्डहर्म्यं द्वितलं मुण्डकद्वारं, भूमिद्रव्यवशेन वा। त्रिभागाधिकायामा भाण्डवाहिनीः कुल्याः कारयेत्।**

**(१) तासु पाषाणकुद्दालकुठारीकाण्डकल्पनाः।**
**मुसुण्डिमुद्गरा - दण्डचक्रयन्त्रशतघ्नयः॥**
**कार्याः कार्मारिकाः शूला वेधनाग्राश्च वेणवः।**
**उष्ट्रग्रीव्योऽग्निसंयोगाः कुप्यकल्पे च यो विधिः॥**

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीयेऽधिकरणे दुर्गविधानं नाम तृतीयोध्यायः;
आदितस्त्रयोविंशः॥

—: ० :—

---

दुमंजिला हो एवं जिस पर कंगूरे आदि न लगे हों, उसे **मुण्डकद्वार** कहते हैं। इस प्रकार राजा अपनी भूमि और संपत्ति के अनुसार जैसा उचित समझे, कुछ परिवर्तन करके दरवाजों को बनवाये। किले के अन्दर की नहरें सामान्य नहरों से तिगुनी चौड़ी बनवाये, जिनके द्वारा हर प्रकार का सामान अन्दर और बाहर ले जाया-लाया जा सके।

( १ ) पत्थर, कुदाली, कुल्हाड़ी, बाण, हाथियों का सामान, गदा, मुद्गर, लाठी, चक्र, मसीनें, तोपें, लोहारों के औजार, लोहे का बना सामान, नुकीले भाले, बाँस, ऊँट की गर्दन के आकार वाले हथियार, अग्निबाण आदि सामान नहर के द्वारा लाया और ले जाया जाता है।

अध्यक्षप्रचार नामक द्वितीय अधिकरण में तीसरा अध्याय समाप्त।

—: ० :—

# दुर्गनिवेशः

(१) त्रयः प्राचीना राजमार्गास्त्रय उदीचीना इति वास्तुविभागः। स द्वादशद्वारो युक्तोदकभूमिच्छन्नपथः।

(२) चतुर्दण्डान्तरा रथ्याः। राजमार्गद्रोणमुखस्थानीयराष्ट्रविवीतपथाः संयानीयव्यूहश्मशानग्रामपथाश्चाष्टदण्डाः। चतुर्दण्डः सेतुवनपथः। द्विदण्डो हस्तिक्षेत्रपथः। पञ्चारत्नयो रथपथश्चत्वारः पशुपथो द्वौ क्षुद्रपशुमनुष्यपथः।

(३) प्रवीरे वास्तुनि राजनिवेशश्चातुर्वर्ण्यसमाजीवे। वास्तुहृदयादुत्तरे नवभागे यथोक्तविधानमन्तःपुरं प्राङ्मुखमुदङ्मुखं वा कारयेत्। तस्य

## दुर्ग से संबंधित राजभवनों तथा नगर के प्रमुख स्थानों का निर्माण

( १ ) वास्तुविद्याविशेषज्ञों के निर्देशानुसार जिस भूमि को नगर-निर्माण के लिए चुना जाय उसमें पूरब से पश्चिम की ओर और उत्तर से दक्षिण की ओर जाने वाले तीन-तीन राजमार्ग हों। इन छह राजमार्गों में नगर-निर्माण या गृह-निर्माण की भूमि का विभाग करना चाहिए। चारों दिशाओं में कुल मिलाकर बारह द्वार हों, जिसमें जल, थल तथा गुप्त मार्ग बने हों।

( २ ) नगर में चार दण्ड ( २४ फीट ) चौड़ी रथ्याएँ ( छोटी गलियाँ ) हों। राजमार्ग, द्रोणमुख ( चार सौ गाँवों का मुख्य केन्द्र ), स्थानीय ( आठ सौ गाँवों का मुख्य केन्द्र ) राष्ट्र, चरागाह, संयानीय ( व्यापारी मंडियाँ ), सैनिक छावनियाँ, श्मशान और गाँवों की ओर जाने वाली सभी सड़कों की चौड़ाई आठ दण्ड ( १६ गज ) होनी चाहिये। जलाशयों तथा जंगलों की ओर जाने वाली सड़कों की चौड़ाई चार दंड होनी चाहिये। हाथियों के आने-जाने का मार्ग और खेतों को जाने वाला रास्ता दो दंड चौड़ा होना चाहिये। रथों के लिए पाँच अरत्नि ( ढाई गज ) और पशुओं के चलने का रास्ता दो गज चौड़ा होना चाहिये। मनुष्य तथा भेड़-बकरी आदि छोटे पशुओं के लिए एक गज चौड़ा रास्ता होना चाहिए।

( ३ ) नगर के सुदृढ़ भूमिभाग में राजभवनों का निर्माण कराना चाहिए; साथ ही यह भी ध्यान रखना चाहिए कि यह भूमि चारों वर्णों की आजीविका के लिए

**पूर्वोत्तरं भागमाचार्यपुरोहितेज्यातोयस्थानं मन्त्रिणश्चावसेयुः। पूर्वदक्षिणं भागं महानसं हस्तिशाला कोष्ठागारं च। ततः पर गन्धमाल्यधान्यरसपण्याः प्रधानकारवः क्षत्रियाश्च पूर्वां दिशमधिवसेयुः। दक्षिणपूर्वं भागं भाण्डागारमक्षपटलं कर्मनिषद्याश्च। दक्षिणपश्चिमं भागं कुप्यगृहमायुधागारं च। ततः परं नगरधान्यव्यावहारिककार्मान्तिकबलाध्यक्षाः पक्वान्नसुरामांसपण्याः रूपाजीवास्तालावचरा वैश्याश्च दक्षिणां दिशमधिवसेयुः। पश्चिमदक्षिणं भागं खरोष्ट्रगुप्तिस्थानं कर्मगृहं च। पश्चिमोत्तरं भागं यानरथशालाः। ततः परं ऊर्णासूत्रवेणुचर्मवर्मशस्त्रावरणकारवः शूद्राश्च पश्चिमां दिशमधिवसेयुः। उत्तरपश्चिमं भागं पण्यभैषज्यगृहम्, उत्तरपूर्वं भागं कोशो गवाश्वं च। ततः परं नगरराजदेवतालोहमणिकारवो ब्राह्मणाश्चोत्तरां दिशमधिवसेयुः। वास्तुच्छिद्रानुलासेषु श्रेणीप्रवहणिकनिकाया आवसेयुः।**

---

उपयोगी हो। गृह-भूमि के बीच से उत्तर की ओर नवें हिस्से में, **निशांत-प्रणिधि** प्रकरण में निर्दिष्ट नियमों के अनुसार, अंतःपुर का निर्माण कराना चाहिये, जिसका द्वार पूरब या पश्चिम की ओर हो। अन्तःपुर के पूर्वोत्तर भाग में आचार्य, पुरोहित के भवन, यज्ञशाला, जलाशय और मंत्रियों के भवन बनवाये जाँय। अन्तःपुर के पूर्व-दक्षिण भाग में महानस ( रसोईघर ), हस्तिशाला और कोष्ठागार ( भंडार ) हों। उसके आगे पूरब दिशा में इत्र, तेल, पुष्पहार, अन्न, घी, तेल की दुकानें और प्रधान कारीगरों एवं क्षत्रियों के निवासस्थान होने चाहिए। दक्षिण-पूरब में भांडागार, राजकीय पदार्थों के आय-व्यय का स्थान और सोने-चाँदी की दुकानें होनी चाहिए। इसी प्रकार दक्षिण-पश्चिम दिशा में शस्त्रागार तथा सोने-चाँदी के अतिरिक्त अन्य वस्तुओं को रखने का स्थान होना चाहिये। उससे आगे, दक्षिण दिशा में नगराध्यक्ष, धान्याध्यक्ष, व्यापाराध्यक्ष, खदानों तथा कारखानों के निरीक्षक, सेनाध्यक्ष, भोजनालय, शराब एवं मांस की दुकानें, वेश्या, नट और वैश्य आदि के निवासस्थान होने चाहिए। पश्चिम-दक्षिण भाग में ऊँटों एवं गधों के गुप्ति-स्थान ( तबेले ) तथा उनके व्यापार के लिए एक अस्थायी घर बनवाया जाय। पश्चिम-उत्तर की ओर रथ तथा पालकी आदि सवारियों को रखने के स्थान होने चाहिए। उसके आगे, पश्चिम दिशा में ही ऊन, सूत, बाँस और चमड़े का कार्य करने वाले, हथियार और उनके म्यान बनवाने वाले और शूद्र लोगों को बसाया जाना चाहिए। उत्तर-पश्चिम में राजकीय पदार्थों को बेचने-खरीदने का बाजार और औषधालय होने चाहिए। उत्तर-पूरब में कोषगृह और गाय, बैल तथा घोड़ों के स्थान बनवाने चाहिए। उसके आगे, उत्तर दिशा की ओर नगरदेवता, कुलदेवता, लुहार, मनिहार और ब्राह्मणों के स्थान

(१) अपराजिताप्रतिहतजयन्तवैजयन्तकोष्ठकान् शिववैश्रवणाश्विश्री-मदिरागृहं च पुरमध्ये कारयेत्। कोष्ठकालयेषु यथोद्देशं वास्तुदेवताः स्थापयेत्। ब्राह्मैन्द्रयाम्यसैनापत्यानि द्वाराणि। बहिः परिखायाः धनुश्शतावकृष्टाश्चैत्यपुण्यस्थानवनसेतुबन्धाः कार्याः, यथादिशं च दिग्देवताः।

(२) उत्तरः पूर्वो वा श्मशानवाटः, दक्षिणेन वर्णोत्तमानाम्। तस्यातिक्रमे पूर्वः साहसदण्डः।

(३) पाषण्डचण्डालानां श्मशानान्ते वासः।

(४) कर्मान्तक्षेत्रवशेन वा कुटुम्बिनां सीमानं स्थापयेत्। तेषु पुष्पफलवाटषण्डकेदारान्धान्यपण्यनिचयांश्चानुज्ञाताः कुर्युः, दशकुलीवाटं कूपस्थानम्। सर्वस्नेहधान्यक्षारलवणभैषज्यशुष्कशाकयवसवल्लूरतृणकाष्ठ-

---

बनवाये जायँ। नगर के ओर-छोर जहाँ खाली जगह छूटी है, धोबी, दर्जी, जुलाहे और विदेशी व्यापारियों को बसाया जाय।

( १ ) दुर्गा, विष्णु, जयंत, इन्द्र, शिव, वरुण, अश्विनीकुमार, लक्ष्मी और मदिरा, इन देवताओं की स्थापना नगर के बीच में करनी चाहिये। कोष्ठागार आदि में भी कुलदेवता या नगरदेवता की स्थापना करनी चाहिये। प्रत्येक दिशा के मुख्य द्वार पर उसके अधिष्ठाता देवता की स्थापना की जाय। उत्तर का देवता ब्रह्मा, पूर्व का इन्द्र, दक्षिण का यम और पश्चिम का सेनापति ( कुमार ) होता है। नगर की परिखा से बाहर दो-सौ गज को दूरी पर कैत्य, पुण्यस्थान, उपवन और सेतुबंध आदि स्थानों की रचना और यथास्थान दिग्देवताओं की भी स्थापना की जाय।

( २ ) नगर के उत्तर या पूरब में श्मशान होना चाहिए। दक्षिण दिशा में छोटी जाति वाले लोगों का श्मशान होना चाहिए। जो भी इस नियम का उल्लंघन करे उसे प्रथम साहस-दण्ड दिया जाय।

( ३ ) कापालिकों और चाण्डालों का निवासस्थान श्मशानों के ही समीप बनवाया जाय।

( ४ ) नगर में बसने वाले परिवारों को उनके अध्यवसाय तथा उनके योग्य भूमि की गुञ्जायश देखकर ही, बसाया जाय। उन खेतों में फूल, फल, साग-सब्जी, कमल आदि की क्यारियाँ बनाई जायँ। राजा तथा राजपुरुषों की आज्ञा प्राप्त कर उनमें अनाज तथा विक्रय योग्य वस्तुएँ पैदा की जायँ। **दशकुलीबाट** ( बीस हलों से जोती जाने योग्य भूमि ) के बीच सिंचाई के लिए एक कुआँ होना चाहिए। घी, तेल, इत्र, क्षार, नमक, दवा, सूखे साक, भूसा, सूखा मांस, घास, लकड़ी, लोहा, चमड़ा, कोयला, ताँत, विष, सींग, बाँस, छाल, चन्दन या देवदारु की लकड़ी, हथियार, कवच और पत्थर, इन सभी वस्तुओं को दुर्ग के अन्दर इतनी तादात में जमा

**लोहचर्माङ्गारस्नायुविषविषाणवेणुवल्कलसारदारुप्रहरणावर्णाश्मनिचयाननेकवर्षोपभोगसहान् कारयेत् । नवेनानवं शोधयेत् ।**

**(१) हस्त्यश्वरथपादातमनेकमुख्यमवस्थापयेत् । अनेकमुख्यं हि परस्परभयात् परोपजापं नोपैतीति ।**

**(२) एतेनान्तपालदुर्गसंस्कारा व्याख्याताः ।**

**(३) न च वाहिरिकान्कुर्यात्पुरराष्ट्रोपघातकान् ।**
**क्षिपेज्जनपदस्यान्ते सर्वान्वादापयेत्करान् ॥**

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीयेऽधिकरणे दुर्गनिवेशश्चतुर्थोऽध्यायः;
आदितश्चतुर्विंशः ॥

—: ० :—

---

होना चाहिये कि कई वर्षों तक उपयोग में लाने के लिए वे पर्याप्त हों । उनमें पुरानी वस्तु की जगह नई वस्तु रख देनी चाहिए ।

( १ ) हाथी, घोड़े, रथ और पैदल इन चारों प्रकार की सेनाओं को अनेक सुयोग्य सेनाध्यक्षों के संरक्षण में रखा जाना चाहिए । क्योंकि अनेक सेनाध्यक्षों की नियुक्ति से पहिला लाभ तो यह है कि पारस्परिक भय के कारण वे शत्रु में जाकर नहीं मिल पाते और दूसरा लाभ यह है कि एक अध्यक्ष के फूट जाने पर दूसरा अध्यक्ष उसका कार्य सम्भाल सकता है ।

( २ ) इन नगरदुर्गों के निर्माण के नियमों के अनुसार ही जनपद की सीमा के दुर्गों और उनके प्रबन्ध का विधान समझ लेना चाहिये ।

( ३ ) राजा को चाहिए कि वह नगर में ऐसे लोगों को न बसने दे, जिनके कारण राष्ट्र तथा नगर का नैतिक, धार्मिक एवं राष्ट्रीय स्तर गिरता हो । यदि इनको बसाना ही हो तो सीमा-प्रान्त में बसाया जाय और उनसे राज्यकर वसूल किया जाय ।

अध्यक्षप्रचार नामक द्वितीय अधिकरण में चौथा अध्याय समाप्त ।

—: ० :—

प्रकरण २१ | अध्याय ५

# सन्निधातृनिचयकर्म

(१) सन्निधाता कोशगृहं पण्यगृहं कोष्ठागारं कुप्यगृहमायुधागारं बन्धनागारं च कारयेत्।

(२) चतुरश्रां वापीमनुदकोपस्नेहां खानयित्वा पृथुशिलाभिरुभयतः पार्श्वं मूलं च प्रचित्य सारदारुपञ्जरं भूमिसमत्रितलमनेकविधानं कुट्टिमदेशस्थानतलमेकद्वारं यन्त्रयुक्तसोपानं देवतापिधानं भूमिगृहं कारयेत्। तस्योपर्युभयतोनिषेधं सप्रग्रीवमैष्टकं भाण्डवाहिनीपरिक्षिप्तं कोशगृहं कारयेत्, प्रासादं वा। जनपदान्ते ध्रुवनिधिमापदर्थमभित्यक्तैः पुरुषैः कारयेत्।

(३) पक्वेष्टकास्तम्भं चतुःशालमेकद्वारमनेकस्थानतलं विवृतस्तम्भा-

---

## कोषगृह का निर्माण और कोषाध्यक्ष के कर्त्तव्य

( १ ) सन्निधाता ( कोषाध्यक्ष ) को चाहिए कि वह कोषगृह, पण्यगृह ( राजकीय विक्रेय वस्तुओं का स्थान ), कोष्ठागार ( भाण्डारगृह ), कुप्यगृह ( अन्नागार ), शस्त्रागार और कारागार का निर्माण करवाये।

( २ ) सीलरहित स्थान में बावड़ी के समान एक चौरस गढ़ा खुदवाकर चारों ओर से उसकी दीवारों और उसके फर्श को मोटी मजबूत शिलाओं से चुनवाना चाहिए। उसके बीच में मजबूत लकड़ियों से बने हुए पिजरे के समान अनेक कोठरियाँ हों; उसमें तीन मंजिलें हों; तीनों मंजिलों में बढ़िया दरवाजे तथा सुन्दर फर्श हों; ऊपर-नीचे चढ़ने-उतरने के लिए उसमें लिफ्ट लगा हो, उसके दरवाजों पर देवताओं की मूर्तियाँ अंकित हों, इस प्रकार का एक भूमिगृह ( तहखाना, अण्डरग्राउण्ड ) बनवाना चाहिए। उस भूमिगृह के ऊपर एक कोषगृह ( खजाना ) बनवाना चाहिए, उस पर भीतर-बाहर से बन्द की जाने वाली अर्गलाएँ हों, एक बरामदा हो, पक्की ईंटों से उसको बनाया गया हो, एवं वह चारों ओर अनेक पदार्थों से भरे हुए मकानों से घिरा हो। जनपद के मध्यभाग में प्राणदण्ड पाये पुरुषों के द्वारा, आपत्ति में काम आने वाला एक ध्रुवनिधि ( गुप्त खजाना ) बनवाना चाहिए।

### पण्यगृह और गोष्ठागार

( ३ ) पक्की ईंटों से चुना हुआ, चार भवनों से परिवृत, एक दरवाजे वाला,

**पसारमुभयतः पण्यगृहं, कोष्ठागारं च, दीर्घबहुलशालं कक्ष्यावृतकुड्य-मन्तः कुप्यगृहं, तदेव भूमिगृहयुक्तमायुधागारं, पृथक् ।**

**(१) धर्मस्थीयं महामात्रीयं विभक्तस्त्रीपुरुषस्थानमपसारतः सुगुप्त-कक्ष्यं बन्धनागारं कारयेत् ।**

**(२) सर्वेषां शालाखातोदपानवच्च स्नानगृहाग्निविषत्राणमार्जार-नकुलारक्षाः स्वदैवपूजनयुक्ताः कारयेत् ।**

**(३) कोष्ठागारे वर्षमानमरत्निमुखं कुण्डं स्थापयेत् ।**

**(४) तज्जातकरणाधिष्ठितः पुराणं नवं च रत्नं सारं फल्गु कुप्य वा**

---

अनेक कक्षों एवं मंजिलों से युक्त और चारों ओर खुले हुए खम्भों वाले चबूतरे से घिरा हुआ पण्यगृह ( विक्रेय वस्तुओं को रखने का घर ) तथा कोष्ठागार ( कोठार ) बनवाना चाहिए ।

## कुप्यगृह और शस्त्रागार

अनेक लम्बे दालानों से युक्त, चारों ओर अनेक कोठरियों से घिरी हुई दीवालों वाला, भीतर की ओर कुप्यगृह बनवाना चाहिए । उसी में एक तहखाना बनवाकर शस्त्रागार बनवाया जाय ।

## कारागृह

( १ ) धर्मस्थ ( न्यायाधीश ) और महायाम ( सन्निधाता, समाहर्त्ता आदि ) से सजा पाये हुए लोगों को कारागृह में रखना चाहिए । कारागृह में स्त्री-पुरुषों के लिए अलग-अलग स्थान होने चाहिए । उसके बहिर्मार्ग तथा चारों ओर की अच्छी तरह रक्षा होनी चाहिए ।

( २ ) उक्त सभी कोशगृह आदि स्थानों में शाला, परिखा और कूओं की तरह स्नानागार भी बनवाने चाहिए । अग्नि और विष से भी उनकी रक्षा की जानी चाहिए । विष की रक्षा के लिए बिल्ली और नेवला आदि को पालना चाहिए । इन स्थानों की भलीभांति रक्षा की जानी चाहिए । उनके अधिष्ठित देवताओं जैसे, कोष-गृह का कुबेर, पर्ण्यगृह तथा कोष्ठागार की श्री, कुप्यगृह का विश्वकर्मा, शस्त्रागार का यम और बन्दीगृह का वरुण आदि की पूजा करवानी चाहिए ।

( ३ ) वर्षाजल को मापने के लिए कोष्ठागार में एक ऐसा कुण्ड बनवाया जाना चाहिए जिसके मुँह का घेरा एक अरत्नि ( चौबीस अंगुल ) हो ।

( ४ ) कोष्ठागाराध्यक्ष, प्रत्येक वस्तु के विशेषज्ञों की सहायता से नये और पुराने का भेद समझकर रत्न, चन्दन, वस्त्र, लकड़ी, चमड़ा, बाँस आदि उपयोगी वस्तुओं का संग्रह करे । यदि कोई व्यक्ति असली रत्न की जगह नकली रत्न दे और

**प्रतिगृह्णीयात् । तत्र रत्नोपधावुत्तमो दण्डः कर्तुः कारयितुश्च, सारोपधौ मध्यमः, फल्गुकुप्योपधौ तच्च तावच्च दण्डः ।**

**(१) रूपदर्शकविशुद्धं हिरण्यं प्रतिगृह्णीयाद्, अशुद्धं छेदयेत् । आहर्तुः पूर्वः साहसदण्डः ।**

**(२) शुद्धं पूर्णमभिनवं च धान्यं प्रतिगृह्णीयात् । विपर्यये मूलद्विगुणो दण्डः ।**

**(३) तेन पण्यं कुप्यमायुधं च व्याख्यातम् ।**

**(४) सर्वाधिकरणेषु युक्तोपयुक्ततत्पुरुषाणां पणद्विपणचतुष्पणाः, परमपहारेषु पूर्वमध्यमोत्तमवधा दण्डाः ।**

**(५) कोशाधिष्ठितस्य कोशावच्छेदे घातः । तद्वैयावृत्यकाराणामर्धदण्डः । परिभाषणमविज्ञाते । चोराणामभिप्रधर्षणे चित्रो घातः ।**

---

छल से असली रत्न का अपहरण कर ले जाय तो अपहरण करने वाले और कराने वाले, दोनों को उत्तम साहसदंड दिया जाय । चन्दन आदि वस्तुओं में कपट करने पर मध्यम साहसदंड दिया जाना चाहिए । वस्त्र, लकड़ी और चमड़ा जैसे पदार्थों में छल करने वाले व्यक्ति से वैसी ही दूसरी वस्तु ले ली जाय या उसका मूल्य ले लिया जाय और उतना ही उससे दण्डरूप में वसूल कर लिया जाय ।

( १ ) सिक्कों के पारखी पुरुषों द्वारा स्वर्णमुद्रा का संग्रह किया जाना चाहिए । सिक्कों में से जो नकली मालूम हो उसको तत्काल ही काट दिया जाय, जिससे उसको व्यवहार में न लाया जा सके । नकली सिक्कों को लाने वाले पुरुष भी प्रथम साहस-दण्ड के अपराधी हैं ।

( २ ) धान्याधिकारी पुरुष को चाहिए कि वह शुद्ध, पूरा तथा नया अन्न ले । यदि वह ऐसा न करे तो उससे दुगुना दण्ड वसूल किया जाय ।

( ३ ) इसी प्रकार पण्य, कुप्य और आयुध के सम्बन्ध में भी नियम समझने चाहिए ।

( ४ ) प्रत्येक अधिकारी पुरुष को, उसके सहकारियों को तथा उन दोनों के बीच काम करने वाले पुरुषों को, पहली बार किसी वस्तु का अपहरण करने पर क्रमशः एक पण, दो पण और चार पण का दण्ड दिया जाना चाहिए । यदि वे फिर भी अपहरण करें तो क्रमानुसार उन्हें प्रथम साहस, मध्यम साहस और उत्तम साहस दण्ड दिया जाना चाहिए । इस पर भी वे न मानें तो उन्हें प्राणदण्ड दिया जाय ।

( ५ ) कोषाध्यक्ष यदि सुरंग आदि उपाय से कोष का अपहरण करे तो उसे प्राणदण्ड दिया जाय । इसमें अधीनस्थ लोगों को उसका आधा दण्ड दिया जाय । यदि कोष का अपहरण करने में अधीनस्थ लोगों का हाथ न हो तो उन्हें दण्ड न

**(१) तस्मादाप्तपुरुषाधिष्ठितः सन्निधाता निचयावनुतिष्ठेत् ।**
**(२) बाह्यमाभ्यन्तरं चायं विद्याद्वर्षशतादपि ।**
**यथा पृष्टो न सज्येत व्ययशेषं च दर्शयेत् ।।**

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीयेऽधिकरणे सन्निधातृनिचयकर्म पञ्चमोऽध्यायः,
आदितः पञ्चविंशः ।।

—: ० :—

---

दिया जाय । केवल उनकी निंदा तथा उपहास कर उनको दुत्कारा जाय । यदि चोर सेंध लगाकर चोरी करें तो उन्हें चित्रबध का दण्ड ( कष्टकर प्राणदण्ड ) दिया जाय ।

( १ ) इसलिए कोषाध्यक्ष को चाहिए कि विश्वासी पुरुषों के सहयोग से ही वह धन-संग्रह आदि का कार्य करे ।

( २ ) कोषाध्यक्ष को चाहिए कि वह जनपद तथा नगर से होने वाली आय को अच्छी तरह से जाने । इस सम्बन्ध में उसे इतनी जानकारी होनी चाहिए कि यदि उससे सौ वर्ष पीछे की आय का लेखा-जोखा पूछा जाय तो तत्काल ही वह उसकी समुचित जानकारी दे सके । बचे हुए धन को वह सदा कोष में दिखाता रहे ।

अध्यक्षप्रचार नामक द्वितीय अधिकरण में सन्निधातृनिचयकर्म नामक
पाँचवाँ अध्याय समाप्त ।

—: ० :—

| प्रकरण २२ | |
| --- | --- |
| अध्याय ६ | **समाहर्तृसमुदयप्रस्थापनम्** |

**(१) समाहर्ता दुर्गं राष्ट्रं खनिं सेतुं वनं व्रजं वणिक्पथं चावेक्षेत।**

**(२) शुल्कं दण्डः पौतवं नागरिको लक्षणाध्यक्षो मुद्राध्यक्षः सुरा सूना सूत्रं तैलं घृतं क्षारः सौर्वाणकः पण्यसंस्था वेश्या द्यूतं वास्तुकं कारुशिल्पिगणो देवताध्यक्षो द्वारवाहिरिकादेयं च दुर्गम्।**

**(३) सीता भागो बलिः करो वणिक् नदीपालस्तरो नावः पट्टनं विवीतं वर्तनी रज्जूश्चोररज्जूश्च राष्ट्रम्।**

**(४) सुवर्णरजतवज्रमणिमुक्ता-प्रवालशङ्ख-लोहलवणभूमि-प्रस्तररस-धातवः खनिः।**

---

## समाहर्त्ता का कर-संग्रह कार्य

( १ ) समाहर्त्ता ( कलक्टर जनरल ) को चाहिये कि वह १. दुर्ग, २. राष्ट्र, ३. खनि, ४. सेतु, ५. वन, ६. ब्रज और ७. व्यापार सम्बन्धी कार्यों का निरीक्षण करे।

( २ ) दुर्ग : शुल्क ( चुङ्गी ), दण्ड ( जुर्माना ), पौतव ( तराजू-बाट ), नगराध्यक्ष, लक्षणाध्यक्ष ( पटवारी, कानूनगो, अमीन ), मुद्राध्यक्ष, सुराध्यक्ष ( आबकारी अधिकारी ), सूनाध्यक्ष ( फाँसी देने वाला ), सूत्राध्यक्ष, तेल-घी आदि का विक्रेता, सुवर्णाध्यक्ष, दुकान, वेश्या, द्यूत, वास्तूक ( शिल्पी ), बढ़ई, लुहार, सुनार, मन्दिरों के निरीक्षक, द्वारपाल और नट-नर्तक आदि से लिया जाने वाला धन दुर्ग कहलाता है।

( ३ ) राष्ट्र : सीता ( खेती ), भाग ( धान्य का षष्ठांश ), बलि ( उपहार ), कर ( फल, वृक्ष आदि का टैक्स ), वणिक् ( व्यापारकर ), नदीपालस्तर ( नदी पार होने का टैक्स ), नाव का कर, पट्टन ( कस्बों की आय ), विवीत ( चरागाहों की आय ), वर्तनी ( मार्गकर ), रज्जू ( भूमि निरीक्षकों द्वारा प्राप्तव्य धन ) और चोर रज्जू ( चोरों को पकड़ने के लिये ग्रामवासियों से मिला धन ) आदि आय के साधन राष्ट्र नाम से कहे जाते हैं।

( ४ ) **खनि** : सोना, चाँदी, हीरा, मणि, मोती, मूँगा, शंख, लोहा, लवण, भूमि, पत्थर और खनिज पदार्थ **खनि** कहे जाते हैं।

(१) पुष्पफलवाटषण्डकेदारमूलवापाः सेतुः ।

(२) पशुमृगद्रव्यहस्तिवनपरिग्रहो वनम् ।

(३) गोमहिषमजाविकं खरोष्ट्रमश्वाश्वतराश्च व्रजः ।

(४) स्थलपथो वारिपथश्च वणिक्पथः ।

(५) इत्यायशरीरम् । मूलं भागो व्याजी परिघः क्लृप्तं रूपिकमत्ययश्चायमुखम् ।

(६) देवपितृपूजादानार्थं स्वस्तिवाचनमन्तःपुरं महानसं दूतप्रावर्तिमं कोष्ठागारमायुधागारं पण्यगृहं कुप्यगृहं कर्मान्तो विष्टिः पत्त्यश्वरथद्विपपरिग्रहो गोमण्डलं पशुमृगपक्षिव्यालवाटाः काष्ठतृणवाटश्चेति व्ययशरीरम् ।

(७) राजवर्षं मासः पक्षो दिवसश्च व्युष्टम् । वर्षाहेमन्तग्रीष्माणां तृतीयसप्तमा दिवसोनाः पक्षाः, शेषाः पूर्णाः । पृथगधिमासक इति कालः ।

---

( १ ) **सेतु** : फूल, फल, केला, सुपारी, अन्न के खेत, अदरख और हल्दी के खेत इन सबको **सेतु** कहा जाता है ।

( २ ) **वन** : हरिण आदि पशु, लकड़ी आदि द्रव्य और हाथियों के जंगल को **वन** कहा जाता है ।

( ३ ) **व्रज** : गाय, भैंस, बकरी, भेड़, गधा, ऊँट, घोड़ा, खच्चर आदि जानवर **व्रज** नाम से कहे जाते हैं, क्योंकि वे अपने गोष्ठ ( व्रज ) में रहते हैं ।

( ४ ) **वणिक्पथ** : स्थलमार्ग और जलमार्ग, व्यापार के इन दो मार्गों को **वणिक्पथ** कहा जाता है ।

( ५ ) ये सभी आमदनी के साधन हैं । इनके अतिरिक्त मूल ( अनाज, साग, सब्जी आदि को बेचकर एकत्र किया गया धन ), भाग ( पैदावार का षष्ठांश ), व्याजी ( कपटी व्यापारियों से दण्ड रूप में वसूल किया गया धन ), परिघ ( लावारिस का धन ), क्लृप्त ( नियत कर ), रूपिक ( नमककर ), अत्यय ( जुरमाने का धन ), आदि भी आमदनी के साधन हैं ।

( ६ ) देवपूजा, पितृपूजा, दान, स्वस्तिवाचन आदि धार्मिक कृत्य, अन्तःपुर, रसोईघर, दूत प्रेषण, कोष्ठागार, शस्त्रागार, पण्यगृह, कुप्यगृह का व्यय कर्मान्त ( कृषि, व्यापार ), विष्टि ( बेगारी का व्यय ), पैदल, हाथी, घोड़ा तथा रथ आदि चारों प्रकार के सेना-संग्रह का व्यय, गाय, भैंस, बकरी आदि उपयोगी पशुओं का व्यय, हरिण, पक्षी तथा अन्य हिंसक जंगली जानवरों की रक्षा के लिए किया गया व्यय और स्थान, लकड़ी, घास आदि के जंगलों की सुरक्षा के लिए किया गया व्यय, ये सभी व्यय के स्थान कहलाते हैं ।

( ७ ) राजा के राज्याभिषेक के बाद, उसके प्रत्येक कार्य में 'व्युष्ट' नाम से कहे

**(१) करणीयं सिद्धं शेषमायव्ययौ नीवी च ।**

**(२) संस्थानं प्रचारः शरीरावस्थापनमादानं सर्वसमुदयपिण्डः सञ्जातमेतत्करणीयम् ।**

**(३) कोशार्पितं राजहरः पुरव्ययश्च प्रविष्टं, परमसंवत्सरानुवृत्तं शासनमुक्तं मुखाज्ञप्तं चापातनीयम्, एतत्सिद्धम् ।**

**(४) सिद्धिप्रकर्मयोगः दण्डशेषमाहरणीयं, बलात्कृतप्रतिस्तब्धमवसृष्टं च प्रशोध्यम्, ऐतच्छेषमसारमल्पसारं च ।**

**(५) वर्तमानः पर्युषितोऽन्यजातश्चायः । दिवसानुवृत्तो वर्तमानः । परमसांवत्सरिकः परप्रचारसंक्रान्तो वा पर्युषितः । नष्टप्रस्मृतमायुक्तदण्डः पार्श्वं पारिहीणिकमौपायनिकं डमरगतकस्वमपुत्रकं निधिश्चान्यजातः । विक्षेपव्याधितान्तरारम्भशेषश्च व्ययप्रत्यायः । विक्रये पण्यानामर्घवृद्धिरुपजा मानोन्मानविशेषो व्याजी क्रयसङ्घर्षे वा वृद्धिरित्यायः ।**

---

जाने वाले वर्ष, मास, पक्ष और दिन इन चारों बातों का उल्लेख होना चाहिये, राजवर्ष के तीन विभाग हैं : १. वर्षा २. हेमन्त और ३. ग्रीष्म, इन तीनों विभागों में प्रत्येक के आठ-आठ पक्ष होते हैं, प्रत्येक पक्ष पन्द्रह दिन का होता है, प्रत्येक ऋतु के तीसरे तथा सातवें पक्ष में एक-एक दिन कम माना जाय, शेष छहों पक्ष पन्द्रह-पन्द्रह दिन के माने जाँय, इसके अतिरिक्त एक अधिमास ( मलमास ) भी माना जाय, यही काल-विभाजन राजकीय कार्यों में प्रयुक्त किया जाना चाहिये ।

( १ ) समाहर्त्ता को चाहिये कि वह करणीय, सिद्ध, शेष, आय, व्यय तथा नीवी आदि कार्यों को उचित रीति से सम्पन्न करे ।

( २ ) करणीय ६ प्रकार का होता है १. संस्थान २. प्रचार ३. शरीरावस्थान ४. आदान ५. सर्वसमुदयपिण्ड और ६. संजात ।

( ३ ) सिद्ध भी ६ प्रकार का होता है १. कोशार्पित २. राजहार ३. पुरव्यय ४. परसंवत्सरानुवृत्त ५. शासनमुक्त और ६. मुखाज्ञप्त ।

( ४ ) शेष के भी ६ भेद हैं १. सिद्धप्रकर्मयोग ३. दण्डशेष ३. बलात्कृत प्रतिस्तब्ध ४. अवसृष्ट ५. असार और ६. अल्पसार ।

( ५ ) आय तीन प्रकार की है १. वर्तमान २. पर्युषित और ३. अन्यजात । प्रतिदिन की आमदनी को '**वर्तमान**' आय कहा जाता है, पिछले वर्ष का बकाया अथवा शत्रुदेश से प्राप्त धन '**पर्युषित**' आय है, भूले हुए धन की स्मृति, अपराधस्वरूप प्राप्त धन, कर के अतिरिक्त अन्य उपायों या प्रभुत्व से प्राप्त धन, कांजीहाउस से प्राप्त धन, भेंटस्वरूप प्राप्त धन, शत्रुसेना से अपहृत धन और लावारिस का धन '**अन्यजात**' आय कहलाती है । इसके अतिरिक्त सैनिक खर्च से बचा हुआ धन, स्वास्थ्य-विभाग के व्यय से बचा हुआ धन और इमारतों के बनवाने से बचा

**(१) नित्यो नित्योत्पादिको लाभो लाभोत्पादिक इति व्ययः। दिवसानुवृत्तो नित्यः। पक्षमाससंवत्सरलाभो लाभः। तयोरुत्पन्नो नित्योत्पादिको लाभोत्पादिक इति।**

**(२) व्ययसञ्जातादायव्ययविशुद्धा नीवी प्राप्ता चानुवृत्ता चेति।**

**(३) एवं कुर्यात्समुदयं वृद्धिं चायस्य दर्शयेत्।**
**ह्रासं व्ययस्य च प्राज्ञः साधयेच्च विपर्ययम् ॥**

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीयेऽधिकरणे समाहर्तृसमुदयप्रस्थापनं षष्ठोऽध्यायः,
आदितः षड्विंशः ॥

—: ० :—

---

हुआ धन '**व्ययप्रत्याय**' कहलाता है। यह भी एक प्रकार की आय है। बिक्री के समय वस्तुओं की कीमत बढ़ जाने से, निषिद्ध वस्तुओं के बेचने से, बाट-तराजू आदि की बेईमानी से तथा खरीदारों की प्रतिस्पर्धा से प्राप्त धन भी आमदनी का धन है।

( १ ) व्यय चार प्रकार का होता है: १. नित्य २. नित्योत्पादिक ३. लाभ और ४. लाभोत्पादिक। प्रतिदिन के नियमित व्यय को '**नित्य**' व्यय कहते हैं। पाक्षिक, मासिक तथा वार्षिक आय के लिए व्यय किया गया धन '**लाभ**' कहलाता है। नियमित व्यय से अधिक खर्च हो जानेवाले धन को '**नित्योत्पादिक**' तथा '**लाभोत्पादिक**' कहा जाता है।

( २ ) सब तरह के आय-व्यय का भली-भाँति हिसाब करके भी बचत रूप में निकलने वाला धन '**नीवी**' कहलाता है, जो दो प्रकार का होता है १. **प्राप्त** और और २. **अनुवृत**। प्राप्त वह, जो खजाने में जमा हो और अनुवृत वह, जो खजाने में जमा किया जानेवाला हो।

( ३ ) समाहर्त्ता को चाहिए कि वह ऊपर निर्दिष्ट विधियों, साधनों एवं मार्गों से राजकीय धन का संग्रह करे और आय-व्यय में बचत-हानि का लेखा-जोखा ठीक रखे। यदि किसी अवस्था में भविष्य की विशेष आय की आशा में पहिले अधिक व्यय भी करना पड़े तो वैसा करके आय को बढ़ाये।

अध्यक्षप्रचार नामक द्वितीय अधिकरण में समाहर्तृसमुदयप्रस्थापन नामक
छठा अध्याय समाप्त।

—: ० :—

| प्रकरण २३ | |
|---|---|
| अध्याय ७ | |

# अक्षपटले गाणनिक्याधिकारः

(१) अक्षपटलमध्यक्षः प्राङ्मुखं वा विभक्तोपस्थानं निबन्धपुस्तक-स्थानं कारयेत् ।

(२) तत्राधिकरणानां संख्याप्रचारसञ्जाताग्रं, कर्मान्तानां द्रव्यप्रयोगे वृद्धिक्षयव्ययप्रयामव्याजीयोगस्थानवेतनविष्टिप्रमाणं, रत्नसारफल्गुकुप्यानामर्घप्रतिवर्णकप्रतिमानमानोन्मानभाण्डं, देशग्रामजातिकुलसङ्घानां धर्म-व्यवहारचारित्रसंस्थानं, राजोपजीविनां प्रग्रहप्रदेशभोगपरिहारभक्तवेतन-लाभं, राज्ञश्च पत्नीपुत्राणां रत्नभूमिलाभं निर्देशौत्पादिकप्रतीकारलाभं, मित्रामित्राणां च सन्धिविक्रमप्रदानादानं निबन्धपुस्तकस्थं कारयेत् ।

## अक्षपटल में गाणनिक के कार्यों का निरूपण

( १ ) आय-व्यय का निरीक्षक ( एकाउण्ट्स सुपरिन्टेण्डेण्ट ), अक्षपटल ( एकाउन्टेण्ट्स ऑफिस ) का निर्माण करावे, उसका दरवाजा पूरब या उत्तर दिशा की ओर होना चाहिये, उसमें लेखकों ( क्लर्कों ) के बैठने के लिए कक्ष और आय-व्यय की निबन्ध-पुस्तकों ( एकाउण्ट बुक्स ) को रखने के लिये नियमित व्यवस्था होनी चाहिये ।

( २ ) उसमें विभिन्न विभागों की नामावली, जनपद की पैदावार एवं उसकी आमदनी का विवरण, खान तथा कारखानों के आय-व्यय का हिसाब, कर्मचारियों की नियुक्ति, अन्न एवं सुवर्ण आदि का उपयोग, प्रयास ( अनाज के गोदाम ), व्याजी ( कम तोलने के कारण व्यापारियों से दण्डरूप में हुई आमदनी ), योग ( अच्छे-बुरे द्रव्य की मिलावट ), स्थान ( गाँव ), वेतन, विष्टि ( बेगार ), आदि का ब्यौरा, रत्नसार एवं कुप्य आदि पदार्थों के मूल्य, उनका गुण, तौल, उनकी लम्बाई-चौड़ाई, ऊँचाई, एवं असली मूलधन का उल्लेख, देश, ग्राम, जाति, कुल सभा-सोसाइटियों के धर्म, व्यवहार, चरित्र तथा परिस्थितियों का उल्लेख, राजकीय सहायता से जीवित रहनेवाले प्रग्रह ( देवालय, मंत्री, पुरोहित का सम्मान ), निवासस्थान, भेंट, परिहार ( कर आदि का न लेना ), एवं वेतन आदि का उल्लेख, महारानी तथा राजपुत्रों द्वारा रत्न एवं भूमि आदि की प्राप्ति का विवरण, राजा, महारानी तथा राजपुत्रों को नियमित रूप से दिये जानेवाले धन के अतिरिक्त दिया हुआ धन, उत्सवों तथा

**(१) ततः सर्वाधिकरणानां करणीयं सिद्धं शेषमायव्ययौ नीवीं उपस्थानं प्रचारचरित्रसंस्थानं च निबन्धेन प्रयच्छेत्। उत्तममध्यमावरेषु च कर्मसु तज्जातिकमध्यक्षं कुर्यात्। सामुदायिकेष्ववक्लृप्तिकं यमुपहत्य न राजानुतप्येत्।**

**(२) सहग्राहिणः प्रतिभुवः कर्मोपजीविनः पुत्रा भ्रातरो भार्या दुहितरो भृत्याश्चास्य कर्मच्छेदं वहेयुः।**

**(३) त्रिशतं चतुःपञ्चाशच्चाहोरात्राणां कर्मसंवत्सरः। तमाषाढीपर्यवसानमूनं पूर्णं वा दद्यात्। करणाधिष्ठितमधिमासकं कुर्यात्। अपसर्पाधिष्ठितं च प्रचारम्। प्रचारचरित्रसंस्थानान्यनुपलभमानो हि प्रकृतः समुदयमज्ञानेन परिहापयति। उत्थानक्लेशासहत्वादालस्येन, शब्दादिष्वि-**

---

स्वास्थ्य सम्बन्धी सुधारों से प्राप्त धन का उल्लेख और मित्र राजाओं तथा शत्रु राजाओं के साथ संधि-विग्रह आदि के निमित्त प्राप्त हुआ अथवा खर्च हुए धन का विवरण आदि सभी ऐसे विषय हैं जिनका उल्लेख निबन्धपुस्तक ( एकाउण्ट बुक्स ) में किया जाना चाहिये।

( १ ) इसके बाद सभी उत्पत्ति-केन्द्रों एवं विभागों के लिए किए जानेवाले, किए गए तथा बचे हुए आय, व्यय, नीवी, कार्यकर्ताओं की उपस्थिति, प्रचार, चरित्र और संस्थान आदि सब बातों को रजिस्टर में दर्ज करके राजा को दे देना चाहिए। उत्तम, मध्यम और निकृष्ट जैसे भी कार्य हों उनके अनुसार ही उनके अध्यक्ष नियुक्त किये जाने चाहिए। एक ही कार्य को करनेवाले अनेक व्यक्तियों में उसी व्यक्ति को अध्यक्ष नियुक्त किया जाना चाहिए जो निपुण, गुणी, यशस्वी हो और जिसे दण्ड देने के पश्चात् राजा को पश्चात्ताप न करना पड़े।

( २ ) यदि कोई अध्यक्ष राजकीय धन का गबन करके उसको अदा करने में असमर्थ हो तो वह धन क्रमशः उसके हिस्सेदार, उसके जामिन, उसके अधीनस्थ कर्मचारी, उसके पुत्र एवं भाई, उसकी स्त्री एवं लड़की अथवा उसके नौकर अदा करें।

( ३ ) तीन-सौ-चौवन दिन-रात का एक कर्मसंवत्सर होता है। उसकी समाप्ति आषाढ़ी पूर्णिमा को समझनी चाहिए। इसी वर्ष-गणना के हिसाब से प्रत्येक अध्यक्ष का वेतन दिया जाना चाहिए। यदि अध्यक्ष की नियुक्ति वर्ष के मध्य में हुई है तो उसको कम वेतन और यदि उसने पूरे वर्ष कार्य किया है तो उसे पूरा वेतन दिया जाना चाहिए। प्रत्येक कर्मचारी के कार्य का ब्यौरा उपस्थिति रजिस्टर से देखना चाहिए। अध्यक्ष को चाहिए कि वह जनपद के समस्त कार्यालयों की कार्य-व्यवस्था का ज्ञान गुप्तचरों से प्राप्त करे। यदि वह ऐसा नहीं करता तो अपनी अज्ञानता के

**न्द्रियार्थेषु प्रमादेन, संक्रोशाधर्मानर्थभीरुर्भयेन, कार्यार्थिष्वनुग्रहबुद्धिः कामेन हिंसाबुद्धिः कोपेन, विद्याद्रव्यवल्लभापाश्रयाद् दर्पेण, तुलामानतर्कगणिकान्तरोपधानात् लोभेन।**

**(१) तेषामानुपूर्व्या यावानर्थोपघातः तावानेकोत्तरो दण्ड इति मानवाः। सर्वत्राष्टगुण इति पाराशराः। दशगुण इति बार्हस्पत्याः। विंशतिगुण इत्यौशनसाः। यथापराधमिति कौटिल्यः।**

**(२) गाणनिक्यान्याषाढीमागच्छेयुः। आगतानां समुद्रपुस्तभाण्डनीवीकानामेकत्रासम्भाषावरोधं कारयेत्। आयव्ययनीवीनामग्राणि श्रुत्वा**

---

कारण वह धनोत्पादन में हानिकर सिद्ध होता है। १. अज्ञान २. आलस्य ३. प्रमाद ४. काम ५. क्रोध ६. दर्प ७. लोभ, ये धनोत्पादन में विघ्न डालने वाले दोष हैं। अधिक परिश्रम से कतराने के कारण आलस्य के द्वारा, गाना-बजाना तथा स्त्रियों में आसक्त रहने के कारण प्रमाद के द्वारा, निन्दा, अधर्म तथा अनर्थ के कारण भय द्वारा, किसी कार्यार्थी पर अनुग्रह करने के कारण काम द्वारा, किसी क्रूरता के कारण क्रोध द्वारा, विद्या, धन एवं राजप्रिय होने के कारण दर्प द्वारा, और नाप-तौल तर्कना तथा हिसाब में गड़बड़ कर देने के कारण लोभ के द्वारा, कर्मचारी लोग आमदनी में बाधा डाल देते हैं।

( १ ) आचार्य मनु के अनुयायी विद्वानों का कहना है कि 'जो कर्मचारी ऊपर निर्दिष्ट दोषों के वशीभूत होकर जितना अपराध करे उसको उसी क्रम से दण्ड दिया जाना चाहिये' अर्थात् यदि वह अज्ञान के कारण अपराध करता है तो उसे उतना ही दण्ड दिया जाना चाहिए जितने का कि उसने नुकसान किया है, यदि वह आलस्य के कारण नुकसान करता है तो दुगुना, प्रमाद के कारण नुकसान करता है तो तिगुना दण्ड दिया जाना चाहिए। आचार्य पराशर के मतानुयायियों का कहना है कि 'अपराध करनेवाले प्रत्येक व्यक्ति को अठगुना दण्ड देना चाहिये, क्योंकि सभी अपराध एक समान हैं।' आचार्य बृहस्पति के अनुयायी विद्वानों का मत है कि 'सभी अपराधियों को दसगुना दण्ड दिया जाना चाहिए।' शुक्राचार्य के अनुयायी कहते हैं कि 'सबको बीसगुना दण्ड मिलना चाहिए।' किन्तु आचार्य कौटिल्य का कहना है कि जो जितना अपराध करे तदनुसार ही उसे दण्ड दिया जाना चाहिए।'

( २ ) सभी कार्यालयों के अध्यक्ष ( विभिन्न जिलों के एकाउण्टेण्टस ) आषाढ़ के महीने में वर्ष की समाप्ति पर प्रधान कार्यालय में आकर हिसाब का मिलान करें। उन आये हुए लोगों को तब तक एक-दूसरे से बातचीत न करने दी जाय तथा मिलने न दिया जाय, जब तक कि उनके पास राजकीय मोहर लगे रजिस्टर तथा व्यय से बचा हुआ धन मौजूद हैं। सर्व प्रथम आय-व्यय को सुनकर उसके पास जो बचत

**नीमीमवहारयेत् । यच्चाग्रादायस्यान्तरवर्णे नीव्या वर्धेत, व्ययस्य वा यत् परिहापयेत्, तदष्टगुणमध्यक्षं दापयेत् । विपर्यये तमेव प्रति स्यात् ।**

**(१) यथाकालमनागतानामपुस्तनीवीकानां वा देयदशबन्धो दण्डः । कार्मिके चोपस्थिते कारणिकस्याप्रतिबध्नतः पूर्वः साहसदण्डः । विपर्यये कार्मिकस्य द्विगुणः ।**

**(२) प्रचारसमं महामात्राः समग्राः श्रावयेयुरविषममात्राः । पृथग्भूतो मिथ्यावादी चैषामुत्तमदण्डं दद्यात् ।**

**(३) अकृताहोरूपहरं मासमाकाङ्क्षेत । मासादूर्ध्वं मासद्विशतोत्तरं दण्डं दद्यात् । अल्पशेषनीविकं पञ्चरात्रमाकाङ्क्षेत ततः परम् ।**

---

शेष हो उसे ले लिया जाय । अध्यक्ष की बताई हुई आय-राशि से यदि रजिस्टर का हिसाब अधिक निकले और उसी प्रकार बताए हुए व्यय की अपेक्षा रजिस्टर में उससे कम निकले तो अध्यक्ष पर, उसके द्वारा बताई गई कम-अधिक रकम का आठगुना जुर्माना किया जाय । यदि आमदनी से अधिक अथवा व्यय से कम रकम रजिस्टर में चढ़ी हो तो ऐसी दशा में अध्यक्ष को दण्ड न दिया जाय, वरन् आय-व्यय की जो कमी-बेसी हुई है वह उसी को दे दी जाय ।

( १ ) जो अध्यक्ष निश्चित समय में अपने रजिस्टर तथा शेष धन आदि को लेकर प्रधान कार्यालय में उपस्थित नहीं होता उसके हिसाब में जितना बाकी निकले उसका दसगुना जुर्माना उस पर किया जाना चाहिए । यदि प्रधान अध्यक्ष ( एकाउंट्स सुपरिन्टेन्डेंट ) निर्धारित समय पर क्षेत्रीय कार्यालयों में पहुँच जाय और वहाँ के विभागीय अध्यक्ष कार्यालय का हिसाब-किताब दिखाने में असमर्थ हों तो उन्हें प्रथम साहस-दण्ड दिया जाना चाहिये । इसके विपरीत यदि प्रधान अध्यक्ष निर्धारित समय पर न पहुँच पावे तो उसे दुगुना प्रथम साहस-दण्ड देना चाहिये ।

( २ ) राजा के महामात्र आदि प्रधान कर्मचारी आय-व्यय तथा नीवीसम्बन्धी सारी राजकीय व्यवस्थाएँ प्रजाजनों को समझायें-बुझायें । यदि उनमें से कोई झूठा प्रचार करे तो उसे उत्तम साहस-दण्ड दिया जाना चाहिये ।

( ३ ) द्रव्य की वसूली करनेवाला राजकर्मचारी यदि निर्धारित समय पर द्रव्य-वसूली न कर सके तो उसे एक मास का और समय दिया जाय । यदि फिर भी वह द्रव्य संग्रह करके राजकोष में न पहुँचा सके तो उस पर प्रति मास के हिसाब से दो-सौ रुपया जुर्माना कर देना चाहिये । जिस अध्यक्ष के पास थोड़ा राजदेय धन बाकी हो, निर्धारित समय से केवल पाँच दिन तक उसकी प्रतीक्षा की जाय । तदनन्तर उसे भी दंडनीय समझा जाय ।

**(१) कोशपूर्वमहोरूपहरं धर्मव्यवहारचरित्रसंस्थानसङ्कलननिर्वर्तनानुमानचारप्रयोगैरवेक्षेत ।**

**(२) दिवसपञ्चरात्रपक्षमासचातुर्मास्यसंवत्सरैश्च प्रतिसमानयेत् । व्युष्टदेशकालमुखोत्पत्त्यनुवृत्तिप्रमाणदायकदापकनिबन्धकप्रतिग्राहकैश्चायं समानयेत् । व्युष्टदेशकालमुखलाभकारणदेययोगपरिमाणाज्ञापकोद्धारकनिधातृकप्रतिग्राहकैश्च व्ययं समानयेत् । व्युष्टदेशकालमुखानुवर्तनरूपलक्षणपरिमाणनिक्षेपभाजनगोपायकैश्च नीवीं समानयेत् ।**

**(३) राजार्थे कारणिकस्याप्रतिबध्नतः प्रतिषेधयतो वाज्ञां निबन्धादायव्ययमन्यथा वापि कल्पयतः पूर्वः साहसदण्डः ।**

---

( १ ) कोषधन और कोषरजिस्टर लानेवाले अध्यक्ष की परीक्षा पहिले धर्म के द्वारा ली जाय, अर्थात् उसे देखा जाय कि वह धर्मात्मा है या दम्भी, फिर उसके व्यवहार को देखा जाय, तदनन्तर उसके आचार-विचार, उसकी पूर्वस्थिति, उसके कार्य एवं हिसाब-किताब, और अन्त में उसके कार्यों का पारस्परिक मिलान करके उसकी परीक्षा ली जाय, गुप्तचरों द्वारा भी उसके भेद जाने जाँय ।

( २ ) अध्यक्ष को चाहिये कि वह प्रतिदिन, प्रति पाँच दिन, प्रतिपक्ष, प्रतिमास, प्रति चार मास और प्रतिवर्ष के क्रम से राजकीय आय-व्यय एवं नीवी का लेखा-जोखा साफ-सुथरे ढंग में रखे । अर्थात् वर्षारंभ से, पहिले एक दिन का हिसाब, फिर एक साथ पाँच दिन का हिसाब, फिर एक साथ पन्द्रह दिन का हिसाब, फिर एक साथ एक मास का हिसाब, और अन्त में एक साथ पूरे एक वर्ष का हिसाब करके रखे । आय का लेखा निर्दोष और साफ रहे, एदतर्थ रजिस्टर में राजवर्ष ( मास, पक्ष, दिन ), देश, काल, मुख ( आयमुख, आयशरीर ), उत्पत्ति ( आयवृद्धि ), अनुवृत्ति ( स्थानान्तर ) प्रमाण, कर देनेवाले का नाम, दिलानेवाले अधिकारी का नाम, लेखक का नाम और लेनेवाले का नाम, इस प्रकार के स्तंभ ( खाने ) बने होने चाहिए । व्यय का लेखा तैयार करने के लिए रजिस्टर में इस प्रकार के खाने होने चाहिए : व्युष्ट, देश, काल, मुख, लाभ ( पक्ष, मास, वर्ष के क्रम से ) व्यय का कारण, देय वस्तु का नाम, मिलावटी द्रव्य में अच्छाई-बुराई का उल्लेख, तौल, किसकी आज्ञा से व्यय किया गया, किसको दिया गया, भाण्डागारिक और लेनेवाले का पूरा विवरण । इसी प्रकार नीवी ( शेष धन ) का लेखा ; व्युष्ट, देश, काल, मुख, द्रव्य का स्वरूप, द्रव्य की विशेषता, तौल, जिस पात्र में द्रव्य रखा जाय और द्रव्य का संरक्षक, आदि विवरणों के आधार पर तैयार करना चाहिए ।

( ३ ) यदि कारणिक ( क्लर्क ) अर्थलाभ को रजिस्टर में दर्ज नहीं करता है, राजकीय आज्ञा का उल्लंघन करना है, अथवा आय-व्यय के संबंध में विपरीत कल्पनाएँ भी करता है तो उसको प्रथम साहस दण्ड दिया जाना चाहिए ।

(१) क्रमावहीनमुत्क्रममविज्ञातं पुनरुक्तं वा वस्तुकमवलिखतो द्वादशपणो दण्डः ।

(२) नीवीमवलिखतो द्विगुणः, भक्षयतोऽष्टगुणः, नाशयतः पञ्चबन्धः प्रतिदानं च । मिथ्यावादे स्तेयदण्डः । पश्चात् प्रतिज्ञाते द्विगुणः प्रस्मृतोत्पन्ने च ।

(३) अपराधं सहेतात्पं तुष्येदल्पेऽपि चोदये ।
महोपकारं चाध्यक्षं प्रग्रहेणाभिपूजयेत् ।।

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीयेऽधिकरणे अक्षपटले गाणनिक्याधिकारः सप्तमोऽध्यायः, आदितः सप्तविंशः ।।

—: ० :—

---

( १ ) क्रम के विरुद्ध, उलट-पलट कर विपरीत लिख देना, किसी वस्तु को बिना समझे-बूझे ही लिख देना और एक वस्तु को दुबारा चढ़ा देना, ऐसी गड़बड़ी करनेवाले कर्मचारी को बारह पण का दण्ड दिया जाय ।

( २ ) यदि नीवी ( बचत धन ) के सम्बन्ध में लेखक की ऐसी गड़बड़ी पायी जाय तो चौबीस पण दण्ड, उसका गबन करे तो छियानबे पण दण्ड और उसका अपव्यय करे तो साठ पड़ दण्ड दिया जाना चाहिए । झूठ बोलनेवाले को चोर जितना दण्ड देना चाहिये । हिसाब-किताब के सम्बन्ध में पीछे से किसी बात को स्वीकार करने पर चोरी से दुगुना दण्ड और पूछे जाने पर किसी बात का उत्तर न देकर बाद में उसका उसका उत्तर देने पर भी यही दंड देना चाहिए ।

( ३ ) राजा को चाहिए कि वह अपने अध्यक्ष के थोड़े अपराध को क्षमा कर दे और यदि वह पूर्वापेक्षया आमदनी में थोड़ी भी वृद्धि कर लेता है तो उसके प्रति प्रसन्नता एवं सन्तोष प्रकट करे । महान् उपकार करनेवाले अध्यक्ष का कृतज्ञ होकर राजा को सदैव उसका सम्मान करना चाहिए ।

अध्यक्षप्रचार नामक द्वितीय अधिकरण में अक्षपटल में गाणनिक्याधिकार नामक सातवाँ अध्याय समाप्त ।

—: ० :—

प्रकरण २४ | अध्याय ८

# समुदयस्य युक्तापहृतस्य प्रत्यानयनम्

(१) कोषपूर्वाः सर्वारम्भाः । तस्मात् पूर्वं कोषमवेक्षेत ।

(२) प्रचारसमृद्धिश्चरित्रानुग्रहश्चोरग्रहो युक्तप्रतिषेधः सस्यसम्पत् पण्यबाहुल्यमुपसर्गप्रमोक्षः परिहारक्षयो हिरण्योपायनमिति कोषवृद्धिः ।

(३) प्रतिबन्धः प्रयोगो व्यवहारोऽवस्तारः परिहापणमुपभोगः परिवर्तनमपहारश्चेति कोषक्षयः ।

(४) सिद्धीनामसाधनमनवतारणमप्रवेशनं वा प्रतिबन्धः । तत्र दशबन्धो दण्डः ।

(५) कोषद्रव्याणां वृद्धिप्रयोगः प्रयोगः ।

## अध्यक्षों द्वारा गबन किये गये धन की पुनः प्राप्ति

( १ ) सारे कार्य कोष पर निर्भर हैं । इसलिए राजा को चाहिए कि सबसे पहिले कोष पर ध्यान दे ।

( २ ) राष्ट्र की सम्पत्ति को बढ़ाना, राष्ट्र के चरित्र पर ध्यान रखना, चोरों पर निगरानी रखना, राजकीय अधिकारियों को रिश्वत लेने से रोकना, सभी प्रकार के अन्नोत्पादन को प्रोत्साहित करना, जल-स्थल में उत्पन्न होनेवाली प्रत्येक व्यापार-योग्य वस्तुओं को बढ़ाना, अग्नि आदि के भय से राज्य की रक्षा करना, ठीक समय पर यथोचित कर वसूल करना और हिरण्य आदि की भेंट लेना, ये सब कोषवृद्धि के उपाय हैं ।

( ३ ) कोषक्षय के आठ कारण है : १. प्रतिबन्ध, २. प्रयोग, ३. व्यवहार, ४. अवस्तार, ५. परिहायण, ६. उपभोग, ७. परिवर्तन और ८. अपहार ।

( ४ ) राजकर को वसूल करना, वसूल करके उसे अपने अधिकार में न रखना, और अधिकार में करके भी उसे खजाने में जमा न करना, यह तीन प्रकार का **प्रतिबंध** है । जो अध्यक्ष इन माध्यमों से कोष का क्षय करे, उस पर क्षत राशि से दशगुना जुरमाना करना चाहिए ।

( ५ ) कोषधन का स्वयं ही लेन-देन करके वृद्धि का यत्न करना **प्रयोग** कहलाता है । ऐसे अधिकारी पर दुगुना जुरमाना करना चाहिए ।

**(१) पण्यव्यवहारो व्यवहारः। तत्र फलद्विगुणो दण्डः।**

**(२) सिद्धं कालमप्राप्तं करोत्यप्राप्तं प्राप्तं वेत्यवस्तारः। तत्र पञ्च-बन्धो दण्डः।**

**(३) क्लृप्तमायं परिहापयति व्ययं वा विवर्धयतीति परिहापणम्। तत्र हीनचतुर्गुणो दण्डः।**

**(४) स्वयमन्यैर्वा राजद्रव्याणामुपभोजनमुपभोगः। तत्र रत्नोपभोगे घातः, सारोपभोगे मध्यमः साहसदण्डः, फल्गुकुप्योपभोगे तच्च तावच्च दण्डः।**

**(५) राजद्रव्याणामन्यद्रव्येणादानं परिवर्तनं, तद् उपभोगेन व्याख्यातम्।**

**(६) सिद्धमायं न प्रवेशयति निबद्धं व्ययं न प्रयच्छति, प्राप्तां नीवीं विप्रतिजानीत इत्यपहारः। तत्र द्वादशगुणो दण्डः।**

---

( १ ) कोष के द्रव्य से स्वयं ही व्यापार करना **व्यवहार** कहलाता है। ऐसा करने पर भी दुगुना दण्ड देना चाहिए।

( २ ) राजकर वसूल करनेवाला अधिकारी, नियत समय से कर-वसूली न करके रिश्वत लेने की इच्छा से, मियाद बीत जाने का भय देकर प्रजा को तंग करके जो धन एकत्र करता है उसे **अवस्तार** कहते हैं। ऐसा करने पर उसे नुकसान की राशि से पाँचगुना दण्ड देना चाहिए।

( ३ ) जो अध्यक्ष अपने कुप्रबंध के कारण कर की आय को कम कर देता और व्यय की राशि को बढ़ा देता है, उस क्षय को **परिहापण** कहते हैं। ऐसा करने पर अध्यक्ष को क्षय से चौगुना दण्ड दिया जाय।

( ४ ) राजकोष के द्रव्य को स्वयं भोग करना तथा दूसरों को भोग कराना '**उपभोग**' क्षय है। इसके अपराध में अध्यक्ष को, यदि वह रत्नों का उपभोग करता है तो प्राणदण्ड, सारद्रव्यों का उपभोग करता है तो मध्यम साहस दण्ड, और फल्गु एवं कुप्य आदि पदार्थों का उपभोग करता है तो, उससे द्रव्य वापिस लेकर उसकी लागत का दण्ड दिया जाना चाहिए।

( ५ ) राजकोष के द्रव्यों को दूसरे द्रव्यों से बदल लेना **परिवर्तन** कहलाता है। इस कार्य को करने वाले अध्यक्ष के लिए भी उपभोग-क्षय के समान ही दण्ड दिया जाय।

( ६ ) प्राप्त आय को रजिस्टर में न चढ़ाना, नियमित व्यय को रजिस्टर में चढ़ाकर भी खर्च न करना और प्राप्त नीवी के सम्बन्ध में मुकर जाना, यह तीन

**(१) तेषां हरणोपायाश्चत्वारिंशत्—पूर्वं सिद्धं पश्चादवतारितम्, पश्चात् सिद्धं पूर्वमवतारितम्, साध्यं न सिद्धम्, असाध्यं सिद्धम्, सिद्धमसिद्धं कृतम्, असिद्धं सिद्धं कृतम्, अल्पसिद्धं बहुकृतम्, बहुसिद्धमल्पं कृतम्, अन्यत् सिद्धमन्यत् कृतम्, अन्यतः सिद्धमन्यतः कृतम्, देयं न दत्तम्, अदेयं दत्तम्, काले न दत्तम्, अकाले दत्तम्, अल्पं दत्तं बहु कृतम्, बहु दत्तमल्पं कृतम्, अन्यद् दत्तमन्यत् कृतम्, अन्यतो दत्तमन्यतः कृतम्, प्रविष्टमप्रविष्टं कृतम्, अप्रविष्टं प्रविष्टं कृतम्, कुप्यमदत्तमूल्यं प्रविष्टम्, दत्तमूल्यं न प्रविष्टम्, संक्षेपो विक्षेपः कृतः, विक्षेपः संक्षेपो वा, महार्घमल्पार्घेण परिवर्तितम्, अल्पार्घं महार्घेण वा, समारोपितोऽर्घः, प्रत्यवरोपितो वा,**

---

प्रकार का अपहार है। अपहार के द्वारा कोषक्षय करनेवाले अध्यक्ष को हानि से बारहगुना दण्डित करना चाहिये।

( १ ) अध्यक्ष, चालीस प्रकार के उपायों से राजद्रव्य का अपहरण कर सकते हैं। पहिली फसल में प्राप्त हुए द्रव्य को दूसरी फसल आने पर रजिस्टर में चढ़ाना, दूसरी सफल की आमदनी का कुछ हिस्सा पहिली फसल के रजिस्टर में चढ़ा देना, राजकर को रिश्वत लेकर छोड़ देना, राजकर से मुक्त देवालय, ब्राह्मण आदि से कर वसूल करना, कर देने पर भी उसको रजिस्टर में न चढ़ाना, कर न देने पर भी उसको रजिस्टर में भर देना, कम प्राप्त हुए धन को रिश्वत लेकर पूरा दर्ज कर देना पूरे प्राप्त हुए धन को अधूरा कह कर लिख देना, जो द्रव्य प्राप्त हुआ है, उसकी जगह दूसरा ही द्रव्य भर देना, एक पुरुष से प्राप्त हुए धन को रिश्वत लेकर, दूसरे के नाम दर्ज कर देना, देने योग्य वस्तु को न देना, जो वस्तु देने योग्य नहीं है, उसको दे देना, समय पर किसी वस्तु को न देना, रिश्वत लेकर असमय में ही उस वस्तु को दे देना, थोड़ा देकर भी बहुत लिख देना, बहुत देकर भी थोड़ा लिख देना, अभीष्ट वस्तु की जगह दूसरी ही वस्तु दे देना, जिस व्यक्ति को देने के लिए कहा गया है, उसके बदले में किसी दूसरे को ही दे देना, राजधन को वसूल करके उसे खजाने में जमा न करना, राजकर को वसूल न करके, रिश्वत लेकर, उसे जमा-रजिस्टर में चढ़ा देना, राजाज्ञा से वस्त्रादि क्रय करके तत्काल ही उनका मूल्य चुकता न करके एकांत में कुछ कम रकम देना, अधिक मूल्य में क्रीत वस्तुओं की रकम कम करके रजिस्टर में लिखना, सामूहिक करवसूली को अलग-अलग व्यक्ति से लेना, अलग-अलग व्यक्ति से लिये जानेवाले कर को सामूहिक रूप में वसूल करना, वहुमूल्य वस्तु को अल्पमूल्य की वस्तु से बदल देना, अल्पमूल्य की वस्तु को बहुमूल्य वस्तु से बदलना, रिश्वत लेकर बाजार में वस्तुओं की कीमत बढ़ा देना, वस्तुओं का भाव घटा देना, दो दिन का वेतन दिया हो तो चार दिन बढ़ाकर लिख देना, चार दिन का

**रात्रयः समारोपिताः, प्रत्यवरोपिता वा, संवत्सरो मासविषमः कृतः, मासो दिवसविषमो वा, समागमविषमः, मुखविषमः, धार्मिकविषमः, निर्वर्तनविषमः, पिण्डविषमः, वर्णविषमः, अर्घविषमः, मानविषमः, मापनविषमः, भाजनविषम इति हरणोपायाः।**

**(१) तत्रोपयुक्तनिधायकनिबन्धकप्रतिग्राहकदायकदापकमन्त्रिवैयावृत्यकरानेकैकशोऽनुयुञ्जीत। मिथ्यावादे चैषां युक्तसमो दण्डः।**

**(२) प्रचारे चावघोषयेत्—अमुना प्रकृतेनोपहताः प्रज्ञापयन्त्विति। प्रज्ञापयतो यथोपघातं दापयेत्। अनेकेषु चाभियोगेष्वपव्ययमानः सकृदेव परोक्तः सर्वं भजेत। वैषम्ये सर्वत्रानुयोगं दद्यात्। महत्यर्थापहारे चाल्पेनापि सिद्धः सर्वं भजेत।**

---

वेतन दिया हो तो दो दिन घटाकर लिख देना, मलमासरहित संवत्सर को मलिमास युक्त बता देना, महीने के दिन घटा-बढ़ाकर लिख देना, नौकरों की संख्या बढ़ाकर लिख देना, एक जरिये से हुई आमदनी को दूसरे जरिये से दर्ज कर देना, ब्राह्मणादि को स्वीकृत धन में से कुछ स्वयं ले लेना, कुटिल उपाय से अतिरिक्त धन वसूल करना, सामूहिक वसूली में से न्यूनाधिक्य रूप में धन लेना, वर्णविषमता दिखाकर धन का अपहरण कर लेना, जहाँ मूल्य निर्धारित न हों, वहाँ दाम बढ़ाकर लाभ उठाना, तोल में कमी-वेशी करके उपार्जन करना, नाप में विषमता पैदा करके धन कमाना, और घृत से भरे हुए सौ बड़े घड़ों की जगह सौ छोटे घड़े दे देना, राजकीय धन को अपहरण करने के ये चालीस तरीके हैं।

( १ ) यदि किसी अध्यक्ष के सम्बन्ध में राजा को यह सन्देह हो जाय कि उसने अनुचित उपायों से राजकीय धन का अपहरण किया है तो राजा को चाहिये कि उस विभाग के प्रधान निरीक्षक, कोषाध्यक्ष, लेखक ( क्लर्क ), कर लेनेवाले और कर दिलानेवाले सलाहकारों को अलग-अलग बुलाकर यह पूछे कि उनके अध्यक्ष ने गबन किया है या नहीं। यदि उनमें से कोई झूठ बोले तो उसे गबन करनेवाले अपराधी के समान ही दण्ड दिया जाय।

( २ ) अपने सारे राज्य में राजा यह घोषणा करा दे कि अपराधी अध्यक्ष ने जिस जिसका गबन किया है, उसकी सूचना राजदरबार को भेज दी जाय। इस प्रकार सूचना मिलने पर राजा, प्रजा की उस हानि को पूरा करे। यदि अध्यक्ष के विरुद्ध एक साथ ही अनेक शिकायतें हों और उनमें से वह किसी को भी स्वीकार न करे तो उसका एक भी अपराध साबित हो जाने पर, सभी शिकायतों का अभियोग उस पर लगाया जाय। यदि अभियुक्त कुछ अपराधों को स्वीकार करता है और कुछ से मुकर जाता है, तो उससे पूरे सबूत माँगे जाँय। गबन किये गये बहुत से धन के

**(१) कृतप्रतिघातावस्थः सूचको निष्पन्नार्थः षष्ठमंशं लभेत, द्वादशमंशं भृतकः। प्रभूताभियोगादल्पनिष्पत्तौ निष्पन्नस्यांशं लभेत। अनिष्पन्ने शारीरं हैरण्यं वा दण्डं लभेत, न चानुग्राह्यः।**

**(२) निष्पत्तौ निक्षिपेद्वादमात्मानं वापवाहयेत्।**
**अभियुक्तोपजापात्तु सूचको वधमाप्नुयात्॥**

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीयेऽधिकरणे समुदयस्य युक्तापहृतस्य प्रत्यानयनमष्टमोऽध्यायः, आदितः अष्टाविंशः॥

—: ० :—

---

सम्बन्ध में पूरे सबूत नहीं मिलते, कुछ ही धन के सम्बन्ध में सबूत मिल पाते हों, तो उस पर पूरे गबन का अभियोग लगाना चाहिए।

(१) यदि कोई निष्पक्ष, राजहितेच्छु व्यक्ति किसी अध्यक्ष के गबन की सूचना देता है, तो अपराध सिद्ध हो जाने पर, उस अपहृत धन का छठा भाग सूचना देनेवाले को दिया जाना चाहिये। यदि सूचना देनेवाला व्यक्ति राजकर्मचारी हो तो उसे बारहवाँ भाग दिया जाना चाहिये। यदि अभियोग बहुत से धन का सिद्ध हो चुका है, किन्तु मिला कुछ ही धन है तो सूचना देनेवाले व्यक्ति को उस प्राप्त धन में से ही हिस्सा देना चाहिये। यदि अपराध सिद्ध न हो सके तो सूचना देनेवाले व्यक्ति को उचित शारीरिक या आर्थिक दण्ड दिया जाना चाहिये। किसी भी अपराधी को क्षमा न किया जाय।

(२) अभियोग साबित हो जाने पर सूचना देनेवाला व्यक्ति अदालत से अपने को वरी करा सकता है, किन्तु रिश्वत लेकर यदि वह अपराधी के पक्ष में हो जाता है, और सच्चा बयान नहीं देता है तो उसे प्राणदण्ड दिया जाना चाहिये।

अध्यक्षप्रचार नामक द्वितीय अधिकरण में अपहृतप्रत्यायन नामक
आठवाँ अध्याय समाप्त।

—: ० :—

प्रकरण २५

अध्याय ९

# उपयुक्तपरीक्षा

(१) अमात्यसम्पदोपेताः सर्वाध्यक्षाः शक्तितः कर्मसु नियोज्याः। कर्मसु चैषां नित्यं परीक्षां कारयेत्, चित्तानित्यत्वान्मनुष्याणाम्। अश्वसधर्माणो हि मनुष्या नियुक्ताः कर्मसु विकुर्वते।

(२) तस्मात् कर्तारं कारणं देशं कालं कार्यं प्रक्षेपमुदयं चैषु विद्यात्। ते यथासन्देशमसंहता अविगृहीताः कर्माणि कुर्युः। संहता भक्षयेयुः। विगृहीता विनाशयेयुः। न चानिवेद्य भर्तुः किञ्चिदारम्भं कुर्युरन्यत्रापत्प्रतीकारेभ्यः। प्रमादस्थानेषु चैषामत्ययं स्थापयेद् दिवसवेतनव्ययद्विगुणम्।

## राजकीय उच्चाधिकारियों के चाल-चलन की परीक्षा

( १ ) राजकीय उच्चपदस्थ कर्मचारियों को अमात्य के गुणों से युक्त होना चाहिए, योग्यता एवं कार्यक्षमता के आधार पर ही उन्हें भिन्न-भिन्न पदों पर नियुक्त किया जाना चाहिए। उपयुक्त पदों पर नियुक्त किए जाने के अनन्तर समय-समय पर राजा उनके चाल-चलन की निगरानी कराता रहे, क्योंकि मनुष्यों की चित्त-वृत्तियाँ सदा एक जैसी नहीं रहती हैं। देखा यह जाता है कि कभी-कभी मनुष्य भी घोड़ों की आदत जैसा आचरण करने लगते हैं। अर्थात् घोड़ा जैसे अपने स्थान पर बँधा हुआ शान्त दिखाई देता है, किन्तु रथ आदि में जोड़ते ही वह बिगड़ पड़ता है, वैसे ही स्वभाव से शांत दिखाई देने वाला मनुष्य भी कार्य पर नियुक्त हो जाने के बाद उद्दण्ड हो जाता है।

( २ ) इसलिए राजा को चाहिए कि अध्यक्षों के सम्बन्ध में वह कारण ( अधीनस्थ कर्मचारी ), देश, काल, कार्य, वेतन और लाभ, इन बातों की जानकारी रखे। उच्चपदस्थ कर्मचारियों को भी चाहिए कि वे राजा के आदेशानुसार एक-दूसरे से द्वेष न करते हुए जुदा-जुदा रह कर ही अपने कार्यों में तत्पर रहें। यदि वे आपस में मिल जायेंगे तो राजधन का अपहरण करेंगे और परस्पर द्वेष करेंगे तो राजकार्यों को नष्ट कर देंगे। कर्मचारियों को चाहिए कि राजा की आज्ञा प्राप्त किए बिना वे किसी भी नये कार्य का आरंभ न करें, किन्तु आपत्तियों का प्रतीकार करने के लिए किये जाने योग्य कार्यों को वे राजा की अनुमति प्राप्त किए बिना भी आरंभ कर

**(१) यश्चैषां यथादिष्टमर्थं सविशेषं वा करोति स स्थानमानौ लभेत।**

**(२) अल्पायतिश्चेन्महाव्ययो भक्षयति। विपर्यये यथायतिव्ययश्च न भक्षयति इत्याचार्याः अपसर्पेणैवोपलभ्यते इति कौटिल्यः।**

**(३) यः समुदयं परिहापयति स राजार्थं भक्षयति। स चेदज्ञानादिभिः परिहापयति तदेनं यथागुणं दापयेत्।**

**(४) यः समुदयं द्विगुणमुद्भावयति स जनपदं भक्षयति। स चेद् राजार्थमुपनयत्यल्पापराधं वारयितव्यः। महति यथापराधं दण्डयितव्यः।**

**(५) यः समुदयं व्ययमुपनयति स पुरुषकर्माणि भक्षयति। स कर्म-दिवसद्रव्यमूलपुरुषवेतनापहारेषु यथापराधं दण्डयितव्यः।**

---

सकते हैं। यदि उच्चपदस्थ कर्मचारी अपने कार्यों में प्रमाद करें तो उन पर उनके वेतन का दुगुना दण्ड किया जाय।

( १ ) जो पदाधिकारी आदिष्ट कार्य को पूरा करके, स्वेच्छया किसी दूसरे हित-कर कार्य को भी करता है, उसे तरक्की और सम्मान दिया जाना चाहिए।

( २ ) कुछ पुरातन आचार्यों का कहना है कि 'यदि किसी अध्यक्ष की आमदनी थोड़ी और खर्च अधिक दिखाई दे, तो समझ लेना चाहिए कि वह राज्य के धन का अपहरण करता है। यदि जितनी आमदनी है, उतना ही व्यय दिखाई दे तो समझना चाहिए कि वह न तो राजधन का गबन करता है और न रिश्वत लेता है।' किन्तु आचार्य कौटिल्य का कथन है कि 'धन का अपहरण करनेवाला भी थोड़ा खर्च कर सकता है। अतः गुप्तचरों द्वारा ही इस कार्य का ठीक पता लग सकता है।'

( ३ ) जो अधिकारी नियमित आय में कमी दिखाता है, वह निश्चय ही राज-धन का अपहरण करता है। यदि उसकी अज्ञानता, प्रमाद एवं आलस्य के कारण हुई है तो उसे अपराध के अनुसार दुगुना, तिगुना दण्ड दिया जाना चाहिये।

( ४ ) जो अधिकारी नियमित आय से दुगुनी आय दिखाता है, वह निश्चय ही प्रजा को पीड़ित कर इतना धन वसूल करता है। यदि वह उस दुगुनी आमदनी को रोजकोष के लिए भेज देता है तो उसे इतना ही दण्ड देना चाहिए, जिससे कि आगे ऐसा अनुचित कार्य न कर सके। यदि वह उस अधिक धन को राजकोष के लिए न भेज कर स्वयं ही खा लेता है तो उसे अपराध के अनुसार कठोर दण्ड दिया जाना चाहिए।

( ५ ) जो अधिकारी व्ययनिमित्त निर्धारित राशि को खर्च न करके बचा लेता है वह मजदूरों का पेट काटता है। उस अपराधी अधिकारी को, कार्यहानि के मूल्य का तथा मजदूरी के अपहरण का, यथोचित दण्ड दिया जाना चाहिए।

**(१) तस्मादस्य यो यस्मिन्नधिकरणे शासनस्थः स तस्य कर्मणो याथातथ्यमायव्ययौ च व्याससमासाभ्यामाचक्षीत ।**

**(२) मूलहरतादात्विककदर्यांश्च प्रतिषेधयेत् । यः पितृपैतामहमर्थमन्यायेन भक्षयति स मूलहरः । यो यद्यदुत्पद्यते तत्तद् भक्षयति स तादात्विकः । यो भृत्यात्मपीडाभ्यामुपचिनोत्यर्थं स कदर्यः । सः पक्षवांश्चेदनादेयः । विपर्यये पर्यादातव्यः ।**

**(३) यो महत्यर्थसमुदये स्थितः कदर्यः सन्निधत्ते, अवनिधत्ते, अवस्रावयति वा—सन्निधत्ते स्ववेश्मनि, अवनिधत्ते पौरजानपदेषु अवस्रावयति परविषये—तस्य सत्री मन्त्रिमित्रभृत्यबन्धुपक्षमागतिं गतिं च द्रव्याणामुपलभेत ।**

**(४) यश्चास्य परविषये सञ्चारं कुर्यात्तमनुप्रविश्य मन्त्रं विद्यात् । सुविदिते शत्रुशासनापदेशेनैनं घातयेत् ।**

**(५) तस्मादस्याध्यक्षाः संख्यायकलेखकरूपदर्शकनीवीग्राहकोत्तराध्यक्षसखाः कर्माणि कुर्युः ।**

---

( १ ) इसलिए प्रत्येक राजकीय अधिकारी का कर्तव्य है कि अपने कार्य की यथार्थता और तत्सम्बन्धी आय-व्यय का विवरण वह संक्षेप में तथा विस्तार से राजा के संमुख प्रस्तुत करे ।

( २ ) उसका यह भी कर्तव्य है कि वह मूलहर, तादात्विक तथा कदर्य पुरुषों पर भी अंकुश रखे । अपनी वंशानुगत संपत्ति का उपभोग जो अन्याय से करता है वह मूलहर है । जो पुरुष जितना उत्पन्न करता है उतना ही व्यय भी कर लेता है, वह तादात्विक कहलाता है । जो अपने को और अपने नौकरों को कष्ट देकर धनोपार्जन करता है । वह कदर्य कहा जाता है । यदि निषेध करने पर भी ये मूलहर आदि अपने कार्यों को न छोड़ें तो ( यदि उनके बंधुबांधव न हों ) उनकी संपति को जब्त कर लिया जाय और बंधु-बांधव हों तो उन्हें पदच्युत कर दिया जाय ।

( ३ ) जो कदर्य ( कंजूस ) पदाधिकारी गहरी आमदनी करता है, धन को भूमि में गाड़ता है, उसको किसी के पास छिपाकर रखता है, शत्रुदेश में भेजकर किसी के पास जमा करता है, उस अधिकारी के परमर्शदाता, मित्र, नौकर, बंधु-बांधव और आय-व्यय आदि का पता गुप्तचर प्राप्त करें ।

( ४ ) गुप्तचर को चाहिए कि वह कदर्य अधिकारी के धन की शत्रुदेश में ले जानेवाले पुरुष से मिलकर अथवा उसका सेवक बनकर, उसके रहस्य का पता लगावे । गुप्तचर द्वारा राजा को जब इस भेद की सही जानकारी प्राप्त हो जाये तो वह शत्रु के आदेश का बहाना बनाकर उस कदर्य अधिकारी को मरवा डाले ।

( ५ ) इसलिए प्रत्येक विभाग के सभी अध्यक्षों को चाहिये कि वे संख्यानक

(१) उत्तराध्यक्षा हस्त्यश्वरथारोहाः । तेषामन्तेवासिनः शिल्पशौचयुक्ताः सङ्ख्यायकादीनामपसर्पाः ।

(२) बहुमुख्यमनित्यं चाधिकरणं स्थापयेत् ।

(३) यथा ह्यनास्वादयितुं न शक्यं जिह्वातलस्थं मधु वा विषं वा ।
अर्थस्तथा ह्यर्थचरेण राज्ञः स्वल्पोऽप्यनास्वादयितुं न शक्यः ॥

(४) मत्स्या यथान्तःसलिले चरन्तो ज्ञातुं न शक्याः सलिलं पिबन्तः ।
युक्तास्तथा कार्यविधौ नियुक्ता ज्ञातुं न शक्या धनमाददानाः ॥

(५) अपि शक्या गतिर्ज्ञातुं पततां खे पतत्त्रिणाम् ।
न तु प्रच्छन्नभावानां युक्तानां चरतां गतिः ॥

(६) आस्रावयेच्चोपचितान् विपर्यस्येच्च कर्मसु ।
यथा न भक्षयन्त्यर्थं भक्षितं निर्वमन्ति वा ॥

---

( गणक ), लेखक ( क्लर्क ), रूपदर्शक ( मुद्राओं तथा मणि-मुक्ताओं का पारखी ), नीवीग्राहक ( बचत रकम को सँभालनेवाला ) और उत्तराध्यक्ष (प्रधान अधिकारी), इन सबके सहयोग से ही कार्य करें ।

( १ ) उत्तराध्यक्ष ( प्रधान अधिकारी ) उनको नियुक्त किया जाय, जो हाथी, घोड़े और रथों की सवारी में निपुण हों । उनके अधीनस्थ ऐसे आज्ञाकारी, कुशल, पवित्र एवं सदाचरणशील कार्यकर्ता हों, जो संख्यानक आदि राजकीय कर्मचारियों की प्रवृत्तियों का पता लगाने में गुप्तचरों का कार्य करें ।

( २ ) प्रत्येक विभाग में अनेक उच्च पदाधिकारियों की नियुक्ति की जानी चाहिए, किन्तु उन्हें एक ही विभाग में रहने दिया जाय ।

( ३ ) जैसे जीभ में रखे हुए मधु अथवा विष का स्वाद लिए बिना नहीं रहा जा सकता, उसी प्रकार अर्थाधिकार कार्यों पर नियुक्त पुरुष, अर्थ का थोड़ा भी स्वाद न लें, यह असंभव है ।

( ४ ) जिस प्रकार पानी में रहनेवाली मछलियाँ पानी पीती नहीं दिखाई देती हैं, उसी प्रकार अर्थकार्यों पर नियुक्त कर्मचारी भी धन का अपहरण करते हुए नहीं जाने जा सकते हैं ।

( ५ ) आकाश में उड़नेवाले पक्षियों की गति-विधि का पता लगाया जा सकता है, किन्तु धन का अपहरण करनेवाले कर्मचारियों की गति-विधि से पार पाना कठिन है ।

( ६ ) राजा, जब ऐसे अध्यक्षों का पता लगा ले, तो वह उन धनसंपन्न अधिकारियों की सारी संपत्ति को छीन ले और उन्हें उनके उच्चपदों से गिराकर निम्न

(१) **न भक्षयन्ति ये त्वर्थान् न्यायतो वर्धयन्ति च ।**
**नित्याधिकाराः कार्यास्ते राज्ञः प्रियहिते रताः ॥**

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीयेऽधिकरणे उपयुक्तपरीक्षा नवमोऽध्यायः,
आदितः एकोनत्रिंशः ॥

—: o :—

पदों पर नियुक्त कर दे, जिससे भविष्य में गबन न कर सकें एवं अपने गबन को स्वयं ही उगल दें।

( १ ) जो अध्यक्ष राज्यधन का अपहरण नहीं करते, वरन्, न्यायपरायण होकर राजा की समृद्धि में यत्नशील रहते हैं और प्रिय समझकर राजा का हित करते रहते हैं, ऐसे सच्चरित्र अध्यक्षों को सदा सम्मानपूर्वक उच्चपद पर बनाये रखना चाहिए।

अध्यक्षप्रचार नामक द्वितीय अधिकरण में उपयुक्तपरीक्षा नामक
नौवाँ अध्याय समाप्त ।

—: o :—

# शासनाधिकारः

(१) शासने शासनमित्याचक्षते। शासनप्रधाना हि राजानः, तन्मूलत्वात्। सन्धिविग्रहयोः।

(२) तस्मादमात्यसम्पदोपेतः सर्वसमयविदाशुग्रन्थश्चार्वक्षरो लेखवाचनसमर्थो लेखकः स्यात्। सोऽव्यग्रमना राज्ञः सन्देशं श्रुत्वा निश्चितार्थं लेखं विदध्याद्, देशैश्वर्यवंशनामधेयोपचारमीश्वरस्य, देशनामधेयोपचारमनीश्वरस्य।

(३) जातिं कुलं स्थानवयःश्रुतानि कर्मर्द्धिशीलान्यथ देशकालौ।
यौनानुबन्धं च समीक्ष्य कार्ये लेखं विदध्यात् पुरुषानुरूपम्॥

(४) अर्थक्रमः, सम्बन्धः, परिपूर्णता, माधुर्यमौदार्यं, स्पष्टत्वम्, इति लेखसम्पत्।

## शासनाधिकार

( १ ) राजा की ओर से पत्र आदि पर लिखित आज्ञा या प्रतिज्ञा का नाम 'शासन' है। राजा लोग शासन ( लिखित बात ) पर ही विश्वास करते हैं, मौखिक बात पर नहीं। संधि, विग्रह आदि षाड्गुण्य संबंधी राजकीय कार्य शासनमूलक ( लिखित ) होने पर ही ठीक समझे जाते हैं।

( २ ) इसलिए राजकीय शासन को लिखनेवाले लेखक को अमात्य की योग्यताओं वाला, आचार-विचार का ज्ञाता, शीघ्र ही सुंदर वाक्य-योजना में निपुण, सुलेखक और विभिन्न लिपियों को पढ़ने-लिखने वाला होना चाहिए। वह लेखक प्रकृतिस्थ होकर राजा के संदेश को सुने और पूर्वापर प्रसंगों को दृष्टि में रखकर स्पष्ट अभिप्राय प्रकट करनेवाले लेख को लिखे। लेख यदि किसी राजा से संबद्ध हो तो, उसमें देश, ऐश्वर्य, वंश और नाम का स्पष्ट उल्लेख होना चाहिए। यदि उसका संबंध किसी अमात्य से हो तो उसमें केवल उसके देश और नाम का ही उल्लेख किया जाय।

( ३ ) लेख यदि राजकार्य-संबंधी हो तो उसमें जाति, कुल, स्थान, आयु, योग्यता, कार्य, धन-संपत्ति, सदाचार, देश, काल, वैवाहिक संबंध आदि बातों का भली-भाँति विचार करके, प्राप्तकर्ता पुरुषों की श्रेष्ठता, निकृष्टता आदि का भी अवश्य उल्लेख करे।

( ४ ) उस लेखक में १. अर्थक्रम, २. संबंध, ३. परिपूर्णता, ४. माधुर्य, ५. औदार्य और ६. स्पष्टता आदि छह प्रकार की योग्यताएँ होनी चाहिए।

**(१) तत्र यथावदनुपूर्वक्रिया प्रधानस्यार्थस्य पूर्वमभिनिवेश इत्यर्थस्य क्रमः ।**

**(२) प्रस्तुतस्यार्थस्यानुपरोधादुत्तरस्य विधानमासमाप्तेरिति सम्बन्धः ।**

**(३) अर्थपदाक्षराणामन्यूनातिरिक्तता हेतूदाहरणदृष्टान्तैरर्थोपवर्णना-श्रान्तपदतेति परिपूर्णता ।**

**(४) सुखोपनीतचार्वर्थशब्दाभिधानं माधुर्यम् ।**

**(५) अग्राम्यशब्दाभिधानमौदार्यम् ।**

**(६) प्रतीतशब्दप्रयोगः स्पष्टत्वमिति ।**

**(७) अकारादयो वर्णास्त्रिषष्टिः ।**

**(८) वर्णसङ्घातः पदम् । तच्चतुर्विधं नामाख्यातोपसर्गनिपाताश्चेति । तत्र नाम सत्त्वाभिधायि । अविशिष्टलिङ्गमाख्यातं क्रियावाचि । क्रिया-विशेषकाः प्रादय उपसर्गाः । अव्ययाश्चादयो निपाताः ।**

**(९) पदसमूहो वाक्यमर्थपरिसमाप्तौ । एकपदावरस्त्रिपदपरः परपदा-र्थानुरोधेन वर्गः कार्यः । लेखपरिसंहरणार्थ इतिशब्दो वाचिकमस्येति च ।**

---

( १ ) प्रधान अर्थ और अप्रधान अर्थ पूर्वापर यथानुक्रम में रखना ही **अर्थक्रम** कहलाता है ।

( २ ) लेख की समाप्ति पर्यन्त अगला अर्थ, प्रस्तुत अर्थ का बाधक न होनेपर **अर्थसम्बंध** कहलाता है ।

( ३ ) अर्थपद तथा अक्षरों का न्यूनाधिक्य न होना, हेतु उदाहरण तथा दृष्टान्त सहित अर्थ का निरूपण करना और प्रभावहीन शब्दों का प्रयोग न करना **परिपूर्णता** कहलाता है ।

( ४ ) सरल सुबोध शब्द का प्रयोग करना **माधुर्य** है ।

( ५ ) शिष्ट शब्दों का प्रयोग करना **औदार्य** कहलाता है ।

( ६ ) सुप्रसिद्ध शब्दों का प्रयोग करना ही **स्पष्टता** है ।

( ७ ) अकार आदि त्रेसठ वर्ण होते हैं ।

( ८ ) वर्णों के समूह को पद कहते हैं । पद चार प्रकार का होता है : १. नाम, २. आख्यात, ३. उपसर्ग और ४. निपात । जाति, गुण और द्रव्य को बताने वाला पद **नाम** कहलाता है । स्त्री-पुरुष आदि विशेष लिङ्गों से रहित क्रियावाचक पद को **आख्यात** कहते हैं । क्रियाओं के विशेष अर्थों का द्योतन करने वाले उनके आरंभ में लगे हुए **प्र, परा,** आदि पद **उपसर्ग** कहलाते हैं । **च** आदि अव्ययों को **निपात** कहते हैं ।

( ९ ) सम्पूर्ण अर्थ को कहने वाले पदसमूह का नाम **वाक्य** है । कम-से-कम एक पद पर और अधिक-से-अधिक तीन पद पर मुख्य पद के अनुसार विराम करना चाहिये । लेख की समाप्ति को बताने के लिए अन्त में इति शब्द लिख देना चाहिये,

(१) निन्दा प्रशंसा पृच्छा च तथाख्यानमथार्थना ।
प्रत्याख्यानमुपालम्भः प्रतिषेधोऽथ चोदना ।।
सान्त्वमभ्यवपत्तिश्च भर्त्सनानुनयौ तथा ।
एतेष्वर्थाः प्रवर्तन्ते त्रयोदशसु लेखजाः ।।

(२) तत्राभिजनशरीरकर्मणां दोषवचनं निन्दा । गुणवचनमेतेषामेव प्रशंसा । कथमेतदिति पृच्छा । एवम् इत्याख्यानम् । देहीत्यर्थना । न प्रयच्छामीति प्रत्याख्यानम् । अननुरूपं भवत इत्युपालम्भः । मा कार्षीः इति प्रतिषेधः । इदं क्रियतामिति चोदना । योऽहं स भवान्, मम यद् द्रव्यं तद्भवतः इत्युपग्रहः सान्त्वम् । व्यसनसाहाय्यमभ्यवपत्तिः । सदोषमायतिप्रदर्शनमभिभर्त्सनम् ।

(३) अनुनयस्त्रिविधोऽर्थकृतावतिक्रमे पुरुषादिव्यसने चेति ।

(४) प्रज्ञापनाज्ञापरिदानलेखास्तथा परीहारनिसृष्टिलेखौ ।
प्रावृत्तिकश्च प्रतिलेख एव सर्वत्रगश्चेति हि शासनानि ।।

---

यदि लेख में पूरी बातें न लिखी गई हों तो अन्त में वाचिकमस्य ( शेष अंश पत्रवाहक के मुँह से सुन लीजिए ), इस प्रकार लिख देना चाहिए ।

( १ ) निन्दा, प्रशंसा, पृच्छा, आख्यान, अर्थना, प्रत्याख्यान, उपालम्भ, प्रतिषेध, चोदना, सान्त्वना, अभ्यवपत्ति, भर्त्सना और अनुनय इन्हीं तेरह बातों में से ही किसी बात को प्रकट किया जाता है ।

( २ ) किसी के वंश, शरीर और कार्य में दोषारोपण करना **निन्दा** है । उन्हीं बातों के सम्बन्ध में गुणगान करना **प्रशंसा** है । 'यह कैसा हुआ ?' इस प्रकार पूछना ही **पृच्छा** है । 'इसको इस प्रकार करना चाहिये' ऐसा कहना **आख्यान** है । 'दीजिए' इस प्रकार माँगना **अर्थना** है । 'नहीं देता हूँ' इस प्रकार निषेध करना ही **प्रत्याख्यान** है । 'यह कार्य आपने अपने अनुरूप नहीं किया' इस प्रकार का वचन **उपालम्भ** है । 'ऐसा मत करो' यह **प्रतिषेध** है । 'ऐसा करना चाहिये' इस प्रकार की प्रेरणा **चोदना** है । 'जो मैं हूँ वही आप हैं, जो मेरा धन है वही आपका भी है' इस प्रकार की तसल्ली देना **सान्त्वना** है । आपत्ति के समय सहायता करना **अभ्युपपत्ति** है । दोष देकर धमकी देना **भर्त्सना** है ।

( ३ ) अनुनय तीन प्रकार का होता है : । १. अर्थकरणनिमित्तक, २. अतिक्रम निमित्तक और ३. पुरुषादिव्यसननिमित्तक । किसी आवश्यक कार्य को करने के लिए अनुनय किया जाना ही **अर्थकरणनिमित्तक** है, किसी कुपित पुरुष को शान्त करने के लिए अनुनय करना **अतिक्रमनिमित्तक** है, और किसी आत्मीय की मृत्यु के कारण आई हुई विपत्ति में अनुनय करना **पुरुषाधिव्यसननिमित्तक** है । अनुनय कहते हैं अनुग्रह को ।

( ४ ) १. प्रज्ञापना, २. आज्ञा, ३. परिदान, ४. परीहार, ५. निसृष्टि ६. प्रावृत्तिक ७. प्रतिलेख और ८. सर्वत्रग, लेख के ये आठ भेद और हैं ।

(१) अनेन विज्ञापितमेवमाह तद्दीयतां चेद्यदि तत्त्वमस्ति ।
राज्ञः समीपे वरकारमाह प्रज्ञापनैषा विविधोपदिष्टा ॥
(२) भर्तुराज्ञा भवेद् यत्र निग्रहानुग्रहौ प्रति ।
विशेषेण तु भृत्येषु तदाज्ञालेखलक्षणम् ॥
(३) यथार्हगुणसंयुक्ता पूजा यत्रोपलक्ष्यते ।
अप्याधौ परिदाने वा भवतस्तावुपग्रहौ ॥
(४) जातेर्विशेषेषु पुरेषु चैव ग्रामेषु देशेषु च तेषु तेषु ।
अनुग्रहो यो नृपतेर्निदेशात्तज्ज्ञः परीहार इति व्यवस्येत् ॥
(५) निसृष्टिस्थापना कार्यकरणे वचने तथा ।
एष वाचिकलेखः स्याद्भवेन्नैसृष्टिकोऽपि वा ॥
(६) विविधां दैवसंयुक्तां तत्त्वजां चैव मानुषीम् ।
द्विविधां तां व्यवस्यन्ति प्रवृत्ति शासनं प्रति ॥
(७) दृष्ट्वा लेखं यथातत्त्वं ततः प्रत्यनुभाष्य च ।
प्रतिलेखो भवेत् कार्यो यथा राजवचस्तथा ॥

---

( १ ) यदि कोई महामात्र राजकीय धन का संग्रह करके अपने पास रख लेता है और गुप्तचर से उसकी सूचना पाकर राजा जब उस महामात्र से राजकीय धन को राजकोष में जमा करने की आज्ञा देता है और जब महामात्र धन देना स्वीकार कर लेता है तब जो लिखा-पढी होती है, उस लेख-पत्र का नाम ही **प्रज्ञापना** है।

( २ ) जिस लेख-पत्र में राजा की ओर से निग्रह या अनुग्रह की आज्ञा हो और विशेषरूप से जो नौकरों के सम्बन्ध में लिखा जाय उसे **आज्ञा** कहते हैं।

( ३ ) जिस लेख-पत्र में समुचित गुणों से सत्कार का भाव प्रकट किया जाता है उसे **परिदान** कहते हैं। यह दो प्रकार से लिखा जाता है। १. जब नौकरों का कोई आत्मीय मर जाता है जिसके कारण वे व्यथित हैं; २. जब राजा उनकी रक्षा के लिए दयाभाव प्रकट करता है।

( ४ ) विशेष जातियों नगरों, ग्रामों और देशों पर राजा की आज्ञा के अनुसार जो अनुग्रह किया जाता है, विशेषज्ञ लोग उसी को **परीहार** कहते हैं।

( ५ ) किसी कार्य के करने तथा कहने में किसी आत्मवचन का प्रमाण देना ही **निसृष्टि** है, उसके वाचिक और नैसृष्टिक दो भेद होते हैं।

( ६ ) अनेक प्रकार की दैवी, पारमार्थिक और मानुषी आपत्तियों की सूचना को **प्रावृत्तिक** कहते हैं। वह शुभ और अशुभ दो प्रकार का होता है।

( ७ ) दूसरे के भेजे हुए लेख को भली-भांति देखने और पढ़ने के अनन्तर, फिर राजा के सामने पढ़कर, राजा की आज्ञा के अनुसार उसका जो उत्तर लिखा जाय उसको **प्रतिलेख** कहते हैं।

(१) यथेश्वरांश्चाधिकृतांश्च राजा रक्षोपकारौ पथिकार्थमाह ।
सर्वत्रगो नाम भवेत् स मार्गे देशे च सर्वत्र च वेदितव्यः ॥

(२) उपायाः सामोपप्रदानभेददण्डाः ।

(३) तत्र साम पञ्चविधं—गुणसंकीर्तनं, सम्बन्धापाख्यानं, परस्परोपकारसन्दर्शनं, आमायतिप्रदर्शनं, अमात्मोपनिधानमिति ।

(४) तत्राभिजनशरीरकर्मप्रकृतिश्रुतद्रव्यादीनां गुणागुणग्रहणं प्रशंसा स्तुतिर्गुणसङ्कीर्तनम् ।

(५) ज्ञातियौनमौखस्रौवकुलहृदयमित्रसंकीर्तनं सम्बन्धोपाख्यानम् ।

(६) स्वपक्षपरपक्षयोरन्योन्योपकारसंकीर्तनं परस्परोपकारसन्दर्शनम्।

(७) अस्मिन्नेवं कृत इदमावयोर्भवतीत्याशाजननमायतिप्रदर्शनम् ।

(८) योऽहं स भवान्, यन्मम द्रव्यं तद्भवता स्वकृत्येषु प्रयोज्यताम् इत्यात्मोपनिधानमिति ।

(९) उपप्रदानमर्थोपकारः ।

(१०) शङ्काजननं निर्भर्त्सनं च भेदः ।

---

(१) जिस लेखपत्र में राजा राहगीरों की रक्षा और उनके उपकार के लिए अपने अधिकारियों को आदेश देता है वह **सर्वत्रग** है; क्योंकि वह मार्ग में, देश में तथा राष्ट्र में सब जगहों पर लिखा जाता है ।

(२) उपाय चार है : १. साम, २. दान, ३. दण्ड और ४. भेद ।

(३) उनमें साम पाँच प्रकार का होता है : १. गुणसंकीर्तन, २. सम्बन्धोपाख्यान, ३. परस्परोपकारसंदर्शन, ४. आयतिप्रदर्शन और ५. आत्मोपनिधान ।

(४) वंश, शरीर; कार्य, स्वभाव, विद्वत्ता; हाथी-घोड़े-रथ आदि के गुणों और अवगुणों को जानकर उनकी प्रशंसा करना ही **गुणसंकीर्तन** कहलाता है ।

(५) समानकुल, विवाह, गुरु-शिष्य, पुरोहित-यजमान, वंशपरंपरागत, हार्दिक और मैत्रीभाव आदि सात प्रकार के सम्बन्धों में से किसी एक का कथन करना **सम्बन्धोपाख्यान** है ।

(६) परस्पर एक दूसरे द्वारा किये गये उपकार का कथन करना **परस्परोपकारसंदर्शन** कहलाता है ।

(७) 'इस कार्य के करने में हम दोनों को ऐसा फल प्राप्त होगा, ऐसी आशा करना **आयतिप्रदर्शन** है ।

(८) 'जो मैं हूँ वही आप हैं तथा मेरा धन ही आपका धन है, उसे आप इच्छानुसार अपने कार्य में लगा सकते हैं ।' इस आत्मसमर्पण की भावना को **आत्मोपनिधान** कहते हैं ।

(९) धन आदि के द्वारा उपकार करना **दान** या **उपप्रदान** है ।

(१०) शत्रु के हृदय में शंका पैदा कर देना **भेद** है ।

**(१) वधः परिक्लेशोऽर्थहरणं दण्ड इति ।**
**(२) अकान्तिर्व्याघातः पुनरुक्तमपशब्दः संप्लव इति लेखदोषाः ।**
**(३) तत्र कालपत्रकमचारुविषमविरागाक्षरत्वमकान्तिः ।**
**(४) पूर्वेण पश्चिमस्यानुपपत्तिर्व्याघातः ।**
**(५) उक्तस्याविशेषण द्वितीयमुच्चारणं पुनरुक्तम् ।**
**(६) लिङ्गवचनकालकारकाणामन्यथाप्रयोगोऽपशब्दः ।**
**(७) अवर्गे वर्गकरणं वर्गे चावर्गक्रिया गुणविपर्यासः संप्लव इति ।**
**(८) सर्वशास्त्राण्यनुक्रम्य प्रयोगमुपलभ्य च ।**
**कौटिल्येन नरेन्द्रार्थे शासनस्य विधिः कृतः ॥**

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीयेऽधिकरणे शासनाधिकारं नाम दशमोऽध्यायः,
आदितः त्रिंशः ।

—: ० :—

---

( १ ) उसे मार देना, उसको पीड़ा पहुँचाना या उसके धन का अपहरण करना **दण्ड** कहलाता है ।

( २ ) पत्रलेख के पाँच दोष हैं—१. अकान्ति, २. व्याघात, ३. पुनरुक्त ४. अपशब्द और ५. संप्लव ।

( ३ ) स्याही पड़े कागज पर लिखना, मलिन कागज पर लिखना, भद्दे अक्षर लिखना, छोटे-बड़े अक्षर लिखना और फीकी स्याही से लिखना **अकान्ति** नामक दोष है ।

( ४ ) पहले लेख से पिछले लेख का विरोध हो जाना अथवा पहिले लेख से पिछले लेख की बाधा हो जाना **व्याघात** दोष है ।

( ५ ) जो बात पहिले कही गई है उसे ही दुहरा देना **पुनरुक्त** दोष है ।

( ६ ) लिङ्ग, वचन, काल और कारक का विपरीत प्रयोग करना **अपशब्द** दोष है ।

( ७ ) लेख में विराम आदि चिह्नों की, अर्थक्रम के अनुसार योजना न करना, **संप्लव** दोष है ।

( ८ ) आचार्य कौटिल्य ने सम्पूर्ण शास्त्रों का विधिवत् अध्ययन करके और उनके प्रयोगों को अच्छी तरह परीक्षा करके ही राजा के लिए इस शासनविधि की रचना की है ।

अध्यक्षप्रचार नामक द्वितीय अधिकरण में शासनाधिकार नामक
दसवाँ अध्याय समाप्त ।

—: ० :—

प्रकरण २७

अध्याय ११

# कोषप्रवेश्यरत्नपरीक्षा

**(१) कोषाध्यक्षः कोषप्रवेश्यं रत्नं सारं फल्गु कुप्यं वा तज्जातकरणाधिष्ठितः प्रतिगृह्णीयात् ।**

**(२) ताम्रपर्णिकं, पाण्ड्यकवाटकं, पाशिक्यं, कौलेयं, चौर्णेयं, माहेन्द्रं कार्दमिकं स्रौतसीयं, ह्रादीयं, हैमवतं, च मौक्तिकम् ।**

**(३) शङ्खः शुक्तिः प्रकीर्णकं च योनयः ।**

**(४) मसूरकं त्रिपुटकं कूर्मकमर्धचन्द्रं कञ्चुकितं यमकं कर्तकं खरकं सिक्थकं कामण्डलुकं श्यावं नीलं दुर्विद्धं चाप्रशस्तम् ।**

## कोष में रखने योग्य रत्नों की परीक्षा

(१) कोषाध्यक्ष को चाहिए कि वह विशेषज्ञों की सहमति से ही रत्न, सार, फल्गु और कुप्य आदि मूल्यवान् द्रव्यों को राजकोष के लिए लेना स्वीकार करे ।

(२) मोतियों के दस उत्पत्ति स्थान है : १. ताम्रपर्णिक ( पाण्ड्यदेश की ताम्रपर्णी नदी के संगम पर उत्पन्न ), २. पाण्ड्यकवाटक ( मलयकोटि नामक पर्वत पर उत्पन्न ), ३. पाशिक्य ( पाटलिपुत्र के समीप पाशिका नामक नदी में उत्पन्न ), ४. कौलेय ( सिंहलद्वीप की कुला नामक नदी में उत्पन्न ), ५. चौर्णेय ( केरल की चूर्णी नामक नदी में उत्पन्न ), ६. माहेन्द्र ( महेंद्रगिरि के निकटवर्ती समुद्रतल में उत्पन्न ); ७. कार्दमिक ( फारस की कर्दमा नामक नदी में उत्पन्न ), ८. स्रौतसीय ( बर्बर के समीप स्रौतसी नामक नदी में उत्पन्न ); ९. ह्रादीय ( बर्बर के समीप समुद्रतटवर्ती श्रीघण्ड नामक झील में उत्पन्न ) और १०. हैमवत ( हिमालय पर्वत पर उत्पन्न ) ।

(३) मोतियों की उत्पत्ति के तीन कारण हैं : शुक्ति, शंख और प्रकीर्णक ( गजमुक्ता तथा सर्पमणि ) ।

(४) दूषित मोतियों के तेरह प्रकार होते हैं । १. मसूरक ( मसूर की तरह का ), २. त्रिपुटक ( तीन खूंट वाला ), ३. कूर्मक ( कछुये के समान ), ४. अर्धचन्द्रक ( अर्धचन्द्र की भाँति ), ५. कंचुकित ( मोटे छिलके वाला ), ६. यमक ( जुडा हुआ ), ७. कर्तक ( कटा हुआ ), ८. खरक ( खुरदुरा ), ९. सिक्थक ( दागवाला ), १०. कामण्डलुक ( कमण्डलु के समान ),११. श्याव ( भूरे रङ्ग का), १२. नील ( नीले रङ्ग का ) और १३. दुर्बिद्ध ( अस्थान विंधा मोती ) ।

**(१) स्थूलं वृत्तं निस्तलं भ्राजिष्णु श्वेतं गुरु स्निग्धं देशविद्धं च प्रशस्तम् ।**

**(२) शीर्षकमुपशीर्षकं प्रकाण्डकमवघाटकं तरलप्रतिबन्धं चेति यष्टिप्रभेदाः ।**

**(३) यष्टीनामष्टसहस्रमिन्द्रच्छन्दः । ततोऽर्धं विजयच्छन्दः । शतं देवच्छन्दः । चतुष्षष्टिरर्धहारः । चतुष्पञ्चाशद्रश्मिकलापः । द्वात्रिंशद्-गुच्छः । सप्तविंशतिर्नक्षत्रमाला । चतुर्विंशतिरर्धगुच्छः । विंशतिर्माण-वकः । ततोऽर्धमर्धमाणवकः । एत एव मणिमध्यास्तन्माणवका भवन्ति । एकशीर्षकः शुद्धो हारः । तद्वच्छेषाः । मणिमध्योऽर्धमाणवकस्त्रिफलकः फलकहारः पञ्चफलको वा । सूत्रमेकावली शुद्धा । सैव मणिमध्या यष्टिः ।**

---

( १ ) मोटा, गोल, तलरहित, दीप्तिमान, श्वेत, वजनी, चिकना और स्थान पर विधा मोती उत्तम कोटि का है ।

( २ ) यष्टि अर्थात् मोतियों की माला के कई नाम हैं, शीर्षक ( जिसमें दो छोटे मोतियों के बीच में एक बड़ा मोती पिरोया गया हो ), उपशीर्षक ( जिसमें दो छोटे मोतियों के बाद एक बड़ा मोती हो ), प्रकाण्डक ( जिसमें चार छोटे मोतियों के बाद एक बड़ा मोती हो ), अवघाटक ( जिस माला के बीच में एक बड़ा मोती और उसके दोनों ओर उत्तरोत्तर छोटे-छोटे मोती हों ) और तरलप्रतिबन्ध ( जिसमें सभी मोती एक समान लगे हों ) ।

( ३ ) एक हजार आठ लड़ों की माला को इन्द्रच्छन्द, उससे आधी पाँच सौ चार लड़ों की माला को विजयच्छन्द, सौ लड़ों की माला को देवच्छन्द, चौसठ लड़ों की माला को अर्धहार, चौवन लड़ों की माला को रश्मिकलाप, बत्तीस लड़ों की माला को गुच्छ, सत्ताईस लड़ों की माला को नक्षत्रमाला, चौबीस लड़ों की माला को अर्धगुच्छ, बीस लड़ों की माला को माणवक, और उससे आधा दस लड़ों की माला को अर्धमाणवक कहा जाता है । इन्हीं मालाओं के बीच में यदि मणि पिरो दी जाय तो उनके नाम के आगे माणवक शब्द जुड़ जाता है । यदि इन्द्रच्छन्द आदि मालाओं में सभी मोती शीर्षक के समान पिरोये जाते हैं तो उनका नाम इन्द्रच्छन्दशीर्षक शुद्धहार, विजयच्छन्दशीर्षक शुद्धहार कहा जाता है । इसी प्रकार यदि इन्द्रच्छन्द आदि में सभी मोती उपशीर्षक के समान पिरोये गए हों तो उसे इन्द्रच्छन्दोपशीर्षकशुद्धहार कहा जाता है । यदि इन शुद्धहारों के बीच में मणि पिरो दी जाय तो, बजाय शुद्धहार के वे अर्धमाणवक कहलाते है और तब उनका पूरा नामकरण होता है इन्द्रच्छन्दशीर्षकार्धमाणवक । इसी प्रकार उपशीर्षक आदि के सम्बन्ध में भी समझना चाहिए । दस लड़ियों की माला में यदि सोने के तीन या पाँच दाने पिरो दिए गए हों तो उसे फलकहार कहा जाता है । एक ही लड़ी की मोती की माला का नाम सूत्र है । यदि उसके बीच में मणि पिरो दी जाय तो उसे ही

**हेममणिचित्रा रत्नावली। हेममणिमुक्तान्तरोऽपवर्तकः। सुवर्णसूत्रान्तरं सोपानकम्। मणिमध्यं वा मणिसोपानकम्।**

**(१) तेन शिरोहस्तपादकटीकलापजालकविकल्पा व्याख्याताः।**

**(२) मणिः कौटो मालेयकः पारसमुद्रकश्च।**

**(३) सौगन्धिकः पद्मरागः अनवद्यरागः पारिजातपुष्पकः बालसूर्यकः।**

**(४) वैदूर्यः—उत्पलवर्णः शिरीषपुष्पक उदकवर्णो वंशरागः शुकपत्रवर्णः पुष्यरागो गोमूत्रको गोमेदकः।**

**(५) नीलावलीय इन्द्रनीलः कलायपुष्पको महानीलो जाम्बवाभो जीमूतप्रभो नन्दकः स्रवन्मध्यः।**

---

यष्टि कहा जाता है। सोने के दाने और मणियों से पिरोई गई मोती की माला रत्नावली कहलाती है। यदि किसी माला में सोने के दाने, मणि और मोती क्रमशः पिरो दिये गये हैं तो उस माला को अपवर्तक कहते हैं। यदि अपवर्तक माला में मणि न लगी हो तो उसका नाम सोपानक है। यदि बीच में मणि लगा दी जाय तो उसे मणिसोपानक कहते हैं।

( १ ) इसी प्रकार शिर, हाथ, पैर और कमर की भिन्न-भिन्न मालाओं के सम्बन्ध में भी समझ लेना चाहिए।

( २ ) मणियों के तीन उत्पत्ति-स्थान हैं : १. कौट ( मलयसागर के समीप कोटि नामक स्थान में उत्पन्न ) २. मालेयक ( मलय देश के कर्णीवन नामक पर्वत में उत्पन्न ) और ३. पारसमुद्रक ( समुद्र पार सिंहल आदि स्थानों में उत्पन्न )।

( ३ ) मणियों में पाँच प्रकार के मणिक्य होते हैं : १. सौगन्धिक ( सायंकाल खिलने वाले सौगन्धिक नामक नीलवर्णयुक्त कमल के समान ), २. पद्मराग ( पद्म नामक कमल के समान ), ३. अनवद्यराग ( केशर के समान ); ४. पारिजात पुष्पक ( हरसिंगार पुष्प के समान ) और ५. बालसूर्यक ( उदय होते सूर्य के समान )।

( ४ ) वैदूर्य मणि आठ प्रकार की होती है : १. उत्पलवर्ण ( लाल कमल के समान ) २. शिरीषपुष्पक ( शिरीष पुष्प की भाँति ), ३. उदकवर्ण (जल के समान), ४. वंशराग ( बाँस के पत्ते के समान ), ५. शुकपत्रवर्ण ( तोते के पंख की तरह ), ६. पुष्यराग ( हल्दी के समान ), ७. गोमूत्रक ( गोमूत्र के समान ) और ८. गोमेदक ( गोरोचन के समान )।

( ५ ) इन्द्रनीलमणि भी आठ प्रकार की होती है : १. नीलाबलीय ( नीली धारियों वाली ), २. इन्द्रनील ( मोरपंख के समान ), ३. कलायपुष्पक ( मटर पुष्प के समान ), ४. महानील ( गहरे काले रंग की ), ५. जाम्बवाभ ( जामुन के के समान ), ६. जीमूतप्रभ ( मेघ के समान ), ७. नन्दक ( भीतर से श्वेत तथा बाहर से नीली ) और ८. स्रवन्मध्य ( जलप्रवाह के समान तरलित किरणों वाली)।

**(१) शुद्धस्फटिकः मूलाटवर्णः शीतवृष्टिः सूर्यकान्तश्चेति मणयः।**

**(२) षडश्रश्चतुरश्रो वृत्तो वा, तीव्ररागः संस्थानवानच्छः स्निग्धो गुरुरर्चिष्मानन्तर्गतप्रभः प्रभानुलेपी चेति मणिगुणाः।**

**(३) मन्दरागप्रभः सशर्करः पुष्पच्छिद्रः खण्डो दुर्विद्धो लेखाकीर्ण इति दोषाः।**

**(४) विमलकः सस्यकोऽञ्जनमूलकः पित्तकः सुलभको लोहिताक्षो मृगाश्मको ज्योतीरसको मैलेयक आहिच्छत्रकः कूर्पः प्रतिकूर्पः सुगन्धिकूर्पः क्षीरपकः शुक्तिचूर्णकः शिलाप्रवालकः पुलकः शुक्रपुलक इत्यन्तरजातयः।**

**(५) शेषाः काचमणयः।**

---

( १ ) स्फटिक मणि चार प्रकार की होती है : १. शुद्धस्फटिक (स्वच्छ, श्वेत) २. मूलाटवर्ण ( मक्खन निकाले हुए मट्ठे की भाँति ), ३. शीतवृष्टि ( चन्द्रमा के किरणों से पिघलने वाली ) और ४. सूर्यकान्त ( सूर्य किरणों का स्पर्श पाकर आग उगलने वाली )।

( २ ) मणियों में ग्यारह प्रकार के गुण होते हैं : १. षड्ज ( छह कोनों वाली ) २. चतुरस्र ( चार कोनों वाली ), ३. वृत्त ( गोलाकार ); ४. गहरे रंगवाली चमकदार, ५. आभूषण में लगाने योग्य, ६. निर्मल, ७. चिकनी, ८. भारी, ९. दीप्तियुक्त, १०. चञ्चलकान्तियुक्त और ११. अपनी कांति से पास की वस्तु को प्रकाशित कर देने वाली ( प्रभानुलेपी )।

( ३ ) मणियों में सात प्रकार के दोष पाये जाते हैं : १. हलके रंग वाली, २. हलकी प्रभावाली, ३. खुरदरी, ४. छोटे छिद्र वाली, ५. कटी हुई, ९. उपयुक्त स्थान पर न बेधी हुई और ७. विभिन्न रेखाओं वाली।

( ४ ) मणियों की अठारह प्रकार की उपजातियाँ हैं—१. विमलक ( श्वेत-हरित वर्णों से मिश्रित ), २. सस्यक ( नीली ), ३. अंजनमूलक ( नील-श्याम वर्ण-मिश्रित ), ४. पित्तक ( गाय के पित्त के समान ), ५. सुलभक ( श्वेत ), ६. लोहिताक्ष ( किनारों पर लाल और केन्द्र में श्याम ), ७ मृगाश्मक ( श्वेत-अरुण-मिश्रित ), ८. ज्योतीरसक ( श्वेत-अरुण-मिश्रित ), ९. मैलेयक( शिंगरफ की भाँति) १० आहिच्छत्रक ( फीके रंग वाली ), ११. कूर्प ( खुरदरी ), १२. प्रतिंकूर्प ( दागी ) १३. सुगन्धिकूर्प ( मूंग-वर्णी ), १४. क्षीरपक ( दुग्ध धवल ), १५. शुक्ति चूर्णक ( अनेक रंगों वाली ), १६. शिलाप्रवालक ( मूंगे के समान ), १७. पुलक ( केंद्र में काली ) और १८. शुक्रपुलक ( केन्द्र में श्वेत )।

( ५ ) इनके अतिरिक्त जो मणियाँ हों वे काँच के समान निम्न कोटि की होती है।

**(१) सभाराष्ट्रकं मध्यमराष्ट्रकं कास्तीरराष्ट्रकं श्रीकटनकं मणिमन्तकमिन्द्रवानकं च वज्रम् ।**

**(२) खनिः स्रोतः प्रकीर्णकं च योनयः ।**

**(३) मार्जाराक्षकं च शिरीषपुष्पकं गोमूत्रकं गामेदकं शुद्धस्फटिकं मूलाटीपुष्पकवर्णं मणिवर्णानामन्यतमवर्णमिति वज्रवर्णाः ।**

**(४) स्थूलं स्निग्धं गुरु प्रहारसहं समकोटिकं भाजनलेखि तर्कुभ्रामि भ्राजिष्णु च प्रशस्तम् ।**

**(५) नष्टकोणं निरश्रिपार्श्वापवृत्तं च अप्रशस्तम् ।**

**(६) प्रबालकं आलकन्दकं वैवर्णिकं च रक्तं पद्मरागं च करटगर्भिणिकावर्जमिति ।**

**(७) चन्दनम्—सातनं रक्तं भूमिगन्धि । गोशीर्षकं कालताम्रं मत्स्य-**

---

( १ ) हीरा के छह उत्पत्ति स्थान है : १. सभाराष्ट्रक ( बरार, बम्बई प्रदेश में उत्पन्न ), २. मध्यमराष्ट्रक ( कोशल देश में उत्पन्न ), ३. कास्तीरराष्ट्रक ( कास्तीर देश में उत्पन्न ), ४. श्रीकटनक ( श्रीकटन पर्वत पर उत्पन्न ): ५. मणिमंतक ( उत्तरस्थ मणिमंत पर्वत में उत्पन्न ) और ६. इन्द्रवानक ( कलिंग देश में उत्पन्न ) ।

( २ ) इनके अतिरिक्त खदान, विशेष जलप्रवाह और हाथी दाँत की जड़ आदि भी हीरा के उत्पत्तिस्थान हैं । खान और जलप्रवाह आदि के अन्य स्थानों में उत्पन्न हीरा को **प्रकीर्णक** रहते हैं ।

( ३ ) हीरा के अनेक आकार-प्रकार हैं : बिलाव की आँख के समान, शिरीष पुष्प की आकृति का, गोमूत्र के समान, गोरोचन की भाँति, सर्वथा स्वच्छ, श्वेत, मुलहटी के फूल जैसा, और मणियों की आकृति का ।

( ४ ) मोटा; वजनी, घन की चोट सहने वाला, समकोण पानी से भरे पीतल के बर्तन में उसको हिलाने से लकीरें डाल देने वाला, चर्खे में लगे तकुवे के तरह घूमने वाला और चमकदार हीरा उत्तम कोटि का है ।

( ५ ) नष्टकोण, नुकीले कोनों से रहित और छोटे-बड़े कोनों वाला हीरा दूषित समझा जाता है ।

( ६ ) प्रवाल ( मूँगा ) के दो उत्पत्ति स्थान हैं—१. आलकन्दक ( अलकन्द नामक स्थान से उत्पन्न ) और २. वैवर्णिक ( यूनान के समीपवर्ती विवर्ण नामक समुद्रतल में उत्पन्न ) । प्रवाह के दो रंग होते हैं : १. रक्त और २. कमल । वह कीड़े का खाया हुआ तथा बीच में मोटा या उठा हुआ नहीं होना चाहिए ।

( ७ ) चन्दन के सोलह उत्पत्ति स्थान, नौ रंग, छह गन्ध और ग्यारह गुण होते हैं । **उत्पत्तिस्थान—१. सातन देश में उत्पन्न चन्दन लाल रंग का होता है और**

**गन्धि। हरिचन्दनं शुकपत्रवर्णमाम्रगन्धि। तार्णसं च। ग्रामेरुकं रक्तं रक्त-कालं वा वस्तमूत्रगन्धि। दैवसभेयं रक्तं पद्मगन्धि। जावकं च। जोङ्गकं रक्तं रक्तकालं वा स्निग्धम्। तौरूपं च। मालेयकं पाण्डुरक्तम्। कुचन्दनं कालवर्णकं गोमूत्रगन्धि। कालपर्वतकं रूक्षमगुरुकालं रक्तं रक्तकालं वा। कोशकारपर्वतकं कालं कालचित्रं वा। शीतोदकीयं पद्माभं कालस्निग्धं वा। नागपर्वतकं रूक्षं शैलवर्णं वा। शाकलं कपिलमिति।**

**(१) लघु स्निग्धमश्यानं सर्पिः स्नेहलेपि गन्धसुखं त्वगनुसार्यनुल्बण-मविराग्युष्णसहं दाहग्राहि सुखस्पर्शनमिति चन्दनगुणाः।**

---

उसमें धरती की सोंध होती है, २. गोशीर्ष देश में उत्पन्न चन्दन कालिमा एवं लाली लिए होता है और उसमें मछली की जैसी गन्ध होती है, ३. हरि नामक देश में उत्पन्न चन्दन तोते के पंख के समान हरे रंग का और उसमें आम की जैसी महक होती है, ४. तृणसा नामक नदी के किनारे उत्पन्न होने वाला चन्दन भी हरिचन्दन के ही समान होता है, ५. ग्रामेरु प्रदेश में उत्पन्न चन्दन या तो लाल रंग का अथवा लाल-काले मिले हुए रंग का होता है और उसमें बकरे की पेशाब जैसी गन्ध होती है, ६. देवसभा नामक स्थान में उत्पन्न चन्दन लाल रंग का और पद्म के समान सुगन्धि वाला होता है, ७. जावक देश का चन्दन भी देवसभा चन्दन की भाँति होता है, ८. जोंग देश में उत्पन्न चन्दन या तो लाल रंग का अथवा लाल-काला रंग का चिकना होता है और वह भी पद्म के समान सुगन्धित होता है, ९. तुरूप देश का चन्दन भी जोंगरु की भाँति होता है, १०. माल देश में उत्पन्न चन्दन का रंग लाल-पीला होता है, उसमें पद्म के समान सुगन्ध होती है, ११. कुचन्दन काले रंग का तथा गोमूत्र के समान गन्ध वाला होता है, १२. काल पर्वत पर उत्पन्न चन्दन खुर-दुरा, अगर के समान काला या लाल या लाल-काला होता है और उसमें भी गोमूत्र जैसी गन्ध होती है, १३. कोशकार पर्वत पर उत्पन्न चन्दन काला अथवा चितकबरा होता है, १४. शीतोदक देश में उत्पन्न चन्दन पत्र के रंग का या काला अथवा स्निग्ध होता है, १५. नाग पर्वत पर उत्पन्न चन्दन रूखा और सेवार के रंग जैसा होता है, १६. शाकल देश में उत्पन्न चन्दन पीला-लाल ( कपिल ) वर्ण का होता है।

( १ ) चन्दन में ग्यारह गुण होते हैं—१. लघु २. स्निग्ध ३. बहुत दिनों में सूखने वाला, ४. शरीर में घी के समान लगने वाला, ५. सुगन्धित, ६. त्वचा के भीतर ठंडक पहुँचाने वाला, ७. बिना फटा, ८. स्थायी वर्ण एवं गन्ध वाला, ९. गर्मी शांत करने वाला, १०. सन्ताप को दूर करने वाला और ११. सुखकर स्पर्श वाला।

(१) अगुरु—जोङ्गकं कालं कालचित्रं मण्डलचित्रं वा। श्यामं दोङ्गकम्। पारसमुद्रकं चित्ररूपम्। उशीरगन्धि नवमालिकागन्धि वेति।

(२) गुरु स्निग्धं पेशलगन्धि निर्हारि अग्निसहमसंप्लुतधूमं समगन्धं विमर्दसहम् इत्यगुरुगुणाः।

(३) तैलपर्णिकम्—अशोकग्रामिकं मांसवर्णं पद्मगन्धि। जोङ्गकं रक्तपीतकमुत्पलगन्धि गोमूत्रगन्धि वा ग्रामेरुकं स्निग्धं गोमूत्रगन्धि। सौवर्णकुडचकं रक्तपीतं मातुलुङ्गगन्धि। पूर्णकद्वीपकं पद्मगन्धि नवनीतगन्धि वेति।

(४) भद्रश्रीयम्—पारलौहित्यकं जातीवर्णम्। आन्तरवत्यमुशीरवर्णम्। उभयं कुष्ठगन्धि चेति।

(५) कालेयकः—स्वर्णभूमिजः स्निग्धपीतकः। औत्तरपर्वतको रक्तपीतकः इति साराः।

---

(१) अगर का निरूपण इस प्रकार है—जोंगल नामक अगर तीन तरह का होता है : काला, चितकबरा और काले-सफेद दागों वाला। दोंगक नामक अगर काला होता है, जोंगक और दोंगक दोनों आसाम में पैदा होते हैं। समुद्र पार पैदा होने वाला अगर, चित्र रूप का होता है, जिसकी गन्ध खश और चमेली जैसी होती है।

(२) भारी, स्निग्ध, सुगन्धित, दूर तक सुगन्ध फेंकने वाला, अग्नि को सहन करने वाला, जिसका धुआँ व्याकुल न कर दे, जलते समय एक जैसी गन्ध देने वाला और वस्त्र आदि पर पोंछ देने से गन्ध बनी रहना; ये अगर के गुण हैं।

(३) असम में पैदा होने वाला तैलपर्णिक चन्दन मांस के रङ्ग का और पद्म के समान गन्ध वाला होता है। असम में ही पैदा होने वाला दूसरा तैलपर्णिक चन्दन लाल-पीले रङ्ग का और कमल अथवा गोमूत्र की गन्ध का होता है। ग्रामेरू प्रदेश में पैदा होने वाला चन्दन चिकना और गोमूत्र की गन्ध का होता है। असम के सुवर्णकुडच नामक स्थान में पैदा होने वाला चन्दन लाल-पीला और नीबू की गन्ध का होता है। पूर्णक द्वीप में उत्पन्न चन्दन पद्म अथवा मक्खन की गन्ध का होता है।

(४) भद्रश्रीय नामक चन्दन दो प्रकार का होता है : १. पारलौहित्य और २. आन्तरवत्य। पारलौहित्य असम में पैदा होता है और उसका रङ्ग चमेलीपुष्प जैसा होता है, आन्तरवत्य चन्दन भी असम में ही पैदा होता है, उसका रङ्ग खस की भाँति होता है। इन दोनों की गन्ध कूट औषधि की तरह होती है।

(५) कालेयक नामक चन्दन स्वर्णभूमि में पैदा होता है और वह स्निग्ध एवं पीले रङ्ग का होता है। हिमालय पर पैदा होने वाला कालेयक लाल-पीले रङ्ग का होता है। यहाँ तक सार वस्तुओं का विवरण प्रस्तुत किया गया है।

**(१) पिण्डक्वाथधूमसहमविरागि योगानुविधायि च। चन्दनागरुवच्च तेषां गुणाः।**

**(२) कान्तनावकं प्रैयकं चोत्तरपर्वतकं चर्म। कान्तनावकं मयूरग्रीवाभम्। प्रैयकं नीलं पीतं श्वेतं लेखाविन्दुचित्रम्। तदुभयमष्टाङ्गुलायामम्।**

**(३) बिसी महाबिसी च द्वादशग्रामीये। अव्यक्तरूपा दुहिलिका चित्र वा बिसी। परुषा श्वेतप्राया महाबिसी। द्वादशाङ्गुलायाममुभयम्।**

**(४) श्यामिका कालिका कदली चन्द्रोत्तरा शाकुला चारोहजाः। कपिला बिन्दुचित्रा वा श्यामिका। कालिका कपिला कपोतवर्णा वा। तदुभयमष्टाङ्गुलायाम। परुषा कदली हस्तायता। सैव चन्द्रचित्रा चन्द्रोत्तरा। कदलीत्रिभागा शाकुला कोठमण्डलचित्रा कृतकर्णिकाजिनचित्रा चेति।**

---

( १ ) तैलपर्णिक, भद्रश्रीय और कालेयक, इन तीनों में पीसने पर, पकाने पर, आग में जलाने पर किसी प्रकार का विकार पैदा न होना, दूसरी वस्तु के साथ मिलाने पर तथा देर तक रखे रहने पर उनकी गन्ध में किसी प्रकार का फर्क न आना, ये गुण पाये जाते हैं। पूर्वोक्त चन्दनों में जो गुण बताये गए हैं, वे भी इन तीनों में पाये जाते हैं।

( २ ) फल्गु पदार्थों में पहिला स्थान चमड़े का है, जिसकी लगभग पन्द्रह जातियाँ होती है, १. कान्तनावक और २. प्रैयक दोनों का चमड़ा हिमालय में पैदा होता है। उनमें कान्तनावक मयूरग्रीवा का कान्ति वाला और प्रैयक नीले-पीले तथा सफेद रेखाओं अथवा दागों से युक्त होता है। इन दोनों का विस्तार आठ अंगुल होता है।

( ३ ) हिमालय में स्थित म्लेच्छों के बारह गावों में ३. बिसी और ४. महाबिसी नामक चमड़ा पैदा होता है। बिसी बहुरङ्ग, बालों वाला एवं चितकबरा, और महाबिसी कठोर तथा श्वेत होता है। इन दोनों का विस्तार बारह-बारह अंगुल होता है।

( ४ ) हिमालय के आरोह नामक स्थान में पैदा होने वाला चमड़ा पाँच प्रकार का होता है : ५. श्यामिका, ६. कालिका ७, कदली ८ चन्दोत्तरा और ९. शाकुला। कपिल और चितकबरे रङ्ग का चमड़ा श्यामिका है। कपिल अथवा कबूतरी रङ्ग का चमड़ा कालिका कहलाता है। इन दोनों का विस्तार आठ-आठ अंगुल होता है। कदली नामक चमड़ा कठोर तथा खुरदुरा होता है, जिसकी लम्बाई एक हाथ मानी गई है। कदली नामक चमड़े पर यदि चन्द्र बिन्दु अंकित हों तो वह चन्द्रोत्तरा कहलाता है। रङ्ग में ये दोनों कालिका के समान होते हैं। कदली से तीन गुणा बढ़ा

**(१) सामूरं चीनसी सामूली च बाह्लवेयाः। षट्त्रिंशदङ्गुलमञ्जनवर्णं सामूरम्। चीनसी रक्तकाली पाण्डुकाली वा। सामूली गोधूमवर्णेति।**

**(२) सातिना नलतूला वृत्तपुच्छा औद्राः। सातिना कृष्णा। नलतूला नलतूलवर्णा। कपिला वृत्तपुच्छा च। इति चर्मजातयः।**

**(३) चर्मणां मृदु स्निग्धं बहुलरोम च श्रेष्ठम्।**

**(४) शुद्धं शुद्धरक्तं पक्षरक्तं च आविकम्। खचितं वानचित्रं खण्डसङ्घात्यं तन्तुविच्छिन्नं च।**

**(५) कम्बलः केचलकः कलमितिका सौमितिका तुरगास्तरणं वर्णकं तच्छिलकं वारवाणः परिस्तोमः समन्तभद्रकं च आविकम्।**

**(६) पिच्छलमार्द्रमिव च सूक्ष्म मृदु च श्रेष्ठम्।**

---

( तीन हाथ का ) या कदली का तीसरा हिस्सा ( आठ अंगुल ) शाकुला नामक चमड़ा होता है, जिसमें लाल धब्बे और कुछ गांठें पड़ी होती हैं।

( १ ) हिमालय के बाह्लव नामक प्रदेश में तीन प्रकार का चमड़ा होता है : १०. सामूर, ११. चीनसी और १२. सामूली। सामूर चमड़ा अञ्जन के समान काले रङ्ग का और छत्तीस अंगुल का होता है। चीनसी चमड़ा लाल-काला अथवा पीला-काला रङ्ग का होता है। सामूली गेहुँए रङ्ग का होता है। ये दोनों छबीस-छबीस अंगुल के होते हैं।

( २ ) उद्र नामक जलचर प्राणी की खाल तीन प्रकार होती है १३. सातिना १४. नलतूला और १५. वृत्तपुच्छा। सातिना काले रङ्ग की होती है। नलतूला, नरसल के समान सफेद होती है। वृतपुच्छा लाल-पीले रङ्ग की होती है। चमड़े की ये पन्द्रह प्रकार की भिन्न-भिन्न जातियाँ हैं।

( ३ ) मुलायम, चिकना और अधिक बालों वाला चमड़ा उत्तम समझा जाता है।

( ४ ) भेड़ की ऊन के चमड़े प्रायः सफेद और सफेद-लाल अथवा दूसरे रंग के भी होते हैं। इनके चार भेद हैं : १. खचित ( बेल-बूटेदार ), २. वानचित्र ( बुनाई के समय जिनमें तरह-तरह के फूल चित्रित हों ) ३. खण्डसंघात्य ( तरह-तरह की बुनावट के छोटे-छोटे टुकड़ों के जोड़ ) और ४. तन्तु-विच्छिन्न (जालीदार कपड़ा)।

( ५ ) इनके अतिरिक्त १. कम्बल, २. केचलक, ३. कलमितिका, ४. सौमितिका, ५. तुरगास्तरण, ६. वर्णक, ७. तच्छिलक, ८. वारवाण, ९. परिस्तोम और १०. समन्तभद्रक, ये दस भेद बने हुए ऊनी वस्त्रों के और होते हैं।

( ६ ) चिकना, चमकदार बारीक डोरे का और मुलायम कम्बल उत्तम समझा जाता है।

**(१) अष्टप्लोतिसङ्घात्या कृष्णा भिङ्गिसी वर्षवारणम्, अपसारक इति नैपालकम् ।**

**(२) संपुटिका चतुरश्रिका लम्बरा कटवानकं प्रावरकः सत्तलिकेति मृगरोम ।**

**(३) वाङ्गकं श्वेतं स्निग्धं दुकूलं, पौण्ड्रकं श्यामं मणिस्निग्धं, सौवर्ण-कुड्यकं सूर्यवर्णम् । मणिस्निग्धोदकवानं चतुरश्रवानं व्यामिश्रवानं च ।**

**(४) एतेषामेकांशुकमध्यर्धद्वित्रिचतुरंशुकमिति ।**

**(५) तेन काशिकं पौण्ड्रकं च क्षौमं व्याख्यातम् ।**

**(६) मागधिका पौण्ड्रिका सौवर्णकुडयका च पत्त्रोर्णाः नागवृक्षो**

---

( १ ) काले रंग के आठ टुकड़ों को जोड़कर **भिंगिसी** बनाई जाती है, जो कि वर्षा में भींगने से बचाती है । इसी तरह एक ही साबूत कपड़े का बना **अपसारक** कहलाता है । ये कपड़े नैपाल देश में बनते हैं ।

( २ ) मृग के बालों से छह प्रकार का कपड़ा बनाया जाता है : १. संपुटिका, ( जाँघिया या सुथनी ), २. चतुरश्रिका, ३. लम्बरा, ४. कटवानक, ५. प्रावरक और ६. सत्तलिका ।

( ३ ) दुशाला देश भेद से तीन प्रकार का होता है : १. बांगक, २. पौण्ड्रक ३. सौवर्णकुडयक । वांगक अर्थात् बङ्गाल में बना हुआ दुशाला सफेद एवं चिकना होता है, पौंड्रक अर्थात् पुंड्र देश में बना हुआ दुशाला काला एवं मणि के समान स्निग्ध होता है, और असम के सुवर्णकुडय नामक स्थान में बना हुआ दुशाला सूर्य के समान चमकदार होता है । इन दुशालों की बुनावट तीन प्रकार की होती है १. दुशाले बनाने के साधनभूत तन्तु पहिले पानी में भिगो दिए जाय, फिर मणिबन्ध में रगड़कर उन्हें मजबूत बना दिया जाय २. ताना और बाना दोनों का तागा एक-सा बारीक हो, इस प्रकार की बनावट ३. कपास, रेशम, ऊन आदि मिले हुए तन्तुओं से रंगीन बुनावट करना ।

( ४ ) जिसके ताने और बाने में एक जैसे बारीक तन्तु हों, वह उत्तम दुशाला है, इनसे ड्योढ़े. दुगने, तिगुने आदि मोटे तन्तुओं के होने पर उत्तरोत्तर वह दुशाला कम कीमत का समझा जाता है ।

( ५ ) इसी प्रकार काशी तथा पुंड्र आदि में बनने वाले रेशमी वस्त्रों की उत्कृ-ष्टता-निकृष्टता के सम्बन्ध में भी समझना चाहिए, अर्थात् रेशम के तन्तु जितने बारीक और एक सूत के होंगे, रेशम उतना ही उत्तम होगा और तन्तुओं के मोटे होने पर उत्तरोत्तर वह निकृष्ट समझा जायगा ।

( ६ ) मगध, पुंड्रक और सुवर्णकुडयक, इन तीन देशों में **पत्त्रोर्णा** नाम की ऊन होती है । वह नागकेसर, बड़हर, मौलसरी और बरगद, इन चार पेड़ों से पैदा

**लिकुचो वकुलो वटश्च योनयः। पीतिका नागवृक्षिका, गोधूमवर्णा लैकुची, श्वेता वाकुली, शेषा नवनीतवर्णा।**

**(१) तासां सौवर्णकुड्यका श्रेष्ठा। तया कौशेयं चीनपट्टाश्च चीनभूमिजा व्याख्याताः।**

**(२) माधुरमापरान्तकं कालिङ्गकं काशिकं वाङ्गकं वात्सकं माहिषकं च कार्पासिकं श्रेष्ठमिति।**

**(३) अतः परेषां रत्नानां प्रमाणं मूल्यलक्षणम्।**
**जातिं रूपं च जानीयान्निधानं नवकर्म च॥**

**(४) पुराणप्रतिसंस्कारं कर्मगुह्यमुपस्करान्।**
**देशकालपरीभोगं हिंस्राणां च प्रतिक्रियाम्॥**

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीयेऽधिकरणे कोशप्रवेश्यरत्नपरीक्षा नाम
एकादशोऽध्यायः, आदितः एकत्रिंशः।

—: o :—

---

होती है। नागकेसर के पेड़ से निकाली जाने वाली पत्रोर्णा पीली होती है। बड़हर पर गेहुँए रंग की होती है। मौलसरी की सफेद होती है। बरगद तथा अन्य वृक्षों की पत्रोर्णा मक्खन के रंग की होती है।

( १ ) उनमें सुवर्णकुड्यक ( असम ) की पत्रोर्णा उत्तम समझी जाती है। इसी प्रकर दूसरे रेशम और चीन में उत्पन्न होने वाले चीनपट्ट में सम्बन्ध में भी समझ लेना चाहिए।

( २ ) मधुरा ( मदुरा ), अपरांतक ( कोंकण ), कलिंग, काशी, वंग, वत्स और महिषक ( मैसूर ), इन देशों में पैदा होने वाली कपास के कपड़े सर्वोत्तम समझे जाते हैं।

( ३ ) कोषाध्यक्ष को चाहिए कि वह, मोती से लेकर कपास तक जिन रत्न, सार और फल्गु आदि पदार्थों का निरूपण किया गया है तथा जिनका निरूपण आगे किया जायगा, इसके अतिरिक्त रत्नों के प्रमाण, मूल्य, लक्षण, जाति, रूप, निधान और संस्कार-शुद्धि आदि विषयों के संबन्ध में विस्तार से जानकारी प्राप्त करे।

( ४ ) पुराने रत्नों का पुनः संस्कार, उनको छीलना, उनका रंग बदलना, उनको साफ करना, देश-काल के अनुसार उनका उपयोग करना, कृमि-कीटों से उनकी सुरक्षा का प्रबन्ध करना आदि कार्य भी कोषाध्यक्ष की जानकारी से सम्बद्ध हैं।

अध्यक्षप्रचार नामक दूसरे अधिकरण में कोशप्रवेश्यरत्नपरीक्षा नामक
ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त।

—: o :—

प्रकरण २८

अध्याय १२

# आकरकर्मान्तप्रवर्तनम्

(१) आकराध्यक्षः शुल्बधातुशास्त्ररसपाकमणिरागज्ञस्तज्ज्ञसखो वा तज्जातकर्मकरोपकरणसम्पन्नः किट्टमूषाङ्गारभस्मलिङ्गं वाकरं भूतपूर्वमभूतपूर्वं वा भूमिप्रस्तररसधातुमत्यर्थवर्णगौरवमुग्रगन्धरसं परीक्षेत।

(२) पर्वतानामभिज्ञातोद्देशानां बिलगुहोपत्यकालयनगूढखातेष्वन्तःप्रस्यन्दिनो जम्बूचूततालफलपक्वहरिद्राभेदहरितालक्षौद्रहिङ्गुलकपुण्डरीकशुकमयूरपत्रवर्णाः सवर्णोदकौषधिपर्यन्ताश्चिक्कणा विशदा भारिकाश्च रसाः काञ्चनिकाः।

(३) अप्सु निष्ठ्यूतास्तैलवद्विसर्पिणः पङ्कमलग्राहिणश्च ताम्ररूप्ययोः शतादुपरि वेद्धारः।

---

## खान एवं खनिज की पहिचान और उनके विक्रय की व्यवस्था

( १ ) आकर ( खान ) के अध्यक्ष को चाहिये कि वह शुल्बशास्त्र, धातुशास्त्र, रसायन, पाकविधि और मणिराग आदि के विषयों में निपुणता प्राप्त करे अथवा उन विषयों के विशेषज्ञ पुरुषों तथा उन वस्तुओं के व्यापारियों के साथ रहकर, कुल्हाड़े, धौंकनी, सन्सी आदि आवश्यक सामग्री को साथ लेकर, कीटी, मूषा, राख आदि लक्षणों को देखकर पुरानी खान की परीक्षा करे, यदि मिट्टी, पत्थर, पानी आदि में धातु मिली हुई जान पड़े या उनका रंग चमकदार मालूम हो या वे वजनदार लगें अथवा उनमें तेज गन्ध आती हो तो इन लक्षणों से समझ लेना चाहिए कि उस स्थान पर खान है।

( २ ) परिचित पहाड़ों के गड्ढों, गुफाओं, तराइयों, पथरीले स्थानों एवं शिलाओं से ढके हुए छेदों द्वारा बहने वाले जल से, जिसका रङ्ग जामुन, आम, ताड़ का फल, पक्की हल्दी, हरताल, मैनसिल, शहद, शिगरफ, कमल, तोता, मोरपंख आदि के रङ्ग का हो और अपने समान रङ्ग के पानी तथा औषधि तक बहने वाले चिकने भारी जल को देखकर सोने की खान का अनुमान करना चाहिए।

( ३ ) इस प्रकार के जल को यदि दूसरे जल में मिलाया जाय और वह तेल की तरह फैलने लगे, या निरबिसी फल के समान पानी को साफ करता हुआ नीचे

(१) तत्प्रतिरूपकमुग्रगन्धरसं शिलाजतु विद्यात् ।

(२) पीतकास्ताम्रकास्ताम्रपीतका वा भूमिप्रस्तरधातवो भिन्ना नीलराजीमन्तो मुद्गमाषकृसरवर्णा वा दधिबिन्दुपिण्डचित्रा हरिद्राहरीतकीपद्मपत्रशैवलयकृत्प्लीहानवद्यवर्णा भिन्ना श्चुञ्चुबालुकालेखाबिन्दुस्वस्तिकवन्तः सगुलिका अर्चिष्मन्तस्ताप्यमाना न भिद्यन्ते बहुफेनधूमाश्च सुवर्णधातवः प्रतीवापार्थास्ताम्ररूप्यवेधनाः ।

(३) शङ्खकर्पूरस्फटिकनवनीतकपोतपारावतविमलकमयूरग्रीवावर्णाः सस्यकगोमेदकगुडमत्स्यण्डिकावर्णाः कोविदारपद्मपाटलीकलायक्षौमातसीपुष्पवर्णाः ससीसाः साञ्जनाः विस्रा भिन्ना श्वेताभाः कृष्णाः कृष्णाभाः श्वेताः सर्वे वा लेखाबिन्दुचित्रा मृदवो ध्यायमाना न स्फुटन्ति बहुफेनधूमाश्च रूप्यधातवः ।

(४) सर्वधातूनां गौरववृद्धौ सत्त्ववृद्धिः । तेषामशुद्धा मूढगर्भा वा

---

बैठ जाय अथवा सौ पल ताँबा या चाँदी उसके ऊपर डालकर यदि वह उसको एक पल जल सुनहरा बना दे तो समझना चाहिए कि इस जल-स्रोत के नीचे अवश्य ही सोने की खान है ।

( १ ) यदि किसी स्थान पर उसी के समान केवल तेज गन्ध या उग्र रस की संभावना हो तो समझना चाहिए कि वहाँ पर शिलाजीत का उत्पत्तिस्थान है ।

( २ ) पीले या ताँबे अथवा दोनों रङ्गों की मिट्टी और पत्थर जिनके तोड़ने पर बीच में नीली रेखायें या मूंग, उड़द, तिल आदि के समान या दही के छोटे-छोटे कणों के समान छोटी-छोटी बूंदों वाला, हल्दी, हरीतकी, कमलपत्र, सेवार, यकृत, प्लीहा तथा केसर के समान या तोड़ने पर बारीक रेत की रेखाओं, बूंदों, स्वस्तिक-चिह्नों, मोटे रेत के कणों के समान, कान्ति युक्त और तपाये जाने पर न फटने वाली तथा बहुत झाग एवं धुआँ देने वाली सुवर्ण धातु होती है । इस प्रकार की मिट्टी और पत्थर से ताँबा तथा चाँदी को सोना बनाया जा सकता है ।

( ३ ) शंख, कपूर, स्फटिक मणि, मक्खन, जङ्गली कबूतर, पालतू कबूतर, सफेद तथा लाल रङ्ग की मणि, मयूर ग्रीवा, नील मणि, गोरोचन, गुड़, शक्कर, कचनार, कमल, पाटली, मटर, अलसी आदि के समान रङ्ग वाले, सीसा, अंजन, दुर्गन्ध से युक्त, तोड़ने पर बाहर से सफेद मालूम होने वाले किन्तु भीतर तथा बाहर से काले और भीतर से सफेद प्रतीत होने वाले अथवा हर प्रकार की रेखाओं तथा बूंदों से युक्त, मृदु, तपाये जाने पर जो फटे नहीं किन्तु बहुत झाग और धुआँ उगलें, इस प्रकार की धातु रूप्यधातु कही जाती हैं ।

( ४ ) इन सभी धातुओं के सम्बन्ध में यह समझना चाहिए कि उनमें जितना

**तीक्ष्णमूत्रक्षारभाविता राजवृक्षवटपीलुगोपित्तरोचनामहिषखरकरभमूत्र-लण्डपिण्डबद्धास्तत्प्रतीवापास्तदवलेपा वा विशुद्धाः स्रवन्ति ।**

**(१) यवमाषतिलपलाशपीलुक्षारैर्गोक्षीराजक्षीर्वा कदलीवज्रकन्दप्रतीवापो मार्दवकरः ।**

**(२) मधुमधुकमजापयः सतैलं घृतगुडकिण्वयुतं सकन्दलीकम् ।**
**यदपि शतसहस्रधा विभिन्नं भवति मृदु त्रिभिरेव तन्निषेकैः ।।**

**(३) गोदन्तशृङ्गप्रतीवापो मृदुस्तम्भनः ।**

**(४) भारिकः स्निग्धो मृदुश्च प्रस्तरधातुर्भूमिभागो वा पिङ्गलो हरितः पाटलो लोहितो वा ताम्रधातुः ।**

**(५) काकमेचकः कपोतरोचनावर्णः श्वेतराजिनद्धो वा विस्रः सीसधातुः ।**

---

ही भारीपन होगा वे उतनी ही उत्तम कोटि के सिद्ध होंगी । इनमें जो धातु अशुद्ध हो अथवा मैल जम जाने के कारण जिसके गुण-दोषों का यथार्थ ज्ञान नहीं हो पा रहा हो उसका शोधन कर लिया जाय । शोधन के प्रकार ये हैं : तीक्ष्णमूत्र ( मनुष्य हाथी-घोड़ा, गाय, गधा, बकरा आदि में से किसी का मूत्र ), तीक्ष्णक्षार, अमलतास, बरगद, पीलु, गोरोचन, भैंसे का मूत्र, बालक का मूत्र तथा उनके पुरीष, ( मल ) आदि वस्तुओं में कई बार धातुओं की भावनाएं देने से वे विशुद्ध हो जाती हैं, अमलतास आदि के चूर्ण से अथवा उनके लेप से भी धातु का मल नष्ट होकर वे अपने असली रूप में आ जाती हैं ।

( १ ) जो उड़द, तिल, ढाक, पीलु, वृक्ष का क्षार और गाय तथा बकरी के दूध में केला एवं सूरण को एक साथ मिलाकर यदि उनमें सोने-चाँदी की भावना दी जाय तो वे नर्म हो जाते हैं ।

( २ ) शहद, मुलहटी, बकरी का दूध, तेल, घी, गुड़ की शराब और खादर में पैदा होने वाले झाड़ आदि सब को मिलाकर, उनमें तीन बार सोने-चाँदी की भावना दी जाय तो वे चाहे जितने भी कटे-फटे खुरदरे क्यों न हों, मुलायम हो जाते हैं ।

( ३ ) यदि पिघले हुए सोने-चाँदी के ऊपर गाय के दाँत तथा सींग का चूर्ण बुरक दिया जाय तो सोना-चाँदी ठोस हो जाते हैं ।

( ४ ) जहाँ पाषाणधातु, भूमिधातु, और ताम्रधातु, इन तीन प्रकार के पत्थर तथा मिट्टी के चिकने एवं मृदु भू-भाग हों, वहाँ ताँबे की खान होती है । ताँबा चार प्रकार का होता है : १. पिङ्गल २. हरित ३. पाटल और ४. लोहित ।

( ५ ) जो भूमि-भाग कौए के समान काला, कबूतर तथा गोरोचन की आकृति वाला, सफेद रेखाओं से युक्त और दुर्गन्धपूर्ण हो, वहाँ सीसा की खान समझनी चाहिए।

**(१) ऊषरकर्बुरः पक्वलोष्ठवर्णो वा त्रपुधातुः।**

**(२) कुरुम्बः पाण्डुरोहितः सिन्दुवारपुष्पवर्णो वा तीक्ष्णधातुः।**

**(३) काकाण्डभुजपत्रवर्णो वा वैकृन्तकधातुः।**

**(४) अच्छः स्निग्धः सप्रभो घोषवान् शीततीव्रस्तनुरागश्च मणिधातुः।**

**(५) धातुसमुत्थं तज्जातकर्मान्तेषु प्रयोजयेत्।**

**(६) कृतभाण्डव्यवहारेमेकमुखम्, अत्ययं चान्यत्रकर्तृक्रेतृविक्रेतृणां स्थापयेत्।**

**(७) आकरिकमपहरन्तमष्टगुणं दापयेदन्यत्र रत्नेभ्यः।**

**(८) स्तेनमनिसृष्टोपजीविनं च बद्ध्वा कर्म कारयेद्, दण्डोपकारिणं च।**

---

(१) जो भूमि-भाग ऊसर जमीन की भाँति कुछ सफेदी लिये हो, अथवा पके हुए ढेले के रंग का हो, वहाँ सफेद सीसे की खान समझनी चाहिए।

(२) जो भूमि भाग चिकने पत्थरों वाला, कुछ सफेदी एवं लाली लिये हो, अथवा उसकी आकृति निर्गुण्डी के पुष्प से मिलती हो, वहाँ लोहे की खान समझनी चाहिए।

(३) जो भूमि-भाग कौवे के अण्डे या भोजपत्र की आकृति का हो, वहाँ इस्पाती लोहे की खान समझनी चाहिए।

(४) जो भूमि-भाग, इतना स्वच्छ हो कि जिसमें परछाई दिखाई दे, जो चिकना, दीप्त, शब्द देने वाला, अत्यन्त शीतल और फीके रंग वाला हो, वहाँ मणियों की खान जाननी चाहिए।

(५) खान से प्राप्त सुवर्ण आदि के लाभ को पुनः खान के कार्यों में लगाकर अधिक लाभ प्राप्त करना चाहिए।

(६) किसी एक नियत स्थान में ही सुवर्ण आदि धातुओं की बिक्री की व्यवस्था करनी चाहिए, उससे अन्यत्र बेचने वाले व्यक्तियों को दण्डित किया जाना चाहिए।

(७) धातुओं की चोरी करने वाले व्यक्ति पर, चोरी का आठ गुना दण्ड करना चाहिए, किन्तु यदि वह रत्नों की चोरी करता है तो उसको प्राणदण्ड दिया जाना चाहिए।

(८) जो व्यक्ति चोरी करे अथवा राजा की अनुमति के बिना धातुओं का व्यापार करे, उसे पकड़कर खान के कार्य में लगा देना चाहिए, और जिस व्यक्ति को न्यायालय ने प्राणदण्ड की सजा दी हो, किन्तु कारणवश वह उस दण्ड को पूरा न कर सके तो, ऐसे व्यक्ति को भी खान में लगा देना चाहिए।

**(१) व्ययक्रियाभारिकमाकरं भागेन प्रक्रयेण वा दद्यात्, लाघविकमात्मना कारयेद् ।**

**(२) लोहाध्यक्षः ताम्रसीसत्रपुवैकृन्तकारकूटवृत्तकंसताललोहकर्मान्तान् कारयेत्, लोहभाण्डव्यवहारं च ।**

**(३) लक्षणाध्यक्षः चतुर्भागताम्रं रूप्यरूपं तीक्ष्णत्रपुसीसाञ्जनानामन्यतमाषबीजयुक्तं कारयेत् पणम्, अर्धपणं पादमष्टभागमिति । पादाजीवं ताम्ररूपं माषकमर्धमाषकं काकणीमर्धकाकणीमिति ।**

**(४) रूपदर्शकः पणयात्रां व्यावहारिकीं कोशप्रवेश्यां च स्थापयेत् ।**

---

( १ ) यदि खान पर लोगों का कर्जा चढ़ गया हो और उस कर्जा को चुकता कर देने पर ही लाभ निर्भर हो तो, खान के अध्यक्ष को चाहिए कि वह थोड़ी-थोड़ी किस्तों में उस कर्जे को चुकता कर दे अथवा राजा से, कुछ सोना देकर, एक मुस्त रकम देकर, वह उस कर्जे को सर्वथा चुकता कर दे । यदि थोड़ी पूँजी या थोड़े श्रम से कार्य पूरा हो सकता है तो, अध्यक्ष स्वयं ही वैसा कर दे ।

( २) अध्यक्ष को चाहिए कि वह ताँबा, सीसा, त्रपु, वैकृंतक, आरकूट, वृत्त, कंस और ताल आदि अन्य प्रकार के लोहों का कार्य अपनी देख-रेख के कराये । लोहे की बनी वस्तुओं एवं तत्सम्बन्धी कार्य-व्यवहार को भी वह अपनी निगरानी में करवावे ।

( ३ ) टकसाल के अध्यक्ष ( लक्षणाध्यक्ष ) को चाहिए कि वह पण, अर्धपण, पादपण तथा अष्टभागपण नामक चार चाँदी के सिक्कों को विधिपूर्वक ढलवावे । १६ माष का एक पण होता है । उसमें ४ माष ताँबा, लोहा, राँगा, सीसा तथा अंजन, इनमें से कोई भी एक माष, बाकी ११ माष चाँदी होनी चाहिए । इसी हिसाब से अर्धपण ( अठन्नी ), पादपण ( चवन्नी ) और अष्टभागपण ( दुअन्नी ) आदि को ढलवावे । पण के चौथे हिस्से को व्यवहार में लाने के लिए ताँबे का एक अलग सिक्का होना चाहिए, जिसमें चौथाई हिस्सा चाँदी एक हिस्सा लोहा, सीसा आदि में से कोई एक और ग्यारह माष ताँबा होना चाहिए, इस सिक्के का नाम मापक है, जिसका वजन सोलह माप होता है, इसका भी अर्धमापक सिक्का तैयार करवाना चाहिए, इसके पादमापक तथा अष्टभागमापक के लिए 'काकणी' तथा 'अर्धकाकणी' नामक सिक्कों को बनवाना चाहिए ।

( ४ ) सिक्कों के विशेषज्ञ को इस बात की व्यवस्था कर देनी चाहिए कि कौन-सा सिक्का चलाया जाय और कौन-सा सिक्का खजाने में जमा किया जाय । सौ पण पर जो आठ पण राज्यभाग जनता से लिया जाता है, उसका नाम **रूपिक** है;

**रूपिकमष्टकं शतं, पञ्चकं शतं व्याजीं, पारीक्षिकमष्टभागिकं शतम्। पञ्चविंशतिपणमत्ययं चान्यत्र कर्तृक्रेतृविक्रेतृपरीक्षितृभ्यः।**

**(१) खन्यध्यक्षः शङ्खवज्रमणिमुक्ताप्रबालक्षारकर्मान्तान् कारयेत्, पणनव्यवहारं च।**

**(२) लवणाध्यक्षः पाकमुक्तं लवणभागं प्रक्रयं च यथाकालं संगृह्णीयाद्, विक्रयाच्च मूल्यं रूपं व्याजीं च।**

**(३) आगन्तुलवणं षड्भागं दद्यात्। दत्तभागविभागस्य विक्रयः। पञ्चकं शतं व्याजीं, रूपं, रूपिकं च। क्रेता शुल्कं, राजपण्यच्छेदानुरूपं च वैधरणं दद्यात्। अन्यत्रक्रेता षट्छतमत्ययं च।**

**(४) विलवणमुत्तमं दण्डं दद्यात्, अनिसृष्टोपजीवी च। अन्यत्र वानप्रस्थेभ्यः। श्रोत्रियास्तपस्विनो विष्टयश्च भक्तलवणं हरेयुः।**

---

सौ पण पर पाँच पण राज्यभाग व्याजी और सौ पण पर आठ पण राज्यभाग पारीक्षिक कहलाता है। यदि कोई पारीक्षिक का अपहरण करे तो उसे पच्चीस पण दण्ड दिया जाय, यदि अधिक अपहरण करे तो, अपहृतधन के हिसाब से, उस पर दुगुना, चौगुना दण्ड नियत करना चाहिए। किन्तु सिक्कों को बनाने, बेचने, खरीदने और परीक्षा करने वाले अधिकारियों के लिए दण्ड-विधान की व्यवस्था कुछ दूसरी ही है।

( १ ) खान के अध्यक्ष को चाहिए कि वह शंख, वज्र, मणि, मुक्ता, प्रवाल तथा सभी तरह के क्षारों की उत्पत्ति और उनके क्रय-विक्रय की सुव्यवस्था करे।

( २ ) लवण के अध्यक्ष को चाहिए कि वह बिक्री के लिए तैयार नमक को और किसी दूसरी खान से कुछ शर्तों के आधार पर नियत मात्रा में उपलब्ध होने वाले नमक को ठीक समय से संग्रह कर ले, उसको चाहिए कि वह उसके विक्रय का, बिक्री से प्राप्त होने वाले मूल्य का और रूप एवं व्याजी का सुप्रबंध करे।

( ३ ) विदेश से बिक्री के लिए आये हुए नमक का छठा भाग राजकर के रूप में देना चाहिए। जो व्यक्ति समुचित राजकर एवं तौल का टैक्स अदा करे वही उसको बेचने का अधिकारी है, और उसे पाँच प्रतिशत व्याजी, रूप तथा रूपिक भी राजकर के रूप में अदा करना चाहिए। उस माल को खरीदने वाला व्यक्ति भी राजकर अदा करे, उसकी छीजन भी वह पूरी करे। राजकीय बाजार का कोई व्यापारी यदि बाहर से नमक मँगाता है तो उससे छह प्रतिशत राजकर के अतिरिक्त जुर्माना भी अदा किया जाय।

( ४ ) घटिया या मिलावटी नमक बेचने वाले व्यापारी को उत्तम साहस दण्ड देना चाहिए। इसी प्रकार जो राजाज्ञा के विरुद्ध नमक को बनाता है या उसका

(१) अतोऽन्यो लवणक्षारवर्गः शुल्कं दद्यात् ।

(२) एवं मूल्यं विभागं च व्याजीं परिघमत्ययम् ।
शुल्कं वैधरणं दण्डं रूपं रूपिकमेव च ॥
खनिभ्यो द्वादशविधं धातुं पण्यं च संहरेत् ।
एवं सर्वेषु पण्येषु स्थापयेन्मुखसंग्रहम् ॥

(३) आकरप्रभवः कोषः कोषाद्दण्डः प्रजायते ।
पृथिवी कोषदण्डाभ्यां प्राप्यते कोषभूषणा ॥

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीयेऽधिकरणे आकरकर्मान्तप्रवर्तनं नाम
द्वादशोऽध्यायः, आदितः द्वात्रिंशः ।

—: ० :—

---

व्यापार करता है, उसे भी उत्तम साहस दण्ड दिया जाना चाहिए । किन्तु यह नियम वानप्रस्थियों पर लागू नहीं होता है । श्रोत्रिय, बेगार ढोने वाले और तपस्वी लोग बिना कीमत दिये भी अपने उपयोग के लायक नमक ले जा सकते हैं ।

( १ ) इनके अतिरिक्त, नमक और क्षार का उपयोग करने वाले सभी लोग नमक के अध्यक्ष और क्षार के अध्यक्ष को शुक्ल अदा करें ।

( २ ) इस प्रकार मूल्य, विभाग, व्याजी, परिघ, अत्यय, शुल्क, वैंधरण, दण्ड, रूप, रूपिक, खनिज पदार्थ और भिन्न-भिन्न प्रकार के विक्रेय पदार्थों का संग्रह करना चाहिए । राज्यभर की सभी मंडियों में प्रमुख विक्रेय वस्तुएँ बिक्री के लिए रखी जानी चाहिए ।

( ३ ) कोष की उन्नति खान पर निर्भर है; कोष की समृद्धि से शक्तिशाली सेना तैयार की जा सकती है । इस कोषगर्भा पृथिवी को कोष और सेना से ही प्राप्त किया जा सकता है ।

अध्यक्षप्रचार नामक द्वितीय अधिकरण में आकरकर्मान्तप्रवर्तन नामक
बारहवाँ अध्याय समाप्त ।

—: ० :—

प्रकरण २९ | अध्याय १३

# अक्षशालायां सुवर्णाध्यक्षः

(१) सुवर्णाध्यक्षः सुवर्णरजतकर्मान्तानामसम्बन्धावेशनचतुःशालामेकद्वारामक्षशालां कारयेत् । विशिखामध्ये सौवर्णिकं शिल्पवन्तमभिजातं प्रात्ययिकं च स्थापयेत् ।

(२) जाम्बूनदं शातकुम्भं हाटकं वैणवं शृङ्गशुक्तिजं, जातरूपं रसविद्धमाकरोद्गतं च सुवर्णम् ।

(३) किञ्जल्कवर्णं मृदु स्निग्धमनादि भ्राजिष्णु च श्रेष्ठं, रक्तपीतकं मध्यमं, रक्तमवरं श्रेष्ठानाम् ।

(४) पाण्डु श्वेतं चाप्राप्तकम् । तद्येनाप्राप्तकं तच्चतुर्गुणेन सीसेन

---

## अक्षशाला में सुवर्णाध्यक्ष के कार्य

( १ ) सुवर्णाध्यक्ष को चाहिए कि वह सोने-चाँदी के प्रत्येक कार्य को करने के लिए एक अक्षशाला का निर्माण करवावे, उसमें एक ही प्रधान द्वार होना चाहिए, उसके चारों ओर, एक दूसरे से अलग, चार बड़े भवन होने चाहिए। विशिखा (सर्राफा बाजार) में चतुर, कुलीन, विश्वस्त और पारखी सर्राफों को बसाया जाय।

( २ ) सोना पाँच प्रकार का होता है; उसके रङ्ग भी पाँच होते हैं : १. जाम्बूनद ( मेरु पर्वत से निकलने वाली जम्बू नदी से उत्पन्न जामूनी रङ्ग का ), २. शातकुम्भ ( शतकुम्भ पर्वत से उत्पन्न, कमलरज के समान ), ३. हाटक ( सोने की खान से उत्पन्न, सेवतीपुष्प की भाँति ), ४. वैणव ( वेणु पर्वत पर उत्पन्न कर्णिकारपुष्प की आकृति का ) और ५. शृंगिशुक्तिज ( स्वर्णभूमि में उत्पन्न, मैनसिल के रङ्ग का )। सुवर्ण के तीन प्रकार : १. जातरूप ( स्वयं शुद्ध ), २. रसविद्ध ( रसायन क्रियाओं द्वारा निर्मित ) और ३. आकारोद्गत (अशुद्ध, खानों से निकाला हुआ)।

( ३ ) कमलरज की आकृति का, मृदु, स्निग्ध, शब्दरहित और चमकदार सोना सर्वोत्तम; लाल-पीत वर्ण मिश्रित सोना मध्यम; और केवल लाल वर्ण का निकृष्ट होता है।

( ४ ) उत्तम कोटि के सुवर्ण में से जिसमें कुछ पीलाई एवं सफेदी हो वह **अप्राप्तक** कहलाता है। उस सोने में जितना मैल मिला हो, उससे चौगुना सीसा डालकर उसे शुद्ध करना चाहिए। सीसा मिला देने से यदि वह फटने लगे तो उसे

**शोधयेत्, सीसान्वयेन भिद्यमानं शुष्कपटलैर्ध्मापयेत्, रूक्षत्वाद्भिद्यमानं तैलगोमये निषेचयेत् ।**

**(१) आकरोद्गतं सीसान्वयेन भिद्यमानं पाकपत्राणि कृत्वा गण्डिकासु कुट्टयेत्, कन्दलीवज्रकन्दकल्के वा निषेचयेत् ।**

**(२) तुत्थोद्गतं गौडिकं काम्बुकं चाक्रवालिकं च रूप्यम् । श्वेतं स्निग्धं मृदु च श्रेष्ठम् । विपर्यये स्फोटनं च दुष्टम् । तत्सीसचतुर्भागेन शोधयेत् ।**

**(३) उद्गतचूलिकमच्छं भ्राजिष्णु दधिवर्णं च शुद्धम् ।**

**(४) शुद्धस्यैको हारिद्रस्य सुवर्णो वर्णकः । ततः शुल्बकाकण्युत्तरापसारिता आ चतुःसीमान्तादिति षोडश वर्णकाः ।**

**(५) सुवर्णं पूर्वं निकष्य पश्चाद्वर्णिकां निकषयेत् । समरागलेखमनिम्नोन्नते देशे निकषितम् । परिमृदितं परिलीढं नखान्तराद्वा गैरिकेणाव-**

---

जंगली कण्डों की आग में तपाना चाहिए । यदि शुद्ध करते समय रूखापन आ जाने से वह फटने लगे तो तेल और गोबर को मिलाकर बार-बार उसमें भावना देनी चाहिए ।

( १ ) खान से निकाले हुए सोने को भी सीसा मिलाकर शुद्ध किया जाना चाहिए । यदि सीसा मिलाने से वह फटने लगें तो उसके साथ पके हुए पत्ते मिला लिए जाँय और तब उसको लकड़ी के तख्ते पर रखकर खूब कूटा जाना चाहिए । अथवा कन्दलीलता, श्रीवेर और कमलजड़ का क्वाथ बनाकर तब तक उस सुवर्ण को उसमें भिगोया जाय, जब तक कि उसका फटना दूर नहीं होता है ।

( २ ) चाँदी चार प्रकार की होती है : १. तुत्थोद्गत ( तुत्थ नामक पर्वत से उत्पन्न, चमेली पुष्प के समान ), २. गौडिक ( असम में उत्पन्न, तगरपुष्प की आकृति की ), ३ कांबुक ( कांबु पर्वत से उत्पन्न ) और ४. चाक्रवालिक ( चक्रवाल खान से उत्पन्न, कन्दपुष्प के समान ) । श्वेत, स्निग्ध और मुलायम चाँदी सर्वोत्तम समझी जाती है । इनके विपरीत काली, रूक्ष, खरखरी और फटी हुई चाँदी खराब होती है । खराब चाँदी में चौथाई सीसा डालकर उसको शुद्ध करना चाहिए ।

( ३ ) जिसमें बुदबुदे उठे हों, जो स्वच्छ, चमकदार और दही के समान श्वेत हो, वह शुद्ध चाँदी होती है ।

( ४ ) हल्दी के समान स्वच्छ, शुद्ध सुवर्ण का सोलह माष का वर्णक शुद्ध वर्णक कहलाता है । उसमें चतुर्थांश ताँबा मिला दिया जाय और उतना ही हिस्सा सुवर्ण कम कर दिया जाय; इसी तरह सोने का हिस्सा कम करके और तांबे का हिस्सा मिलाकर सोलह वर्णक बन जाते हैं । ये सोलहों मिश्र वर्णक कहलाते हैं और उनमें शुद्ध वर्णक को जोड़ दिया जाय तो सत्रह वर्णक हो जाते हैं ।

( ५ ) वर्णक की परीक्षा करने से पूर्व सुवर्ण की परीक्षा कर लेनी चाहिए; सोने को पहिले कसौटी पर घिसना चाहिये और तत्पश्चात् वर्णक को घिसने के बाद

**चूर्णितमुपधिं विद्यात् । जातिहिङ्गुलकेन पुष्पकासीसेन वा गौमूत्रभावितेन दिग्धेनाग्रहस्तेन संस्पृष्टं सुवर्णं श्वेतीभवति ।**

**(१) सकेसरः स्निग्धो मृदुर्भ्राजिष्णुश्च निकषरागः श्रेष्ठः ।**

**(२) कालिङ्गकस्तापीपाषाणो वा मुद्गवर्णो निकषः श्रेष्ठः । समरागी विक्रयक्रयहितः । हस्तिच्छविकः सहरितः प्रतिरागी विक्रयहितः । स्थिरः परुषो विषमवर्णश्चाप्रतिरागी क्रयहितः ।**

**(३) छेदश्चिक्कणः समवर्णः श्लक्ष्णो मृदुर्भ्राजिष्णुश्च श्रेष्ठः ।**

**(४) तापे बहिरन्तश्च समः किञ्जल्कवर्णः कुरण्डकपुष्पवर्णो वा श्रेष्ठः । श्यावो नीलश्चाप्राप्तकः ।**

---

उनमें समान वर्ण तथा समान रेखाएँ दिखाई दें; घिसने से ऊँचा-नीचा न हो तो वर्णक को ठीक समझना चाहिए । १. यदि विक्रेता वर्णक को उत्कृष्ट बताने के उद्देश्य से कसौटी को उस पर जोर से रगड़ दें, या २. विक्रेता उसकी हीनता बताने के लिए कसौटी को धीरे से रगड़े, अथवा ३. नाखून में गेरु आदि कोई लाल-पीली वस्तु छिपाकर सोने के साथ कसौटी पर रेखा बना दे, तो इस प्रकार से यह तीनों प्रकार का कपटपूर्ण व्यवहार कहा जाता है । कपटी सर्राफ सोने को घटिया सिद्ध करने के लिए गो-मूत्र में भावना दिये गये एक विशेष प्रकार के सिंगरफ के साथ कुछ पीले रङ्ग के हरताल के साथ लिपटे हुए लेप को हाथ के अग्रभाग के स्पर्श से सोने का रङ्ग फीका कर देते हैं ।

( १ ) केसर के समान रङ्ग वाली, स्निग्ध, मृदु और चमकदार रेखा जिस कसौटी पर खिचे, उसे सर्वोत्तम समझना चाहिए ।

( २ ) कलिङ्ग देश के महेन्द्र पर्वत से अथवा तापी नदी से उत्पन्न, मूँग के समान आकृति वाली कसौटी सर्वोत्तम समझनी चाहिए । सोने के रङ्ग को ठीक तरह से ग्रहण करने वाली कसौटी क्रेता-विक्रेता, दोनों के लिए उचित है । हस्तिचर्म के समान खरखरी, हरे रङ्ग की और विपरीत रङ्ग को बताने वाली कसौटी सोना बेचने वालों के हक में अच्छी है । इसी प्रकार ठोस, कठोर, खरखरी, तरह-तरह के रङ्गों वाली और असली रङ्ग को न बताने वाली कसौटी सोना खरीदने वालों के लिए अच्छी नहीं है ।

( ३ ) चिकना, बाहर-भीतर एक रङ्ग वाला, स्निग्ध, मृदु और चमकदार, सोने का टुकड़ा श्रेष्ठ समझा जाता है ।

( ४ ) यदि सोने का टुकड़ा, तपाये जाने पर, बाहर भीतर एक ही रङ्ग दे या वह कमलरज के समान दिखाई दे या वह कुण्रड के फूल की भाँति हो जाय तो उसे

**(१) तुलाप्रतिमानं पौतवाध्यक्षे वक्ष्यामः। तेनोपदेशेन रूप्यसुवर्णं दद्यादाददीत च।**

**(२) अक्षशालामनायुक्तो नोपगच्छेत्। अभिगच्छन्नुच्छेद्यः आयुक्तो वा सरूप्यसुवर्णस्तेनैव जीयेत। विचितवस्त्रहस्तगुह्याः काञ्चनपृषतत्वष्टृतपनीयकारवो ध्मायकचरकपांसुधावकाः प्रविशेयुर्निष्कसेयुश्च। सर्वं चैषामुपकरणमनिष्ठिताश्च प्रयोगास्तत्रैवावतिष्ठेरन्। गृहीतं सुवर्णं धृतं च प्रयोगं करणमध्ये दध्यात्। सायं प्रातश्च लक्षितं कर्तृकारयितृमुद्राभ्यां निदध्यात्।**

**(३) क्षेपणो गुणः क्षुद्रकर्मिति कर्माणि। क्षेपणः काचार्पणादीनि। गुणः सूत्रवानादीनि। घनं सुषिरं पृषतादियुक्तं क्षुद्रकर्मिति।**

---

भी श्रेष्ठ समझना चाहिए। यदि तपाने से उसमें फर्क पड़ जाय, उस पर नीलिमा छा जाये तो समझना चाहिए कि वह खोटा है।

( १ ) सोना-चाँदी तौलने का विधान आगे चलकर 'पौतवाध्यक्ष' प्रकरण में कहा जायगा। उस प्रकरण में निर्दिष्ट तौल के अनुसार ही सोना-चाँदी देने और लेने चाहिएँ।

( २ ) अक्षशाला में वे ही व्यक्ति प्रवेश करें, जो वहाँ कार्य करने के लिए नियुक्त किए गए है। निषेध करने पर भी यदि कोई प्रवेश करते हुए पकड़ा जाय तो उसका सर्वस्व अपहरण कर लेना चाहिए। अक्षशाला में कार्य करने वाला कोई भी व्यक्ति यदि अपने साथ सोना चाँदी ले जाता हुआ पकड़ा जाय तो उसे भी यथायोग्य दण्ड देना चाहिए। रसप्रयोग से सोना बनाने वाले, छोटी-छोटी गोली बनाने वाले, बड़े-बड़े पात्र बनाने वाले, तरह-तरह के आभूषण बनाने वाले, झाड़ू देने वाले तथा अन्य परिचारक, अपनी-अपनी वर्दी पहिने तलाशी देकर अक्षशाला में प्रवेश करें और बाहर निकलें। इन कारीगरों के औजार एवं आधे बनाये हुए आभूषण आदि अक्षशाला में ही रहें, बाहर कदापि न जाने पावें। भांडागार से तौल कर लिया गया सोना तथा उससे बने हुए आभूषण आदि, कार्य करने के अनन्तर, भाँडागार के लेखक को भली भाँति तौल कर सौंप देना चाहिए और विधिवत् उसको रजिस्टर में दर्ज करवा देना चाहिए। सायं और प्रातः प्रतिदिन, काम खत्म होने और शुरू होने पर सौवर्णिक तथा सुवर्णाध्यक्ष से मुहर लगाकर भण्डार का लेखक उस सुवर्ण को भण्डार में बन्द करके रख दे।

( ३ ) आभूषण सम्बन्धी कार्य तीन प्रकार के होते हैं : १. क्षेपण, २. गुण और ३. क्षुद्रक। आभूषणों पर मणियों के जोड़ने को **क्षेपण** कहते हैं। सोने के बारीक सूतों को जोड़ने के लिए **गुण** कहा जाता है। ठोस तथा पोले, छोटी-छोटी बूंदों या गोलियों से बने **आभूषण** सम्बन्धी कार्य को **क्षुद्रक** कहते हैं।

**(१) अर्पयेत् काचकर्मणः पञ्चभागं काञ्चनं दशभागं कटुमानम्। ताम्रपादयुक्तं रूप्यं रूप्यपादयुक्तं वा सुवर्णं संस्कृतकं तस्माद्रक्षेत्।**

**(२) पृषतकाचकर्मणस्त्रयो हि भागाः परिभाण्डं द्वौ वास्तुकम्। चत्वारो वा वास्तुकं त्रयः परिभाण्डम्।**

**(३) त्वष्टृकर्मणः। शुल्बभाण्डं समसुवर्णेन संयूहयेत्। रूप्यभाण्डं घनं घनसुषिरं वा सुवर्णार्धेन अवलेपयेत्। चतुर्भागसुवर्णं वा बालुकाहिङ्गुलकस्य रसेन चूर्णेन वा वासयेत्।**

**(४) तपनीयं ज्येष्ठं सुवर्णं सुरागं, समसीसातिक्रान्तं पाकपत्रपक्वं सैन्धविकयोज्ज्वालितं नीलपीतश्वेतहरितशुकपोतवर्णानां प्रकृतिर्भवति।**

---

( १ ) मणियों की जुड़ाई सम्बन्धी कार्य को काचकर्म कहते हैं। मणि के पाँचवें हिस्से को सोने से पिरो दे; मणि इधर-उधर न होने पावे, उसके लिए चारों ओर से सोने की पट्टी लगी रहती है उसको **कटुमान** कहा जाता है। मणि का जितना हिस्सा सोने में पिरो दिया जाय उसका आधा हिस्सा ( दसवाँ भाग ) कटुवान का होना चाहिए; स्वर्णकार शुद्ध किए हुए सोने में मिलावट कर सकते हैं; चाँदी की जगह ताँबा और सोने की जगह चाँदी भर कर वे उतने अंश को हड़प कर सकते हैं; यह मिलावटी सोना-चाँदी शुद्ध ही जैसा प्रतीत होता है; इसलिए इस सम्बन्ध में अध्यक्ष को पूरी निगरानी रखनी चाहिए।

( २ ) मिश्रित काचकर्म के सम्बन्ध में ध्यान रखना चाहिए कि पहिले गुटिका आदि से मिश्रित काचकर्म के लिए जितना सुवर्ण निर्धारित हो उसके पाँच भाग किए जाँय; उनमें तीन भाग पद्म, स्वस्तिक आदि बनाने के लिए और दो भाग उसका आधारपीठ बनाने के लिए होता है; यदि मणि बड़ी हो तो सुवर्ण के सात हिस्से करने चाहिए। जिनमें चार हिस्से आधार के लिए और शेष तीन हिस्से स्वस्तिक आदि के लिए काम में लाये जाँय।

( ३ ) ताँबे तथा चाँदी के घनपात्र की विधि इस प्रकार है : जितना ताँबे का पात्र हो उतना ही सोने का पत्र उसके ऊपर चढ़वा देना चाहिए; चाँदी का पात्र चाहे ठोस हो या पोला हो, उस पर उसके भार से आधे, सोने का पानी चढ़वा दे; अथवा चौथा हिस्सा सोना लेकर उसे बालू और शिंगरफ के चूर्ण एवं रस के साथ मिलाकर भूसी अग्नि में पिघलाकर पानी की तरह चढ़वा दे।

( ४ ) आभूषण आदि के लिए प्रस्तुत, कमलरज के समान स्वच्छ, स्निग्ध और चमकदार सोना उत्तम किस्म का है। वह शुद्ध सोना नील, पीत, श्वेत, हरित और शुकपोत ( तोते का बच्चा ) आदि रङ्ग के आभूषणों के योग्य होता है। अशुद्ध सुवर्ण में उसके परिमाण का सीसा डालकर उसे शुद्ध किया जाय; अथवा उसके पतले-पतले पत्र बनाकर फिर अरणे के कण्डों की तपन से उसको शुद्ध किया जाय;

**तीक्ष्णं चास्य मयूरग्रीवाभं श्वेतभङ्गं चिमिचिमायितं पीतचूर्णितं काकणिकः सुवर्णरागः ।**

**(१) तारमुपशुद्धं वा । अस्थितुत्थे चतुः, समसीसे चतुः, शुष्कतुत्थे चतुः, कपाले त्रिर्गोमये द्विः, एवं सप्तदशतुत्थातिक्रान्तं सैन्धविकयोज्ज्वालितम् । एतस्मात्काकण्युत्तरापसारिता । आ द्विमाषादिति सुवर्णे देयं, पश्चाद्रागयोगः । श्वेततारं भवति ।**

**(२) त्रयोंऽशाः तपनीयस्य द्वात्रिंशद्भागश्वेततारमूर्च्छितं तत् श्वेतलोहितकं भवति । ताम्रं पीतकं करोति ।**

**(३) तपनीयमुज्ज्वाल्य रागत्रिभागं दद्यात् । पीतरागं भवति ।**

**(४) श्वेततारभागौ द्वावेकस्तपनीयस्य मुद्गवर्णं करोति ।**

---

या सिंधदेश की मिट्टी के साथ घिसकर उसे शुद्ध किया जाय । इस सुवर्ण के साथ इस्पाती लोहा भी नील, पीत आदि आभूषणों के योग्य होता है । इस्पाती लोहा मोर की गर्दन के समान आकृति का और काटने पर श्वेत, चमकता हुआ होना चाहिये । यदि गरम करके उसका चूर्ण बनाया जाय और उसको एक काकिणी सोने में मिला दिया जाय तो सोने का रङ्ग खिल उठता है ।

( १ ) लोहे के स्थान पर शुद्ध चाँदी भी मिलाई जा सकती है । हड्डी के चूर्ण के साथ मिली हुई मिट्टी से बनी हुई घरिया में चार बार, मिट्टी और सीसे से बनी घरिया में चार बार, शुद्ध मिट्टी से बनी घरिया में तीन बार और गोबर में तीन बार—इस प्रकार सत्रह बार घरिया में बदलने के बाद सिंधदेश की खारी मिट्टी में रगड़ देने से श्वेतवर्ण की शुद्ध रूप्यधातु तैयार हो जाती है । उसमें से एक काकिणी चाँदी सोने में मिलाई जा सकती है । इस प्रकार दो माष तक चाँदी मिलाकर उतना सोना निकाला जा सकता है । इस प्रकार सोने में चाँदी मिला देने से और तदनन्तर उसको चमका देने वाली चीजों के सहयोग से सुवर्ण भी चाँदी की तरह चमकने लगता है ।

( २ ) बत्तीस भागों में विभक्त साधारण सोने में तीन भाग निकालकर उनकी जगह तीन भाग शुद्ध सोना और शेष चाँदी को एक साथ मिलाकर घरिया में उलटने-पुलटने से उसका रङ्ग श्वेत-लाल मिश्रित रङ्ग का हो जाता है । यदि पूर्वोक्त रीति से चाँदी के साथ या ताँबे को सोने में मिला दिया जाय तो वह उसके रङ्ग को पीला बना देता है ।

( ३ ) साधारण सोने को खारी मिट्टी से चमका कर उसमें शुद्ध सोने का तीसरा भाग मिला दिया जाय तो उसका रंग लाल-पीला हो जाता है ।

( ४ ) दो भाग शुद्ध चाँदी में एक भाग सोने को मिला कर भावना देने से उसका रङ्ग मूंग के समान हो जाता है ।

(१) कालायसस्यार्धभागाभ्यक्तं कृष्णं भवति। प्रतिलेपिना रसेन द्विगुणाभ्यक्तं तपनीयं शुकपत्रवर्णं भवति। तस्यारम्भे रागविशेषेषु प्रतिवर्णिकां गृह्णीयात्।

(२) तीक्ष्णताम्रसंस्कारं च बुध्येत। तस्माद्वज्रमणिमुक्ताप्रवालरूपाणामपनेयिमानं च रूप्यसुवर्णभाण्डबन्धप्रमाणानि चेति।

(३) समरागं समद्वन्द्वमसक्तं पृषतं स्थिरम्।
सुप्रमृष्टमसंपीतं विभक्तं धारणे सुखम्॥
अभिनीतं प्रभायुक्तं संस्थानमधुरं समम्।
मनोनेत्राभिरामं च तपनीयगुणाः स्मृताः॥

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीयेऽधिकरणे अक्षशालायां सुवर्णाध्यक्षं नाम
त्रयोदशोऽध्यायः, आदितस्त्रयस्त्रिंशः।

—: ० :—

---

( १ ) सोने का छठा हिस्सा लोहा मिला देने से उसका रंग काला हो जाता है। पिघले हुए लोहे तथा शुद्ध चाँदी से मिला हुआ दुगुना सोना सुवापंखी रंग का हो जाता है। इसी प्रकार पूर्वोक्त नील, आदि रङ्गों के भेद को जानने के लिए प्रत्येक वर्णक को ग्रहण करना चाहिए।

( २ ) सोने का रङ्ग बदलने के लिए उपयोग में आने वाले लोहे, ताँबे को शुद्ध करना आवश्यक है; इसलिए उनके शुद्ध करने की विधि भली भाँति जान लेनी चाहिए। जिससे वज्रमणि, मुक्ता, प्रवाल आदि उत्तम रत्नों में मिलावट न हो सके और सोने-चाँदी आदि के आभूषण में कोई न्यूनाधिक्य मेल करके गड़बड़ी न कर सके, इसके लिए उत्तम रत्नों और सोना-चाँदी आदि के आभूषणों के संबंध में अच्छी तरह जानकारी प्राप्त कर लेनी चाहिए।

( ३ ) १. एक सा रङ्ग होना, २. वजन तथा रूप में समान होना, ३. बीच में गाँठ आदि का न होना, ४. टिकाऊ होना, ५. अच्छी तरह चमकाया हुआ होना, ६. ठीक तरह बना हुआ होना, ७. अलग-अलग हिस्सों वाला, ८. पहनने में सुखकर, साफ-सुथरा, १० कांतिमान, ११. अच्छा दिखाई देने वाला, १२. एक जैसी बनावट का, १३. अयुक्त छिद्रों से रहित और १४. मन तथा आँखों को अच्छा लगने वाला, ये चौदह गुण सोने के आभूषणों में होते हैं।

अध्यक्षप्रचार नामक द्वितीय अधिकरण में अक्षशाला में सुवर्णाध्यक्ष नामक
तेरहवाँ अध्याय समाप्त।

—: ० :—

| प्रकरण ३० | |
|---|---|
| अध्याय १४ | |

# विशिखायां सौवर्णिक प्रचारः

**(१) सौवर्णिकः पौरजानपदानां रूप्यसुवर्णमावेशनिभिः कारयेत्। निर्दिष्टकालकार्यं च कर्म कुर्युः, अनिर्दिष्टकालं कार्यापदेशम्।**

**(२) कालातिपातने पादहीनं वेतनं तद्द्विगुणश्च दण्डः। कार्यस्यान्यथाकरणे वेतननाशः, तद्द्विगुणश्च दण्डः।**

**(३) यथावर्णप्रमाणं निक्षेपं गृह्णीयुस्तथाविधमेवार्पयेयुः, कालान्तरादपि च तथाविधमेव प्रतिगृह्णीयुरन्यत्र क्षीणपरिशीर्णाभ्याम्।**

**(४) आवेशनिभिः सुवर्णपुद्गललक्षणप्रयोगेषु तत्तज्जानीयात्।**

---

## राजकीय स्वर्णकारों के कर्तव्य

( १ ) सौवर्णिक ( राज्य का प्रधान आभूषण व्यापारी ) को चाहिए कि वह नगरवासियों और जनपदवासियों के सोने-चाँदी के आभूषणों का कार्य शिल्पशाला में बैठकर काम करने वाले सुनारों द्वारा कराये। सुनारों को चाहिए कि वे समय और वेतन को नियत करके ही कार्य करें; यदि कार्य की अधिकता हो या वायदे की अवधि बीत रही हो, तो उन्हें नियत समय से भी अधिक कार्य करना चाहिए।

( २ ) यदि कोई सुनार वायदे के अनुसार कार्य पूरा न करे तो उसके वेतन का चौथाई भाग जब्त करके उसे वेतन का दुगुना दण्ड दिया जाय। यदि कोई सुनार अभीष्ट जेवर को न बनाकर दूसरा ही जेवर बनाकर दे, तो उसकी मजदूरी जब्त कर उसे नियत वेतन का दुगुना दण्ड दिया जाय।

( ३ ) सुनारों को चाहिए कि वे जिस प्रकार और जितने वजन का सोना आदि आभूषण बनाने के लिए लें, उसी प्रकार और उतने ही वजन का आभूषण बना कर वापिस करें। सुनार के परदेश चले जाने अथवा उसकी मृत्यु हो जाने के कारण यदि सुनार के घर सोना बहुत दिनों तक पड़ा रह जाय तो उसके उत्तराधिकारियों से वह सोना वापिस ले लेना चाहिए। यदि सोना नष्ट हो गया हो या छीज गया हो तो सुनार से उसका मुआवजा भी लेना चाहिए।

( ४ ) सौवर्णिक को चाहिए कि वह सुनारों के द्वारा किए जाने वाले पुद्गल तथा लक्षण आदि कपट प्रयोगों के संबंध में भी अच्छी जानकारी रखे।

**(१) तप्तकलधौतकयोः काकणिकः सुवर्णे क्षयो देयः। तीक्ष्णकाकणी रूप्यद्विगुणो रागप्रक्षेपस्तस्य षड्भागः क्षयः।**

**(२) वर्णहीने माषावरे पूर्वः साहसदण्डः, प्रमाणहीने मध्यमः, तुलाप्रतिमानोपधावुत्तमः, कृतभाण्डोपधौ च।**

**(३) सौर्वणिकेनादृष्टमन्यत्र वा प्रयोगं कारयतो द्वादशपणो दण्डः, कर्तुर्द्विगुणः सापसारश्चेत्। अनपसारः कण्टकशोधनाय नीयेत। कर्तुश्च द्विशतो दण्ड पणच्छेदनं वा।**

**(४) तुलाप्रतिमानमाण्डं पौतवहस्तात्क्रीणीयुः। अन्यथा द्वादश-पणो दण्डः।**

**(५) घनं घनसुषिरं संयूह्यमवलेप्यं सङ्घात्यं वासितकं च कारुकर्म।**

---

( १ ) यदि खोटे सोने-चाँदी के आभूषण बनाने के लिए दिए जाँय तो सुनार को एक काकणी ( ¼ माष ) छीजन देनी चाहिए। सोने का रङ्ग बदलने के लिए एक काकणी लोहा और दो काकणी चाँदी उसमें मिलानी चाहिए। एक काकणी लोहा और दो काकणी चाँदी का छटा भाग छीजन के लिए निकाल लेना चाहिए।

( २ ) यदि अपनी अज्ञानता के कारण सुनार एक माष सुवर्ण को कांतिहीन कर दे तो उसे प्रथम साहस दण्ड दिया जाना चाहिए; तौल में कम करे तो मध्यम साहस दण्ड; और तराजू-बाट में कपट करे तो उत्तम साहस दण्ड दिया जाना चाहिए; इसी प्रकार सोने-चाँदी के बने हुए पात्र में यदि कोई व्यक्ति हेर-फेर करे तो उसे भी उत्तम साहस दण्ड दिया जाना चाहिए।

( ३ ) सौर्वणिक की अनुमति प्राप्त कर या न प्राप्त कर यदि कोई व्यक्ति शिल्प-शाला ( विशिखा ) से बाहर किसी सुनार से आभूषण बनवाये तो उसे बारह पण दण्ड देना चाहिए, और जेवर बनाने वाले सुनार को चौबीस पण। उनके लिए यह दण्ड-व्यवस्था उसी दशा में है यदि उन पर चोरी की आशंका न हो तो और यदि उन पर चोरी किए जाने की आशंका हो तो उन्हें कण्टकशोधक ( प्रदेष्टा ) के पास न्याय के लिए ले जाना चाहिए। यदि अपराध सिद्ध हो जाय तो सुनार पर दो-सौ पण दण्ड निर्धारित किया जाय और इतना धन देने से यदि वह इन्कार करे तो उसकी उंगलियाँ कटवा देनी चाहिए।

( ४ ) सुनारों को चाहिए कि वे सोना-चाँदी तौलने के बाट-तराजू कहीं से न खरीद कर पौतवाध्यक्ष के यहाँ से ही खरीदें। यदि वे ऐसा नहीं करते तो उन पर बारह पण का दण्ड कर देना चाहिए।

( ५ ) सुनारों के १. घन ( ठोस गहना ), २. घनसुषिर ( ऊपर से ठोस तथा भीतर से पोले कड़ा आदि गहने ), ३. संयूह्य (ऊपर से मोटा पत्ता चढ़ाये आभूषण),

**(१) तुलाविषममपसारणं विस्रावणं पेटकः पिङ्कश्चेति हरणोपायाः ।**

**(२) सन्नामिन्युत्कीर्णिका भिन्नमस्तकोपकण्ठी कुशिक्या सकटुकक्ष्या वारिवेल्ल्ययस्कान्ता वा दुष्टतुलाः ।**

**(३) रूप्यस्य द्वौ भागावेकः शुल्बस्य त्रिपुटकम् । तेनाकरोद्गतमपसार्यते तत्त्रिपुटकापसारितं, शुल्बेन शुल्बापसारितं, वेल्लकेन वेल्लकापसारितं, शुल्बार्धसारेण हेम्ना हेमापसारितम् ।**

**(४) मूकमूषा पूतिकिट्टः करटकमुखं नाली सन्दंशो जोङ्गनी सुवर्चि-**

---

४. अवलेप्य ( ऊपर से पतला पत्ता चढ़ाये आभूषण ) ५. संघात्य ( जुड़े आभूषण तगड़ी, जंजीर आदि ) और ६. वासितक ( रस आदि से वासित आभूषण ), ये छह प्रकार के कार्य होते हैं ।

( १ ) १. तुलाविषम, २. अपसारण, ३. विस्रावण, ४. पेटक और ५. पिङ्ग, ये पाँच तरीके सुनारों के चोरी करने के हैं ।

( २ ) काँटे या तराजू का बढ़ा-घटा होना, जिससे ठीक तरह न तौला जा सके, **तुलाविषम** कहलाता है । ऐसे काँटे आठ प्रकार के होते हैं : १. सन्नामिनी ( हलके लोहे से बने, जिसको उङ्गली लगाने में सहज ही इधर-उधर झुकाया जा सकता है ), २. उत्कीर्णिका ( जिसके भीतर छेदों में लोहे का चूर्ण भरा हो ), ३. भिन्नमस्तका ( जिसके आगे के हिस्से में छेद हो, जिससे हवा का रुख पाते ही वह झुक जाय ), ४. उपकंठी ( जिसमें बहुत-सी गांठें पड़ी हों ), ५. कुशिक्या ( जिसका पलड़ा दूषित हो ), ६. सकटुकक्ष्या ( जिसकी डोरी अच्छी न हो ), ७, पारिवेल्य ( जो हिलती रहे ) और ८. आयस्कांता ( जिसकी डण्डी में आयस्कांत मणि लगी हो ) ।

( ३ ) नकली द्रव्य को मिलाकर असली द्रव्य को चुरा लेना **अपसारण** कहलाता है । वह चार प्रकार का होता है : १. दो हिस्सा चाँदी और एक हिस्सा ताँबा मिला कर जो घोल तैयार किया जाय उसको **त्रिपुटक** कहते हैं । शुद्ध सोने में यह त्रिपुटक मिला कर उतना सोना निकाल दिया जाय और किसी के खोटा बताने पर कहा जाय कि वह तो खान से ही ऐसा निकला है, इस चोरी नाम **त्रिपुटकापसारित** है । २. जिस सोने में ताँबा मिला कर चोरी की जाय उसको **शुल्बापसारित** कहते हैं । ३. लोहा-चाँदी के मिश्रित घोल को **वेल्लक** कहते हैं; उस वेल्लक को मिलाकर सोने की जो चोरी की जाती है उसको **वेल्लकापसारित** कहते हैं । ४. ताँबे के साथ आधा सोना मिलाकर उसके बदले में जो चोरी की जाती है उसे **हेमापसारित** कहते हैं ।

( ४ ) अपसारण के ढङ्ग इस प्रकार हैं : मूकमूषा ( बन्द घरिया ), पूतिकिट्ट ( लोहे का मैल ), करटकमुख ( सोना कतरने की कैंची ), नाली ( नाल ), संदंश

**कालवणम्। तदेव सुवर्णमित्यपसारणमार्गाः। पूर्वप्रणिहिता वा पिण्डवालुका मूषाभेदादग्निष्ठा उद्ध्रियन्ते।**

**(१) पश्चाद्बन्धने आचितकपत्रपरीक्षायां वा रूप्यरूपेण परिवर्तनं विस्रावणम्, पिण्डबालुकानां लोहपिण्डबालुकाभिर्वा।**

**(२) गाढश्चाभ्युद्धार्यश्च पेटकः संयूह्यावलेप्यसङ्घात्येषु क्रियते। सीसरूपं सुवर्णपत्त्रेणावलिप्तमभ्यन्तरमष्टकेन बद्धं गाढपेटकः। स एव पटलसम्पुटेष्वभ्युद्धार्यः। पत्रमाश्लिष्टं यमकपत्त्रं वावलेप्येषु क्रियते। शुल्बं तारं वा गर्भः पत्त्राणाम्। संघात्येषु क्रियते शुल्बरूपं सुवर्णपत्त्रसंहतं प्रमृष्टं सुपार्श्वम्। तदेव यमकपत्त्रसंहतं प्रमृष्टम्। ताम्रताररूपं चोत्तरवर्णकः।**

---

( सन्सी ), जोंगनी ( लोहे की छड़ ) सुवर्चिका ( शोरा ) और नमक। उनसे जब कहा जाय कि उन्होंने सोना खोटा कर दिया है, तो झट ये कह देते हैं कि यह आप का दिया हुआ सोना है, यह खान से ही ऐसा निकला है। ये अपसारण के तरीके हैं। या पहिले ही से आग में बारीक बालुका-सी डाल दी जाती है और फिर मूषा को अग्नि में रख कर मूषा को टूट जाने का बहाना करता है और तब मालिक के सामने उस बालुका को सोने में मिला दिया जाता है और उतना ही सोना वह होशियारी से मार लेता है।

( १ ) किसी बनी हुई वस्तु को पीछे से जोड़ते समय या पात्रों की परीक्षा करते समय खरे सोने की जगह खोटा सोना जोड़ देना **विस्रावण** कहलाता है। सोने की खान में उत्पन्न बालुका को लोहे की खान में उत्पन्न बालुका से बदल देना भी **विस्रावण** कहलाता है।

( २ ) पेटक दो प्रकार का होता है : १. गाठ और १. अभ्युद्धार्य; इसका प्रयोग संयूह्य, अवलेप्य तथा संधात्य कर्मों में किया जाता है। सीसे के पत्ते को सोने के पत्ते से मढ़ कर बीच में लाख से जोड़ देना ही **गाठपेटक** कहलाता है। वही बन्धन यदि सरलता से खुलने योग्य हो तो उसे **अभ्युद्धार्यपेटक** कहते हैं। अवलेप्य क्रियाओं में एक ओर या दोनों ओर सोने का पतला सा पत्रा जोड़ कर सोने को चुराया जा सकता है। अथवा बाहर पत्ता लगाने की बजाय सुवर्ण पत्रों के बीच में ताँबे या चांदी का पत्ता लगा कर भी सोना चुराया जाता है। संघात्य क्रियाओं में ताँबे की वस्तु को एक ओर से सोने के पत्ते से मढ़कर उस हिस्से को खूब चमकदार एवं सुन्दर बना दिया जाता है। उसी तांबे की वस्तु को दोनों ओर से इसी प्रकार चमकदार एवं सुन्दर सोने के पत्तों से मढ़कर उतना ही असली सोना हड़प लिया जाता है।

**(१) तदुभयं तापनिकषाभ्यां निश्शब्दोल्लेखनाभ्यां वा विद्यात्। अभ्युद्धार्यं बदराम्ले लवणोदके वा सादयन्ति इति पेटकः।**

**(२) घनसुषिरे वा रूपे सुवर्णमृन्मालुकाहिङ्गुलुककल्को वा तप्तोऽवतिष्ठते। दृढवास्तुके वा रूपे वालुकामिश्रजतुगान्धारपङ्को वा तप्तोऽवतिष्ठते। तयोस्तपनमवध्वंसनं वा शुद्धिः। सपरिभाण्डे वा रूपे लवणमुल्कया कटुशर्करया तप्तमवतिष्ठते। तस्य क्वाथनं शुद्धिः। अभ्रपटलमष्टकेन द्विगुणवास्तुके वा रूपे बध्यते। तस्यापिहितकाचकस्योदके निमज्जत एकदेशः सीदति। पटलान्तरेषु वा सूच्या भिद्यते। मणयो रूप्यं सुवर्णं वा घनसुषिराणां पिङ्कः। तस्य तापनमवध्वंसनं वा शुद्धिः। इति पिङ्कः।**

**(३) तस्माद्वज्रमणिमुक्ताप्रवालरूपाणां जातिरूपवर्णप्रमाणपुद्गललक्षणान्युपलभेत।**

---

( १ ) इन दोनों प्रकार के पेटकों की शुद्धता जाँचने के लिये उन्हें अग्नि में तपाये, कसौटी पर घिसवाये या हल्की चोट देकर या रेखा खींचकर या किसी तीक्ष्ण वस्तु से निशान देकर उनकी परीक्षा करे। अभ्युद्धार्य पेटक बेरी के कसैले रस में अथवा नमक के पानी में डालकर जाना जाय। ऐसा करने से उसका रङ्ग कुछ लाल-सा हो जाता है।

( २ ) ठोस या पोले गहनों में सुवर्णभृत्, सुवर्णमालुका ( दोनों विशेष धातुएँ ) और शिंगरफ का चूर्ण अग्नि में तपाकर लगा दिया जाता है और उतना ही शुद्ध सोना निकाल दिया जाता है। जिस आभूषण का आधार मजबूत हो उसमें साधारण धातुओं की बालुका की लाख और सिन्दूर का घोल आग में तपाकर लगा दिया जाता है और उसके बराबर का सोना निकाल दिया जाता है। इस प्रकार के ठोस तथा पोले गहनों को आग में तपाकर उन पर चोट देने से उनकी परीक्षा करनी चाहिए। बुंदेदार मणिबन्ध जैसे गहनों को, नमक की छोटी डलियों के साथ, लपट देने वाली आग में तपाने से उनकी शुद्धि हो जाती है। बेरी के अम्ल रस में उबालकर भी उनकी शुद्धता को जांचा जा सकता है। अभ्रक को उसके दुगुने सुवर्ण में लाख आदि से जोड़कर भी असली सोना रख लिया जाता है। उसकी परीक्षा के लिए अभ्रक लगे गहनों को बेरी के अम्ल जल में छोड़ देना चाहिये; अभ्रक लगा हिस्सा पानी में तैरता रहेगा। यदि अभ्रक की जगह ताँबा मिलाया गया हो तो सुई से छेदकर उसकी परीक्षा कर लेनी चाहिए। ठोस या पोले गहनों में काँचमणि, चाँदी और खोटा सोना मिलाकर पिंग नामक उपाय द्वारा शुद्ध सोना चुराया जा सकता है। उसको आग में तपाना तथा उसपर हथौड़े की चोट करना ही उसकी शुद्धता का उपाय है।

( ३ ) इसलिये सौवर्णिक को चाहिए कि वह, वज्र, मणि, मुक्ता और प्रवाल की

(१) विजिगीषोरमित्रं यन्मित्रमन्तर्धितां गतम् ।
उपकारे निविष्टं वाशक्तं वानुपकारि तत् ॥

(२) प्रियं परस्य वा रक्ष्यं पूज्यसम्बन्धमेव वा ।
अनुगृह्णाति यन्मित्रं शत्रुसाधारणं हि तत् ॥

(३) प्रकृष्टभौमं सन्तुष्टं बलवच्चालसं च यत् ।
उदासीनं भवत्येतद्व्यसनादवमानितम् ॥

(४) अरेर्नेतुश्च यद्वृद्धि दौर्बल्यादनुवर्तते ।
उभयस्याप्यविद्विष्टं विद्यादुभयभावि तत् ।

(५) कारणाकरणध्वस्तं कारणाकरणागतम् ।
यो मित्रं समपेक्षेत स मृत्युमुपगूहति ॥

**(६) क्षिप्रमल्पो लाभश्चिरान्महानिति वा । 'क्षिप्रमल्पो लाभः कार्यदेशकालसंवादकः श्रेयान्' इत्याचार्याः ।**

**(७) नेति कौटिल्यः । चिरादविनिपाती बीजसधर्मा महान् लाभः श्रेयान्, विपर्यये पूर्वः ।**

---

( १ ) जो विजिगीषु राजा अमित्र तथा शत्रु-विजिगीषु के बीच होने के कारण मित्र हो तथा इच्छा होने पर भी जो दोनों का उपकार न कर सके वह भी **उभयभावि** मित्र है ।

( २ ) जो विजिगीषु का मित्र हो तथा शत्रु का भी प्रिय एवं रक्ष्य ( रक्षा किए जाने योग्य ) हो और शत्रु के साथ जिसका कोई पूज्य सम्बन्ध हो, वह भी **उभयभावि** मित्र कहलाता है ।

( ३ ) दूसरे देश में रहने वाला, सन्तोषी, बलवान् और आलस्य एवं व्यसनों के कारण तिरस्कृत मित्र उपकार करने के समय उदासीन हो जाया करता है ।

( ४ ) जो मित्र दुर्बल होने के कारण शत्रु और विजिगीषु दोनों का अनुगामी होता है । किसी से भी द्वेष न करके दोनों की आज्ञा को मानता है वह भी **उभयभावि** मित्र कहलाता है ।

( ५ ) अकारण गत और अकारण आगत मित्र को जो आश्रय देता है । वह निश्चय ही अपनी मौत को स्वयं बुलाता है ।

( ६ ) 'शीघ्र होने वाला थोड़ा लाभ अच्छा है या देर में होने वाला बड़ा लाभ अच्छा है ?' इस पर पूर्वाचार्यों का कथन है कि शीघ्र हो जाने वाला थोड़ा लाभ श्रेयस्कर है, क्योंकि उससे देश, काल और कार्य के लाभ को जाना जा सकता है ।

( ७ ) किन्तु कौटिल्य इससे सहमत नहीं है । उसका कहना है कि देर में होने

**(१) एवं दृष्ट्वा ध्रुवे लाभे लाभांशे च गुणोदयम् ।**
**स्वार्थसिद्धिपरो यायात् संहितः सामवायिकैः ।।**

इति षाड्गुण्ये सप्तमेऽधिकरणे मित्रहिरण्यभूमिकर्मसन्धिर्नाम नवमोऽध्याय,
आदितः षट्छततमः ।

—: ० :—

---

वाला विघ्नरहित बीज आदि का महान लाभ ही उत्तम है। यदि महान लाभ में निधन होने की सम्भावना हो तो शीघ्र मिलनेवाला थोड़ा ही लाभ श्रेष्ठ है।

( १ ) विजिगीषु को चाहिए कि वह अपने निश्चित लाभ या लाभांश के परिणाम को ठीक तरह से जानकर दूसरे राजाओं के साथ सन्धि करके अपनी कार्य सिद्धि के लिए तत्पर रहे।

षाड्गुण्य नामक सप्तम अधिकरण में मित्रहिरण्यभूमिकर्मसन्धि नामक
नौवाँ अध्याय समाप्त ।

—: ० :—

प्रकरण ११६

अध्याय १०

# भूमिसन्धि

(१) 'त्वं चाहं च भूमिं लभावहे' इति भूमिसन्धिः।

(२) तयोर्यः प्रत्युपस्थितार्थः सम्पन्नां भूमिमवाप्नोति सोऽतिसन्धत्ते।

(३) तुल्ये सम्पन्नालाभे यो बलवन्तमाक्रम्य भूमिमवाप्नोति, सोऽतिसन्धत्ते। भूमिलाभं शत्रुकर्शनं प्रतापं च हि प्राप्नोति। दुर्बलाद्भूमिलाभे सत्यं सौकर्यं भवति। दुर्बल एव च भूमिलाभः, तत्सामन्तश्च मित्रममित्रभावं गच्छति।

(४) तुल्ये बलीयस्त्वे यः स्थिरं शत्रुमुत्पाट्य भूमिमवाप्नोति, सोऽतिसन्धत्ते। दुर्गावाप्तिर्हि स्वभूमिरक्षणममित्राटवीप्रतिषेधं च करोति।

## भूमिसन्धि
## ( सन्धि-विचार-२ )

( १ ) 'तुम और हम मिलकर भूमि को प्राप्त करें' इस प्रकार की गई भूमि-विषयक सन्धि को **भूमिसन्धि** कहते हैं।

( २ ) शत्रु और विजिगीषु, दोनों में जो भी धन और गुणी भृत्यों को शीघ्र उपस्थित कर सम्पन्न भूमि को प्राप्त करता है, वह विशेष लाभ में रहता है।

( ३ ) दोनों को समान रूप से सम्पन्न भूमि के प्राप्त हो जाने पर भी जो बलवान् शत्रु पर आक्रमण करके भूमि को प्राप्त करता है वही विशेष लाभ में रहता है; क्योंकि एक तो उसे भूमि का लाभ होता है और दूसरे अपने बलवान् शत्रु का नाश कर वह अपने प्रताप का भी विस्तार करता है। यद्यपि दुर्बल से भूमि प्राप्त करना निःसन्देह सुगम है, तथापि इस प्रकार का भूमि लाभ निकृष्ट कोटि का होता है: क्योंकि यह लाभ दुर्बल की हिंसा करके प्राप्त होता है और दूसरे में दुर्बल के पड़ोसी सामंत तथा विजिगीषु के मित्र भी उसके आचरण से क्षुब्ध होकर उसके शत्रु बन जाते हैं। इसलिए दुर्बल से भूमि लेना श्रेयस्कर नहीं है।

( ४ ) दो समान बलशाली शत्रुओं के होने पर, जो विजिगीषु स्थायी शत्रु का नाश कर भूमि प्राप्त करता है, वही विशेष लाभ में है; क्योंकि शत्रु के दुर्ग आदि अपने हाथों में आ जाने पर विजिगीषु की भूमि की रक्षा हो जाती है और आटविकों का प्रतीकार करना भी उसके लिए सरल हो जाता है।

**(१) चलामित्राद्भूमिलाभे शक्यसामन्ततो विशेषः। दुर्बलसामन्ता हि क्षिप्राप्यायनयोगक्षेमा भवति। विपरीता बलवत्सामन्ता कोशदण्डावच्छेदनी च भूमिर्भवति।**

**(२) सम्पन्ना नित्यामित्रा मन्दगुणा वा भूमिरनित्यामित्रेति। 'सम्पन्ना नित्यामित्रा श्रेयसी भूमिः। सम्पन्ना हि कोशदण्डौ सम्पादयति। तौ चामित्रप्रतिघातकौ' इत्याचार्याः।**

**(३) नेति कौटिल्यः—नित्यामित्रालाभे भूयाञ्छत्रुलाभो भवति। नित्यश्च शत्रुरुपकृते चापकृते च शत्रुरेव भवति। अनित्यस्तु शत्रुरुपकारादनपकाराद्वा शाम्यति।**

**(४) यस्या हि भूमेर्बहुदुर्गाश्चोरगणैर्म्लेच्छाटवीभिर्वा नित्याविरहिताः प्रत्यन्ताः, सा नित्यामित्रा। विपर्यये त्वनित्यामित्रेति।**

**(५) अल्पा प्रत्यासन्ना महती व्यवहिता वा भूमिरिति। अल्पा प्रत्यासन्ना श्रेयसी। सुखा हि प्राप्तुं पालयितुमभिसारयितुं च भवति। विपरीता व्यवहिता।**

---

( १ ) चलायमान शत्रु से भूमि लाभ करने पर उसी दशा में विशेष लाभ होता है जब उस चलायमान शत्रु का पड़ोसी दुर्बल हो; क्योंकि ऐसी भूमि विजिगीषु को शीघ्र ही योग क्षेम की देने वाली होती है। इसके विपरीत जिस विजित भूमि का समान्त बलवान् हो वह सर्वदा अनिष्टकर होती है; विजिगीषु के कोश और बल को क्षीण करने वाली होती है।

( २ ) 'विजिगीषु के लिए सम्पन्न एवं नित्य शत्रु की भूमि लेनी श्रेयस्कर है या अत्यल्प सम्पन्न एवं अनित्य शत्रु की भूमि लेनी श्रेयस्कर है ?' इस सम्बन्ध में पूर्वाचार्यों का मन्तव्य है कि सम्पन्न एवं नित्य शत्रु की भूमि लेना ही उत्तम है; क्योंकि सम्पन्न भूमि के द्वारा कोश तथा सेना, दोनों को बढाया जा सकता है, जिससे कि शत्रुओं का उच्छेद किया जा सकता है।

( ३ ) किन्तु कौटिल्य इस मन्तव्य को स्वीकार नहीं करता है। उसका कहना है कि नित्य शत्रु की भूमि लेने से शत्रुता बहुत बढ़ जाती है; क्योंकि जो नित्य शत्रु है उसका उपकार किया जाय या अपकार; वह रहता शत्रु ही है। किन्तु अनित्य शत्रु का उपकार या अपकार करने पर वह शान्त हो जाता है।

( ४ ) जिस भूमि के सीमा प्रान्तों के बहुत से दुर्ग चोरों, म्लेच्छों तथा आटविकों से सदा घिरे रहते हैं वह भूमि **नित्यमित्रा** कहलाती है; और इसके विपरीत भूमि **अनित्यमित्रा** कहलाती है।

( ५ ) 'प्राप्त होने वाली भूमियों में निकटवर्ती थोड़ी भूमि ठीक है या दूर की

**(१) व्यवहिताव्यवहितयोरपि दण्डधारणात्मधारणा वा भूमिरिति। आत्मधारणा श्रेयसी। सा हि स्वसमुत्थाभ्यां कोशदण्डाभ्यां धार्यते। विपरीता दण्डधारणा दण्डस्थानमिति।**

**(२) बालिशात् प्राज्ञाद् वा भूमिलाभ इति। बालिशाद्भूमिलाभः श्रेयान्। सुप्राप्यानुपाल्या हि भवत्यप्रत्यादेया च। विपरीता प्राज्ञादनुरक्तेति।**

**(३) पीडनीयोच्छेदनीययोरुच्छेदनीयाद् भूमिलाभः श्रेयान्। उच्छेदनीयो ह्यनपाश्रयो दुर्बलापाश्रयो वाभियुक्तः कोशदण्डावादायापसर्तुकामः प्रकृतिभिस्त्यज्यते। न पीडनीयो दुर्गमित्रप्रतिस्तब्ध इति।**

**(४) दुर्गप्रतिस्तब्धयोरपि स्थलनदीदुर्गीयाभ्यां स्थलदुर्गीयाद् भूमि-**

---

बहुत-सी भूमि' ऐसी स्थिति में समीप की थोड़ी भूमि ही श्रेयस्कर है; क्योंकि सरलता से उसकी प्राप्ति और रक्षा की जा सकती है और विपत्ति काल में उसका आश्रय लिया जा सकता है। परन्तु बहुत दूर की अधिक भूमि इसके सर्वथा विपरीत होती है।

( १ ) 'दूर और पास की भूमि में पर-रक्षित भूमि लेना ठीक है या स्वयं रक्षित भूमि ?' इन दोनों में स्वयं रक्षित भूमि लेना ही उत्तम है; क्योंकि स्वयं स्थापित कोष और सेना द्वारा उसकी रक्षा की जा सकती है। किन्तु पररक्षित भूमि इसके सर्वथा विपरीत होती है; क्योंकि दूसरे के स्थापित कोष और सेना द्वारा उसकी रक्षा की जाती है।

( २ ) 'मूर्ख शत्रु और बुद्धिमान् शत्रु दोनों में किससे भूमि प्राप्त करना श्रेयस्कर है ?' मूर्खशत्रु राजा से भूमि लेना श्रेयस्कर है; क्योंकि वह बड़ी सरलता से प्राप्त हो जाती है और एक तो उसकी रक्षा सुगमता से की जा सकती है तथा दूसरे वह लौटानी भी नहीं पड़ती है। परन्तु बुद्धिमान् शत्रु राजा से प्राप्त भूमि इसके सर्वथा विपरीत होती है; उसके प्रकृतिजन तथा प्रजाजन उसमें सदा ही अनुराग रखने वाले होते हैं।

( ३ ) पीडनीय और उच्छेदनीय, इन दोनों शत्रु राजाओं में उच्छेदनीय शत्रु की भूमि लेना श्रेयस्कर है; क्योंकि निराश्रय तथा दुर्बल आश्रय का होने के कारण, जब उस पर चढाई की जाती है तो, वह सेना तथा कोष सहित भाग निकलता है। ऐसी दशा में प्रकृति जन उसकी सहायता नहीं करते। परन्तु पीडनीय शत्रु दुर्ग और मित्रों की सहायता प्राप्त करके अपने ही स्थान पर जमा रहता है। उसके प्रकृति जन भी उससे अनुराग रखते हैं।

( ४ ) दुर्गों से सुरक्षित शत्रुओं में स्थल दुर्ग में रहने वाले शत्रु की भूमि प्राप्त करना ठीक है या नदी दुर्ग में रहने वाले शत्रु की ?' स्थल दुर्ग में रहने वाले शत्रु की

**लाभः श्रेयान् । स्थलीयं हि सुरोधावमर्दावस्कन्दमनिःस्राविशत्रु च । नदी-दुर्गं तु द्विगुणक्लेशकरमुदकं च पातव्यं वृत्तिकरं चामित्रस्य ।**

**(१) नदीपर्वतदुर्गीयाभ्यां नदीदुर्गीयाद् भूमिलाभः श्रेयान् । नदीदुर्गं हि हस्तिस्तम्भसङ्क्रमसेतुबन्धनौभिः साध्यमनित्यगाम्भीर्यमवस्राव्युदकं च, पार्वतं तु स्वारक्षं दुरुपरोधि कृच्छ्रारोहणं भग्ने चैकस्मिन् न सर्ववधः, शिलावृक्षप्रमोक्षश्च महापकारिणाम् ।**

**(२) निम्नस्थलयोधिभ्यो निम्नयोधिभ्यो भूलाभः श्रेयान् । निम्नयोधिनो ह्युपरुद्धदेशकालाः, स्थलयोधिनस्तु सर्वदेशकालयोधिनः ।**

**(३) खनकाकाशयोधिभ्यः खनकेभ्यो भूमिलाभः श्रेयान् । खनका हि खातेन शस्त्रेण चोभयथा युध्यन्ते, शस्त्रेणैवाकाशयोधिनः ।**

---

भूमि लेना ही ठीक है; क्योंकि स्थल-दुर्ग को सरलता से घेरा जा सकता है, उच्छिन्न किया जा सकता है और शत्रु को भी उससे भाग निकलने का सुयोग नहीं मिल पाता है। इसलिए शीघ्र ही वह आक्रमणकारी की आधीनता स्वीकार कर लेता है। परन्तु नदी-दुर्ग को इससे दुगुना कष्ट उठा कर भी काबू में नहीं किया जा सकता है। वहाँ पर जल और जलाधीन अन्न, फल आदि के होने से शत्रु के निर्वाह में कोई बाधा नहीं पड़ती। इसलिए उसका उच्छेद करना कठिन होता है।

( १ ) नदी दुर्ग और पर्वत दुर्ग दोनों में से नदी दुर्ग में रहने वाले राजा से ही भूमि लाभ होना श्रेष्ठ है; क्योंकि हाथी, लकड़ी, पुल, बाँध और नौकाओं द्वारा पार करके उसको हस्तगत किया जा सकता है। किनारों को तोड़ कर उसके जल को भी निकाला जा सकता है। परन्तु पर्वतीय दुर्ग पत्थर आदि से सुदृढ़ बना होने के कारण न तो उसको सरलता से घेरा जा सकता है और न ही उस पर चढ़ा जा सकता है। अस्त्रों में से एक को ही नष्ट किया जा सकता है बाकी सुरक्षित बने रहते हैं। बड़े शक्ति-शाली आक्रमणकारी का भी, ऊपर से पत्थर, पेड़ आदि गिरा कर प्रतीकार किया जा सकता है।

( २ ) निम्नयोधी ( नौका में बैठ कर युद्ध करने वाले ) और स्थलयोधी शत्रुओं में निम्नयोधी शत्रु से ही भूमि लाभ श्रेष्ठ है; क्योंकि उसके युद्ध का निश्चित समय एवं निश्चित स्थान होता है। इसलिए उस पर विजय प्राप्त करना कठिन नहीं है। परन्तु स्थलयोधी सभी परिस्थितियों में युद्ध करता है। इसलिए उसको शीघ्र ही नहीं जीता जा सकता है।

( ३ ) खनकयोधी ( खाई युद्ध करने वाले ) और आकाशयोधी शत्रुओं में खनक योधी शत्रु से ही भूमि लाभ श्रेष्ठ है; क्योंकि उनके लिए खाई तथा अस्त्र दोनों की आवश्यकता होती है। कभी-कभी खाई के लिए उचित स्थान न मिलने के कारण वे

**(१) एवंविधेभ्यः पृथिवीं लभमानोऽर्थशास्त्रवित् ।**
**संहितेभ्यः परेभ्यश्च विशेषमधिगच्छति ।।**

इति षाड्गुण्ये सप्तमेऽधिकरणे भूमिसन्धिर्नाम दशमोऽध्याय,
आदितः सप्तशततमः ।

—: ० :—

---

युद्ध नहीं करने पाते हैं । इसलिए उनको सरलता से वश में किया जा सकता है । परन्तु आकाशयोधी शत्रु केवल शस्त्र द्वारा ही युद्ध करता है । इसलिए उसको जीतना कठिन है ।

( १ ) इस प्रकार अर्थशास्त्रज्ञ विजिगीषु राजा, ऊपर बताये गए संहित एवं दूसरे राजाओं से, पृथ्वी को प्राप्त करता हुआ अपनी उन्नति करता जाय ।

इति षाड्गुण्य नामक सप्तम अधिकरण में भूमिसन्धि नामक
दसवाँ अध्याय समाप्त ।

—: ० :—

# अनवसितसन्धि

(१) 'त्वं चाहं च शून्यं निवेशयावह' इत्यनवसितसन्धिः ।

(२) तयोर्यः प्रत्युपस्थितार्थो यथोक्तगुणां भूमिं निवेशयति सोऽतिसन्धत्ते ।

(३) तत्रापि स्थलमौदकं वेति । महतः स्थलादल्पमौदकं श्रेयः, सातत्यादवस्थितत्वाच्च फलानाम् ।

(४) स्थलयोरपि प्रभूतपूर्वापरसस्यमल्पवर्षपाकमसक्तारम्भं श्रेयः ।

(५) औदकयोरपि धान्यवापमधान्यवापाच्छ्रेयः । तयोरल्पबहुत्वे धान्यकान्तादल्पान्महदधान्यकान्तं श्रेयः । महत्यवकाशे हि स्थाल्याश्चानूप्याश्चौषधयो भवन्ति । दुर्गादीनि च कर्माणि प्राभूत्येन क्रियन्ते । कृत्रिमा हि भूमिगुणाः ।

## अनवसित संधि

### ( संधि-विचार ३ )

( १ ) 'आओ, तुम और हम मिलकर शून्य भूमि में उपनिवेश बसायें !' इस प्रकार से जो सन्धि की जाय उसको अनवसित ( अनिश्चित ) सन्धि कहते हैं ।

( २ ) उन दोनों में से जो, पूर्ण साधनों को साथ लेकर पूर्वोक्त गुणसंपन्न भूमि में उपनिवेश बसाता है वही विशेष लाभ में रहता है ।

( ३ ) सर्वगुणसंपन्न स्थलभूमि और जलभूमि, दोनों में जलभूमि को बसाना ही श्रेष्ठ है । अधिक स्थलभूमि की अपेक्षा थोड़ी ही जलभूमि अच्छी है; क्योंकि सदा ही वह फल-फूल आदि से गुलजार बनी रहती है ।

( ४ ) दो स्थल भूमियों में भी वही स्थलभूमि अच्छी होती है, जहाँ वसंत और शरद की फसलें एक समान अच्छी होती हैं तथा जहाँ थोड़ी ही वृष्टि से फसलें पक कर तैयार हो जाती हैं और जिनको सरलता से जोता-बोया जा सकता है ।

( ५ ) दो जलमय भूमियों में वही भूमि उत्तम है, जहाँ सभी धान्य बोये जा सकें और जहाँ धान्य न हों वह भूमि अच्छी नहीं है । उनमें भी कम-ज्यादा को दृष्टि में रखकर उपजाऊ अधिक भूमि ही श्रेष्ठ है; क्योंकि अधिक विस्तार होने से उसके जल स्थल युक्त विभिन्न क्षेत्रों में अनेक प्रकार के अन्न उपजाये जा सकते हैं । क्योंकि

**(१) खनिधान्यभोगयोः खनिभोगः कोशकरः, धान्यभोगः कोशकोष्ठागारकरः धान्यमूला हि दुर्गादीनां कर्मणामारम्भाः। महाविषयविक्रयो वा खनिभोगः श्रेयान्।**

**(२) 'द्रव्यहस्तिवनभोगयोर्द्रव्यवनभोगः सर्वकर्मणां योनिः प्रभूतनिधानक्षमश्च। विपरीतो हस्तिवनभोगः' इत्याचार्याः।**

**(३) नेति कौटिल्यः। शक्यं द्रव्यवनमनेकमनेकस्यां भूमौ वापयितुं न हस्तिवनं, हस्तिप्रधानो हि परानीकवध इति।**

**(४) वारिस्थलपथभोगयोरनित्यो वारिपथभोगः, नित्यः स्थलपथभोग इति।**

**(५) भिन्नमनुष्या श्रेणीमनुष्या वा भूमिरिति। भिन्नमनुष्या श्रेयसी।**

---

भूमि को अधिक उपजाऊ बनाना अपने हाथ में निर्भर है; इसलिए अधिक भूमि को लेना ही श्रेष्ठ है।

( १ ) खानयुक्त तथा धान्ययुक्त भूमियों में खानयुक्त भूमि केवल कोष की वृद्धि करती है; किन्तु धान्ययुक्त भूमि कोष और कोष्ठागार दोनों को संपन्न करती है। क्योंकि दुर्ग आदि कर्मों की उन्नति भी धान्यमूलक ही है; अतः धान्ययुक्त भूमि ही श्रेयस्कर होती है। अथवा खानयुक्त भूमि भी उत्तम है, क्योंकि वहाँ से उत्पन्न वस्तुओं का बड़ा भारी व्यापार किया जा सकता है।

( २ ) 'लकड़ी के जंगल और हाथी के जंगल, दोनों में से कौन श्रेष्ठ है ?' इस संबंध में पूर्वाचार्यों का कहना है कि लकड़ियों का जंगल ही श्रेष्ठ है; क्योंकि एक तो दुर्ग आदि कर्मों में लकड़ी की बड़ी आवश्यकता होती है और दूसरे उसका अधिक-से अधिक संचय सरलता से किया जा सकता है। किन्तु हाथी के जंगलों में यह उपयोगिता नहीं होती है।

( ३ ) आचार्य कौटिल्य इस बात को नहीं मानता है। उसका कथन है कि 'लकड़ी के जंगल अपनी इच्छानुसार बनाये जा सकते हैं; हाथियों के जंगल स्वयं नहीं बनाये जा सकते हैं। शत्रु की सेना को नाश करने वाले साधनों में हाथी प्रमुख साधन है। इसलिए हाथियों के जंगल ही श्रेष्ठ हैं।'

( ४ ) जलमार्ग और स्थलमार्ग में दोनों ही अनित्य ( अस्थायी ) हों तो उनमें जलमार्ग ही उत्तम है। यदि दोनों ही नित्य ( स्थायी ) हों तो स्थलमार्ग ही उत्तम समझना चाहिए।

( ५ ) 'भिन्न प्रकृति मनुष्यों वाली भूमि अच्छी है या समान प्रकृति मनुष्यों वाली भूमि श्रेष्ठ है ?' इन दोनों में भिन्न प्रकृति मनुष्यों वाली भूमि ही श्रेष्ठ समझनी

**भिन्नमनुष्याभोग्या भवत्यनुपजाप्या चान्येषाम् । अनापत्सहा तु । विपरीता श्रेणीमनुष्या कोपे महादोषा ।**

**(१) तस्यां चातुर्वर्ण्याभिनिवेशे सर्वभोगसहत्वादवरवर्णप्राया श्रेयसी। बाहुल्याद्ध्रुवत्वाच्च कृष्याः कर्षणवती । कृष्याश्चान्येषां चारम्भाणां प्रयोजकत्वाद् गोरक्षकवती । पण्यनिचयर्णानुग्रहादाढ्यवणिग्वती ।**

**(२) भूमिगुणानामपाश्रयः श्रेयान् ।**

**(३) दुर्गापाश्रया पुरुषापाश्रया वा भूमिरिति । पुरुषापाश्रया श्रेयसी। पुरुषवद्धि राज्यम् । अपुरुषा गौर्वन्ध्येव किं दुहीत ।**

**(४) महाक्षयव्ययनिवेशां तु भूमिमवाप्तुकामः पूर्वमेव क्रेतारं पणेत । दुर्बलमराजबीजिनं निरुत्साहमपक्षमन्यायवर्त्ति व्यसनिनं दैवप्रमाणं यत्किञ्चनकारिणं वा ।**

---

चाहिए; क्योंकि ऐसी भूमि को विजिगीषु शीघ्र ही अपने कब्जे में कर लेता है, और क्योंकि भिन्न प्रकृति के कारण दूसरे शत्रु भी उन्हें बहका नहीं सकते हैं । ऐसे लोग आपत्तिसह भी नहीं होते हैं । किन्तु समान प्रकृति मनुष्यों वाली भूमि को शत्रु बहका सकते हैं । एकता के कारण वहाँ की प्रजा हर तरह की आपत्तियों को सहन करने के लिए तैयार रहती हैं और कुपित होने पर राजा का भी उच्छेद कर देती है ।

( १ ) उस भूमि में चारों वर्णों के लोगों की स्थिति के संबंध में यह विचार कर लेना चाहिए कि सब तरह के दुःख-सुख सहन करने वाले शूद्र, ग्वाले आदि नीची जाति के मनुष्यों वाली भूमि ही श्रेष्ठ होती है । क्योंकि खेती की अधिकता और निश्चित फलवती होने के कारण ऐसी भूमि श्रेयस्कर होती है । कृषि संबंधी व्यापार तथा अन्य अनेक कार्य गाय एवं गोपालकों पर ही निर्भर हैं । इसलिए गाय और ग्वालों से युक्त भूमि ही श्रेष्ठ है । व्यापार के लिए धान्य आदि का संचय तथा व्याज पर ऋण आदि देकर उपकार करने के कारण व्यापारी और धनवान् व्यक्तियों से युक्त भूमि भी श्रेष्ठ होती है ।

( २ ) भूमि के उक्त सभी गुणों में से आश्रय या रक्षा, उसके सर्वोच्च गुण हैं ।

( ३ ) 'दुर्गों का आश्रय देने वाली भूमि अच्छी होती है या मनुष्यों का ?' इन दोनों में मनुष्यों का सहारा देने वाली भूमि श्रेष्ठ है, क्योंकि राज्य कहते ही उसको है, जहाँ बहुत से पुरुष निवास करते हों; 'पुरुषवद्धि राज्यम्' । पुरुषहीन भूमि तो वन्ध्या गो के समान है ।

( ४ ) जन-धन का अत्यधिक व्यय करके बसाई जाने वाली भूमि को यदि विजिगीषु प्राप्त करना चाहे तो पहिले वह उस भूमि का ऐसा खरीददार राजा तैयार कर ले, जो दुर्बल, आराजजीवी ( जो किसी राजवंश का न हो ), उत्साहहीन, अपक्ष

**(१) महाक्षयव्ययनिवेशायां हि भूमौ दुर्बलो राजबीजी निविष्टः सगन्धाभिः प्रकृतिभिः सह क्षयव्ययेनावसीदति ।**

**(२) बलवानराजबीजी क्षयव्ययभयादसगन्धाभिः प्रकृमिभिस्त्यज्यते ।**

**(३) निरुत्साहस्तु दण्डवानपि दण्डस्याप्रणेता सदण्डः क्षयव्ययेनावभज्यते ।**

**(४) कोशवानप्यपक्षः क्षयव्ययानुग्रहहीनत्वान्न कुतश्चित्प्राप्नोति ।**

**(५) अन्यायवृत्तिर्निविष्टमप्युत्थापयेत्, स कथमनिविष्टं निवेशयेत् ।**

**(६) तेन व्यसनी व्याख्यातः ।**

**(७) दैवप्रमाणो मानुषहीनो निरारम्भो विपन्नकर्मारम्भो वावसीदति ।**

**(८) यत्किञ्चनकारी न किंचिदासादयति । स चैषां पापिष्ठतमो भवति ।**

---

( वेसहारा ), अन्यायवृत्ति, व्यसनी, भाग्यवादी और यत्किंचनकारी ( जो मन में आया, कर दिया ) हो ।

( १ ) जन-धन आदि का अत्यधिक व्यय करके बसाई जाने योग्य भूमि में जब शक्तिहीन राजवंश में पैदा हुआ राजा उपनिवेश बसाता है तो अत्यधिक पुरुषों का क्षय और धन का व्यय होने के कारण अपने सहायकों, सजातीयों और अमात्य आदि प्रकृतियों के साथ वह क्षीण हो जाता है ।

( २ ) राजवंश में पैदा न हुए बलवान् राजा को क्षय-व्यय के भय से उसके विजातीय अमात्य आदि सहायक उसको छोड़ देते हैं ।

( ३ ) सेना के होते हुए भी उत्साहहीन राजा उसका यथोचित उपयोग नहीं कर पाता है। इसलिए धन-जन का व्यय-क्षय हो जाने के कारण सेना के सहित ही वह नष्ट हो जाता है ।

( ४ ) कोषसंपन्न मित्रहीन राजा क्षय-व्यय में उचित सहायता न मिलने के कारण नष्ट हो जाता है ।

( ५ ) प्रजा पर अन्याय करने वाले स्थायी रूप से बसे हुए राजा को जब प्रजा उखाड़ फेंकती है तब नये उपनिवेशों को बसाना उसके लिए कैसे संभव हो सकता है ?

( ६ ) यही हाल व्यसनी राजा का भी होता है ।

( ७ ) भाग्य पर भरोसा करने वाला पौरुषहीन राजा किसी नये कार्य को आरंभ नहीं करता है; यदि आरंभ करता भी है तो विघ्न के भय से उसे अधूरा ही छोड़ देता है; और इस प्रकार जन-धन की व्यर्थ हानि करने के बाद वह स्वयं भी नष्ट हो जाता है ।

( ८ ) बिना विचारे कार्य करने वाला राजा कभी फूलता-फलता नहीं है; किन्तु

**(१) 'यत्किंचिदारभमाणो हि विजिगीषोः कदाचिच्छिद्रमासादयेत्' इत्याचार्याः ।**

**(२) 'यथा छिद्रं तथा विनाशमप्यासादयेत्' इति कौटिल्यः ।**

**(३) तेषामलाभे यथा पार्ष्णिग्राहोपग्रहे वक्ष्यामस्तथा भूमिमवस्थापयेत् । इत्यभिहितसन्धिः ।**

**(४) गुणवतीमादेयां वा भूमिं बलवता क्रयेण याचितः सन्धिमवस्थाप्य दद्यात् । इत्यनिभृतसन्धिः ।**

**(५) समेन वा याचितः कारणमवेक्ष्य दद्यात् । 'प्रत्यादेया मे भूमिर्वश्या वा, अनया प्रतिबद्धः परो मे वश्यो भविष्यति, भूमिविक्रयाद्वा मित्रहिरण्यलाभः कार्यसामर्थ्यकरो मे भविष्यति' इति ।**

---

ऊपर कहे गए सभी राजाओं की अपेक्षा विजिगीषु के लिए वह बहुत खतरनाक सिद्ध होता है ।

( १ ) पूर्वाचार्यों का कहना है कि किसी कार्य को प्रारंभ करता हुआ शत्रु यदि विजिगीषु के किसी दोष का पता लगा ले तो वह यत्किंचनकारी राजा के द्वारा विजिगीषु को हानि पहुँचा सकता है; क्योंकि विजिगीषु उसे मूर्ख समझ कर उससे पीठ फेरे रहता है ।

( २ ) परन्तु आचार्य कौटिल्य का मत है कि वह यत्किंचनकारी विजिगीषु के दोषों को जानने की तरह स्वयं को भी नष्ट कर सकता है; क्योंकि विजिगीषु तो उसके अनेक दोषों से परिचित रहता है ।

( ३ ) यदि इन उपर्युक्त राजाओं में से कोई उस व्यय-क्षयी भूमि को खरीदने के लिए तैयार न हो तो जो तरीका आगे पार्ष्णिग्राह के साथ सन्धि के लिए बताया जायेगा उसी के अनुसार उस भूमि को बसाने की व्यवस्था करे । इसीका नाम **अभिहितसंधि** है । अभिहितसन्धि, अर्थात् लेन-देन से विचलित न होकर बराबर बनी रहना ।

( ४ ) गुणवती और अदेय भूमि को यदि बलवान् सामंत खरीदना चाहे तो उससे 'अवसर आने पर आप मेरी सहायता करेंगे' ऐसी सामान्य संधि करके वह भूमि उसके हाथ बेच देनी चाहिए, क्योंकि प्रबल सामंत दुर्बल से अविश्वास करके अपनी प्रतिज्ञा को तोड़ भी सकता है । इसको **अनिभृतसन्धि** कहते हैं ।

( ५ ) यदि समानशक्ति राजा उस भूमि को खरीदना चाहे तो नीचे लिखे कारणों पर अच्छी तरह विचार करके वह भूमि उसके हाथ बेच देनी चाहिए । वे कारण हैं : बेच देने पर यह भूमि कालान्तर में मेरे पास आ सकेगी, अथवा बेच देने पर भी मैं इससे लाभ उठाता रहूँगा, अथवा इस भूमि के साथ संबंध बना रहने के कारण दूसरा

**(१) तेन हीनः क्रेता व्याख्यातः ।**

**(२) एवं मित्रं हिरण्यं च सजनामजनां च गाम् ।**
**लभमानोऽतिसन्धत्ते शास्त्रवित्सामवायिकान् ॥**

इति षाड्गुण्ये सप्तमेऽधिकरणेऽनवसितसन्धिर्नाम एकादशोऽध्यायः,
आदितोऽष्टशततमः ।

—: ० :—

---

शत्रु मेरे वश में हो जायेगा, अथवा इसको बेच देने पर मैं मित्र तथा धन-संपति से संपन्न हो जाऊँगा ।'

( १ ) इसी प्रकार हीनशक्ति खरीददार के संबंध में भी समझना चाहिए ।

( २ ) अर्थशास्त्रज्ञ राजा इस प्रकार मित्र, धन, संपत्ति, आवाद और बंजर भूमि को प्राप्त करता हुआ दूसरे राजाओं की अपेक्षा सदा ही विशेष लाभ प्राप्त करता है ।

षाड्गुण्य नामक सप्तम अधिकरण में अनवसितसन्धि नामक
ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त ।

—: ० :—

# कर्मसन्धि

(१) 'त्वं चाहं च दुर्गं कारयावहे' इति कर्मसन्धिः।

(२) तयोर्यो दैवकृतमविषह्यमल्पव्ययारम्भं दुर्गं कारयति, सोऽतिसन्धत्ते।

(३) तत्रापि स्थलनदीपर्वतदुर्गाणामुत्तरोत्तरं श्रेयः।

(४) सेतुबन्धयोरप्याहार्योदकात्सहोदकः श्रेयान्। सहोदकयोरपि प्रभूतवापस्थानः श्रेयान्।

(५) द्रव्यवनयोरपि यो महत् सारवद्द्रव्याटवीकं विषयान्ते नदीमातृकं द्रव्यवनं छेदयति, सोऽतिसन्धत्ते। नदीमातृकं हि स्वाजीवमपाश्रयश्चापदि भवति।

(६) हस्तिवनयोरपि यो बहुशूरमृगं दुर्बलप्रतिवेशमनन्तावक्लेशि विषयान्ते हस्तिवनं बध्नाति, सोऽतिसन्धत्ते।

---

## कर्मसन्धि
## ( सन्धि-विचार ४ )

( १ ) 'आप और मैं मिलकर दुर्ग बनवायें' इस प्रकार किसी कार्य सम्बन्धी वस्तु का नाम लेकर जो सन्धि की जाती है उसको **कर्मसन्धि** कहते हैं।

( २ ) इस प्रकार की सन्धि करने वाले विजिगीषु और उसका साथी राजा, दोनों में से वही विशेष लाभ में रहता है जो शत्रुओं से दुर्भेद्य दुर्गम स्थान में अल्प व्यय करके दुर्ग बनवाता है।

( ३ ) ऐसे दुर्गों में भी स्थल में बने दुर्ग की अपेक्षा जल में बना दुर्ग श्रेष्ठ है और उससे भी पर्वतीय प्रदेश में वना हुआ दुर्ग श्रेष्ठ होता है।

( ४ ) सेतुबंधों में वर्षा जल से भरने वाले की अपेक्षा स्वाभाविक अर्थात् नहर आदि के जल से भरने वाला सेतुबंध उत्तम है। उनमें भी वह सेतुबन्ध श्रेष्ठ है जो खेती योग्य पर्याप्त भूमि के निकट हो।

( ५ ) जो राजा अनेक पदार्थों को पैदा करने वाले जंगलों में नदियों से सींचे जाने योग्य फल-फूलों को पैदा करने वाले अपने सीमाप्रान्त के जंगलों को ठीक करता है। वही विशेष लाभ में रहता है। क्योंकि नदियों से सींचे जाने वाले स्थान आजीविका के साधन होने के साथ-साथ विपत्ति काल में आश्रय देने वाले भी होते हैं।

( ६ ) हाथी और मृग के जंगलों में भी जो राजा शक्तिशाली जंगली जानवरों

**(१) तत्रापि 'बहुकुण्ठाल्पशूरयोरल्पशूरं श्रेयः। शूरेषु हि युद्धम्। अल्पाः शूरा बहूनशूरान् भञ्जन्ति, ते भग्नाः स्वसैन्यावघातिनो भवन्ति' इत्याचार्याः।**

**(२) नेति कौटिल्यः। कुण्ठा बहवः श्रेयांसः, स्कन्धविनियोगादनेकं कर्म कुर्वाणाः स्वेषामपाश्रया युद्धे, परेषां दुर्धर्षा विभीषणाश्च।**

**(३) बहुषु हि कुण्ठेषु विनयकर्मणा शक्यं शौर्यमाधातुं, न त्वेवाल्पेषु शूरेषु बहुत्वमिति।**

**(४) खन्योरपि यः प्रभूतसारामदुर्गमार्गामल्पव्ययारम्भां खनिं खानयति, सोऽतिसन्धत्ते।**

**(५) तत्रापि 'महासारमल्पसारं वा प्रभूतमिति। महासारमल्पं श्रेयः। वज्रमणिमुक्ताप्रवालहेमरूप्यधातुर्हि प्रभूतमल्पसारमत्यर्घेण ग्रसते' इत्याचार्याः।**

---

से युक्त, दुर्बलों के लिए भी सुखकर और अनेक जाने-आने के मार्गों से युक्त हस्तिवनों को अपने प्रदेश में स्थापित करता है वह विशेष लाभ में रहता है।

( १ ) उन हाथी के जंगलों में भी अशक्त अधिक संख्यावाले हस्तिवन की अपेक्षा शक्तिशाली थोड़े हाथियों वाले जंगल ही श्रेष्ठ हैं; क्योंकि बलवान् हाथियों के भरोसे ही युद्ध होता है। इसके विपरीत पुरातन आचार्यों का कहना है कि अल्पसंख्यक शूर हाथी बहुसंख्यक कायर हाथियों को भगा देते हैं और वे तितर-वितर हो कर अपनी ही सेना को कुचल डालते हैं।

( २ ) किन्तु कौटिल्य इस तर्क से सहमत नहीं हैं। उनका कथन है कि शक्तिहीन बहुत हाथियों का होना ही श्रेयस्कर है; क्योंकि सेना के अनेक विभागों में उनसे अनेक कार्य लिए जा सकते हैं। इसलिए युद्ध में वे अच्छे सहायक, शत्रुओं को घबड़ा देने वाले ( अधिक होने के कारण ) और शत्रु के वश में न आने वाले होते हैं।

( ३ ) संख्या में अधिक हाथी यदि सामर्थ्यहीन भी हों तो कोई हानि नहीं है; क्योंकि युद्ध सम्बन्धी शिक्षाओं के द्वारा उन्हें समर्थ बनाया जा सकता है; किन्तु शक्तिशाली थोड़े हाथियों की संख्या सहसा बढ़ाई नहीं जा सकती है।

( ४ ) खानों में भी, जो राजा उत्तम वस्तुएँ देने वाली, दुर्गम मार्गों से युक्त और अल्प व्ययकर खानों को खुदवाता है वह विशेष लाभ प्राप्त करता है।

( ५ ) उन खानों में भी मणि-माणिक्य आदि बहुमूल्य वस्तुओं को थोड़े परिमाण में उत्पन्न करने वाली खान श्रेष्ठ है? अथवा अधिक परिमाण वाली अल्पमूल्य की वस्तुओं को उत्पन्न करने वाली खान श्रेष्ठ है? इस सम्बन्ध में पूर्वाचार्यों का कथन है कि 'बहुमूल्य थोड़ी वस्तुओं को उत्पन्न करने वाली खान अच्छी है; क्योंकि हीरा,

**(१) नेति कौटिल्यः। चिरादल्पो महासारस्य क्रेता विद्यते। प्रभूतः सातत्यादल्पसारस्य।**

**(२) एतेन वणिक्पथो व्याख्यातः।**

**(३) तत्रापि 'वारिस्थलपथयोर्वारिपथः श्रेयान्, अल्पव्ययव्यायामः प्रभूतपण्योदयश्च' इत्याचार्याः।**

**(४) नेति कौटिल्यः। संरुद्धगतिरसार्वकालिकः प्रकृष्टभययोर्निष्प्रतिकारश्च वारिपथः। विपरीतः स्थलपथः।**

**(५) वारिपथे तु कूलसंयानपथयोः कूलपथः पण्यपट्टणबाहुल्याच्छ्रेयान्। नदीपथो वा सातत्याद्विषह्याबाधत्वाच्च।**

**(६) स्थलपथेऽपि। 'हैमवतो दक्षिणापथाच्छ्रेयान् हस्त्यश्वगन्धदन्ताजिनरूप्यसुवर्णपण्याः सारवत्तराः' इत्याचार्याः।**

---

मणि, मोती, मूंगा, सोना, चाँदी आदि बहुमूल्य थोड़ी वस्तुएँ, अल्प मूल्य की अधिक वस्तुओं को भी दबा लेती हैं।'

( १ ) किन्तु कौटिल्य इस मन्तव्य से सहमत नहीं है। वह कहता है कि 'मूल्यवान् वस्तु का खरीददार बहुत समय बाद कोई विरला ही मिलता है; किन्तु अल्पमूल्य वस्तुओं के खरीददारों की कमी नहीं रहती है।'

( २ ) इसी प्रकार व्यापारिक मार्गों के सम्बन्ध में भी समझना चाहिए।

( ३ ) स्थलमार्ग और जलमार्ग में से जलमार्ग द्वारा व्यापार करना श्रेयस्कर है; क्योंकि उसमें श्रम तथा व्यय अधिक नहीं करना पड़ता और उसके द्वारा माल आसानी से लाया-ले-जाया जा सकता है—ऐसा प्राचीन आचार्यों का मत है।

( ४ ) इसके विपरीत आचार्य कौटिल्य का कथन है कि 'विपत्तिकाल में जलमार्ग सब ओर से रोका जा सकता है। सभी ऋतुओं में उससे जाना-आना भी नहीं हो सकता है। स्थल मार्ग की अपेक्षा वह भयजनक और अप्रतीकारक भी है। किन्तु स्थल मार्ग में ये सभी दिक्कतें नहीं होती हैं। इसलिए स्थलमार्ग ही श्रेष्ठ है।'

( ५ ) जलमार्ग दो प्रकार का होता है : एक तो किनारे-किनारे का मार्ग ( कूलपथ ) और दूसरा जल के बीच का मार्ग ( संयानपथ ) इन दोनों में कूलपथ ही श्रेष्ठ होता है, क्योंकि उस पर अनेक व्यापारिक नगर बसे होते हैं, जिससे बड़ा लाभ उठाया जा सकता है। अथवा संयानपथ भी उत्तम समझना चाहिए; क्योंकि नदी में निरन्तर पानी भरा रहता है, जिससे मार्ग में कोई उत्कट बाधा उपस्थित नहीं हो पाती है।

( ६ ) 'स्थलमार्ग में भी दक्षिणापथ की अपेक्षा उत्तरापथ श्रेष्ठ है, क्योंकि उस

**(१) नेति कौटिल्यः । कम्बलाजिनाश्वपण्यवर्ज्याः शंखवज्रमणिमुक्तासुवर्णपण्याश्च प्रभूततरा दक्षिणापथे ।**

**(२) दक्षिणापथेऽपि बहुखनिः सारपण्यः प्रसिद्धगतिरल्पव्यायामो वा वणिक्पथः श्रेयान् । प्रभूतविषयो वा फल्गुपण्यः ।**

**(३) तेन पूर्वः पश्चिमश्च वणिक्पथो व्याख्यातः ।**

**(४) तत्रापि चक्रपादपथयोश्चक्रपथो विपुलारम्भत्वाच्छ्रेयान् । देशकालसम्भावनो वा खरोष्ट्रपथः ।**

**(५) आभ्यामंसपथो व्याख्यातः ।**

**(६) परकर्मोदयो नेतुः क्षयो वृद्धिर्विपर्यये ।**
**तुल्ये कर्मपथे स्थानं ज्ञेयं स्वं विजिगीषुणा ॥**

---

ओर हाथी, घोड़े, कस्तूरी, दाँत, चाप, चाँदी और सुवर्ण आदि बहुमूल्य विक्रेय वस्तुयें अधिकता से मिल जाती हैं ।' यह प्राचीन आचार्यों का मत है ।

( १ ) परन्तु कौटिल्य का कहना है कि 'कंबल, चमड़ा और घोड़े इन वस्तुओं को छोड़ कर हाथी आदि तथा शंख, हीरा, मणि, मोती, सुवर्ण आदि अन्य अनेक विक्रेय वस्तुएँ उत्तर की अपेक्षा दक्षिण की ओर अधिक होती हैं । इसलिए दक्षिणापथ ही श्रेष्ठ है ।'

( २ ) दक्षिणापथ में भी वह मार्ग उत्तम समझना चाहिए, जो खान तथा विक्रेय वस्तुओं से युक्त, आने-जाने में सुगम और थोड़े से परिश्रम से सिद्ध होने वाला हो । अथवा वह मार्ग श्रेष्ठ समझना चाहिए जहाँ थोड़े कीमत की वस्तुयें बहुतायत से मिल सकें या जहाँ बहुमूल्य वस्तुओं से अधिक खरीददार हों ।

( ३ ) इसी प्रकार पूरब और पश्चिम के व्यापारिक मार्गों के सम्बन्ध में भी समझना चाहिए ।

( ४ ) इन व्यापारिक मार्गों में भी पैदल मार्ग की अपेक्षा सवारी योग्य मार्ग को उत्तम समझना चाहिए । क्योंकि ऐसे मार्गों से बहुत व्यापार किया जा सकता है । विक्रेय वस्तुएँ अधिक तादाद में लायी-ले जायी जा सकती हैं । देश-काल के अनुसार गधों और ऊँटों का मार्ग भी श्रेष्ठ समझना चाहिए, क्योंकि उनसे भी अधिक व्यापार किया जा सकता है ।

( ५ ) इसी प्रकार कन्धों के द्वारा भार ढोने वाले बैल आदि के व्यापारिक मार्गों के सम्बन्ध में भी समझना चाहिए ।

( ६ ) शत्रु का अपने कार्यों से लाभ होना ही विजिगीषु का क्षय समझना चाहिए और अपने कार्यों की सिद्धि में ही सफलता समझनी चाहिए । यदि कार्यफल दोनों को बराबर मिले तो विजीगीषु को पूर्ववत् एक जैसा समझना चाहिए । उसने न तो उन्नति की न तो अवनति ।

(१) **अल्पागमातिव्ययता क्षयो वृद्धिर्विपर्यये ।**
**समायव्ययता स्थानं कर्मसु ज्ञेयमात्मनः ।।**

(२) **तस्मादल्पव्ययारम्भं दुर्गादिषु महोदयम् ।**
**कर्म लब्ध्वा विशिष्टाः स्यादित्युक्ताः कर्मसन्धयः ।।**

इति षाड्गुण्ये सप्तमेऽधिकरणे कर्मसन्धिर्नाम द्वादशोऽध्यायः
आदितो नवोत्तरशततमः ।

—: ० :—

---

( १ ) थोड़ी आय तथा अधिक खर्च हो तो क्षय, इसके विपरीत वृद्धि समझनी चाहिए। इसी प्रकार बराबर आय व्यय में समान अवस्था समझनी चाहिए ।

( २ ) इसलिये विजिगीषु को चाहिए कि वह दुर्ग आदि के कार्यों में थोड़ा खर्च करके ही महान् फल प्राप्त करने की चेष्टा करे । महान् फल देने वाले कार्य को प्राप्त करके ही विजिगीषु अपने शत्रु से बढ़ सकता है । यही कर्मसन्धि है ।

षाड्गुण्य नामक सप्तम अधिककरण में कर्मसन्धि नामक
बारहवाँ अध्याय समाप्त ।

—: ० :—

प्रकरण ११७

अध्याय १३

# पार्ष्णिग्राहचिन्ता

**(१) संहत्यारिविजिगीष्वोरमित्रयोः पराभियोगिनोः पार्ष्णिं गृह्णतोर्यः शक्तिसम्पन्नस्य पार्ष्णिं गृह्णाति, सोऽतिसन्धत्ते। शक्तिसम्पन्नो ह्यमित्रमुच्छिद्य पार्ष्णिग्राहमुच्छिन्द्यात्, न हीनशक्तिरलब्धलाभ इति।**

**(२) शक्तिसाम्ये यो विपुलारम्भस्य पार्ष्णिं गृह्णाति, सोऽतिसन्धत्ते। विपुलारम्भो ह्यमित्रमुच्छिद्य पार्ष्णिग्राहमुच्छिन्द्यात्, नाल्पारम्भः सक्तचक्र इति।**

**(३) आरम्भसाम्ये यः सर्वसन्दोहेन प्रयातस्य पार्ष्णिं गृह्णाति, सोऽतिसन्धत्ते। शून्यमूलो ह्यस्य सुकरो भवति, नैकदेशबलप्रयातः कृतपार्ष्णिप्रतिविधान इति।**

## पार्ष्णिग्राह-चिन्ता

(१) विजिगीषु और शत्रु जब पृष्ठवर्ती (पार्ष्णि) होकर किसी राजा पर चढ़ाई करें तो उनमें से वही विशेष लाभ प्राप्त करता है, जो कि दूसरे के साथ युद्ध में फँसे हुए अपने शत्रुभूत दो राजाओं में से अधिक शक्तिशाली राजा की पार्ष्णि को ग्रहण करता है क्योंकि शक्तिशाली राजा अपने शत्रु का उच्छेद कर बाद में अपने पार्ष्णिग्राह का भी उच्छेद कर देता है। हीनशक्ति शत्रुराजा तो अपने शत्रु का उच्छेद करने पर भी वैसे ही निर्बल बना रहता है, उसकी ओर से आक्रमण की कोई आशंका नहीं हो सकती है। इसलिए उसका पार्ष्णिग्राह बनने में कोई लाभ नहीं है।

(२) यदि दोनों युद्ध-निरत शत्रु समानशक्ति हों तो उसी का पार्ष्णिग्राह बनना लाभप्रद है, जो कि सभी साधनों से सम्पन्न हो। क्योंकि सर्वसाधन-सम्पन्न शत्रु राजा अपने शत्रु का उच्छेद कर सकता है। जो कि साधनहीन और अपनी बिखरी सेना को बटोरने में ही लगा हो, ऐसा शत्रु न तो अपने शत्रु को जीत ही सकता है और न ही वह विजिगीषु के लिए भय का कारण है। इसलिए ऐसे शत्रु का पार्ष्णिग्राह बनने में कोई लाभ नहीं है।

(३) यदि दोनों ही सर्वसाधनसम्पन्न हों तो ऐसे राजा का पार्ष्णिग्राह बनने में विशेष लाभ है, जो अपने संपूर्ण सैन्य को लेकर युद्ध के लिये कूच कर गया हो। क्योंकि जिसका मुख्य भाग (राज्य या राजधानी) असुरक्षित हो उस पर शीघ्र ही विजय प्राप्त की जा सकती है। किन्तु जिसने अपनी पार्ष्णि की रक्षा के लिए प्रबन्ध

**(१) बलोपादानसाम्ये यश्चलामित्रं प्रयातस्य पार्ष्णि गृह्णाति, सोऽतिसन्धत्ते। चलामित्रं प्रयातो हि सुखेनावाप्तसिद्धिः पार्ष्णिग्राहमुच्छिन्द्यात्, न स्थितामित्रं प्रयातः। असौ हि दुर्गप्रतिहतः। पार्ष्णिग्राहे च प्रतिनिवृत्तस्थितेनामित्रेणावगृह्यते।**

**(२) तेन पूर्वे व्याख्याताः।**

**(३) शत्रुसाम्ये यो धार्मिकाभियोगिनः पार्ष्णि गृह्णाति सोऽतिसन्धत्ते। धार्मिकाभियोगी हि स्वेषां च द्वेष्यो भवति। अधार्मिकाभियोगी सम्प्रियः।**

**(४) तेन मूलहरतादात्विककदर्याभियोगिनां पार्ष्णिग्रहणं व्याख्यातम्।**

**(५) मित्राभियोगिनोः पार्ष्णिग्रहणे त एव हेतवः।**

**(६) मित्रममित्रं चाभियुञ्जानयोर्यो मित्राभियोगिनः पार्ष्णि गृह्णाति,**

---

कर थोड़ी सेना को साथ ले युद्ध के लिए प्रस्थान किया हो उसको जीतना सरल नहीं है। वह अपने पार्ष्णिग्राह का अच्छी तरह प्रतीकार कर सकता है।

( १ ) बराबर सेनाओं को साथ ले जाने वाले राजाओं में से उसी का पार्ष्णिग्राह बनना ठीक है, जिसने अपने दुर्गरहित शत्रु पर आक्रमण किया हो। क्योंकि सहज ही में अपने दुर्गरहित शत्रु को वश में करके बाद में वह अपने पार्ष्णिग्राह का भी उच्छेदन कर सकता है। परन्तु दुर्गसम्पन्न राजा के साथ युद्ध में लगे शत्रु पर चढ़ाई करने में कोई लाभ नहीं है, प्रत्युत हानि की संभावना अधिक है। क्योंकि युद्ध से खिसिया कर जब वह वापिस लौटता है तो पार्ष्णिग्राह के साथ ही युद्ध में जुट जाता है, जिससे पार्ष्णिग्राह की हानि ही होती है, लाभ नहीं।

( २ ) इसी प्रकार हीनशक्ति पार्ष्णिग्राही, अल्पारंभ पार्ष्णिग्राही और कुछ सेना ले जाने वाले पार्ष्णिग्राही राजाओं के संबन्ध में भी समझ लेना चाहिए।

( ३ ) सर्वथा समानशक्ति शत्रुओं में उसी का पार्ष्णिग्राह बनने में विशेष लाभ है, जिसने अपने किसी धर्मात्मा शत्रु पर आक्रमण किया हो। क्योंकि ऐसा करने पर अपने और पराये सभी उससे द्वेष करने लगते हैं, और ऐसी स्थिति में पार्ष्णिग्राह सरलता से ही उसको अपने वश में कर सकता है। परन्तु अधर्मी शत्रु पर आक्रमण करने वाला राजा सभी का प्रिय हो जाता है और वह निश्चित ही अपने शत्रु को जीत लेता है इसलिए ऐसे राजा का पार्ष्णिग्राह बनने में कोई लाभ नहीं है।

( ४ ) इसी प्रकार मूलहर, तादात्विक और कदर्य राजाओं पर आक्रमण करने वाले पार्ष्णिग्राह के लाभालाभ के संबन्ध में भी समझना चाहिए—मूलहर और तादात्विक में से मूलहर पर और तादात्विक तथा कदर्य में से कदर्य पर आक्रमण करने में विशेष लाभ है।

( ५ ) मित्रराजाओं का पार्ष्णिग्रहण बनने के भी वे ही नियम समझने चाहिए, जो कि अतिसंधि में निर्देश किये गये हैं।

( ६ ) मित्र और शत्रु पर आक्रमण करने वाले राजाओं में से, जो मित्र पर

**सोऽतिसन्धत्ते। मित्राभियोगी हि सुखेनावाप्तसिद्धिः पार्ष्णिग्राहमुच्छिन्द्यात्। सुकरो हि मित्रेण सन्धिर्नामित्रेणेति।**

**(१) मित्रममित्रं चोद्धरतोर्योऽमित्रोद्धारिणः पार्ष्णि गृह्णाति, सोऽतिसन्धत्ते। वृद्धमित्रो ह्यमित्रोद्धारी पार्ष्णिग्राहमुच्छिन्द्यात्, नेतरः स्वपक्षोपघाती।**

**(२) तयोरलब्धलाभापगमने यस्यामित्रो महतो लाभाद्वियुक्तः क्षयव्ययाधिको वा, स पार्ष्णिग्राहोऽतिसन्धत्ते। लब्धलाभापगमने यस्यामित्रो लाभेन शक्त्या हीनः, स पार्ष्णिग्राहोऽतिसन्धत्ते। यस्य वा यातव्यः शत्रोर्विग्रहापकारसमर्थः स्यात्।**

**(३) पार्ष्णिग्राहयोरपि यः शक्यारम्भबलोपादानाधिकः स्थितशत्रुः पार्श्वस्थायी वा सोऽतिसन्धत्ते। पार्श्वस्थायी हि यातव्याभिसारो मूलबाधकश्च भवति। मूलाबाधक एव पश्चात्स्थायी।**

---

आक्रमण करने वाले राजा का पार्ष्णिग्राह बनता है वही विशेष लाभ में रहता है। क्योंकि मित्र पर आक्रमण करने वाला राजा सहज ही में सिद्धि प्राप्त कर लेता है और बलवान् होकर वह पार्ष्णिग्राह का भी उच्छेद कर सकता है। इसके विपरीत, क्योंकि मित्र के साथ संधि हो जाना सुकर होता है, शत्रु के साथ कठिनता से ही संधि हो सकती है। अतः शत्रु पर आक्रमण करने वाला राजा न तो सिद्धिलाभ कर सकता है और न तो पार्ष्णिग्राह की कुछ हानि कर सकता है।

( १ ) मित्र और शत्रु का उन्मूलन ( उद्धार ) करने वाले राजाओं में से जो शत्रु का उद्धार करने वाले राजा का पार्ष्णिग्राह बनता है वही विशेष लाभ में रहता है। क्योंकि शत्रु का उद्धार करने वाला राजा स्वपक्ष और मित्रपक्ष से संपन्न होकर पार्ष्णिग्राह का भी उच्छेद कर सकता है। परन्तु दूसरा, जो मित्र का ही उन्मूलन करना चाहता है, अपने ही पक्ष का घातक होने के कारण, कभी भी पार्ष्णिग्राह का उच्छेद नहीं कर सकता है।

( २ ) मित्र और शत्रु का उन्मूलन करने वाले राजाओं के कोई विशेष लाभ प्राप्त किये वगैर ही लौट आने पर, उनमें से ऐसे शत्रु पर आक्रमण करने में लाभ है, जिसने कुछ भी लाभ प्राप्त नहीं किया और जिसका अधिक क्षयव्यय हुआ हो। क्योंकि वह शत्रु को क्षीण कर पार्ष्णिग्राह को भी हानि पहुँचा सकता है। किन्तु विशेष लाभ प्राप्त करके लौट आने पर जिसका शत्रु लाभ तथा शक्ति से हीन हो, ऐसे आक्रमणकारी राजा का पार्ष्णिग्राह बनने में लाभ रहता है। क्योंकि लाभ और शक्ति से संपन्न शत्रु को वश में न कर सकने के कारण वह पार्ष्णिग्राह का कुछ नहीं बिगाड़ पाता है। अथवा जो यातव्य और विजिगीषु के साथ युद्ध करके अपकार करने में असमर्थ हो उसकी पार्ष्णि को दबाने वाला राजा भी विशेष लाभ में रहता है।

( ३ ) दो समान गुण वाले पार्ष्णिग्राह राजाओं में वही पार्ष्णिग्राह विशेष लाभ

**(१) पार्ष्णिग्राहास्त्रयो ज्ञेयाः शत्रोश्चेष्टानिरोधकाः।**
**सामन्ताः पृष्ठतोवर्गः प्रतिवेशौ च पार्श्वयोः॥**
**(२) अरेर्नेतुश्च मध्यस्थो दुर्बलोऽन्तर्धिरुच्यते।**
**प्रतिघाते बलवतो दुर्गाटव्यपसारवान्॥**

**(३) मध्यमं त्वरिविजिगीष्वोर्लिप्समानयोर्मध्यमस्य पार्ष्णि गृह्णतो लब्धलाभापगमने यो मध्यमं मित्राद्वियोजयति, अमित्रं च मित्रमाप्नोति, सोऽतिसन्धत्ते। सन्धेयश्च शत्रुरुपकुर्वाणो, न मित्रं मित्रभावादुत्क्रान्तम्।**

**(४) तेनोदासीनलिप्सा व्याख्याता।**

**(५) 'पार्ष्णिग्रहणाभियानयोस्तु मन्त्रयुद्धादभ्युच्चयः। व्यायामयुद्धे हि क्षयव्ययाभ्यामुभयोरवृद्धिः। जित्वापि हि क्षीणदण्डकोशः पराजितो भवति' इत्याचार्याः।**

---

में रहता है, जिसके पास कार्यसिद्धि के लिए दूसरे की अपेक्षा अधिक सेना हो और जो दुर्ग आदि से संपन्न हो, अथवा जो यातव्य का पड़ोसी हो। क्योंकि निकटवर्ती को यदि विशेष लाभ होता है तो वह यातव्य के साथ मिलकर विजिगीषु के मूलस्थान को भी बाधा पहुँचा सकता है। परन्तु दूर रहनेवाले से बाधा की आशंका नहीं रहती है।

( १ ) शत्रु के कार्य व्यापार को रोकने वाले पार्ष्णिग्राह तीन प्रकार के होते हैं : १. आक्रमण करने वाले राजा के समीपवर्ती २. पीछे रहने वाले और ३. इधर-उधर के, पार्श्ववर्ती।

( २ ) आक्रमणकारी विजिगीषु और उसके शत्रु के बीच का दुर्बल राजा **अन्तर्धि** कहलाता है। केवल बलवान् का मुकाबला होने पर वह दुर्ग तथा घने जंगल ( अटवी ) में छिप जाता है। इसीलिए उसका ऐसा अन्वर्थ नाम पड़ा।

( ३ ) मध्यम राजा को वश में करने की इच्छा रखने वाले शत्रु और विजिगीषु, दोनों में वही विशेष लाभ में रहता है, जो उसका पार्ष्णिग्राह बनता है, और वहाँ से कुछ लाभ प्राप्त कर मध्यम राजा को अपने मित्र से अलग कर देता है तथा जो स्वयं अपने शत्रु तक को अपना मित्र बना लेता है। उपकार करने वाले शत्रु के साथ भी संधि कर लेनी चाहिए और मित्रभाव से शून्य अपकार करने वाले मित्र को भी छोड़ देना चाहिए।

( ४ ) इसी प्रकार उदासीन राजा को वश में कर लेना चाहिए।

( ५ ) पार्ष्णिग्राह और आक्रमणकारी, इन दोनों राजाओं में वही अधिक उन्नत हो सकता है, जो मन्त्रयुद्ध से शत्रु का नाश करता है। साधारणतया युद्ध दो प्रकार होता है १. व्यायाम युद्ध और २. मंत्रयुद्ध। युद्धभूमि में उतर कर शस्त्रास्त्र आदि के उपायों द्वारा शत्रु को विच्छिन्न कर देना **व्यायामयुद्ध** कहलाता है, और बिना युद्ध-भूमि में गये ही सभी तीक्ष्ण आदि गुप्तचरों द्वारा शत्रु का नाश कराना **मंत्रयुद्ध**

(१) नेति कौटिल्यः । सुमहतापि क्षयव्ययेन शत्रुविनाशोऽभ्युपगन्तव्यः ।

(२) तुल्ये क्षयव्यये यः पुरस्ताद् दूष्यबलं घातयित्वा निश्शल्यः पश्चाद्वश्यबलो युद्धचेत, सोऽतिसन्धत्ते ।

(३) द्वयोरपि पुरस्ताद्दूष्यबलघातिनोर्यो बहुलतरं शक्तिमत्तरमत्यन्तदूष्यं च घातयेत्, सोऽतिसन्धत्ते ।

(४) तेनामित्राटवीबलघातो व्याख्यातः ।

(५) पार्ष्णिग्राहोऽभियोक्ता वा यातव्यो वा यदा भवेत् ।
विजिगीषुस्तदा तत्र नैत्रमेतत्समाचरेत् ॥

(६) पार्ष्णिग्राहो भवेन्नेता शत्रोर्मित्राभियोगिनः ।
विग्राह्य पूर्वमाक्रन्दं पार्ष्णिग्राहाभिसारिणा ॥

(७) आक्रन्देनाभियुञ्जानः पार्ष्णिग्राहं निवारयेत् ।
तथाक्रन्दाभिसारेण पार्ष्णिग्राहाभिसारिणम् ॥

---

कहलाता है । इन दोनों में मन्त्रयुद्ध ही उन्नति का कारण है, क्योंकि व्यायाम युद्ध में क्षय-व्यय होता है । तथैव युद्ध में जीत जाने पर भी सेना और कोष के क्षीण हो जाने के कारण वह राजा प्रायः पराजित-सा ही हो जाता है । यह प्राचीन आचार्यों की राय है ।

( १ ) इसके विपरीत कौटिल्य का कहना है कि चाहे कितना ही क्षय-व्यय क्यों न हो, हर हालत में शत्रु का नाश करना ही उद्देश्य होना चाहिए ।

( २ ) मनुष्य तथा धन की बराबर हानि होने पर जो राजा पहिले अपने दूष्यबल को समाप्त कर फिर निष्कंटक हो अपनी नियमित सेना को साथ लेकर युद्ध करता है वही विशेष लाभ में रहता है ।

( ३ ) यदि दोनों राजा पहिले अपने दूष्यबल को ही समाप्त कर डालते हैं तो उनमें से वही अधिक लाभ में रहता है, जो पहिले बहुसंख्यक शक्तिशाली दूष्यबल को समाप्त करवा डालता है ।

( ४ ) दूष्यबल की ही भाँति शत्रुबल और अटवीबल के संबंध में भी समझ लेना चाहिए ।

( ५ ) विजिगीषु जब पार्ष्णिग्राह, अभियोक्ता अथवा यातव्य हो, उस समय उसे नीचे बताये तरीकों से नेतृत्व करना चाहिए ।

( ६ ) विजिगीषु को यही उचित है कि वह अपने मित्र पर आक्रमण करने वाले शत्रु के पृष्ठवर्ती मित्र ( आक्रंद ) को पहिले अपने मित्र की सेना के साथ भिड़ाकर फिर स्वयं उसकी पार्ष्णि को ग्रहण करे ।

( ७ ) यदि विजिगीषु स्वयं ही आक्रमणकारी हो तो वह अपने पार्ष्णिग्राह को अपने मित्र राजा द्वारा वारित करे और पार्ष्णिग्राह की सेना का मुकाबला अपने मित्र की सेना के द्वारा करे ।

(१) अरिमित्रेण मित्रं च पुरस्तादवघट्टयेत् ।
मित्रमित्रमरेश्चापि मित्रमित्रेण वारयेत् ॥
(२) मित्रेण ग्राहयेत्पार्ष्णिमभियुक्तोऽभियोगिनः ।
मित्रमित्रेण चाक्रन्दं पार्ष्णिग्राहान्निवारयेत् ॥
(३) एवं मण्डलमात्मार्थं विजिगीषुर्निवेशयेत् ।
पृष्ठतश्च पुरस्ताच्च मित्रप्रकृतिसम्पदा ॥
(४) कृत्स्ने च मण्डले नित्यं दूतान् गूढाँश्च वासयेत् ।
मित्रभूतः सपत्नानां हत्वा हत्वा च संवृतः ॥
(५) असंवृतस्य कार्याणि प्राप्तान्यपि विशेषतः ।
निस्संशयं विपद्यन्ते भिन्नप्लव इवोदधौ ॥

इति षाड्गुण्ये सप्तमेऽधिकरणे पार्ष्णिग्राहचिन्ता नाम त्रयोदशोऽध्यायः
आदितो दशोत्तरशततमः ।

—: ० :—

---

( १ ) इस प्रकार अपने पीछे का प्रबन्ध कर सामने से कोई शत्रु मुकाबले में आये तो उससे अपने मित्र को भिड़ा दे । मदद के लिए यदि शत्रु के मित्र का मित्र आवे तो उसका मुकाबला अपने मित्र के मित्र से करे ।

( २ ) यदि विजिगीषु के ऊपर ही चढ़ाई की गई हो तो अपने मित्र को अपने उस आक्रमणकारी का पार्ष्णिग्राह बना दे । यदि आक्रमणकारी का कोई मित्र उस पार्ष्णिग्राह का मुकाबला करने के लिए आवे तो उस अपने मित्र पार्ष्णिग्राह के मित्र द्वारा उसका निवारण करे ।

( ३ ) इस प्रकार विजिगीषु, मित्ररूप प्रकृति की पूर्वोक्त गुणसमृद्धि से युक्त राजमंडल को अपनी सहायता के लिए आगे और पीछे ठीक तरह से स्थापित करे ।

( ४ ) अपनी सहायता के लिए स्थापित किये हुए उस संपूर्ण राजमण्डल में गुप्तचरों और दूतों का सदा उत्तम प्रबंध रखे और शत्रुओं के साथ ऊपर से मित्रता के भाव रखकर एक-एक करके उन्हें मार दे तथा ऊपर से उदासीन एवं निष्पक्ष बना रहे ।

( ५ ) जो राजा अपने गुप्त विचारों या गुप्त मन्त्रणाओं को छिपा कर नहीं रख सकता है वह उन्नतावस्था में पहुँचकर भी नीचे गिर जाता है । समुद्र में नाव के फट जाने से जो दशा सवार की होती है, ठीक वही दशा मन्त्र के फूट जाने पर राजा की होती है ।

षाड्गुण्य नामक सप्तम अधिकरण में पार्ष्णिग्राहचिन्ता नामक
तेरहवाँ अध्याय समाप्त ।

—: ० :—

# हीनशक्तिपूरणम्

**(१) सामवायिकैरेवमभियुक्तो विजिगीषुर्यस्तेषां प्रधानस्तं ब्रूयात्—'त्वया मे सन्धिः, इदं हिरण्यमहं च मित्रम्, द्विगुणा ते वृद्धिः, नार्हस्यात्मक्षयेण मित्रमुखानमित्रान् वर्धयितुम्, एते हि वृद्धास्त्वामेव परिभविष्यन्ति'।**

**(२) भेदं वा ब्रूयात्—'अनपकारो यथाऽहमेतैः सम्भूयाभियुक्तः तथा त्वामप्येते संहितबलाः स्वस्था व्यसने वाऽभियोक्ष्यन्ते। बलं हि चित्तं विकरोति, तदेषां विघातय' इति।**

**(३) भिन्नेषु प्रधानमुपगृह्य हीनेषु विक्रमयेत्। हीनाननुग्राह्य वा प्रधाने। यथा वा श्रेयोऽभिमन्येत, तथा। वैरं वा परैर्ग्राहयित्वा विसंवादयेत्।**

## दुर्बल विजिगीषु के लिए शक्ति-संचय के साधन

( १ ) यदि अनेक राजा मिलकर विजिगीषु पर एक साथ आक्रमण करें तो विजिगीषु उन राजाओं के मुखिया से इस प्रकार कहे : 'मैं आपसे संधि करना चाहता हूँ; यह रहा हिरण्य। अब से मैं आपका मित्र हूँ। आपका भी दुगुना लाभ हो गया है। इसलिए अपने जन-धन का नुकसान कर इन ऊपरी मित्रों को बढ़ावा देना अब आपको उपयुक्त नहीं है। बाद में ये आप पर ही टूट पड़ेंगे। इसलिए आपको इनका साथ नहीं देना चाहिए।'

( २ ) यदि ऐसा संभव न हो तो उनकी आपस में फूट करा दे। फूट डालने के लिए वह कहे कि 'जैसे मुझ निरपराध पर इन सबने आक्रमण किया है, वैसे स्वयं उन्नत होने पर या आपके विपत्तिकाल ये आप पर भी अवश्य आक्रमण करेंगे क्योंकि एकत्र बल अवश्य ही चित्त को विकृत कर देता है। इसलिए आपके लिए उचित यही है कि अभी से आप इनके संगठित बल को छिन्न-भिन्न कर दें।'

( ३ ) इस प्रकार जब उनमें फूट हो जाय तब उनमें किसी प्रधान को अग्रसर करके हीनबल वाले शत्रु पर आक्रमण कर दे। अथवा हीनबल वाले राजाओं को अपनी ओर मिलाकर सामवायिकों के प्रधान पर ही चढ़ाई कर दे। अथवा जिस तरह अपना काम बन सके, वैसा करे। अथवा उनमें से प्रत्येक के हृदय में परस्पर घृणाभाव पैदा कर उन्हें विघटित कर दे।

**(१) फलभूयस्त्वेन वा प्रधानमुपजाप्य सन्धि कारयेत्। अथोभयवेतनाः फलभूयस्त्वं दर्शयन्तः सामवायिकान् 'अतिसंहिताः स्थ' इत्युद्दूषयेयुः। दुष्टेषु सन्धि दूषयेत्। अथोभयवेतना भूयो भेदमेषां कुर्युः—'एवं तद्यदस्माभिर्दर्शितम्' इति। भिन्नेष्वन्यतमोपग्रहेण वा चेष्टेत।**

**(२) प्रधानाभावे सामवायिकानामुत्साहयितारं स्थिरकर्माणमनुरक्तप्रकृतिं लोभाद्भयाद्वा सङ्घातमुपगतं विजिगीषोर्भीतं राज्यप्रतिसम्बन्धं मित्रं चलामित्रं वा पूर्वानुत्तराभावे साधयेत्।**

**(३) उत्साहयितारमात्मनिसर्गेण, स्थिरकर्माणं सान्त्वप्रणिपातेन, अनुरक्तप्रकृतिं कन्यादानयापनाभ्यां, लुब्धमंशद्वैगुण्येन, भीतमेभ्यः कोशदण्डानुग्रहेण, स्वतो भीतं विश्वासयेत्प्रतिभूप्रदानेन, राज्यप्रतिसम्बन्धमेकी-**

---

( १ ) अथवा बहुत-सा धन देकर उस मुखिया को फोड़ ले और खुद जाकर दूसरे राजाओं से चुपचाप सन्धि कर ले। उसके बाद विजिगीषु के उभय वेतन भोगी गुप्तचर उन संगठित राजाओं से, मुखिया को मिली भारी रकम की बात सुनाते हुए उनसे 'तुम सबको उसने ठग लिया है' ऐसा कह कर भड़काये। जब संगठित राजा मुखिया के विरुद्ध हो जाँय तो मुखिया के साथ की गई संधि को तोड़ दे। उसके बाद उभयवेतनभोगी गुप्तचर कहे 'देखो, मैंने पहिले ही कहा था कि मुखिया राजा ने भारी रकम मारी है। तभी तो गड़बड़ हो जाने के कारण इसने विजिगीषु के साथ संधि को तोड़ दिया है। हम इस बात को पहले ही कह चुके थे।' जब वे आपस में फूट जाँय तो दोनों पक्षों में से किसी एक का सहारा लेकर पक्ष के साथ लड़ाई आरंभ कर दे।

( २ ) यदि उन संगठित राजाओं से कोई प्रधान न हो तो उनको उत्साहित करने वाला, स्थिरकर्मा, अनुरक्तप्रकृति, लोभ या भय से संधि में शामिल न होने वाला, विजिगीषु से भयभीत, अपने राज्य से संबन्धित, अपना ही मित्र और चल शत्रु हो तो इन्हें ही वश में करना चाहिए। इनमें अगले-अगले राजा को वश में करने का यत्न करे।

( ३ ) उत्साही राजा से विजिगीषु यों कहे 'मैं अपनी सारी प्रकृति और पुत्रादिसहित आपके अधीन हूँ। अपनी इच्छानुसार जिस कार्य पर चाहें मुझे लगा सकते हैं; किन्तु मेरा उच्छेद न कीजिए।' इस प्रकार आत्मसमर्पण करके उसको वश में करे। स्थिरकर्मा को 'आपने मुझे जीत लिया है' कह कर वश में करे। अनुरक्तप्रकृति राजा को अपनी कन्या देकर वश में करे। लोभी राजा को दुगुना हिस्सा देकर; अपने आप से डरे हुए राजा को विश्वास दिला कर वश में करे। इसी प्रकार अपने राज्य से संबंध रखने वाले राजा को—मैं और आप एक ही हैं। मेरी पराजय में आपकी

**भावोपगमनेन, मित्रमुभयतः प्रियहिताभ्यामुपकारत्यागेन वा, चलामित्रमवधृतमनपकारोपकाराभ्याम् ।**

**(१) यो वा यथायोगं भजेत, तं तथा साधयेत् । सामदानभेददण्डैर्वा यथापत्सु व्याख्यास्यामः ।**

**(२) व्यसनोपघातत्वरितो वा कोशदण्डाभ्यां देशे काले कार्ये वावधृतं सन्धिमुपेयात् । कृतसन्धिर्हीनमात्मानं प्रतिकुर्वीत ।**

**(३) पक्षे हीनो बन्धुमित्रपक्ष कुर्वीत, दुर्गमविषह्यं वा । दुर्गमित्रप्रतिस्तब्धो हि स्वेषां परेषां च पूज्यो भवति ।**

**(४) मन्त्रशक्तिहीनः प्राज्ञपुरुषोपचयं विद्यावृद्धसंयोगं वा कुर्वीत । तथाहि सद्यः श्रेयः प्राप्नोति ।**

**(५) प्रभावहीनः प्रकृतियोगक्षेमसिद्धौ यतेत । जनपदः सर्वकर्मणां योनिः, ततः प्रभावः ।**

---

भी पराजय है । दूसरों के साथ मिल कर मुझ पर आक्रमण करना आपको शोभा नहीं देता है ।' ऐसी आत्मीयता का भाव जताकर अपने वश में करे । मित्र राजा को प्रिय और हितकर वचनों से तथा उससे लिया गया कर उसे वापिस दे, इस प्रकार अपने वश में करे । अस्थिर शत्रु राजा को, उसका उपकार करने तथा अपकार न करने की प्रतिज्ञा से, वश में करे ।

( १ ) अथवा इन संगठित राजाओं में जो जिस तरीके से वश में किया जा सके उसके साथ वैसा ही व्यवहार करे; अथवा साम, दाम आदि उपायों से उनको वश में करे; जैसा कि आपत्प्रकरण में आगे बताया जायेगा ।

( २ ) अथवा विजिगीषु राजा आसन्न विपत्ति को शीघ्र ही दूर करने की इच्छा रखकर संगठित राजाओं से, सेना और कोष के द्वारा सहायता देने की शर्त पर, संधि कर ले और अपनी कमजोरियों को दूर करने का यत्न करे ।

( ३ ) मित्र-रहित विजिगीषु को चाहिए कि वह अधिकाधिक राजाओं को अपना मित्र बनाये । या अभेद्य दुर्गों को बनवाये, क्योंकि मित्रसंपन्न और दुर्गसंपन्न विजिगीषु के विरोध में कोई खड़ा नहीं हो सकता है ।

( ४ ) बुद्धिबल ( मंत्रशक्ति ) से हीन राजा को चाहिए कि वह बुद्धिमान् पुरुषों का संग्रह कर विद्यावृद्ध एवं अनुभवी व्यक्तियों की संगति करे । ऐसा करने से राजा शीघ्र ही अपना कल्याण करता है ।

( ५ ) प्रभुशक्ति ( प्रभाव ) से हीन राजा को चाहिए कि वह अपनी अमात्य प्रकृति तथा प्रयोजनों के योग-क्षेम के लिए महान् यत्न करे । क्योंकि जनपद ही सभी

**(१) तस्य स्थानमात्मनश्च आपदि दुर्गम् ।**

**(२) सेतुबन्धः सस्यानां योनिः । नित्यानुषक्तो हि वर्षगुणलाभः सेतुवापेषु ।**

**(३) वणिक्पथः परातिसन्धानस्य योनिः, वणिक्पथेन हि दण्डगूढपुरुषातिनयनं शस्त्रावरणयानवाहनक्रयश्च क्रियते । प्रवेशो निर्नयनं च ।**

**(४) खनिः संग्रामोपकरणानां योनिः ।**

**(५) द्रव्यवनं दुर्गकर्मणां, यानरथयोश्च ।**

**(६) हस्तिवनं हस्तिनाम् ।**

**(७) गजाश्वखरोष्ट्राणां च व्रजः ।**

**(८) तेषामलाभे बन्धुमित्रकुलेभ्यः समार्जनम् ।**

**(९) उत्साहहीनः श्रेणीप्रवीरपुरुषाणां चोरगणाटविकम्लेच्छजातीनां परापकारिणां गूढपुरुषाणां यथालाभमुपचयं कुर्वीत ।**

---

कार्यों की सिद्धि का मूल है । उसी से कोष तथा सेना का संग्रह और दुर्गों का निर्माण किया जाता है । तभी प्रभावशाली बना जा सकता है ।

( १ ) उस प्रभाव का मूल दुर्ग ही है और उसी दुर्ग से विपत्तिकाल में अपनी भी रक्षा होती है ।

( २ ) अन्न आदि की उत्पत्ति के प्रमुख कारण बाँध हैं । क्योंकि जो अन्न हमें केवल वृष्टि के द्वारा ही प्राप्त हो सकते हैं, बाँधों एक जलाशयों के द्वारा उन अन्नों को को हम सदा ही प्राप्त कर सकते हैं ।

( ३ ) व्यापारिक मार्ग शत्रुओं को धोखा देने के प्रधान कारण हैं, क्योंकि इन्हीं मार्गों द्वारा शत्रुदेश में सेना, तीक्ष्ण, रसद आदि पुरुषों को तथा अस्त्र, शस्त्र को भेजा जा सकता है और घोड़े आदि के क्रय-विक्रय का कार्य शत्रु देश में किया जा सकता है । इन्हीं मार्गों के द्वारा दूसरे देशों के साथ वस्तु-विनिमय और यातायात होता है ।

( ४ ) युद्ध के सभी उपकरणों का मूल स्थान खान है ।

( ५ ) दुर्गों और राजप्रासादों के मूल कारण लकड़ियों के जंगल हैं । इसी प्रकार रथ तथा अन्य सवारियों के कारण भी जंगल ही है ।

( ६ ) हाथियों की उत्पत्ति के मूल कारण हस्तिवन हैं ।

( ७ ) हाथी, घोड़े, गधे और ऊँट आदि पशुओं की उत्पत्ति का कारण व्रज ( गोष्ठ ) है ।

( ८ ) यदि उपर्युक्त साधन अपने राज्य में उपलब्ध या उत्पन्न न हों तो उन्हें अपने मित्रों तथा बंधुओं के कुलों से प्राप्त करना चाहिए ।

( ९ ) उत्साहहीन राजा को चाहिए कि वह श्रेणीपुरुषों, शूरवीरों, शत्रुओं का

**(१) परमिश्रः प्रतीकारमाबलीयसं वा परेषु प्रयुञ्जीत ।**

**(२) एवं पक्षेण मन्त्रेण द्रव्येण च बलेन च ।**
**सम्पन्नः प्रतिनिर्गच्छेत् परावग्रहमात्मनः ।।**

इति षाड्गुण्ये सप्तमेऽधिकरणे हीनशक्तिपूरणं नाम चतुर्दशोऽध्यायः,
आदित एकादशोत्तरशततमः ।

—: ० :—

---

अपकार करने वाले, चोरों आटविकों म्लेच्छों और गुप्तचरों का अपने लाभ के लिए संग्रह करे ।

( १ ) शत्रुओं का बनावटी मित्र बनकर उनका प्रतीकार करता रहे, अथवा पीछे बताये गये आबलीयस अधिकरण के उपायों द्वारा शत्रुओं का प्रतीकार करता रहे ।

( २ ) इस प्रकार बंधु, मित्र, विद्यावृद्ध पुरुषों की संगति से तथा दुर्ग, सेतुबंध से उत्पन्न द्रव्य द्वारा और श्रेणी आदि बल से अपनी शक्ति को पूर्ण करता हुआ विजिगीषु सदैव अपने शत्रु का प्रतीकार करता रहे ।

षाड्गुण्य नामक सप्तम अधिकरण में हीनशक्तिपूरण नामक
चौदहवाँ अध्याय समाप्त ।

—: ० :—

# बलवता विगृह्योपरोधहेतवः दण्डोपनतवृत्तं च

(१) दुर्बलो राजा बलवताऽभियुक्तस्तद्विशिष्टबलमाश्रयेत, यमितरो मन्त्रशक्त्या नातिसन्दध्यात्।

(२) तुल्यबलमन्त्रशक्तीनामायत्तसम्पदो वृद्धसंयोगाद्वा विशेषः।

(३) विशिष्टबलाभावे समबलैस्तुल्यबलसङ्घैर्वा बलवतः सम्भूय तिष्ठेत्, यावन्न मन्त्रप्रभावशक्तिभ्यामतिसन्दध्यात्।

(४) तुल्यमन्त्रप्रभावशक्तीनां विपुलारम्भतो विशेषः।

(५) समबलाभावे हीनबलैः शुचिभिरुत्साहिभिः प्रत्यनीकभूतैर्बलवतः सम्भूय तिष्ठेत्, यावन्न मन्त्रप्रभावोत्साहशक्तिभिरतिसन्दध्यात्। तुल्यो-

---

## बलवान् शत्रु और विजित शत्रु के साथ व्यवहार

( १ ) यदि कोई बलवान् राजा किसी दुर्बल राजा पर आक्रमण करे तो उस दुर्बल राजा को चाहिए कि वह अपने आक्रमणकारी राजा से भी बलवान् किसी ऐसे राजा का आश्रय प्राप्त करे, जिसको कि वह आक्रमणकारी राजा भी मंत्रशक्ति आदि से फोड़ न सके।

( २ ) यदि अनेक समान सैन्यशक्ति और मंत्रशक्ति के राजा हों तो उनमें उसी का आश्रय प्राप्त किया जाय, जिसका प्रकृतिमण्डल बुद्धिमान् हो। यदि इस तरह के भी बहुत-से राजा हों तो उनमें भी उसी का आश्रय लेना चाहिए, जो अत्यन्त अनुभवी विद्वानों से युक्त हो।

( ३ ) यदि आक्रमणकारी की अपेक्षा अधिक शक्तिशाली राजा आश्रय के लिये न मिले तो विजिगीषु को चाहिए कि वह समान शक्ति वाले या समान सैन्य बल वाले अनेक राजाओं के साथ मिलकर अपने शक्तिशाली आक्रमणकारी का तब तक मुकाबला करता रहे, जब तक कि वह शत्रु उन सब मिले हुए राजाओं को मंत्रशक्ति तथा प्रभावशक्ति के द्वारा अलग-अलग न कर दे।

( ४ ) यदि आश्रय लेने योग्य इस प्रकार के अनेक राजा हों तो उनमें से विपुलारंभ राजा का ही आश्रय प्राप्त किया जाय।

( ५ ) यदि समशक्ति राजा भी आश्रय के लिए न मिले तो आक्रमणकारी के प्रबल विरोधी उत्साही, पवित्रहृदय, बलवान् और बहुत से हीनशक्ति राजाओं के साथ मिलकर तब तक अपने शत्रु का मुकाबला करता रहे, जब तक कि अपनी सहायता करने वाले इन राजाओं में मंत्रशक्ति तथा प्रभावशक्ति से भेद डालकर वह

**त्साहशक्तीनां स्वयुद्धभूमिलाभाद्विशेषः। तुल्यभूमीनां स्वयुद्धकाललाभाद्विशेषः। तुल्यदेशकालानां युग्यशस्त्रावरणतो विशेषः।**

**(१) सहायाभावे दुर्गमाश्रयेत, यत्रामित्रः प्रभूतसैन्योऽपि भक्तयवसेन्धनोदकोपरोधं न कुर्यात्, स्वयं च क्षयव्ययाभ्यां युज्येत।**

**(२) तुल्यदुर्गाणां निचयापसारतो विशेषः। निचयापसारसम्पन्नं हि मनुष्यदुर्गमिच्छेदिति कौटिल्यः।**

**(३) तदेभिः कारणैराश्रयेत—**

**(४) 'पार्ष्णिग्राहमासारं मध्यममुदासीनं वा प्रतिपादयिष्यामि। सामन्ताटविकतत्कुलीनावरुद्धानामन्यतमेनास्य राज्यं हारयिष्यामि घातयिष्यामि वा। कृत्यपक्षोपग्रहेण वास्य दुर्गे राष्ट्रे स्कन्धावारे वा कोपं समुत्थापयिष्यामि। शस्त्राग्निरसप्रणिधानैरौपनिषदिकैर्वा यथेष्टमासन्नं**

---

( शत्रु ) अपने से अलग न कर ले। यदि इस प्रकार के भी बहुत से राजा आश्रय के लिए मिलें तो उनमें से वही श्रेष्ठ है जिसके पास युद्ध के योग्य अपनी भूमि हो। यदि इस प्रकार युद्धयोग्य भूमि भी अनेक राजाओं के पास मिले तो उनमें उसी का आश्रय लेना चाहिए, जिससे अपने अनुकूल, युद्ध के योग्य समय भी मिल सके। यदि देश और काल भी अनेक के पास हों तो उनमें से उसी का आश्रय लेना चाहिए, जिसके पास विपुल युद्ध-सामग्री हो।

( १ ) यदि सहायता करने वाला कोई भी राजा आश्रय के लिए न मिले तो ऐसे दुर्ग का सहारा लेना चाहिए जहाँ पर अधिक सैन्यसंपन्न शत्रु भी अपने तथा अपने पशुओं के भोजन योग्य अपेक्षित पदार्थों और इधन, जल आदि के लिए किसी प्रकार की रुकावट न करे। उल्टे शत्रु ही का क्षय व्यय होता रहे।

( २ ) यदि इस प्रकार के अनेक दुर्ग आश्रय के योग्य मिलें तो उनमें से वही दुर्ग श्रेष्ठ है, जहाँ तेल, नमक आदि नित्य वस्तुओं का अच्छा संचय हो और अवसर आने पर जहाँ से निकल जाने की भी आशा हो। क्योंकि आचार्य कौटिल्य का भी यही कहना है कि 'ऐसे ही दुर्ग का आश्रय लिया जाय, जिसमें तेल, नमक आदि नित्य सामग्री हो और जिससे भाग निकलने की संभावना हो।'

( ३ ) नीचे गिनाये कारणों में यदि कोई भी कारण उपस्थित हो तो दुर्ग का आश्रय लेना चाहिए। कारण इस प्रकार हैं :

( ४ ) १. यदि विजिगीषु यह समझे कि मैं पार्ष्णिग्राह, मित्रबल, मध्यम अथवा उदासीन राजा को अपने शत्रु के मुकाबले में युद्ध करने के लिए खड़ा कर सकूँगा तो दुर्ग का आश्रय ले। २. अथवा यदि समझे कि सामन्त, आटविक या आक्रमणकारी के विरोधी उसी के किसी वंशज द्वारा उसका राज्य हरण करा लूँगा या उसको मरवा डालूँगा तो दुर्ग का आश्रय ले। ३. अथवा यदि समझे कि आक्रमणकारी के कर्मचारियों को वश में करके उसके दुर्ग, राष्ट्र तथा उसकी छावनी में विप्लव करा

**हनिष्यामि । स्वयमधिष्ठितेन वा योगप्रणिधानेन क्षयव्ययमेनमुपनेष्यामि । क्षयव्ययप्रवासोपतप्ते वास्य मित्रवर्गे सैन्ये वा क्रमेणोपजापं प्राप्स्यामि । वीवधासारप्रसारवधेन वास्य स्कन्धावारावग्रहं करिष्यामि । दण्डोपनयेन वास्य रन्ध्रमुत्थाप्य सर्वसन्दोहेन प्रहरिष्यामि । प्रतिहतोत्साहेन वा यथेष्टं सन्धिमवाप्स्यामि । मयि प्रतिबन्धस्य वा सर्वतः कोपाः समुत्थास्यन्ति । निरासारं वास्य मूलं मित्राटवीदण्डैरुद्घातयिष्यामि । महतो वा देशस्य योगक्षेममिहस्थः पालयिष्यामि । स्वविक्षिप्तं मित्रविक्षिप्तं वा मे सैन्यमिहस्थस्यैकस्थमविषह्यं भविष्यति । निम्नखातरात्रियुद्धविशारदं वा मे सैन्यं पथ्याबाधमुक्तमासन्ने कर्मणि करिष्यति । विरुद्धदेशकालमिहागतो वा स्वय-**

---

दूँगा तो दुर्ग का आश्रय ले । ४. अथवा यदि समझे कि हथियार, अग्नि, विष आदि का प्रयोग करने वाले गुप्तचरों द्वारा या **औपनिषदिक** प्रकरण में निर्दिष्ट प्रयोगों द्वारा पास आये आक्रमणकारी को मरवा डालूँगा तो दुर्ग का आश्रय ले । ५. अथवा यदि समझे कि स्वयं अधिष्ठित या योगप्रणिधान द्वारा शत्रु का अच्छी तरह क्षय-व्यय कर सकूँगा तो दुर्ग का आश्रय ले । ६. अथवा यदि समझे कि क्षय-व्यय और प्रवास से संतप्त शत्रु के मित्रवर्ग तथा सेना में धीरे-धीरे भेद डाल दूँगा तो दुर्ग का आश्रय ले । ७. अथवा यदि समझे कि शत्रु देश से आने वाले खाद्यपदार्थ, मित्रबल तथा घास, भूसा और ईंधन आदि को बीच में ही नष्ट करके शत्रु की छावनी को पीड़ित कर सकूँगा तो दुर्ग का आश्रय ले । ८. अथवा यदि समझे कि अपनी कुछ सेना को शत्रु की छावनी में छिपे तौर से ले जाकर उसकी निर्बलताओं का पता लगाऊँगा और तब पूरे सैन्यबल के साथ उस पर हमला बोल दूँगा तो दुर्ग का आश्रय ले । ९. अथवा यदि समझे कि किसी तरह शत्रु के उत्साह को दबा करके उसके साथ संधि कर लूँगा, या मुझ पर आक्रमण करने वाले शत्रु पर सारा राज-मंडल कुपित हो उठेगा तो दुर्ग का आश्रय ले । १०. अथवा यदि समझे कि मित्र द्वारा प्राप्त उसकी सैनिक सहायता को रोक कर उसकी राजधानी को अपने मित्रबल और आटविकों द्वारा रौंदा दूँगा तो दुर्ग का आश्रय ले । ११. अथवा यह समझे कि यहीं रहकर मैं अपने महान् देश का योग-क्षेम करता रहूँगा तो दुर्ग का आश्रय ले । १२. अथवा यदि समझे कि यहीं पर रह कर मेरे अथवा मित्र के कार्य से अन्यत्र भेजी हुई सेना यहाँ आकर मेरे साथ मिली रहेगी और शत्रु के वश में न हो सकेगी तो दुर्ग का आश्रय ले । १३. अथवा यदि समझे कि जमीन के नीचे खाई खोदकर और रात में युद्ध करने में चतुर मेरी सेना रास्ते की थकावट को दूर करके अवसर आने पर अच्छी तरह कार्य कर सकेगी तो दुर्ग का आश्रय ले । १४. अथवा यदि समझे कि प्रतिकूल देश-काल में आये हुए आक्रमणकारी को अपने आप क्षय-व्यय भुगतना पड़ेगा तो दुर्ग का आश्रय ले । १५. अथवा यदि समझे कि इस देश पर अति क्षय-व्यय सहन करने वाला राजा ही चढ़ाई कर पायेगा, क्योंकि यहाँ दुर्ग, जंगल और बहि-

**मेव क्षयव्ययाभ्यां न भविष्यति । महाक्षयव्ययाभिगम्योऽयं देशो दुर्गाटव्यपसारबाहुल्यात्, परेषां व्याधिप्रायः, सैन्यव्यायामानामलब्धभौमश्च, तमापद्गतः प्रवेक्ष्यति । प्रविष्टो वा न निर्गमिष्यति' इति ।**

**(१) कारणाभावे बलसमुच्छ्रये वा परस्य दुर्गमुन्मुच्यापगच्छेत् । अग्निपतङ्गवदमित्रे वा प्रविशेत् । अन्यतरसिद्धिर्हि त्यक्तात्मनो भवतीत्याचार्याः।**

**(२) नेति कौटिल्यः । सन्धेयतामात्मनः परस्य चोपलभ्य सन्दधीत । विपर्यये विक्रमेण सिद्धिमपसारं वा लिप्सेत ।**

**(३) सन्धेयस्य वा दूतं प्रेषयेत् । तेन वा प्रेषितमर्थमानाभ्यां सत्कृत्य ब्रूयात्—इदं राज्ञः पण्यागारम्, इदं देवीकुमाराणां देवीकुमारवचनाद्, इदं राज्यमहं च त्वदर्पणः इति ।**

**(४) लब्धसंश्रयः समयाचारिकवद्भर्तरि वर्तेत । दुर्गादीनि च कर्माण्यावाहविवाहपुत्राभिषेकाश्वपण्यहस्तिग्रहणसत्रयात्राविहारगमनानि चानुज्ञातः कुर्वीत । स्वभूम्यवस्थितप्रकृतिसन्धिमुपघातमपसृतेषु वा सर्वमनुज्ञातः**

---

र्गामी मार्गों की अधिकता है तो दुर्ग का आश्रय ले । १६. और यदि समझे कि विदेश से आने वाले लोगों के लिये यह स्थान कष्टकर है । सेनाओं की कवायद के लिए भी यहाँ उचित भूमि नहीं है । इसलिये प्रत्येक आक्रमणकारी यहाँ आपद्ग्रस्त होगा । यदि किसी तरह वह यहाँ आ भी गया तो फिर उसका बाहर सकुशल निकलना कठिन है तो अवश्य ही दुर्ग का आश्रय ले ।

( १ ) यदि उक्त परिस्थितियाँ न हों और शत्रु की सेना बहुत बलवान् एवं बहुसंख्यक हो तो पूर्वाचार्यों का कहना है कि या तो दुर्ग छोड़ कर चले जाना चाहिए अथवा अग्नि में पतंगे के समान शत्रु-शैन्य पर पिल पड़ना चाहिए । क्योंकि आत्म-मोह छोड़ कर इस प्रकार लड़ाई में कूद पड़ने पर कभी-कभी जीत भी हो जाती है ।

( २ ) इसके विपरीत कौटिल्य का कहना है कि पहिले तो शत्रु की और अपनी योग्यता को देखकर संधि कर लेनी चाहिए । यदि संधि होनी किसी तरह भी संभव न हो तो पराक्रम के द्वारा ही सिद्धिलाभ करना चाहिए । अथवा यदि समझे कि संधि होनी सर्वथा ही असंभव है तो स्थान को ही छोड़ दे ।

( ३ ) अथवा उक्त स्थिति में किसी धर्मविजेता शक्तिशाली राजा के पास अपना दूत भेजे । अथवा उसके भेजे हुए दूत को धन-मान से संतुष्ट कर उससे कहे, यह मेरी मूल्यवान् भेंट विजेता के लिए और यह महारानी तथा राजकुमारों की भेंट विजेता की महारानी एवं राजकुमारों के लिए लेते जायँ । उनको मेरा यह संदेश भी पहुँचा दीजिए कि मेरे तथा इस राज्य के मालिक भी वे ही हैं ।

( ४ ) इस युक्ति से यदि विजेता का आश्रय मिल जाय तो समय को देखते हुए उसके साथ विजिगीषु सेवक की तरह व्यवहार करे और दुर्ग आदि कार्यों के निर्माण, विवाह, पुत्र का राज्याभिषेक, घोड़े खरीदने, हाथियों को पकड़ने, यज्ञ करने, तीर्थाटन

**कुर्वीत । दुष्टपौरजानपदो वा न्यायवृत्तिरन्यां भूमिं याचेत । दूष्यवदुपांशुदण्डेन वा प्रतिकुर्वीत । उचितां वा मित्राद् भूमिं दीयमानां न प्रतिगृह्णीयात् । मन्त्रिपुरोहितसेनापतियुवराजानामन्यतममदृश्यमाने भर्तरि पश्येत् ।**

**(१) यथाशक्ति चोपकुर्यात् । दैवतस्वस्तिवाचनेषु तत्परा आशिषो वाचयेत् । सर्वत्रात्मनिसर्गं गुणं ब्रूयात् ।**

**(२) संयुक्तबलवत्सेवी विरुद्धः शङ्कितादिभिः ।**
**वर्तेत दण्डोपनतो भर्तर्येवमवस्थितः ॥**

इति षाड्गुण्ये सप्तमेऽधिकरणे बलवता विगृह्योपरोधहेतवः दण्डोपनतवृत्तं नाम पञ्चदशोऽध्यायः, आदितो द्वादशोत्तरशततमः ।

—: ० :—

---

करने और मनोविनोद के लिए बाहर जाने-आने आदि सब कार्यों को वह विजेता की अनुमति से करे । अपने राज्य के प्रकृतिमण्डल के साथ संधि आदि या उपघात अथवा दूसरे राज्य में भाग जाने वाले के लिए किसी भी प्रकार की दण्ड व्यवस्था, विजेता राजा की अनुमति से ही करे । यदि ऐसा राजा अन्यायी हो जाय या पौर जनपद उससे विरुद्ध हो जाय तो ऐसी स्थिति में वह अपनी पैतृक भूमि को छोड़कर अपने निवास के लिए दूसरी भूमि की याचना करे; अथवा दूष्य द्वारा उपांशुदण्ड से उसका प्रतीकार किया जाय । यदि विजेता राजा अपने किसी पराजित मित्र राजा की भूमि छीन कर उसको दे तो उसे वह स्वीकार न करे । विजयी राजा की सेवा करते हुए पराजित राजा को चाहिए कि वह अपने मंत्री, पुरोहित, सेनापति और युवराज आदि किसी को भी सेवक की अवस्था में न दिखे; अर्थात् उसके सेवक जब उसे देखें तो अपने स्वामी के ही रूप में देखें; किसी के सेवक के रूप में नहीं ।

( १ ) पराजित राजा को चाहिए कि समय-समय पर वह अपने मालिक को उपहार देता रहे । देवाराधन और मांगलिक कृत्यों के अवसर पर अपने मालिक के लिए दुआयें माँगे । सबके सामने स्वयं को स्वामी का समर्पण बताये तथा उसके गुणों का कीर्तन करे ।

( २ ) इस प्रकार अपने विजेता राजा की सेवा करते हुए विजित राजा को चाहिए कि वह उसके शक्तिशाली अमात्य आदि के साथ सदा अनुकूल बर्ताव करे और जो विजेता के विरोधी हों या जिन पर उसका शक हो, उनके सदा वह विरुद्ध रहे ।

षाड्गुण्य नामक सप्तम अधिकरण में पन्द्रहवाँ अध्याय समाप्त ।

—: ० :—

प्रकरण १२१

अध्याय १६

# दण्डोपनायिवृत्तम्

(१) अनुज्ञातस्तद्धिरण्योद्वेगकरं बलवान् विजिगीषमाणो, यतः स्वभूमिः स्वर्तुवृत्तिश्च स्वसैन्यानामदुर्गापसारः शत्रुरपार्ष्णिरनासारश्च, ततो यायात् । विपर्यये कृतप्रतीकारो यायात् ।

(२) सामदानाभ्यां दुर्बलानुपनमयेद्, भेददण्डाभ्यां बलवतः ।

(३) नियोगविकल्पसमुच्चयैश्चोपायानामनन्तरैकान्तराः प्रकृतीः साधयेत् ।

(४) ग्रामारण्योपजीविव्रजवणिक्पथानुपालनमुज्झितापसृतापकारिणां चार्पणमिति सान्त्वमाचरेत् । भूमिद्रव्यकन्यादानमभयस्य चेति दानमाचरेत् ।

## अधीनस्थ राजाओं के प्रति विजेता विजिगीषु का व्यवहार

( १ ) यदि पराजित राजा द्वारा प्रतिज्ञात हिरण्यसंधि का उल्लंघन विजेता राजा को उद्विग्न करे तो बलवान् विजिगीषु को चाहिए कि वह शत्रु के उस प्रदेश पर चढ़ाई कर दे, जहाँ के रास्ते उसके अपने अधिकार में हों; अपनी सेना के लिए अनुकूल समय एवं उसके खाने-पीने की पूरी सुविधा हो, जहाँ न तो शत्रु के दुर्ग हों तथा निकल भागने के लिए भी मार्ग न हो, जहाँ पर शत्रु राजा विजिगीषु से पार्ष्णिग्राह को न भिड़ा दे, और जहाँ उसके मित्रबल का अभाव हो । यदि ऐसी कोई भी सुविधा न हो तो इन सबका प्रतीकार करके ही वह आक्रमण करे ।

( २ ) दुर्बल राजाओं को शांति या धन देकर अपने वश में करना चाहिए और और बलवान् राजा को भेद तथा दण्ड के द्वारा ।

( ३ ) नियोग, विकल्प और समुच्चय आदि उपायों से शत्रु-प्रकृति और मित्र-प्रकृति को वश में करना चाहिए ।

( ४ ) गाँव या जंगल में रहने वाली गाय, भैंसों की एवं जल, स्थल के व्यापारी मार्गों की रक्षा करना, दूसरे राजा के भय से या स्वयं अपकार करके भागे हुए दूष्य, अमात्य आदि प्रकृतियों को खोज-खोज कर के देना, आदि उपकार कार्यों से शत्रु राजा के साथ सामरूप उपाय का प्रयोग करना चाहिए । इसी प्रकार भूमिदान, द्रव्यदान, कन्यादान, अभयदान आदि उपकारों से दुर्बल राजा के साथ दानरूप उपाय का प्रयोग करना चाहिए ।

**(१) सामन्ताटविकतत्कुलीनावरुद्धानामन्यतमोपग्रहेण कोशदण्डभूमिदाययाचनमिति भेदमाचरेत् । प्रकाशकूटतूष्णींयुद्धदुर्गलम्भोपायैरमित्रप्रग्रहणमिति दण्डमाचरेत् ।**

**(२) एवमुत्साहवतो दण्डोपकारिणः स्थापयेत्, स्वप्रभाववतः कोशोपकारिणः, प्रज्ञावतो भूम्युपकारिणः ।**

**(३) तेषां पण्यपत्तनग्रामखनिसञ्जातेन रत्नसारफल्गुकुप्येन द्रव्यहस्तिवनव्रजसमुत्थेन यानवाहनेन वा यद्बहुश उपकरोति तच्चित्रभोगं, यद्दण्डेन कोशेन वा महदुपकरोति तन्महाभोगं, यद्दण्डकोशभूमीरुपकरोति तत्सर्वभोगम् ।**

---

( १ ) विजिगीषु को चाहिए कि वह सामन्त, आटविक, शत्रु राजा का सम्बन्धी, नजरबन्द शत्रु राजा का पुत्र आदि, इनमें से किसी एक को अपने वश में करके उसके द्वारा कोष, सेना, भूमि और दायभाग की याचना करवा कर बलवान् राजा एवं उसके सामन्त आदि के बीच भेद डाल देना चाहिए अर्थात् इन योजनाओं द्वारा भेदरूप उपाय का प्रयोग करना चाहिए। इसी प्रकार प्रकाशयुद्ध ( देश-काल की सूचना देकर किया जाने वाला युद्ध ), कूटयुद्ध ( देश-काल की सूचना दिये बिना या गलत सूचना देकर किया जाने वाला युद्ध ) और तूष्णीयुद्ध ( छिपे तौर पर गूढपुरुषों द्वारा शत्रु को मरवा देना ), इन तीन प्रकार के युद्धों द्वारा, तथा **दुर्गलम्भोपाय** प्रकरण में निर्दिष्ट उपायों द्वारा शत्रु को वश में करना चाहिए—यही दण्डरूप उपाय के प्रयोग का तरीका है।

( २ ) इस प्रकार के उपायों द्वारा अपने अधीन हुए उत्साही एवं सेना का उपकार करने वाले राजाओं को सैनिक कार्यों पर नियुक्त किया जाय। इसी प्रकार कोषसंपन्न व्यक्तियों को कोष संबंधी कार्यों पर और सुयोग्य मन्त्रशक्ति सम्पन्न व्यक्तियों को भूमि सम्बन्धी कार्यों पर नियुक्त किया जाय, जो कि उनकी यथोचित व्यवस्था कर सकें।

( ३ ) अधीनस्थ मित्र राजाओं में से जो राजा बाजारों, नगरों, गाँवों, खदानों से उत्पादित रत्न एवं चंदन आदि पदार्थ, शंख आदि फल्गु पदार्थ तथा वस्त्र आदि द्रव्यों को देकर, अथवा लकड़ियों-हाथियों के जंगल, गाय, रथ; हाथी आदि को देकर विजिगीषु राजा का अत्यन्त उपकार करता है वह मित्र, **चित्रभोग** कहा जाता है। जो मित्र राजा सेना और कोष के द्वारा विजिषीषु का महान् उपकार करता है वह **महाभोग** कहलाता है। जो मित्र राजा सेना, कोष और भूमि आदि के द्वारा विजिगीषु का सर्वांगीर्ण उपकार करता है उसको **सर्वभोग** कहते हैं।

**(१) यदमित्रमेकतः प्रतिकरोति तदेकतोभोगि। यदमित्रमासारं चापकरोति तदुभयतोभोगि। यदमित्रासारप्रतिवेशाटविकान् सर्वतः प्रतिकरोति तत्सर्वतोभोगि।**

**(२) पार्ष्णिग्राहश्चाटविकः शत्रुमुख्यः शत्रुर्वा भूमिदानसाध्यः कश्चिदासाद्येत, निर्गुणया भूम्यैनमुपग्राहयेत्, अप्रतिसम्बद्धया दुर्गस्थम्, निरुपजीव्ययाटविकम्, प्रत्यादेयया तत्कुलीनम्, शत्रोरुपच्छिन्नया शत्रोरुपरुद्धम्, नित्यामित्रया श्रेणीबलम्, बलवत्सामन्तया संहतबलम्, उभाभ्यां युद्धे प्रतिलोमम्, अलब्धव्यायामयोत्साहिनम्, शून्ययारिपक्षीयम्, कर्शितयापवाहितम्, महाक्षयव्ययनिवेशया गतप्रत्यागतम्, अनुपाश्रयया प्रत्यपसृतम्, परेणानधिवास्यया स्वयमेव भर्तारमुपग्राहयेत्।**

---

( १ ) अनर्थ का निवारण करके उपकार करने वाले मित्र-राजाओं में से जो राजा एक ही शत्रु का प्रतीकार करके विजिगीषु का उपकार करता है वह **एकतोभोगी**, जो मित्रराजा शत्रु और शत्रुमित्र ( आसार ), इन दोनों का प्रतीकार करके विजिगीषु का उपकार करता है वह **उभयतोभोगी**, और जो मित्रराजा शत्रु, शत्रु-मित्र, पड़ोसी शत्रुराजा ( प्रतिवेशी ) तथा आटविक आदि सबका प्रतीकार करके विजिगीषु का उपकार करता है वह **सर्वतोभोगी** कहा जाता है।

( २ ) यदि पार्ष्णिग्राह, आटविक, शत्रु की अमात्य प्रकृति अथवा स्वयं शत्रु राजा ही भूमि देने पर अधीनता स्वीकार कर ले तो गुणरहित ( ऊसर ) भूमि देकर ही उसे अपने अधीन किया जाय। यदि पार्ष्णिग्राह आदि दुर्ग में रहते हों तो उन्हें ऐसी भूमि दी जाय, जिसका दुर्ग से कोई संबंध न हो। आटविक को ऐसी भूमि दी जाय, जिसमें कृषि आदि न हो सके। शत्रुकुल के व्यक्तियों को ऐसी भूमि दी जाय, जिसका किसी समय अपहरण किया जा सके। नजरबंद शत्रु के पुत्र आदि को ऐसी भूमि दी जाय, जिसको शत्रु से छीना गया हो। श्रेणीबल ( नेतारहित सेना ) को ऐसी भूमि दी जाय, जिसमें नित्य ही उपद्रव होते हों। संहतबल ( नेतासहित सेना ) को ऐसी भूमि दी जाय, जिसका सामन्त अत्यधिक बलवान् हो। कूट युद्ध करने वाले शत्रु को ऐसी भूमि दी जाय, जहाँ सदा ही उपद्रव होते हैं, तथा जिसका सामन्त भी अधिक बलवान् हो। उत्साही शत्रु को ऐसी भूमि दी जाय, जिसमें सेना की कवायद के लिए स्थान न हो। शत्रुपक्ष के किसी भी व्यक्ति को ऐसी भूमि दी जाय, जो कि किसी काम की न ( शून्य ) हो। सन्धि करके फिर तोड़ देने वाले राजा को ऐसी भूमि दी जाय, जिसमें सदैव शत्रु सेना एवं आटविक के उपद्रव होते हों। एक बार शत्रु से मिलकर जो फिर अपने से मिलना चाहे उसको ऐसी भूमि दी जाय, जिसको बसने योग्य बनाने के लिए अत्यधिक पुरुषों का क्षय एवं धन का व्यय करना पड़े।

**(१) तेषां महोपकारं निर्विकारं चानुवर्तयेत्। प्रतिलोममुपांशुना साधयेत्। उपकारिणमुपकारशक्त्या तोषयेत्। प्रयासतश्चार्थमानौ कुर्यात्। व्यसनेषु चानुग्रहम्। स्वयमागतानां यथेष्टदर्शनं प्रतिविधानं च कुर्यात्। परिभवोपघातकुत्सातिवादांश्चैषु न प्रयुञ्जीत। दत्त्वा चाभयं पितेवानुगृह्णीयात्। यश्चास्यापकुर्यात्तद्दोषमभिविख्याप्य प्रकाशमेनं घातयेत्। परोद्वेगकारणाद्वा दाण्डकर्मिकवच्चेष्टेत। न च हतस्य भूमिद्रव्यपुत्रदारानभिमन्येत। कुल्यानप्यस्य स्वेषु पात्रेषु स्थापयेत्। कर्मणि मृतस्य पुत्रं राज्ये स्थापयेत्।**

---

शत्रु के डर से अपने देश में शरण पाये पुरुष को ऐसी भूमि देकर वश में करना चाहिए, जो कि दुर्ग आदि से रहित हो। और जिस भूमि में उसके असली मालिक की सेवा में कोई नहीं टिक सकता उस भूमि को उसके असली मालिक को लौटाकर उसे वश में किया जाय।

( १ ) अपने अधीनस्थ राजाओं में से जो राजा विजेता का महान् उपकार करता हो तथा उसकी ओर से अपने मन में कोई कलुष न रखता हो, उसके साथ ऐसा व्यवहार रखा जाय जिससे उसको किसी भी प्रकार की हानि न पहुँचे। किन्तु जो विरुद्ध आचरण करे उसे उपांशुदंड से सीधा किया जाय, क्योंकि प्रकट दण्ड से अन्य वशीभूत राजाओं में उद्वेग फैलने की सम्भावना रहती है। अपना उपकार करने वाले प्रत्येक राजा को सदैव सन्तुष्ट रखा जाय और श्रम-सहयोग के अनुसार उसको यथोचित धन-सत्कार दिया जाय। उसके ऊपर किसी प्रकार की विपत्ति आ पड़े तो सान्त्वना, सहानुभूति से सदैव उस पर अनुग्रह रखा जाय। यदि ऐसे शुभचिन्तक राजा बिना बुलाये ही अपने राज्य में आ जाँय तो उनके साथ अच्छी तरह प्रेमपूर्वक मिला जाय। किन्तु उनकी ओर से किसी भी प्रकार की बुराई की आशंका हो तो उनसे अपनी रक्षा करने के लिए हर समय सतर्क रहा जाय। इस प्रकार के अधीनस्थ राजाओं के सम्बन्ध में तिरस्कार, कटुवाक्य, निन्दा या अति स्तुति आदि का प्रयोग कभी न किया जाय। अभयदान देकर उन पर पिता के समान अनुग्रह करता जाय। किन्तु उनमें जो भी विजेता का अपकार करे, उसके उस अपराध को सर्वत्र प्रचारित कराके प्रकट रूप में उसका वध करवा दिया जाय। यदि इस बात का भय हो कि प्रकट-दण्ड देने से दूसरे अधीनस्थ राजा भड़क उठेंगे तो दाण्डकर्मिक प्रकरण में निर्दिष्ट उपायों से उसका प्रतीकार किया जाय। अर्थात् उसको उपांशुदंड दिया जाय। किन्तु इस प्रकार से दण्डित राजा की भूमि, द्रव्य, पुत्र, स्त्री आदि का अपहरण न किया जाय। बल्कि उन सबको तथा उनके दूसरे सम्बन्धियों को भी यथोचित नौकरियों पर नियुक्त किया जाय। यदि किसी राजा को वश में करते समय युद्ध में उसकी मृत्यु हो जाय तो उसके पुत्र को राजा बनाया जाय।

**(१) एवमस्य दण्डोपनताः पुत्रपौत्राननुवर्तन्ते ।**

**(२) यस्तूपनतान् हत्वा बद्ध्वा वा भूमिद्रव्यपुत्रदारानभिमन्येत, तस्योद्विग्नं मण्डलमभावायोत्तिष्ठते । ये चास्यामात्याः स्वभूमिष्वायत्तास्ते चास्योद्विग्ना मण्डलमाश्रयन्ते । स्वयं वा राज्यं, प्राणान् वास्याभिमन्यन्ते ।**

**(३) स्वभूमिषु च राजानस्तस्मात्साम्नानुपालिताः ।**
**भवन्त्यनुगुणा राज्ञः पुत्रपौत्रानुवर्तिनः ।।**

इति षाड्गुण्ये सप्तमेऽधिकरणे दण्डोपनायिवृत्तं नाम षोडशोऽध्याय, आदितस्त्रयोदशोत्तरशततमः ।

—: ० :—

( १ ) विजिगीषु राजा के इस प्रकार के सदाचरण से न केवल दण्डोपनत राजा उसकी अधीनता स्वीकार कर लेते हैं, बल्कि उसके पुत्र और पौत्र आदि के भी अनुगामी बन जाते हैं ।

( २ ) इसके विपरीत जो विजिगीषु राजा दण्डोपनत राजाओं को मार कर या उनको कैद में डाल कर उनके द्रव्य, स्त्री, पुत्र भूमि आदि का अपहरण करता है उससे कुपित हुआ सारा राज-मण्डल उसका विध्वंस करने के लिए तैयार हो जाता है । ऐसे विजिगीषु के अमात्य आदि उच्चाधिकारी उससे कुपित होकर बदला लेने की भावना से राज-मण्डल में जा मिलते हैं, अथवा स्वयं ही उसके राज्य या प्राणों पर अधिकार कर लेते हैं ।

( ३ ) इसलिए जो राजा अपनी-अपनी भूमि में रहकर राज्य का उपभोग करते रहते हैं, और जो विजिगीषु साम उपाय के द्वारा ही उनकी रक्षा करता है, वे उसके अनुकूल बने रहते हैं और उसके पुत्र-पौत्र आदि के भी अनुगामी बने रहते हैं ।

षाड्गुण्य नामक सप्तम अधिकरण में दण्डोपनायिवृत्त नामक सोलहवाँ अध्याय समाप्त ।

—:०:—

# सन्धिकर्म, सन्धिमोक्षश्च

(१) शमः सन्धिः समाधिरित्येकोऽर्थः। राज्ञां विश्वासोपगमः शमः सन्धिः समाधिरिति।

(२) सत्यं शपथो वा चलः सन्धिः। प्रतिभूः प्रतिग्रहो वा स्थावरः। इत्याचार्याः।

(३) नेति कौटिल्यः। सत्यं शपथो वा परत्रेह च स्थावरः सन्धिः, इहार्थ एव प्रतिभूः प्रतिग्रहो वा बलापेक्षः।

(४) 'संहिताः स्मः' इति सत्यसन्धाः पूर्वे राजानः सत्येन सन्दधिरे।

(५) तस्यातिक्रमे शपथेन अग्न्युदकसीताप्राकारलोष्टहस्तिस्कन्धाश्वपृष्ठरथोपस्थशस्त्ररत्नबीजगन्धरससुवर्णहिरण्यान्यालेभिरे—हन्युरेतानि त्यजेयुश्चैनं यः शपथमतिक्रामेदिति।

## संधिकर्म और संधिमोक्ष

( १ ) 'शम', 'संधि' और 'समाधि' ये तीनों शब्द समानार्थक हैं। वह इसलिए कि इन तीनों के कारण ही राजाओं में परस्पर दृढ़ विश्वास की स्थापना होती है।

( २ ) पूर्वाचार्यों का मत है कि 'जो सन्धि सत्य की शपथ लेकर की जाती है वह स्थायी नहीं होती है और जो सन्धि जामिन ( प्रतिभू ) रखकर अथवा राजपुत्र को बंधक ( प्रतिग्रह ) रखकर की जाती है वह स्थायी होती है।'

( ३ ) परन्तु कौटिल्य इस मन्तव्य को नहीं मानता है। उसका कहना है कि 'जो सन्धि सत्यनिष्ठ होकर और शपथपूर्वक की जाती है वह परम विश्वसनीय तथा स्थायी होती है, क्योंकि ऐसी सन्धि तोड़ने वालों को यह भय बना रहता है कि परलोक में नरक तथा इस लोक में बदनामी होगी। इसके विपरीत जो सन्धि जामिन ( प्रतिभू ) और बंधक ( प्रतिग्रह ) रखकर की जाती है उसको तोड़ने पर इसी लोक में थोड़ा-बहुत अनर्थ होता है, परलोक का नहीं। इसलिए उसको तोड़ने का भय बना रहता है। इसके अतिरिक्त यह सन्धि तभी निभायी जा सकती है, जब प्रतिभू बलवान् तथा प्रतिग्रह अपने दाता का प्रेमपात्र हो।

( ४ ) प्राचीन सत्यवादी राजा लोग 'हम सन्धि करते हैं' मौखिक रूप से इतनी मात्र बात कहकर दृढ़ सन्धि किया करते थे।

( ५ ) सच्चाई का अतिक्रमण करने पर वे लोग अग्नि, जल, भूमि, मकान, हाथी का कंधा, घोड़े की पीठ, रथ में बैठने की जगह, हथियार, रत्न, धान्य के

**(१) शपथातिक्रमे महतां तपस्विनां मुख्यानां वा प्रातिभाव्यबन्धः प्रतिभूः। तस्मिन् यः परावग्रहसमर्थान् प्रतिभुवो गृह्णाति, सोऽतिसन्धत्ते। विपरीतोऽतिसन्धीयते।**

**(२) बन्धुमुख्यप्रग्रहः प्रतिग्रहः। तस्मिन् यो दूष्यामात्यं दूष्यापत्यं वा ददाति सोऽतिसन्धत्ते। विपरीतोऽतिसन्धीयते। प्रतिग्रहग्रहणविश्वस्तस्य हि परश्छिद्रेषु निरपेक्षः प्रहरति।**

**(३) अपत्यसमाधौ तु। कन्यापुत्रदाने ददत्तु कन्यामतिसन्धत्ते। कन्या ह्यदायादा परेषामेवार्थाय क्लेशाय च। विपरीतः पुत्रः।**

**(४) पुत्रयोरपि जात्यं प्राज्ञं शूरं कृतास्त्रमेकपुत्रं वा ददाति, सोऽतिसन्धीयते। विपरीतोऽतिसन्धत्ते। जात्यादजात्यो हि लुप्तदायादसन्तानत्वा-**

---

बीज, चन्दन, घी, सुवर्ण और हिरण्य आदि वस्तुओं को स्पर्श करते हुए 'ये चीजें उस व्यक्ति को नष्ट कर दें, जो इस प्रतिज्ञा का अतिक्रमण करेगा' इस प्रकार शपथ लेकर सन्धि कर लेते थे।

( १ ) शपथ का अतिक्रमण कर देने पर बड़े-बड़े तपस्वियों या ग्राममुख्यों को प्रतिभू बनाकर सन्धि करनी चाहिये, क्योंकि किसी भी सन्धि को बनाए रखने का दायित्व इन्हीं लोगों पर निर्भर होता है। प्रतिभू बना कर सन्धि करने वाले राजाओं में वही राजा विशेष लाभ में रहता है, जो प्रतिज्ञा या सन्धि तोड़ने वाले शत्रुओं को दमन करने में समर्थ व्यक्तियों को अपना प्रतिभू बनाता है। और दूसरा राजा अपने शत्रु से निश्चित ही धोखा खाता है।

( २ ) किसी दूसरे से, मौखिक प्रतिज्ञा को बनाये रखने के लिए, उस व्यक्ति के भाई, बन्धु या मुख्य पुरुष को लेना प्रतिग्रह कहलाता है। इस प्रकार प्रतिग्रह के द्वारा सन्धि करने वाले राजाओं में वही राजा विशेष लाभ में रहता है, जो अपने राजद्रोही अमात्य या राजद्रोही पुत्र को सन्धि में देता है और दूसरा राजा ऐसी दशा में निश्चित ही धोखा खाता है। क्योंकि लेने वाला तो यह समझता है कि मेरे पास इसके अमात्य आदि हैं। वह मेरे विरुद्ध कुछ नहीं कर सकता। किन्तु देने वाला, लेने वाले की दुर्बलताओं को पकड़ते ही अपने प्रतिग्रहों की अपेक्षा न करता हुआ तत्काल हमला बोल देता है।

( ३ ) पुत्र आदि को देकर सन्धि करने वाले राजाओं में वही राजा लाभ में रहता है, जो कि पुत्र और कन्या को दिये जाने के विकल्प में कन्या को भेज देता है, क्योंकि कन्या दाय की अधिकारिणी नहीं होती तथा दूसरों के उपभोग्य होती है, पिता के लिए क्लेश का ही कारण होती है, किन्तु पुत्र दायभागी होता है और पिता के क्लेशों को दूर करने वाला भी।

( ४ ) पुत्रों को देकर संधि करने वाले राजाओं में वह राजा अवश्य ही धोखा खाता है, जो कि अपने कुलीन, बुद्धिमान्, शूर, अस्त्र-शस्त्रज्ञ अथवा इकलौते पुत्र को

**दाधातुं श्रेयान् । प्राज्ञादप्राज्ञो मन्त्रशक्तिलोपात् । शूरादशूर उत्साहशक्तिलोपात् । कृतास्त्रदकृतास्त्रः प्रहर्तव्यसम्पल्लोपात् । एकपुत्रादनेकपुत्रो निरपेक्षत्वात् ।**

**(१) जात्यप्राज्ञयोर्जात्यमप्राज्ञमैश्वर्यप्रकृतिरनुवर्तते । प्राज्ञमजात्यं मन्त्राधिकारः । मन्त्राधिकारेऽपि वृद्धसंयोगाज्जात्यकः प्राज्ञमतिसन्धत्ते ।**

**(२) प्राज्ञशूरयोः प्राज्ञमशूरं मतिकर्मणां योगोऽनुवर्तते । शूरमप्राज्ञं विक्रमाधिकारः । विक्रमाधिकारेऽपि हस्तिनमिव लुब्धकः प्राज्ञः शूरमतिसन्धत्ते ।**

**(३) शूरकृतास्त्रयोः शूरमकृतास्त्रं विक्रमव्यवसायोऽनुवर्तते । कृतास्त्रमशूरं लक्षलम्भाधिकारः । लक्षलम्भाधिकारेऽपि स्थैर्यप्रतिपत्त्यसम्मोषैः शूरः कृतास्त्रमतिसन्धत्ते ।**

---

देता है । इसके विपरीत गुण वाले पुत्र को देने वाला राजा लाभ में रहता है । इसलिए समान जातीय पुत्र की अपेक्षा असमानजातीय पुत्र को देना ही अच्छा है, क्योंकि उसकी संतति दायभाग की अधिकारिणी होती है । बुद्धिमान् पुत्र की अपेक्षा बुद्धिहीन पुत्र देना इसलिए अच्छा होता है कि उसमें विवेक-विचार का महत्त्व नहीं होता है । इसलिए शत्रु को वह कोई उपयोगी सुझाव नही दे पाता है । शूर पुत्र की अपेक्षा भीरु पुत्र को देना इसलिए श्रेयस्कर है कि उसमे उत्साह नहीं होता है । वह न तो अपना लाभ कर सकता है और न शत्रु की हानि ही । शस्त्रज्ञ चतुर पुत्र की अपेक्षा इससे विपरीत पुत्र को देना इसलिए उचित है कि वह आक्रमण नहीं कर पाता है । इकलौते पुत्र की जगह अनेक पुत्रों में से एक को दे देना इसलिए ठीक है कि उसके बिना भी कार्य चल जाता है ।

( १ ) कुलीन ( जात्य ) और बुद्धिमान् पुत्रों में से जो पुत्र जात्य, किन्तु बुद्धिहीन होता है, राजसंपत्ति स्वभावतः उसका अनुगमन करती है । और जो पुत्र असमानजातीय किन्तु, बुद्धिमान् होता है, मंत्रशक्ति स्वभावतः उसका अनुगमन करती है । इन दोनों पुत्रों में से मंत्रशक्ति संपन्न होने पर भी अकुलीन प्राज्ञ की अपेक्षा कुलीन अप्राज्ञ ही श्रेष्ठ है; क्योंकि राज्याधिकारी होने पर वह अपने वृद्ध, अनुभवी, एवं बुद्धिमान् पुरुषों की नियुक्ति कर अपनी कमी को पूरी कर लेता है ।

( २ ) इसी प्रकार बुद्धिमान् और शूर पुत्रों में से बुद्धिमान्, किन्तु शूरतारहित पुत्र का, बुद्धिमत्तापूर्वक किये गये कार्य अनुगमन करते हैं । बुद्धिहीन, किन्तु शूर पुत्र पराक्रम के कार्यों को कर सकता है । इन दोनों पुत्रों में से शूर; किन्तु बुद्धिहीन पुत्र के पराक्रमी होने पर भी, उसकी अपेक्षा, पराक्रमहीन बुद्धिमान् पुत्र ही श्रेष्ठ है । जैसे एक बुद्धिमान् शिकारी शक्तिशाली हाथी को अपने वश में कर लेता है वैसे ही बुद्धिमान् पुत्र अपने बुद्धिबल से शूर को भी अपने वश में कर सकता है ।

( ३ ) शूर और कृतास्त्र ( शस्त्रास्त्रनिपुण ) पुत्रों में शस्त्रास्त्र शून्य, किन्तु

**(१) बह्वेकपुत्रयोर्बहुपुत्र एकं दत्त्वा शेषवृत्तिस्तब्धः सन्धिमतिक्रामति नेतरः।**

**(२) पुत्रसर्वस्वदाने सन्धिश्चेत्पुत्रफलतो विशेषः। समफलयोः शक्त-प्रजननतो विशेषः। शक्तप्रजननयोरप्युपस्थितप्रजननतो विशेषः।**

**(३) शक्तिमत्येकपुत्रे तु लुप्तपुत्रोत्पत्तिरात्मानमादध्यात्, न चैक-पुत्रमिति।**

**(४) अभ्युच्चीयमानः समाधिमोक्षं कारयेत्।**

**(५) कुमारासन्नाः सत्रिणः कारुशिल्पिव्यञ्जनाः कर्माणि कुर्वाणाः सुरुङ्गया रात्रावुपखानयित्वा कुमारमपहरेयुः। नटनर्तकगायनवादकवाग्जी-वनकुशीलवप्लवकसौभिका वा पूर्वप्रणिहिताः परमुपतिष्ठेरन्। ते कुमारं**

---

शूरपुत्र केवल पराक्रम के कार्यो को ही कर सकता है। शूरतारहित, किन्तु शस्त्रास्त्र-निपुण पुत्र अपने लक्ष्य को अच्छी तरह भेदन करने की क्षमता रखता है। इन दोनों में से लक्ष्य को ठीक भेदन करने वाले पराक्रमहीन पुत्र की अपेक्षा पराक्रमी पुत्र ही श्रेष्ठ है, क्योंकि अपनी सतर्कबुद्धि से वह कृतास्त्र को भी अपने वश में कर लेता है।

( १ ) एक पुत्र और अनेक पुत्रों में से अनेक पुत्रों का होना अच्छा है, क्योंकि एक पुत्र को संधि में दिये जाने पर भी बाकी पुत्रों के द्वारा राजा यथावसर संधि को भी तोड़ सकता है; किन्तु जिसका एक ही पुत्र है वह ऐसा नहीं कर सकता है।

( २ ) यदि संधि करने वाले दोनों राजाओं का एक-एक ही पुत्र हो और उनके देने पर ही संधि दृढ़ होती हो तो; उन दोनों में से वही अधिक लाभ में रहता है, जिसके पुत्र का भी पुत्र हो गया हो; क्योंकि पुत्र के अभाव में पौत्र भी सिंहासन पर बैठ सकता है। यदि संधि करने वाले दोनों राजाओं के पुत्र-पौत्र हों तो उनमें से वही अधिक लाभ में है, जिसका पुत्र अभी युवा है। यदि दोनों के पुत्र युवा हों, तो उनमें से उसी को ही अधिक लाभ है, जिसका पुत्र निकट भविष्य में बच्चा पैदा करने की स्थिति में है। निष्कर्ष यह है यथाशक्ति पुत्र न देने का यत्न करना चाहिए।

( ३ ) पुत्र पैदा करने की अथवा राज्यभार को सँभालने की शक्ति रखने वाले यदि एक ही पुत्र का पुत्र हो और उसकी पुत्रोत्पादन की शक्ति जाती रही हो तो अपने ही आप को राजा, संधि पर चढ़ा दे; किन्तु इकलौते पुत्र को कदापि न दे। यहाँ तक संधि को दृढ़ करने के उपायों का निरूपण किया गया।

( ४ ) संधि हो जाने के बाद यदि अपनी शक्ति बढ़ जाय तो दूसरे राजा के यहाँ बंधक में रखे हुए पुत्र को मुक्त करा देना चाहिए।

( ५ ) बन्धक में रखे गए राजपुत्र को छुड़ाने के लिए इन उपायों को काम में लाया जाय : राजपुत्र के निकट गुप्त वेश में रहने वाले बढ़ई, लुहार, सुनार या मिस्त्री तथा अन्य लोग, अपने जिम्मे के कार्यों को करते हुए राजपुत्र के निवास के पास ही एक सुरंग खोदकर रात्रि में वहाँ से उसको लेकर वे भाग जायँ। अथवा

**परम्परयोपतिष्ठेरन् । तेषामनियतकालप्रवेशस्थाननिर्गमनानि स्थापयेत् । ततस्तद्वचञ्जनो वा रात्रौ प्रतिष्ठेत ।**

**(१) तेन रूपाजीवा भार्याव्यञ्जनाश्च व्याख्याताः ।**

**(२) तेषां वा तूर्यभाण्डफेलां गृहीत्वा निर्गच्छेत् ।**

**(३) सूदारालिकस्नापकसंवाहकास्तरककल्पकप्रसाधकोदकपरिचारकैर्वा द्रव्यवस्त्रभाण्डफेलाशयनासनसम्भोगैर्निह्रियेत ।**

**(४) परिचारकच्छद्मना वा किञ्चिदरूपवेलायामादाय निर्गच्छेत् । सुरङ्गामुखेन वा निशोपहारेण । तोयाशये वा वारुणं योगमातिष्ठेत् ।**

**(५) वैदेहकव्यञ्जना वा पक्वान्नफलव्यवहारेणारक्षिषु रसमवचारयेयुः ।**

---

नट, नर्तक, गायक, वादक, वाग्जीवक ( कथावाचक ); कुशीलव, प्लवक ( तलवार आदि का खेल दिखाने वाला ), सौत्रिक ( आकाश में उड़ने वाला ), विजिगीषु के ये आठ प्रकार के गुप्तचर पहिले शत्रु राजा के पास आवें और फिर धीरे-धीरे उसी के यहाँ रहते हुए गिरफ्तार राजकुमार तक पहुँचे। राजकुमार, राजा की अनुमति प्राप्त कर, स्वेच्छया उक्त गुप्तचरों को अपने यहाँ टिकाने तथा आने-जाने की पूरी व्यवस्था करा ले। फिर उन्हीं में से किसी का वेष बनाकर रात्रि के समय बाहर निकल आवे और उन्हीं के साथ अपने देश को पलायन कर दे।

( १ ) इसी प्रकार वेश्या या पत्नी के रूप में गई गुप्तचर स्त्रियाँ राजकुमार को वहाँ से छुड़ा ले आवें।

( २ ) अथवा नट, नर्तक आदि के साज-बाजों या आभूषणों की पेटी को उठा कर बाहर निकल आये।

( ३ ) अथवा सूद ( रसोइया ), आरालिक ( हलवाई ), स्नापक ( स्नान कराने वाला ), संवाहक ( मालिश करने वाला ), आस्तरक ( विस्तार बिछाने वाला ), कल्पक ( नाई ), प्रसाधक ( वस्त्र पहनाने वाला ) और उदक-परिचारक ( जल देनेवाला ); इन लोगों के द्वारा जब कोई भोज्यपदार्थ, पेटी या विस्तर आदि उपयोगी वस्तुयें बाहर ले जाई जाँय तो अवसर पाकर उनके साथ राजकुमार भी बाहर निकल जाय।

( ४ ) अथवा राजकुमार ही नौकर के बहाने से अन्धकार के समय किसी चीज को लेकर बाहर निकल जाय। अथवा भूतबलि आदि का बहाना कर सुरंग द्वारा बाहर निकल जाय। अथवा नदी, तालाब आदि किसी बड़े जलाशय में वारुणयोग के प्रयोग द्वारा बाहर निकल जाय।

( ५ ) अथवा व्यापारी के वेष में रहने वाले गुप्तचर किसी पके अन्न में विष मिला कर पहरेदारों को दे दें और जब वे बेहोश हो जाँय तो राजकुमार को लेकर लेकर वे बाहर निकल जाँय।

**(१) दैवतोपहारश्राद्धप्रहवणनिमित्तमारक्षिषु मदनयोगयुक्तमन्नपानरसं वा प्रयुज्यापगच्छेत्। आरक्षकप्रोत्साहनेन वा।**

**(२) नागरककुशीलवचिकित्सकापूपिकव्यञ्जना वा रात्रौ समृद्धगृहाण्यादीपयेयुः। (आरक्षिणां ?) वैदेहकव्यञ्जना वा पण्यसंस्थामादीपयेयुः।**

**(३) अन्यद्वा शरीरं निक्षिप्य स्वगृहमादीपयेदनुपातभयात्। ततः सन्धिच्छेदखातसुरङ्गाभिरपगच्छेत्।**

**(४) काचकुम्भभाण्डभारव्यञ्जनो वा रात्रौ प्रतिष्ठेत। मुण्डजटिलानां प्रवासनान्यनुप्रविष्टो वा रात्रौ तद्व्यञ्जनः प्रतिष्ठेत। विरूपव्याधिकरणारण्यचरच्छद्मनामन्यतमेन वा। प्रेतव्यञ्जनो वा गूढैर्निर्ह्रियेत। प्रेतं वा स्त्रीवेषेणानुगच्छेत्।**

**(५) वनचरव्यञ्जनाश्चैनमन्यतो यान्तमन्यतोऽपदिशेयुः। ततोऽन्यतो गच्छेत्। चक्रचराणां वा शकटवाटैरपगच्छेत्।**

---

(१) अथवा देवकार्य, पितृकार्य या सहभोज के निमित्त से अन्न या पेय पदार्थों में विष मिला कर पहरेदारों पर प्रयोग कर उन्हें बेहोश बना देने के बाद राजकुमार रात के समय बाहर निकल आवे। अथवा गुप्तचर, राजकुमार को शव के रूप में अर्थी में रख कर बाहर निकल आवे। अथवा किसी मुर्दे के पीछे स्त्री का वेष बनाकर राजकुमार बाहर निकल जाय। अथवा अपनी देख-रेख में पहरेदारों को बहुत-सा धन देने की प्रतिज्ञा से उन्हें सन्तुष्ट कर राजकुमार बाहर निकल आवे।

(२) अथवा नगर-रक्षक, नट, चिकित्सक और आपूपिक ( खोमचा लगाने वाला ) के वेष में रात्रि के समय इधर-उधर घूमने वाले गुप्तचर लोग रात में धनी लोगों के घर में आग लगा दें। पहरेदारों तथा व्यापारियों के वेष में दूसरे गुप्तचर भी बाजार तथा दूकानों में आग लगा दें। आग लगने के कारण जब कोलाहल या गड़बड़ हो जाय तो अवसर पाकर राजकुमार बाहर निकल जाय।

(३) अथवा राजकुमार अपने निवास में आग लगा दे, और वहाँ किसी दूसरे की लाश डलवा दे, जिससे कि शत्रु लोग उस शव को देख कर यह समझ लें कि राजकुमार जल कर मर गया है; अथवा राजकुमार स्वयं ही किसी संधिच्छेद या सुरंग के द्वारा बाहर निकल जाय।

(४) अथवा लकड़हारों ( काचभार ), कहारों ( कुम्भभार ) या साईसों ( भाण्डभार ) के वेश में राजकुमार रात को बाहर हो जाय। अथवा विजिगीषु राजा अपने मुण्ड तथा जटिलों को जब बाहर भेजे तो राजकुमार भी छिप कर उनमें जा मिले और रात में उन्हीं जैसा वेष बनाकर उनके साथ ही बाहर निकल आये। या औपनिषदिक प्रकरण में निर्दिष्ट उपायों द्वारा अपनी शक्लसूरत को बदल कर या रोगी का वेष बना कर या जंगली भील-कोलों का वेष बनाकर तब निश्चिन्त होकर राजकुमार अपने देश को जा सकेगा।

(५) राजकुमार के बाहर निकल जाने पर जब विजिगीषु राजा के कर्मचारी

**(१) आसन्ने चानुपाते सत्रं वा गृह्णीयात् । सत्राभावे हिरण्यं रसविद्धं वा भक्षजातमुभयतः पन्थानमुत्सृजेत् । ततोऽन्यतोऽगच्छेत् ।**

**(२) गृहीतो वा सामादिभिरनुपातमतिसन्दध्यात् । रसविद्धेन वा पथ्यदानेन ।**

**(३) वारुणयोगाग्निदाहेषु वा शरीरमन्यदाधाय शत्रुमभियुञ्जीत—पुत्रो मे त्वया हत इति ।**

**(४) उपात्तच्छन्नशस्त्रो वा रात्रौ विक्रम्य रक्षिषु ।**
**शीघ्रपातैरपसरेद् गूढप्रणिहितैः सह ॥**

इति षाड्गुण्ये सप्तमेऽधिकरणे सन्धिकर्म-सन्धिमोक्षो नाम सप्तदशोऽध्यायः, आदितश्चतुर्दशोत्तरशततमः ।

—: ० :—

---

उसकी खोज में इधर-उधर दौड़ते फिरें तो जंगल में रहने वाले राजकुमार के पक्ष के लोग उन्हें दूसरा ही रास्ता बता दें । अथवा गाड़ीवानों या गाड़ियों के झुण्ड के साथ-साथ अपने देश की ओर चला जाय ।

( १ ) यदि खोजने वाले लोग बहुत ही नजदीक आ पहुँचें तो वह किसी घने जंगल में छिप जाय । यदि छिपने लायक घना जंगल पास न हो तो हिरण्य अथवा विषयुक्त खाद्य वस्तु रास्ते के दोनों ओर डाल दें; और उस रास्ते को छोड़ कर किसी रास्ते से निकल जाय ।

( २ ) अथवा यदि वह पकड़ ही लिया जाय तो साम, दाम आदि उपायों से धोखा देकर वह उनसे भाग निकले । अथवा उन्हें विषयुक्त खाना देकर मार दे, या मूर्च्छित कर दे और स्वयं भाग जाय ।

( ३ ) पकड़े जाने के डर से छिपे हुए राजकुमार को भगा ले जाने के लिए पूर्वोक्त वारुणयोग तथा अग्निदाहों के अवसरों पर किसी के शव को वहाँ डाल कर विजिगीषु राजा, शत्रु राजा के ऊपर यह अभियोग लगाये कि उसने मेरे पुत्र को मार डाला है । इससे शत्रु राजा भागे हुए राजकुमार को खोजना बन्द कर देगा और राजकुमार बाहर निकल आवे ।

( ४ ) यदि पूर्वोक्त कोई भी उपाय न किया जा सके तो राजकुमार को चाहिए कि वह रात में पहरेदारों पर सशस्त्र हमला कर दे और उन्हें घायल कर या मार कर द्रुतगामी घोड़ों पर सवार अपने गुप्तचरों के साथ वहाँ से निकल भागे ।

षाड्गुण्य नामक सप्तम अधिकरण में सन्धिकर्म-सन्धिमोक्ष नामक सत्रहवाँ अध्याय समाप्त ।

—: ० :—

# मध्यमचरितोदासीनचरित-मण्डलचरितानि

(१) मध्यमस्यात्मा तृतीया पञ्चमी च प्रकृती प्रकृतयः। द्वितीया च चतुर्थी षष्ठी च विकृतयः। तच्चेदुभयं मध्यमोऽनुगृह्णीयात्, विजिगीषुर्मध्यमानुलोमः स्यात्। न चेदनुगृह्णीयात्प्रकृत्यनुलोमः स्यात्।

(२) मध्यमश्चेद्विजिगीषोर्मित्रं मित्रभावि लिप्सेत, मित्रस्यात्मनश्च मित्राण्युत्थाप्य मध्यमाच्च मित्राणि भेदयित्वा मित्रं त्रायेत। मण्डलं वा प्रोत्साहयेत्—'अतिप्रवृद्धोऽयं मध्यमः सर्वेषां नो विनाशाय अभ्युत्थितः सम्भूयास्य यात्रां विहनाम' इति। तच्चेन्मण्डलमनुगृह्णीयात् मध्यमावग्रहेणात्मानमुपबृंहयेत्। न चेदनुगृह्णीयात्, कोशदण्डाभ्यां मित्रमनुगृह्य ये मध्यमद्वेषिणो राजानः परस्परानुगृहीता वा बहवस्तिष्ठेयुरेकसिद्धा वा

## मध्यम चरित, उदासीन चरित और मण्डल चरित

( १ ) मध्यम, स्वयं और तीसरी तथा पाँचवीं प्रकृति ( अर्थात् स्वयं, मित्र और मित्र-मित्र ) ये तीनों मध्यम की प्रकृति कहलाती हैं। इसी प्रकार शत्रु, शत्रु का मित्र और शत्रु के मित्र का मित्र, ये तीनों मध्यम की विकृति कही जाती हैं। मध्यम को चाहिए कि वह इन दोनों प्रकार के राजाओं पर समान अनुग्रह बनाये रखे; और विजिगीषु को चाहिए कि वह सदा मध्यम राजा के अनुकूल बना रहे। यदि मध्यम राजा दोनों प्रकार की प्रकृतियों पर अनुग्रह न कर सके तो आत्मप्रकृति को वह अवश्य ही अपने अनुकूल बनाये रखे।

( २ ) यदि मध्यम राजा विजिगीषु राजा के मित्रभावी-मित्र को अपने अधीन करना चाहे तो उस समय विजिगीषु को चाहिए कि वह अपने मित्र-राजाओं के मित्रों और अपने मित्र-राजाओं की सहायता करके तथा मध्यम के मित्रों को उनसे फोड़कर अपने मित्र की रक्षा करे। अथवा राजमण्डल को वह मध्यम के विरुद्ध यह कहकर उत्तेजित करे; 'देखो, अति उन्नत हुआ यह मध्यम राजा हम सब को नष्ट करने पर तुला है। हमको चाहिए कि एक होकर हम इसके आक्रमण को रोकें !' इस प्रकार उकसाया हुआ राजमण्डल यदि विजिगीषु की सहायता करने के लिए तैयार हो जाय तो उसके सहयोग से मध्यम का निग्रह करके स्वयं को उन्नत बनाये। यदि राजमण्डल विजिगीषु को सहायता देना स्वीकार न करे तो वह धन

**बहवः सिद्ध्येयुः परस्पराद्वा शङ्किता नोत्तिष्ठेरन्, तेषां प्रधानमेकमासन्नं वा सामदानाभ्यां लभेत । द्विगुणो द्वितीयं त्रिगुणस्तृतीयम् । एवमभ्युच्चितो मध्यममवगृह्णीयात् । देशकालातिपत्तौ वा सन्धाय मध्यमेन मित्रस्य साचिव्यं कुर्यात् । दूष्येषु वा कर्मसन्धिम् ।**

**(१) कर्शनीयं वाऽस्य मित्रं मध्यमो लिप्सेत, प्रतिस्तम्भयेदेनम्—'अहं त्वा त्रायेय' इत्याकर्शनात् । कर्शितमेनं त्रायेत् ।**

**(२) उच्छेदनीयं वाऽस्य मित्रं मध्यमो लिप्सेत, कर्शितमेतं त्रायेत मध्यमवृद्धिभयात् ।**

**(३) उच्छिन्नं वा भूम्यनुग्रहेण हस्ते कुर्यादन्यत्रापसारभयात् ।**

---

तथा सेना के द्वारा अपने मित्र की सहायता करे। जो बहुत से राजा मध्यम के साथ द्वेष रखते हों; अथवा जो आपस में एक-दूसरे की सहायता करके मध्यम का अनिष्ट करना चाहते हों; या मध्यम के शत्रु विजिगीषु के अनुकूल हो जाने पर सब अनुकूल हो जाँय; अथवा जो परस्पर सम्मिलित विजय-लाभ की इच्छा रखते हुए भी एक-दूसरे के भय से आक्रमण करने के लिए तैयार न हों; या मध्यम के शत्रु-राजाओं में से प्रमुख राजा, या अपने देश के सभी राजाओं को साम, दाम आदि के द्वारा अपने अनुकूल बनाये—इस प्रकार दूसरे राजा की सहायता मिलने से विजिगीषु का बल दुगुना, तीसरे राजा की सहायता मिलने पर तिगुना हो जाता है। इन तरीकों से अपनी शक्ति को बढ़ाकर विजिगीषु, मध्यम को वश में करे। अथवा देश तथा काल के अनुसार विजिगीषु सीधे मध्यम के साथ ही सन्धि कर ले और फिर अपने मित्र-भावी मित्र के साथ उसकी सन्धि करा दे। यदि ऐसा सम्भव न हो तो मध्यम के दूष्य पुरुषों के साथ मिलकर आग लगवा कर या कोई उपद्रव कराके कर्मसंधि करे।

( १ ) विजिगीषु को दुर्बल बनाने वाले ( कर्शनीय ) मित्र को यदि मध्यम अपने अधीन करना चाहे तो विजिगीषु को चाहिए कि वह अपने उस मित्र को सुरक्षा का आश्वासन देकर मध्यम से अभय कर दे। परन्तु यह अभय वचन उसी समय तक रहे जब तक कि मध्यम के द्वारा उसे दुर्बल न बना दे। दुर्बल हो जाने पर विजिगीषु उसकी रक्षा करे।

( २ ) यदि विजिगीषु को नष्ट करने योग्य मित्र को मध्यम अपने अधीन करना चाहे, तो विजिगीषु अपने उस मित्र की तब रक्षा करे जब वह मध्यम द्वारा अच्छी तरह सता दिया गया हो। उसकी रक्षा इसलिए आवश्यक है कि मध्यम राजा शक्ति प्राप्त कर विजिगीषु को ही न सताने लगे।

( ३ ) अथवा विनष्ट हुए अपने उस मित्र को भूमि देकर वह अपने वश में कर ले, अन्यथा यह सम्भव हो सकता है कि वह शत्रुपक्ष में जाकर मिल जाय।

**(१) कर्शनीयोच्छेदनीययोश्चेन्मित्राणि मध्यमस्य साचिव्यकराणि स्युः, पुरुषान्तरेण सन्धीयेत। विजिगीषोर्वा तयोर्मित्राण्यवग्रहसमर्थानि स्युः, सन्धिमुपेयात् ।**

**(२) अमित्रं वास्य मध्यमो लिप्सेत, सन्धिमुपेयात् । एवं स्वार्थश्च कृतो भवति, मध्यमस्य प्रियं च ।**

**(३) मध्यमश्चेत्स्वमित्रं मित्रभावि लिप्सेत, पुरुषान्तरेण सन्दध्यात् । सापेक्षं वा 'नार्हसि मित्रमुच्छेत्तुम्' इति वारयेत् । उपेक्षेत वा—मण्डलमस्य कुप्यतु स्वपक्षवधादिति ।**

**(४) अमित्रमात्मनो वा मध्यमो लिप्सेत, कोशदण्डाभ्यामेनमदृश्यमानोऽनुगृह्णीयात् ।**

---

( १ ) यदि कर्शनीय और उच्छेदनीय राजाओं के दूसरे मित्र भी मध्यम की ही सहायता करते हों तो विजिगीषु को चाहिए कि वह भी अपने अमात्य या राजकुमार को विश्वास के लिए बन्धक में रखकर मध्यम से सन्धि कर ले। यदि विजिगीषु, के कर्शनीय और उच्छेदनीय राजाओं के मित्र मध्यम का मुकाबला करने के लिए तैयार हों तो वह भी मध्यम के साथ सन्धि कर ले।

( यहाँ तक अपने मित्रों पर अभियोग करने वाले मध्यम के साथ विजिगीषु का क्या व्यवहार होना चाहिए, इसका निरूपण किया गया। विजिगीषु के शत्रुओं पर अभियोग करने वाले मध्यम के साथ विजिगीषु का क्या व्यवहार होना चाहिए, अब इसका निरूपण किया जाता है। )

( २ ) यदि विजिगीषु के किसी शत्रु राजा को मध्यम अपने वश में करना चाहता है तो विजिगीषु को चाहिए कि वह मध्यम के साथ सन्धि कर ले; क्योंकि ऐसा करने से एक तो अपने शत्रु का नाश हो जाने से अपनी कार्यसिद्धि हो जाती है और दूसरे में वह मध्यम का भी प्रिय हो जाता है।

( ३ ) यदि मध्यम अपने ही किसी मित्रभावी मित्र को वश में करना चाहे तो उस समय विजिगीषु अपने सेनापति आदि को भेज कर मध्यम की सहायता करे। यदि उससे अपनी कार्यसिद्धि होती देखे तो मध्यम को आक्रमण करने से रोके। ऐसा करने से विजिगीषु दूसरे राजाओं का भी विश्वासपात्र हो जाता है। अथवा यह सोचकर उधर से आँखें फेर ले कि अपने मित्र पर आक्रमण करने वाले मध्यम से सारा राजमण्डल ही कुपित हो जायेगा।

( ४ ) यदि मध्यम किसी शत्रुराजा को ही अपने अधीन करना चाहे तो विजिगीषु को चाहिये कि कोश तथा सेना द्वारा छिपे तौर पर ही शत्रु की सहायता करे।

**(१) उदासीनां वा मध्यमो लिप्सेत–'उदासीनाद्भिद्यताम्' इति मध्यमोदासीनयोर्यो मण्डलस्याभिप्रेतस्तमाश्रयेत ।**

**(२) मध्यमचरितेनोदासीनचरितं व्याख्यातम् । उदासीनश्चेन्मध्यमं लिप्सेत, यतः शत्रुमतिसन्दध्यान्मित्रस्योपकारं कुर्यात्, मध्यममुदासीनं वा दण्डोपकारिणं लभेत, ततः परिणमेत ।**

**(३) एवमुपगृह्यात्मानमरिप्रकृतिं कर्शयेत् । मित्रप्रकृतिं चोपगृह्णीयात्।**

**(४) सत्यप्यमित्रभावे तस्यानात्मवान् नित्यापकारी शत्रुः शत्रुसहितः पार्ष्णिग्राहो वा व्यसनी यातव्यो व्यसने वा नेतुरभियोक्तेत्यरिभाविनः ।**

**(५) एकार्थाभिप्रयातः पृथगर्थाभिप्रयातः सम्भूययात्रिकः संहितप्रयाणिकः स्वार्थाभिप्रयातः सामुत्थायिकः कोशदण्डयोरन्यतरस्य क्रेता विक्रेता द्वैधीभाविक इति मित्रभाविनः ।**

---

( १ ) यदि मध्यम किसी उदासीन राजा को वश में करना चाहे तो दोनों की फूट को उचित मानकर वह उन दोनों में जो राजमण्डल का अधिक प्रिय हो उसी से सन्धि करे और उसी की सहायता करे ।

( २ ) मध्यम के ही चरित के समान उदासीन का भी चरित समझ लेना चाहिए । यदि उदासीन राजा किसी मध्यम राजा को अपने अधीन करना चाहे तो विजिगीषु को चाहिए कि इन दोनों में से वह उसके साथ जा मिले, जिसकी सहायता से शत्रु का उच्छेद और मित्र का उपकार हो सके; या इन दोनों को अपनी सैनिक सहायता देकर अपने वश में कर ले ।

( ३ ) इस प्रकार विजिगीषु राजा अपनी वृद्धि करके शत्रु-प्रकृति का नाश और मित्र-प्रकृति का उपकार करे ।

( ४ ) 'शत्रु' शब्द से कहे जाने वाले सामन्त तीन प्रकार के हैं : १. अमित्रभाव रखने वाला सामन्त **शत्रुभावि**, २. मित्रभाव रखने वाला सामन्त **मित्रभावि** और ३. भृत्यभाव रखने वाला सामन्त **भृत्यभावि** । अजितेन्द्रिय, सदा अपकार करने वाला, शत्रुभाव रखने वाला, विजिगीषु के शत्रु की सहायता करने वाला, पार्ष्णिग्राह, बन्धु आदि की मृत्यु से दुःखी, यातव्य और विजिगीषु को विपत्ति में फँसा हुआ जान कर उस पर आक्रमण करने वाला सामन्त 'शत्रुभावि' कहलाता है ।

( ५ ) एक ही अर्थसिद्धि के लिए विजिगीषु के साथ चढ़ाई करने वाला, अथवा एक ही भूमि पर दो प्रयोजनों के लिए दोनों का चढ़ाई करना; विजिगीषु की सहमति प्राप्त करके युद्ध करने वाला; विजिगीषु के निमित्त ही चढ़ाई करने वाला; शून्य स्थानों को बसाने के लिए धन और सेना, दोनों में से किसी एक को एक दूसरे के बदले में खरीदने या बेचने वाला सामन्त 'मित्रभावि' कहलाता है ।

**(१) सामन्तो बलवतः प्रतिघातोऽन्तर्धिः प्रतिवेशो वा बलवतः पार्ष्णिग्राहो वा स्वयमुपनतः प्रतापोपनतो वा दण्डोपनत इति भृत्यभाविनः सामन्ताः ।**

**(२) तैर्भूम्येकान्तरा व्याख्याताः ।**

**(३) तेषां शत्रुविरोधे यन्मित्रमेकार्थतां व्रजेत् ।**
**शक्त्या तदनुगृह्णीयाद्विषहेत यया परम् ॥**

**(४) प्रसाध्य शत्रुं यन्मित्रं वृद्धं गच्छेदवश्यताम् ।**
**सामन्तैकान्तराभ्यां तत्प्रकृतिभ्यां विरोधयेत् ॥**

**(५) तत्कुलीनावरुद्धाभ्यां भूमिं वा तस्य हारयेत् ।**
**यथा वानुग्रहापेक्षं वश्यं तिष्ठेत्तथाचरेत् ॥**

**(६) नोपकुर्यादमित्रं वा गच्छेद्यदतिकर्शितम् ।**
**तदहीनमवृद्धं च स्थापयेन्मित्रमर्थवित् ॥**

---

( १ ) सामन्त, बलवान् राजा का मुकाबला करने वाला, अन्तर्धि, ( मध्यम ), प्रतिवेश ( पड़ोस ), बलवान् राजा पर पीछे से आक्रमण करने वाला ( पार्ष्णिग्राह ), स्वयं आश्रित ( स्वयं उपनत ), बल द्वारा आश्रित ( प्रतापोनत ) और सेना द्वारा अधिकसामन्त 'भृत्यभावि' कहलाता है ।

( २ ) उक्त तीन प्रकार के सामन्तों के समान ही भूम्येकान्तर ( एक देश के व्यवधान से राज्य करने वाले ) मित्रराजाओं के भी १. शत्रुभावि २. मित्रभावि और ३. भृत्यभावि, ये तीन भेद समझ लेने चाहिएँ ।

( ३ ) उन भूम्येकांतर मित्रों में से किसी पर यदि शत्रु आक्रमण करे तो उस मित्र के साथ सन्धि करने वाले राजा को इतनी सेना और सहायता पहुँचानी चाहिए, जिससे वह आक्रमणकारी शत्रु का दमन कर सके ।

( ४ ) अपने शत्रु को जीतकर उन्नत हुआ जो मित्र, विजिगीषु के वश में नहीं रहता, किसी भी तरह उसका विरोध, उसके सामन्त और भूम्येकांतर मित्रों एवं उनकी अमात्य-प्रकृति से करा देना चाहिए ।

( ५ ) अथवा उसके बन्धु-बान्धवों द्वारा या नजरबन्द किये उसके पुत्र आदि के द्वारा उसकी भूमि का अपहरण करा देना चाहिए । अथवा अपनी सहायता चाहता हुआ वह जिस तरह भी वश में रह सके, उसी तरह उसके साथ व्यवहार किया जाय ।

( ६ ) क्षीण हुआ जो मित्र विजिगीषु की कोई सहायता न कर सके या शत्रु के साथ मिल जाय, तो विजिगीषु को चाहिए कि उसको ऐसी दशा में रखे, जिससे न तो वह उन्नत हो सके और न ही मिटने पावे ।

(१) अर्थयुक्त्या चलं मित्रं सन्धि यदुपगच्छति ।
तस्यापगमने हेतुं विहन्यान्न चलेद्यथा ।।

(२) अरिसाधारणं यद्वा तिष्ठेत्तदरितः शठम् ।
भेदयेद् भिन्नमुच्छिन्द्यात्ततः शत्रुमनन्तरम् ।।

(३) उदासीनं च यत्तिष्ठेत्सामन्तैस्तद्विरोधयेत् ।
ततो विग्रहसन्तप्तमुपकारे निवेशयेत् ।।

(४) अमित्रं विजिगीषुं च यत्सञ्चरति दुर्बलम् ।
तद्बलेनानुगृह्णीयाद्यथा स्यान्न पराङ्मुखम् ।।
अपनीय ततोऽन्यस्यां भूमौ वा सन्निवेशयेत् ।
निवेश्य पूर्वं तत्रान्यं दण्डानुग्रहहेतुना ।।

(५) अपकुर्यात्समर्थं वा नोपकुर्याद्यदापदि ।
उच्छिन्द्यादेव तन्मित्रं विश्वस्याङ्कमुपस्थितम् ।।

---

( १ ) जो चंचल प्रकृति का मित्र लोभवश सन्धि करे, उससे सन्धि बनाये रखने के लिए विजिगीषु को चाहिए कि, सन्धि नष्ट कर देने वाली उसकी अर्थलिप्सा को, स्वयं ही कुछ धन देकर पूरी कर दे, जिससे वह सन्धि न तोड़ सके ।

( २ ) जो धूर्त मित्र विजिगीषु के शत्रु के साथ मिलकर रहता हो, पहिले तो उसके और शत्रु के बीच फूट डालनी चाहिए और फिर उसका उन्मूलन करके शत्रु का भी उन्मूलन कर देना चाहिए ।

( ३ ) विजिगीषु को चाहिए कि वह उदासीन मित्रों का विरोध सामन्त से करा दे । जब वह लड़ाई में फँस जाय और लड़ाई से बहुत तंग आ जाय तब उसका उपकार कर दे ।

( ४ ) जो दुर्बल मित्र अपनी शक्ति बढ़ाने के लिए शत्रु और विजिगीषु, दोनों का आश्रय लेना चाहे, विजिगीषु को चाहिए कि ऐसे दुर्बल मित्र को वह सेना आदि की सहायता देकर उपकृत करता रहे, जिससे वह शत्रु पक्ष में न जा मिले । अथवा उसको उसकी भूमि से उठाकर दूसरी भूमि में बसा दे; अथवा जहाँ शत्रु की सहायता का कोई अंदेशा न हो ऐसी अपनी ही भूमि में बसा दे; और उसकी भूमि में, उसके जाने से पूर्व, सेना द्वारा सहायता पहुँचाने के लिए किसी समर्थ व्यक्ति को नियुक्त कर दे ।

( ५ ) जो मित्र विजिगीषु का अपकार करे, या विजिगीषु के ऊपर कोई विपत्ति आने पर समर्थ होकर भी सहायता न करे; विजिगीषु को चाहिए कि ऐसे मित्र को पहिले खूब विश्वास दिलाये और बाद में उसका उच्छेद कर दे ।

(१) मित्रव्यसनतो वाऽरिरुत्तिष्ठेद्योऽनवग्रहः ।
मित्रेणैव भवेत्साध्यश्छादितव्यसनेन सः ॥
(२) अमित्रव्यसनान्मित्रमुत्थितं यद्विरज्यति ।
अरिव्यसनसिद्धया तच्छत्रुणैव प्रसिद्धयति ॥
(३) वृद्धि क्षयं च स्थानं च कर्शनोच्छेदनं तथा ।
सर्वोपायान्समादध्यादेतान् यश्चार्थशास्त्रवित्॥
(४) एवमन्योन्यसंचारं षाड्गुण्यं योऽनुपश्यति ।
स बुद्धिनिगलैर्बद्धैरिष्टं क्रीडति पार्थिवैः ॥

इति षाड्गुण्ये सप्तमेऽधिकरणे मध्यमचरितोदासीनचरितमण्डलचरितानि नाम अष्टादशोऽध्यायः, आदितः पञ्चदशोत्तरशततमः ॥

समाप्तमिदं षाड्गुण्यं नाम सप्तममधिकरणम् ।

—: o :—

---

( १ ) यदि विजिगीषु का शत्रु विजिगीषु के मित्र को आपद्ग्रस्त जानकर बिना किसी अवरोध-आक्रमण के उन्नति कर जाय तो अपने मित्र की आपत्ति दूर हो जाने पर उस मित्र के द्वारा ही विजिगीषु शत्रु को वश में करने का यत्न करे ।

( २ ) जो मित्र अपने शत्रु पर आपत्ति आ जाने से उन्नत होकर विजिगीषु के अनुकूल नहीं रहता, उसे उसके शत्रु की आपत्ति दूर हो जाने पर, उसी के द्वारा वश में किया जाय ।

( ३ ) अर्थशास्त्रज्ञ राजा को उचित है कि वह वृद्धि, क्षय, स्थान, कर्शन, और उच्छेदन तथा साम, दाम आदि सभी उपायों का प्रयोग खूब सोच-विचार कर करे ।

( ४ ) जो राजा इन छह गुणों का विचारपूर्वक प्रयोग करता है, वह निश्चित ही अपनी बुद्धिरूपी शृंखला से बाँधे हुए अन्य राजाओं के साथ इच्छानुसार क्रीड़ा कर सकता है ।

षाड्गुण्य नामक सप्तम अधिकरण में मध्यमोदासीनमण्डलचरित नामक अठ्ठारहवाँ अध्याय समाप्त ।

—: o :—

# तीसरा खण्ड

आठवाँ अधिकरण

•

# व्यसनाधिकारिक

# प्रकृतिव्यसनवर्गः

**(१) व्यसनयौगपद्ये सौकर्यतो यातव्यं रक्षितव्यं वेति व्यसनचिन्ता ।**

**(२) दैवं मानुषं वा प्रकृतिव्यसनमनयापनयाभ्यां सम्भवति ।**

**(३) गुणप्रातिलोम्यमभावः प्रदोषः प्रसङ्गः पीडा वा व्यसनम् । व्यस्यत्येनं श्रेयस इति व्यसनम् ।**

**(४) स्वाम्यमात्यजनपददुर्गकोशदण्डमित्रव्यसनानां पूर्वं पूर्वं गरीय इत्याचार्याः ।**

**(५) नेति भारद्वाजः । स्वाम्यमात्यव्यसनयोरमात्यव्यसनं गरीय इति । मन्त्रो मन्त्रफलावाप्तिः कार्यानुष्ठानमायव्ययकर्म दण्डप्रणयनममित्राटवी-**

---

## प्रकृतियों के व्यसन और उनका प्रतीकार

( १ ) जब शत्रु और विजिगीषु, दोनों पर एक जैसी विपत्ति आ पड़ी हो और शत्रु पर आक्रमण करने तथा अपनी रक्षा करने, दोनों में समानता दीखती हो, ऐसी दशा में चढ़ाई करनी चाहिए या आत्मरक्षा करनी चाहिए ? यह विचार सामने आता है । इस हेतु इस अध्याय में पहिले व्यसनों का चिंतन किया जाता है ।

( २ ) व्यसन दो प्रकार का है : एक **दैव** और दूसरा **मानुष** । अमात्य आदि प्रकृति वर्ग के ये दोनों व्यसन अनय और अपनय के कारण पैदा होते हैं । सन्धि आदि की उचित व्यवस्था न करना **अनय** और शत्रुओं से पीड़ित होते रहना **अपनय** कहलाता है ।

( ३ ) गुणों की प्रतिकूलता या अभाव, उनका अनुचित उपयोग, प्रकृतिवर्ग में दोषों की अधिकता, विषयों में अति आसक्ति और शत्रुओं द्वारा पीड़ित होना, ये पाँच प्रकार के व्यसन हैं । 'व्यसन' का शब्दार्थ ही यह है जो कल्याण मार्ग से भ्रष्ट कर दे । अर्थात् जो कार्य राजा को नीचे गिरा दे वही उसके लिए व्यसन है ।

( ४ ) कुछ आचार्यों का मत है कि 'स्वामी, अमात्य, जनपद, दुर्ग, कोष, सेना और मित्र, इनमें पूर्व-पूर्व की विपत्ति अत्यन्त कष्टकर है ।'

( ५ ) परन्तु आचार्य भारद्वाज का कहना है कि 'यदि स्वामी और अमात्य पर एक साथ व्यसन आ पड़े तो अमात्य का व्यसन ही अधिक भयावह है; क्योंकि प्रत्येक कार्य का विचार, उसके फलाफल की प्राप्ति का चिंतन, आवश्यक कार्यों को करना,

**प्रतिषेधो राज्यरक्षणं व्यसनप्रतीकारः कुमाररक्षणमभिषेकश्च कुमाराणामायत्तममात्येषु । तेषामभावे तदभावः । छिन्नपक्षस्येव राज्ञश्चेष्टानाशः । व्यसनेषु चासन्नाः परोपजापाः । वैगुण्ये च प्राणबाधः प्राणान्तिकचरत्वाद्राज्ञ इति ।**

**(१) नेति कौटिल्यः । मन्त्रिपुरोहितादिभृत्यवर्गमध्यक्षप्रचारं पुरुषद्रव्यप्रकृतिव्यसनप्रतीकारमेधनं च राजैव करोति । व्यसनिषु वामात्येषु अन्यानव्यसनिनः करोति । पूज्यपूजने दूष्यावग्रहे च नित्ययुक्तस्तिष्ठति । स्वामी च सम्पन्नः स्वसम्पद्भिः प्रकृतीः सम्पादयति । स्वयं यच्छीलस्तच्छीलाः प्रकृतयो भवन्ति । उत्थाने प्रमादे च तदायत्तत्वात् । तत्कूटस्थानीयो हि स्वामीति ।**

**(२) अमात्यजनपदव्यसनयोर्जनपदव्यसनं गरीय इति विशालाक्षः ।**

---

आय-व्यय की व्यवस्था, सैन्यसंग्रह, शत्रु तथा आटविकों का प्रतीकार, राज्य की सुरक्षा, विपत्तियों का दमन, राजकुमारों की रक्षा और उनका अभिषेक आदि कार्यों को सम्पन्न करना अमात्यों पर ही निर्भर है । इसलिए राजा की अपेक्षा अमात्य का व्यसन अधिक भयप्रद है । अमात्यों के अभाव में सारे राजकार्य नष्ट हो जाते हैं और परकटे पक्षी के समान राजा के सारे कार्यक्रम ही चौपट हो जाते हैं तथा व्यसनों का लाभ उठा कर शत्रु षडयन्त्रों का जाल बिछा देते हैं । अमात्यों के व्यसनी या विपरीत हो जाने पर राजाओं के प्राण खतरे में पड़ जाते हैं; क्योंकि अमात्य, राजाओं के प्राण के समान होते हैं ।'

( १ ) इस मत के विरुद्ध आचार्य कौटिल्य का कहना है कि 'मन्त्री, पुरोहित आदि भृत्यवर्ग को, सम्पूर्ण विभागीय अध्यक्षों के कार्य को, अमात्य तथा सेना आदि प्रकृतिवर्ग की विपत्ति को और जनपद, दुर्ग, कोष आदि द्रव्य प्रकृति की विपत्ति को दूर कर उनकी उन्नति के कार्यो को राजा स्वयं सम्पन्न कर सकता है । अमात्य यदि व्यसनी हो गये हों तो उनके स्थान पर राजा अव्यसनी अमात्यों को नियुक्त कर सकता है । राजा ही पूज्य व्यक्तियों का सम्मान और दुष्ट व्यक्तियों का निग्रह कर सकता है । वही अपने राजयोग्य गुणों से अपनी अमात्य प्रकृति को गुणसम्पन्न बना सकता है; क्योंकि राजा स्वयं जिस स्वभाव का होता है उसकी प्रकृतियाँ भी वैसे ही स्वभाव की हो जाती है । राजा पर ही उसकी प्रकृतियों का अभ्युदय एवं पतन निर्भर होता है । क्योंकि सातों प्रकार की प्रकृतियों में राजा ही प्रधान होता है, इसलिए मूल प्रकृति राजा का जैसा स्वभाव हो उसकी विकृतियों का भी वैसा ही स्वभाव होता है ।'

( २ ) आचार्य विशालाक्ष का अभिमत है कि 'अमात्य के व्यसन की अपेक्षा

**कोशो दण्डः कुप्यं विष्टिर्वाहनं निचयाश्च जनपदादुत्तिष्ठन्ते। तेषामभावो जनपदाभावे। स्वाम्यमात्ययोश्चानन्तर इति।**

**(१) नेति कौटिल्यः। अमात्यमूलाः सर्वारम्भाः। जनपदस्य कर्मसिद्धयः स्वतः परतश्च योगक्षेमसाधनं व्यसनप्रतीकारः शून्यनिवेशोपचयौ दण्डकरानुग्रहश्चेति।**

**(२) जनपददुर्गव्यसनयोर्दुर्गव्यसनमिति पाराशराः। दुर्गे हि कोशदण्डोत्पत्तिरापदि स्थानं च जनपदस्य। शक्तिमत्तराश्च पौरा जानपदेभ्यो नित्याश्चापदि सहाया राज्ञः। जानपदास्त्वमित्रसाधारणा इति।**

**(३) नेति कौटिल्यः। जनपदमूला दुर्गकोशदण्डसेतुवार्तारम्भाः। शौर्यं स्थैर्यं दाक्ष्यं बाहुल्यं च जनपदेषु। पर्वतान्तर्द्वीपाश्च दुर्गा नाध्युष्यन्ते जनपदा-**

---

जनपद पर आया हुआ व्यसन अधिक भयावह होता है; क्योंकि कोष, सेना, वस्त्र, लोहा, ताँबा, भृत्यवर्ग, घोड़े, ऊँट, अन्न, घृत आदि जितना भी सामान है, सभी कुछ जनपद से प्राप्त होता है। जनपद विपत्तिग्रस्त होने के कारण उक्त सभी वस्तुएँ नष्ट हो जाती हैं और उसके बाद अमात्य एवं राजा आदि का भी विनाश हो जाता है।'

( १ ) परन्तु कौटिल्य, विशालाक्ष के उक्त मत को नहीं मानता है। वह कहता है कि 'सभी कार्य अमात्यों पर निर्भर होते हैं। दुर्ग तथा कृषि आदि कार्यों की सफलता, राजवंश, अन्तपाल और आटविकों की ओर से योग-क्षेम का साधन, आपत्तियों का प्रतिकार, उपनिवेशों की स्थापना एवं उनकी उन्नति, अपराधियों को दण्ड और राजकर का निग्रह आदि जनपद के सभी कार्य अमात्यों द्वारा ही सम्पन्न होते हैं। इसलिए जनपद की विपत्ति की अपेक्षा अमात्यों की विपत्ति चिंतनीय है'।

( २ ) आचार्य पराशर के मातावलम्बी विद्वानों का कथन है कि 'जनपद और दुर्ग, इन दोनों के एक साथ विपत्तिग्रस्त हो जाने पर जनपद की अपेक्षा दुर्ग की विपत्ति अधिक भयावह है; क्योंकि कोष और सेना को दुर्ग में ही रखा जाता है। यदि जनपद पर कोई विपत्ति आ जाय तो दुर्ग ही उस समय आश्रय का एकमात्र स्थान होता है। नगर तथा नागरिकों की अपेक्षा दुर्ग अधिक अजेय तथा स्थायी होते हैं और किसी भी विपत्ति में वह सहायक होते हैं। दुर्गों की तुलना में जनपदवासियों को तो शत्रु के समान समझना चाहिए; क्योंकि शत्रु को भी कर आदि देकर वे उसकी सहायता करते हैं। इसलिए जनपद की विपत्ति की अपेक्षा दुर्गों की विपत्ति अधिक चिन्तनीय समझनी चाहिए।'

( ३ ) इस मत के विरुद्ध आचार्य कौटिल्य का कहना है कि 'दुर्ग, कोष, सेना, सेतुबन्ध और कृषि आदि कार्य जनपद पर ही निर्भर हैं और शूरता, स्थिरता, चतुरता एवं अधिकता आदि बातें जानपदों ( जनपद के पुरुषों ) में ही हो सकती हैं। यदि

**भावात्। कर्षकप्राये तु दुर्गव्यसनमायुधीयप्राये तु जनपदे जनपदव्यसनमिति।**

**(१) दुर्गकोशव्यसनयोः कोशव्यसनमिति पिशुनः। कोशमूलो हि दुर्गसंस्कारो दुर्गरक्षणं च। दुर्गः कोशादुपजाप्यः परेषाम्। जनपदमित्रामित्रनिग्रहो देशान्तरितानामुत्साहनं दण्डबलव्यवहारः। कोशमादाय च व्यसने शक्यमपयातुं न दुर्गमिति।**

**(२) नेति कौटिल्यः। दुर्गापर्णः कोशो दण्डस्तूष्णींयुद्धं स्वपक्षनिग्रहो दण्डबलव्यवहारः आसारप्रतिग्रहः परचक्राटवीप्रतिषेधश्च। दुर्गाभावे च कोशः परेषाम्। दृश्यते हि दुर्गवतामनुच्छित्तिरिति।**

---

जनपद पर ही आपत्ति आ जाय तो नदी और पर्वतों में बने बड़े-बड़े अजेय दुर्ग भी सूने पड़ जाते हैं। इसलिए दुर्ग-व्यसन की अपेक्षा जनपद-व्यसन ही अधिक चिन्ताकर समझना चाहिए। किन्तु इतनी विशेषता जरूर है कि जैसे-जनपदरहित दुर्ग सूने हो जाते हैं वैसे ही दुर्गरहित जनपदों में रहना भी दुष्कर हो जाता है। इसलिए इतना समझ लेना चाहिए कि कृषिप्रधान जनपदों के दुर्गों पर विपत्ति का आना अधिक खतरनाक है। इसी प्रकार आयुधप्रधान देशों पर विपत्ति का आना अधिक भयावह है।'

( १ ) आचार्य पिशुन ( नारद ) का मत है कि दुर्ग और कोष, इन दोनों पर एक साथ ही आई विपत्ति अधिक भयावह है; क्योंकि दुर्ग की मरम्मत एवं उसकी रक्षा कोष पर ही निर्भर है। कोष के बल पर दुर्ग का भी उच्छेद किया जा सकता है। कोष के ही द्वारा जनपद; शत्रु और मित्र आदि सब का निग्रह किया जा सकता है। दूरदेशस्थ राजाओं को भी कोष के ही बल पर सहायता के लिए प्रेरित किया जा सकता है। सैनिक-शक्ति का उपयोग भी कोष पर ही निर्भर है। यदि आकस्मिक आपत्ति टूट पड़े तो भागते समय कोष को भी साथ ले जाया जा सकता है; किन्तु ऐसी दशा में दुर्ग को साथ नहीं ले जाया जा सकता है।'

( २ ) पिशुन के मत का विरोध करते हुए कौटिल्य का कहना है कि 'कोष और सेना दोनों की रक्षा दुर्ग के द्वारा की जा सकती है। तूष्णींयुद्ध, अपने पक्ष के राजद्रोहियों का निग्रह, सैनिक शक्ति का आश्रय और शत्रु-सेना तथा आटविकों का प्रतीकार सभी कार्य दुर्ग के द्वारा किए जा सकते हैं। दुर्ग के नष्ट हो जाने पर बहुत संभव है कि कोष को भी शत्रु छीन ले; क्योंकि तब उसकी रक्षा का कोई साधन नहीं रह जाता है। ऐसा भी देखा गया है कि जिनके पास पर्याप्त कोष नहीं; किन्तु दुर्जेय दुर्ग है, उनका उच्छेद सहसा नहीं किया जा सकता है। इसलिए कोष की अपेक्षा दुर्ग-व्यसन ही अधिक कष्टकर समझना चाहिए।'

**(१) कोशदण्डव्यसनयोर्दण्डव्यसनम् इति कौणपदन्तः। दण्डमूलो हि मित्रामित्रनिग्रहः परदण्डोत्साहनं स्वदण्डप्रतिग्रहश्च। दण्डाभावे च ध्रुवः कोशविनाशः। कोशाभावे च शक्यः कुप्येन भूम्या परभूमिस्वयंग्रहणेन वा दण्डः पिण्डयितुम्। दण्डवता च कोशः। स्वामिनश्चासन्नवृत्तित्वादमात्यसधर्मा दण्ड इति।**

**(२) नेति कौटिल्यः। कोशमूलो हि दण्डः। कोशाभावे दण्डः परं गच्छति, स्वामिनं वा हन्ति। सर्वाभियोगकरश्च कोशो धर्महेतुः। देशकालकार्यवशेन तु कोशदण्डयोरन्यतरः। प्रमाणीभवति। लम्भपालनो हि दण्डः कोशस्य। कोशः कोशस्य दण्डस्य च भवति। सर्वद्रव्यप्रयोजकत्वात्कोशव्यसनं गरीय इति।**

---

( १ ) आचार्य कौणपदन्त ( भीष्म ) का कहना है कि कोष और सेना, दोनों के व्यसनों में सेना-व्यसन ही अधिक कष्टकर है; क्योंकि शत्रु तथा मित्र का निग्रह सेना द्वारा ही होता है; दूसरे की सेना को अपनी सेना द्वारा ही कार्य पर नियुक्त किया जा सकता है। अपनी सेना का अधिक संग्रह भी सेना के ही द्वारा किया जा सकता है। अपनी सैनिक शक्ति क्षीण हो जाने पर ही विजिगीषु, शत्रु की अपेक्षा में अपनी सेना को आगे नहीं बढ़ा पाता है। यदि सेना पर विपत्ति पड़ जाय तो निश्चित ही कोष भी नष्ट हो जाता है; क्योंकि उसकी रक्षा करने वाला कोई नहीं रह जाता है। कोष के अभाव में भी वस्त्राभरण के द्वारा, भूमि के द्वारा, बलात् अपहृत शत्रुद्रव्य के द्वारा सेना का संगठन किया जा सकता है; और तब कोष को भी जमा किया जा सकता है। सदा राजा के समीप रहने के कारण सेना को भी अमात्यों के ही समान उपकारक समझना चाहिए। इसलिए कोष की अपेक्षा सेना-व्यसन अधिक भययुक्त है।'

( २ ) किन्तु आचार्य कौटिल्य, कौणपदंत की उक्त दलील को स्वीकार नहीं करते हैं। उनका कहना है कि 'सेना का सारा दारोमदार कोष पर ही निर्भर है। उसके अभाव में या तो सेना शत्रु के अधीन हो जाती है या अपने ही स्वामी का वध कर डालती है। सब सामंतों के साथ सेना ही राजा का विरोध करा सकती है; क्योंकि धन देने पर सभी को वश में किया जा सकता है। लोक में धर्म, अर्थ और काम, इस त्रिवर्ग के साधन का मूल कारण कोष ही है; किन्तु इस संबंध में विशेष ध्यान देने योग्य बात यह है कि देश, काल तथा कार्य को दृष्टि में रखकर कोष और सेना, दोनों को प्रधान माना जा सकता है, जिनके द्वारा कि विजिगीषु का कार्य सध सके। सेना केवल कोष की रक्षा कर सकती है; किन्तु कोष से दुर्ग और सेना, दोनों की रक्षा हो जाती है। इसलिए सभी दुर्ग आदि द्रव्य प्रकृतियों की

**(१) दण्डमित्रव्यसनयोर्मित्रव्यसनमिति वातव्याधिः। मित्रमभृतं व्यवहितं च कर्म करोति, पार्ष्णिग्राहमासारममित्रमाटविकं च प्रतिकरोति, कोशदण्डभूमिभिश्चोपकरोति व्यसनावस्थायोगमिति।**

**(२) नेति कौटिल्यः। दण्डवतो मित्रं मित्रभावे तिष्ठत्यमित्रो वामित्रभावे। दण्डमित्रयोस्तु साधारणे कार्ये सारतः स्वयुद्धदेशकाललाभाद्विशेषः। शीघ्राभियाने त्वमित्राटविकाभ्यन्तरकोपे च न मित्रं विद्यते। व्यसनयौगपद्ये परवृद्धौ च मित्रमर्थयुक्तौ तिष्ठति।**

**(३) प्रकृतिव्यसनसम्प्रधारणमुक्तमिति।**

**(४) प्रकृत्यवयवानां तु व्यसनस्य विशेषतः।**
**बहुभावोऽनुरागो वा सारो वा कार्यसाधकः॥**

**(५) द्वयोस्तु व्यसने तुल्ये विशेषो गुणतः क्षयात्।**
**शेषप्रकृतिसाद्गुण्यं यदि स्यान्नाभिधेयकम्॥**

---

प्रयोजनसिद्धि होने के कारण कोष के ऊपर आई हुई विपत्ति को ही गरीयसी समझना चाहिए।'

( १ ) आचार्य वातव्याधि ( उद्धव ) का मत है कि 'अपनी सेना और अपने मित्र पर एक साथ पड़ी विपत्ति में मित्र पर पड़ी विपत्ति अधिक कष्टकर है; क्योंकि दूर रहता हुआ भी मित्र बिना कुछ लिए विजिगीषु का कार्य करता है और पार्ष्णिग्राह का, पार्ष्णिग्राह के मित्रबल का, शत्रु का तथा आटविक का सदैव प्रतीकार करने के लिए तैयार रहता है। कोष, सेना और भूमि के द्वारा वह बराबर विजिगीषु की मदद करता रहता है। विपत्ति में साथ नहीं छोड़ता है।'

( २ ) किन्तु कौटिल्य, वातव्याधि के उक्त सिद्धान्त से सहमत नहीं है। उसका कहना है कि 'जिसके पास अच्छा सैन्यबल होता है, उसके मित्र तो मित्र ही बने रहते हैं, किन्तु शत्रु तक भी मित्र बन जाते हैं। सेना और मित्र, इनके साधारण कार्य में लाभ के अनुसार अपने युद्ध, देश और काल की अपेक्षा विशेषता समझनी चाहिए। तत्कालिक आक्रमण पर अथवा शत्रु और आटविकों के द्वारा आभ्यन्तर कोप उत्पन्न करा देने पर मित्र लोग उसका कोई प्रतीकार नहीं करा सकते हैं; बल्कि सेना ही ऐसे अवसरों पर काम आती है। एक साथ विपत्ति आने पर अथवा शत्रु के बढ़ जाने के कारण मित्र ही अर्थ-सिद्धि में सहायक होता है।'

( ३ ) यहाँ तक प्रकृति-व्यसन का निरूपण किया गया।

( ४ ) यदि प्रकृति के कुछ अंगों पर विपत्ति आ पड़ी हो तो जिस प्रकृति पर व्यसन पड़ा है उसकी अधिक संख्या, स्वामिभक्ति और विशेष गुणों के अनुसार ही उस विपत्ति को दूर करना चाहिए।

( ५ ) यदि शत्रु और विजिगीषु दोनों पर एक साथ ही व्यसन आ पड़ा हो तो

(१) शेषप्रकृतिनाशस्तु यत्रैकव्यसनाद्भवेत् ।
व्यसनं तद्गरीयः स्यात्प्रधानस्येतरस्य वा ॥

इति व्यसनाधिकारिकेऽष्टमेऽधिकरणे प्रकृतिव्यसनवर्गो नाम प्रथमोऽध्यायः,
आदितः षोडशशततमः ।

—: ० :—

---

एक के गुणशाली और दूसरे के गुणहीन होने पर ही विशेषता समझनी चाहिए, किन्तु जिस प्रकृति पर व्यसन है उसके अतिरिक्त शेष सभी प्रकृति यदि अपनी-अपनी अवस्था में शक्तिशाली बनी रहें तो पूर्वोक्त विशेषता नहीं समझनी चाहिए ।

( १ ) यदि एक प्रकृति-व्यसन के कारण शेष प्रकृतियों का भी नाश होता हो, तो वह व्यसन भले ही प्रधान-अप्रधान किसी भी प्रकृति से संबद्ध क्यों न हो, पहिले उसी व्यसन का प्रतीकार करना चाहिए ।

व्यसनाधिकारिक नामक अष्टम अधिकरण में प्रकृतिव्यसनवर्ग नामक
पहला अध्याय समाप्त ।

—: ० :—

प्रकरण १२८ | अध्याय २

# राजराज्ययोर्व्यसनचिन्ता

**(१) राजा राज्यमिति प्रकृतिसंक्षेपः ।**

**(२) राज्ञ आभ्यन्तरो बाह्यो वा कोप इति । अहिभयादाभ्यन्तरः कोपो बाह्यकोपात्पापीयान् । अन्तरमात्यकोपश्चान्तःकोपात् । तस्मात्कोशदण्डशक्तिमात्मसंस्थां कुर्वीत ।**

**(३) द्वैराज्यवैराज्ययोर्द्वैराज्यमन्योन्यपक्षद्वेषानुरागाभ्यां परस्परसंघर्षेण वा विनश्यति । वैराज्यं तु प्रकृतिचित्तग्रहणापेक्षि यथास्थितमन्यैर्भुज्यत इत्याचार्याः ।**

**(४) नेति कौटिल्यः । पितापुत्रयोर्भ्रात्रोर्वा द्वैराज्यं तुल्ययोगक्षेममममात्यावग्रहं वर्तयेतेति । वैराज्ये तु जीवतः परस्याच्छिद्य 'नैतन्मम' इति**

---

## राजा और राज्य के व्यसनों पर विचार

( १ ) प्रकृति का संक्षिप्त स्वरूप राजा और राज्य है ।

( २ ) राजा के प्रति राज्य का दो प्रकार से कोप होता है : आभ्यन्तर और बाह्य । घर में रहने वाले साँप की तरह आभ्यन्तर कोप बाह्य कोप की अपेक्षा बहुत ही अनर्थकारी होता है । यह आभ्यन्तर कोप भी दो प्रकार का है : एक अन्तर अमात्य-कोप और दूसरा बाह्य अमात्य-कोप । इन दोनों में अन्तर अमात्य-कोप बहुत ही खतरनाक होता है । इसलिए विजिगीषु राजा को चाहिए कि वह कोष और सेना की सम्पूर्ण शक्ति को अपने ही हाथ में रखे ।

( ३ ) पूर्वाचार्यों का मत है कि 'द्वैराज्य ( जिस राज्य के दो राजा हों ) और वैराज्य ( जिस राज्य में किसी विजित राजा का शासन हो ), इन दोनों में दो राजाओं के पारस्परिक ईर्ष्या, द्वेष, वैमनस्य एवं स्पर्धा के कारण द्वैराज्य शीघ्र ही नष्ट हो जाता है; किन्तु प्रजा के विचारों के अनुसार चलाये जाने वाला वैराज्य हमेशा अपनी स्थिति को बनाये रखता है ।'

( ४ ) किन्तु कौटिल्य का कहना है 'क्योंकि पिता, पुत्र तथा दो भाइयों में दायभाग सम्बन्धी विरोध के कारण ही द्वैराज्य की स्थापना होती है, जिसमें दोनों शासकों का योग-क्षेम समान होता है; उनके अमात्यों द्वारा दोनों राजाओं का पारस्परिक वैमनस्य शान्त हो सकता है । इस दृष्टि से द्वैराज्य में कोई बड़ा दोष

**मन्यमानः कर्शयत्यपवाहयति, पण्यं वा करोति, विरक्तं वा परित्यज्याप-गच्छतीति ।**

**(१) अन्धश्चलितशास्त्रो वा राजेति । अशास्त्रचक्षुरन्धो यत्किंचनकारी दृढाभिनिवेशी परप्रणेयो वा राज्यमन्यायेनोपहन्ति । चलितशास्त्रस्तु यत्र शास्त्राच्चलितमतिर्भवति, शक्यानुनयो भवतीत्याचार्याः ।**

**(२) नेति कौटिल्यः—अन्धो राजा शक्यते सहायसम्पदा यत्र तत्र वा पर्यवस्थापयितुमिति । चलितशास्त्रस्तु शास्त्रादन्यथाभिनिविष्टबुद्धिरन्यायेन राज्यमात्मानं चोपहन्तीति ।**

**(३) व्याधितो नवो वा राजेति ? व्याधितो राजा राज्योपघातम-मात्यमूलं प्राणाबाधं वा राज्यमूलमवाप्नोति । नवस्तु राजा स्वधर्मानुग्रह-परिहारदानमानकर्मभिः प्रकृतिरञ्जनोपकारैश्चरतीत्याचार्याः ।**

---

नहीं है । परन्तु वैराज्य में जीवित शत्रु को उच्छिन्न कर, बलपूर्वक उससे राज्य छीन कर, विजिगीषु उसको 'यह मेरा नहीं है' ऐसा मानता हुआ जुर्माना, टैक्स आदि के द्वारा कष्ट पहुँचाता है; अथवा अच्छी रकम लेकर उसे दूसरे के हाथ बेच देता है; या वहाँ की प्रजा को विमुख जानकर सर्वस्व अपहरण कर के वहाँ से चला जाता है ।'

( १ ) अन्धशास्त्र ( जिस राजा ने शास्त्रों का अध्ययन नहीं किया है ) और चलित शास्त्र ( शास्त्रों का अध्ययन कर के भी तदनुसार आचरण न करने वाला ), इन दोनों राजाओं में से कौन सा राजा प्रजा के लिए अधिक कल्याण-प्रद है ? इस सम्बन्ध में पूर्वाचार्यों का कहना है कि 'शास्त्ररूपी चक्षुओं से हीन अन्धा राजा बिना विचारे ही कार्य करने वाला, हठबुद्धि, दुष्कर्मरत, या परबुद्धि होकर अन्याय से राज्य को नष्ट कर डालता है । उसकी अपेक्षा चलितशास्त्र राजा को, शास्त्रविरुद्ध आचरण करने पर अनुनय, विनय के द्वारा रोका जा सकता है । इसलिए अन्धशास्त्र से चलितशास्त्र राजा उत्तम है ।'

( २ ) किन्तु आचार्य कौटिल्य का कहना है कि 'अन्धे राजा को अमात्य आदि की हितकर बुद्धि से स्वेच्छया अच्छे मार्ग पर लाया जा सकता है; किन्तु चलितशास्त्र राजा तो शास्त्र-विरुद्ध कार्य करने में अपनी हठ-वादिता के कारण अन्याय से स्वयं को और अपने राज्य को नष्ट कर डालता है ।'

( ३ ) बीमार राजा और नये राजा, दोनों में कौन श्रेष्ठ है, इसका निर्णय करते हुए प्राचीन आचार्यों का मत है कि 'व्याधिग्रस्त राजा अपने अमात्यों के षड्यन्त्र से राज्य को गँवा बैठता है या राज्य के सहित प्राण भी दे बैठता है; किन्तु नया राजा अपने धर्म, अनुग्रह, परिहार और मान आदि कार्यों से लोकप्रियता प्राप्त कर राज्य का संचालन कर सकता है ।'

**(१) नेति कौटिल्यः। व्याधितो राजा यथाप्रवृत्तं राजप्रणिधिमनुवर्तयति। नवस्तु राजा 'बलावर्जितं ममेदं राज्यम्' इति यथेष्टमनवग्रहश्चरति। सामुत्थायिकैरवगृहीतो वा राज्योपघातं मर्षयति। प्रकृतिष्वरूढः सुखः समुच्छेत्तुं भवति। व्यधिते विशेषः—पापरोग्यपापरोगी च।**

**(२) नवेऽप्यभिजातोऽनभिजात इति। दुर्बलोऽभिजातो बलवाननभिजातो राजेति। दुर्बलस्याभिजातस्योपजापं दौर्बल्यापेक्षाः प्रकृतयः कृच्छ्रेणोपगच्छन्ति। बलवतश्चानभिजातस्य बलापेक्षाः सुखेन इत्याचार्याः।**

**(३) नेति कौटिल्यः। दुर्बलमभिजातं प्रकृतयः स्वयमुपनमन्ति, जात्यमैश्वर्यप्रकृतिरनुवर्तत इति। बलवतश्चानभिजातस्योपजापं विसंवादयन्ति—अनुरागे सार्वगुण्यमिति।**

---

( १ ) किन्तु आचार्य कौटिल्य का कहना है 'क्योंकि व्याधिग्रस्त राजा पूर्ववत् ही राज्य के व्यापारों को बराबर चलाता रहता है; किन्तु नया राजा तो बल के अभिमान से चूर होकर 'यह मेरा राज्य है' ऐसा समझता हुआ स्वेच्छाचारी बन कर मनमाना शासन करता है। अथवा जब कभी उन्नतिशील साथी राजाओं से घिर जाता है तो राज्य के नाश को चुपचाप देखता रहता है। प्रजा का अनुराग न होने से अनायास ही शत्रुओं के द्वारा उखाड़ दिया जाता है। इसलिए नये राजा की अपेक्षा व्याधिग्रस्त राजा ही श्रेष्ठ है। परन्तु इस सम्बन्ध में एक विशेष बात ध्यान रखने योग्य यह है कि व्याधिग्रस्त राजा भी दो तरह के हो सकते हैं: एक तो पापरोग ( कोढ़ ) आदि से ग्रस्त और दूसरे अपाप रोग ( साधारण रोग ) से ग्रस्त। इनमें अपापरोगी राजा के सम्बन्ध में ही उक्त कथन को समझना चाहिए।'

( २ ) नये राजाओं में भी उच्च कुलीन राजा उत्तम होता है या नीच कुलीन ? उनमें भी उच्च कुल का दुर्बल राजा उत्तम होता है या नीच कुल का बलवान् राजा ? इस सम्बन्ध में प्राचीन आचार्यों का कहना है कि 'कुलीन दुर्बल राजा के अमात्य आदि प्रकृतिजन तथा प्रजाजन बड़ी कठिनाई से उसके वश में रहते हैं। किन्तु नीच कुलोत्पन्न, परन्तु बलवान् राजा के रोबदाब के कारण सम्पूर्ण प्रजा तथा अमात्य आदि उसके वश में हो जाते हैं। इसलिए दुर्बल अभिजात राजा ही श्रेष्ठ है।'

( ३ ) किन्तु आचार्य कौटिल्य का उक्त मत के विरुद्ध यह कहना है कि 'जो राजा उच्च कुलोत्पन्न होता है, वह चाहे दुर्बल भी हो, प्रकृतिजन अपने-आप ही उसके सामने झुक जाते हैं; क्योंकि ऐश्वर्य की योग्यता उच्च कुलोत्पन्न राजा का ही अनुगमन करती है। किन्तु बलवान् होने पर भी नीचकुलोत्पन्न राजा के प्रकृतिजन विराग के कारण उसका विरोध करने लगते हैं; क्योंकि अनुराग ही गुणों का आश्रय है।'

**(१) प्रयासवधात्सस्यवधो मुष्टिवधात्पापीयान् ।**
**(२) निराजीवत्वादवृष्टिरतिवृष्टित इति ।**
**(३) द्वयोर्द्वयोर्व्यसनयोः प्रकृतीनां बलाबलात् ।**
**पारम्पर्यक्रमेणोक्तं याने स्थाने च कारणम् ।।**

इति व्यसनाधिकारिकेऽष्टमेऽधिकरणे राजराज्ययोर्व्यसनचिन्ता नाम द्वितीयोऽध्याय; आदितः सप्तदशशततमः ।

—: ० :—

---

( १ ) खेत में बीज न बोने के कारण अन्नाभाव से जो कष्ट होता है उसकी अपेक्षा बीज बोने के बाद तैयार हुए अनाज का नष्ट हो जाना अधिक पीड़ाकर होता है। क्योंकि सारा परिश्रम ही व्यर्थ चला जाता है।

( २ ) इसी प्रकार अधिक वृष्टि होने की अपेक्षा वृष्टि का सर्वथा न होना अधिक हानिकर है; क्योंकि जीवन की रक्षा जल पर ही निर्भर होती है।

( ३ ) इस प्रकार दो भिन्न-भिन्न व्यसनों में प्रकृतियों के बलाबल का निरूपण किया जा चुका है। इसका स्पष्टीकरण इस तरह है : विजिगीषु और शत्रु पर व्यसन होने के कारण, यदि शत्रु की अपेक्षा विजिगीषु पर लघु व्यसन हो तो विजिगीषु को चढ़ाई कर देनी चाहिए; और यदि अवस्था इसके विपरीत हो तो विजिगीषु को चुपचाप होकर बैठ जाना चाहिए।

व्यसनाधिकारिक नामक अष्टम अधिकरण में राजराज्यव्यसनचिन्ता नामक दूसरा अध्याय समाप्त।

—: ० :—

| प्रकरण १२९ | # पुरुषव्यसनवर्गः |
|---|---|
| अध्याय ३ | |

**(१) अविद्याविनयः पुरुषव्यसनहेतुः। अविनीतो हि व्यसनदोषान्न पश्यति।**

**(२) तानुपदेक्ष्यामः—कोपजस्त्रिवर्गः, कामजश्चतुर्वर्गः।**

**(३) तयोः कोपो गरीयान्। सर्वत्र हि कोपश्चरति, प्रायशश्च कोपवशा राजानः प्रकृतिकोपैर्हताः श्रूयन्ते, कामवशाः क्षयव्ययनिमित्तमरिव्याधिभिरिति।**

**(४) नेति भारद्वाजः। सत्पुरुषाचारः कोपः। वैरयातनमवज्ञावधो भीतमनुष्यता च, नित्यश्च कोपसम्बन्धः पापप्रतिषेधार्थः। कामः सिद्धिलाभः। सान्त्वं त्यागशीलता सम्प्रियभावश्च। नित्यश्च कामेन सम्बन्धः कृतकर्मणः फलोपभोगार्थं इति।**

## सामान्य पुरुषों के व्यसन

( १ ) अशिक्षित व्यक्ति व्यसनी हो जाते हैं, क्योंकि अशिक्षित व्यक्ति व्यसनों से पैदा होने वाले दोषों को नहीं समझ पाता है।

( २ ) इस प्रकरण में ऐसे ही व्यसनों तथा व्यसनों से पैदा होने वाले दोषों का निरूपण किया जाता है। कोप से उत्पन्न होने वाले तीन दोष होते हैं, इसीलिए उन्हें त्रिवर्ग कहा गया है। इसी प्रकार काम से उत्पन्न होने वाले चार दोष हैं, इसीलिए उन्हें चतुर्वर्ग कहा गया है।

( ३ ) दोषों को उत्पन्न करने वाले काम और क्रोध दोनों में से क्रोध ही अधिक भयावह होता है, क्योंकि क्रोध का सर्वत्र प्रवेश है। प्रायः ऐसा सुना गया है कि कोप से वशीभूत हुए राजा अपनी प्रकृतियों के कोप से ही मारे गये। इसी प्रकार काम के वशीभूत हुए राजा, सेना तथा कोष के नष्ट हो जाने या शारीरिक शक्ति के नष्ट हो जाने के कारण शत्रुओं तथा व्याधियों के द्वारा मारे गये सुने गये हैं।

( ४ ) इस सिद्धान्त के विपरीत आचार्य भारद्वाज का कथन है 'क्योंकि कोप करना श्रेष्ठ लोगों का आचारधर्म है। कोप से ही शत्रु का प्रतीकार और दूसरे के तिरस्कार का बदला लिया जाता है। क्रोधी पुरुष की बुराई करने से सभी लोग डरते हैं। क्रोध छोड़ा भी नहीं जा सकता है, क्योंकि उसी के द्वारा पापियों का

**(१) नेति कौटिल्यः। द्वेष्यता शत्रुवेदनं दुःखासङ्गश्च कोपः। परिभवो द्रव्यनाशः पाटच्चरद्यूतकारलुब्धकगायनवादकैश्चानर्थ्यैः संयोगः कामः।**

**(२) तयोः परिभवाद् द्वेष्यता गरीयसी। परिभूतः स्वैः परैश्चावगृह्यते, द्वेष्यः समुच्छिद्यत इति। द्रव्यनाशाच्छत्रुवेदनं गरीयः, द्रव्यनाशः कोशाबाधकः, शत्रुवेदनं प्राणाबाधकमिति। अनर्थ्यसंयोगाद् दुःखसंयोगो गरीयान्। अनर्थ्यसंयोगो मुहूर्तप्रीतिकरः, दीर्घक्लेशकरो दुःखानामासङ्ग इति। तस्मात्कोपो गरीयान्।**

**(३) वाक्पारुष्यमर्थदूषणं दण्डपारुष्यमिति। वाक्पारुष्यार्थदूषणयो-**

---

निग्रह होता है। इसी प्रकार काम भी सुख को देनेवाला है और उसी के कारण व्यक्ति में सच्चाई, मधुरता, त्याग और सौम्यता जैसे गुण आ बसते हैं। इसके अतिरिक्त अपने कर्मों का फल भोगने के लिए प्रत्येक पुरुष के लिए काम का अवलंबन आवश्यक भी है।'

( १ ) किन्तु आचार्य कौटिल्य उक्त मत को स्वीकार नहीं करते। उनका कहना है कि 'कोप और काम कदापि गुणों की कोटि में नहीं रखे जा सकते हैं, वे तो अनेक महान् अनर्थों को पैदा करने वाले हैं, कोप के कारण मनुष्य सबका द्वेषी बन जाता है. उसके अनेक शत्रु बन जाते हैं, दुःख उसके शिर पर मँडराया करते हैं, कामी पुरुष का सर्वत्र तिरस्कार होता है, वह धन-नाश करता है, चोर, जुआरी, शराबी आदि अनर्थकारी व्यक्तियों से उसका साथ होता है।'

( २ ) काम और क्रोध से उत्पन्न होने वाले दोषों में से, कामजन्य परिभव ( दोष ) की अपेक्षा क्रोधजन्य द्वेष्यता अधिक हानिकर होती है। तिरस्कृत व्यक्ति अपने या पराये लोगों के द्वारा कभी न कभी अनुगामी बनाया जा सकता है, किन्तु जिससे सभी लोग द्वेष करते हैं वह तो नष्ट ही हो जाता है। इसीलिए तिरस्कृत होने की अपेक्षा द्वेष्य होना अधिक कष्टकर है। द्रव्यनाश हो जाने की अपेक्षा अधिक शत्रुओं का पैदा हो जाना अधिक हानिकर है। द्रव्यनाश होने पर केवल कोष को बाधा पहुँचती है, प्राण सुरक्षित रहते हैं, किन्तु शत्रुओं के बढ़ जाने से प्राण खतरे में पड़ जाते हैं। अनर्थकारी व्यक्तियों से सम्पर्क होने की अपेक्षा दुःखों का संयोग अधिक कष्टकर है। चोर, जुआरी आदि अनर्थकारी व्यक्तियों के सम्बन्ध परिणाम में दुःखदायी होने के बावजूद भी थोड़े समय के लिए प्रसन्न कर देने वाले होते हैं, किन्तु दुःखों का सम्बन्ध लगातार कष्टदायक होता है। इसलिए कामजन्य दोषों की अपेक्षा क्रोधजन्य दोषों को ही अधिक हानिकर समझना चाहिए।

( ३ ) **कोपजन्य त्रिवर्ग :** वाक्पारुष्य, अर्थदूषण और दण्डपारुष्य, ये कोपज त्रिवर्ग हैं, आचार्य विशालाक्ष के मत से 'वाक्पारुष्य ही अधिक बलवान् है। क्योंकि

**वाक्पारुष्यं गरीयः इति विशालाक्षः। परुषमुक्तो हि तेजस्वी तेजसा प्रत्यारोहति, दुरुक्तशल्यं हृदि निखातं तेजःसन्दीपनमिन्द्रियोपतापि च इति।**

**(१) नेति कौटिल्यः। अर्थपूजा वाक्छल्यमपहन्ति, वृत्तिविलोपस्त्वर्थदूषणम्। अदानमादानं विनाशः परित्यागो वा अर्थस्येत्यर्थदूषणम्।**

**(२) अर्थदूषणदण्डपारुष्ययोरर्थदूषणं गरीयः इति पाराशराः। अर्थमूलौ धर्मकामौ, अर्थप्रतिबन्धश्च लोको वर्तते, तस्योपघातो गरीयान् इति।**

**(३) नेति कौटिल्यः। सुमहताऽप्यर्थेन न कश्चन शरीरविनाशमिच्छेत्। दण्डपारुष्याच्च तमेव दोषमन्येभ्यः प्राप्नोति। इति कोपजस्त्रिवर्गः।**

**(४) कामजस्तु—मृगया द्यूतं स्त्रियः पानमिति चतुर्वर्गः। तस्य मृगयाद्यूतयोर्मृगया गरीयसी इति पिशुनः स्तेनामित्रव्यालदावप्रस्खलनभय-**

---

अपने तिरस्कार को सहन न करने वाले पुरुष के साथ कठोर वाक्यों का व्यवहार करने पर वह निश्चित ही कठोरभाषी व्यक्ति पर अपने तेज के द्वारा आक्रमण करता है। हृदय में गड़ा हुआ दुर्वचन भीतरी तेज को उभाड़ने वाला और इन्द्रियों को संतप्त करने वाला होता है। इसलिए अर्थदूषण की अपेक्षा वाक्पारुष्य को ही अधिक हानिकर समझना चाहिए।'

( १ ) किन्तु, विशालाक्ष के मत के विरुद्ध कौटिल्य का कहना है कि 'अर्थ द्वारा की गई पूजा दुर्वचनरूपी शल्य को नष्ट कर देती है, किन्तु वाणी द्वारा की गई पूजा अर्थदूषण को नहीं हटा सकती है, किसी की जीविका मारना ही अर्थदूषण है। प्रिय वचन जीविका के विघात को पूरा नहीं कर सकते हैं। अर्थदूषण चार प्रकार का होता है। १. अदान ( कार्य करने पर भी वेतन न देना ) २. आदान ( दण्ड आदि के द्वारा धन खींच लेना ) ३. विनाश ( देश को पीडा पहुँचाना ) और ४. अर्थत्याग ( रक्षा योग्य अर्थ की रक्षा न करना )।'

( २ ) आचार्य पराशर के अनुयायियों का कहना है कि 'अर्थदूषण और दण्डपारुष्य में अर्थदूषण ही बलवान् होता है, क्योंकि धर्म, काम और लोकनिर्वाह सभी अर्थ पर निर्भर होते हैं। इसलिए अर्थ का उपघात ( दूषण ) होना अत्यन्त ही आपत्तिजनक है। इसलिए दण्डपारुष्य की अपेक्षा अर्थदूषण को ही बड़ा समझना चाहिए।'

( ३ ) किन्तु कौटिल्य उक्त मत को युक्तिसंगत नहीं मानता है। उसका कहना है कि 'अत्यधिक धन-प्राप्ति के बदले में कोई भी अपने को नष्ट नहीं करना चाहता है, पुनः दण्डपारुष्य से आत्मरक्षा के लिए वह उतनी ही धन-राशि खर्च करने के लिए तैयार रहता है। इसलिए अर्थदूषण की अपेक्षा दण्डपारुष्य को ही अधिक कष्टकर समझना चाहिए।' यहाँ तक कोपजन्य त्रिवर्ग का निरूपण किया गया।

( ४ ) **कामजन्य चतुर्वर्ग :** मृगया, द्यूत, स्त्री और मदिरापान, ये कामज चार

**दिङ्मोहाः क्षुत्पिपासे च प्राणाबाधस्तस्याम् । द्यूते तु जितमेवाक्षविदुषा यथा जयत्सेनदुर्योधनाभ्यामिति ।**

**(१) नेति नौटिल्यः । तयोरप्यन्यतरपराजयोऽस्तीति नलयुधिष्ठिराभ्यां व्याख्यातं, तदेव विजितद्रव्यमामिषं, वैरबन्धश्च, सतोऽर्थस्य विप्रतिपत्तिरसतश्चार्जनमप्रतिभुक्तनाशो मूत्रपुरीषधारणबुभुक्षादिभिश्च व्याधिलाभ इति द्यूतदोषः । मृगयायां तु व्यायामः श्लेष्मपित्तमेदःस्वेदनाशश्चले स्थिरे च काये लक्षपरिचयः कोपभयस्थानेहितेषु च मृगाणां चित्तज्ञानमनित्ययानं चेति ।**

**(२) द्यूतस्त्रीव्यसनयोः कैतवव्यसनम् इति कौणपदन्तः । सातत्येन हि निशि प्रदीपे मातरि च मृतायां दीव्यत्येव कितवः, कृच्छ्रे च प्रतिपृष्टः**

---

दोष है । 'इस कामजन्य चतुर्वर्ग में मृगया और द्यूत, इन दोनों में से मृगया दोष अधिक हानिकर होता है'—ऐसा आचार्य नारद ( पिशुन ) का कहना है । 'क्योंकि मृगया दोष में सर्वथा चोर, शत्रु, साँप, दावाग्नि और गिरने का भय बना रहता है, दिशाओं के भूल जाने से तथा भूख-प्यास से कभी-कभी प्राणान्तक कष्ट भी उपस्थित हो जाता है । परन्तु बढ़िया खिलाड़ी जुए में अवश्य ही विजयी होता है, जैसे जयत्सेन और दुर्योधन ने नल और युधिष्ठिर को जुए में जीत लिया था । इसलिए जुए की अपेक्षा शिकार में अधिक कष्ट है ।'

( १ ) किन्तु उक्त सिद्धान्त के विरुद्ध आचार्य कौटिल्य का कहना है कि 'मृगया की भाँति जुए में भी अनेक दोष हैं । जुआ खेलने वालों में एक की अवश्य ही हार होती है, जैसे नल और युधिष्ठिर जुए में हार गए थे । जुए में जीता हुआ धन पराये मांस की तरह है और हारने वाला जुआरी जीते हुए जुआरी से बैर भी ठान लेता है । धर्मपूर्वक कमाये हुए धन का दुरुपयोग होता है और अधर्मपूर्वक जुए से धन का संग्रह होता है । संग्रह किया हुआ धन फिर जुए में ही गँवा दिया जाता है । जुआ खेलते समय पेशाब, पाखाना और भूख रोकने से अनेक बीमारियाँ हो जाती हैं । जुए की अपेक्षा मृगया में व्यायाम, कफ-पित्त का नाश, मेदा का न बढ़ना, पसीना निकलने से देह का हल्का होना, चलते हुए या बैठे हुए शरीर पर निशाना बाँधने का अभ्यास होना, क्रोध तथा भय से उत्पन्न होने वाले जंगली जानवरों के चित्त की भिन्न-भिन्न चेष्टाओं का ज्ञान होना और किसी खास अवसर पर ही मृगया का समय निश्चित होना—ये सब गुण ऐसे हैं, जो द्यूत में असम्भव है ।'

( २ ) आचार्य कौणपदंत का मत है कि 'द्यूत-व्यसन और स्त्री-व्यसन, दोनों में द्यूत-व्यसन अधिक हानिकर है, क्योंकि जुआरी रात में भी दीपक जला कर जुआ खेलता है, माता के मर जाने पर उसकी दाहक्रिया आदि की कुछ भी परवाह न

**कुप्यति। स्त्रीव्यसनेषु तु स्नानप्रतिकर्मभोजनभूमिषु भवत्येव धर्मार्थपरिप्रश्नः। शक्या च स्त्री राजहिते नियोक्तुम्। उपांशुदण्डेन व्याधिना वा व्यावर्तयितुमवस्रावयितुं वा इति।**

**(१) नेति कौटिल्यः। सप्रत्यादेयं द्यूतम्, निष्प्रत्यादेयं स्त्रीव्यसनम्। अदर्शनं, कार्यनिर्वेदः, कालातिपातनादनर्थधर्मलोपश्च, तन्त्रदौर्बल्यं, पानानुबन्धश्चेति।**

**(२) स्त्रीपानव्यसनयोः स्त्रीव्यसनम् इति वातव्याधिः। स्त्रीषु हि बालिश्यमनेकविधं निशान्तप्रणिधौ व्याख्यातम्। पाने तु शब्दादीनामिन्द्रियार्थानामुपभोगः प्रीतिदानं परिजनपूजनं कर्मश्रमवधश्चेति।**

---

करके जुए में जुटा हुआ रहता है और किसी संकट कालीन स्थिति में उससे जब कोई कुछ कहना चाहता है तो वह कुपित हो जाता है। इसके विपरीत स्त्री-व्यसनी राजा से स्नान के समय वस्त्र पहनते हुए या भोजन आदि के समय धर्म-अर्थ के सम्बन्ध में पूछा तथा बतलाया जा सकता है, जिस स्त्री पर राजा आसक्त हो उसको भी अमात्यों के द्वारा राजा के ध्येय कार्यो की ओर मोड़ा जा सकता है। यदि वह स्त्री अमात्यों का कहना न माने तो उसका उपांशुवध भी कराया जा सकता है। यदि ऐसा भी सम्भव न हो तो विषयुक्त औपधियों से उसमें व्याधि उपजा कर इलाज के बहाने उसको दूसरी जगह भेजा जा सकता है। इसलिए स्त्री-व्यसन की अपेक्षा द्यूत-व्यसन ही अधिक हानिकर है।'

( १ ) किन्तु उक्त मत के विरुद्ध आचार्य कौटिल्य का कहना है कि 'जुए में जो चीज हार दी जाय उसको फिर जुए में ही जीता जा जा सकता है; किन्तु स्त्री व्यसन में तो जो चीज हाथ से निकल गई उसका वापिस मिलना सम्भव नहीं होता है। स्त्री-व्यसन में आसक्त राजा अपने मन्त्रियों तक से नहीं मिल पाता है, जिसकी वजह से मन्त्रिवर्ग भी राजकार्य की ओर उदासीन हो जाता है और इस प्रकार कुछ समय बाद राजा के अर्थ-धर्म, दोनों ही विलुप्त हो जाते हैं।। इतना ही नहीं, उसका राज्यतन्त्र भी दुर्बल हो जाता है। स्त्री-व्यसन के सहकारी व्यसन मद्यपान, जुआ आदि भी उसके पीछे लग जाते हैं। इसलिए द्यूत-व्यसन की अपेक्षा स्त्री-व्यसन ही अधिक हानिकर समझना चाहिए।

( २ ) आचार्य वातव्याधि के मत से 'स्त्री-व्यसन और मद्यपान, दोनों में से स्त्री-व्यसन ही अधिक कष्टकर है; क्योंकि स्त्रियों में अनेक प्रकार की मूर्खताएँ होती हैं, जिनका वर्णन पीछे निशांतप्रणिधि प्रकरण में किया गया है; यहाँ तक कि वे अपने पतियों के वध करने तक का षड्यन्त्र रच देती हैं। मद्यपान में तो इन्द्रियों के विषयभूत शब्द आदि का ही उपयोग किया जाता है। उससे प्रेम का विस्तार, तथा

**(१) नेति कौटिल्यः। स्त्रीव्यसने भवत्यपत्योत्पत्तिरात्मरक्षणं चान्तदारेषु, विपर्ययो वा बाह्येषु, अगम्येषु सर्वोच्छित्तिः। तदुभयं पानव्यसने। पानसम्पत्—संज्ञानाशः अनुन्मत्तस्योन्मत्तत्वमप्रेतस्य प्रेतत्वं कौपीनदर्शनं श्रुतप्रज्ञाप्राणवित्तमित्रहानिः सद्भिर्वियोगोऽनर्थ्यसंयोगस्तन्त्रीगीतनैपुण्येषु चार्थघ्नेषु प्रसङ्ग इति।**

**(२) द्यूतमद्ययोर्द्यूतमेकेषाम्। पणनिमित्तो जयः पराजयो वा, प्राणिषु निश्चेतनेषु वा पक्षद्वैधेन प्रकृतिकोपं करोति, विशेषतश्च सङ्घानां सङ्घधर्मिणां च राजकुलानां द्यूतनिमित्तो भेदः, तन्निमित्तो विनाश इति। असत्प्रग्रहः पापिष्ठतमो व्यसनानां तन्त्रदौर्बल्यादिति।**

---

तथा परिजनों का सत्कार करने की प्रवृति बढ़ती है और अधिक कार्य करने से उत्पन्न थकावट दूर हो जाती है। इसलिए मद्यपान की अपेक्षा स्त्री-व्यसन अधिक दुःखदायी है।'

( १ ) किन्तु उक्त मत के विरुद्ध आचार्य कौटिल्य का कथन है कि 'यदि स्त्री-व्यसन अपनी पत्नियों तक ही सीमित है तब तो पुत्रों को पैदा कर उनके द्वारा आत्म-रक्षा होना, यह तो लाभ की ही बात है। यदि वह व्यसन गणिका आदि स्त्रियों में हो तो उससे उक्त लाभ नहीं होता और यदि वह अन्य कुलीन स्त्रियों तक असीमित हो जाय तो उससे राजा का सर्वनाश हो जाता है; इसीलिए बाह्य स्त्रियों और कुलीन स्त्रियों में आसक्ति होने के कारण ही स्त्री-व्यसन को सदोष माना गया है। किन्तु मद्यपान-व्यसन में न तो पुत्र आदि के पैदा होने की कोई सम्भावना है और उसमें सर्वनाश का ही अधिक खतरा रहता है। इसके अतिरिक्त मद्यपान करने से नीचे लिखे अनेक दोष पैदा हो जाते हैं : विवेक-बुद्धि नष्ट हो जाती है; अच्छा व्यक्ति भी उन्मत्त के समान हो जाता है; जीता हुआ भी मरे हुए के समान निश्चेष्ट हो जाता है; उसके गुप्तपापों का पता लग जाता है, उसका शास्त्रज्ञान तथा उसकी संस्कृत बुद्धि, बल, धन और मित्र आदि सभी वस्तुओं का विनाश हो जाता है, सज्जनों की संगति से वह दूर हो जाता है, सर्वदा अनर्थकारी व्यक्तियों से उसका संसर्ग हो जाता है, धन को नष्ट करने वाले गीत, वाद्य आदि में उसकी प्रवृति हो जाती है।'

( २ ) कुछ आचार्यों का कहना है कि 'द्यूत और मद्य, इन दोनों व्यसनों में से द्यूत ही अधिक कष्टकर है, क्योंकि दाव लगाने पर जय तथा पराजय और प्राणी तथा अप्राणी विषयक द्यूतों में परस्पर विरुद्ध दो पक्षों का वैर हो जाने के कारण प्रकृतियों में कोप को पैदा कर देते है और विशेषतः एक साथ रहने वाले एक विचार-बुद्धि के राजकुलों में भी द्यूत के कारण परस्पर मतभेद हो जाता है, जिससे कि उनका विनाश हो जाता है। यह असत्प्रग्रह ( जिस व्यसन में दुर्जनों का सत्कार

(१) असतां प्रग्रहः कामः कोपश्चावग्रहः सताम् ।
व्यसनं दोषबाहुल्यादत्यन्तमुभयं मतम् ।।

(२) तस्मात्कोपं च कामं च व्यसनारम्भमात्मवान् ।
परित्यजेन्मूलहरं वृद्धसेवी जितेन्द्रियः ।।

इति व्यसनाधिकारिकेऽष्टमेऽधिकरणे पुरुषव्यसनवर्गो नाम तृतीयोऽध्यायः;
आदितोऽष्टाविंशतिशततमः ।

—: ० :—

---

किया जाता है ) अर्थात् मद्यपान व्यसन अन्य सभी व्यसनों में अत्यन्त पापिष्ठ है, क्योंकि उससे सारी राज्य-व्यवस्था दुर्बल हो जाती है ।

( १ ) काम और क्रोध, ये दोनों ही गाने-बजाने का व्यवसाय करने वाले दुर्जनों के सत्कार के हेतु तथा सज्जनों के तिरस्कार के हेतु होते हैं । दोषों की अधिकता के कारण काम-क्रोध को महान् व्यसन माना गया है ।

( २ ) इसलिए धैर्यशाली, वृद्धसेवी और जितेन्द्रिय राजा को चाहिए कि वह, प्राणों तक का नाश करने वाले तथा दुःखोत्पादक काम और क्रोध का सर्वथा परित्याग कर दे ।

व्यसनाधिकारिक नामक आठवें अधिकरण में पुरुषव्यसनवर्ग नामक
तीसरा अध्याय समाप्त ।।

—: ० :—

# पीडनवर्गः स्तम्भवर्गः कोशसङ्गवर्गश्च

(१) दैवपीडनमग्निरुदकं व्याधिर्दुभिक्षं मरक इति।

(२) अग्न्युदकयोरग्निपीडनमप्रतिकार्यं सर्वदाहि च, शक्योपगमनं तार्याबाधमुदकपीडनमित्याचार्याः।

(३) नेति कौटिल्यः। अग्निर्ग्राममर्धग्रामं वा दहति, उदकवेगस्तु ग्रामशतप्रवाहीति।

(४) व्याधिर्दुभिक्षयोर्व्याधिः प्रेतव्याधितोपसृष्टपरिचारकव्यायामोपरोधेन कर्माण्युपहन्ति, दुर्भिक्षं पुनरकर्मोपघाति हिरण्यपशुकरदायि च इत्याचार्याः।

## पीडनवर्ग, स्तंभवर्ग और कोषसंगवर्ग

( १ ) **पीडनवर्ग** : राष्ट्र पर आने वाली दैवी विपत्तियाँ पाँच प्रकार की होती हैं : १. अग्नि २. जल ३. व्याधि ४. दुर्भिक्ष और ५. महामारी।

( २ ) प्राचीन आचार्यों का मत है कि 'अग्नि और जल से उत्पन्न होने वाली आपत्तियों में से अग्निजन्य आपत्ति ही अधिक कष्टकर होती है, क्योंकि आग लग जाने पर उसका सरलता से कोई प्रतीकार नहीं किया जा सकता है और आग सब वस्तुओं को जलाकर भस्म कर देती है। किन्तु जल में यह बात नहीं है, क्योंकि शीतल होने से उसका स्पर्श सह्य होता और नौका आदि साधनों के द्वारा उससे अपना काम भी लिया जा सकता है।'

( ३ ) उक्त मत के विरुद्ध आचार्य कौटिल्य का कहना है 'अग्नि किसी एक ही गाँव या आधे ही गाँव को जला सकती है किन्तु जल का प्रवाह एक साथ ही सैकड़ों गाँवों को बहा ले जाता है।'

( ४ ) पूर्वाचार्यों का कहना है कि 'व्याधि और दुर्भिक्ष इन दोनों में से व्याधि ही अधिक कष्टप्रद होती है, क्योंकि उससे लोग मर जाते हैं, बीमार हो जाते हैं, कृषि आदि कार्य सब ठप हो जाते हैं। परन्तु दुर्भिक्ष के कारण ये सब बाधाएँ नहीं होने पाती। अन्न के अभाव में हिरण्य आदि के द्वारा सरकारी कर चुकाया जा सकता है।'

**(१) नेति कौटिल्यः—एकदेशपीडनो व्याधिः शक्यप्रतीकारश्च, सर्वदेश-पीडनं दुर्भिक्षं प्राणिनामजीवनायेति ।**

**(२) तेन मरको व्याख्यातः ।**

**(३) क्षुद्रकमुख्यक्षययोः क्षुद्रकक्षयः कर्मणामयोगक्षेमं करोति, मुख्य-क्षयः कर्मानुष्ठानोपरोधधर्मा इत्याचार्याः ।**

**(४) नेति कौटिल्यः । शक्यः क्षुद्रकक्षयः प्रतिसन्धातुं बाहुल्यात् क्षुद्र-काणां, न मुख्यक्षयः । सहस्रेषु हि मुख्यो भवत्येको न वा सत्त्वप्रज्ञाधिक्या-दाश्रयत्वात् क्षुद्रकाणामिति ।**

**(५) स्वचक्रपरचक्रयोः स्वचक्रमतिमात्राभ्यां दण्डकराभ्यां पीडयत्य-शक्यं च वारयितुं, परचक्रं तु शक्यं प्रतियोद्धुमपसारेण सन्धिना वा मोक्ष-यितुमित्याचार्याः ।**

**(६) नेति कौटिल्यः । स्वचक्रपीडनं प्रकृतिपुरुषमुख्योपग्रहविघाताभ्यां**

---

( १ ) किन्तु कौटिल्य पूर्वाचार्यों के मत को युक्तिसंगत नहीं मानता है । वह कहता है कि 'व्याधि से किसी एक ही देश की हानि होती है और औषधि आदि के द्वारा उसका प्रतीकार भी किया जा सकता है । किन्तु दुर्भिक्ष के कारण सारा राष्ट्र पीडित हो जाता है और प्राणिमात्र का जीवन संकट में पड़ जाता है ।'

( २ ) इसी प्रकार महामारी के सम्बन्ध में भी समझ लेना चाहिए ।

( ३ ) प्राचीन आचार्यों का विचार है कि 'छोटे कर्मचारियों और प्रमुख कार्य-कर्ताओं में से छोटे कर्मचारियों का क्षय होना अधिक हानिकर है, क्योंकि कर्मचारियों के अभाव में कार्यों का योग-क्षेम सिद्ध नहीं होता है । किन्तु प्रमुख कार्यकर्ताओं का क्षय केवल कार्य की निगरानी में ही बाधा डाल सकता है ।

( ४ ) किन्तु कौटिल्य का कहना है कि 'छोटे कर्मचारियों की कमी को दूसरी नियुक्तियाँ कर के पूरा किया जा सकता है, किन्तु प्रमुख कार्यकर्ता हजारों में से एक मिलता है या कभी-कभी वह भी नहीं मिलता, अपने बल-बुद्धि की अधिकता के के कारण छोटे कर्मचारियों का वह आश्रय होता है ।'

( ५ ) प्राचीन आचार्यों का मत है कि स्वचक्र ( अपने देश का विप्लव ) और परचक्र ( दूसरे देश द्वारा विप्लव ), इन दोनों में से स्वचक्र ही अधिक भयङ्कर होता है, क्योंकि वह जुरमाना एवं टैक्स आदि के द्वारा प्रजा को पीड़ित करता है और अपने ही देश का होने के कारण उसका प्रतीकार भी नहीं किया जा सकता है, किन्तु परचक्र का प्रतीकार, उस देश को छोड़ देने से भी किया जा सकता है या कुछ धन देकर भी सन्धि की जा सकती है ।'

( ६ ) किन्तु कौटिल्य का कथन है कि 'स्वचक्र की पीड़ा का प्रतीकार अमात्य

**शक्यते वारयितुम्, एकदेशं वा पीडयति । सर्वदेशपीडनं तु परचक्रं विलोप-घातदाहविध्वंसनापवाहनैः पीडयतीति ।**

**(१) प्रकृतिराजविवादयोः प्रकृतिविवादः प्रकृतीनां भेदकः पराभि-योगानावहति । राजविवादस्तु प्रकृतीनां द्विगुणभक्तवेतनपरिहारकरो भवतीत्याचार्याः ।**

**(२) नेति कौटिल्यः । शक्यः प्रकृतिविवादः प्रकृतिमुख्योपग्रहेण कलह-स्थानापनयनेन वा वारयितुं, विवदमानास्तु प्रकृतयः परस्परसंघर्षेणोप-कुर्वन्ति । राजविवादस्तु पीडनोच्छेदनाय प्रकृतीनां द्विगुणव्यायामसाध्य इति ।**

**(३) देशराजविहारयोर्देशविहारस्त्रैकाल्येन कर्मफलोपघातं करोति, राजविहारस्तु कारुशिल्पकुशीलववाग्जीवनरूपाजीवावैदेहकोपकारं करोति इत्याचार्याः ।**

---

आदि मुख्य व्यक्तियों को अनुकूल बनाकर या उनका खातमा कर देने पर भी किया जा सकता है । स्वचक्र से किसी एक धन-धान्य सम्पन्न देश को ही पीड़ा पहुँचती है। किन्तु परचक्र के द्वारा तो लूटने, मारने, आग लगाने, अन्य प्रकार से पीड़ा पहुँचाने और अपने देश से निकाल देने आदि द्वारा अनेक प्रकार की पीड़ाएँ सारे राष्ट्र को उठानी पड़ती है ।'

( १ ) आचार्यों का मत है कि 'प्रकृतिविवाद और राजविवाद, इन दोनों में से प्रकृति-विवाद ही अधिक हानिकर होता है, क्योंकि वह अमात्य आदि में परस्पर फूट डालने वाला और शत्रु के कार्यों को सहारा देने वाला होता है । परन्तु राज-विवाद के कारण प्रकृतियों का दुगुना वेतन, भत्ता बढ़ जाता है और प्रजा के सारे कर माफ कर दिये जाते हैं ।'

( २ ) किन्तु कौटिल्य का कहना है कि 'अमात्य आदि मुख्य प्रकृतियों को अनुकूल बनाकर और कलह के कारणों को मिटा देने से प्रकृति-विवाद को शान्त किया जा सकता है । दूसरी बात यह भी है कि परस्पर विरुद्ध प्रकृति जन स्पर्धावश राजा का का उपकार ही करते हैं । किन्तु प्रजा की सारी शक्ति और सम्पूर्ण समृद्धि राजविवाद में नष्ट हो जाती है । उसको शान्त करने के लिए दुगुना यत्न करना पड़ता है ।'

( ३ ) प्राचीन आचार्यों का कहना है कि 'देश-विहार ( हँसी-खेल में फँसा हुआ देश ) और राजविहार ( हँसी-खेल में फँसा हुआ राजा ), इन दोनों में से देशविहार अधिक हानिकर होता है; क्योंकि प्रजाजनों के खेल-कूद में फँसे रहने के कारण कृषि-कार्यों के क्रम में विघ्न हो जाता है । किन्तु राज-विहार से संबद्ध बढ़ई, सुनार, गाने वाले, भाट, वेश्या और व्यापारी आदि व्यक्तियों का बड़ा भला होता है ।'

**(१) नेति कौटिल्यः। देशविहारः कर्मश्रमवधार्थमल्पं भक्षयति, भक्षयित्वा च भूयः कर्मसु योगं गच्छति। राजविहारस्तु स्वयं वल्लभैश्च स्वयंग्राहप्रणयपण्यागारकार्योपग्रहैः पीडयति इति।**

**(२) सुभगाकुमारयोः कुमारः स्वयं वल्लभैश्च स्वयंग्राहप्रणयपण्यागारकार्योपग्रहैः पीडयति। सुभगा विलासोपभोगेनेत्याचार्याः।**

**(३) नेति कौटिल्यः। शक्यः कुमारो मंत्रिपुरोहिताभ्यां वारयितुं न सुभगा, बालिश्यादनर्थ्यजनसंयोगाच्चेति।**

**(४) श्रेणीमुख्ययोः श्रेणी बाहुल्यादनवग्रहा स्तेयसाहसाभ्यां पीडयति, मुख्यः कार्यानुग्रहविघाताभ्यामित्याचार्याः।**

---

( १ ) किन्तु उक्त मत के विरोध में कौटिल्य का कहना है कि 'प्रजाजनों का मनोविनोद थोड़े ही व्यय में हो जाता है और वह मनोविनोद उन्हें ताजगी देकर दुगुने उत्साह से फिर काम करने में जुटा देता है। किन्तु राजविहार में तो स्वयं राजा के द्वारा तथा राजा के प्रिय व्यक्तियों के द्वारा जनपद की इच्छा के विरुद्ध धन की लूट-मार की जाती है। पण्यशाला से तथा अतिरिक्त कार्यों को पूरा करने के लिए रिश्वत आदि से धन लेकर प्रजा को पीड़ित किया जाता है।'

( २ ) प्राचीन आचार्यों का मत है कि 'रानी-विहार और युवराज-विहार, इन दोनों में से युवराज-विहार अधिक कष्टकर होता है; क्योंकि युवराज के द्वारा तथा उसके खुशामदी व्यक्तियों के द्वारा जनपद की इच्छा के विरुद्ध धन लेकर पण्यशाला तथा अन्य कार्यों को पूरा करने के लिए रिश्वत लेकर प्रजा को पीड़ित किया जाता है। किन्तु विलास-प्रिय रानी केवल भोग-विलास की सामग्री द्वारा ही प्रजा को पीड़ित करती है।'

( ३ ) किन्तु कौटिल्य उक्त मत से सहमत नहीं है, उनका कहना है कि 'युवराज को इस प्रकार के अनर्थकारी कार्यों से अमात्य आदि रोक सकते हैं। परन्तु रानियों के सम्बन्ध में यह बात नहीं हो सकती है; क्योंकि उनमें प्रायः मूर्खता अधिक होती है और फिर अनर्थकारी नीच पुरुषों का संसर्ग होने के कारण उन्हें समझाना बहुत कठिन होता है।'

( ४ ) प्राचीन आचार्यों के मतानुसार 'श्रेणी ( आयुधजीवी तथा कृषिजीवी व्यक्तियों का संघ ) और मुख्य ( प्रधान कर्मचारियों का समूह ), इन दोनों में से श्रेणी पुरुष ही अधिककष्टकर है; क्योंकि वही चोरी डाका आदि से प्रजा को कष्ट पहुँचाते हैं और उनकी संख्या इतनी अधिक होती है कि उन्हें रोका भी नहीं जा सकता है। किन्तु मुख्य पुरुष केवल रिश्वत के मिलने न मिलने के कारण ही कार्यों बनाने-बिगाड़ने के द्वारा प्रजा को तङ्ग करते हैं।'

**(१) नेति कौटिल्यः। सुव्यावर्त्या श्रेणी समानशीलव्यसनत्वात्, श्रेणीमुख्यैकदेशोपग्रहेण वा। स्तम्भयुक्तो मुख्यः परप्राणद्रव्योपघाताभ्यां पीडयतीति।**

**(२) सन्निधातृसमाहर्त्रोः सन्निधाता कृतविदूषणात्ययाभ्यां पीडयति। समाहर्ता करणाधिष्ठितः प्रदिष्टफलोपभोगी भवतीत्याचार्याः।**

**(३) नेति कौटिल्यः। सन्निधाता कृतावस्थमन्यैः कोशप्रवेश्यं प्रतिगृह्णाति। समाहर्ता तु पूर्वमर्थमात्मनः कृत्वा पश्चाद् राजार्थं करोति प्रणाशयति वा, परस्वादाने च स्वप्रत्ययश्चरतीति।**

**(४) अन्तपालवैदेहकयोरन्तपालश्चोरप्रसंगदेयात्यादानाभ्यां वणिक्पथं पीडयति। वैदेहकास्तु पण्यप्रतिपण्यानुग्रहैः प्रसाधयन्ति। इत्याचार्याः।**

**(५) नेति कौटिल्यः। अन्तपालः पण्यसम्पातानुग्रहेण वर्तयति। वैदेह-**

---

(१) परन्तु आचार्य कौटिल्य का कहना है कि 'श्रेणी पुरुषों को चोरी, डाका आदि से सहज ही में रोका जा सकता है; क्योंकि जहाँ वे चोरी-डाका करते हैं वे लोग भी उन्हीं के स्वभाव एवं व्यवसाय के होते हैं। उनके मुखिया को वश में करके भी उनको चोरी आदि से रोका जा सकता है। परन्तु राजकीय मुख्य पुरुष बड़े अभिमानी होते हैं और वे प्राण तथा धन का अपहरण करके दूसरों को बहुत कष्ट पहुँचाते हैं।'

(२) प्राचीन आचार्य, सन्निधाता और समाहर्त्ता, दोनों में से सन्निधाता को अधिक कष्टकर समझते हैं; क्योंकि वह कार्य बिगाड़कर और प्रजा से अनुचित कर वसूल कर प्रजा को तंग करता है। परन्तु समाहर्ता अपने ठीक हिसाब से कार्य करता हुआ नियमित नौकरी को भोगने वाला होता है।

(३) किन्तु आचार्य कौटिल्य का कहना कुछ और ही है। उनका कथन है कि 'सन्निधाता तो दूसरे कर्मचारियों द्वारा वसूल किए हुए धन को एकत्र कर कोष में जमा कर देता है। किन्तु समाहर्त्ता पहिले अपनी रिश्वत लेकर फिर राजकर को वसूल करता है। अथवा उसमें से भी कुछ चुरा लेता है और स्वेच्छया सब कुछ करता है।'

(४) प्राचीन आचार्यों के मत से 'अन्तपाल और वैदेहक, इन दोनों में से अन्तपाल ही अधिक कष्टप्रद है; क्योंकि वह चोरों द्वारा राहगीरों को लुटवाता है; रास्ते का टैक्स मनमाना वसूल करता है; और व्यापारिक मार्गो पर चलने वाले पथिकों को अधिक कष्ट पहुँचाता है। परन्तु वैदेहक क्रय-विक्रय पर अधिक लाभ पहुंचा कर देश को व्यापारिक भागों को उन्नत बनाता है।'

(५) इसके विरुद्ध आचार्य कौटिल्य का, कथन है कि 'अन्तपाल एक साथ लाये

**कास्तु सम्भूय पण्यानामुत्कर्षापकर्षं कुर्वाणाः पणे पणशतं कुम्भे कुम्भशत-मित्याजीवन्ति ।**

**(१) अभिजातोपरुद्धा भूमिः पशुव्रजोपरुद्धा वेति । अभिजातोपरुद्धा भूमिः महाफलाप्यायुधीयोपकारिणी न क्षमा मोक्षयितुं, व्यसनाबाधभयात् । पशुव्रजोपरुद्धा तु कृषियोग्या क्षमा मोक्षयितुं, विवीतं हि क्षेत्रेण बाध्यते । इत्याचार्याः ।**

**(२) नेति कौटिल्यः । अभिजातोपरुद्धा भूमिरत्यन्तमहोपकारापि क्षमा मोक्षयितुं व्यसनाबाधभयात् । पशुव्रजोपरुद्धा तु कोशवाहनोपकारिणी न क्षमा मोक्षयितुमन्यत्र सस्यवापोपरोधादिति ।**

**(३) प्रतिरोधकाटविकयोः प्रतिरोधका रात्रिसत्रचराः शरीराक्रमिणो नित्याः शतसहस्रापहारिणः प्रधानकोपकाश्च । व्यवहिताः प्रत्यन्तारण्य-चराश्चाटविकाः प्रकाशा दृश्याश्चरन्त्येकदेशघातकाश्च इत्याचार्याः ।**

---

विक्रेय पदार्थों पर उचित वर्तनी ( व्यापारी मार्गों का टैक्स ) लेकर व्यापारिक मार्गों को उन्नत एवं लाभप्रद बनाता है । किन्तु वैदेहक तो आपस में सलाह करके व्यापारी माल के मूल्य को घटा-बढ़ाकर एक पण के सौ पण और एक कुम्भ के सौ कुम्भ लाभ उठाते हैं ।'

( १ ) 'विजिगीषु के पारिवारिक पुरुषों से घिरी हुई भूमि को छोड़ना उचित है या गो आदि पशुओं से घिरी हुई भूमि को छोड़ना ठीक है ?' इस संबंध में प्राचीन आचार्यों का मत है कि 'यदि विजिगीषु की भूमि अत्यन्त उपजाऊ; लाभदायक और सैनिकों को देकर उपकार करनेवाली हो तो उसको नहीं छोड़ना चाहिए; क्योंकि आक्रमण के समय सैनिक पुरुषों के अभाव में ऐसी भूमि कष्टकर होती है । पशुओं से घिरी भूमि यदि कृषियोग्य हो तो छोड़ी जा सकती है; क्योंकि चारागाह की अपेक्षा खेती से अधिक लाभ हो सकता है ।'

( २ ) किन्तु मत के विरुद्ध कौटिल्य का कहना है कि 'विजिगीषु के पारि-वारिक पुरुषों की भूमि सैन्य दृष्टि से उपकारक होने पर भी छोड़ी जा सकती है; क्योंकि उससे सदा ही भय बना रहता है । किन्तु पशुओं की भूमि कोष-संग्रह योग्य घृत तथा बैल आदि को देकर अन्यन्त उपकार करने वाली होती है । इसलिए छोड़ने योग्य नहीं है । किन्तु उसके पास यदि अनाज के खेत हों और चारागाह के कारण उनका नुकसान होता हो तो उसे भी छोड़ा जा सकता है, अन्यथा नहीं ।'

( ३ ) प्राचीन आचार्यों की दृष्टि से 'प्रतिरोधक ( लुटेरे ) और आटविक ( जंगली ), इन दोनों में से प्रतिरोधक पुरुष ही प्रजा के लिए अधिक कष्टप्रद है; क्योंकि प्रतिरोधक रात्रि में तथा घने जंगलों में घूमने वाले, राहगीर पर आक्रमण

**(१) नेति कौटिल्यः। प्रतिरोधकाः प्रमत्तस्यापहरन्ति, अल्पाः कुण्ठाः सुखा ज्ञातुं ग्रहीतुं च। स्वदेशस्थाः प्रभूता विक्रान्ताश्चाटविकाः। प्रकाश-योधिनोऽपहर्तारो हन्तारश्च देशानां राजसधर्माण इति।**

**(२) मृगहस्तिवनयोर्मृगाः प्रभूताः प्रभूतमांसचर्मोपकारिणो मन्द-ग्रासावक्लेशिनः सुनियम्याश्च। विपरीता हस्तिनो ग्रह्यमाणा दुष्टाश्च देश-विनाशायेति।**

**(३) स्वपरस्थानीयोपकारयोः स्वस्थानीयोपकारो धान्यपशुहिरण्य-कुप्योपकारो जानपदानामापद्यात्मधारणः। विपरीतः परस्थानीयोपकारः। इति पीडनानि।**

---

करने वाले, सदा ही पास रहने वाले, सैंकड़ों-हजारों का धन अपहरण करने वाले वाले और राज्य के प्रमुख व्यक्तियों को लूट के द्वारा कंपित कर देने वाले होते हैं। इसके विपरीत आटविक दूर रहने वाले, सीमा के जंगलों में घूमने वाले, प्रकट रूप में रहने वाले होते हैं। उनसे देश के किसी एक ही भाग को नुकसान पहुँचाता है और पता चल जाने पर लोग उनसे अपनी रक्षा भी कर सकते हैं।'

( १ ) किन्तु आचार्य कौटिल्य का कहना है कि 'प्रतिरोधक पुरुष असावधान व्यक्ति के यहाँ से ही चोरी करते हैं। ये लोग अल्प संख्या में होने के कारण सरलता से पहिचाने जा सकते हैं। किन्तु आटविकों के अपने देश होते हैं और संख्या में भी वे अधिक होते हैं। बहादुर होने के कारण वे बड़ी कठिनाई से कब्जे में आते हैं। वे प्रकट रूप में युद्ध करते हैं, प्राणों का अपहरण करने वाले होते हैं और निरंकुश होने के कारण उनकी स्थिति राजाओं के समान होती है।'

( २ ) मृगवन और हस्तिवन इन दोनों में से मृगवन उत्तम होता है क्योंकि मृगों में मांस और चाम अधिक मात्रा में मिलता है। वे थोड़ा खाने वाले, भागते समय जल्दी थक जाने वाले और पकड़े जाने पर जल्दी ही वश में आने वाले होते हैं। उनके विपरीत हाथी संख्या में कम होते हैं; उन पर बहुत कम चमड़ा और मांस निकलता है; वे अधिक खाते हैं; थकते भी नहीं हैं; मुश्किल में पकड़े जाते हैं और पकड़े जाने पर मार भी डालते हैं।

( ३ ) अपने नगर का उपकार करना और पराये नगर का अपकार करना, इन दोनों में से अपने नगर का उपकार करना; अर्थात् धान्य, पशु, हिरण्य और कुप्य आदि पदार्थों का क्रय-विक्रय करना; जनपदवासियों के विपत्तिकाल में उनकी आत्मरक्षा करना—श्रेष्ठ है। किन्तु दूसरे नगर में क्रय-विक्रय का व्यवहार करके उसे लाभ पहुँचाने से विपरीत ही परिणाम होता है। यहाँ तक पीडनवर्ग का निरूपण किया गया।

**(१) आभ्यन्तरो मुख्यस्तम्भो बाह्यो मित्राटवीस्तम्भः। इति स्तम्भवर्गः।**

**(२) ताभ्यां पीडनैर्यथोक्तैश्च पीडितः सक्तो मुख्येषु परिहारोपहतः प्रकीर्णो मिथ्यासंहृतः सामन्ताटवीहृत इति कोषसङ्गः।**

**(३) पीडनानामनुत्पत्तावुत्पन्नानां च वारणे।**
**यतेत देशवृद्ध्यर्थं नाशे च स्तम्भसंगयोः ॥ १ ॥**

इति व्यसनाधिकारिकेऽष्टमेऽधिकरणे पीडनवर्ग-स्तम्भवर्ग-कोषसंगवर्गो नाम चतुर्थोऽध्यायः; आदित एकनविंशतिशततमः।

—: o :—

---

( १ ) **स्तंभवर्ग :** स्तंभ दो प्रकार का होता है। आभ्यन्तर और बाह्य। अपने ही मुख्य सरकारी कर्मचारियों के द्वारा अर्थ का रोका जाना **आभ्यंतर स्तम्भ** और भिन्न तथा आटविक पुरुषों द्वारा अर्थ का रोका जाना **बाह्य स्तंभ** कहलाता है। इस प्रकार स्तंभवर्ग का निरूपण हुआ।

( २ ) **कोषसंग :** उक्त दोनों प्रकार के स्तम्भों तथा सरकारी कर्मचारियों के द्वारा उचित आमदनी की मात्रा से घटाया हुआ, छोटे कर्मचारियों से कर वसूली लेकर मुख्य कर्मचारियों द्वारा गबन किया हुआ, राजाज्ञा से माफी के कारण कम हुआ, इधर-उधर बिखरा हुआ, उचित परिमाण से कम-ज्यादा रूप में इकट्ठा किया हुआ और सामन्त तथा आटविक पुरुषों के द्वारा अपहरण किया हुआ धन खजाने में न पहुँच कर बीच ही में नष्ट हो जाता है। उसी का नाम कोषसंग है। इस प्रकार कोशसंग वर्ग का निरूपण किया गया।

( ३ ) देश की सुख-समृद्धि के लिए राजा को चाहिए कि वह अपने राज्य में पीडनवर्ग को उत्पन्न न होने दे, अथवा उत्पन्न होने पर उनका निवारण करे। स्तम्भवर्ग और कोषसंग को नष्ट करने के लिए भी राजा को सतत यत्नवान् रहना चाहिए।

इति व्यसनाधिकारिक नामक आठवें अधिकरण में पीडनवर्ग-स्तंभवर्ग-कोषसंगवर्ग नामक चौथा अध्याय समाप्त।

—: o :—

# बलव्यसनवर्गः मित्रव्यसनवर्गश्च

**(१) बलव्यसनानि। अमानितं विमानितम् अभृतं व्याधितं नवागतं दूरायातं परिश्रान्तं परिक्षीणं प्रतिहतं हताग्रवेगम् अनृतुप्राप्तम् अभूमिप्राप्तम् आशानिर्वेदि परिसृप्तं कलत्रगर्हि अन्तश्शल्यं कुपितमूलं भिन्नगर्भम् अपसृतम् अतिक्षिप्तम् उपनिविष्टं समाप्तम् उपरुद्धं परिक्षिप्तं छिन्नधान्यपुरुषवीवधं स्वविक्षिप्तं मित्रविक्षिप्तं दूष्ययुक्तं दुष्टपार्ष्णिग्राहं शून्यमूलम् अस्वामिसंहतं भिन्नकूटम् अन्धमिति।**

**(२) तेषाममानितविमानितयोरमानितं कृतार्थमानं युध्येत, न विमानितमन्तःकोपम्।**

**(३) अभृतव्याधितयोरभृतं तदात्वकृतवेतनं युध्येत, न व्याधितमकर्मण्यम्।**

**(४) नवागतदूरायातयोर्नवागतमन्यत उपलब्धदेशमनवमिश्रं युध्येत, न दूरायातमायतगतपरिक्लेशम्।**

## सेना-व्यसन और मित्र-व्यसन

(१) **सेना के व्यसन :** अमानित, विमानित, अभृत, व्याधित, नवागत, दुरायात, परिश्रान्त, परिक्षीण, प्रतिहत, हताग्रवेग, अनृतुप्राप्त, अभूमिप्राप्त, आशानिर्वेदी, परिसृप्त, कलत्रगर्ही, अन्तःशल्य, कुपितमूल, भिन्नगर्भ, अपसृत, अतिक्षिप्त, उपनिविष्ट, समाप्त, उपरुद्ध, परिक्षिप्त, छिन्नधान्य, छिन्नपुरुषवीवध, स्वविक्षिप्त, मित्रविक्षिप्त, दूष्ययुक्त, दुष्टपार्ष्णिग्राह, शून्यमूल, अस्वामिसंहत, भिन्नकूट और अन्ध—ये चौंतीस सेना के व्यसन हैं।

(२) उक्त सैन्य-व्यसनों में अमानित (असत्कृत) और निमानित (तिरस्कृत), इन दो सेनाओं में अमानित सेना सत्कार पाने के बाद युद्ध के लिए तैयार हो जाती है, किन्तु निमानित सेना नहीं, क्योंकि तिरस्कार के कारण वह अन्दर-ही-अन्दर कुपित रहती है।

(३) अभृत (जिसे वेतन न दिया गया हो) और व्याधित (रोगी) इन दोनों सेनाओं में अभृत सेना वेतन, भत्ता दिये जाने पर युद्ध के लिए तैयार हो सकती है, किन्तु व्याधित सेना नहीं, क्योंकि वह बीमारी के कारण कार्य करने में असमर्थ रहती है।

(४) नवागत (नई भरती) और दूरायात (दूर से आई हुई), इन दो

**(१) परिश्रान्तपरिक्षीणयोः परिश्रान्तं स्नानभोजनस्वप्नलब्धविश्रमं युध्येत, न परिक्षीणमन्यत्राहवे क्षीणयुग्यपुरुषम् ।**

**(२) प्रतिहतहताग्रवेगयोः प्रतिहतमग्रपातभग्नं प्रवीरपुरुषसंहतं युध्यते, न हताग्रवेगमग्रपातहतप्रवीरम् ।**

**(३) अनृत्वभूमिप्राप्तयोरनृतुप्राप्तं यथर्तुयोग्ययुग्यशस्त्रावरणं युध्येत, नाभूमिप्राप्तमवरुद्धप्रसारव्यायामम् ।**

**(४) आशानिर्वेदिपरिसृप्तयोराशानिर्वेदि लब्धाभिप्रायं युध्येत, न परिसृप्तमपसृतमुख्यम् ।**

**(५) कलत्रगर्ह्यन्तशशल्ययोः कलत्रगर्ह्यमुन्मुच्य कलत्रं युध्येत, नान्तशशल्यमन्तरमित्रम् ।**

---

सेनाओं में नवागत सेना दूसरे अनुभवी व्यक्तियों से जानकारी प्राप्त करके तथा पुराने आदमियों के साथ मिलकर युद्ध कर सकती है, किन्तु दूरायात सेना नहीं, क्योंकि वह लम्बी यात्रा से थकी हुई होने के कारण असमर्थ रहती है ।

( १ ) परिश्रांत ( थकी हुई ) और परिक्षीण ( योग्य सैनिकों से हीन ), इन दोनों सेनाओं में परिश्रांत सेना स्नान, भोजन, निद्रा आदि विश्राम प्राप्त कर युद्ध के लिए तैयार हो सकती है; किन्तु परिक्षीण सेना नहीं, क्योंकि उसके योग्य पुरुषों का नाश हो चुका होता है ।

( २ ) प्रतिहत ( पराजित ) और हताग्रवेग ( हतोत्साह ) इन दोनों सेनाओं में प्रतिहत सेना युद्ध के लिए तैयार हो सकती है, किन्तु हताग्रवेग नहीं, क्योंकि वीर सैनिकों के खो देने से युद्ध में जाने के लिए उसका उत्साह जाता रहता है ।

( ३ ) अनृतुप्राप्त ( जिसको युद्ध के योग्य समय न मिले ) और अभूमिप्राप्त ( जिसको कवायद के लिए भूमि प्राप्त न हो ) इन दोनों में अनृतुप्राप्त सेना विपरीत समय में भी युद्धोपयोगी साधन प्राप्त कर युद्ध के लिए तैयार हो सकती है, किन्तु अभूमिप्राप्त सेना नहीं, क्योंकि वह अनुपयुक्त भूमि में फँस कर चलने-फिरने तथा युद्धसम्बन्धी कार्यों को करने में असमर्थ रहती है ।

( ४ ) आशानिवेदी ( आशारहित ) और परिसृप्त ( नेतृत्वहीन ) इन दोनों सेनाओं में आशानिर्वेदी अपना स्वार्थलाभ देखकर युद्ध के लिए तैयार हो सकती है, किन्तु परिसृप्त नहीं, क्योंकि उसका मुख्य नेता नहीं होता है ।

( ५ ) कलत्रगर्ही (कलत्र आदि की निन्दा करने वाला) और अन्तःशल्य ( अन्दर से शत्रुता रखने वाला ) इन दोनों सैन्यों में कलत्रगर्ही अपने स्त्री-पुरुषों की समुचित व्यवस्था करके युद्ध के लिए तैयार हो सकता है, किन्तु अन्तःशल्य सैन्य नहीं, क्योंकि वह अन्दर से शत्रुता रखता है ।

**(१) कुपितमूलभिन्नगर्भयोः कुपितमूलं प्रशमितकोपं सामादिभिर्युध्येत, न भिन्नगर्भमन्योन्यस्माद् भिन्नम् ।**

**(२) अपसृतातिक्षिप्तयोरपसृतमेकराज्यातिक्रान्तं मन्त्रव्यायामाभ्यां सत्रमित्रापाश्रयं युध्येत, नातिक्षिप्तमनेकराज्यातिक्रान्तं बह्वाबाधत्वात् ।**

**(३) उपनिविष्टसमाप्तयोपरुपनिविष्टं पृथग्यानस्थानमतिसन्धातारं युध्येत, न समाप्तमरिणैकस्थानयानम् ।**

**(४) उपरुद्धपरिक्षिप्तयोरुपरुद्धमन्यतो निष्क्रम्योपरोपद्धारं प्रतियुध्येत, न परिक्षिप्तं सर्वतः प्रतिरुद्धम् ।**

**(५) छिन्नधान्यपुरुषवीवधयोः छिन्नधान्यमन्यतो धान्यमानीय जङ्गम-स्थावराहारं वा युध्येत, न छिन्नपुरुषवीवधमनभिसारम् ।**

---

( १ ) कुपितमूल ( क्रोधीली सेना ) और भिन्नगर्भ ( आपसी वैर रखने वाली सेना ) इन दोनों में से कुपितमूल सेना को साम आदि के द्वारा शान्त करके युद्ध के तैयार किया जा सकता है, किन्तु भिन्नगर्भ सेना को नहीं, क्योंकि उसकी आपस में ही अनबन रहती है ।

( २ ) अपसृत ( एक ही राज्य में दूसरी सेना द्वारा कष्ट पायी सेना ) और अतिक्षिप्त ( अनेक राज्यों में दूसरी अनेक सेनाओं द्वारा कष्ट पायी हुई सेना ), इन दोनों में से अपसृत सेना को, विशेष उपायों तथा कवायद आदि के द्वारा जंगल और मित्र का सहारा देकर, युद्ध के लिए तैयार किया जा सकता है, किन्तु अतिक्षिप्त सेना को नहीं, क्योंकि उसे अनेक राज्यों के बहुत-से कष्टों का अनुभव रहता है ।

( ३ ) उपनिविष्ट ( शत्रु के समीप ठहरने वाली किन्तु शत्रु-विमुख सेना ) और समाप्त ( शत्रु के साथ ही ठहरने तथा आक्रमण करने वाली सेना ), इन दोनों में से उपनिविष्ट सेना भिन्न-भिन्न स्थानों में युद्ध करने का अनुभव प्राप्त करने से छावनी के अतिरिक्त अन्यत्र भी युद्ध कर सकती है, किन्तु समाप्त सेना नहीं, क्योंकि शत्रु के सहयोग में रहने के कारण उसके सब भेद शत्रु को मालूम होते हैं ।

( ४ ) उपरुद्ध ( एक ओर से घिरी हुई ) और परिक्षिप्त ( चारों ओर से घिरी हुई ), इन दोनों में से उपरुद्ध सेना दूसरी ओर से निकल कर आक्रमण कर सकती है, किन्तु परिक्षिप्त सेना नहीं, क्योंकि वह चारों ओर से घिरी होती है ।

( ५ ) छिन्नधान्य ( जिस सेना का अपने देश से धान्य आदि मँगाने का सम्बन्ध टूट गया हो ) और विच्छिन्नपुरुषवीवध ( जिस सेना का अपने देश से खाद्य पदार्थ तथा सैनिक सम्बन्ध टूट गया हो ), इन दोनों में से छिन्नधान्य सेना अन्यत्र से अनाज, साग-सब्जी तथा मांस आदि मँगाकर युद्ध कर सकती है, किन्तु विच्छिन्नपुरुषवीवध सेना नहीं, क्योंकि वह सब तरह से असहाय होती है ।

(१) स्वविक्षिप्तमित्रविक्षिप्तयोः स्वविक्षिप्तं स्वभूमौ विक्षिप्तं सैन्यमापदि शक्यमवस्रावयितुं, न मित्रविक्षिप्तं विप्रकृष्टदेशकालत्वात् ।

(२) दूष्ययुक्तदुष्टपार्ष्णिग्राहयोर्दूष्ययुक्तमाप्तपुरुषाधिष्ठितमसंहतं युध्येत, न दुष्टपार्ष्णिग्राहं पृष्ठाभिघातत्रस्तम् ।

(३) शून्यमूलास्वामिसंहतयोः शून्यमूलं कृतपौरजानपदारक्षं सर्वसन्दोहेन युध्येत, नास्वामिसंहतं राजसेनापतिहीनम् ।

(४) भिन्नकूटान्धयोर्भिन्नकूटमन्याधिष्ठितं युध्येत, नान्धमदेशिकमिति ।

(५) दोषशुद्धिर्बलावापः सत्रस्थानातिसंहतम् ।
सन्धिश्चोत्तरपक्षस्य बलव्यसनसाधनम् ॥

(६) रक्षेत् स्वदण्डं व्यसने शत्रुभ्यो नित्यमुत्थितः ।
प्रहरेद् दण्डरन्ध्रेषु शत्रूणां नित्यमुत्थितः ॥

---

( १ ) स्वविक्षिप्त ( अपने ही देश में इधर-उधर भेजी ) और मित्रविक्षिप्त ( मित्र देश को भेजी हुई ), इन दोनों सेनाओं में से स्वविक्षिप्त सेना आवश्यकतानुसार आसानी से एकत्र की जा सकती है, किन्तु मित्रविक्षिप्त सेना नहीं, क्योंकि दूर होने के कारण वह समय पर काम नहीं आ सकती ।

( २ ) दूष्ययुक्त ( राजद्रोहियों से सम्बद्ध ) और दुष्ट पार्ष्णिग्राह ( जिसके पीछे दुष्ट सेना हो ) इन दोनों में से दूष्ययुक्त सेना, दूष्य पुरुषों की सेवा में विश्वस्त पुरुषों को नियुक्त कर, युद्ध के लिए तैयार हो सकती है, किन्तु दुष्टपार्ष्णिग्राह नहीं, क्योंकि उसको पीछे के आक्रमण का सदा भय बना रहता है ।

( ३ ) शून्यमूल ( राजधानी की अत्यल्प सेना ) और अस्वामिसंहत ( राजा तथा सेनापति रहित सेना ), इन दोनों में से शून्यमूल सेना नगरनिवासियों तथा जनपद-निवासियों की सहायता से युद्ध कर सकती है, किन्तु अस्वामिसंहत सेना नहीं, क्योंकि वह अपने नेता से रहित होती है ।

( ४ ) भिन्नकूट ( प्रधान सेनापति से रहित ) और अन्ध ( शत्रु के व्यवहारों से सर्वथा अपरिचित ), इन दोनों सेनाओं में से भिन्नकूट सेना किसी दूसरे सेनापति के शासन से युद्ध के लिए तैयार हो सकती है, किन्तु अन्ध सेना नहीं, क्योंकि उसमें शत्रु के व्यवहारों से सर्वथा अपरिचित सैनिक रहते हैं ।

( ५ ) **सैनिक व्यसनों के परिहार का उपाय :** अमानन, विमानन, आदि दोषों का प्रायश्चित करना, दोषरहित सेना को दूसरी सेना के साथ ठहराना, जंगली स्थानों में सेना की स्थिति बनाये रखना, क्रूर उपायों से शत्रुसेना का भेदन करना और अपने से बलवान् पक्ष के साथ सन्धि करना, ये सेनासम्बन्धी व्यसनों (बल-व्यसनों) को दूर करने के उपाय हैं ।

( ६ ) विजिगीषु को चाहिए कि सदा सजग रहता हुआ वह व्यसनकाल में शत्रु

(१) अभियातं स्वयं मित्रं सम्भूयान्यवशेन वा।
परित्यक्तमशक्त्या वा लोभेन प्रणयेन वा।।
(२) विक्रीतमभियुञ्जाने सङ्ग्रामे वापवर्तिना।
द्वैधीभावेन वा मित्रं यास्यता वान्यमन्यतः।।
(३) पृथग्वा सहयाने वा विश्वासेनातिसंहितम्।
भयावमानालस्यैर्वा व्यसनान्न प्रमोक्षितम्।।
(४) अवरुद्धं स्वभूमिभ्यः समीपाद् वा भयाद् गतम्।
आच्छेदनाददानाद् वा दत्त्वा वाप्यवमानितम्।।
(५) आत्याहारितमर्थं वा स्वयं परमुखेन वा।
अतिभारे नियुक्तं वा भङ्क्त्वा परमवस्थितम्।।

---

सेना से अपनी सेना की रक्षा करे और बड़ी चतुरता से शत्रुसेना की निर्बलताओं का पता लगा कर उन पर सदा प्रहार करता रहे।

( १ ) **मित्रव्यसन :** जब विजिगीषु असमर्थ होने के कारण या लोभ तथा स्नेह के कारण अपने प्रयोजन से अथवा किसी बन्धु आदि के प्रयोजन से शत्रु के साथ मिल कर शत्रु पर आक्रमण करने वाले अपने मित्र की सहायता नहीं करता तो वह बिछुड़ा हुआ मित्र फिर बड़ी मुश्किल से उसके वश में आता है।

( २ ) युद्ध के दौरान में ही शत्रु से कुछ धन आदि लेकर अपनी सहायता को पूरा न करके विजिगीषु द्वारा बीच ही में छोड़ा हुआ मित्र, अथवा द्वैधीभाव द्वारा अपने यातव्य पर आक्रमण कर देने के कारण बेचा हुआ मित्र, अथवा 'तुम इस ओर आक्रमण करो और मैं इस ओर' इस प्रकार परस्पर अपने मित्र के शत्रु के साथ संधि करके किसी दूसरे ही अपने शत्रु पर आक्रमण करने वाले विजिगीषु से ठगा हुआ मित्र फिर बड़ी मुश्किल से उसके वश में आता है।

( ३ ) पृथक् आक्रमण करने या एक साथ आक्रमण करने पर पहले विश्वास दिलाकर और बाद में छिपे तौर से मित्र के शत्रु के साथ सन्धि करके विजिगीषु द्वारा खोया हुआ मित्र, अथवा मित्र के सम्बन्ध में तिरस्कार की भावना रखने के कारण या अपने ही आलस्य के कारण आपत्ति से न छुड़ाया गया मित्र बड़ी मुश्किल से वश में आता है।

( ४ ) विजिगीषु के देश में जाने से रोका गया मित्र अथवा वध-बन्धन के भय से विजिगीषु के पास से गया हुआ मित्र अथवा बलपूर्वक द्रव्य का अपहरण करने से तिरस्कृत हुआ मित्र, अथवा देने योग्य वस्तु न देने के कारण या देकर फिर तिरस्कृत हुआ मित्र बड़ी कठिनाई से वश में आता है।

( ५ ) विजिगीषु के द्वारा या किसी दूसरे के द्वारा धन का सर्वथा अपहरण किया गया या कराया गया मित्र, अथवा विजिगीषु के शत्रु को जीतकर आया हुआ और तत्काल ही किसी दूसरे दुःसाध्य कार्य पर लगाया हुआ मित्र बिगड़ जाने पर बड़ी मुश्किल से वश में आता है।

(१) उपेक्षितमशक्त्या वा प्रार्थयित्वा विरोधितम् ।
कृच्छ्रेण साध्यते मित्रं सिद्धं चाशु विरज्यति ॥
(२) कृतप्रयासं मान्यं वा मोहान्मित्रममानितम् ।
मानितं वा न सदृशं भक्तितो वा निवारितम् ॥
(३) मित्रोपघातत्रस्तं वा शङ्कितं वारिसंहितात् ।
दूष्यैर्वा भेदितं मित्रं साध्यं सिद्धं च तिष्ठति ॥
(४) तस्मान्नोत्पादयेदेनान् दोषान् मित्रोपघातकान् ।
उत्पन्नान् वा प्रशमयेद् गुणैर्दोषोपघातिभिः ॥
(५) यतो निमित्तं व्यसनं प्रकृतीनामवाप्नुयात् ।
प्रागेव प्रतिकुर्वीत तन्निमित्तमतन्द्रितः ॥

इति व्यसनाधिकारिकेऽष्टमेऽधिकरणे बलव्यसन-मित्रव्यसनवर्गो नाम पञ्चमोऽध्यायः; आदितो विंशतिशततमः ।

समाप्तमिदमष्टमं व्यसनाधिकारिकं नामाधिकरणम् ।

—: ० :—

---

( १ ) असमर्थ होने के कारण ठुकराया गया मित्र, अथवा मित्रता के लिए प्रार्थना करके फिर विरुद्ध किया गया मित्र बड़ी कठिनाई से वश में आता है ।

( २ ) जिस मित्र ने विजिगीषु के लिए अत्यन्त कठिन संग्राम किया हो, भ्रम या प्रमाद से तिरस्कृत हुआ ऐसा पूजा योग्य मित्र अथवा परिश्रम के योग्य सत्कार न किया हुआ मित्र, अथवा विजिगीषु में अनुराग होने के कारण विजिगीषु के शत्रुओं से दुत्कारा गया मित्र, शीघ्र ही फिर विजिगीषु के वश में हो जाता है ।

( ३ ) विजिगीषु के द्वारा किसी दूसरे मित्र पर किये गये आघात को देखकर डरा हुआ मित्र अथवा विजिगीषु द्वारा शत्रु के साथ सन्धि कर लेने पर शंकित हुआ मित्र, शीघ्र ही विजिगीषु के वश में हो जाता है ।

( ४ ) इसलिए विजिगीषु को चाहिए कि वह मित्रों के साथ भेद डालने वाले उक्त दोषों को अपने में कभी पनपने ही न दे । यदि कोई दोष पैदा भी हो जायँ तो उन्हें दोषनाशक गुणों के द्वारा तत्काल ही शान्त कर देना चाहिए ।

( ५ ) विजिगीषु को चाहिए कि वह आलस्य का परित्याग कर अपने प्रकृतिवर्ग में, व्यसनों के पैदा होने से पहिले ही, उनके कारणों का प्रतिकार कर दे ।

इति व्यसनाधिकारिक नामक आठवें अधिकरण में बलव्यसन-मित्रव्यसनवर्ग-नामक पाँचवाँ अध्याय समाप्त ।

—: ० :—

नौवाँ अधिकरण

# अभियास्यत्कर्म

# शक्तिदेशकालबलाबलज्ञानं यात्राकालाश्च

(१) विजिगीषुरात्मनः परस्य च बलाबलं शक्तिदेशकालयात्राकालबलसमुत्थानकालपश्चात्कोपक्षयव्ययलाभापदां ज्ञात्वा विशिष्टबलो यायात्। अन्यथासीत।

(२) उत्साहप्रभावयोरुत्साहः श्रेयान्। स्वयं हि राजा शूरो बलवानरोगः कृतास्त्रो दण्डद्वितीयोऽपि शक्तः प्रभाववन्तं राजानं जेतुम्, अल्पोऽपि चास्य दण्डस्तेजसा कृत्यकरो भवति। निरुत्साहस्तु प्रभाववान् राजा विक्रमाभिपन्नो नश्यति इत्याचार्याः।

(३) नेति कौटिल्यः। प्रभाववानुत्साहवन्तं राजानं प्रभावेणातिसन्धत्ते। तद्विशिष्टमन्यं राजानमावाह्य हृत्वा क्रीत्वा प्रवीरपुरुषान्। प्रभूतप्रभावहयहस्तिरथोपकरणसम्पन्नश्चास्य दण्डः सर्वत्राप्रतिहतश्चरति।

---

## शक्ति, देश, काल के बलाबल का ज्ञान और आक्रमण का समय

( १ ) विजिगीषु को चाहिए कि वह अपने और शत्रु के बीच शक्ति, देश, काल, युद्धकाल, सेना की उन्नति का समय ( बलसमुत्थानकाल ), पश्चात्कोप ( अपनी सेनारहित राजधानी में पार्ष्णिग्राह के आक्रमण की आशंका ), क्षय, व्यय, लाभ और आपत्ति आदि बलाबल के सम्बन्ध में भलीभाँति जानकर शत्रु की अपेक्षा अधिक सेना लेकर उस पर आक्रमण करे। यदि अधिक सैन्यबल का प्रबन्ध न हो सके तो चुपचाप बैठा रहे।

( २ ) शक्ति : प्राचीन आचार्यों का कहना है कि उत्साहशक्ति और प्रभावशक्ति इन दोनों में से उत्साहशक्ति श्रेष्ठ है, क्योंकि शूर, बलवान्, नीरोग, शस्त्रास्त्र चलाने में निपुण, केवल अपनी ही सेना की सहायता पर निर्भर रहने वाला उत्साहशक्तिसम्पन्न राजा, प्रभावशक्तिसम्पन्न राजा को अच्छी तरह जीत सकता है। उसके तेज से उसकी थोड़ी सेना भी हर तरह का कार्य करने के लिए तैयार रहती है। प्रभावसम्पन्न, किन्तु उत्साहहीन राजा पराक्रम के समय अपनी रक्षा नहीं कर पाता है।

( ३ ) पूर्वाचार्यों के उक्त मत के विरुद्ध आचार्य कौटिल्य का कहना है कि 'प्रभावशाली राजा उत्साही राजा को अपने प्रभाव से पराभूत कर लेता है। अपने प्रभाव से वह अधिक उत्साही किसी दूसरे राजा को अपने पक्ष में कर सकता है।

**उत्साहवतश्च प्रभाववन्तो जित्वा क्रीत्वा च स्त्रियो बालाः पङ्गवोऽन्धाश्च पृथिवीं जिग्युः इति ।**

**(१) प्रभावमन्त्रयोः प्रभावः श्रेयान् । मन्त्रशक्तिसम्पन्नो हि वन्ध्यबुद्धिरप्रभावो भवति, मन्त्रकर्म चास्य निश्चितमप्रभावो गर्भधान्यमवृष्टिरिवोपहन्ति इत्याचार्याः ।**

**(२) नेति कौटिल्यः । मन्त्रशक्तिः श्रेयसी । प्रज्ञाशास्त्रचक्षुर्हि राजा अल्पेनापि प्रयत्नेन मन्त्रमाधातुं शक्तः, परानुत्साहप्रभाववतश्च सामादिभिर्योगोपनिषद्भ्यां चातिसन्धातुम् । एवमुत्साहप्रभावमन्त्रशक्तीनामुत्तरोत्तराधिकोऽतिसन्धत्ते ।**

**(३) देशः पृथिवी । तस्यां हिमवत्समुद्रान्तरमुदीचीनं योजनसहस्रपरिमाणं तिर्यक् चक्रवर्तिक्षेत्रम् । तत्रारण्यो ग्राम्यः पार्वत औदको भौमः समो**

---

बहादुर आदमियों को भत्ता, वेतन, धन आदि देकर वह अपने वश में कर सकता है। घोड़ा, हाथी, रथ तथा शस्त्रास्त्र आदि साधनों से युक्त उसकी सेना निःशंक होकर विचरण कर सकती है। इतिहास हमें बताता है कि स्त्री, बालक, लँगड़े और अन्धे प्रभावशक्तिसम्पन्न राजाओं ने अपने प्रभाव के कारण उत्साहशक्तिसम्पन्न राजाओं को जीतकर अथवा अपने वश में करके पृथिवी पर विजय प्राप्त की थी।'

( १ ) प्राचीन आचार्यों का अभिमत है कि 'प्रभावशक्तिसम्पन्न और मन्त्रशक्तिसम्पन्न इन दोनों राजाओं में से प्रभावशक्तिसम्पन्न राजा अधिक श्रेष्ठ है, क्योंकि मन्त्रशक्तिसम्पन्न होकर भी राजा यदि प्रभावशक्ति रहित हुआ तो उसका मन्त्र सफल नहीं होता। उसके सुविचारित कार्य उसी प्रकार नष्ट हो जाते हैं जैसे वृष्टि की अपेक्षा रखता हुआ गर्भस्थ धान्य वर्षा न होने के कारण नष्ट हो जाता है।'

( २ ) उक्त मत के विरुद्ध आचार्य कौटिल्य का कहना है कि 'प्रभावशक्ति की अपेक्षा मन्त्रशक्ति ही श्रेष्ठ है, क्योंकि जिस राजा के पास बुद्धि तथा शास्त्ररूपी नेत्र हैं वह थोड़ा प्रयत्न करने पर ही मन्त्र का अच्छी तरह अनुष्ठान कर सकता है और उत्साह, प्रभाव, साम तथा औपनिषदिक उपायों द्वारा शत्रुओं को वश में कर सकता है। इसी प्रकार उत्साह, प्रभाव और मन्त्र, तीनों शक्तियाँ उत्तरोत्तर बलवान् हैं। अर्थात् उत्तरोत्तर शक्ति से सम्पन्न राजा पूर्व-पूर्व शक्ति से सम्पन्न राजा को वश में कर सकता है।'

( ३ ) **देश** : देश कहते हैं पृथ्वी को। हिमालय से लेकर दक्षिण समुद्र पर्यन्त-पूर्व-पश्चिम दिशाओं में एक हजार योजन तक फैला हुआ और पूर्व-पश्चिम की सीमाओं के बीच का भू-भाग चक्रवर्ती क्षेत्र कहलाता है, अर्थात् इतनी पृथ्वी पर राज्य करने वाला राजा चक्रवर्ती होता है। उस चक्रवर्ती क्षेत्र में जंगल, आबादी, पहाड़ी इलाका,

**विषम इति विशेषाः। तेषु यथास्वबलवृद्धिकरं कर्म प्रयुञ्जीत। यत्रात्मनः सैन्यव्यायामानां भूमिरभूमिः परस्य, स उत्तमो देशः। विपरीतोऽधमः। साधारणो मध्यमः।**

**(१) कालः शीतोष्णवर्षात्मा। तस्य रात्रिरहः पक्षो मास ऋतुरयनं संवत्सरो युगमिति विशेषाः। तेषु यथास्वबलवृद्धिकरं कर्म प्रयुञ्जीत। यत्रात्मनः सैन्यव्यायामानामृतुरनृतुः परस्य स उत्तमः कालः। विपरीतोऽधमः। साधारणो मध्यमः।**

**(२) शक्तिदेशकालानां तु शक्तिः श्रेयसीत्याचार्याः। शक्तिमान् हि निम्नस्थलवतो देशस्य शीतोष्णवर्षवतश्च कालस्य शक्तः प्रतीकारे भवति।**

**(३) देशः श्रेयानित्येके, स्थलगतो हि श्वा नक्रं विकर्षति, निम्नगतो नक्रः श्वानमिति।**

**(४) कालः श्रेयानित्येके। दिवा काकः कौशिकं हन्ति, रात्रौ कौशिकः काकम् इति।**

---

जल, स्थल, समतल और ऊबड़-खाबड़ आदि विशेष भाग होते हैं। इन भू-भागों को इस प्रकार व्यवस्थित किया जाय जिससे अपनी बल-वृद्धि में निरन्तर विकास होता रहे। जिस प्रदेश में अपनी सेना की कवायद के लिए सुविधा तथा शत्रुसेना की कवायद के लिए असुविधा हो वह उत्तम देश, जो इसके सर्वथा विपरीत हो वह अधम देश और जो अपने तथा शत्रु के लिए एक समान सुविधा-असुविधा वाला हो वह मध्यम देश कहलाता है।

( १ ) **काल :** काल के तीन विभाग हैं : सर्दी, गर्मी और वर्षा। काल का यह प्रत्येक भाग रात, दिन, पक्ष, मास, ऋतु, अयन, संवत्सर तथा युग आदि विशेषताओं में विभक्त है। समय के इन विशेष भागों में अपनी शक्ति को बढ़ाने योग्य कार्य करने चाहिए। जो ऋतु अपनी सेना के व्यायाम के लिए अनुकूल हो वह उत्तम ऋतु जो इसके विपरीत हो वह अधम ऋतु, और जो सामान्य हो वह मध्यम ऋतु कहलाती है।

( २ ) प्राचीन आचार्यों का मत है कि 'शक्ति, देश और काल, इन तीनों में शक्ति ही सर्वोच्च है, क्योंकि शक्तिसम्पन्न राजा ऊबड़-खाबड़ प्रदेश और वर्षा, गर्मी आदि प्रतिकूल समय में विपरीत परिस्थितियों का प्रतीकार करने में समर्थ होता है।'

( ३ ) कुछ पूर्वाचार्यों का यह कहना है कि 'इन तीनों में देश ही श्रेष्ठ है, क्योंकि जमीन पर तो कुत्ता घड़ियाल को खींच लेता है और पानी में वही घड़ियाल कुत्ते को खींच लेता है।'

( ४ ) इसके विपरीत कुछ आचार्य समय को ही श्रेष्ठ बताते हैं। उनका कहना

**(१) नेति कौटिल्यः । परस्परसाधका हि शक्तिदेशकालाः ।**

**(२) तैरभ्युच्चितः तृतीयं चतुर्थं वा दण्डस्यांशं मूले पार्ष्ण्यां प्रत्यन्ताटवीषु च रक्षां विधाय कार्यसाधनसहं कोशदण्डं चादाय क्षीणपुराणभक्तमगृहीतनवभक्तमसंस्कृतदुर्गममित्रं, वार्षिकं चास्य सस्यं हैमनं च मुष्टिमुपहन्तुं मार्गशीर्षी यात्रां यायात् । क्षीणतृणकाष्ठोदकमसंस्कृतदुर्गममित्रं वासन्तिकं चास्य सस्यं वार्षिकीं वा मुष्टिमुपहन्तुं ज्येष्ठामूलीयां यात्रां यायात् ।**

**(३) अत्युष्णमल्पयवसेन्धनोदकं वा देशं हेमन्ते यायात् ।**

**(४) तुषारदुर्दिनमगाधनिम्नप्रायं गहनतृणवृक्षं वा देशं ग्रीष्मे यायात् ।**

---

है 'क्योंकि यह समय का ही प्रभाव है कि दिन में कौआ उल्लू को मार लेता है, रात में उल्लू कौए को ।'

( १ ) किन्तु आचार्य कौटिल्य इस प्रकार के भेद को नहीं मानता है । उसका कहना है कि 'शक्ति, देश, काल, ये तीनों ही प्रबल और एक-दूसरे के पूरक हैं ।'

( २ ) **यात्राकाल** : विजिगीषु राजा को चाहिए कि वह शक्ति, देश, काल से सम्पन्न होकर आवश्यकतानुसार सेना के तिहाई या चौथाई भाग को अपनी राजधानी, अपने पार्ष्णि और अपने सरहदी इलाकों की रक्षा के लिए नियुक्त कर यथेष्ट कोष तथा सेना को साथ लेकर शत्रु पर विजय करने के लिए अगहन मास में युद्ध के लिए प्रस्थान करे, क्योंकि इस समय शत्रु का पुराना अन्न-संचय समाप्ति पर होता है, नई फसल के अन्न को संग्रह करने का समय वही होता है, और वर्षा के बाद किलों की मरम्मत नहीं हुई रहती है । यही समय है जब कि वर्षा ऋतु से उत्पन्न फसल को और आगे हेमंत ऋतु में पैदा होने वाली फसल दोनों को नष्ट किया जा सकता है । इसी प्रकार हेमंत ऋतु की पैदावार को आगे वसंतऋतु में होने वाली पैदावार को नष्ट करने के लिए उपयुक्त युद्ध प्रमाण-काल चैत्रमास में है । यात्रा का यह दूसरा समय है । इसी प्रकार वसन्त की पैदावार को और आगे की होने वाली वर्षाकाल की फसल को नष्ट करने का उपयुक्त समय ज्येष्ठ मास में है । क्योंकि इस समय घास, फूस, लकड़ी, जल आदि सभी क्षीण हुए रहते हैं और इसलिए शत्रु अपने दुर्ग की मरम्मत नहीं कर पाता है । यात्राकाल का यह तीसरा अवसर है । ये तीनों यात्राकाल शत्रु को हानि पहुँचाने के लिए अत्यन्त उपयोगी हैं ।

( ३ ) जो देश अत्यन्त गरम हो, जहाँ यवस ( पशुओं की खाद्य सामग्री ), ईंधन तथा जल की कमी हो वहाँ हेमंत ऋतु में युद्ध के लिए प्रस्थान करना चाहिए ।

( ४ ) जिस देश में लगातार बरफ पड़ती या बारिस होती हो, जहाँ बड़े-बड़े तालाब एवं घने जंगल हों वहाँ ग्रीष्म ऋतु में युद्ध के लिए जाना चाहिए ।

(१) स्वसैन्यव्यायामयोग्यं परस्यायोग्यं वर्षति यायात् ।

(२) मार्गशीर्षं तैषीं चान्तरेण दीर्घकालां यात्रां यायात् । चैत्रं वैशाखं चान्तरेण मध्यमकालां, ज्येष्ठामूलीयमाषाढं चान्तरेण ह्रस्वकालामुपोषिष्यन् । व्यसने चतुर्थीम् । व्यसनाभियानं विगृह्ययाने व्याख्यातम् ।

(३) प्रायशश्चाचार्याः परव्यसने यातव्यमित्युपदिशन्ति ।

(४) शक्त्युदये यातव्यमनैकान्तिकत्वाद्व्यसनानाम् इति कौटिल्यः ।

(५) यदा वा प्रयातः कर्शयितुमुच्छेत्तुं वा शक्नुयादमित्रं, तदा यायात् ।

(६) अत्युष्णोपक्षीणे कालेऽहस्तिबलप्रायो यायात् । हस्तिनो ह्यन्तःस्वेदाः कुष्ठिनो भवन्ति । अनवगाहमानास्तोयमपिबन्तश्चान्तरवक्षाराश्चान्धीभवन्ति । तस्मात्प्रभूतोदके देशे, वर्षति च हस्तिबलप्रायो यायात् । विपर्यये खरोष्ट्राश्वबलप्रायः । देशमल्पवर्षपङ्कम् वर्षति मरुप्रायं चतुरङ्गबलो यायात् ।

---

( १ ) जो अपनी सेना के कवायद करने के लिए उपयुक्त और शत्रुसेना के लिए अनुपयुक्त हो ऐसे देश पर वर्षाऋतु में आक्रमण करना चाहिए ।

( २ ) जब किसी दूर देश के आक्रमण में अधिक समय लग जाने की संभावना हो तो वहाँ मार्गशीर्ष और पौष इन दो महीनों में यात्रा करनी चाहिए । मध्यमकालीन यात्रा चैत्र-वैशाख के बीच करनी चाहिए । जहाँ अल्पकालिक यात्रा हो वहाँ ज्येष्ठ-आषाढ़ में प्रस्थान किया जाना चाहिए । जब कभी शत्रु पर व्यसन आया दिखाई दे तब समय की बिना अपेक्षा किये चढ़ाई कर देनी चाहिए । यह चौथी यात्रा है । व्यसन पीड़ित शत्रु पर आक्रमण करने के सम्बन्ध में विगृह्ययान नामक प्रकरण में निर्देश किया जा चुका है ।

( ३ ) प्राचीन आचार्यों का प्रायः कहना यही है कि 'जब भी शत्रु पर आपत्ति आई जान पड़े तभी आक्रमण कर देना चाहिए ।'

( ४ ) इसके ठीक विपरीत आचार्य कौटिल्य का कहना है कि विजिगीषु जब भी अधिक शक्तिसम्पन्नावस्था में हो तभी आक्रमण करना चाहिए ।

( ५ ) अथवा जिस समय भी शत्रु को निर्बल किया जा सके या शत्रु को विनष्ट किया जा सके तभी चढ़ाई कर देनी चाहिए ।

( ६ ) अत्यन्त गर्मी के मौसम में हाथियों को छोड़कर ऊँट आदि की सेना लेकर आक्रमण करना चाहिए । क्योंकि पानी के अभाव में अत्यधिक उष्ण प्रदेशों में हाथी कोढी हो जाया करते हैं, स्नान के अभाव से और पीने के लिए पर्याप्त पानी न मिलने के कारण अन्दर का दाह बढ़ जाने से हाथी अंधे हो जाते हैं । इसलिए जिस देश में पर्याप्त जल हो और वर्षा होती हो वहीं हाथियों की सेना लेकर आक्रमण करना चाहिए ।

**(१) समविषमनिम्नस्थलह्रस्वदीर्घवशेन वाध्वनो यात्रां विभजेत् ।**
**(२) सर्वा वा ह्रस्वकालाः स्युर्यातव्याः कार्यलाघवात् ।**
**दीर्घाः कार्यगुरुत्वाद्वा वर्षावासः परत्र च ॥**

इति अभियास्यत्कर्मणि नवमाऽधिकरणे शक्तिदेशकालबलाबलज्ञानं यात्राकालाः नाम प्रथमोऽध्यायः; आदित एकविंशत्युत्तरशततमः ।

—: ० :—

---

जहाँ जल का स्थायी प्रबन्ध न हो और वर्षा भी न होती हो ऐसे देशों में गधा, ऊँट तथा घोड़ों की सेना लेकर आक्रमण करना चाहिए। जिस देश में वर्षा होने पर भी कीचड़ कम होता हो, ऐसे रेगिस्तानी देशों में हाथी, घोड़े, रथ और पैदल चतुरंग सेना को लेकर भी आक्रमण किया जा सकता है।

( १ ) अथवा समतल, ऊबड़-खाबड़, जलमय, स्थलमय, अल्पकालीन और दीर्घकालीन आदि परिस्थितियों को देखकर यात्राकाल को विभक्त किया जा सकता है।

( २ ) थोड़े कार्यों की सिद्धि के लिए समय की भी कम आवश्यकता होती है। इसी प्रकार बड़े कार्यों को सम्पन्न करने के लिए यात्रा भी दीर्घकालीन होती है। कभी-कभी वर्षा ऋतु में भी कार्याधिक्य के कारण दूसरे देश में रहना पड़ता है। इसलिए कार्यों के छोटे-बड़े होने के हिसाब से यात्राएँ भी छोटी-बड़ी समझनी चाहिए।

अभियास्यत्कर्म नामक नवम अधिकरण में शक्त्यादिज्ञान और यात्राकाल नामक पहला अध्याय समाप्त।

—: ० :—

| प्रकरण १३७-१३९ | बलोपादानकालाः सन्नाहगुणाः प्रतिबलकर्म च |
| --- | --- |
| अध्याय २ | |

(१) मौलभृतकश्रेणीमित्रामित्राटवीबलानां समुद्दानकालाः ।

(२) मूलरक्षणादतिरिक्तं मौलबलम्, अत्यावापयुक्ता वा मौला मूले विकुर्वीरन्निति, बहुलानुरक्तमौलबलः सारबलो वा प्रतियोद्धा व्यायामेन योद्धव्यमिति, प्रकृष्टेऽध्वनि काले वा क्षयव्ययसहत्वान्मौलानामिति, बहुलानुरक्तसम्पाते च यातव्यस्योपजापभयादन्यसैन्यानां भृतादीनामविश्वासे, बलक्षये वा सर्वसैन्यानामिति मौलबलकालः ।

## सैन्य-संग्रह का समय; सैन्य-संगठन; और शत्रुसेना से मुकाबला

( १ ) इस अध्याय में—मौलबल (राजधानी की रक्षा करने वाली सेना), भृतक बल ( सवैतनिक सेना ), श्रेणीबल (विभिन्न कार्यों में नियुक्त शस्त्रास्त्र में निपुण सेना), मित्रबल ( मित्र राजा की सेना ) अमित्रबल ( शत्रु राजा की सेना ) और अटवीबल ( आटविक सेना ), इन विभिन्न सेनाओं को किस-किस अवसर पर युद्ध के लिए तैयार करना चाहिए—इसका निरूपण किया जायेगा ।

( २ ) **मौलबल** : मूलस्थान अर्थात् राजधानी की रक्षा के लिए जितनी सेना की अपेक्षा हो, उसके अतिरिक्त सेना को युद्ध में ले जाना चाहिए, अथवा मौलबल के बगावत कर देने की संभावना हो तो उसको युद्ध आदि कार्यों में साथ ले जाना चाहिए, या मुकाबले में आगे हुए शत्रु पर मौलबल के अनुराग की संभावना जान पड़े तो उसको साथ ले जाना चाहिए; अथवा शत्रु किसी शक्तिशाली सैन्य को लेकर युद्ध करने के लिए आया है, तब भी मौलबल को साथ ले जाना चाहिए, अथवा दूर देश, दीर्घकालीन युद्ध, क्षय-व्यय की अवस्था में भी मौलबल को साथ रखना चाहिए, अथवा स्वामिभक्त शत्रु के दूत मेरी सेना में भेद डालने का यत्न करेंगे तथा दूसरी सेनाओं पर पूरा विश्वास न होने की स्थिति में भी मौलबल को लेकर युद्ध में जाना चाहिए, क्योंकि मौलबल अत्यन्त स्वामिभक्त होने के कारण फोड़ा नहीं जा सकता है, अथवा अन्य सेनाओं के प्रधान पुरुषों का नाश हो जाने पर यदि विजिगीषु के सेना के खेत छोड़कर भाग जाने का भय हो तो मौलबल को युद्धक्षेत्र में साथ ले जाना चाहिए ।

**(१) प्रभूतं मे भृतबलमल्पं च मौलबलमिति, परस्याल्पं विरक्तं वा मौलबलं फल्गुप्रायमसारं वा भृतसैन्यमिति, मन्त्रेण योद्धव्यमल्पव्यायामेनेति, ह्रस्वो देशः कालो वा तनुक्षयव्ययः इति, अल्पसम्पातं शान्तोपजापं विश्वस्तं वा मे सैन्यमिति, परस्याल्पः प्रसारो हन्तव्यः इति, भृतबलकालः।**

**(२) प्रभूतं मे श्रेणीबलं शक्यं मूले यात्रायां चाधातुमिति, ह्रस्वप्रवासः, श्रेणीबलप्रायः प्रतियोद्धा, मन्त्रव्यायामाभ्यां प्रतियोद्धुकामो दण्डबलव्यवहारः, इति श्रेणीबलकालः।**

**(३) प्रभूतं मे मित्रबलं शक्यं मूले यात्रायां चाधातुम्, अल्पः प्रवासो मन्त्रयुद्धाच्च भूयो व्यायामयुद्धम् इति, मित्रबलेन वा पूर्वमटवीं नगरीस्थानमासारं वा योधयित्वा पश्चात्स्वबलेन योधयिष्यामि, मित्रसाधारणं**

---

( १ ) भृतकबल : यदि विजिगीषु राजा यह समझे कि मौलबल की अपेक्षा मेरा भृतकबल अधिक है, अथवा शत्रु का मौलबल थोड़ा तथा अविश्वासी है, अथवा शत्रु का भृतकबल कमजोर या न होने के बराबर है, अथवा इस समय शत्रु के साथ तूष्णी युद्ध करना पड़ेगा, अथवा थोड़े ही श्रम से कार्य संपन्न हो जायगा, अथवा युद्ध का गंतव्य देश दूर नहीं है, समय भी थोड़ा ही लगेगा और अधिक क्षय-व्यय की भी संभावना नहीं है, अथवा शत्रु के गुप्तचर मेरी सेना में बहुत कम प्रवेश कर सकेंगे और वे भी भेद न डाल सकेंगे, यदि उन्होंने भेद डाल भी दिया तो अपनी विश्वस्त सेना को मैं अपने काबू में कर सकूँगा अथवा शत्रु के थोड़े ही कार्यों की क्षति करनी है'—तो ऐसी स्थितियों में एवं अवसरों पर भृतकबल को साथ लेकर उसको युद्ध में जाना चाहिए।

( २ ) **श्रेणीबल** : यदि विजिगीषु को यह विश्वास हो कि 'मेरे पास श्रेणीबल इतना पोख्ता है कि उसको राजधानी की रक्षा में भी लगाया जा सकता है और शत्रु के साथ युद्ध करने के समय भी उनको साथ लिया जा सकता है, अथवा सफर कम है, मुकाबले की सेना भी प्रायः श्रेणीबल के साथ युद्ध करने लायक है, अथवा शत्रु तूष्णीयुद्ध ( मन्त्र ) अथवा प्रकाशयुद्ध ( व्यायाम ) से मुकाबला करना चाहता है, अथवा दण्ड से डरा हुआ होने के कारण शत्रु अपनी सेना को किसी राजा के अधीन करने की सोच रहा है'—ऐसी स्थितियों एवं ऐसे अवसरों प्रर श्रेणीबल को साथ लेकर युद्ध करना चाहिए।

( ३ ) **मित्रबल** : यदि विजिगीषु राजा यह समझे कि 'उसका मित्रबल इतना पोख्ता है कि वह राजधानी की रक्षा करने में और शत्रु पर चढ़ाई करने में भी समर्थ है, अथवा सफर भी कम है, तूष्णी युद्ध की अपेक्षा वहाँ प्रकाश युद्ध ही अधिक होगा, जिससे क्षय-व्यय की कम संभावना है, अथवा शत्रुसेना या शत्रु के देश में सभी आट-

**वा मे कार्यं, मित्रायत्ता वा मे कार्यसिद्धिः, आसन्नमनुग्राह्यं वा मे मित्रम्, अत्यावापं वास्य साधयिष्यामि इति मित्रबलकालः।**

**(१) प्रभूतं मे शत्रुबलं शत्रुबलेन योधयिष्यामि नगरस्थानम्, अटवीं वा। तत्र मे श्ववराहयोः कलहे चण्डालस्येवान्यतरसिद्धिर्भविष्यति; आसाराणामटवीनां वा कण्टकमर्दनमेतत्करिष्यामि; अत्युपचितं वा कोपभयान्नित्यमासन्नमरिबलं वासयेदन्यत्राभ्यन्तरकोपशङ्कायाः, शत्रुयुद्धावरयुद्धकालश्च। इत्यमित्रबलकालः।**

**(२) तेनाटवीबलकालो व्याख्यातः।**

**(३) मार्गदेशिकं परभूमियोग्यमरियुद्धप्रतिलोममटवीबलप्रायः शत्रुर्वा बिल्वं बिल्वेन हन्यताम् अल्पः प्रसारो हन्तव्यः इत्यटवीबलकालः।**

---

विक सेना या मित्रसेना को पहिले अपनी मित्र-सेना से भिड़ा कर फिर अपनी सेना से लड़ाऊँगा, अथवा इस युद्धादि कार्य में मित्र का तथा अपना समान प्रयोजन है, इस कार्य की सिद्धि मित्र के हाथ में है, अथवा अपने समीपस्थ अन्तरंग मित्र का अवश्य ही उपकार करना है, अथवा अपने मित्र से द्रोह रखने वाली सेना ( दूष्य सेना ) को शत्रु सेना के साथ भिड़ा कर मरवा डालूंगा'—ऐसे अवसरों या ऐसी स्थितियों में मित्र सेना को युद्ध में साथ ले जाना चाहिए।

( १ ) **अमित्रबल** : यदि विजिगीषु यह समझे कि उसकी शत्रु सेना अत्यधिक है, जो कि उसके नगर में ही ठहरी हुई है और जिसको वह अपने दूसरे शत्रु के साथ भिड़ा सकता है, अथवा उसको आटविक सेना के साथ भिड़ा सकता है, इस प्रकार दोनों शत्रु सेनाओं के लड़ जाने पर उसका अभीष्ट सिद्ध हो जायेगा वैसे ही जैसे कि कुत्ते और सुअर की लड़ाई में किसी भी एक के मर जाने पर चाण्डाल का लाभ होता है, अथवा अपने मित्र तथा आटविक की सेना के कंटकों का इस रीति से उन्मूलन हो सकेगा; अथवा बहुत बढ़ी हुई शत्रु सेना को विजिगीषु कुपित हो जाने के भय से सदा ही अपने पास रखे, किन्तु उसको पास रखने में यदि अमात्य, पुरोहित आदि के कुपित हो जाने का भय हो तो उसे अपने पास न रखे, अथवा यदि विजिगीषु का शत्रु अपने किसी दूसरे शत्रु के साथ युद्ध कर रहा हो तो उस युद्ध के समाप्त हो जाने पर दूसरे युद्ध के अवसर पर शत्रुसेना को ही दूसरे शत्रु के मुकाबले में भिड़ा दे'— ऐसी स्थितियों एवं ऐसे अवसरों पर शत्रुसेना को ही युद्ध में भेजना चाहिए।

( २ ) **अटवीबल** : उक्त विवेचन के अनुसार ही आटविक सेना को युद्ध में भेजने के सम्बन्ध में भी समझ लेना चाहिए।

( ३ ) यदि विजिगीषु यह समझे कि गंतव्य स्थान को बताने के लिए प्रथ-प्रदर्शक की आवश्यकता होगी, अथवा आटविक सेना शत्रु की युद्धभूमि में लड़ने योग्य आयुधों

**(१) सैन्यमनेकमनेकजातीयस्थमुक्तमनुक्तं वा विलोपार्थं यदुत्तिष्ठति, तदौत्साहिकम्। भक्तवेतनविलोपविष्टिप्रतापकरं भेद्यं परेषाम्, अभेद्यं तुल्यदेशजातिशिल्पप्रायं संहतं महत्। इति बलोपादानकालाः।**

**(२) तेषां कुप्यभृतममित्राटवीबलं विलोपभृतं वा कुर्यात्।**

**(३) अमित्रस्य वा बलकाले प्रत्युत्पन्ने शत्रुमवगृह्णीयात्। अन्यत्र वा प्रेषयेत्। अफलं वा कुर्यात्। विक्षिप्तं वा वासयेत्। काले वातिक्रान्ते विसृजेत्। परस्य चैतद्बलसमुद्दानं विघातयेद्, आत्मनः सम्पादयेत्।**

---

की शिक्षा में निपुण है, अथवा विजिगीषु की बिना आज्ञा से ही आटविक सेना शत्रुसेना के साथ युद्ध में प्रवृत्त हो सकेगी, जैसे एक बिल्वफल दूसरे बिल्वफल के साथ टकरा कर फोड़ा जाता है वैसे ही शत्रु-सेना से आटविक सेना ही मुठभेड़ करने में समर्थ है, अथवा शत्रु भी आटविक सेना को लेकर ही युद्धभूमि में उतर रहा है, अथवा शत्रु के अल्प अनिष्ट के लिए आटविक सेना ही उपयुक्त होगी'—ऐसी स्थितियों एवं ऐसे अवसरों पर आटविक सेना को लेकर युद्ध में जाना चाहिए।

( १ ) **औत्साहिकबल** : उक्त छह सेनाओं के अतिरिक्त औत्साहिक नामक सातवीं सेना भी होती है। नेतृत्वहीन, भिन्न-भिन्न देशों में रहने वाली, राजा की स्वीकृति या अस्वीकृति से ही दूसरे देशों पर लूटमार करने वाली सेना को ही **औत्साहिक** बल कहते हैं। उसके दो भेद हैं, **भेद्य** और **अभेद्य**। दैनिक भत्ता या मासिक वेतन लेकर शत्रु के देश में लूटपाट करने वाली; दुर्गों में काम करने वाली, और राजा की सामयिक आज्ञाओं का पालन करने वाली औत्साहिक सेना **भेद्य** कहलाती है। भेद्य अर्थात् अधिक भत्ता देकर भेद ( फोड़ने ) किये जाने योग्य। किन्तु जो औत्साहिक सेना प्राय: एक ही देश की; एक ही जाति की और एक ही व्यवसाय की होती है वह **अभेद्य** कहलाती है। उसको वेतन आदि का प्रलोभन देकर फोड़ा नहीं जा सकता है। उसे अपने देश का अधिक ध्यान रहता है। वह बड़ी संगठित होती है। इसलिए इस सेना को उपयुक्त समय के लिए संग्रह करके रखना चाहिए।

( २ ) उक्त सात प्रकार की सेनाओं में से शत्रु सेना तथा आटविक सेना को नियमित मासिक वेतन न देकर उसके ओढ़ने, बिछाने तथा पहनने के लिए शत्रु देश से जीता हुआ या लूटा हुआ माल ही वेतन के रूप में देना चाहिए।

( ३ ) सेना के सम्बन्ध में जो स्थितियाँ और जैसे अवसर विजिगीषु के लिए ऊपर बताये गए हैं; यदि वही स्थितियाँ और वैसे ही अवसर शत्रु के लिए भी अपेक्ष्य हों तो उस समय विजिगीषु को चाहिए कि जो शत्रुसेना उसके पास सहायता के लिए आयी है उसको वह अपने अधीन रखे या किसी कार्य का बहाना बना कर उसको वह अन्यत्र भेज दे। यदि ऐसे अवसरों पर शत्रु की सेना को छोड़ना ही

**(१) पूर्वं पूर्वं चैषां श्रेयः सन्नाहयितुम् ।**

**(२) तद्भावभावित्वान्नित्यसत्कारानुगमाच्च मौलबलं भृतबलाच्छ्रेयः।**

**(३) नित्यानन्तरं क्षिप्रोत्थायि वश्यं च भृतबलं श्रेणीबलाच्छ्रेयः ।**

**(४) जानपदमेकार्थोपगतं तुल्यसंघर्षामर्षसिद्धिलाभं च श्रेणीबलं मित्रबलाच्छ्रेयः ।**

**(५) अपरिमितदेशकालमेकार्थोपगमाच्च मित्रबलममित्रबलाच्छ्रेयः ।**

**(६) आर्याधिष्ठितममित्रबलमटवीबलाच्छ्रेयः । तदुभयं विलोपार्थम् । अविलोपे व्यसने च ताभ्यामहिभयं स्यात् ।**

---

पड़ जाय तो, कार्य करने के बदले में उसको जो सहायता देने की पहिले प्रतिज्ञा की गई थी उसको न देकर ही छोड़ दे; अथवा उसको छोटे-छोटे फिरकों में बाँट कर अलग-अलग छावनियों में रख दे; अथवा जब शत्रु की सहायता का समय बीत जाये तब उस सेना को छोड़ दे; अथवा जब-जब शत्रु अपने सेना-संग्रह का आयोजन करे तभी-तभी विजिगीषु उसके मार्ग में बाधायें खड़ी कर दे और शत्रु द्वारा खड़ी की गयी बाधाओं का प्रतीकार करते हुए वह अपनी सेना का संगठन करता रहे ।

( १ ) उक्त सात प्रकार की सेना में उत्तर-उत्तर की अपेक्षा पूर्व-पूर्व की सेना का संग्रह करना अधिक लाभप्रद है ।

( २ ) सदैव अपने स्वामी के साथ बने रहने के कारण तथा सदा ही सेना के सम्बन्ध में स्वामी की सत्कार बुद्धि होने के कारण और सदा ही स्वामी के सम्बन्ध में सेना का अनुराग होने के कारण भृतकबल की अपेक्षा मौलबल श्रेष्ठ होता है ।

( ३ ) इसी प्रकार श्रेणीबल की अपेक्षा भृतकबल अधिक श्रेष्ठ होता है; क्योंकि वह सदैव राजा के समीप रहता है, अविलम्ब ही युद्ध के लिए तैयार हो सकता है और राजा के अधीन रहता है; किन्तु श्रेणीबल में ये बातें नहीं होती हैं ।

( ४ ) मित्रबल की अपेक्षा श्रेणीबल अधिक उत्तम होता है; क्योंकि वह अपने राजा के देश का होता है; एक ही प्रयोजन के लिए उसका संग्रह किया जाता है; मालिक का जिसके साथ संघर्ष तथा क्रोध होता है श्रेणीबल की भी उसके साथ संघर्ष तथा वैर होता है; वह अपने मालिक की अभीष्ट सिद्धि में ही अपनी अभीष्टसिद्धि समझता है । परन्तु मित्रबल में ये बातें नहीं होती हैं ।

( ५ ) अमित्रबल की अपेक्षा मित्रबल अधिक श्रेयस्कर होता है; क्योंकि मित्रबल हर समय हर स्थिति में सहायक होता है; विजिगीषु के प्रयोजन के अनुसार ही मित्रबल का भी प्रयोजन होता है । इसके विपरीत अमित्रबल में ये बातें नहीं होती हैं ।

( ६ ) अटवीबल की अपेक्षा अमित्रबल अधिक श्रेष्ठ होता है; क्योंकि वह

**(१) ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यशूद्रसैन्यानां तेजःप्राधान्यात्पूर्वं पूर्वं श्रेयः सन्नाहयितुमित्याचार्याः ।**

**(२) नेति कौटिल्यः । प्रणिपातेन ब्राह्मणबलं परोऽभिहारयेत् । प्रहरणविद्याविनीतं तु क्षत्रियबलं श्रेयः, बहुलसारं वा वैश्यशूद्रबलमिति ।**

**(३) तस्माद् 'एवंबलः परः, तस्यैतत्प्रतिबलम्' इति बलसमुद्दानं कुर्यात् ।**

**(४) हस्तियन्त्रशकटगर्भकुन्तप्रासहाटकवेणुशल्यवद्धस्तिबलस्य प्रतिबलम् ।**

**(५) तदेव पाषाणलगुडावरणाङ्कुशकचग्रहणीप्रायं रथबलस्य प्रतिबलम्।**

---

आर्यगुणों से संपन्न एवं विश्वस्त पुरुषों के नेतृत्व में रहता है; किन्तु अटवीबल के सम्बन्ध में ऐसा नहीं है। ये दोनों सेनायें शत्रुदेश को लूटने के लिए बड़ी उपयुक्त हैं। क्योंकि यदि उन्हें युद्ध में लगाया जाय या विपत्ति में सहायतार्थ नियुक्त किया जाय, तो अस्तीन के साँप की तरह सदा ही उनसे भय बना रहता है।

( १ ) प्राचीन आचार्यों का मत है कि तेज की अतिशयता होने के कारण ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र, इन चारों वर्णों की सेनाओं में उत्तर-उत्तर की अपेक्षा पूर्व-पूर्व की सेना अधिक श्रेष्ठ है।

( २ ) इसके विपरीत आचार्य कौटिल्य का मत है कि 'शत्रुपक्ष ब्राह्मणसेना के समक्ष नमस्कार कर या शिर झुका कर उसको अपने वश में कर लेता है। इसलिए युद्धविद्या में निपुण क्षत्रिय सेना को ही सर्वाधिक श्रेष्ठ समझना चाहिए, अथवा वैश्य सेना तथा शूद्रसेना को भी श्रेष्ठ समझना चाहिए, यदि उनमें वीर पुरुषों की अधिकता हो।

( ३ ) सेनाओं के संबन्ध में पूर्वोक्त पारस्परिक श्रेष्ठता को समझने के बाद शत्रुसेना के संबन्ध में भी विचार कर लेना चाहिए और अमुक शत्रुसेना के साथ अमुक सेना उपयुक्त होगी, इन सभी बातों का विचार कर उपयुक्त सेनाओं का संग्रह करना चाहिए।

( ४ ) हस्तिसेना के मुकाबले के लिए हाथी, जामदग्न्य यन्त्र, शकटगर्भ ( शकट के समान मध्यभाग वाला अस्त्र ), भाला ( कुन्त ), बरछा ( प्रास ), त्रिशूल ( हाटक ), लाठी ( वेणु ), बल्लभ ( शल्य ) आदि साधनों से युक्त सेना की आवश्यकता होती है।

( ५ ) उक्त हस्तिसेना यदि पाषाण, गदा ( लगुड ), कवच ( आवरण ), अंकुश और कचग्राही ( लंबी लोहे की छड़, जिसके अग्रभाग में बाल पकड़ने का हुक लगा रहता है ) आदि साधनों से युक्त हो तो वह रथ-सवार सेना का मुकाबला (प्रतिबल) करनेवाली समझना चाहिए।

**(१) तदेवाश्वानां प्रतिबलम् ।**

**(२) वर्मिणो वा हस्तिनोऽश्वा वा वर्मिणः कवचिनो रथा आवरणिनः पत्तयश्चतुरङ्गबलस्य प्रतिबलम् ।**

**(३) एवं बलसमुद्दानं परसैन्यनिवारणम् ।**
**विभवेन स्वसैन्यानां कुर्यादङ्गविकल्पशः ।।**

इति अभियास्यत्कर्मणि नवमेऽधिकरणे बलोपादानकालाः सन्नाहगुणाः प्रतिबलकर्म नाम द्वितीयोऽध्याय; आदितो द्वाविंशत्युत्तरशततमः ।

—: ० :—

---

( १ ) इसी सेना को सड़सवार ( अश्वबल ) सेना का भी प्रतिबल समझना चाहिए ।

( २ ) कवचधारी हाथी या कवचधारी घोड़े, मजबूत लोहे की पर्तों से मढ़े हुए रथ और कवचधारी पैदल सेना, इन चारों को क्रमशः, हस्तिबल, अश्वारोही, रथारोही और पदाति, इस चतुरंग सेना का प्रतिबल समझना चाहिए ।

( ३ ) इस प्रकार पूर्वोक्त रीति से सेनाओं की पारस्परिक श्रेष्ठता, गुरुता, लघुता का विचार करके ही उपयुक्त सेनाओं का संग्रह करना चाहिए । इसी प्रकार मौलभृत आदि अपनी सेनाओं की शक्ति के अनुसार एवं सेनाओं के अंगभूत साधन हाथी, घोड़े, शस्त्र आदि की अधिकता-अल्पता को दृष्टि में रख कर अलग-अलग विभागों के अनुसार ही सेना का संग्रह तथा शत्रु का प्रतिकार करना चाहिए ।

अभियास्यत्कर्म नामक नवम अधिकरण में बलप्रतिवलकर्म नामक
दूसरा अध्याय समाप्त ।

—: ० :—

प्रकरण १४०-१४१

अध्याय ३

# पश्चात्कोपचिन्ता, बाह्यान्तर-प्रकृतिकोपप्रतीकारश्च

**(१) अल्पः पश्चात्कोपो महान् पुरस्ताल्लाभ इति । अल्पः पश्चात्कोपो गरीयान् । अल्पं पश्चात्कोपं प्रयातस्य दूष्यामित्राटविका हि सर्वतः समेधयन्ति, प्रकृतिकोपो वा । लब्धमपि च महान्तं पुरस्ताल्लाभमेवंभूते भृत्यमित्रक्षयव्यया ग्रसन्ते । तस्मात्साहस्रैकीयः पुरस्ताल्लाभस्यायोगः शतैकीयो वा पश्चात्कोप इति न यायात् । सूचीमुखा ह्यनर्था इति लोकप्रवादः ।**

**(२) पश्चात्कोपे सामदानभेददण्डान्प्रयुञ्जीत । पुरस्ताल्लाभे सेनापतिं कुमारं वा दण्डचारिणं कुर्वीत ।**

## पाश्चात्कोपचिन्ता और बाह्याभ्यन्तर प्रकृति के कोप का प्रतीकार

( १ ) यदि थोड़ा पश्चात्कोप और अधिक भावी लाभ हो तो दोनों में से थोड़ा पश्चात्कोप ही गुरुतर है, क्योंकि विजिगीषु के युद्ध में चले जाने के कारण थोड़े पश्चात्कोप को भी राजद्रोही और आटविक बहुत बढ़ा देते हैं, अथवा विजीगीषु की की अनुपस्थिति में उसका कुपित प्रकृतिवर्ग थोड़े भी पश्चात्कोप को अधिक बढ़ा देता है। यदि पश्चात्कोप की लापरवाही करके आक्रमण से होने वाले बड़े लाभ को प्राप्त कर लिया जाय तो उस बढ़े हुए पश्चात्कोप के प्रतीकार के लिए जो भृत्य तथा मित्रसंबन्धी क्षय-व्यय करना पड़ता है, उसमें वह महान लाभ सब बराबर हो जाता है। इसलिए जब भावी लाभ की सफलता प्रति सहस्र एक अंश मात्र होनेवाली हो तो उसकी अपेक्षा पश्चात्कोप से होने वाला अनर्थ प्रतिशत एक अंश समझना चाहिए, अर्थात् पश्चात्कोपजन्य अनर्थ की अपेक्षा भावी लाभ में दसगुनी असारता होती है। लोकप्रसिद्धि है कि अनर्थ सदा सूचीमुख हुआ करते हैं, अर्थात् पहिले तो उनका रूप सुई के मुँह जितना सूक्ष्म होता है, किन्तु बाद में वे भयावह रूप धारण कर लेते है।

( २ ) यदि पश्चात्कोप की अधिक संभावना हो तो साम, दाम, दण्ड, भेद आदि उपायों से किसी भी प्रकार उसका प्रतीकार करना चाहिए। यदि भावी लाभ को को भी न छोड़ना हो तो सेनापति या युवराज के संक्षरण में सेना को विजययात्रा के लिए भेजना चाहिए।

**(१) बलवान् वा राजा पश्चात्कोपावग्रहसमर्थः पुरस्ताल्लाभमादातुं यायात् । अभ्यन्तरकोपशङ्कायां शङ्कितानादाय यायात् ।**

**(२) बाह्यकोपशङ्कायां वा पुत्रदारमेषामभ्यन्तरावग्रहं कृत्वा शून्यपालमनेकबलवर्गमनेकमुख्यं च स्थापयित्वा यायात् । न वा यायात् । 'अभ्यन्तरकोपो बाह्यकोपात्पापीयान्' इत्युक्तं पुरस्तात् ।**

**(३) मन्त्रिपुरोहितसेनापतियुवराजानामन्यतमकोपोऽभ्यन्तरकोपः । तमात्मदोषत्यागेन परशक्त्यपराधवशेन वा साधयेत् ।**

**(४) महापराधेऽपि पुरोहिते संरोधनमवस्रावणं वा सिद्धिः, युवराजे संरोधनं निग्रहो वा गुणवत्यन्यस्मिन्सति पुत्रे ।**

---

( १ ) अथवा जो शक्तिसंपन्न राजा पश्चात्कोप का प्रतीकार करने में समर्थ हो और उसका यह विश्वास हो कि वह पश्चात्कोप को पूरी तरह शांत कर सकेगा, तो थोड़ी-सी सेना पीछे छोड़कर विजिगीषु स्वयं भी यात्रा में जा सकता है । यदि ऐसी स्थिति में भीतरी कोप की आशंका हो तो उन आशंकित व्यक्तियों को साथ लेकर विजिगीषु को युद्ध में जाना चाहिए ।

( २ ) अथवा यदि बाह्यकोप की आशंका हो तो विजिगीषु के लिए उचित है वह उन बाह्यकोपकारी अंतपाल आदि के पुत्र तथा स्त्रियों को अपने अमात्यों के अधीन करके युद्ध में जाय । यदि बाह्य और आभ्यन्तर दोनों की ओर से उपद्रव की आशंका हो तो पीछे बताई गई मौलभृत आदि सात प्रकार की सेनाओं तथा अनेक मुख्य सेनापतियों से युक्त शून्यपाल को राजधानी की रक्षा के लिए नियुक्त करके विजययात्रा करनी चाहिए । इतने इन्तजाम में भी यदि आभ्यन्तर विद्रोह की आशंका बनी रहे तो विजिगीषु कदापि न जाय क्योंकि आभ्यन्तर कोप, बाह्यकोप की अपेक्षा अत्यन्त हानिकर होता है, इस बात को पहिले ही कहा जा चुका है ।

( ३ ) मन्त्री, पुरोहित, सेनापति और युवराज इन चारों में से किसी एक के द्वारा किए जाने वाले उपद्रव को **आभ्यन्तरकोप** कहते हैं । यह आभ्यन्तरकोप यदि विजिगीषु के किसी दोष के कारण पैदा हुआ हो तो उस दोष का परित्याग कर आभ्यन्तर कोप को शान्त करना चाहिए । यदि वह मन्त्री, पुरोहित आदि के कारण उत्पन्न हुआ हो तो उनको अपराध के अनुसार प्राणदण्ड, बन्धन तथा अर्थदण्ड आदि के द्वारा सीधा करना चाहिए ।

( ४ ) यदि पुरोहित से ऐसा कोई महान् अपराध हो जाय तो भी उसका वध नहीं करना चाहिए, क्योंकि ब्राह्मण का वध निषिद्ध है । इसलिए उसको या तो कैद में डाल दिया जाय अथवा देश-निर्वासन का दण्ड दिया जाय । यदि युवराज इस तरह

(१) ताभ्यां मन्त्रिसेनापती व्याख्यातौ ।

(२) पुत्रं भ्रातरमन्यं वा कुल्यं राज्यग्राहिणमुत्साहेन साधयेत् । उत्साहाभावे गृहीतानुवर्तनसन्धिकर्मभ्यामरिसन्धानभयात् । अन्येभ्यस्तद्विधेभ्यो वा भूमिदानैर्विश्वासयेदेनम् । तद्विशिष्टं स्वयंग्राहं दण्डं वा प्रेषयेत्, सामन्ताटविकान् वा । तैर्विगृहीतमतिसन्दध्यात् । अवरुद्धादानं पारग्रामिकं वा योगमातिष्ठेत् ।

(३) एतेन मन्त्रिसेनापती व्याख्यातौ ।

(४) मन्त्र्यादिवर्जानामन्तरमात्यानामन्यतमकोपोऽन्तरमात्यकोपः । तत्रापि यथार्हमुपायान् प्रयुञ्जीत ।

---

का महान् अपराध कर डाले तो उसे या तो आजन्म कैद में डाल दिया जाय या प्राणदण्ड दिया जाय, किन्तु यह प्राणदण्ड उसी दशा में दिया जाय जब कि दूसरा कोई गुणवान् पुत्र विद्यमान हो ।

( १ ) पुरोहित और युवराज के समान ही मन्त्री और सेनापति का भी उनके अपराध के अनुसार वध या बन्धन का दण्ड समझना चाहिए ।

( २ ) विजिगीषु को चाहिए कि वह अपने पुत्र, भाई या किसी खानदानी व्यक्ति को, जो राज्य लेने की इच्छा करे, उसको उसके योग्य उच्च अधिकारपदों पर नियुक्त कर के अपने वश में करे । क्योंकि यदि उन्हें वश में न किया गया तो यह आशंका नित्य ही बनी रहती है कि कहीं वे शत्रु राजा के साथ जाकर न मिल जाँय । अथवा इसी तरह के दूसरे खानदानी व्यक्तियों को जमीन आदि देकर अपने अधीन कर लेना चाहिए । अथवा ऐसे व्यक्तियों को स्वयं ग्राह सेना का सेनापति बनाकर कहीं बाहर युद्ध के लिए भेज देना चाहिए । अथवा उन्हें सामंत तथा आटविकों की सेना का अध्यक्ष नियुक्त कर के बाहर भेज देना चाहिए और फिर उस स्वयं ग्राह सेना तथा उन सामंत आटविकों के साथ झगड़ा कराके उसको कैद में डाल देना चाहिए । स्वयं ग्राह सेना द्वारा गिरफ्तार उस व्यक्ति को राजा स्वयं ले ले अथवा **दुर्गलम्भोपाय** प्रकरण में निर्दिष्ट उपायों द्वारा उसे वश में करे ।

( ३ ) इसी प्रकार मन्त्री और सेनापति के द्वारा पैदा किये गये उपद्रव तथा उसके प्रतीकार का भी व्याख्यान समझ लेना चाहिए ।

( ४ ) मन्त्री, पुरोहित, युवराज और सेनापति के अतिरिक्त अन्य अन्तरमात्य अर्थात् द्वारपाल या रनिवास के कर्मचारी आदि में से किसी एक द्वारा उठाये गये कोप को **अन्तरमात्यकोप** कहते हैं । ऐसे कोप को शान्त करने के लिए उपर्युक्त उपायों को ही काम में लाना चाहिए ।

**(१) राष्ट्रमुख्यान्तपालाटविकदण्डोपनतानामन्यतमकोपो बाह्यकोपः। तमन्योन्येनावग्राहयेत् । अतिदुर्गप्रतिस्तब्धं वा सामन्ताटविकतत्कुलीनावरुद्धानामन्यतमेनावग्राहयेत् । मित्रेणोपग्राहयेद्वा, यथा नामित्रं गच्छेत् ।**

**(२) अमित्राद्वा सत्री भेदयेदेनम्–'अयं त्वा योगपुरुषं मन्यमानो भर्तर्येव विक्रमयिष्यति, अवाप्तार्थो दण्डचारिणममित्राटविकेषु कृच्छ्रे वा प्रवासे योक्ष्यति, विपुत्रदारमन्ते वा वासयिष्यति, प्रतिहतविक्रमं त्वां भर्तरि पण्यं करिष्यति, त्वया वा सन्धिं कृत्वा भर्तारमेव प्रसादयिष्यति, मित्रमुपकृष्टं वास्य गच्छेद्' इति ।**

**(३) प्रतिपन्नमिष्टाभिप्रायैः पूजयेत् ।**

**(४) अप्रतिपन्नस्य संश्रयं भेदयेद्—'असौ ते योगपुरुषः प्रणिहितः' इति ।**

---

( १ ) राष्ट्र के प्रमुख व्यक्ति, अन्तपाल, आटविक और बलपूर्वक अधीन किये गये व्यक्ति ( दण्डोपनत ) आदि में से किसी एक के द्वारा उठाये गये उपद्रव को **बाह्यकोप** कहते हैं। ऐसे कोप को शान्त करने का यही तरीका है कि उन कोपकारों को एक-दूसरे के साथ लड़ा कर शान्त किया जाय। बाह्यकोप को उठाने वाले राष्ट्रमुख या अन्तपाल आदि को सामन्त, आटविक या उनके कुल के किसी गिरफ्तार राजकुमार द्वारा पकड़वा दिया जाय, अथवा अपने मित्र के साथ उसकी मित्रता जोड़ दी जाय, जिससे कि वह शत्रुपक्ष में न मिल जाय।

( २ ) सत्री नामक गुप्तचर को चाहिए कि वह बाह्य कोपकारी राष्ट्रमुख आदि व्यक्तियों को यह कह कर मित्र बनाये रखे कि 'तुम जिसके साथ मिलना चाहते हो वह तुमको विजिगीषु का गुप्तचर समझ कर तुमको तुम्हारे मित्र से लड़ने को कहेगा और उस आक्रमण के परिणाम को देख कर तुमको अपनी सेना का नायक बनाकर अपने शत्रु या आटविक के मुकाबले में किसी दुष्कर आक्रमण के लिए नियुक्त करेगा, अथवा तुमको तुम्हारे स्त्री-पुत्रों से वियुक्त कर अपने किसी सरहदी इलाके में नियुक्त कर देगा, अथवा अपने ही मालिक के मुकाबले में यदि तुम हार गए तो तुम्हारे मालिक से धन लेकर वह उसी के हाथ तुम्हें बेच देगा, अथवा तुम्हारे स्वामी के हाथ तुम्हें ही शर्तनामा के रूप में गिरवी रख कर सन्धि कर लेगा, अथवा तुम्हें शर्त में रखकर अपने किसी मित्र के साथ तुम्हारे स्वामी की सन्धि करा देगा।'

( ३ ) यदि सत्री के इस भेद भरे उपदेश को वह बाह्यकोपकारी स्वीकार कर ले तो उसको उसकी मनचाही वस्तुएँ देकर सम्मानित किया जाय।

( ४ ) यदि स्वीकार न करे तो संश्रयनीति के द्वारा उसे यह कहकर भिन्न कर

**(१) सत्री चैनमभित्यक्तशासनैर्घातयेद् गूढपुरुषैर्वा। सहप्रस्थायिनो वास्य प्रवीरपुरुषान् यथाभिप्रायकरणेनावाहयेत्। तेन प्रणिहितान् सत्री ब्रूयात्। इति सिद्धिः। परस्य चैनान्कोपानुत्थापयेत्। आत्मनश्च शमयेत्।**

**(२) यः कोपं कर्तुं शमयितुं वा शक्तः, तत्रोपजापः कार्यः। यः सत्य-सन्धः शक्तः कर्मणि फलावाप्तौ चानुग्रहीतुं विनिपाते च त्रातुं, तत्र प्रति-जापः कार्यः। तर्कयितव्यश्च—कल्याणबुद्धिरुताहो शठ इति।**

**(३) शठो हि बाह्योऽभ्यन्तरमेवमुपजपति—भर्तारं चेद्धत्वा मां प्रति-पादयिष्यति शत्रुवधो भूमिलाभश्च मे द्विविधो लाभो भविष्यति, अथवा**

---

दिया जाय कि 'जो व्यक्ति तुम्हारे आश्रय में है वह दूसरे का गुप्तचर है, उससे तुम्हें सम्भल कर रहना चाहिए।'

(१) अथवा सत्री को चाहिए कि वध के लिए नियुक्त व्यक्ति (अभित्यक्त) के हाथ जाली पत्र भेजवा कर—जिसमें शत्रु को छिपकर मार डालने का निर्देश हो—शत्रु के मन में सन्देह पैदा कर उसी के द्वारा उस बाह्यकोपकारी का वध करा दे, अथवा गुप्तचरों के द्वारा ही उसका वध करा दिया जाय। अथवा शत्रु का आश्रय लेने के लिए उन बाह्यकोपकारी राष्ट्रमुख, अन्तपाल आदि के साथ जो वीर पुरुष जाने को तैयार हों, उनकी मनचाही मुराद पूरी कर के उन्हें अपनी ओर मिला ले। यदि वे वीर पुरुष मिलने के लिए तैयार न हों तो उनके सम्बन्ध में शत्रु राजा के यहाँ जाकर सत्री इस प्रकार कहे 'ये सभी वीर पुरुष विजिगीषु ने तुम्हारे वध के लिए भेजे है, ये सभी गुप्तचर हैं' और इस प्रकार शत्रु को समझा कर उसी के द्वारा उनको मरवा डाले। शत्रु के पक्ष में अन्तर-बाह्यकोप पैदा करे और अपने पक्ष के कोपों का प्रतीकार करे।

(२) जो व्यक्ति कोप को उत्पन्न करने और शान्त करने में समर्थ हो उसी पर उपजाप का प्रयोग कर दूसरे के साथ उसकी फूट डाल देनी चाहिए। जो पुरुष सत्य-प्रतिज्ञ हो, कार्य तथा फलसिद्धि के समय अनुग्रह करने वाला हो और आपत्ति के समय रक्षा कर सके उसके साथ प्रतिजाप (उपजाप को स्वीकार कर लेना प्रतिजाप है) का प्रयोग करना चाहिए। यदि उपजाप करने वाले व्यक्ति के प्रति उपजाप को स्वीकार कर लेने वाले व्यक्ति को यह आशंका हो कि कहीं वह ठगने के लिए तो ऐसा नहीं कह रहा है तो उसकी कल्याण बुद्धि या शठबुद्धि की परीक्षा लेकर भली भाँति विचार-विनिमय कर ले।

(३) जो बाह्य शठबुद्धि होते हैं वे अभ्यंतर के प्रति यह सोचकर उपजाप करते हैं कि मेरे द्वारा बहकाया गया मंत्री यदि अपने राजा को मारकर उसके स्थान पर मुझे राजा बना देगा तो शत्रु का नाश और भूमि का लाभ, ये दोनों फायदे मुझे एक

**शत्रुरेनमाहनिष्यति हतबन्धुपक्षस्तुल्यदोषदण्डेन वा उद्विग्नश्च, मे भूयान् कृत्यपक्षो भविष्यति तद्विधे वान्यस्मिन्नपि शङ्कितो भविष्यति अन्यमन्यं चास्य मुख्यमभित्यक्तशासनेन घातयिष्यामि इति ।**

**(१) अभ्यन्तरो वा शठो बाह्यमेवमुपजपति—कोषमस्य हरिष्यामि, दण्डं वास्य हनिष्यामि, दुष्टं वा भर्तारमनेन घातयिष्यामि, प्रतिपन्नं बाह्यमित्राटविकेषु विक्रमयिष्यामि चक्रमस्य सज्यतां वैरमस्य प्रसज्यतां ततः स्वाधीनो मे भविष्यति, ततो भर्तारमेव प्रसादयिष्यामि, स्वयं वा राज्यं ग्रहीष्यामि, बद्ध्वा वा बाह्यभूमिं चोभयमवाप्स्यामि, विरुद्धं वावाहयित्वा बाह्यं विश्वस्तं घातयिष्यामि शून्यं वास्य मूलं हरिष्यामि इति ।**

**(२) कल्याणबुद्धिस्तु सहजीव्यर्थमुपजपति । कल्याणबुद्धिना सन्दधीत । शठं 'तथा' इति प्रतिगृह्यातिसन्दध्यात् । इति ।।**

**(३) एवमुपलभ्य,**

---

साथ हो जायेंगे, अथवा यदि शत्रु ही मंत्री को मार डालेगा तो मंत्री का बन्धुवर्ग तथा दूसरे क्रुद्ध या लुब्ध लोग राजा के शत्रु बन जायेंगे और तब बड़ी सरलता से उन्हें मैं अपने वश में कर सकूँगा, इस प्रकार दूसरे कर्मचारियों पर से भी राजा का विश्वास उठ जायगा और उस दशा में मैं, एक-एक करके सभी प्रमुख कर्मचारियों के नाम अभित्यक्त व्यक्तियों के हाथ जाली पत्र भेजकर, उनको भी मरवा डालूंगा ।'

( १ ) इसी प्रकार जो अभ्यन्तर शठ होते हैं वे बाह्य के प्रति यह सोचकर उपजाप करते हैं कि, 'इस बाह्य के कोप का मैं अपहरण कर सकूँगा अथवा इसकी सेना को मार डालूंगा, या अपने दुष्ट राजा को इसके द्वारा मरवा डालूंगा, या जब यह मेरे राजा को मारना स्वीकार कर लेगा तो उस समय इसे शत्रुओं तथा आटविकों के साथ युद्ध करने के लिए भेज दूँगा, तब इसकी सारी सेना वहीं युद्ध में फँसी रहेगी, उसका आपस में वैर बढ़ता रहेगा, उस अवस्था में यह मेरे अधीन हो जायेगा और ऐसा कार्य करके मैं अपने मालिक को प्रसन्न कर लूंगा, अथवा बाह्य को वश में करके उसका राज्य मैं स्वयं हड़प लूंगा, अथवा उसको कैद में डालकर उसकी भूमि को और अपने मालिक की भूमि को अपने अधिकार में कर लूंगा, अथवा बाह्य के किसी विरोधी से मिलकर उसके द्वारा इस बाह्य को मरवा डालूंगा, अथवा जब यह युद्ध में फँसा हो तब इसकी सूनी राजधानी को लूटूंगा ।

( २ ) जो कल्याणबुद्धि होता है वह अपनी आजीविका को सुरक्षित रखते हुए साथी बनकर ही उपजाप किया करता है । इसलिए विजिगीषु जो चाहिए कि वह कल्याणबुद्धि के साथ सन्धि कर ले शठबुद्धि की बात को मानकर पीछे अवसर आने पर धोखा दे दे ।

( ३ ) इस प्रकार कल्याणबुद्धि और शठबुद्धि का निश्चय करके,

**(१) परे परेभ्यः स्वे स्वेभ्यः स्वे परेभ्यः स्वतः परे ।**
**रक्ष्याः स्वेभ्यः परेभ्यश्च नित्यमात्मा विपश्चिता ॥**

इति अभियास्यत्कर्मणि नवमेऽधिकरणे पश्चात्कोपचिन्ता बाह्याभ्यन्तरप्रकृति-कोपप्रतीकारश्चेति तृतीयोऽध्यायः; आदितस्त्रयोविंशयुत्तरशततमः ।

—: ० :—

---

( १ ) कार्यतत्त्व को जानने वाले विद्वान् विजिगीषु को चाहिए कि वह जिन दूसरों को शठ समझता है उनकी बात को दूसरों पर प्रकट न होने दे। और जो अपने शठ हैं उनकी बात अपनों पर भी प्रकट न होने दे, इसी प्रकार दोनों प्रकार के शठों पर एक दूसरे की बात को प्रकट न होने दे, अपने शठों की वह परायों से रक्षा करे और उनके अनुकूल या प्रतिकूल अभिप्राय को वह अपनी ओर से प्रकट न करे।

अभियास्यत्कर्म नामक नौवें अधिकरण में आभ्यन्तर-बाह्यकोपप्रतीकार नामक तीसरा अध्याय समाप्त।

—: ० :—

# क्षयव्ययलाभविपरिमर्शः

(१) युग्यपुरुषापचयः क्षयः। हिरण्यधान्यापचयो व्ययः।

(२) ताभ्यां बहुगुणविशिष्टे लाभे यायात्।

(३) आदेयः, प्रत्यादेयः, प्रसादकः प्रकोपको, ह्रस्वकालः, तनुक्षयः, अल्पव्ययो, महान्, वृद्धयुदयः, कल्यो, धर्म्यः, पुरोगश्चेति लाभसम्पत्।

(४) सुप्राप्यानुपाल्यः परेषामप्रत्यादेय इत्यादेयः।

(५) विपर्यये प्रत्यादेयः। तमाददानस्तत्रस्थो वा विनाशं प्राप्नोति।

(६) यदि वा पश्येत्—'प्रत्यादेयमादाय कोशदण्डनिचयरक्षाविधानान्यवस्रावयिष्यामि, खनिद्रव्यहस्तिवनसेतुबन्धवणिक्पथानुद्धृतसारान्करि-

---

## क्षय, व्यय और लाभ का विचार

( १ ) हाथी-घोड़े आदि सवारियों और राज-कर्मचारियों के नाश को **क्षय** कहते हैं। हिरण्य और धान्य आदि के नाश को **व्यय** कहते हैं।

( २ ) विजिगीषु को चाहिए कि क्षय और व्यय का ध्यान रखकर जिस समय वह बहुगुणविशिष्ट लाभ की सम्भावना समझे उस समय युद्ध के लिए प्रस्थान कर दे।

( ३ ) लाभ के विशिष्ट बारह गुणों के नाम हैं: १. आदेय २. प्रत्यादेय ३. प्रसादक ४. प्रकोपक ५. ह्रस्तकाल ६. तनुक्षय ७. अल्पव्यय ८. महान् ९. वृद्धयुदय १०. कल्प ११. धर्म्य और १२. पुरोग।

( ४ ) जो बड़ी सरलता से प्राप्त किया जा सके, प्राप्ति के बाद सरलता से जिसकी रक्षा की जा सके और कालान्तर में भी जिसको शत्रु छीन न सके। ऐसे लाभ को **आदेय** कहते हैं।

( ५ ) आदेय से विपरीत लाभ को **प्रत्यादेय** कहते हैं। जो इस प्रकार के लाभ को प्राप्त करता है अथवा उसी पर जीवन-निर्वाह करता है वह अवश्य ही विनाश को प्राप्त होता है।

( ६ ) यदि विजिगीषु यह समझे कि : 'प्रत्यादेय लाभ को प्राप्त कर मैं अपने शत्रु के कोष, सेना; अन्न-संचय और दुर्ग आदि के संरक्षण साधनों को नष्ट कर सकूंगा, अथवा शत्रु के खान, द्रव्यवन, हस्तिवन, सेतुबंध और व्यापारी मार्ग आदि का शोषण

**ष्यामि; प्रकृतीरस्य कर्शयिष्यामि; आवाहयिष्यामि, आयोगेनाराधयिष्यामि वा, ताः परः प्रतियोगेन कोपयिष्यति; प्रतिपक्षे वास्य पण्यमेनं करिष्यामि; मित्रमवरुद्धं वास्य प्रतिपादयिष्यामि; मित्रस्य स्वस्व वा देशस्य पीडामत्रस्थस्तस्करेभ्यः परेभ्यश्च प्रतिकरिष्यामि; मित्रमाश्रयं वास्य वैगुण्यं ग्राहयिष्यामि, तदमित्रविरक्तं तत्कुलीनं प्रतिपत्स्यते; सत्कृत्य वास्मै भूमिं दास्यामि, इति, संहितसमुत्थितं मित्रं मे चिराय भविष्यति' इति प्रत्यादेयमपि लाभमाददीत । इत्यादेयप्रत्यादेयौ व्याख्यातौ ।**

**(१) अधार्मिकाद्धार्मिकस्य लाभो लभ्यमानः स्वेषां परेषां च प्रसादको भवति । विपरीतः प्रकोपक इति । मन्त्रिणामुपदेशाल्लाभोऽलभ्यमानः कोपको भवति, 'अयमस्माभिः क्षयव्ययौ ग्राहितः' इति । दूष्यमन्त्रिणामनादराल्लाभो लभ्यमानः कोपको भवति, 'सिद्धार्थोऽयमस्मान् विनाशयिष्यति' इति । विपरीतः प्रसादकः । इति प्रसादककोपकौ व्याख्यातौ ।**

---

कर उन्हें सारहीन बना दूँगा, या शत्रु के प्रकृतिमंडल को कष्ट पहुँचा कर निर्बल बना दूँगा, या शत्रु की भूमि को प्राप्त करके उसके उपभोग के लिए शत्रु की प्रजा को लाकर बसा दूँगा, अथवा इच्छानुसार सुख-साधनों की सुविधा देकर उन्हें अपने वश में कर लूँगा, या मेरे द्वारा प्राप्त भूमि के पुनः छिन जाने पर अपने प्रतिकूल आचरण से शत्रु वहाँ की प्रजा को कुपित कर देगा, या उस प्राप्त भूमि को शत्रु के हाथ बेच दूँगा, अथवा विशेप लाभ रहित उस भूमि में अपने मित्र या अपने पुत्र को स्थापित कर दूँगा, अथवा स्वयं ही उस भूमि का शासन करता हुआ मैं चोरों और शत्रुओं से अपने मित्र देश की रक्षा करूँगा, अथवा इस शत्रु के मित्र तथा आश्रय को इसके विरुद्ध उभाड़ दूँगा, अथवा उस भूमि का शासन कर मैं ठीक-ठीक कर लेकर शत्रु की अयोग्यता और प्रजा की पीड़ा के सम्बन्ध में आश्रयभूत राजा से बहुत कुछ कहूँगा, जिससे किसी दूसरे योग्य व्यक्ति को वहाँ का राज्यसिंहासन मिलेगा, अथवा उस प्राप्त भूमि को मैं ही सम्मानपूर्वक शत्रु को वापिस कर दूँगा, इस संधि के कारण वह मेरा पक्का मित्र बन जायेगा'—ऐसी अवस्थाओं में विजिगीषु को चाहिए कि वह प्रत्यादेय लाभ को भी ले ले। यहाँ तक आदेय और प्रत्यादेय लाभ के सम्बन्ध में निरूपण किया गया।

(१) जो लाभ अधार्मिक राजा से धार्मिक राजा को प्राप्त हो तथा जो अपने तथा पराये लोगों की प्रसन्नता का कारण हो उसे **प्रसादक** कहते हैं। इसके विपरीत लाभ को **प्रकोपक** कहते हैं। प्रकोपक लाभ भी दो प्रकार का होता है :—मंत्रियों के अनुसार कार्य करने पर भी लाभ का न होना **प्रकोपक** कहलाता है और जिस कार्य में व्यर्थ का क्षय-व्यय करके मंत्रियों को पश्चाताप करना पड़े वह लाभ **ग्राहित** कह-

**(१) गमनमात्रसाध्यत्वाद्ध्रस्वकालः ।**

**(२) मन्त्रसाध्यत्वात्तनुक्षयः ।**

**(३) भक्तमात्रव्ययत्वादल्पव्ययः ।**

**(४) तदात्ववैपुल्यान्महान् ।**

**(५) अर्थानुबन्धकत्वाद् वृद्धच्युदयः ।**

**(६) निराबाधकत्वात्कल्यः ।**

**(७) प्रशस्तोपादानाद्धर्म्यः ।**

**(८) सामवायिकानामनिर्बन्धगामित्वात्पुरोग इति ।**

**(९) तुल्ये लाभे, देशकालौ शक्त्युपायौ प्रियाप्रियौ जवाजवौ सामीप्य-विप्रकर्षौ तदात्वानुबन्धौ सारत्वसातत्ये बाहुल्यबाहुगुण्ये च विमृश्य बहुगुण-युक्तं लाभमाददीत ।**

---

लाता है। राजद्रोही मंत्रियों के अनादर से जो लाभ प्राप्त हो वह भी प्रकोपक है, क्योंकि मंत्रियों के मन में यह शंका हो जाती है कि सिद्धिलाभ करके अवश्य ही राजा उनको नष्ट कर देगा। प्रकोपक लाभ से विपरीत गुणसंपन्न लाभ प्रसादक है। यहाँ तक प्रसादक और प्रकोपक के सम्बन्ध में निरूपण किया गया।

( १ ) अल्पश्रम और अल्पकालीन लाभ से प्राप्त लाभ **ह्रस्वकाल** कहा जाता है।

( २ ) जो लाभ केवल उपजाप आदि से ही प्राप्त हो उसे **तनुक्षय** कहते हैं।

( ३ ) जो लाभ केवल भोजन-भत्ता व्यय करके ही प्राप्त हो उसे **अल्पव्यय** कहते हैं।

( ४ ) जो लाभ अत्यधिक मात्रा में तत्काल ही प्राप्त हो उसे **महान्** कहते हैं।

( ५ ) जो लाभ भविष्य में भी अत्यधिक अर्थ-प्राप्ति कराने वाला हो उसे **वृद्धच्युदय** कहते हैं।

( ६ ) जिस लाभ में आगे किसी तरह की बाधा उपस्थित न हो उसे **कल्य** कहते हैं।

( ७ ) जो लाभ प्रकाशयुद्ध आदि उपादानों से धर्मपूर्वक प्राप्त किया गया हो उसे **धर्म्य** कहते हैं।

( ८ ) जो लाभ मित्रराजाओं ने निर्बाध रूप से बिना किसी शर्त के प्राप्त किया हो उसे **पुरोग** कहते हैं।

( ९ ) यदि दोनों पक्षों में बराबर लाभ दिखाई दे तो ऐसा बहुगुणविशिष्ट लाभ प्राप्त करना चाहिए जिसमें देश, काल, शक्ति, उपाय, प्रियाप्रिय, जयाजय, समीप-दूर, तात्कालिक, भविष्य में लगातार होना, बहुमूल्य, उपयोगी, अधिक और अत्युत्तम आदि गुण विद्यमान हों।

**(१) लाभविघ्नाः—कामः कोपः साध्वसं कारुण्यं ह्रीः अनार्यभावो मानः सानुक्रोशता परलोकापेक्षा दाम्भिकत्वम् अत्याशित्वं दैन्यम् असूया हस्तगतावमानो दौरात्मिकमविश्वासो भयमनिकारः शीतोष्णवर्षाणामाक्षम्यं मङ्गलतिथिनक्षत्रेष्टित्वमिति ।**

**(२) नक्षत्रमतिपृच्छन्तं बालमर्थोऽतिवर्तते ।**
**अर्थो ह्यर्थस्य नक्षत्रं किं करिष्यन्ति तारकाः ॥**

**(३) नाधनाः प्राप्नुवन्त्यर्थान्नरा यत्नशतैरपि ।**
**अर्थैरर्थाः प्रबध्यन्ते गजाः प्रतिगजैरिव ॥**

इति अभियास्यत्कर्मणि नवमेऽधिकरणे क्षयव्ययलाभविपरिमर्शो नाम चतुर्थोऽध्यायः, आदितश्चतुर्विंशत्युत्तरशततमः ।

—: o :—

---

( १ ) **लाभ-विघ्न** : लाभ में इस प्रकार के विघ्न उपस्थित हो सकते हैं : काम, क्रोध, अप्रगलभता ( साध्वस ), करुणा, लज्जा ( ह्री ), विश्वासघात ( अनार्यभाव ) अहंकार, दयाभाव ( सानुक्रोशता ), परलोकभय ( परलोकापेक्षा ), दंभभाव अन्याय से अधिक लाभ प्राप्त करना ( अत्याशित्व ), दीनता असूया, हाथ में आयी चीज का तिरस्कार करना ( हस्तगतावमान ), दुर्व्यवहार ( दौरात्मिक ), अविश्वास, भय, शत्रु का तिरस्कार न करना ( अतिकार ), सर्दी, गर्मी तथा वर्षा आदि का सहन न करना और मंगल कार्यों के आरम्भ में तिथि, नक्षत्र आदि को देखना–ये सभी बात लाभ के लिए बाधास्वरूप हैं ।

( २ ) कार्य को आरम्भ करने में जो राजा नक्षत्र, तिथि, लग्न, मुहूर्त आदि आदि की अनुकूलता को अधिक पूछता है वह प्रमादी राजा कभी भी अपने अभीष्ट को प्राप्त नहीं कर सकता है । प्रत्येक कार्य की सिद्धि के लिए पर्याप्त धन और आवश्यक साधनों को ही नक्षत्र समझना चाहिए, इस नक्षत्र-गणना से कुछ भी बनता-बिगड़ता नहीं है ।

( ३ ) धन और आवश्यक उपायों से रहित व्यक्ति सैकड़ों यत्न करने पर भी अपने अभीष्ट फल को प्राप्त नहीं कर पाते हैं । अर्थों का ही अर्थों के साथ सम्बन्ध होता है, जैसे एक हाथी के द्वारा दूसरे हाथी को वश में किया जाता है ।

अभियास्यत्कर्म नामक नौवें अधिकरण में क्षयव्ययलाभविपरिमर्श नामक चौथा अध्याय समाप्त ।

—: o :—

## बाह्याभ्यन्तराश्चापदः

(१) सन्ध्यादीनामयथोद्देशावस्थापनमपनयः। तस्मादापदः सम्भवन्ति।

(२) बाह्योत्पत्तिरभ्यन्तरप्रतिजापा। अभ्यन्तरोत्पत्तिर्बाह्यप्रतिजापा। बाह्योत्पत्तिर्बाह्यप्रतिजापा। अभ्यन्तरोत्पत्तिरभ्यन्तरप्रतिजापा। इत्यापदः।

(३) यत्र बाह्या अभ्यन्तरानुपजपन्ति, अभ्यन्तरा वा बाह्यान् तत्रोभययोगे प्रतिजपतः सिद्धिर्विशेषवती। सुव्याजा हि प्रतिजपितारो भवन्ति, नोपजपितारः। तेषु प्रशान्तेषु नान्याऽशक्नुयुरुपजपितुमुपजपितारः। कृच्छ्रोपजापा हि बाह्यानामभ्यन्तरास्तेषामितरे वा। महतश्च प्रयत्नस्य वधः, परेषामर्थानुबन्धश्चात्मनोऽन्य इति।

---

### बाह्य और आभ्यन्तर आपत्तियाँ

( १ ) सन्धि, विग्रह आदि छः गुणों का उनके उचित स्थानों पर उपयोग न करना ही अपनय है। इस अपनय के कारण ही सारी विपत्तियाँ पैदा होती हैं।

( २ ) बाह्य और आभ्यन्तर आपत्तियाँ चार तरह से पैदा होती हैं। १. राष्ट्रमुख्य तथा अन्तपाल आदि बाह्य लोगों के द्वारा उत्पन्न और मन्त्री, पुरोहित आदि आभ्यन्तर लोगों के द्वारा प्रोत्साहित पहिली आपत्ति है, २. आभ्यन्तर लोगों के द्वारा उत्पन्न और बाह्य लोगों के द्वारा प्रोत्साहित दूसरी आपत्ति है, ३. बाह्य लोगों के द्वारा उत्पन्न और उन्हीं के द्वारा प्रोत्साहित तीसरी आपत्ति है, इसी प्रकार ४. आभ्यन्तर लोगों के द्वारा उत्पन्न और उन्हीं से प्रोत्साहित चौथी आपत्ति है।

( ३ ) जहाँ अपने देश के लोग विदेशियों से या विदेशी लोग अपने देश के लोगों से मिलकर षड्यन्त्र रचते हैं, उनमें से जो लोग षड्यन्त्र करने के लिए बहकाये गये ( प्रतिजापिता ) हैं उनको साम, दाम आदि उपायों से अपने वश में कर लेना अधिक लाभप्रद है, क्योंकि ऐसे लोगों का उद्देश्य धन लेना होता है। किन्तु षड्यन्त्र के लिए बहकाने वाले ( उपजपिता ) लोगों को सहज ही में वश में नहीं किया जा सकता है, क्योंकि उनके उद्देश्य का पता लगाना बड़ा कठिन होता है। इस प्रकार प्रतिजापित लोगों को यदि एक बार शान्त कर दिया जाय तो उपजपित फिर दूसरे लोगों को, भेद फूट जाने के भय से, उनकी जगह तैयार करने का साहस नहीं कर पाते हैं। ऐसी स्थिति में बाह्य लोगों का आभ्यन्तर लोगों से और आभ्यन्तर लोगों

**(१) अभ्यन्तरेषु प्रतिजपत्सु सामदाने प्रयुञ्जीत। स्थानमानकर्म सान्त्वम्। अनुग्रहपरिहारौ कर्मस्वायोगो वा दानम्।**

**(२) बाह्येषु प्रतिजपत्सु भेददण्डौ प्रयुञ्जीत। सत्रिणो मित्रव्यञ्जना वा बाह्यानां चारमेषां ब्रूयुः—'अयं वो राजा दूष्यव्यञ्जनैरतिसन्धातुकामो, बुध्यध्वम्' इति। दूष्येषु वादूष्यव्यञ्जनाः प्रणिहिता दूष्यान् बाह्यैर्भेदयेयुः, बाह्यान् वा दूष्यैः। दूष्याननुप्रविष्टा वा तीक्ष्णाः शस्त्ररसाभ्यां हन्युः। आहूय वा बाह्यान् घातयेयुरिति।**

**(३) यत्र बाह्या बाह्यानुपजपन्ति, अभ्यन्तरानभ्यन्तरा वाः तत्रैकान्त-**

---

का बाह्य लोगों से उपजाप करना बड़ा कठिन हो जाता है। उपजाप को स्वीकार करके यदि फिर वह फूट जाय तो उपजापिता का बड़ा भारी अनिष्ट हो जाता है, क्योंकि उसके एक महान् प्रयत्न की हत्या हो जाती है। इस तरह षड्यन्त्र का भंडाफोड़ हो जाने पर उपजाप्य व्यक्ति तो अपने स्वामी की प्रसन्नता से अभीष्ट लाभ को प्राप्त करता है और उपजापिता व्यक्ति अपने स्वामी की अप्रसन्नता से अनर्थ का भागी होता है।

( १ ) यदि मन्त्री, पुरोहित आदि आभ्यन्तर व्यक्ति ही षड्यन्त्रकारियों को प्रोत्साहित करने वाले हों तो उन्हें साम और दान उपायों से शान्त कर देना चाहिए। विशेषाधिकार स्थानों पर नियुक्त करना तथा विशेष सम्मान देना **साम** कहलाता है, और धन देना, कर्जा तथा कर आदि से मुक्त कर देना एवं विशेष कार्यों में प्राप्त सम्पूर्ण फल को दे देना **दान** कहलाता है।

( २ ) यदि षड्यन्त्र को प्रोत्साहित करने वाले लोग बाहरी हों तो उन्हें शान्त करने के लिए भेद और दण्ड का प्रयोग करना चाहिए। मित्र के छद्मवेश में रहने वाले गुप्तचर सभी उन बाहरी लोगों से राजा के गुप्त भेद का यह कह कर उद्घाटन करें कि 'आपका यह राजा राजद्रोहियों के द्वारा आपको मध्यस्थ बनाकर धोखा देना चाहता है। इस रहस्य पर ध्यान देते हुए आप कभी भी इस कार्य में कदम न रखें।' अथवा राजद्रोहियों के गुप्त वेष में रहकर विजिगीषु के गुप्तचर भीतरी राजद्रोहियों से बाहरी लोगों का और बाहरी लोगों से भीतरी राजद्रोहियों से का भेद डाल दें। अथवा तीक्ष्ण गुप्तचर राजद्रोहियों के बीच में घुसकर शस्त्र या विष के द्वारा उनका वध कर डाले, अथवा किसी बहाने से बाह्य को अलग ले जा कर चुपचाप उसका वध कर दिया जाय।

( ३ ) यदि बाहरी, बाहरी लोगों के साथ और आभ्यन्तर, आभ्यन्तर लोगों के साथ षड्यन्त्र रचें और वहाँ यदि समानजातीय षड्यन्त्रकारी हों तो उनमें जो उपजा-

**योग उपजपितुः सिद्धिर्विशेषवती । दोषशुद्धौ हि दूष्या न विद्यन्ते । दूष्यशुद्धौ हि दोषः पुनरन्यान् दूषयति ।**

**(१) तस्माद्बाह्येषूपजपत्सु भेददण्डौ प्रयुञ्जीत । सत्रिणो मित्रव्यञ्जना वा ब्रूयुः–'अयं वो राजा स्वयमादातुकामः, विगृहीताः स्थ अनेन राज्ञा, बुध्यध्वम्' इति । प्रतिजपितुर्वा ततो दूतदण्डाननुप्रविष्टास्तीक्ष्णाः शस्त्ररसादिभिरेषां छिद्रेषु प्रहरेयुः । ततः सत्रिणः प्रतिजपितारमभिशंसेयुः ।**

**(२) अभ्यन्तरानभ्यन्तरेषूपजपत्सु यथार्हमुपायं प्रयुञ्जीत । तुष्टलिङ्गमतुष्टं विपरीतं वा साम प्रयुञ्जीत ।**

**(३) शौचसामर्थ्यापदेशेन व्यसनाभ्युदयापेक्षणेन वा प्रतिपूजनमिति दानम् ।**

**(४) मित्रव्यञ्जनो वा ब्रूयादेतान्–'चित्तज्ञानार्थमुपधास्यति वो राजा,**

---

पिता हो उसे अपने पक्ष में कर लेना लाभप्रद होता है, क्योंकि उसके न रहने पर षड्यन्त्र आगे नहीं बढ़ पाता है । दूष्य व्यक्तियों को यदि शान्त किया जाय तो उनके दोष दूसरे अनेक लोगों को राजद्रोही बनाने में सहायक होते हैं ।

( १ ) इसलिए षड्यंत्रकारी बाह्य लोगों को भेद और दण्ड के द्वारा दबाना चाहिए । विद्रोहियों के मित्रवेष में रहने वाले गुप्तचर उनसे कहें 'आपको समझ लेना चाहिए कि यह राजा आप लोगों को दूसरे लोगों के द्वारा गिरफ्तार कराना चाहता है। इसलिए आप लोगों को उचित है कि इस राजा से विग्रह कर दें ।' अथवा षड्यन्त्रकारी के पास किसी बहाने से जाकर छद्मवेष गुप्तचर शस्त्र या विष आदि के द्वारा उसको मार डालें । उसके बाद गुप्तचर इस बात का प्रचार करे कि उपजापिताओं को प्रतिजापिताओं ने मारा है, जिससे कि उनमें परस्पर अविश्वास पैदा हो जाय ।

( २ ) इसी प्रकार भीतरी लोगों के साथ षड्यंत्र रचनेवाले भीतरी लोगों में भी आवश्यकतानुसार साम आदि उपायों का प्रयोग किया जाय । अवस्था को देखते हुए उन पर संतोष के सूचक, पर वस्तुतः असंतोषप्रद साम का अथवा असंतोष के सूचक, पर वस्तुतः संतोषजनक साम का प्रयोग किया जाय ।

( ३ ) शौच या सामर्थ्य के बहाने, तथा बंधु-वियोग आदि के दुःखमय अवसर पर या पुत्रोत्सव आदि के सुखमय अवसर पर वस्त्र तथा आभरण के द्वारा किया गया सत्कार ही दान के प्रयोग का तरीका कहलाता है ।

( ४ ) अथवा बनावटी मित्र बने हुए खुफिया लोग उन आभ्यंतर षड्यंत्रकारियों से कहें 'तुम्हारे हृदयस्थ भावों को जानने के लिए धन देकर राजा तुम्हारी परीक्षा

**तदस्याख्यातव्यम्' इति । परस्पराद्वा भेदयेदेनान्–असौ चासौ च वो राजन्येवमुपजपति । इति भेदः ।**

**(१) दाण्डकर्मिकवच्च दण्डः ।**

**(२) एतासां चतसृणामापदामभ्यन्तरामेव पूर्वं साधयेत् । 'अहिभयादभ्यन्तरकोपो बाह्यकोपात्पापीयान्' इत्युक्तं पुरस्तात् ।**

**(३) पूर्वां पूर्वां विजानीयाल्लघ्वीमापदमापदाम् ।**
**उत्थितां बलवद्भ्यो वा गुर्वीं लघ्वीं विपर्यये ।।**

इति अभियास्यत्कर्मणि नवमेऽधिकरणे बाह्याभ्यन्तराश्चापदो नाम पञ्चमोऽध्यायः; आदितः पञ्चविंशत्युत्तरशततमः ।

—: ० :—

---

लेगा । इसलिए तुम्हें अपने मन की बात सच-सच कह देनी चाहिए ।' इस प्रकार कह देने से वे डर जायेंगे । अथवा उनकी आपस में यह कहकर कि 'अमुक-अमुक व्यक्ति राजा से तुम्हारी शिकायत कर रहा था' फूट डलवा दे ।

( १ ) ऐसे प्रसङ्गों में **दाण्डकर्मिक** प्रकरण में निर्दिष्ट उपांशुदण्ड का प्रयोग करना चाहिए ।

( २ ) उक्त चारों प्रकार की आपत्तियों में सर्वप्रथम आभ्यन्तर आपत्ति का प्रतीकार करना चाहिए; क्योंकि वह अधिक अनर्थकारी होती है । पहले भी इस बात का संकेत किया जा चुका है कि बाह्यकोप की अपेक्षा आभ्यन्तर कोप घर के साँप की तरह अधिक भयानक होता है ।

( ३ ) पूर्वोक्त आपत्तियों में क्रमशः पूर्व-पूर्व की आपत्ति अपेक्षया लघु होती है; फिर भी जिस आपत्ति के पीछे बलवान् का हाथ हो उसका प्रतीकार पहिले करना चाहिए और इसी प्रकार निर्बल शत्रु के द्वारा पैदा की गयी सबसे बड़ी आपत्ति को लघु ही समझना चाहिए ।

अभियास्यत्कर्म नामक नौवें अधिकरण में बाह्याभ्यन्तरापद नामक पाँचवाँ अध्याय समाप्त ।

—: ० :—

# दूष्यशत्रुसंयुक्ताः

**(१) दूष्येभ्यः शत्रुभ्यश्च द्विविधाः शुद्धाः ।**

**(२) दूष्यशुद्धायां पौरेषु जानपदेषु वा दण्डवर्जानुपायान् प्रयुञ्जीत । दण्डो महाजने क्षेप्तुमशक्यः, क्षिप्तो वा तं चार्थं न कुर्यात् । अन्यं चानर्थमुत्पादयेत् । मुख्येषु त्वेषां दाण्डकर्मिकवच्चेष्टेतेति ।**

**(३) शत्रुशुद्धायां यतः शत्रुः प्रधानः कार्यो वा, ततः सामादिभिः सिद्धिं लिप्सेत ।**

**(४) स्वामिन्यायत्ता प्रधानसिद्धिः, मन्त्रिष्वायत्तायत्तसिद्धिः, उभयायत्ता प्रधानायत्तसिद्धिः ।**

## राजद्रोही और शत्रुजन्य आपत्तियाँ

( १ ) राजद्रोहियों और शत्रुओं द्वारा उत्पन्न दो प्रकार की आपत्तियाँ हैं एक दूष्यशुद्धा और दूसरी शत्रुशुद्धा ।

( २ ) दूष्यशुद्धा आपत्तियों के प्रतीकार के लिए नगरनिवासियों को तथा जनपद निवासियों को, राजद्रोहियों पर, दण्ड को छोड़ कर बाकी सभी साम, दान, भेद आदि उपायों का प्रयोग करना चाहिए; क्योंकि बड़े आदमियों पर सहसा दण्ड का प्रयोग कर देना असंभव हुआ करता है । यदि उन पर दण्ड का प्रयोग किया भी जाय तो उससे अभीष्ट की सिद्धि नहीं हो पाती, वरन् उससे कुछ दूसरा ही अनर्थ हो जाता है । इस प्रकार यदि साम आदि उपायों द्वारा उन प्रमुख राजद्रोहियों को शांत न किया जा सके तो उन पर दाण्डकर्मिक प्रकरण में निर्दिष्ट नियमों के अनुसार उपांशु-दण्ड का प्रयोग किया जाय ।

( ३ ) शत्रुशुद्धा अर्थात् शत्रुद्वारा उत्पन्न की गई किसी भी प्रकारकी आपत्ति को दूर करने के लिए उन सामंतों पर साम आदि उपायों का प्रयोग किया जाय, शत्रु-मंत्री या अमात्य आदि जिनके अधीन हों ।

( ४ ) मंत्री द्वारा उत्पन्न की गई आपत्ति का प्रतीकार स्वयं राजा को ही करना चाहिए । आयत्तसिद्धि अर्थात् कार्य शब्द से कहे गये अमात्य आदि की आपत्ति का प्रतीकार मंत्रियों द्वारा की जानी चाहिए । इसी प्रकार मंत्री और अमात्य, दोनों के द्वारा की गई आपत्ति का प्रतीकार राजा और मंत्री को करना चाहिए ।

**(१) दूष्यादूष्याणामामिश्रितत्वादामिश्रा। आमिश्रायामदूष्यतः सिद्धिः। आलम्बनाभावे ह्यालम्बिता न विद्यते। मित्रामित्राणामेकीभावात्परमिश्रा। परमिश्रायां मित्रतः सिद्धिः। सुकरो हि मित्रेण सन्धिर्नामित्रेणेति।**

**(२) मित्रं चेन्न सन्धिमिच्छेदभीक्ष्णमुपजपेत्, ततः सत्रिभिरमित्राद्भेदयित्वा मित्रं लभेत। मित्रामित्रसङ्घस्य वा योऽन्तस्थायी तं लभेत। अन्तस्थायिनि लब्धे मध्यस्थायिनो भिद्यन्ते। मध्यस्थायिनं वा लभेत। मध्यस्थायिनि वा लब्धे नान्तस्थायिनः संहन्यन्ते। यथा चैषामाश्रयभेदस्तानुपायान्प्रयुञ्जीत।**

**(३) धार्मिकं जातिकुलश्रुतवृत्तस्तवेन सम्बन्धेन पूर्वेषां त्रैकाल्योपकारानपकाराभ्यां वा सान्त्वयेत्।**

**(४) निवृत्तोत्साहं विग्रहश्रान्तं प्रतिहतोपायं क्षयव्ययाभ्यां प्रवासेन**

---

(१) दूष्य और अदूष्य, दोनों के द्वारा उत्पन्न की गई आपत्ति को **आमिश्र** या **मिश्रित** कहते हैं। आमिश्र आपत्ति का प्रतीकार करने के लिए अदूष्य को ही साम आदि उपायों के द्वारा अनुकूल बनाना चाहिए, क्योंकि अदूष्यों ( राजभक्तों ) का सहारा लेकर ही दूष्य ( राजद्रोही ) आपत्तिजनक होता है। उनका सहारा न पाकर दूष्य अपने आप शांत हो जाता है। मित्र और शत्रु, इन दोनों के द्वारा उत्पन्न की गई आपत्ति को **परमिश्र** या **शत्रुमिश्र** कहते हैं। परमिश्र आपत्ति में शत्रु के द्वारा ही सिद्धि प्राप्त की जा सकती है; क्योंकि मित्र के साथ संधि हो जाना सरल होता है और शत्रु के साथ इस तरह संधि होना कठिन रहता है।

(२) मित्र यदि संधि करने के लिए राजी न हो तो बार-बार उसे शत्रु से भिन्न करने का उपाय करना चाहिए। सत्री आदि गुप्तचरों के द्वारा भेद डलवाकर मित्र को अपनी ओर करना चाहिए। मित्र और शत्रु संधि के अंत में रहने वाले सामंत को अपनी ओर मिलाना चाहिए; क्योंकि अंत में रहने वाले सामंत के वश में हो जाने पर मध्यस्थ राजा अपने आप फूट जाते हैं। अथवा मध्यस्थ सामंत को ही अपने वश में कर लेना चाहिए; क्योंकि उसको वश में कर लेने पर अंत में रहने वाले राजा आपस में नहीं मिल पाते हैं। अथवा जिस उपाय से भी शत्रु और मित्र अपने शक्तिशाली आश्रयदाता से भिन्न रह सकें वैसा उपाय करना चाहिए।

(३) जाति, कुल, श्रुत ( शास्त्र-ज्ञान ) और वृत्त ( सदाचार ) आदि के स्तुति वचनों से तथा उनके कुलवृद्धों का सदा उपकार या अनपकार के द्वारा धार्मिक राजा को शांत करना चाहिए।

(४) उत्साहहीन, युद्धविमुख, निष्फल उपाय, क्षय, व्यय और प्रवास से संतप्त,

**चोपतप्तं शौचेनान्यं लिप्समानमन्यस्माद्वा शङ्कमानं मैत्रीप्रधानं वा कल्याणबुद्धिं साम्ना साधयेत् ।**

**(१) लुब्धं क्षीणं वा तपस्विमुख्यावस्थापनापूर्वं दानेन साधयेत् ।**

**(२) तत् पञ्चविधम्—देयविसर्गो, गृहीतानुवर्तनम्, आत्तप्रतिदानम्, स्वद्रव्यदानमपूर्वम्, परस्वेषु स्वयंग्राहदानं चेति दानकर्म ।**

**(३) परस्परद्वेषवैरभूमिहरणशङ्कितमतोऽन्यतमेन भेदयेत् । भीरुं वा प्रतिघातेन, 'कृतसन्धिरेष त्वयि कर्म करिष्यति, मित्रमस्य निसृष्टं; सन्धौ वा नाभ्यन्तर' इति ।**

**(४) यस्य वा स्वदेशादन्यदेशाद्वा पण्यानि पण्यागारतयागच्छेयुः, तान्यस्य 'यातव्याल्लब्धानि' इति सत्रिणश्चारयेयुः । बहुलीभूते शासनमभिव्यक्तेन प्रेषयेत्—'एतत्ते पण्यं, पण्यागारं वा मया ते प्रेषितं, सामवायि-**

---

ईमानदारी से किसी दूसरे राजा को अपना मित्र बनाने को इच्छुक, दूसरे पर विश्वास न करने वाले और सबके साथ मित्र-भाव का व्यवहार करने वाले कल्याणबुद्धि राजा को साम उपाय के द्वारा ही शांत करना चाहिए ।

( १ ) लोभी अथवा निर्धन राजा को तपस्वी और अन्य प्रतिष्ठित व्यक्तियों को जामिन बनाकर दान के द्वारा वश में करना चाहिए ।

( २ ) वह दान पाँच प्रकार का होता है १. देयविसर्ग ( ग्रहण की हुई भूमि में ब्राह्मण आदि के लिए छोड़ा गया कुछ भाग ) २. गृहीतानुवर्तन ( पूर्वजों द्वारा गृहीत भूमियोग के लिए प्रतिषेध न करना ) ३. आत्त प्रतिदान ( गृहीत भूमि को फिर वापस दे देना ) ४. नये सिरे से स्वयं ही देना और ५. शत्रुदेश से लूटे हुए धन को लूटने वालों को ही दे देना ।

( ३ ) जो राजा आपसी द्वेष, वैर रखता हो तथा जिसके प्रति भूमि का अपहरण करने की आशंका हो उसे इन्हीं द्वेष्य आदि किसी एक के द्वारा भिन्न कर देना चाहिए। भीरु राजा को प्राणघात का भय देकर भिन्न कर देना चाहिए; अथवा यह कह कर उसको अलग कर देना चाहिए कि इस समय तो बलवान् राजा तुमसे संधि कर लेगा पर बाद में तुम्हीं पर आक्रमण कर देगा । क्योंकि संधि करने के लिए विजिगीषु के पास भी उसने अपना आदमी भेज दिया है । अथवा यह कह कर अलग कर दे कि शत्रु तथा मित्र के साथ संधि करते समय उसने तुम्हारा बहिष्कार कर दिया था ।'

( ४ ) अपने देश या शत्रु के देश से बाजार में बिकने के लिए यदि कोई चीज आये तो सत्री गुप्तचर उसके संबंध में यह अफवाह उड़ा दें कि यह सामान छिपे तौर पर संधि करने की इच्छा रखने वाले यातव्य से आया है । जब यह अफवाह सर्वत्र फैल जाय तब वध के लिए निश्चित पुरुष ( अभिव्यक्त ) के हाथ एक जाली पत्र

**केषु विक्रमस्व, अपगच्छ वा, ततः पणशेषमवाप्स्यसि' इति। ततः सत्रिणः परेषु ग्राहयेयुरेतदरिप्रदत्तमिति।**

**(१) शत्रुप्रख्यातं वा पण्यमविज्ञातं विजिगीषुं गच्छेत्। तदस्य वैदेहकव्यञ्जनाः शत्रुमुख्येषु विक्रीणीरन्। ततः सत्रिणः परेषु ग्राहयेयुः–'एतत्पण्यमरिप्रदत्तम्' इति।**

**(२) महापराधानर्थमानाभ्यामुपगृह्य वा शस्त्ररसाग्निभिरमित्रे प्रणिदध्यात्। अथैकममात्यं निष्पातयेत्। तस्य पुत्रदारमुपगृह्य रात्रौ हतमिति ख्यापयेत्। अथामात्यः शत्रोस्तानेकैकशः प्ररूपयेत्। ते चेद्यथोक्तं कुर्युर्न चैनान्ग्राहयेत्। अशक्तिमतो वा ग्राहयेत्। आप्तभावोपगतो मुख्यादस्या-**

---

लिखकर भेजना चाहिए। उस पत्र का आशय हो 'यह थोड़ा-बहुत सामान जो मैंने आपके लिए भेजा है और साथ ही बाजार में बिकने योग्य बड़ा सामान भी भेज रहा हूँ। मेरे शत्रु की सहायता करने वाले राजाओं पर तुम आक्रमण करो अथवा उन्हें छोड़कर मेरी सहायता के लिए तैयार बने रहो। शर्तनामे का बाकी धन तुम्हें 'चढ़ाई कर देने के बाद मिलेगा।' उसके बाद सत्री गुप्तचर अन्य सामवायिक राजाओं को यह विश्वास दिला दें कि यह पत्र उनके शत्रु द्वारा ही भेजा गया है।

( १ ) अथवा सामवायिक राजाओं से किसी एक के साथ संबंध जोड़कर, रत्न आदि बाजारू सामान बिना किसी के जाने हुए किसी तरह विजिगीषु के पास पहुँचा दिया जाय। उसके बाद व्यापारियों के वेष में रहने वाले गुप्तचर सामवायिक राजाओं में से किसी एक के हाथ उसको बेच दे; उसके बाद सत्री गुप्तचर दूसरे सामवायिक राजाओं के यहाँ जाकर पुलिस द्वारा उस सामान को बरामद करा दे और तब यह सिद्ध करे कि 'यह सामान आपके शत्रु द्वारा यहाँ अमुक-अमुक व्यक्तियों के पास बेचने के लिए भेजा गया है।' इसका परिणाम यह होगा कि सामवायिक राजाओं को यह विश्वास हो जायेगा कि हम में से कोई राजा विजिगीषु के साथ मिला हुआ है। इस प्रकार उनमें परस्पर फूट पड़ जायेगी।

( २ ) विजिगीषु को चाहिए कि अपने महापराधी अमात्य आदि को भूमि, हिरण्य आदि धन तथा मान-संमान देकर अपने वश में करे और फिर उन्हें शत्रु पर शस्त्र, रस आदि के द्वारा आक्रमण करने के लिए नियुक्त कर दे। पहिले इस प्रकार के महापराधी एक ही अमात्य को शत्रु के यहाँ भेजे। उसके चले जाने के बाद उसके स्त्री-पुत्रों को किसी एकांत स्थान में छिपा कर यह अफवाह फैला दे कि राजा ने उनको रात में मरवा डाला है। जब उस अमात्य पर शत्रु का पूरा विश्वास जम जाय तो वह, विजिगीषु के यहाँ से आये हुए अन्य अमात्यों का एक-एक करके राजा से यह परिचय करा दे कि ये लोग विजिगीषु के द्वेष के कारण निकल भागे हैं और

**त्मानं रक्षणीयं कथयेत्; अथामित्रशासनं मुख्यायोपघाताय प्रेषितमुभय-वेतनो ग्राहयेत् ।**

**(१) उत्साहशक्तिमतो वा प्रेषयेत्—'अमुष्य राज्यं गृहाण यथास्थितो न सन्धिः' इति । ततः सत्रिणः परेषु ग्राहयेयुः ।**

**(२) एकस्य स्कन्धावारं विवधमासारं वा घातयेयुः, इतरेषु मैत्रीं ब्रुवाणाः । तं सत्रिणः 'त्वमेतेषां घातयितव्यः' इत्युपजपेयुः ।**

**(३) यस्य वा प्रवीरपुरुषो हस्ती हयो वा म्रियेत, गूढपुरुषैर्हन्येत ह्रियेत वा, तं सत्रिणः परस्परोपहतं ब्रूयुः । ततः शासनमभिशस्तस्य प्रेषयेत्—'भूयः कुरु ततः पणशेषमवाप्स्यसि' इति । तदुभयवेतना ग्राहयेयुः ।**

---

आपकी सेवा में रहने योग्य हैं । यदि वे अमात्य आदि विजिगीषु की आज्ञानुसार शस्त्र, विष आदि का ठीक-ठीक प्रयोग कर दें तो उनका भेद गुप्त बना रहने दे और यदि वे शत्रु को मारने में अपनी असमर्थता प्रकट करें तो उनका भेद खोलकर शत्रु द्वारा ही उन्हें गिरफ्तार करा दे । विजिगीषु द्वारा निकाला हुआ वह अमात्य सामवायिक राजाओं के प्रमुख से, यह कह कर भेद डाले कि 'आपको सामवायिक राजाओं के प्रमुखों से अपनी रक्षा करनी चाहिए; क्योंकि वे लोग विश्वास योग्य नहीं हैं ।' उसके बाद साधारण सामवायिक राजाओं के उच्छेद के लिए शत्रु द्वारा भेजी हुई पूर्व लिखित कूट आज्ञा को उभयवेतन भोगी व्यक्तियों द्वारा प्रमुख सामवायिक राजाओं के पास पहुँचा दे ।

( १ ) अथवा किसी उत्साही, शक्ति-संपन्न एक ही सामवायिक के पास उस कूट आज्ञा को भिजवाये । उस आज्ञापत्र का मसविदा इस प्रकार होना चाहिए 'आप उस मुख्य सामवायिक राजा के राज्य को ले लें, पूर्व निश्चित संधि अब स्वीकार नहीं की जा सकती है ।' इसके बाद सत्री गुप्तचर दूसरे सामवायिकों को यह सूचित कर दे कि अमुक मुख्य सामवायिक के पास इस आशय का एक पत्र आया है ।

( २ ) अथवा सत्री गुप्तचर किसी एक सामवायिक राजा की छावनी ( स्कंधावार ), आयात-निर्यात के मार्ग तथा उसके मित्रबल को नष्ट कर दें । दूसरे सामवायिक राजाओं से वे अपनी मित्रता बनाये रखें, जिससे कि उनको गुप्त रहस्य का पता न लगे । उसके बाद वह सत्री गुप्तचर उस सामवायिक राजा की दूसरे सामवायिक राजाओं से यह कह कर फूट डाल दे कि 'ये सामवायिक राजा उसे मारना चाहते हैं । ऐसी अवस्था में उनके साथ तुम्हारी संधि कैसे संभव है ?'

( ३ ) अथवा सामवायिक राजाओं में किसी राजा का कोई वीर सैनिक, हाथी या घोड़ा मर जाय या गुप्तचरों द्वारा मार दिया जाय अथवा अपहरण कर लिया जाय, तो सत्री गुप्तचर उसको किसी दूसरे सामवायिक द्वारा मारा गया बतायें ।

**(१) भिन्नेष्वन्यतमं लभेत ।**

**(२) तेन सेनापतिकुमारदण्डचारिणो व्याख्याताः ।**

**(३) साङ्घिकं च भेदं प्रयुञ्जीत । इति भेदकर्म ।**

**(४) तीक्ष्णमुत्साहिनं व्यसनिनं स्थितशत्रुं वा गूढपुरुषाः शस्त्राग्निरसादिभिः साधयेयुः । सौकर्यतो वा तेषामन्यतमः । तीक्ष्णो ह्येकः शस्त्ररसाग्निभिः साधयेत् । अयं सर्वसन्दोहकर्म विशिष्टं वा करोति । इत्युपायचतुर्वर्गः ।**

**(५) पूर्वः पूर्वश्चास्य लघिष्ठः । सान्त्वमेकगुणम् । दानं द्विगुणं सान्त्वपूर्वम् । भेदस्त्रिगुणः सान्त्वदानपूर्वः । दण्डश्चतुर्गुणः सान्त्वदानभेदपूर्वः ।**

---

मारनेवालों में जिस सामवायिक राजा का नाम लिया जाय उसके पास एक बनावटी पत्र भेजा जाय, जिसका मजमून इस प्रकार हो 'इसी प्रकार तुम दूसरे सामवायिक राजाओं का नुकसान करते रहो । उसके बाद तुम्हें बाकी धन दे दिया जायेगा ।' उस पत्र को उभयवेतनभोगी गुप्तचर सामवायिक राजाओं तक पहुँचा दें । इस प्रकार सामवायिक राजाओं के बीच फूट डालने का यत्न किया जाय ।

( १ ) इस प्रकार जब सामवायिक राजाओं में फूट पड़ जाय तो उनमें से किसी एक राजा को अपने वश में कर लेना चाहिए ।

( २ ) भेद डालने के लिए जो उपाय सामवायिक राजाओं के संबंध में ऊपर बताये गये है वही उपाय सेनापति, युवराज तथा अन्य सैनिक अधिकारियों के लिए भी उपयोग में लाने चाहिए ।

( ३ ) **संघवृत्त** प्रकरण में निरूपित उपायों का आवश्यकतानुसार, यहाँ भी प्रयोग किया जा सकता है । यहाँ तक भेद-कार्यों का निरूपण किया गया ।

( ४ ) असहनशील, उत्साही, व्यसनी तथा दुर्ग-संपन्न शक्तिशाली शत्रु को गुप्तचर मिलकर शस्त्र, अग्नि तथा विष के प्रयोगों द्वारा मार डालें । अथवा उनमें से कोई एक ही समर्थ गुप्तचर ऐसे शत्रुओं को मार डाले; क्योंकि एक ही गुप्तचर पूर्वोक्त अनेक प्रकार के उपायों द्वारा सब प्रकार के शत्रुओं को अकेले ही मार सकता है। इस प्रकार का एक गुप्तचर वह कार्य कर सकता है, जो अनेक गुप्तचर मिलकर भी नहीं कर पाते हैं । यहाँ तक साम, दान, भेद और दण्ड, इस चतुर्वर्ग का निरूपण किया गया ।

( ५ ) उक्त चारों उपायों में पूर्व-पूर्व उपाय लघु होते हैं । साम में एक ही गुण होता है; दान में दो गुण होते हैं क्योंकि 'सान्त्वना' और 'देना', इसके दो अवयव हैं । भेद में तीन गुण होते हैं; क्योंकि 'साम', 'दान' और 'भेद', उसके तीन अंग हैं। इसी प्रकार दण्ड के चार अवयव होते हैं; तीन पहिले के और एक वह स्वयं ।

**(१) इत्यभियुञ्जानेषूक्तम् । स्वभूमिष्ठेषु तु त एवोपायाः । विशेषस्तु । स्वभूमिष्ठानामन्यतमस्य पण्यागारैरभिज्ञातान्दूतमुख्यानभीक्ष्णं प्रेषयेत्, त एनं सन्धौ परहिंसायां वा योजयेयुः, अप्रतिपद्यमानं कृतो नः सन्धिः इत्यावेदयेयुः । तमितरमेषामुभयवेतनाः सङ्क्रामयेयुः—अयं वो राजा दुष्टः इति ।**

**(२) यस्य वा यस्माद्भयं वैरं द्वेषो वा, तं तस्माद्भेदयेयुः—'अयं ते शत्रुणा सन्धत्ते, पुरा त्वामतिसन्धत्ते, क्षिप्रतरं सन्धीयस्व, निग्रहे चास्य प्रयतस्व' इति ।**

**(३) आवाहविवाहाभ्यां वा कृत्वा संयोगमसंयुक्तान्भेदयेत् ।**

**(४) सामन्ताटविकतत्कुलीनावरुद्धैश्चैषां राज्यं निघातयेत् । सार्थव्रजाटवीर्वा । दण्डं वाभिसृतम् । परस्परापाश्रयाश्चैषां जातिसङ्घाश्छिद्रेषु प्रहरेयुः । गूढाश्चाग्निरसशस्त्रेण ।**

---

( १ ) आक्रमणकारी शत्रु तथा मित्र आदि सामवायिकों को भी इन्हीं उपायों के द्वारा शांत किया जा सकता है । इन पर तभी उक्त उपायों का प्रयोग किया जाय, जब तक कि आक्रमण के लिए प्रस्थान न करके अपनी ही भूमि में स्थित हों । उनके संबंध में विशेष बात यह है कि आक्रमण करने से पूर्व जब वे अपनी ही भूमि में वर्तमान हों उस समय अच्छी जानकारी रखनेवाले दूत-मुख्य उनमें से किसी एक के पास मणि-मुक्ता लेकर जायँ और उसको अपने साथ सन्धि करने या दूसरे को मारने के लिए राजी करें । यदि वह सन्धि करना स्वीकार न भी करे तब भी दूतमुख्य यह अफवाह फैला दे कि अमुक राजा ने हमारे साथ सन्धि कर ली है । उस अफवाह को उभयवेतनभोगी व्यक्ति दूसरे मित्र राजाओं अथवा शत्रु-राजाओं तक पहुँचा दें; और कहें; कि 'अमुक राजा बड़ा दुष्ट है । उसने आप से कुछ न कह कर विजिगीषु राजा से चुपचाप सन्धि कर ली है ।'

( २ ) इस प्रकार गुप्तचर जिस राजा से शत्रुता, द्वेष या भय की आशंका रखते हों उसको अन्य राजाओं से भिन्न कर दे; बल्कि उनसे यह कहे कि 'देखो, यह राजा आपके शत्रु से संधि करता है । बाद में यह तुम्हें भी दबा लेगा । इसलिए आप जल्दी से अपने शत्रु विजिगीषु से संधि कर लें और इस अपने धोखेबाज मित्र को काबू में करने का प्रबंध करें ।

( ३ ) अवाह ( कन्या स्वीकार करना ) अथवा विवाह ( कन्यादान करना ) आदि के द्वारा संबंध जोड़कर ऐसे संबंधरहित दूसरे राजाओं में फूट उत्पन्न करना चाहिए ।

( ४ ) विजिगीषु को चाहिए कि वह सामंत, आटविक या उनके मित्रों अथवा उनके शत्रुओं के कुल में पैदा हुए अवरुद्ध राजकुमारों के द्वारा उनके राज्य को हानि पहुँचाने का यत्न सोचे । अथवा उनके व्यापार-भार को ढोने वाले पशुओं, दूसरे गाय-

**(१) वितंसगिलवच्चारीन् योगैराचरितैः शठः ।**
**घातयेत्परमिश्रायां विश्वासेनामिषेण च ॥**

इति अभियास्यत्कर्मणि नवमेऽधिकरणे दूष्यशत्रुसंयुक्ताः नाम षष्ठोऽध्यायः;
आदित सप्तविंशत्युत्तरशततमः ।

—: ० :—

भैंसों तथा द्रव्यवनों या हस्तिवनों को नष्ट-भ्रष्ट करवा दे; अथवा रक्षा करने वाली सेना को ही नष्ट करवा दे; और परस्पर अलग किये गये जातिसंघ इन मित्र या शत्रु के प्रमादस्थानों पर बराबर प्रहार करते रहें। इसी प्रकार अन्य तीक्ष्ण, रसद आदि गुप्तचर भी अग्नि, विष आदि के द्वारा प्रहार करते रहें।

( १ ) परमिश्र ( मित्र और शत्रु द्वारा उत्पन्न की गई आपत्ति में ), शठ, विजिगीषु, वितंस ( पक्षियों के ठगने के लिए चित्र-विचित्र रंगोंवाला शरीर को ढकने वाला वस्त्र ), और गिल ( खाने योग्य मांस ) आदि के समान प्रयुक्त किए गए कपट उपायों के द्वारा, अपने ऊपर विश्वास पैदा कराके तथा कुछ सारवस्तु देकर, अपने शत्रुओं को वश में करना चाहिए।

इति अभियास्यत्कर्म नामक नौवें अधिकरण में दूष्यशत्रुसंयुक्त नामक
छठा अध्याय समाप्त

—: ० :—

# अर्थानर्थसंशययुक्ताः तासामुपाय-विकल्पजाः सिद्धयश्च

(१) कामादिरुत्सेकः स्वाः प्रकृतीः कोपयति, अपनयो बाह्याः। तदुभयमासुरी वृत्तिः। स्वजनविकारः कोपः परवृद्धिहेतुष्वापदर्थोऽनर्थः संशय इति।

(२) योऽर्थः शत्रुवृद्धिमप्राप्तः करोति, प्राप्तः प्रत्यादेयः परेषां भवति, प्राप्यमाणो वा क्षयव्ययोदयो भवति, स भवत्यापदर्थः यथा—सामन्तानामामिषभूतः, सामन्तव्यसनजो लाभः, शत्रुप्रार्थितो वा स्वभावाधिगम्यो लाभः, पश्चात्कोपेन पार्ष्णिग्राहेण वा विगृहीतः पुरस्ताल्लाभः; मित्रोच्छेदेन सन्धिव्यतिक्रमेण वा मण्डलविरुद्धो लाभ इत्यापदर्थः।

---

## अर्थ, अनर्थ तथा संशय संबंधी आपत्तियाँ और उनके प्रतीकार के उपायों से प्राप्त होने वाली सिद्धियाँ

( १ ) काम, क्रोधादि दोषों के बढ़ जाने पर राजा की अपनी ही प्रकृतियाँ कुपित हो जाया करती हैं। अपनय अर्थात् नीतिभ्रष्ट हो जाने से परराष्ट्र संबंधी बाह्य प्रकृतियाँ कुपित हो जाती हैं। इसलिए कामक्रोधादि दोषों और अपनय, इन दोनों को आसुरी वृत्ति कहा गया है। अपनी प्रकृतियों का कोप शत्रु की उन्नति के अवसर पर आपत्ति का रूप धारण कर लेता है, जो कि अर्थ, अनर्थ और संशय, इन तीनों रूपों में प्रकट होता है।

( २ ) जो अर्थ अपनी लापरवाही से गँवाया हुआ शत्रु की वृद्धि करता है; जो अर्थ अपने हाथ में आ जाने पर भी दूसरों को लौटाया जाता है; और इसी प्रकार जो अर्थ प्राप्त होने पर भी क्षय-व्यय करने वाला होता है, उसे **आपदर्थ**; अर्थात्, अर्थरूप आपत्ति कहते हैं। जैसे : अनेक सामंतों द्वारा भोगी जाने योग्य वस्तु एक ही सामंत को मिल जाय, तो वह अन्य सामंतों के द्वारा मिलकर लौटाये जाने के कारण आपत्तिजनक हो जाती है, इसी प्रकार व्यसन-पीड़ित सामन्त से छीना हुआ लाभ, स्वभावतः प्राप्त होने योग्य शत्रु से माँगा हुआ लाभ, पश्चात्कोप तथा पार्ष्णिग्राह के द्वारा बाधा पहुँचाये जाने पर यातव्य राजा से प्राप्त हुआ लाभ, मित्र का उच्छेदन करने तथा संधि को उल्लंघन करने के कारण, राजमण्डल की इच्छा के विरुद्ध प्राप्त हुआ लाभ—ये सब ही आपदर्थ हैं।

(१) स्वतः परतो वा भयोत्पत्तिरित्यनर्थः।

(२) तयोः 'अर्थो न वा' इति, 'अनर्थो न वा' इति, 'अर्थोऽनर्थः' इति, 'अनर्थः अर्थः' इति संशयः।

(३) शत्रुमित्रमुत्साहयितुमर्थो न वेति संशयः। शत्रुबलमर्थमानाभ्यामावाहयितुमनर्थो न वेति संशयः। बलवत्सामन्तानां भूमिमादातुमर्थोऽनर्थः इति संशयः। ज्यायसा सम्भूययानमनर्थोऽर्थः इति संशयः।

(४) तेषामर्थसंशयमुगच्छेत्।

(५) अर्थोऽर्थानुबन्धः, अर्थो निरनुबन्धः अर्थोऽनर्थानुबन्धः, अनर्थोऽर्थानुबन्धः, अनर्थो निरनुबन्धः, अनर्थोऽनर्थानुबन्ध इत्यनुबन्धषड्वर्गः।

(६) शत्रुमुत्पाट्य पार्ष्णिग्राहादानमर्थोऽर्थानुबन्धः।

(७) उदासीनस्य दण्डानुग्रहः फलेन अर्थो निरनुबन्धः।

---

( १ ) स्वयं या दूसरे किसी से प्राप्त हुए अर्थ के कारण जो भय की उत्पत्ति होती है, उसको अनर्थरूप आपत्ति कहते हैं।

( २ ) १. यह अर्थ है या नहीं ? २. यह अनर्थ है या नहीं ? ३. यह अर्थ है या अनर्थ ? और ४. यह अनर्थ है या अर्थ ? इस प्रकार अर्थ और अनर्थ को लेकर चार प्रकार से उत्पन्न **संशयरूप** आपत्ति कहलाती है।

( ३ ) शत्रु के मित्र को शत्रु के साथ ही लड़ाने के लिए तैयार करते समय पहिला संशय होता है। शत्रु की सेना को धन तथा सत्कार के द्वारा बुलाने पर दूसरा संशय होता है। बलवान् सामन्त की भूमि को लेने में तीसरा संशय होता है। बलवान् सामन्त के साथ मिलकर यातव्य पर आक्रमण करने में चौथा संशय होता है।

( ४ ) इस दृष्टि से विजिगीषु को चाहिए कि उक्त चारों प्रकार के संशयों में जो संशय अर्थ-विषयक हो और अनर्थ के साथ जिसका कत्तई सम्बन्ध न हो, ऐसे संशय के विषय में उद्योग करे।

( ५ ) प्रत्येक अर्थ और अनर्थ के साथ अनुबन्ध का योग करने तथा न करने से उसके छह भेद होते हैं, जिन्हें **अनुबंधषड्वर्ग** कहते हैं। उसके भेद इस प्रकार हैं, १. अर्थानुबंध अर्थ, २. निरनुबंध अर्थ, ३. अनर्थानुवंध अर्थ, ( ये तीन अर्थ के भेद हैं ), और ४. अर्थानुबंध अनर्थ ५. निरनुबंध अनर्थ तथा ६. अनर्थानुबंध अनर्थ ( ये तीन अनर्थ के भेद हैं )।

( ६ ) शत्रु का उच्छेद कर पार्ष्णिग्राह को भी अपने वश में कर लेना **अर्थानुबंध** अर्थ कहलाता है।

( ७ ) उदासीन राजा से धन आदि लेकर उसको सेना की सहायता देना **निरनुबंध अर्थ** कहलाता है।

(१) परस्यान्तरुच्छेदनमर्थोऽनर्थानुबन्धः ।
(२) शत्रुप्रतिवेशस्यानुग्रहः कोशदण्डाभ्यामनर्थोऽर्थानुबन्धः ।
(३) हीनशक्तिमुत्साह्य निवृत्तिरनर्थो निरनुबन्धः ।
(४) ज्यायांसमुत्थाप्य निवृत्तिरनर्थोऽनर्थानुबन्धः ।
(५) तस्य पूर्वः पूर्वः श्रेयानुपसम्प्राप्तुम् । इति कार्यावस्थापनम् ।
(६) समन्ततो युगपदर्थोत्पत्तिः समन्ततोऽर्थापद्भवति ।
(७) सैव पार्ष्णिग्राहविगृहीता समन्ततोऽर्थसंशयापद्भवति ।
(८) तयोर्मित्राक्रन्दोपग्रहात्सिद्धिः ।
(९) समन्ततः शत्रुभ्यो भयोत्पत्तिः समन्ततोऽनर्थापद्भवति ।
(१०) सैव मित्रविगृहीता समन्ततोऽनर्थसंशयापद्भवति ।
(११) तयोश्चलामित्राक्रन्दोपग्रहात्सिद्धिः । परमिश्राप्रतीकारो वा ।

---

(१) शत्रु के अन्तर्द्धि राजा का उच्छेद कर देना **अनर्थानुबंध** अर्थ है ।

(२) कोष और सेना के द्वारा शत्रु के पड़ोसी की सहायता करना **अर्थानुबंध अनर्थ** कहलाता है ।

(३) हीनशक्ति राजा को सहायता का वचन देकर उसे लड़ने के लिए तैयार कर फिर उसकी मदद न करना **निरनुबंध अनर्थ** कहलाता है ।

(४) अधिक शक्तिशाली राजा को सहायता का वचन देकर फिर उसकी मदद न करना **अनर्थानुबंध अनर्थ** कहलाता है ।

(५) उक्त अनुबंध षड्वर्ग में पूर्व-पूर्व का अर्थ अधिक श्रेयस्कर है। यहाँ तक अर्थ-अनर्थ रूप कार्यों का प्रतिपादन किया गया ।

(६) एक साथ चारों ओर से अर्थों की उत्पत्ति होने लगे तो उसको **समंततः अर्थापत्** कहते हैं ।

(७) यदि उस समंततः अर्थापत् में पार्ष्णिग्राह द्वारा विरोध किया जाय तो उसको **समंततः अर्थसंशयापत्** कहते हैं ।

(८) उक्त दोनों प्रकार की आपत्तियों का प्रतीकार मित्र और आक्रंद की सहायता से किया जा सकता है ।

(९) चारों ओर से शत्रुओं द्वारा भय उत्पन्न होना **समंततः अनर्थापत्** कहलाता है ।

(१०) यदि उक्त भय में मित्र विघ्न उपस्थित करे तो उसको **समंततः अनर्थसंशयापत्** कहते हैं ।

(११) इन दोनों भयों का प्रतीकार चलशत्रु और आक्रंद को अनुकूल बनाकर किया जा सकता है । अथवा नवम अधिकरण में **परमिश्रा आपत्ति** का जो प्रतीकार बताया गया है उसको भी यहाँ प्रयोग में लाया जाय ।

**(१) इतो लाभ इतरतो लाभ इत्युभयतोऽर्थापद्भवति। तस्यां समन्ततोऽर्थायां च लाभगुणयुक्तमर्थमादातुं यायात्। तुल्ये लाभगुणे प्रधानमासन्नमनतिपातिनम्, ऊनो वा येन भवेत्तमादातुं यायात्।**

**(२) इतोऽनर्थ इतरतोऽनर्थ इत्युभयतोऽनर्थापत्। तस्यां समन्ततोऽनर्थायां च मित्रेभ्यः सिद्धिं लिप्सेत।**

**(३) मित्राभावे प्रकृतीनां लघीयस्यैकतोऽनर्था साधयेत्। उभयतोऽनर्थां ज्यायस्या। समन्ततोऽनर्थां मूलेन प्रतिकुर्यात्। अशक्ये सर्वमुत्सृज्यापगच्छेत्। दृष्टा हि जीवता पुनरापत्तिः, यथा सुयात्रोदयनाभ्याम्।**

**(४) इतो लाभ इतरतो राज्याभिमर्श इत्युभयतोऽर्थानर्थापद्भवति। तस्यामनर्थसाधको योऽर्थस्तमादातुं यायात्, अन्यथा हि राज्याभिमर्शं वारयेत्।**

**(५) एतया समन्ततोऽर्थानर्थापद्व्याख्याता।**

---

(१) जहाँ पर दोनों से अर्थविषयक आपत्ति प्राप्त हो उसे **उभयतः अर्थापद्** कहते हैं। उभयतः अर्थापद् और समन्ततः अर्थापद् में से किसी एक में यदि आदेय, प्रत्यादेय आदि लाभ-गुणों से युक्त अर्थ के प्राप्त होने की संभावना हो तो उस अर्थ को प्राप्त करने के लिए अवश्य जाना चाहिए। यदि दोनों ओर लाभगुण समान ही हों तो उनमें जो श्रेष्ठ फल देने वाला हो, या अपने देश के नजदीक हो, या थोड़े ही समय में प्राप्त किया जाने योग्य हो, या जिसके प्राप्त न करने पर अपनी हानि हो, उस अर्थ को लेने के लिए अवश्य जाना चाहिए।

(२) यदि दोनों ओर से अनर्थ की ही उत्पत्ति होती हो तो उसे **उभयतः अनर्थापद्** कहते हैं। उभयतः अनर्थापद् और समन्ततः अनर्थापद् दोनों में मित्रों द्वारा सफलता प्राप्त करने की चेष्टा करनी चाहिए।

(३) ऐसी स्थिति में यदि मित्रों से सहायता प्राप्त न हो तो अपनी लघु प्रकृतियों ( साधारण राजकर्मचारी ) द्वारा ही एकतः अनर्थापद् का प्रतीकार किया जा सकता है। इसी प्रकार उभयतः अनर्थापद् का प्रतीकार ज्येष्ठ प्रकृति द्वारा और समन्ततः अनर्थापद् का प्रतीकार राजधानी को छोड़कर किया जा सकता है। यदि इतने पर भी इन आपदाओं को शान्त न किया जा सके तो अपना सर्वस्व त्याग कर चला जाना चाहिए। जीवित रहने पर अपने छोड़े हुए स्थान को पुनः प्राप्त किया जा सकता है, जैसा कि राजा नल और वत्सराज उदयन के जीवनचरित से स्पष्ट है।

(४) एक ओर से लाभ और दूसरी ओर से अपने राज्य पर आक्रमण किये जाने वाली अर्थ और अनर्थ युक्त स्थिति को **उभयतः अर्थ-अनर्थापद्** कहते हैं। इन दोनों स्थितियों में यदि अर्थ से अनर्थ का भी प्रतीकार किया जा सके तो अर्थ-प्राप्ति के लिए ही यत्न करना चाहिए, अन्यथा अर्थ को छोड़कर अनर्थ का ही प्रतीकार करना चाहिए।

(५) इसी प्रकार समन्ततः अर्थानर्थापद् के सम्बन्ध में भी समझना चाहिए।

**(१) इतोनर्थ इतरतोऽर्थसंशय इत्युभयतोऽनर्थार्थसंशया। तस्यां पूर्वमनर्थं साधयेत्, तत्सिद्धावर्थसंशयम्।**

**(२) एतया समन्ततोऽनर्थार्थसंशया व्याख्याता।**

**(३) इतोऽर्थ इतरतोऽनर्थसंशय इत्युभयतोऽर्थानर्थसंशयापत्।**

**(४) एतया समन्ततोऽर्थानर्थसंशया व्याख्याता।**

**(५) तस्यां पूर्वां पूर्वां प्रकृतीनामनर्थसंशयान्मोक्षयितुं यतेत। श्रेयो हि मित्रमनर्थसंशये तिष्ठन्न दण्डः, दण्डो वा न कोश इति।**

**(६) समग्रमोक्षणाभावे प्रकृतीनामवयवान्मोक्षयितुं यतेत। तत्र पुरुषप्रकृतीनां च बहुलमनुरक्त वा तीक्ष्णलुब्धवर्जम्। द्रव्यप्रकृतीनां सारं महोपकारं वा। सन्धिनाऽऽसनेन द्वैधीभावेन वा लघूनि विपर्ययैर्गुरूणि।**

---

( १ ) एक ओर से अनर्थ का होना और दूसरी ओर से अर्थ में संशय का होना **उभयतः अनर्थार्थसंशयापद्** कहलाता है। इस आपत्ति में पहले अनर्थ का और बाद में अर्थसंशय का प्रतीकार करना चाहिए।

( २ ) इसी प्रकार **समंततः अनर्थार्थसंशयापद्** के सम्बन्ध में भी समझना चाहिए।

( ३ ) एक ओर से अर्थ और दूसरी ओर से अनर्थ का संशय होने पर **उभयतः अर्थानर्थ-संशयापद्** कहलाता है।

( ४ ) इसी के समान **समंततः अर्थानर्थ-संशयापद्** भी समझना चाहिए।

( ५ ) इन विपत्तियों में पहले अनर्थसंशय को हटाकर फिर अर्थ के लिए यत्न करना चाहिए। स्वामी, अमात्य, जनपद, दुर्ग, कोष, दण्ड और मित्र, इन प्रकृतियों में उत्तर-उत्तर की अपेक्षा पूर्व-पूर्व प्रकृति के अनर्थ का प्रतीकार करना चाहिए। मित्र की ओर से यदि अनर्थसंशय हो तो वह सेना की ओर से होने वाले अनर्थसंशय की अपेक्षा सुकर है, क्योंकि मित्र सेना की अपेक्षा अधिक कष्टकर नहीं होता है। इसी प्रकार सेना की ओर से होने वाला अनर्थसंशय, कोष से होने वाले अनर्थसंशय की अपेक्षा अधिक कष्टकर नहीं है। इसलिए कोष से होने वाले अर्थसंशय का ही पहिले प्रतीकार करना चाहिए।

( ६ ) यदि समग्र प्रकृतियों का अनर्थसंशय एक बार ही दूर न किया जा सके तो उनमें से कुछ का ही अनर्थसंशय दूर किया जाय। ऐसी स्थिति में पुरुष प्रकृतियों में से तीक्ष्ण और लोभी पुरुषों को छोड़कर पहिले उनके ही अनर्थसंशय का प्रतीकार किया जाय जो बहुसंख्यक होने के साथ-साथ अनुराग भी रखते हैं। द्रव्य प्रकृतियों में से अधिक मूल्यवान् एवं अत्यन्त उपकारक द्रव्यों को ही अनर्थसंशय से मुक्त करना चाहिए। संधि, आसन तथा द्वैधीभाव के द्वारा लघुद्रव्यों को छुड़ाने का और विग्रह तथा संश्रय के द्वारा गुरु द्रव्यों को छुड़ाने का यत्न करना चाहिए।

**(१) क्षयस्थानवृद्धीनां चोत्तरोत्तरं लिप्सेत। प्रातिलोम्येन वा क्षयादीनाम्। आयत्यां विशेषं पश्येत्।**

**(२) इति देशावस्थापनम्।**

**(३) एतेन यात्रादिमध्यान्तेष्वर्थानर्थसंशयानामुपसंप्राप्तिर्व्याख्याता।**

**(४) निरन्तरयोगित्वाच्चार्थानर्थसंशयानां यात्रादावर्थः श्रेयानुपसंप्राप्तुं पार्ष्णिग्राहासारप्रतिघाते क्षयव्ययप्रवासप्रत्यादेयमूलरक्षणेषु च भवति। तथानर्थः संशयो वा स्वभूमिष्ठस्य विषह्यो भवति।**

**(५) एतेन यात्रामध्येऽर्थानर्थसंशयानामुपसम्प्राप्तिर्व्याख्याता।**

**(६) यात्रान्ते तु कर्शनीयमुच्छेदनीयं वा कर्शयित्वोच्छिद्य वार्थः श्रेयानुपसम्प्राप्तुं नानर्थः संशयो वा पराबाधभयात्।**

**(७) सामवायिकानामपुरोगस्य तु यात्रामध्यान्तगोऽनर्थः संशयो वा श्रेयानुपसंप्राप्तुमनिबन्धगामित्वात्।**

---

(१) क्षय (शक्ति और सिद्धि की क्षीणता), स्थान (शक्ति और सिद्धि की एकावस्था) और वृद्धि (शक्ति और सिद्धि का उपचय), इनमें से उत्तरोत्तर को प्राप्त करने का यत्न करना चाहिए। अथवा यदि भविष्य में किसी वृद्धि की अतिशय संभावना हो तो वृद्धि से स्थान और स्थान से क्षय, इस प्रतिलोम गति से ही उसे प्राप्त करने का यत्न करना चाहिए।

(२) यहाँ तक देश-निमित्तक आपत्तियों का निरूपण किया गया।

(३) देशनिमित्तक आपत्तियों के स्वरूप और प्रतीकार के समान ही युद्धयात्रा के आदि, अन्त तथा मध्य में होने वाले अर्थ, अनर्थ और संशयों की प्राप्ति तथा प्रतीकार का भी निरूपण समझना चाहिए।

(४) यदि युद्धयात्रा के आदि में अर्थ, अनर्थ और संशय एक साथ ही उत्पन्न हो जायँ तो उनमें से पहिले अर्थग्रहण करना ही श्रेयस्कर होता है। पार्ष्णिग्राह तथा आसार के प्रतिघात के लिए और क्षय, व्यय, प्रवास, प्रत्यादेय तथा मूल स्थान इन सबकी रक्षा के लिए अर्थ ही मूल कारण होता है: यदि युद्ध यात्रा के आरम्भ में अर्थ के समान ही अनर्थ और संशय भी उपस्थित हों तो अपनी भूमि में स्थित राजा उनका प्रतीकार सरलता से कर सकता है।

(५) इसी प्रकार युद्धयात्रा के मध्य में उत्पन्न अर्थ, अनर्थ और संशय की प्राप्ति तथा प्रतीकार का व्याख्यान भी समझ लेना चाहिए।

(६) यात्रा के अन्त में, परभूमि में स्थित विजिगीषु के लिए निर्बल एवं उच्छेदनीय शत्रु का ही अर्थग्रहण करना श्रेष्ठ है। ऐसी स्थिति में अनर्थ या संशय का ग्रहण करना उचित नहीं है, क्योंकि ऐसे समय शत्रु की ओर से बाधा पहुँचने की पूरी सम्भावना बनी रहती है।

(७) यदि राजमंडल के किसी अप्रधान राजा पर आक्रमण किया जाय तो उस

**(१) अर्थो धर्मः काम इत्यर्थत्रिवर्गः। तस्य पूर्वः पूर्वः श्रेयानुपसम्प्राप्तुम्।**

**(२) अनर्थोऽधर्मः शोक इत्यनर्थत्रिवर्गः। तस्य पूर्वः पूर्वः श्रेयान् प्रतिकर्तुम्।**

**(३) अर्थोऽनर्थ इति, धर्मोऽधर्म इति, कामः शोक इति संशयत्रिवर्गः। तस्योत्तरपक्षसिद्धौ पूर्वपक्षः श्रेयानुपसंप्राप्तुम्।**

**(४) इति कालावस्थापनम्। इत्यापदः।**

**(५) तासां सिद्धिः पुत्रभ्रातृबन्धुषु सामदानाभ्यां सिद्धिरनुरूपा, पौरजानपददण्डमुख्येषु दानभेदाभ्यां, सामन्ताटविकेषु भेददण्डाभ्याम्।**

**(६) एषाऽनुलोमा विपर्यये प्रतिलोमा। मित्रामित्रेषु व्यामिश्रा सिद्धिः। परस्परसाधका ह्युपायाः।**

---

समय यात्रा के मध्य में और अन्त में होने वाले अनर्थ तथा संशय का प्रतीकार करना ही श्रेयस्कर होता है, क्योंकि प्रधान राजा उस समय नेतृत्व में ही फँसे रहते हैं और अप्रधान राजा प्रतिबन्धरहित होने के कारण कहीं भी जा सकता है।

( १ ) अर्थ, धर्म और काम, इनको **अर्थत्रिवर्ग** कहा जाता है। इस अर्थत्रिवर्ग में पूर्व-पूर्व का ग्रहण करना अधिक श्रेयस्कर है।

( २ ) अनर्थ, अधर्म और शोक, इनको **अनर्थत्रिवर्ग** कहा जाता है। इस अनर्थत्रिवर्ग में पूर्व-पूर्व का प्रतीकार करना अधिक कल्याणप्रद है।

( ३ ) अर्थ-अनर्थ, धर्म-अधर्म और काम-शोक इनमें परस्पर संशय का होना **संशयत्रिवर्ग** कहा जाता है। इस संशयत्रिवर्ग में अनर्थ, अधर्म और शोक का प्रतीकार होने पर अर्थ, धर्म और काम का ग्रहण करना अधिक श्रेयस्कर है।

( ४ ) यहाँ तक यात्राकाल के आदि, मध्य तथा अन्त आदि के अर्थों एवं अनर्थों की व्याख्या और अर्थ, अनर्थ तथा संशययुक्त सभी प्रकार की विपत्तियों का निरूपण किया गया।

( ५ ) पुत्र, भाई और बन्धु-बांधवों के संबन्ध में साम तथा दान के अनुरूप प्रतीकार करना ही उचित समझा गया है। इसी प्रकार नागरिकों, जनपदवासियों, सैनिकों और राष्ट्र के प्रमुख व्यक्तियों के विषय में दान तथा भेद उपायों का प्रयोग करना ही उचित है। सामंत और आटविकों के संबंध में भेद तथा दण्ड के उपायों का प्रयोग करना उचित है।

( ६ ) इस रीति से किया गया प्रतीकार **अनुलोम** कहलाता है और इसके विपरीत होने पर वह **प्रतिलोम** कहा जाता है। मित्र तथा शत्रुओं के विषय में आवश्यकतानुसार मिले-जुले ( व्यामिश्र ) उपायों द्वारा प्रतीकार करना चाहिए; क्योंकि सभी उपाय परस्पर एक-दूसरे के सहायक ही होते हैं।

**(१) शत्रोः शङ्कितामात्येषु सान्त्वं प्रयुक्तं शेषप्रयोगं निवर्तयति। दूष्यामात्येषु दानम्। संघातेषु भेदः। शक्तिमत्सु दण्ड इति।**

**(२) गुरुलाघवयोगाच्चापदां नियोगविकल्पसमुच्चया भवन्ति।**

**(३) 'अनेनैवोपायेन नान्येन' इति नियोगः।**

**(४) 'अनेन वाऽन्येन वा' इति विकल्पः।**

**(५) 'अनेनान्येन च' इति समुच्चयः।**

**(६) तेषामेकयोगाश्चत्वारस्त्रियोगाश्च, द्वियोगाः षट्, एकश्चतुर्योग इति पञ्चदशोपायाः। तावन्तः प्रतिलोमाः।**

**(७) तेषामेकेनोपायेन सिद्धिरेकसिद्धिः, द्वाभ्यां द्विसिद्धिः, त्रिभिस्त्रिसिद्धिः, चतुर्भिश्चतुःसिद्धिरिति।**

---

( १ ) अपने जिन अमात्यों पर शत्रु संदेह करता है उन पर किया गया साम प्रयोग अन्य सभी उपायों का निवारण कर देता है। इसी प्रकार शत्रु के दूष्य अमात्यों में दान, आपस में मिले हुए अमात्यों में भेद और शक्तिमान्-अमात्यों में दण्ड का प्रयोग, शेष सभी उपायों को निवृत्त कर देता है।

( २ ) छोटी-बड़ी आपत्तियों के अनुसार ही उपायों के नियोग, विकल्प और समुच्चय हुआ करते हैं।

( ३ ) केवल इसी उपाय से कार्यसिद्धि हो सकेगी, दूसरे से नहीं, इसी का नाम नियोग है।

( ४ ) इस उपाय से कार्यसिद्धि होगी या दूसरे उपाय से इसका नाम विकल्प है।

( ५ ) इस उपाय को तथा दूसरे उपाय को मिलाकर कार्यसिद्धि होगी, इसका नाम समुच्चय है।

( ६ ) साम आदि चारों उपायों को अलग-अलग, दो-दो, तीन-तीन या चार-चार एक साथ मिलाकर पंद्रह तरह से प्रयोग में लाया जा सकता है। जैसे—सामदानभेद, सामदानदण्ड, सामभेददण्ड और दानभेददण्ड—ये चार; केवल साम, केवल दान, केवल भेद और केवल दण्ड—ये चार; सामदान, सामभेद, सामदण्ड, दानभेद, दानदण्ड और भेददण्ड—ये छः और सामदानदण्डभेद, इन चारों को मिलाकर एक; इस प्रकार ( ४+४+६+१ ) पंद्रह प्रयोग होते हैं। पंद्रह प्रकार के प्रतिलोम उपाय भी होते हैं; जैसे—दण्ड, भेद, दान, साम—ये चार; दण्डभेददान, दण्डभेदसाम, भेददानसाम, दण्डदानसाम—ये चार; दण्डभेद, दण्डदान, दण्डसाम, भेददान, भेदसाम, दानसाम—ये छह और दण्ड आदि चारों एक साथ मिलाकर पंद्रह प्रतिलोम उपाय होते हैं।

( ७ ) उक्त उपायों में से एक ही उपाय के द्वारा जो कार्यसिद्धि होती है उसे

**(१) धर्ममूलत्वात्कामफलत्वाच्चार्थस्य धर्मार्थकामानुबन्धा याऽर्थस्य सिद्धिः सा सर्वार्थसिद्धिः ।**

**(२) इति सिद्धयः ।**

**(३) दैवादग्निरुदकं व्याधिः प्रमारो विद्रवो दुर्भिक्षमासुरी सृष्टिः इत्यापदः ।**

**(४) तासां दैवतब्राह्मणप्रणिपाततः सिद्धिः ।**

**(५) अवृष्टिरतिवृष्टिर्वा सृष्टिर्वा याऽऽसुरी भवेत् ।**
**तस्यामाथर्वणं कर्म सिद्धारम्भाश्च सिद्धयः ॥**

इति अभियास्यत्कर्मणि नवमेऽधिकरणे अर्थानर्थसंशययुक्तास्तासामुपायविकल्पजाः सिद्धयश्चेति सप्तमोऽध्यायः; आदितः सप्तविंशत्युत्तरशततमः ।

समाप्तमिदमभियास्यत्कर्म नाम नवममधिकरणम् ।

—: ० :—

---

**एकसिद्धि** कहते हैं । इसी प्रकार दो उपायों से हुई सिद्धि को **द्विसिद्धि** तीन उपायों से हुई सिद्धि को **त्रिसिद्धि** और चार उपायों से हुई सिद्धि को **चतुःसिद्धि** कहते हैं ।

( १ ) इन सिद्धियों से प्रतीकारस्वरूप होने वाले अनेक लाभों में से धर्म, काम और अर्थ का साधक होने के कारण अर्थ-लाभ ही सर्वश्रेष्ठ होता है, उसी को **सर्वार्थ-सिद्धि** के नाम से कहा जाता है ।

( २ ) यहाँ तक मानुषी आपत्तियों को लेकर सिद्धियों का निरूपण किया गया ।

( ३ ) अग्नि, जल, व्याधि, महामारी, राष्ट्रविप्लव, दुर्भिक्ष और आसुरी सृष्टि ये सब **दैवी आपत्तियाँ** हैं ।

( ४ ) इन दैवी आपत्तियों का प्रतीकार देवता और ब्राह्मणों को अभिवादन करने से किया जा सकता है ।

( ५ ) अनावृष्टि, अतिवृष्टि अथवा आसुरी सृष्टि आदि के कारण जो आपत्तियाँ उत्पन्न हों उनके प्रतीकारार्थ अथर्ववेद में निरूपित शान्तिकर्मों के अनुष्ठान द्वारा किया जाना चाहिए । सिद्ध, तपस्वी, महात्मा पुरुषों द्वारा आरम्भ किये गये शान्तिकर्मों द्वारा भी इन आपत्तियों का प्रतीकार समझना चाहिए ।

इति अभियास्यत्कर्म नामक नौवें अधिकरण में अर्थानर्थसंशय विचार नामक सातवाँ अध्याय समाप्त ।

—: ० :—

दसवाँ अधिकरण

# साङ्ग्रामिक

| प्रकरण १४७ | |
|---|---|
| अध्याय १ | |

# स्कन्धावारनिवेशः

(१) वास्तुकप्रशस्ते वास्तुनि नायकवर्धकिमौहूर्तिकाः स्कन्धावारं वृत्तं दीर्घं चतुरस्रं वा, भूमिवशेन वा, चतुर्द्वारं षट्पथं नवसंस्थानमापयेयुः। खातवप्रसालद्वाराट्टलकसम्पन्नं भये स्थाने च।

(२) मध्यमस्योत्तरे नवभागे राजवास्तुकं धनुःशतायाममर्धविस्तारं पश्चिमार्धे तस्यान्तःपुरम्। अन्तर्वंशिकसैन्यं चान्ते निविशेत। पुरस्तादुपस्थानं, दक्षिणतः कोशशासनकार्यकरणानि, वामतो राजौपवाह्यानां हस्त्यश्वरथानां स्थानम्। अतो धनुःशतान्तराश्चत्वारः शकटमेथीप्रततिस्तम्भ-

---

## छावनी का निर्माण

( १ ) भवन-निर्माण-कला के विशेषज्ञों द्वारा प्रशंसित क्षेत्र में सेनापति (नायक), कारीगर ( वर्धकि ) और ज्योतिषी ( मौहूर्तिक ) ये तीनों पारस्परिक परामर्श से गोलाकार, लंबा, चौकोर या जैसी भूमि हो उसी के अनुसार चारों दिशाओं में चार दरवाजों, छह मार्गों और नौ संस्थानों ( डिविजन्स = वर्गों ) से युक्त सैनिक छावनी ( स्कंधावार ) का निर्माण करायें। खाई, सफील, परकोटा, एक प्रधान द्वार और अट्टालिकाओं से युक्त स्कंधावार उसी अवस्था में बनवाया जाय, जबकि आक्रमण का भय तथा अधिक समय तक वहाँ टिके रहने की संभावना हो।

( २ ) स्कंधावार के बीच में उत्तर की ओर नौवें हिस्से में सौ धनुष लंबा तथा पचास धनुष चौड़ा और राजा का निवास-स्थान बनवाया जाय। उसके आधे हिस्से में पश्चिम की ओर अंतःपुर का निर्माण कराया जाय और अन्तःपुर के समीप ही अन्तःपुररक्षकों के लिए भी स्थान बनवाये जाँय। राजगृह के सामने राजा का विश्रामस्थान ( उपस्थान ) होना चाहिए। राजगृह की दाहिनी ओर खजाना, सेक्रेट्रिएट ( शासनकरण ) और कार्य-निरीक्षकों ( कार्यकरण ) के स्थान बनवाये जाँय। राजगृह के बाँई ओर हाथी, घोड़ा, रथ आदि वाहनों के लिए स्थान होना चाहिए। राजगृह के कुछ दूर चारों ओर रक्षार्थ चार बाड़ बनवाये जायँ, जिनमें पहली बाड़ गाड़ियों की, दूसरी बाड़ काँटेदार लताओं की, तीसरी बाड़ मजबूत

**सालपरिक्षेपाः प्रथमे पुरस्तान्मन्त्रिपुरोहितौ, दक्षिणतः कोष्ठागारं महानसं च, वामतः कुप्यायुधागारम्, द्वितीये मौलभृतानां स्थानम्, अश्वरथानां, सेनापतेश्च। तृतीये हस्तिनः श्रेण्यः प्रशास्ता च। चतुर्थे विष्टिर्नायको मित्रामित्राटवीबलं स्वपुरुषाधिष्ठितम्। वणिजो रूपाजीवाश्चानुमहापथम्। बाह्यतो लुब्धकश्वगणिनः सतूर्याग्नयो गूढाश्चारक्षाः।**

**(१) शत्रूणामापाते कूपकूटावपातकण्टकिनीश्च स्थापयेत्। अष्टादशवर्गाणामारक्षविपर्यासं कारयेत्। दिवायामं च कारयेदपसर्पज्ञानार्थम्।**

**(२) विवादसौरिकसमाजद्यूतवारणं च कारयेत्। मुद्रारक्षणं च। सेनानिवृत्तमायुधीयमशासनं शून्यपालोऽनुबध्नीयात्।**

---

लकड़ी के खंभों की और चौड़ी बाड़ मजबूत चहार-दीवारी के ढंग की होनी चाहिए। प्रत्येक बाड़ का फासला सौ-सौ धनुष का होना चाहिए। पहली बाड़ के बीच में सामने की ओर मंत्रियों और पुरोहितों के स्थान बनवाने चाहिए। दाहिनी ओर भोजन-भंडार और रसोईघर होने चाहिए। बाँई ओर लोहा, ताँबा, लकड़ी आदि रखने की जगह और आयुधागार होने चाहिए। दूसरी बाड़ के बीच में मौलभृत आदि सेनाओं के स्थान और घोड़ों तथा सेनापति के स्थान होने चाहिए। इसी प्रकार बाड़ के तीसरे-घेरे में हाथियों, श्रेणीबल तथा प्रशास्ता ( कंटकशोधन का अध्यक्ष ) के स्थान होने चाहिए। बाड़ के चौथे घेरे में कर्मचारीवर्ग ( विष्टि ), नायक ( दस सेनापतियों का प्रधान ) और अपने विश्वस्त अधिकारी से संरक्षित मित्रसेना शत्रुसेना तथा आटविकसेना के स्थान बनवाये जाँय। व्यापारी और वेश्याओं के स्थान, बड़े बाजार ( महापथ ) में बनवाये जाँय। बहेलिये, शिकारी, बाजे तथा अग्नि आदि के इशारे से शत्रु के आगमन की सूचना देने वाले और ग्वाले आदि के वेष में रहने वाले रक्षकों को सबसे बाहर की ओर बसाया जाय।

( १ ) जिस मार्ग के शत्रु के आने की संभावना हो वहाँ कुएँ, गढे आदि खोदकर और लोहे की कीलों या काँटों से युक्त तख्तों को बिछाकर शत्रु को रोकने का प्रबन्ध किया जाय। हर समय पहरे के लिए अठारह वर्गों को बारी-बारी से नियुक्त किया जाय। शत्रु के गुप्तचरों का पता लगाने के लिए दिन-रात अपने आदमियों को घूमने के लिए नियुक्त करना चाहिए।

( २ ) आपसी झगड़ों, मदिरापान और जुआ आदि खेलने से सैनिकों को सर्वथा रोक लिया जाय। छावनी के भीतर-बाहर जाने-आने के लिए राजकीय मुहर का पास बनाया जाय। राजा की लिखित आज्ञापत्र के बिना युद्धभूमि से लौटने वाले सैनिकों को, शून्यपाल ( राजधानी का रक्षण-अधिकारी ) गिरफ्तार कर ले।

**(१) पुरस्तादध्वनः सम्यक्प्रशास्ता रक्षणानि च ।**
**यायाद्वर्धकिविष्टिभ्यामुदकानि च कारयेत् ॥**

इति सांग्रामिके दशमेऽधिकरणे स्कन्धावारनिवेशो नाम प्रथमोऽध्यायः;
आदितोऽष्टाविंशदुत्तरशततमः ।

—: ० :—

---

( १ ) प्रशास्ता ( कंटकशोधन-अधिकारी ) को चाहिए कि वह सेना और राजा के प्रस्थान करने से पहिले कारीगरों, मजदूरों तथा अध्यक्षों को साथ लेकर चला जाय और मार्गरक्षा का तथा आवश्यकतानुसार जल आदि का अच्छी तरह प्रबंध करे।

इति सांग्रामिक नामक दसवें अधिकरण में स्कन्धावारनिवेश नामक
पहला अध्याय समाप्त ।

—: ० :—

# स्कन्धावारप्रयाणं बलव्यसनाव-स्कन्दकालरक्षणं च

(१) ग्रामारण्यानामध्वनि निवेशान् यवसेन्धनोदकवशेन परिसंख्याय स्थानासनगमनकालं च यात्रां यायात्। तत्प्रतीकारद्विगुणं भक्तोपकरणं वाहयेत्। अशक्तो वा सैन्येष्वायोजयेत्। अन्तरेषु वा निचिनुयात्।

(२) पुरस्तान्नायकः। मध्ये कलत्रं स्वामी च। पार्श्वयोरश्वा बाहूत्सारः। चक्रान्तेषु हस्तिनः। प्रसारवृद्धिर्वा सर्वतः। वनाजीवः प्रसारः। स्वदेशादन्वायतिर्वीवधः। मित्रबलमासारः। कलत्रस्थानमपसारः। पश्चात्सेनापतिः पर्यायान्निविशेत।

---

## छावनी का प्रमाण और आपत्ति एवं आक्रमण के समय सेना की रक्षा

( १ ) गावों, जंगलों तथा मार्गों में ठहरने योग्य स्थानों का घास, लकड़ी तथा जल आदि के अनुसार निर्णय कर और वहाँ पर पहुँचने, ठहरने, वहाँ से जाने आदि का पहिले ही से समय का निश्चय करके फिर विजिगीषु को यात्रा के लिए घर से निकलना चाहिए। उस यात्रा में खाने-पीने और पहनने ओढ़ने के लिए जितने समान की आवश्यकता हो, उससे दुगुना सामान साथ रखना चाहिए। यदि इतना सब सामान सवारियों पर ही न जा सके तो उसमें से थोड़ा-थोड़ा सैनिकों को दिया जाय। अथवा पड़ाव के लिए नियुक्त स्थानों से आवश्यक सामान को संग्रह करके साथ ले जाना चाहिए।

( २ ) सेना के सबसे आगे दस सेनापतियों के प्रमुख नायक को चलना चाहिए, बीच में अन्तःपुर तथा राजा चले, अगल-बगल में भुजाओं से ही शत्रु के आघात को रोकने वाली घुड़सवारसेना चले, पिछले भाग में हाथी चलें, और अन्न, घास, भूसा आदि सब सामान चारों ओर से ले जाया जाय। जंगल में पैदा होने वाले अन्न, घास आदि आजीविका-योग्य वस्तुओं को **प्रसार** कहते हैं। अपने ही देश से अनाज आदि द्रव्यों के आयात को **वीवध** कहते हैं। मित्र की सेना को **आसार** कहा जाता है। रानियों के ठहरने के स्थान को **अपसार** कहते हैं। यात्राकाल में अपनी-अपनी सेना के सबसे पीछे सेनापति रहे।

**(१) पुरस्तादभ्याघाते मकरेण यायात्, पश्चाच्छकटेन, पार्श्वयोर्वज्रेण, समन्ततः सर्वतोभद्रेण, एकायने सूच्या ।**

**(२) पथि द्वैधीभावे स्वभूमितो यायात् । अभूमिष्ठानां हि स्वभूमिष्ठा युद्धे प्रतिलोमा भवन्ति । योजनमधमा, अध्यर्धं मध्यमा, द्वियोजनमुत्तमा, संभाव्या वा गतिः ।**

**(३) आश्रयकारी, सम्पन्नघाती, पार्ष्णिरासारो मध्यम उदासीनो वा प्रतिकर्तव्यः, संकटो मार्गः शोधयितव्यः, कोशो दण्डो मित्रामित्राटवीबलं विष्टिर्ऋतुर्वा प्रतीक्ष्याः कृतदुर्गकर्मनिचयरक्षाक्षयः क्रीतबलनिर्वेदो मित्रबलनिर्वेदश्चागमिष्यति, उपजपितारो वा नातित्वरयन्ति, शत्रुरभिप्रायं वा पूरयिष्यति इति शनैर्यायात् । विपर्यये शीघ्रम् ।**

---

( १ ) यदि सामने की ओर से शत्रु के आक्रमण की आशंका हो तो 'मकराकार व्यूह' की रचना करके शत्रु की ओर बढ़ना चाहिए, यदि आक्रमण की पीछे से संभावना हो तो 'शकटव्यूह' बनाकर आगे बढ़ना चाहिए, यदि अगल-बगल से आक्रमण की संभावना हो तो 'चक्रव्यूह' बनाकर आगे बढ़ना चाहिए, और यदि चारों ओर से आक्रमण की संभावना हो तो 'सर्वतोभद्रव्यूह' बनाकर, यदि मार्ग इतना तंग हो कि उससे एक साथ न जाया जाय तो 'सूचीव्यूह' बनाकर आगे बढ़ना चाहिए ।

( २ ) यदि मार्ग में किसी प्रकार की द्विविधा हो तो उसी मार्ग से प्रस्थान करना चाहिए जिससे चतुरंगिनी सेना आसानी से जा सके, क्योंकि अनुकूल मार्ग से चलने वाले राजा पर प्रतिकूल मार्ग से चलने वाला राजा आक्रमण नहीं कर सकता है । प्रतिदिन एक योजन ( चार कोस ) चलना अधम गति है, डेढ़ योजन चलना मध्यम गति और दो योजन चलना उत्तम गति कहलाती है । अथवा सुविधानुसार प्रतिदिन जितना चला जा सके, उतना चलना चाहिए ।

( ३ ) विजिगीषु जब यह सोचे कि 'अपनी उन्नति के लिए मुझे किसी राजा को अपना आश्रय बनाना चाहिए, अथवा धनधान्य-सम्पन्न किसी शत्रुदल को नष्ट करना है, या पार्ष्णिग्राह, आसार, मध्यम और उदासीन राजा का प्रतीकार करना है, तो धीरे से यात्रा करे । ऊबड़-खाबड़ मार्ग को साफ करने के लिए भी धीरे से ही यात्रा करे । अथवा जब कोष, अपनी सेना, मित्रसेना, शत्रुसेना, आटविक सेना, कारीगर और अपनी सेना के अनुकूल ऋतु की प्रतीक्षा करनी हो तो तब भी धीरे-धीरे यात्रा करे । अथवा जब यह संभावना हो कि शत्रु का दुर्ग बेमरम्मत है, उसका संगृहीत धान्य भी समाप्त प्राय है, उसके रक्षा-साधन भी विनष्ट हैं, धन देकर अपने वश में की हुई सेना भी उससे खिन्न है और मित्रसेना भी उससे विरक्त है, तो भी धीरे-धीरे यात्रा करे । अथवा जब समझे कि शत्रुद्रोही लोग अभी जल्दी में नहीं हैं,

**(१) हस्तिस्तम्भसंक्रमसेतुबन्धनौकाष्ठवेणुसंघातैः अलाबुचर्मकरण्डदृतिप्लवगण्डिकावेणिकाभिश्चोदकानि तारयेत् ।**

**(२) तीर्थाभिग्रहे हस्त्यश्वैरन्यतो रात्रावुत्तार्य सत्रं गृह्णीयात् ।**

**(३) अनुदके चक्रिचतुष्पदं चाध्वप्रमाणेन शक्त्योदकं वाहयेत् ।**

**(४) दीर्घकान्तारमनुदकं यवसेन्धनोदकहीनं वा कृच्छ्राध्वानमभियोगप्रस्कन्नं क्षुत्पिपासाध्वक्लान्तं पङ्कतोयगभीराणां वा नदीदरीशैलानामुद्यानापयाने व्यासक्तम् । एकायनमार्गे शैलविषमे सङ्कटे वा बहुलीभूतं निवेशे प्रस्थिते विसन्नाहं भोजनव्यासक्तम् । आयतगतपरिश्रान्तमवसुप्तं व्याधिमरकदुर्भिक्षपीडितं व्याधितपत्त्यश्वद्विपमभूमिष्ठं वा बलव्यसनेषु वा स्वसैन्यं रक्षेत् । परसैन्यं चाभिहन्यात् ।**

---

अथवा युद्ध के बिना ही शत्रु मेरे अभिप्राय को पूरा कर देगा, तब धीरे-धीरे यात्रा करे । इसके विपरीत अवस्थाओं में शीघ्रता से ही यात्रा करनी चाहिए ।

( १ ) यात्राकाल में हाथियों, लकड़ी के खंभों; झूलों, पुलों, नौकाओं, लकड़ी तथा बाँस के बेड़ों, तूंबियों, चर्मकाण्डों, चमड़े की तूंबियों, मोमजामा के तकियों, काग की लकड़ी के बेड़ों और मजबूत रस्सियों से सेनाओं को नदी पार उतारा जाय ।

( २ ) नदी के घाट यदि शत्रु के कब्जे में हों तो हाथी और घोड़ों के द्वारा रात में दूसरी ओर से बिना घाट के ही अपनी सेनाओं को पार उतार कर शत्रु के स्थानों पर कब्जा कर लेना चाहिए ।

( ३ ) जिस प्रदेश से जल न हो वहाँ गाड़ी, बैल आदि चौपायों द्वारा पास में पर्याप्त जल रखकर मार्ग तय किया जाय ।

( ४ ) विजिगीषु को चाहिए कि वह लम्बा रास्ता तय करने वाली तथा जंगलों से होकर सफर करने वाली अपनी सेना की भरसक रक्षा करे । मार्ग में जल न पाने वाली, धान, भूसा, ईंधन, लकड़ी आदि से हीन, कठिन मार्ग में चलनेवाली, लम्बे समय युद्ध में रहने के कारण खिन्न, भूख, प्यास तथा सफर के कारण बेचैन, भारी दलदल, गहरे पानी, नदी, गुफा तथा पर्वत आदि के पार करने एवं चढ़ने-उतरने में संलग्न, तंग रास्ते में, विषम स्थान में या पहाड़ी किलों में एकत्र, लम्बा सफर करने से थकी, नींद लेती हुई, ज्वर, महामारी तथा दुर्भिक्ष से पीडित, बीमार, पैदल-हाथी घोड़ों से युक्त, प्रतिकूल भूमि में ठहरी, सैनिक आपत्तियों से पस्त, आदि जितनी भी कठिनाइयाँ हैं उनमें विजिगीषु को अपनी सेना की रक्षा करनी चाहिए । साथ ही विजिगीषु को चाहिए कि उक्त अवस्थाओं को प्राप्त हुई शत्रु की सेना को नष्ट-भ्रष्ट कर डाले ।

**(१) एकायनमार्गप्रयातस्य सेनानिश्चारग्रासाहारशय्याप्रस्ताराग्नि-निधानध्वजायुधसंख्यानेन परवलज्ञानम् । तदात्मनो गूहयेत् ।**

**(२) पार्वतं वनदुर्गं वा सापसारप्रतिग्रहम् ।**
**स्वभूमौ पृष्ठतः कृत्वा युध्येत निविशेत च ।।**

इति सांग्रामिके दशमेऽधिकरणे स्कन्धावारप्रयाणं बलव्यसनावस्कन्दकालरक्षणं चेति द्वितीयोऽध्यायः; आदित एकोनत्रिंशदुत्तरशततमः ।

—: ० :—

---

( १ ) जब शत्रु एक ही जाने योग्य तंग रास्ते से जा रहा हो उस समय एक-एक करके जाते हुए सैनिकों की, उनकी सवारियों की, भोजन आदि सामग्री की, सोने के स्थान की, भोजन पकाने के चूल्हों की और अस्त्र-शस्त्रों की गिनती कर शत्रु-सेना की इयत्ता का पता लगा लेना चाहिए । अपनी सेना की इयत्ता का पता देने वाले साधनों को छिपा देना चाहिए या नष्ट कर देना चाहिए ।

( २ ) विजिगीषु को चाहिए कि वह अपसार ( भागे हुए या पराजित के छिपने की जगह ) और प्रतिग्रह ( आक्रमण करती हुई शत्रुसेना को गिरफ्तार करने की जगह ) के युक्त पहाड़ी तथा जंगली दुर्ग अच्छी तरह तैयार करके और सर्वथा अनुकूल भूमि में ठहर कर युद्ध करे अथवा निश्चिन्त होकर निवास करे ।

साङ्ग्रामिक नामक दसवें अधिकरण में दूसरा अध्याय समाप्त ।

—: ० :—

प्रकरण १५०-१५२

अध्याय ३

# कूटयुद्धविकल्पाः, स्वसैन्योत्साहनं, स्वबलान्यबलव्यायोगश्च

(१) बलविशिष्टः कृतोपजापः प्रतिविहितर्तुः स्वभूम्यां प्रकाशयुद्धमुपेयात् विपर्यये कूटयुद्धम् ।

(२) बलव्यसनावस्कन्दकालेषु परमभिहन्यात् । अभूमिष्ठं वा स्वभूमिष्ठः । प्रकृतिप्रग्रहो वा स्वभूमिष्ठं दूष्यामित्राटवीबलैर्वा भङ्गं दत्त्वा विभूमिप्राप्तं हन्यात् । संहतानीकं हस्तिभिर्भेदयेत् ।

(३) पूर्वं भङ्गप्रदानेनानुप्रलीनं भिन्नमभिन्नं प्रतिनिवृत्य हन्यात् । पुरस्तादभिहत्य प्रचलं विमुखं वा पृष्ठतो हस्त्यश्वेनाभिहन्यात् । पृष्ठतोऽभिहत्य प्रचलं विमुखं वा पुस्तात्सारबलेनाभिहन्यात् ।

## कूटयुद्ध के भेद, अपनी सेना का प्रोत्साहन और अपनी तथा पराई सेना का प्रयोग

( १ ) बलवान् एवं बृहद् सेना से युक्त, शत्रुपक्ष को फोड़ने में समर्थ और युद्ध योग्य समय को अपने अनुकूल बनाने वाले विजिगीषु को चाहिए कि वह अपनी अनुकूल भूमि में ही प्रकाश-युद्ध करना स्वीकार करे। यदि इसके विपरीत व्यवस्था हो तो कूटयुद्ध ही करना चाहिए।

( २ ) व्यसनापन्न सेना पर या लम्बे सफर, जंगल के सफर अथवा जलाभाव की अवस्था में शत्रु के ऊपर आक्रमण किया जाय। अथवा शत्रु की विरुद्ध स्थिति और अपनी अनुकूल स्थिति होने पर आक्रमण करे। अथवा शत्रु की अमात्य आदि प्रकृतियों को वश में करके तब आक्रमण किया जाय अथवा राजद्रोहियों, शत्रुओं और जांगलिकों को अपनी पराजय का विश्वास दिलाकर जब वे अपना स्थान छोड़ दें तब उन पर आक्रमण किया जाय। अनुकूल भूमि में एक स्थान पर ठहरी हुई शत्रु-सेना को हाथियों द्वारा छिन्न-भिन्न किया जाय।

( ३ ) पूर्व पराजय के कारण तितर-बितर हुई शत्रु की सेना को विजिगीषु की एकत्र सेना लौट कर फिर मारे। सामने की ओर से आक्रमण करने के कारण तितर-बितर अथवा भागी हुई शत्रु सेना को पीछे की ओर से घुड़सवारों और हाथियों के द्वारा नष्ट करा दिया जाय। पीछे की ओर से आक्रमण करने के कारण छिन्न-भिन्न या उलटी भागी हुई शत्रु सेना को सामने की ओर से बहादुर सैनिकों के द्वारा नष्ट-भ्रष्ट करा दिया जाय।

**(१) ताभ्यां पार्श्वाभिघातौ व्याख्यातौ। यतो वा दूष्यफल्गुबलं ततोऽभिहन्यात्।**

**(२) पुरस्ताद्विषमायां पृष्ठतोऽभिहन्यात्। पृष्ठतो विषमायां पुरस्तादभिहन्यात्। पार्श्वतो विषमायामितरतोऽभिहन्यात्।**

**(३) दूष्यामित्राटवीबलैर्वा पूर्वं योधयित्वा श्रान्तमश्रान्तः परमभिहन्यात्। दूष्यबलेन वा स्वयं भङ्गं दत्त्वा 'जितम्' इति विश्वस्तमविश्वस्तः सत्रापाश्रयोऽभिहन्यात्। सार्थव्रजस्कन्धावारसंवाहविलोपप्रमत्तमप्रमत्तोऽभिहन्यात्। फल्गुबलावच्छन्नः सारबलो वा परवीराननुप्रविश्य हन्यात्। गोग्रहणेन श्वापदवधेन वा परवीरानाकृष्य सत्रच्छन्नोऽभिहन्यात्।**

**(४) रात्राववस्कन्देन जागरयित्वाऽनिद्राक्लान्तानवसुप्तान् वा दिवा हन्यात्। सपादचर्मकोशैर्वा हस्तिभिः सौप्तिकं दद्यात्। अहः सन्नाहपरिश्रान्तानपराह्णेऽभिहन्यात्।**

---

( १ ) आगे-पीछे से किये गये आक्रमणों के अनुसार ही अगल-बगल से किये जाने वाले आक्रमणों के सम्बन्ध में भी जान लेना चाहिए। अथवा जिस ओर शत्रु की राजद्रोही या निर्बल सेना हो उसी ओर से आक्रमण करना चाहिए।

( २ ) यदि सामने की ओर से आक्रमण करना अपने अनुकूल न हो तो पीछे की ओर से आक्रमण करना चाहिए और पीछे की ओर से असुविधा हो तो आगे की ओर से आक्रमण करना चाहिए। अगल-बगल के आक्रमण में जिस ओर से सुविधा हो उसी ओर से आक्रमण किया जाय।

( ३ ) अथवा अपनी दूष्यसेना, शत्रुसेना तथा आटविक सेना के साथ शत्रु को लड़ाकर फिर विजिगीषु स्वयं ही उस पर आक्रमण करे। अथवा अपनी दूष्य सेना को लड़ाकर स्वयं को विजिगीषु पराजित करार दे और तब शत्रु का आश्रय लेकर उस पर धावा बोल दे जब शत्रु व्यापारी वर्ग, गायों के समूह तथा छावनियों की रक्षा में और उनको लुटता देख प्रमादी बना हुआ हो, तब उस पर आक्रमण किया जाय। अथवा बाहर की ओर अपनी निर्बल सेना को बाँध कर और बीच में बहादुर सैनिकों को रख कर शत्रु की सेना को नष्ट-भ्रष्ट किया जाय। अथवा शत्रु-देश से गाय, आदि का अपहरण करने और व्याघ्र, वराह आदि का शिकार करने के बहाने शत्रु के वीर पुरुषों को प्रलोभन देकर सत्र में छिप कर मार डाला जाय।

( ४ ) रात में लूट-मार, डाका-चोरी आदि के भय से शत्रु के सैनिकों को जगाकर और फिर जब वे दिन में सोयें तो उन्हें मार डाला जाय। पैरों पर चमड़े का खोल पहनाये हुए हाथियों द्वारा सोते हुए सैनिकों पर आक्रमण किया जाय। कवायद करने के बाद थके हुए सैनिकों को दोपहर के बाद मरवा दिया जाय।

**(१) शुष्कचर्मवृत्तशर्कराकोशकैर्गोमहिषोष्ट्रयूथैर्वा त्रस्नुभिरकृतहस्त्यश्वं भिन्नमभिन्नः प्रतिनिवृत्तं हन्यात् । प्रतिसूर्यवातं वा सर्वमभिहन्यात् ।**

**(२) धान्वनवनसङ्कटपङ्कशैलनिम्नविषमनावो गावः शकटव्यूहो नीहारो रात्रिरिति सत्राणि ।**

**(३) पूर्वे च प्रहरणकालाः कूटयुद्धहेतवः ।**

**(४) संग्रामस्तु निर्दिष्टदेशकालो धर्मिष्ठः ।**

**(५) संहत्य दण्डं ब्रूयात्–'तुल्यवेतनोऽस्मि, भवद्भिः सह भोग्यमिदं राज्यं, मयाभिहितः परोऽभिहन्तव्यः' इति । वेदेष्वप्यनुश्रूयते समाप्तदक्षिणानां यज्ञानामवभृथेषु—'सा ते गतिर्या शूराणाम्' इति । अपीह श्लोकौ भवतः—**

**(६) यान् यज्ञसंघैस्तपसा च विप्राः स्वर्गैषिणः पात्रचयैश्च यान्ति ।**
**क्षणेन तामप्यतियान्ति शूराः प्राणान्सुयुद्धेषु परित्यजन्तः ॥**

---

(१) सूखे चमड़े से बँधे हुए मिट्टी के छोटे-छोटे ढेलों से या घबड़ा जाने वाले गाय, भैंसों और ऊँटों के झुंडों के द्वारा हाथी-घोड़े रहित शत्रु की छिन्न-भिन्न हुई सेना को अपनी एकत्र सेना के द्वारा मरवा दिया जाय । सूर्य और हवा के सामने आयी हुई सभी तरह की सेना को नष्ट कर डालना चाहिए ।

(२) मरुस्थल का दुर्ग ( धान्वन ), जंगल का दुर्ग, कंटकाकीर्ण झाड़ियों वाले स्थान ( संकट ), दलदल भूमि, पहाड़ी इलाके, तराई क्षेत्र, ऊबड़-खाबड़ भूमि, नौकाएँ, गायों के झुंड, शटकव्यूह, कुहरा और रात्रि इन सब को सत्र कहा जाता है । इन स्थानों में छिप कर युद्ध करना चाहिए ।

(३) पूर्व प्रहार करने के समय और सत्र स्थान कूट युद्धों के कारण हुआ करते हैं ।

(४) यहाँ तक कूट युद्ध के विभिन्न प्रकारों का निरूपण किया गया ।

(५) विजिगीषु को चाहिए कि वह अपनी संगठित सेना से कहे कि 'मैं भी आपके ही समान वेतनभोगी नौकर हूँ । आप लोगों के साथ ही मैं इस राज्य का उपयोग कर सकता हूँ । इसलिए जिसका मैं शत्रु बताऊँ वह आप लोगों के हाथों अवश्य मारा जाना चाहिए ।' इस प्रकार सेना को उत्साहित करना चाहिए । तदनंतर मन्त्रियों और पुरोहितों द्वारा सेना को यह कह कर उत्साहित कराये कि वेदों में ऐसा लिखा हुआ है कि यज्ञ, अनुष्ठान समाप्त हो जाने के बाद और दक्षिणा दिये जाने के बाद यजमान को जो फल मिलता है । वही फल युद्धक्षेत्र में वीरगति पाये हुए सैनिक को मिलता है । इसी सम्बन्ध में पूर्वाचार्यों के दो श्लोक हैं कि—

(६) अनेक यज्ञों को करके, कठिन तप करके और अनेक सुपात्रों को दान

**(१) नवं शरावं सलिलस्य पूर्णं सुसंस्कृतं दर्भकृतोत्तरीयम् ।
तत्तस्य माभून्नरकं च गच्छेद्यो भर्तृपिण्डस्य कृते न युध्येत् ।।**

**(२) इति मन्त्रिपुरोहिताभ्यामुत्साहयेद्योधान् ।**

**(३) व्यूहसम्पदा कार्तान्तिकादिश्चास्य वर्गः सर्वज्ञदैवसंयोगख्यापनाभ्यां स्वपक्षमुद्धर्षयेत् । परपक्षं चोद्वेजयेत् । 'श्वो युद्धम्' इति कृतोपवासः शस्त्र-वाहनं चानुशयीत । अथर्वभिश्च जुहुयात् । विजययुक्ताः स्वर्गीयाश्चाशिषो वाचयेत् । ब्राह्मणेभ्यश्चात्मानमतिसृजेत् ।**

**(४) शौर्यशिल्पाभिजनानुरागयुक्तमर्थमानाभ्यामविसंवादितमनीकगर्भं कुर्वीत । पितृपुत्रभ्रातृकाणामायुधीयानामध्वजं मुण्डानीकं राजस्थानम् । हस्ती रथो वा राजवाहनमश्वानुबन्धं । यत्प्रायः सैन्यो, यत्र वा विनीतः स्यात्, तदधिरोहयेत् । राजव्यञ्जनो व्यूहाधिष्ठानमायोज्यः ।**

---

देकर ब्राह्मण लोग जिस उच्च गति को प्राप्त करते हैं, शूरवीर क्षत्रिय धर्मयुद्ध में प्राणोत्सर्ग करके उससे भी उच्च-गति को प्राप्त करते हैं ।

( १ ) 'मन्त्रों से संस्कृत, जल से भरा हुआ और दर्भ से आच्छादित नई शराब का छलछलाता शकोरा उस व्यक्ति को प्राप्त नहीं होता और वह नरक में जाता है, जो अपने स्वामी के लिए प्राणों की बाजी नहीं लगाता ।'

( २ ) इस प्रकार मंत्री और पुरोहितों के द्वारा सैनिकों को प्रोत्साहित किया जाय ।

( ३ ) विजिगीषु राजा के ज्योतिर्विद् एवं शकुनशास्त्री व्यक्तियों को चाहिए कि वे अलग-अलग व्यूहों की विशेष रचना द्वारा अपनी सर्वज्ञता को और दैव-साक्षात्कार होने की प्रसिद्धि को फैलाकर अपने पक्ष के सैनिकों को उत्साहित करते रहें तथा शत्रु के सैनिकों को बेचैन बनाये रखें । 'कल युद्ध है' ऐसा निश्चय हो जाने पर विजिगीषु को चाहिए कि उस दिन उपवास करता हुआ वह अपने रथ, हाथी, घोड़े आदि सवारियों के पास ही शयन करे, और अथर्ववेद में बताये गये शत्रु-ध्वंसक मंत्रों का जप तथा अनुष्ठान करता रहे । शत्रु के हार जाने पर अपनी विजय के अनुकूल और अपने ही सैनिकों की वीरगति प्राप्त होने पर ब्राह्मणों से स्वर्गीय आशीर्वादों का वाचन कराये । अपनी रक्षा के लिए स्वयं को वह ब्राह्मणों को अर्पण कर दे ।

( ४ ) बहादुर, कारीगर, खानदानी तथा अनुरक्त और धन, मान आदि से सदा अनुकूल बनाई गई सेना को अपनी बड़ी सेना में रक्षा के निमित्त नियुक्त किया जाना चाहिए । राजा के पिता, पुत्र, भाई आदि अन्तरंग संबंधियों के निवास स्थान को और राजा के अङ्गरक्षक तथा प्रच्छन्न वेष धारण किये प्रधान सेना के निवास-स्थान को राजा के निवास स्थान के समीप ही टिकाया जाय । राजा हाथी या रथ

**(१) सूतमागधाः शूराणां स्वर्गमस्वर्गं भीरूणां जातिसङ्घकुलकर्मवृत्तस्तवं च योधानां वर्णयेयुः। पुरोहितपुरुषाः कृत्याभिचारं ब्रूयुः। सत्रिकवर्धकिमौहूर्तिकाः स्वकर्मसिद्धिमसिद्धिं परेषाम्।**

**(२) सेनापतिरर्थमानाभ्यामभिसंस्कृतमनीकमाभाषेत—'शतसाहस्रो राजवधः। पञ्चाशत्साहस्रः सेनापतिकुमारवधः। दशसाहस्रः प्रवीरमुख्यवधः। पञ्चसाहस्रो हस्तिरथवधः। साहस्रोऽश्ववधः। शत्यः पत्तिमुख्यवधः। शिरो विंशतिकम्। भोगद्वैगुण्यं स्वयंग्राहश्चेति। तदेषां दशवर्गाधिपतयो विद्युः।**

---

पर सवार होकर चले और उसकी रक्षा के लिए साथ में अश्वारोही सैनिक हों। अथवा जिन सवारियों पर प्रायः सेना चल रही हो उसी प्रकार की सवारी में या जिस सवारी में चढ़ने का राजा का अच्छा अभ्यास हो, उसमें चढ़कर चले। व्यूहरचना का अधिष्ठाता किसी ऐसे व्यक्ति को नियुक्त किया जाय, जो राजा से अविकल रूप में मिलता-जुलता हो।

( १ ) सूतों ( ऐतिहासिक गाथाओं के गायकों ) और मागधों ( स्तुतिवाचकों ) को चाहिए कि वे—शूर-वीर सैनिकों को स्वर्ग, कायरों को नरक और अन्य जाति संघी ( वटालियनों ) को उनके कुल, कर्म, शील, स्वभाव तथा व्यवहार के अनुसार-ओजोमयी उत्साहवर्धक वाणी सुनाकर स्तुतिगान करें। पुरोहितों को चाहिए कि वे अथर्ववेद में निर्दिष्ट शत्रुनाशक कृत्याभिचार का अनुष्ठान करें। सत्री, बढ़ई और ज्योतिषियों को चाहिए कि वे सदा ही अपने कार्यों की सिद्धि और शत्रुकार्यों की असफलता के सम्बन्ध में प्रचार करते रहें।

( २ ) युद्ध के लिए तैयार, धन-सत्कार से संवर्द्धित सेना को ललकार कर सेनापति यों कहे, 'आप लोगों में से जो भी सैनिक शत्रुराजा को मार डालेगा उसे एक लाख स्वर्णमुद्राएँ पुरस्कार में दी जायेंगी। जो सैनिक शत्रु के सेनापति या राजकुमार को मार डालेगा, उसे पचास हजार स्वर्णमुद्रायें इनाम में दी जायँगी। इस प्रकार शत्रु के वीर सैनिकों में से मुख्य सैनिकों को मारने वाले को दस हजार, हाथी तथा रथों को नष्ट करने वाले को पाँच हजार, घुड़सवारों को नष्ट करने वाले को एक हजार, पैदल सेना के मुख्य सैनिकों को नष्ट करने वाले को एक सौ और साधारण सिपाही का शिर काट कर लाने वाले को बीस स्वर्ण मुद्राएँ इनाम में दी जायँगी। इसके अतिरिक्त युद्ध में भाग लेने वाले प्रत्येक सैनिक का वेतन, भत्ता दुगुना कर दिया जायेगा और शत्रु के यहाँ से लूट-पाट में मिला हुआ सारा माल भी उन्हें ही दिया जायेगा।' इस प्रकार बताये गये राजवध का समाचार केवल पदिक सेनापति और नायक ही जान पायें।

**(१) चिकित्सकाः शस्त्रयन्त्रागदस्नेहवस्त्रहस्ताः, स्त्रियश्चान्नपान-रक्षिण्यः पुरुषाणामुद्धर्षणीयाः पृष्ठतस्तिष्ठेयुः ।**

**(२) अदक्षिणामुखं पृष्ठतः सूर्यमनुलोमवातमनीकं स्वभूमौ व्यूहेत । परभूमिव्यूहे चाश्वांश्चारयेयुः ।**

**(३) यत्र स्थानं प्रजवश्चाभूमि व्यूहस्य, तत्र स्थितः प्रजवितश्चोभयथा जीयेत । विपर्यये जयति । उभयथा स्थाने प्रजवे च ।**

**(४) समा विषमा व्यामिश्रा वा भूमिरिति । पुरस्तात्पार्श्वाभ्यां पश्चाच्च ज्ञेया । समायां दण्डमण्डलव्यूहाः, विषमायां भोगसंहतव्यूहाः । व्यामिश्रायां विषमव्यूहाः ।**

**(५) विशिष्टबलं भङ्क्त्वा सन्धिं याचेत । समबलेन याचितः सन्दधीत । हीनमनुहन्यात् । न त्वेव स्वभूमिप्राप्तं त्यक्तात्मानं वा ।**

---

( १ ) सैनिकों के स्वास्थ्य-संरक्षण और मनोविनोद के लिए चिकित्सक, काटने के औजार, चिमटी, दवाई, घी, तेल, मरहम-पट्टी, सहचिकित्सक, खाने-पीने की सामग्री और सैनिकों को प्रसन्न करने वाली स्त्रियाँ, इन सबको युद्धभूमि के लिये प्रस्थान करते समय सेना के पिछले हिस्से में रखा जाय ।

( २ ) विजिगीषु को चाहिए कि युद्धकाल में अमंगल-सूचक दक्षिण दिशा की ओर सैनिकों का मुँह करके खड़ा न करे । इस बात पर पूरा ध्यान दिया जाय कि सूर्य की किरणें सेना के पीठ पीछे और वायु का रुख अनुकूल हो, इस प्रकार व्यूह-रचना करके सैनिकों को खड़ा किया जाय । यदि युद्ध भूमि शत्रु के अनुकूल हो और वहीं पर विजिनीषु को भी व्यूह-रचना करनी पड़े, तो विजिगीषु को चाहिए कि वह घोड़े दौड़ा कर शत्रु के मोर्चे को विघटित कर दे ।

( ३ ) जिस स्थान पर ठहर कर विजिगीषु बहुत दिनों तक कार्य करता ही रह जाय या समयाभाव में जल्दी ही कार्य को करता हुआ, दोनों ही परिस्थितियों में, वहाँ पर अवश्य ही वह शत्रु द्वारा मारा जाता है ।

( ४ ) व्यूहभूमि तीन प्रकार की होती है, १. सम २. विषम और ३. व्यामिश्र । व्यूह-रचना के आगे, पीछे या बगल में, कहीं भी सम भूमि का होना आवश्यक है । इसी प्रकार विषम भूमि के संबंध में भी समझना चाहिए । तीनों प्रकार की उक्त समभूमि में दण्डाकार सेना की स्थापना ( दण्ड व्यूह ) और गोलाकार सेना की स्थापना ( मंडल व्यूह ) की जाय । इसी प्रकार तीनों तरह की विषम भूमि में भोग-व्यूह और संहत व्यूह की रचना की जाय । तीनों प्रकार की व्यामिश्र भूमि में विषमव्यूहों की रचना की जाय ।

( ५ ) विजिगीषु को चाहिए कि पहले वह अधिक शक्तिशाली शत्रु की सेना को

**(१) पुनरावर्तमानस्य निराशस्य च जीविते।**
**अधार्यो जायते वेगस्तस्माद्भग्नं न पीडयेत् ॥**

इति सांग्रामिके दशमेऽधिकरणे कूटयुद्धविकल्पाः स्वसैन्योत्साहनं स्वबलान्य-
बलव्यायोगश्चेति तृतीयोऽध्यायः; आदितस्त्रिंशदुत्तरशततमः ।

—: ० :—

---

नष्ट-भ्रष्ट कर फिर स्वयं ही उससे संधि के लिए प्रार्थना करे। यदि शत्रु समान शक्ति का हो तो उसकी प्रार्थना करने पर ही विजिगीषु संधि के लिए तैयार हो। अपने से हीन शक्ति राजा को तो ऐसा तहस-नहस कर देना चाहिए कि फिर कभी भी वह उठ न सके। किन्तु यदि हीनशक्ति राजा-अनुकूल स्थान पर हो या जीवन से निराश हो चुका हो तो उसको न मारा जाय।

(१) जीवन से निराश हुआ शत्रु यदि युद्धक्षेत्र से बचकर वापिस आता है तो उसका युद्धावेश ठंडा पड़ जाता है। इसलिए पहिले ही से निराश एवं कमजोर शत्रु को पीड़ा पहुँचा कर कुपित नहीं करना चाहिए।

सांग्रामिक नामक दसवें अधिकरण में कूटयुद्ध-सैन्यव्यायोग नामक
तीसरा अध्याय समाप्त।

—: ० :—

# युद्धभूमयः, पत्त्यश्वरथहस्तिकर्माणि च

(१) स्वभूमिः पत्त्यश्वरथद्विपानामिष्टा युद्धे निवेशे च ।

(२) धान्वनवननिम्नस्थलयोधिनां खनकाकाशदिवारात्रियोधिनां च पुरुषाणां नादेयपार्वतानूपसारसानां च हस्तिनामश्वानां च यथास्वमिष्टा युद्धभूमयः कालश्च ।

(३) समा स्थिराभिकाशा निरुत्खातिन्यचक्रखुराऽनक्षग्राहिणी अवृक्षगुल्मप्रततिस्तम्भकेदारश्वभ्रवल्मीकसिकतापङ्कभङ्गुरा दरणहीना च रथभूमिः ।

(४) हस्त्यश्वयोर्मनुष्याणां च समे विषमे हिता युद्धे निवेशे च ।

(५) अण्वश्मवृक्षा ह्रस्वलङ्घनीयश्वभ्रा मन्ददरणदोषाचाश्वभूमिः । स्थूलस्थाण्वश्मवृक्षप्रततिवल्मीकगुल्मा पदातिभूमिः । गम्यशैलनिम्नविषमा मर्दनीयवृक्षा छेदनीयप्रततिः पङ्कभङ्गुरदरणहीना च हस्तिभूमिः ।

## युद्धयोग्य भूमि और पदाति, अश्व, रथ तथा हाथी आदि सेनाओं के कार्य

( १ ) पैदल, घुड़सवार, रथारोही तथा हस्त्यारोही सैनिकों को युद्ध के लिए और ठहरने के लिए उपयुक्त भूमि का होना अत्यंत आवश्यक है ।

( २ ) धान्वनदुर्ग, वनदुर्ग, जल, स्थल, खाई, आकाश, दिन-रात, नदी, पहाड़, जलमय प्रदेश तथा तालाब आदि में युद्ध करने वाले हस्त्यारोही और अश्वारोही सैनिकों के लिए अनुकूल युद्धयोग्य भूमि तथा उपयुक्त ऋतु आदि का होना अत्यन्त आवश्यक है ।

( ३ ) समतल, दलदल रहित एकदम ठोस, साफ-सुथरी, चिकनी, घनी बेलों से अच्छादित, खाई-खंधक से रहित, झुरमुट, ठूंठ, क्यारियाँ, बाँबी, गड्ढे, रेत, कीचड़ और टेढ़ेपन आदि से रहित जमीन एवं दर्रों से रहित ( दरणहीना ) भूमि रथसेना के युद्धार्थ उपयुक्त समझनी चाहिए ।

( ४ ) उपर्युक्त रथयोग्य भूमि ही अश्वारोही, हस्त्यारोही और पदाति सेनाओं के लिए भी सम, विषम देश में युद्ध के लिए उपयुक्त समझनी चाहिए ।

( ५ ) छोटे-छोटे कंकड़ तथा वृक्षों से युक्त, छोटे-छोटे लाँघने योग्य गढों से युक्त और इधर-उधर छोटे-छोटे दर्रों से युक्त भूमि अश्वारोही सेना के ठहरने—युद्ध के लिए विशेष रूप से उपयुक्त है । मोटे-मोटे पेड़ों के ठूंठ, मोटे-मोटे पत्थर वा कंकड़,

**(१) अकण्टकिन्यबहुविषमा प्रत्यासारवतीति पदातीनामतिशयः ।**

**(२) द्विगुणप्रत्यासारा कर्दमोदकखञ्जनहीना निःशर्करेति वाजिनामतिशयः ।**

**(३) पांसुकर्दमोदकनलशराधानवती श्वदंष्ट्राहीना महावृक्षशाखाघातवियुक्तेति हस्तिनामतिशयः ।**

**(४) तोयाशयाश्रयवती निरुत्खातिनी केदारहीना व्यावर्तनसमर्थेति रथानामतिशयः । उक्ता सर्वेषां भूमिः ।**

**(५) एतया सर्वबलनिवेशा युद्धानि च व्याख्यातानि भवन्ति ।**

**(६) भूमिवासवनविचयो विषमतोयतीर्थवातरश्मिग्रहणं वीवधासारयोर्घातो रक्षा वा, विशुद्धिः स्थापना च बलस्य, प्रसारवृद्धिर्बाहूत्सारः,**

---

वृक्ष, लता, बाँबी तथा झुरमुट आदि से युक्त भूमि पैदल सैनिकों के लिए विशेष रूप से उपयोगी है। हाथियों के चढ़ सकने योग्य पहाड़, ऊँची-नीची जमीन, हाथियों के खुजलाने योग्य वृक्षों से युक्त, काटने योग्य लताओं से पूर्ण और गढों एवं दरारों से रहित भूमि हाथियों के लिए अधिक उपयुक्त है।

( १ ) कंटकरहित, न अधिक ऊँची न अधिक नीची और अवसर आने पर लौट आने की सुविधा वाली भूमि पैदल सेना के पड़ाव-युद्ध के लिए अत्यन्त उत्तम है।

( २ ) जिस भूमि में आगे बढ़ने की अपेक्षा पीछे लौटने में अधिक सुविधा रहती है और जिसमें कीचड़, जल, दलदल तथा कंकरीली मिट्टी का सर्वथा अभाव हो वह भूमि अश्वारोही सेना के लिए अतीव उत्तम है।

( ३ ) धूल, कीचड़, जल, नरसल, मूँज और नरसल-मूँज की जड़ से युक्त तथा गोखुरुओं से रहित एवं बड़े-बड़े घने वृक्षों से रहित भूमि हस्त्यारोही सेना के लिए अति उत्तम है।

( ४ ) स्नान योग्य जलाशयों, विश्राम करने योग्य स्थानों से युक्त, ऊबड़-खाबड़ रहित, क्यारियों से रहित, अवसर के समय में लौटने की सुविधाओं वाली भूमि रथ-सेना के लिए अधिक उपयोगी है। यहाँ तक उपयुक्त युद्धभूमि के सम्बन्ध में निरूपण किया गया।

( ५ ) इसी प्रकार सेनाओं के ठहरने और युद्धादि कार्यों के सम्बन्ध में भी विचार कर लेना चाहिए।

( ६ ) भूमि, निवास तथा वन की सफाई घोड़ों के द्वारा की जानी चाहिए। ( छिपे हुए शत्रु को हटाना **भूमिनिचय**; सेना के पड़ाव में उपद्रव को दूर करना **वासनिचय**; और जंगली मार्गों में चोरों को साफ करना **वननिचय** कहलाता है )। **विषम** ( जहाँ पर शत्रु आक्रमण न कर सके ), **तोय** ( जहाँ पर जल से भरे तालाब हों ), **तीर्थ** ( नदी के घाट ), **वात** ( जहाँ पर शुद्ध वायु आ-जा सके ) और रश्मि

**पूर्वप्रहारो व्यावेशनं, व्यावेधनमाश्वासो, ग्रहणं, मोक्षणं, मार्गानुसारविनिमयः, कोशकुमाराभिहरणं, जघनकोटचभिघातो, हीनानुसारणमनुयानं, समाजकर्मेत्यश्वकर्माणि ।**

**(१) पुरोयानमकृतमार्गवासतीर्थकर्म बाहूत्सारस्तोयतरणावतरणे स्थानगमनावतरणं विषमसम्बाधप्रवेशोऽग्निदानशमनमेकाङ्गविजयः, भिन्नसन्धानमभिन्नभेदनं व्यसने त्राणमभिघातो विभीषिका त्रासनमौदार्यं ग्रहणं मोक्षणं सालद्वाराट्टालकभञ्जनं कोशवाहनापवाहनमिति हस्तिकर्माणि ।**

---

( जहाँ सूर्य का पूर्ण प्रकाश हो ), आदि सुविधाजनक स्थानों को पहिले ही से अपने कब्जे में कर लेना चाहिए, शत्रुदेश से आने वाले जीविकोपार्जन योग्य पदार्थों तथा शत्रु के मित्र की सेना का नाश और अपने पदार्थों एवं सेना की रक्षा, छिपकर प्रविष्ट हुई शत्रुसेना की सफाई और अपनी सेना की दृढ़ स्थिति, धान्य तथा घास आदि का संग्रह, शत्रु सेना को तितर-बितर करना, भुजाओं के समान शत्रुसेना को हटाना, शत्रुसेना पर पहिले चढ़ाई करना, शत्रुसेना में घुसकर उसको चौंका देना, शत्रुसेना को तरह-तरह की तकलीफ देना, अपनी सेना को धैर्य देना, शत्रुसेना को घेरना, शत्रुद्वारा गिरफ्तार अपने सैनिकों को छुड़ाना. अपनी सेना के मार्ग पर शत्रुओं के अधिकार करने पर शत्रुसेना के मार्ग को अपने अधीन कर लेना, शत्रु के कोष तथा राजकुमार का अपहरण करना, पीछे तथा सामने की ओर आक्रमण करना, जिनके घोड़े मर गये हों, ऐसे सैनिकों का पीछा करना, भागी हुई शत्रुसेना का पीछा करना और बिखरी हुई अपनी सेना को संगठित करना—ये सभी कार्य घोड़ों के द्वारा आसानी से कराये जा सकते हैं, इसीलिए इन्हें **अश्वकर्म** कहते हैं ।

( १ ) अपनी सेना के आगे-आगे चलना, पहिले से तैयार न हुए मार्ग, निवास घाट आदि का बनाना, भुजाओं के समान शत्रुसेना को तितर-वितर करना, नदी की गहराई बताने के लिए उसके भीतर प्रवेश करना, पंक्ति में खड़ा होकर शत्रु के आक्रमण को रोकना, इसी प्रकार मार्ग में चलना; इसी प्रकार नीचे उतरना, घने जंगलों तथा शत्रु की सेना में घुसना, शत्रु के पड़ाव में आग लगाना और अपने पड़ाव में लगी हुई आग को बुझाना, अकेले ही शत्रु पर विजय प्राप्त करना, अपनी बिखरी हुई सेना को संगठित करना, शत्रु की संगठित सेना को तितर-वितर करना, आपत्ति के समय अपनी सेना की रक्षा करना और शत्रु की सेना को कुचलना, अपने को दिखाने मात्र से ही शत्रु को घबड़ा देना, मदविह्वल होकर शत्रु को विचलित कर देना, अपने अस्तित्व से अपनी सेना के महत्त्व को प्रकट करना, शत्रु के योद्धाओं को पकड़ना, अपने योद्धाओं को छुड़ाना, शत्रु के परकोटे, प्रधान द्वार तथा अटारी आदि को ध्वस्त करना, शत्रु के कोष तथा सवारी आदि को भगा ले जाना, ये सभी कार्य हाथियों के द्वारा संपादित होने के कारण **हस्तिकर्म** के नाम से कहे जाते हैं ।

**(१) स्वबलरक्षा चतुरङ्गबलप्रतिषेधः संग्रामे ग्रहणं मोक्षणं भिन्नसन्धानमभिन्नभेदनं त्रासनमौदार्यं भीमघोषश्चेति रथकर्माणि ।**

**(२) सर्वदेशकालशस्त्रवहनं व्यायामश्चेति पदातिकर्माणि ।**

**(३) शिबिरमार्गसेतुकूपतीर्थशोधनकर्म यन्त्रायुधावरणोपकरणग्रासवहनमायोधनाच्च प्रहरणावरणप्रतिविद्धापनयनमिति विष्टिकर्माणि ।**

**(४) कुर्याद्गवाश्वव्यायोगं रथेष्वल्पहयो नृपः ।**
**खरोष्ट्रशकटानां वा गर्भमल्पगजस्तथा ।।**

इति सांग्रामिके दशमेऽधिकरणे युद्धभूमयः पत्त्यश्वरथहस्तिकर्माणि नाम चतुर्थोऽध्यायः; आदित एकत्रिंशदुत्तरशततमः ।

—: ० :—

---

( १ ) अपनी सेना की रक्षा करना, आक्रमण के समय शत्रु सेना को रोकना, शत्रु के बलवान् सैनिकों को पकड़ना, अपने गिरफ्तार सैनिकों को छुड़ाना, अपनी सेना को संगठित करना तथा शत्रु सेना को तितर-वितर करना, भयभीत करके शत्रु की सेना को घबड़ाना, अपनी सेना का महत्त्व प्रकट करना और भयंकर आवाज करना; ये सभी कार्य **रथकर्म** अर्थात् रथसेना के द्वारा संपादित होते हैं।

( २ ) सम-विषम आदि सभी स्थानों और वर्षा-शरद् आदि सभी ऋतुओं में युद्ध के लिए तैयार हो जाना, नियम पूर्वक कवायद करना और अवसर आने पर युद्ध करना; ये सब कार्य पदाति सेना के हैं ।

( ३ ) अस्त्र-शस्त्र न रखकर फौज में कार्य करने वाले कर्मचारियों को **विष्टि** कहा जाता है । सैनिक शिविर बनाना, सैनिक मार्ग, नदी के पुल, बाँध, कुएँ, घाट आदि तैयार करना, घास आदि उखाड़ कर मैदान साफ करना, युद्ध की मशीनें, अस्त्र-शस्त्र, कवच आदि युद्धोपयोगी सामान तथा हाथी, घोड़ों के लिए घास ढोना, उनकी रक्षा का प्रबन्ध करना, युद्धभूमि में कवच, हथियार तथा घायल आदि सैनिकों को दूसरी जगह ले जाना, ये सभी कार्य विष्टि नामक कर्मचारियों के हैं ।

( ४ ) जिस राजा के पास घोड़ों की तादाद कम हो उसको चाहिए कि वह घोड़ों के साथ रथों में बैलों को भी जोड़ कर काम ले । इसी प्रकार जिस राजा के पास हाथियों का अभाव हो वह अपनी सेना को गधों या ऊँटों द्वारा चलाई जाने वाली गाड़ियों के बीच में सुरक्षित रखे ।

सांग्रामिक नामक दसवें अधिकरण में युद्धभूमि-पत्यश्वरथहस्तिकर्म नामक चौथा अध्याय समाप्त ।

—: ० :—

# पक्षकक्षोरस्यानां बलाग्रतो व्यूहविभागः सारफल्गुबलविभागः, पत्त्यश्वरथहस्तियुद्धानि च

(१) पञ्चधनुःशतावकृष्टदुर्गमवस्थाप्य युद्धमुपेयाद्, भूमिवशेन वा। विभक्तमुख्यामचक्षुर्विषये मोक्षयित्वा सेनां सेनापतिनायकौ व्यूहेयाताम्।

(२) शमान्तरं पत्तिं स्थापयेत्। त्रिशमान्तरमश्वम्। पञ्चशमान्तरं रथं, हस्तिनं वा। द्विगुणान्तरं त्रिगुणान्तरं वा व्यूहेत। एवं यथासुखमसम्बाधं युध्येत।

(३) पञ्चारत्नि धनुः, तस्मिन् धन्विनं स्थापयेत्। त्रिधनुष्यश्वम्। पञ्चधनुषि रथं हस्तिनं वा। पञ्चधनुरनीकसन्धिः पक्षकक्षोरस्यानाम्।

---

## पक्ष, कक्ष तथा उरस्य आदि विशेष व्यूहों का सेना के परिणाम के अनुसार व्यूहविभाग; सार तथा फल्गु-बलों का विभाग; और चतुरंग सेना का युद्ध

( १ ) युद्ध-भूमि से पाँच-सौ धनुष के फासले पर छावनी डालनी चाहिए, अथवा भूमि के अनुसार भी छावनी की दूरी इससे ज्यादा या कम की जा सकती है। मुख्य सैनिकों को अलग-अलग करके उन्हें इस प्रकार छिपाया जाय, जिससे शत्रुओं को कुछ भी पता न लगने पावे। उसके बाद सेनापति और नायक, दोनों उस सेना की व्यूह-रचना को यथोचित ढंग से सम्पन्न करें।

( २ ) पैदल ( पत्ति ) सेना के प्रत्येक सिपाही को एक-एक शम (चौदह अंगुल) के फासले पर खड़ा किया जाय। इसी प्रकार घुड़सवार सिपाहियों को तीन-तीन शम के फासले पर, और रथारोहियों तथा हस्त्यारोहियों को पाँच-पाँच शम के अन्तर पर खड़ा किया जाय अथवा भूमि की सुविधानुसार ही उनका फासला कम या ज्यादा किया जाय। ऐसी व्यूह-रचना करके निर्भीक होकर सुखपूर्वक युद्ध किया जाय।

( ३ ) पाँच अरत्नि ( हाथ ) का एक धनुष होता है। धनुर्धारी योद्धाओं को पाँच हाथ के फासले पर खड़ा किया जाय। तीन धनुष ( पन्द्रह हाथ ) के फासले पर अश्वारोहियों को और पाँच धनुष ( पच्चीस हाथ ) के फासले पर रथारोहियों को तथा हस्त्यारोहियों को खड़ा किया जाय। पक्ष ( आगे बगल में खड़े होकर लड़ने वाली ), कक्ष ( आगे अवान्तर भाग में खड़े होकर लड़ने वाली ) और उरस्य ( बीच में खड़े होकर लड़ने वाली ) पाँचों सेनाओं को पाँच-पाँच धनुष के फासले पर खड़ा किया जाय।

**(१) अश्वस्य त्रयः पुरुषाः प्रतियोद्धारः, पञ्चदश रथस्य, हस्तिनो वा, पञ्च चाश्वाः। तावन्तः पादगोपाः वाजिरथद्विपानां विधेयाः।**

**(२) त्रीणि त्रिकाण्यनीकं रथानामुरस्यं स्थापयेत्। तावत् कक्षं पक्षं चोभयतः। पञ्चचत्वारिंशदेवं रथा व्यूहे भवन्ति।**

**(३) द्वे शते पञ्चविंशतिश्चाश्वाः, षट्शतानि पञ्चसप्ततिश्च पुरुषाः प्रतियोद्धारः। तावन्तः पादगोपा वाजिरथद्विपानाम्।**

**(४) एष समव्यूहः। तस्य द्विरथोत्तरा वृद्धिरा एकविंशतिरथादित्येवमोजा दश समव्यूहप्रकृतयो भवन्ति।**

**(५) पक्षकक्षोरस्यानामतो विषमसंख्याने विषमव्यूहः। तस्यापि द्विरथोत्तरा वृद्धिरा एकविंशतिरथादित्येवमोजा दशविषमव्यूहप्रकृतयो भवन्ति।**

---

( १ ) घुड़सवार सैनिक के आगे-आगे सहायतार्थ तीन प्रतियोद्धाओं को नियुक्त किया जाय। इसी प्रकार रथारोहियों या हस्त्यारोहियों के आगे पन्द्रह-पन्द्रह प्रतियोद्धाओं अथवा पाँच-पाँच घुड़सवार सैनिकों को खड़ा किया जाय। हस्ति तथा अश्व के सैनिकों के उतने ही ( पाँच ) खिदमतगार ( पादगोप ) नियुक्त किए जाँय। इसी प्रकार एक-एक रथ के आगे पाँच घोड़े, और एक-एक घोड़े के आगे तीन-तीन आदमी मिलाकर कुल पन्द्रह प्रतियोद्धा आगे चलने वाले और पाँच सईस, उसी तरह, हाथी के साथ भी समझने चाहिए।

( २ ) व्यूहरचना के मध्यभाग (उरस्य) में इस प्रकार के नौ रथों (३ × ३ = ९) की नियुक्ति करनी चाहिए, अर्थात् तीन-तीन रथों की एक-एक पंक्ति बनाकर, तीन पंक्तियों में नौ रथों को खड़ा किया जाय। इसी प्रकार कक्ष और पक्ष स्थानों में दोनों ओर नौ-नौ रथों को खड़ा किया जाय। इस तरह एक व्यूह-रचना में ( ९ उरस्य, १८ कक्ष और १८ पक्ष = ४५ ) पैंतालीस रथ हो जाते हैं।

( ३ ) प्रत्येक रथ के आगे पाँच-पाँच घोड़े होने के कारण पैंतालीस रथों के आगे दो सौ-पच्चीस घोड़े होने चाहिए। इसी प्रकार प्रत्येक रथ के आगे पन्द्रह सैनिक होने के कारण पैंतालीस रथों के आगे छः सौ पचहत्तर सैनिक एक-दूसरे की सहायतार्थ नियुक्त होने चाहिए। घोड़े, रथ और हाथियों के उतने ही साईस भी होने चाहिए।

( ४ ) इस ढंग से तैयार किये गये व्यूह को **समव्यूह** कहते हैं। ऐसे व्यूह में दो-दो रथ बढ़ाकर इक्कीस रथों तक की वृद्धि की जा सकती है। इस प्रकार के अयुग्म में तीन रथों से लेकर इक्कीस रथों तक दस तरह की समव्यूह रचना की जा सकती है।

( ५ ) आगे पीछे और बीच के स्थानों में यदि रथों की विषम संख्या हो जाय तो उसको **विषमव्यूह** कहते हैं। ऐसे व्यूह में भी उक्त रीति से दो-दो रथ बढ़ाकर

**(१) अतः सैन्यानां व्यूहशेषमावापः कार्यः । रथानां द्वौ त्रिभागावङ्गेष्वावापयेत् । शेषमुरस्यं स्थापयेत् । एवं त्रिभागोना रथानामावापः कार्यः । तेन हस्तिनामश्वानामावापो व्याख्यातः ।**

**(२) यावदश्वरथद्विपानां युद्धसम्बाधं न कुर्यात्, तावदावापः कार्यः ।**

**(३) दण्डबाहुल्यमावापः । पत्तिबाहुल्यं प्रत्यावापः । एकाङ्गबाहुल्यमन्वावापः । दूष्यबाहुल्यमत्यावापः ।**

**(४) परावापात् प्रत्यावापादाचतुर्गुणादाष्टगुणादिति वा विभवतः सैन्यानामावापः कार्यः ।**

**(५) रथव्यूहेन हस्तिव्यूहो व्याख्यातः । व्यामिश्रो वा हस्तिरथाश्वानाम् । चक्रान्तयोर्हस्तिनः, पार्श्वयोरश्वमुख्याः, रथा उरस्ये । हस्तिनामुरस्यं रथानां कक्षावश्वानां पक्षाविति मध्यभेदी । विपरीतोऽन्तर्भेदी ।**

---

इक्कीस रथों तक की वृद्धि कर अयुग्म रूप से दस विषमव्यूहों की रचना की जा सकती है ।

( १ ) इस प्रकार की व्यूह-रचना करने के बाद जो सेना बची रह जाय उसको भी व्यूह के भीतर इधर-उधर नियुक्त कर देना चाहिए । उस बची हुई सेना का दो-तिहाई भाग तो आगे-पीछे और बाकी एक हिस्सा बीच में रख देना चाहिए । रथसैन्य में यदि कुछ बचे हुए रथ बाद में मिलाने पड़ जायँ तो उनकी संख्या, व्यूह की सेना से एक-तिहाई कम होनी चाहिए । इसी तरह बचे हुए हाथी और घोड़ों को मिलाने के सम्बन्ध में भी समझ लेना चाहिए ।

( २ ) जब तक युद्धकाल में घोड़े, रथ और हाथियों की पर्याप्त भीड़ न हो जाय तब तक उनमें बची हुई सेना को मिलाते रहना चाहिए ।

( ३ ) व्यूह-रचना के बाद बची हुई सेना को फिर से व्यूह में मिला लेने को **अवाप** कहते हैं। इस प्रकार केवल पैदल सेना ही मिलाई जाय तो उसे **प्रत्यावाप** कहते हैं । घोड़े, रथ या हाथी, इन तीनों में से किसी एक बचे हुए अंग को व्यूह-रचना के बाद उसमें मिला देने को **अन्वावाप** कहते है । इसी प्रकार राजद्रोही सैनिकों के द्वारा व्यूहसेना बढ़ाये जाने का नाम **अत्यावाप** है ।

( ४ ) विजिगीषु को चाहिए कि वह शत्रुसेना की अपेक्षा चौगुने से लेकर अठगुने तक अपनी सेना में सैनिकों का अवाप करे, अथवा अपनी शक्ति के अनुसार अवाप द्वारा ही सेना को बढ़ाये ।

( ५ ) रथों की उक्त व्यूह-रचना के अनुसार ही हाथियों की व्यूह-रचना भी समझ लेनी चाहिए । अथवा हाथी, रथ और घोड़ों को मिलाकर इस प्रकार की व्यूह-रचना की जानी चाहिए : सेना के सामने दोनों ओर हाथियों को खड़ा कर दिया जाय, पीछे के दोनों हिस्सों में बढ़िया घोड़ों को खड़ा किया जाय, और बीच में

**(१) हस्तिनामेव तु शुद्धः। सान्नाह्यानामुरस्यम्, औपवाह्यानां जघनं, व्यालानां कोटचाविति।**

**(२) अश्वव्यूहो वर्मिणामुरस्यं शुद्धानां कक्षपक्षाविति।**

**(३) पत्तिव्यूहः पुरस्तादावरणिनः पृष्ठतो धन्विन इति। शुद्धाः।**

**(४) पत्तयः पक्षयोरश्वाः पार्श्वयोः, हस्तिनः पृष्ठतो रथाः पुरस्तात्, परव्यूहवशेन वा विपर्यास इति। द्वयङ्गबलविभागः। तेन त्र्यङ्गबलविभागो व्याख्यातः।**

**(५) दण्डसम्पत् सारबलं पुंसाम्।**

**(६) हस्त्यश्वयोर्विशेषः। कुलं जातिः सत्त्वं वयःस्थता प्राणो वर्ष्म जवस्तेजः शिल्पं स्थैर्यमुदग्रता विधेयत्वं सुव्यञ्जनाचारतेति।**

---

रथों को खड़ा किया जाय। इसी व्यूह-रचना का एक दूसरा ढंग यह भी है कि मध्य में हाथी, पीछे की ओर रथ और आगे की ओर घोड़े खड़े किए जायँ। इस व्यूह-रचना में हाथियों को मध्य भाग में रखने के कारण **मध्यभेदी** कहते हैं। इसके विपरीत—पीछे हाथी, बीच में घोड़े और आगे रथों की व्यूह-रचना को **अन्तर्भेदी** कहते हैं।

( १ ) केवल हाथियों द्वारा की गई व्यूह-रचना को शुद्ध कहते हैं। ऐसे व्यूह में युद्ध योग्य हाथियों को बीच में रखा जाय और जो उन्मत्त एवं दुष्ट स्वभाव के हों उन्हें आगे के दोनों भागों में नियुक्त किया जाय।

( २ ) घोड़ों के शुद्ध व्यूह में कवचधारी घोड़ों को बीच में और कवचरहित घोड़ों को आगे-पीछे रखना चाहिए।

( ३ ) इसी प्रकार पैदल सेना के शुद्ध व्यूह में कवचधारी सैनिकों को आगे के दोनों भागों में और धनुर्धारी सैनिकों को पीछे के दोनों भागों में खड़ा किया जाय।

( ४ ) मिश्र व्यूहों में सेना के दो-दो अंगों को मिलाकर पैदल सिपाहियों को आगे के दोनों भागों में और घोड़ों को पीछे के दोनों भागों में रखा जाय, अथवा हाथियों को पीछे की ओर और रथों को आगे की ओर नियुक्त किया जाय, या शत्रु की व्यूह-रचना के वैपरीत्य में जैसा भी उचित हो वैसा किया जाय। इस प्रकार सेना के दो अंगों द्वारा तीन प्रकार की व्यूह-रचना की जा सकती है और इसी प्रकार सेना के तीन अंगों को लेकर व्यूह-रचना का विभाग किया जा सकता है।

( ५ ) जो पैदल सेना वंश-परम्परा से नियमित रूप से चली आ रही हो, जो नित्य तथा वश में रहने वाली हो उसे **सारबल** कहते हैं।

( ६ ) कुल, जाति, धैर्य, कार्यक्षमता, आयु, शारीरिक बल, ऊँचाई, चौड़ाई,

**(१) पत्त्यश्वरथद्विपानां सारत्रिभागमुरस्यं स्थापयेद्, द्वौ त्रिभागौ कक्षं पक्षं चोभयतः। अनुलोममनुसारम्। प्रतिलोमं तृतीयसारम्। फल्गु प्रतिलोमम्। एवं सर्वमुपयोगं गमयेत्।**

**(२) फल्गुबलमन्तेष्ववधाय वेगोऽभिहुतो भवति। सारबलमग्रतः कृत्वा कोटीष्वनुसारं कुर्यात्। जघने तृतीयसारं, मध्ये फल्गुबलमेतत् सहिष्णु भवति।**

**(३) व्यूहं तु स्थापयित्वा पक्षकक्षोरस्यानामेकेन द्वाभ्यां वा प्रहरेत्। शेषैः प्रतिगृह्णीयात्।**

**(४) यत्परस्य दुर्बलं वीतहस्त्यश्वं दूष्यामात्यकं कृतोपजापं वा, तत्प्रभूतसारेणाभिहन्यात्। यद्वा परस्य सारिष्ठं तद्द्विगुणसारेणाभिहन्यात्। यद-**

---

वेग, पराक्रम, युद्धनैपुण्य, स्थिरता, उन्नतशिर ( उदग्रता ), आज्ञाकारी, अनेक शुभ लक्षणों और शुभ चेष्टाओं आदि विशेष गुणों से युक्त हाथी और घोड़ों की सेना को सारबल कहते हैं।

( १ ) पैदल, घोड़े, रथ, हाथी के सारभूत बल के एक-तिहाई भाग को बीच में और बाकी दो तिहाई भाग को आगे-पीछे स्थापित किया जाय। यह सर्वोत्तम सेना के खड़े होने का प्रकार है। उत्तम सेना की अपेक्षा जो सेना न्यूनशक्ति हो, उसे अनुसार कहा जाता है, ऐसी सेना के सारबल को पीछे की ओर खड़ा करना चाहिए। इससे भी कुछ न्यूनशक्ति वाली तृतीयसार नामक सेना के सारबल को आगे की ओर खड़ा करना चाहिए। उससे भी निर्बल या वंश-परम्परा से चले आते फल्गुबल को तृतीयसार सेना के आगे खड़ा करना चाहिए। इस प्रकार सभी तरह की सेनाओं को उपयोग में लाना चाहिए।

( २ ) फल्गुबल को आगे की ओर खड़ा करने से शत्रु के आक्रमण का सारा वेग उसी के ऊपर शान्त हो जाता है। सारबल को आगे, अनुसारबल को बगल ( कोटि ), तृतीयसार को पीछे और फल्गुबल को बीच में करके भी व्यूह की रचना की जा सकती है; यह व्यूह भी शत्रु के आक्रमण को सहन करने वाला होता है।

( ३ ) आगे, पीछे तथा बीच में व्यूह की यथोचित रचना करके तदनंतर सेना के एक अंग द्वारा या दो अंगों के द्वारा शत्रु पर आक्रमण करना चाहिए और सेना के बाकी अंगों से शत्रु के आक्रमण को रोकना चाहिए।

( ४ ) शत्रु की दुर्बल, हाथी-घोड़ों से रहित, राजद्रोही अमात्यों से युक्त भेद डाली हुई सेना को सारभूत सेना के द्वारा नष्ट कर डालना चाहिए, और शत्रु की सारभूत सेना को अपनी दुगुनी सारभूत सेना के द्वारा नष्ट कर देना चाहिए। अपनी

**ङ्गमल्पसारमात्मनस्तद्बहुनोपचिनुयात्। यतः परस्यापचयस्ततोऽभ्याशे व्यूहेत, यतो वा भयं स्यात्।**

**(१) अभिसृतं परिसृतमतिसृतमपसृतमुन्मथ्यावधानं वलयो गोमूत्रिका मण्डलं प्रकीर्णिका व्यावृत्तपृष्ठमनुवंशमग्रतः पार्श्वाभ्यां पृष्ठतो भग्नरक्षा भग्नानुपातः इत्यश्वयुद्धानि।**

**(२) प्रकीर्णिकावर्जान्येतान्येव, चतुर्णामङ्गानां व्यस्तसमस्तानां वा घातः। पक्षकक्षोरस्यानां च प्रभञ्जनमवस्कन्दः सौप्तिकं चेति हस्तियुद्धानि।**

**(३) उन्मथ्यावधानवर्जान्येतान्येव स्वभूमावभियानापयानस्थितयुद्धानीति रथयुद्धानि।**

**(४) सर्वदेशकालप्रहरणमुपांशुदण्डश्चेति पत्तियुद्धानि।**

---

सेना के निर्बल अंग की सहायता के लिए अधिक सेना की नियुक्ति की जानी चाहिए। शत्रु सेना का जो निर्बल छोर हो उसी ओर से आक्रमण करना चाहिए; या जिस ओर से अपने ऊपर आक्रमण का भय हो उधर से ही व्यूह-रचना करनी चाहिए।

( १ ) अभिसृत ( अपनी सेना से शत्रु की सेना की ओर जाना ), परिसृत ( शत्रु की सेना के चारों ओर घूम कर प्रहार करना ), अतिसृत ( शत्रु की सेना के बीच से सुई की तरह वेध कर निकल जाना ), अपसृत ( उसी मार्ग से दुबारा निकलना ), बहुत से घोड़ों के द्वारा शत्रु सेना का मंथन करके फिर एकत्र हो जाना, दो तरफ से सूई के समान मार्ग बनाकर जाना, गोमूत्र के समान टेढ़ी गति से जाना ( गोमूत्रिका ), मंडल ( शत्रु सेना के बीच से निकल कर उसे घेर लेना ), प्रकीर्णिका ( सभी तरह की चालों का प्रयोग करना ), अनुवंश ( शत्रुसेना के सामने गयी हुई अपनी सेना का अनुगमन करना ) और भग्नानुपात ( छिन्न-भिन्न हुई शत्रुसेना का पीछा करना ), ये तेरह प्रकार के अश्वयुद्ध होते हैं।

( २ ) घोड़ों की प्रकीर्णिका गति को छोड़ कर शेष सभी युद्ध, बिखरे हुए या इकट्ठा हुए सेना के चारों अंगों का हनन करना, आगे, पीछे तथा मध्य में खड़ी हुई सेना को नष्ट करना, शत्रुसेना की निर्बलता पर प्रहार करना और सोती हुई शत्रुसेना को मार डालना, ये सब हस्तियुद्ध हैं।

( ३ ) उन्मथ्यावधान ( अनेक हाथियों के द्वारा शत्रुसेना को उन्मथित करके फिर उनका एकत्र हो जाना ) को छोड़ कर बाकी सभी तरह के हस्तियुद्ध, अनुकूल भूमि में रह कर शत्रु पर आक्रमण करना, शत्रु सेना को पराजित कर भाग जाना, सुरक्षित शत्रुसेना के चारों ओर घेरा डाल कर उससे युद्ध करना, ये सब रथ-युद्ध हैं।

( ४ ) हर समय तथा हर स्थान में हथियारों को धारण करना और चुपचाप शत्रु सेना को नष्ट करना, ये सब पदाति ( पैदल ) युद्ध हैं।

(१) एतेन विधिना व्यूहानोजान् युग्मांश्च कारयेत् ।
विभवो यावदङ्गानां चतुर्णां सदृशो भवेत् ॥
(२) द्वे शते धनुषां गत्वा राजा तिष्ठेत् प्रतिग्रहे ।
भिन्नसङ्घातनं तस्मान्न युध्येताप्रतिग्रहः ॥

इति साग्रांमिके दशमेऽधिकरणे पक्षकक्षोरस्थानां बलाग्रतो व्यूहविभागः सारफल्गुबलविभागः पत्त्यश्वरथहस्तियुद्धानि चेति पञ्चमोऽध्यायः, आदितो द्वात्रिंशदुत्तरशततमः ।

—: ० :—

---

( १ ) इस प्रकार विजिगीषु राजा को अयुग्म तथा युग्म व्यूहों की रचना करनी चाहिए। अपने हाथी, घोड़े, रथ तथा पैदल अंगों के अनुसार ही अपने व्यूहों की रचना करनी चाहिए।

( २ ) राजा को चाहिए कि युद्ध आरंभ हो जाने पर वह युद्धभूमि से दो-सौ धनुष की दूरी पर ठहरे। ऐसी स्थिति में वह शत्रु द्वारा छिन्न-भिन्न अपनी सेना को फिर एकत्र कर सकता है। इसलिए सेना के पृष्ठ भाग का आश्रय लिये बिना राजा को कदापि युद्ध न करना चाहिए।

सांग्रामिक नामक दसवें अधिकरण में पाँचवाँ अध्याय समाप्त।

—: ० :—

# दण्डभोगमण्डलासंहतव्यूहव्यूहनं तस्य प्रतिव्यूहस्थापनं च

(१) पक्षावुरस्यं प्रतिग्रह इत्यौशनसो व्यूहविभागः। पक्षौ कक्षावुरस्यं प्रतिग्रहः इति बार्हस्पत्यः।

(२) प्रपक्षकक्षोरस्या उभयोर्दण्डभोगमण्डलासंहताः प्रकृतिव्यूहाः। तत्र तिर्यग्वृत्तिर्दण्डः। समस्तानामन्वावृत्तिर्भोगः। सरतां सर्वतोवृत्तिर्मण्डलः। स्थितानां पृथगनीकवृत्तिरसंहतः।

(३) पक्षकक्षोरस्यैः समं वर्तमानो दण्डः। स कक्षाभिक्रान्तः प्रदरः; स एव पक्षाभ्यां प्रतिक्रान्तो दृढकः; स एवातिक्रान्तः पक्षाभ्यामसह्यः; पक्षाव-

---

## प्रकृतिव्यूह; विकृतिव्यूह और प्रतिव्यूह की स्थापना

( १ ) आगे के दो हिस्से, बीच का एक हिस्सा और पीछे का एक हिस्सा—व्यूह के चार विभाग शुक्राचार्य ( उशना ) ने किये हैं। आगे का एक हिस्सा, पीछे दोनों ओर के दो-दो हिस्से, बीच का एक हिस्सा और पीछे का एक हिस्सा—व्यूह के ये छः विभाग आचार्य बृहस्पति ने किये हैं।

( २ ) शुक्राचार्य और बृहस्पति दोनों आचार्यों के मत से आगे, पीछे तथा बीच में अलग-अलग खड़ी होने वाली सेनाओं के दण्ड, भोग, मण्डल और असंहत नामों से चार प्रकार के व्यूह हुआ करते हैं। ये व्यूह **प्रकृतिव्यूह** के नाम से कहे जाते हैं। उनमें से सेना को तिरछे में खड़ा करके जो व्यूह बनाया जाता है उसे **दण्डव्यूह** कहते हैं। दोनों आचार्यों के उक्त चार और छः विभागों द्वारा लगातार कई बार घुमाव डाल कर जो व्यूह बनाया जाता है उसे **भोगव्यूह** कहते हैं। शत्रु की ओर जाती हुई सेनाओं का चारों ओर से घिर कर आक्रमण करना **मण्डलव्यूह** कहलाता है। आक्रमण के लिए छोटी-छोटी सेनाओं को अलग-अलग टुकड़ियों में खड़ा करना **असंहतव्यूह** कहलाता है।

( ३ ) आगे, पीछे तथा बीच में समानरूप से नियुक्त सेनाओं के व्यूह को **दण्डव्यूह** कहते हैं। जब आगे के दोनों भागों से शत्रु पर आक्रमण किया जाता है तो उस दण्डव्यूह को **प्रदरव्यूह** कहते हैं। जब पीछे की सेना मुड़ कर शत्रु पर वार करे तो दण्डव्यूह की वह स्थिति **दृढकव्यूह** के नाम से कही जाती है। पीछे की सेना जब बड़े वेग से शत्रु-सेना के बीच में घुस जाय तब उस दृढकव्यूह को **असह्यव्यूह**

**वस्थाप्योरस्याभिक्रान्तः श्येनः; विपर्यये चापं चापकुक्षिः प्रतिष्ठः सुप्रतिष्ठश्च। चापपक्षः सञ्जयः; स एवोरस्यातिक्रान्तो विजयः; स्थूलकर्णपक्षः स्थूलकर्णः; द्विगुणपक्षस्थूलो विशालविजयः; त्र्यभिक्रान्तपक्षश्चमूमुखः; विपर्यये झषास्यः। ऊर्ध्वराजिर्दण्डः सूची; द्वौ दण्डौ वलयः; चत्वारो दुर्जयः। इति दण्डव्यूहाः।**

**(१) पक्षकक्षोरस्यैर्विषमं वर्तमानो भोगः। स सर्पसारी गोमूत्रिका वा। स युग्मोरस्यो दण्डपक्षः शकटः; विपर्यये मकरः; हस्त्यश्वरथैर्व्यतिकीर्णः शकटः पारिपतन्तकः। इति भोगव्यूहाः।**

**(२) पक्षकक्षोरस्यानामेकीभावे मण्डलः। स सर्वतोमुखः सर्वतोभद्रः; अष्टानीको दुर्जयः। इति मण्डलव्यूहाः।**

---

कहते हैं। आगे-पीछे के उपयुक्त भागों पर सेना को रखकर जब मध्यभाग के द्वारा सेना पर आक्रमण किया जाता है तब उस व्यूह को **श्येनव्यूह** कहते हैं। इन चार व्यूहों के सर्वथा विपरीत व्यूहों का नाम है क्रमशः **चाप, चापकुक्षि, प्रतिष्ठ** और **सुप्रतिष्ठ**। जिस व्यूह के पिछले भाग चाप ( धनुष ) के समान हों वह **संजयव्यूह** कहलाता है। जब बीच से शत्रु पर आक्रमण करके उसके बीच प्रवेश कर दिया जाता है, दण्डव्यूह की वह स्थिति **विजयव्यूह** कहलाती है। विजयव्यूह की अपेक्षा जिसके पिछले हिस्से दुगुने बड़े हों वह **विशाल विजयव्यूह** कहलाता है। जिस व्यूह के अगला, दो पिछले और मध्यभाग, तीनों बराबर हों वह **चमूमुखव्यूह** कहलाता है। इसके विपरीत होने पर वही चमूमुखव्यूह **झषास्य व्यूह** कहलाता है। जिस व्यूह की सेना ऊँची होकर शत्रुसेना पर आक्रमण करती है उस दण्डव्यूह को **सूचीव्यूह** कहते हैं। जब आगे, पीछे और मध्य, तीनों स्थानों में दो दण्डव्यूहों को तिरछा खड़ा किया जाय तब उसको **वलय व्यूह** कहते हैं। यदि इसी प्रकार चार दण्डव्यूहों को खड़ा कर दिया जाय तो उसको **दुर्जयव्यूह** कहते हैं। यहाँ तक दण्डव्यूहों का निरूपण हुआ।

( १ ) आगे-पीछे आदि स्थानों के द्वारा विषम संख्या में रचा हुआ व्यूह **भोगव्यूह** कहलाता है। भोगव्यूह दो प्रकार का होता है—एक **सर्पहारी** और दूसरा **गोमूत्रिका**। जब उसका मध्य भाग दो भागों में बँटकर दण्डाकार दोनों ओर स्थित हो जाता है उस स्थिति में उसको **शकटव्यूह** कहा जाता है। इसकी विपरीतावस्था में वही व्यूह **मकरव्यूह** कहलाता है। हाथी, घोड़े और रथों से युक्त शकटव्यूह को **पारिपतन्तकव्यूह** कहते हैं। यहाँ तक भोगव्यूहों का निरूपण हुआ।

( २ ) जिस व्यूह में आगे-पीछे और बीच के सभी विभाग एक साथ मिल जायँ उसको **मंडलव्यूह** कहते हैं। जब चारों ओर से शत्रु पर आक्रमण किया जाय तब वही

**(१) पक्षकक्षोरस्यानाम् असंहतादसंहतः। स पञ्चानीकानामाकृतिस्थापनाद्वज्रो गोधा वा। चतुर्णामुद्यानकः काकपदी वा। त्रयाणामर्धचन्द्रिकः कर्कटकशृङ्गी वा। इत्यसंहतव्यूहाः।**

**(२) रथोरस्यो हस्तिकक्षोऽश्वपृष्ठोऽरिष्टः।**

**(३) पत्तयोऽश्वा रथा हस्तिनश्चानुपृष्ठमचलः।**

**(४) हस्तिनोऽश्वा रथाः पत्तयश्चानुपृष्ठमप्रतिहतः।**

**(५) तेषां प्रदरं दृढकेन घातयेत्; दृढकमसह्येन, श्येनं चापेन, प्रतिष्ठं सुप्रतिष्ठेन, सञ्जयं विजयेन, स्थूलकर्णं विशालविजयेन, पारिपतन्तकं सर्वतोभद्रेण। दुर्जयेन सर्वान् प्रतिव्यूहेत।**

---

मण्डलव्यूह की स्थिति सर्वतोभद्रव्यूह कहलाती है और जब उस व्यूह में आठ सेनायें मिलकर शत्रु पर आक्रमण करें तो वही व्यूह दुर्जयव्यूह कहलाता है। यहाँ तक मण्डलव्यूहों का निरूपण हुआ।

( १ ) आगे-पीछे आदि की सेनाओं को तितर-बितर कर जो युद्ध किया जाता है उसे असंहतव्यूह कहते हैं। उसके दो प्रकार हैं : एक वज्र और दूसरा गोधा। जब आगे-पीछे की सभी सेनाओं को वज्र के आकार में खड़ा कर दिया जाता है तब उसे वज्रव्यूह और जब उन्हें गोह के आकार में खड़ा कर दिया जाता है तब उसे गोधाव्यूह कहते हैं। जब कि आगे के दोनों हिस्से, बीच का एक हिस्सा और अंत का एक हिस्सा इन चार स्थानों में उक्त प्रकार से सेना को खड़ा कर दिया जाता है तब उस असंहत व्यूह को उद्यानकव्यूह या काकपक्षीव्यूह कहते हैं। जब आगे के दोनों हिस्सों और बीच के एक हिस्से में सेना को खड़ा कर दिया जाता है तब उस व्यूह को अर्धचन्द्रिक या कर्कटकशृङ्गीव्यूह कहते हैं। असंहत व्यूह के यही प्रमुख भेद हैं।

( २ ) व्यूहों के तीन भेद और हैं : अरिष्ट, अचल और अप्रतिहत। जिस व्यूह के मध्य में रथ, अंत में घोड़े और आदि में हाथी हों उसको अरिष्टव्यूह कहते हैं।

( ३ ) जिस व्यूह में पैदल, हाथी, घोड़े और रथ एक-दूसरे के पीछे हों, उसे अचलव्यूह कहते हैं।

( ४ ) जिस व्यूह में हाथी, घोड़ा, रथ और पैदल एक-दूसरे के पीछे हों, उसे अप्रतिहतव्यूह कहते हैं।

( ५ ) उक्त व्यूहों में से प्रदर को दृढक से, दृढक को असह्य से, श्येन को चाप से, प्रतिष्ठ को सुप्रतिष्ठ से, संजय को विजय से, स्थूलकर्ण को विशालविजय से और पारिपतंतक को सर्वतोभद्र से तोड़ा जाना चाहिए। दुर्जयव्यूह के द्वारा सभी व्यूहों को तोड़ा जाना चाहिए।

(१) पत्त्यश्वरथद्विपानां पूर्वं पूर्वमुत्तरेण घातयेत् । हीनाङ्गमधिकाङ्गेन चेति ।

(२) अङ्गदशकस्यैकः पतिः पदिकः, पदिकदशकस्यैकः सेनापतिः, तद्दशकस्यैको नायक इति । स तूर्यघोषध्वजपताकाभिर्व्यूहाङ्गानां संज्ञाः स्थापयेद् अङ्गविभागे सङ्घाते स्थाने गमने व्यावर्तने प्रहरणे च ।

(३) समे व्यूहे देशकालसारयोगात् सिद्धिः ।

(४) यन्त्रैरुपनिषद्योगैस्तीक्ष्णैर्व्यासक्तघातिभिः ।
मायाभिर्दैवसंयोगैः शकटैर्हस्तिभूषणैः ॥

(५) दूष्यप्रकोपैर्गोयूथैः स्कन्धावारप्रदीपनैः ।
कोटीजघनघातैर्वा दूतव्यञ्जनभेदनैः ॥

(६) दुर्गं दग्धं हृतं वा ते कोपः कुल्यः समुत्थितः ।
शत्रुराटविको वेति परस्योद्वेगमाचरेत् ॥

---

( १ ) पैदल, घोड़ा, रथ तथा हाथी इनको उत्तरोत्तर अंग से नष्ट करना चाहिए और हीन अंग को अधिक बलवान् अङ्ग से नष्ट करना चाहिए ।

( २ ) दस रथ और दस हाथियों के अधिकारी को **पदिक**; दस पदिकों के अधिकारी को **सेनापति**; और दस सेनापतियों के अधिकारी को **नायक** कहा जाता है । उस सर्वोच्चसत्ताधारी नायक को चाहिए कि वह विशेष वाद्य शब्दों द्वारा अथवा पताका-ध्वजाओं द्वारा व्यूह में खड़ी सेना के लिए सांकेतिक इशारों की व्यवस्था करे । युद्ध में खड़ी सेना को बिखराने के लिए, बिखरी हुई सेना को एकत्र करने के लिए, चलती हुई सेना को रोकने के लिए, रुकी हुई सेना को चलाने के लिए तथा आक्रमण करती हुई सेना को लौट आने के लिए तथा प्रहार करने के लिए यथावसर उक्त संकेतों का प्रयोग किया जाय ।

( ३ ) शत्रु सेना और अपनी सेना में बराबर की व्यूह रचना होने पर देश, काल और योग के अनुसार विजय प्राप्त की जानी चाहिए ।

( ४ ) जामदग्न्य आदि यंत्र, **औपनिषदिक** प्रकरण में निर्दिष्ट उपाय, तीक्ष्ण आदि गुप्तचरों, छल, कपट, ज्योतिष और हाथी के योग्य वेषों से ढके हुए रथ आदि के द्वारा शत्रु सेना को उद्विग्न करना चाहिए ।

( ५ ) शत्रु के दूष्यों में कोप पैदा करके, आगे गायों का झुंड खड़ा करके, छावनी में आग लगाकर, सेना के आगे-पीछे छापा मारकर, गुप्तचरों को शत्रु सेना में घुसाकर शत्रु सेना को बेचैन करना चाहिए ।

( ६ ) 'तेरे दुर्ग को आग लगा दी गई है, तेरे दुर्ग को जीत लिया गया है, तेरे कुल का ही कोई व्यक्ति तेरे विरुद्ध उठ खड़ा हुआ है, तेरा सामंत युद्ध के लिए तैयार

(१) एकं हन्यान्न वा हन्यादिषुः क्षिप्तो धनुष्मता ।
प्राज्ञेन तु मतिः क्षिप्ता हन्याद् गर्भगतानपि ।।

इति सांग्रामिके दशमेऽधिकरणे दण्डभोगमण्डलासंहतव्यूहव्यूहनं तस्य प्रतिव्यूहस्थापनं चेति षष्ठोऽध्यायः; आदितस्त्रयस्त्रिंशदधिकशततमः ।

समाप्तमिदं सांग्रामिकं दशममधिकरणम् ।

—: ० :—

---

हो गया है, तेरा आटविक तेरे विरुद्ध उठ आया है, आदि अफवाहों को उड़ाकर भी विजिगीषु शत्रु सेना को उद्विग्न कर सकता है ।

( १ ) धनुर्धारी के धनुष से छोड़ा गया बाण, संभव है किसी एक व्यक्ति को ही मार डाले या न भी मारे; किन्तु बुद्धिमान् व्यक्ति के द्वारा किया गया बुद्धि का प्रयोग गर्भस्थ प्राणियों को भी नष्ट कर देता है । इसलिए युद्ध की अपेक्षा बुद्धि को ही अधिक शक्ति-संपन्न समझना चाहिए ।

सांग्रामिक नामक दसवें अधिकरण में व्यूहप्रतिव्यूहस्थापना नामक छठा अध्याय समाप्त ।

—: ० :—

ग्यारहवाँ अधिकरण

# सङ्घवृत्त

# भेदोपादानानि, उपांशुदण्डश्च

(१) सङ्घलाभो दण्डमित्रलाभानामुत्तमः। सङ्घा हि संहतत्वादधृष्याः परेषाम्।ताननुगुणान् भुञ्जीत सामदानाभ्याम्। विगुणान् भेददण्डाभ्याम्।

(२) काम्बोजसुराष्ट्रक्षत्रियश्रेण्यादयो वार्ताशस्त्रोपजीविनः। लिच्छिविकव्रजिकमल्लकमद्रककुकुरपाञ्चालादयो राजशब्दोपजीविनः।

(३) सर्वेषामासन्नाः सत्रिणः सङ्घानां परस्परन्यङ्गद्वेषवैरकलहस्थानान्युपलभ्य क्रमाभिनीतं भेदमुपचारयेयुः—'असौ त्वा विजल्पति' इति। एवमुभयतः। बद्धरोषाणां विद्याशिल्पद्यूतवैहारिकेष्वाचार्यव्यञ्जना बालकलहानुत्पादयेयुः। वेशशौण्डिकेषु वा प्रतिलोमप्रशंसाभिः सङ्घमुख्यमनुष्याणां तीक्ष्णाः कलहानुत्पादयेयुः। कृत्यपक्षोपग्रहेण वा।

## भेदक प्रयोग और उपांशुदण्ड

(१) भेदक प्रयोग : संघलाभ, सेनालाभ और मित्रलाभ, इन तीनों में संघलाभ उत्तम है; क्योंकि संगठित होने से संघों को शत्रु दबा नहीं पाता है। इन संघों के अनुकूल होने पर विजिगीषु को साम और दान के द्वारा उनका उपभोग करना चाहिए और प्रतिकूलावस्था में भेद तथा दण्ड के द्वारा उनका उपभोग करना चाहिए।

(२) कम्बोज और सौराष्ट्र देशों के क्षत्रिय, वैश्य आदि वर्गों के संघ कृषि, व्यापार और शास्त्र के द्वारा जीविकोपार्जन करते हैं। लिच्छिविक, व्रजिक, मल्लक, मद्रक, कुकुर, कुरु और पांचाल देशों के राजाओं के केवल नाममात्र के संघ होते हैं।

(३) विजिगीषु को चाहिए कि उक्त सभी प्रकार के संघों में अपने सत्री नामक गुप्तचरों को नियुक्त करे और वे सत्री उन संघों के पारस्परिक दोष, द्वेष, वैर और कलह के कारणों को पकड़ कर धीरे-धीरे उन्हें प्रकाश में लाकर उन संघों में इस तरीके से कि 'अमुक संघ आप की ऐसी निंदा करता है' भेद डाल दे। इसी प्रकार दूसरे को भी पहिले के विरुद्ध भड़काने का यत्न करे। परस्पर द्वेष रखने वाले संघों के राजकुमारों के कपटी आचार्य बनकर गुप्तचर विद्या, शिल्प, द्यूत और प्रश्नोत्तर आदि के विषय में कलह उत्पन्न करा दे। अथवा वेश्या तथा सुरापान आदि में आसक्त संघ के मुख्य व्यक्तियों की उल्टी प्रशंसा कराकर तीक्ष्ण गुप्तचर उनमें कलह उत्पन्न करा दें। अथवा संघमुख्यों के प्रति जो क्रुद्ध, लुब्ध या भीत आदि भृत्य व्यक्ति हों उनको अपने वश में करके फिर संघों के साथ उनका कलह करा दे।

(१) कुमारकान् विशिष्टच्छन्दिकया हीनच्छन्दिकानुत्साहयेयुः।

(२) विशिष्टानां चैकपात्रं विवाहं हीनेभ्यो वारयेयुः। हीनान् वा विशिष्टैरेकपात्रे विवाहे वा योजयेयुः। अवहीनान् वा तुल्यभावोपगमने कुलतः पौरुषतः स्थानविपर्यासतो वा। व्यवहारमवस्थितं वा प्रतिलोमस्थापनेन निशामयेयुः। विवादपदेषु वा द्रव्यपशुमनुष्याभिघातेन रात्रौ तीक्ष्णाः कलहानुत्पादयेयुः। सर्वेषु च कलहस्थानेषु हीनपक्षं राजा कोशदण्डाभ्यामुपगृह्य प्रतिपक्षवधे योजयेत्, भिन्नानपवाहयेद्वा। एकदेशे समस्तान् वा निवेश्य भूमौ चेषां पञ्चकुलीं दशकुलीं वा कृष्यां निवेशयेत्। एकस्था हि शस्त्रग्रहणसमर्थाः स्युः। समवाये चैषामत्ययं स्थापयेत्।

(३) राजशब्दिभिरवरुद्धमवक्षिप्तं वा कुल्यमभिजातं राजपुत्रत्वे स्था-

---

( १ ) संघ के राजकुमारों में जो अधिक साधनसंपन्न होकर सुखपूर्वक रहते हों उनके मुकाबले में असंपन्न राजकुमारों को भड़का दे।

( २ ) गुप्तचरों को चाहिए कि वे संघ के विशिष्ट व्यक्तियों को उनकी अपेक्षा हीन व्यक्तियों के साथ एक पंक्ति में बैठ कर भोजन करने तथा विवाहादि संबंध करने से वर्जित करें। अथवा हीन व्यक्तियों को विशिष्ट व्यक्तियों के साथ एक पंक्ति में भोजन करने तथा विवाहादि संबंध के लिए प्रेरित करें। अथवा छोटी हैसियत के व्यक्तियों को वड़ी हैसियत के व्यक्तियों के वराबर खानदानी या बहादुरी या स्थानांतर के लिए उत्साहित करें। अथवा संघ द्वारा किसी विवादास्पद विषय का निर्णय किये जाने पर जो निर्णय हुआ हो उसके विपरीत ही वादी को जाकर सुनायें। अथवा रात में तीक्ष्ण गुप्तचर स्वयं ही किसी संघ के द्रव्य, पशु तथा मनुष्यों को नष्ट कर उसको दूसरे संघ वालों का कार्य बताकर प्रचार करे और इस प्रकार के विवादास्पद विषयों को उठाकर उनको आपस में लड़ा दे। जब इस प्रकार के कलह संघों में उत्पन्न हों, तो विजिगीषु को चाहिए कि वह किसी पक्षपात रहित संघ के व्यक्ति को कोप तथा दण्ड के द्वारा अपने वश में कर उससे अपने शत्रु का वध करा डाले। अथवा संघ के विरुद्ध हुए उन व्यक्तियों को संघ से अलग करा दे। अथवा उनको किसी एक प्रदेश में इकट्ठा कर पाँच-पाँच, दस-दस समूहों के छोटे-छोटे गाँवों में बसा दे। क्योंकि यदि उन्हें एक साथ ही बसा दिया जायगा तो संभव है वे लोग फिर कभी अवसर आने पर विजिगीषु के विरुद्ध हथियार उठाने में समर्थ हो सकें, इसलिए उनकी आबादी के बीच में थोड़ी-थोड़ी सेना नियुक्त कर दे।

( ३ ) विजिगीपु को चाहिए कि वह नाममात्र को राजा कहलाने वाले लिच्छिवी आदि क्षत्रिय-संघों से अवरुद्ध या तिरस्कृत, उच्चकुलोत्पन्न गुणी व्यक्ति को राजपुत्र

**पयेत् । कार्तान्तिकादिश्चास्य वर्गो राजलक्षण्यतां सङ्घेषु प्रकाशयेत् । सङ्घमुख्यांश्च धर्मिष्ठानुपजपेत्—'स्वधर्ममममुष्य राज्ञः पुत्रे भ्रातरि वा प्रतिपद्यध्वम्' इति । प्रतिपन्नेषु कृत्यपक्षोपग्रहार्थमर्थं दण्डं च प्रेषयेत् ।**

**(१) विक्रमकाले शौण्डिकव्यञ्जनाः । पुत्रदारप्रेतापदेशेन 'नैषेचनिकम्' इति मदनरसयुक्तान् मद्यकुम्भान् शतशः प्रयच्छेयुः ।**

**(२) चैत्यदैवतद्वाररक्षास्थानेषु च सत्रिणः समयकर्मनिक्षेपं सहिरण्याभिज्ञानमुद्राणि हिरण्यभाजनानि च प्ररूपयेयुः, दृश्यमानेषु च सङ्घेषु 'राजकीयाः' इत्यावेदयेयुः । अथावस्कन्दं दद्यात् ।**

**(३) सङ्घानां वा वाहनहिरण्ये कालिके गृहीत्वा संघमुख्याय प्रख्यातं द्रव्यं प्रयच्छेत् । तदेषां याचिते 'दत्तममुष्मै मुख्याय' इति ब्रूयात् ।**

---

के रूप में नियुक्त करे और संबंधित ज्योतिषी तथा सामुद्रिक लिच्छिवी-संघों में जाकर उस राजपुत्र को राज-लक्षणों से युक्त प्रकाशित करें । उन संघों के जो मुख्य धार्मिक व्यक्ति हैं उनको इस प्रकार बहकाया जाय कि 'अमुक राजपुत्र या राजमाता को संघ के लोग कैद में डाल कर बहुत कष्ट दे रहे हैं; आप ही इस बीच धर्मात्मा व्यक्ति हैं, इसलिए आप ही उस निर्दोष राजपुत्र की रक्षा करें ।' जब संघ के मुख्य लोग इस बात को स्वीकार कर लें तब क्रुद्ध, लुब्ध एवं भीत कृत्य व्यक्तियों को अपने अनुकूल बनाने के लिए संघ के मुख्य व्यक्तियों के पास सहायतार्थ धन तथा सेना भेजी जाय ।

( १ ) जब युद्ध की तैयारी हो जाय; तब शराब बेचने वाले छद्मवेष गुप्तचर अपने स्त्री-पुत्रों के मर जाने का बहाना बनाकर 'यह नैषेचनिक मद्य है, अपने दिवंगत स्त्री-पुत्रों के निमित्त इसको हम आप लोगों के लिए भेंट करते हैं' ऐसा कह कर विष-रस से भरे हुए सैकड़ों घड़े लाकर उन्हें थमा दें ।

( २ ) देवालय तथा अन्य पवित्र स्थानों के दरवाजों पर और रक्षास्थानों के सभी गुप्तचर संघ के मुखिया के साथ शर्त के तौर पर अमानत के रूप में दिया जाने वाला धन, अभिज्ञात सुवर्ण मुद्रा सहित तथा अन्य सुवर्ण के पात्र आदि वस्तुओं को संघ के अन्य व्यक्तियों के समक्ष इस प्रकार प्रकट करें कि वे इस बात को जान लें । बात के खुल जाने पर जब संघ के लोग यह पूछें कि 'यह सुवर्ण का सामान किसका है ?' तब उनको उत्तर दिया जाय कि 'यह राजा का है ।' इस प्रकार संघों में पारस्परिक फूट पड़ जाने के बाद विजिगीषु फौरन उन पर धावा बोल दे ।

( ३ ) अथवा सभी गुप्तचर किसी बहाने से संघ के लोगों से घोड़े, सवारी तथा हिरण्य आदि को नियत समय पर वापिस कर देने के वायदे पर ले ले, और समय आने पर सब लोगों के सामने उस सामान को संघ के मुखिया को वापिस कर दे ।

**(१) एतेन स्कन्धावाराटवीभेदो व्याख्यातः ।**

**(२) सङ्घमुख्यपुत्रमात्मसंभावितं वा सत्री ग्राहयेत्–'अमुष्य राज्ञः पुत्रस्त्वं शत्रुभयादिह न्यस्तोऽसि' इति । प्रतिपन्नं राजा कोशदण्डाभ्यामुपगृह्य सङ्घेषु विक्रमयेत्; अवाप्तार्थस्तमपि प्रवासयेत् ।**

**(३) बन्धकीपोषकाः प्लवकनटनर्तकसौभिका वा प्रणिहिताः स्त्रीभिः परमरूपयौवनाभिः सङ्घमुख्यानुन्मादयेयुः । जातकामानामन्यतमस्य प्रत्ययं कृत्वाऽन्यत्र गमनेन प्रसभहरणेन वा कलहानुत्पादयेयुः । कलहे तीक्ष्णाः कर्म कुर्युः–हतोऽयमित्थं कामुकः' इति ।**

**(४) विसंवादितं वा मर्षयमाणमभिसृत्य स्त्री ब्रूयात्—असौ मां मुख्यस्त्वयि जातकामां बाधते, तस्मिन् जीवति नेह स्थास्यामि' इति घातमस्य प्रयोजयेत् ।**

---

जब वे लोग उससे अपना सामान माँगे तो कह दे कि 'वह सामान मुखिया को वापिस कर दिया गया है ।' इस रीति से सभी गुप्तचर, संघ के लोगों और मुखिया के बीच भेद डाल दें ।

( १ ) अपनी छावनी में प्रविष्ट आटविक लोगों को परस्पर फोड़ने के लिए भी उक्त उपायों को ही उपयोग में लाना चाहिए ।

( २ ) **उपांशुवध** : संघमुख्य के अभिमानी पुत्र को सभी गुप्तचर यह कह कर बहकायें कि 'तू अमुक राजा का पुत्र है, शत्रु भय से यहाँ रख दिया गया है' । यदि संघ मुख्य का पुत्र इस बात को मान जाय तो उसको कोष और सेना की सहायता देकर संघों के ऊपर आक्रमण के लिए भेज दिया जाय । उसके द्वारा जब अपने कार्य की सिद्धि हो जाय तो बाद में उसको भी प्रवासित कर दिया जाय या मार दिया जाय ।

( ३ ) कुलटा स्त्रियों का पालन-पोषण करने वाले या प्लवक, नट, नर्तक और सौभिक वेष में रहने वाले गुप्तचर अत्यंत सुन्दरी यौवन-संपन्न स्त्रियों के द्वारा संघमुख्यों को प्रमादी बनायें । जब स्त्रियों में बहुत से संघमुख्यों की आसक्ति हो जाय तो उनमें से किसी एक को किसी सांकेतिक स्थान पर स्त्री से मिलने का वायदा कर, ठीक समय पर उस स्त्री को वहाँ से किसी दूसरे संघमुख्य के द्वारा अन्यत्र भिजवा दें या उसके द्वारा अपहरण करा दें और बाद में इसी निमित्त उन संघमुख्यों का परस्पर झगड़ा करा दें । झगड़ा होने पर तीक्ष्ण गुप्तचर उनमें से किसी एक संघ मुख्य को मार डालें और बाद में यह अफवाह उड़ा दें कि एक कामी पुरुष ने दूसरे कामी पुरुष का वध कर डाला है ।

( ४ ) यदि उन संघमुख्यों में एक व्यक्ति स्त्री के लिए झगड़ा न करना चाहे तो

**(१) प्रसह्यापहृता वा वनान्ते क्रीडागृहे वापहर्तारं रात्रौ तीक्ष्णेन घातयेत् । स्वयं वा रसेन । ततः प्रकाशयेद्—'अमुना मे प्रियो हतः' इति ।**

**(२) जातकामं वा सिद्धव्यञ्जनः सांवननिकीभिरोषधीभिः संवास्य रसेनातिसन्धायापगच्छेत् । तस्मिन्नपक्रान्ते सत्त्रिणः परप्रयोगमभिशंसेयुः ।**

**(३) आढ्यविधवा गूढाजीवा योगस्त्रियो वा दायनिक्षेपार्थं विवदमानाः संघमुख्यानुन्मादयेयुः इति । अदितिकौशिकस्त्रियो नर्तकीगायना वा प्रतिपन्नान् गूढवेश्मसु रात्रिसमागमप्रविष्टांस्तीक्ष्णा हन्युर्बद्ध्वा हरेयुर्वा ।**

**(४) सत्री वा स्त्रीलोलुपं सङ्घमुख्यं प्ररूपयेत्–'अमुष्मिन् ग्रामे दरिद्रकुलमपसृतं, तस्य स्त्री राजार्हा, गृहाणैनाम्' इति । गृहीतायामर्धमासान्तरं**

---

उसके पास जाकर वह स्त्री कहे 'आपके प्रति मेरी दिली ख्वाहिश होने पर भी अमुक संघमुख्य मुझे आपके पास आने से रोकता है । उसके जीवित रहते मैं आपके पास न आ सकूँगी', इस प्रकार दूसरे संघमुख्य के वध का आयोजन किया जाय ।

( १ ) अथवा बलात् अपहृत स्त्री तीक्ष्ण गुप्तचर द्वारा अपने अपहरण करने वाले व्यक्ति को मरवा डाले, अथवा स्वयं ही उसे विष देकर मार डाले । तदनन्तर यह अफवाह फैलाये कि 'अमुक संघमुख्य कामुक व्यक्ति ने मेरे प्रियतम को मार डाला है ।'

( २ ) अथवा संघमुख्य जब उस स्त्री पर आसक्त हो जाय तो सिद्ध के वेष में रहने वाला गुप्तचर उस स्त्री पर वशीकरण मन्त्र प्रयोग करने के बहाने संघमुख्य व्यक्ति को विषमिश्रित औषधियाँ देकर मार डाले और स्वयं वहाँ से भाग जाय । उसके भाग जाने पर सभी गुप्तचर इस अफवाह को उड़ायें कि 'प्रतिद्वंद्वी किसी कामी पुरुष की प्रेरणा से ही सिद्ध-पुरुष के द्वारा इसको विष देकर मारा है ।'

( ३ ) कोई धनी विधवा, गूढाजीवा ( गरीबी के कारण व्यभिचार करने वाली सधवा ), या स्त्री का कपटवेष धारण करने वाले पुरुष दायभाग या अमानत आदि का विवाद लेकर निर्णय के बहाने संघमुख्यों के पास जाकर उन्हें अपने वश में कर ले । अथवा अदिति ( तरह-तरह के देवताओं के चित्र दिखाकर जीविका कमाने वाली ) स्त्रियाँ, या कौशिक स्त्रियाँ ( सँपेरों की स्त्रियाँ ) या नाचने-गाने वाली स्त्रियाँ ही संघमुख्यों को अपने वश में करें । जब संघमुख्य उन स्त्रियों के जाल में फँस जायँ और उनसे सम्भोग करने के लिए किसी निश्चित स्थान का संकेत कर दें, तब एकान्त में उन स्थानों पर रात में संभोग करते हुए संघमुख्यों को तीक्ष्ण गुप्तचर मार डाले या बाँध कर उनका अपहरण कर लें ।

( ४ ) अथवा स्त्रीलोलुप संघमुख्य को सभी गुप्तचर यह कह कर बहकायें कि 'अमुक गाँव का एक गरीब व्यक्ति जीविकोपार्जन के लिए विदेश चला गया है ।

**सिद्धव्यञ्जनो दूष्यः सङ्घमुख्यमध्ये प्रक्रोशेत्—'असौ मे मुख्यां भार्यां स्नुषां भगिनीं दुहितरं वाधिचरति' इति । तं चेत्सङ्घो निगृह्णीयात्, राजैनमुपगृह्य विगुणेषु विक्रमयेत् । अनिगृहीते सिद्धव्यञ्जनं हि रात्रौ तीक्ष्णाः प्रवासयेयुः । ततस्तद्व्यञ्जनाः प्रक्रोशेयुः—असौ ब्रह्महा ब्राह्मणीजारश्च' इति ।**

**(१) कार्तान्तिकव्यञ्जनो वा कन्यामन्येन वृतामन्यस्य प्ररूपयेत्—'अमुष्य कन्या राजपत्नी राजप्रसविनी च भविष्यति, सर्वस्वेन प्रसह्य वैनां लभस्व' इति । अलभ्यमानायां परपक्षमुद्धर्षयेत् । लब्धायां सिद्धः कलहः ।**

**(२) भिक्षुकी वा प्रियभार्यं मुख्यं ब्रूयात्—'असौ ते मुख्यो यौवनोत्सिक्तो भार्यायां मां प्राहिणोत्; तस्याहं भयाल्लेख्यमाभरणं गृहीत्वाऽऽगतास्मि,**

---

उसकी रूपवती स्त्री राजा के योग्य है। आप उसको ले लें।' यदि वह संघमुख्य उस स्त्री को ग्रहण कर ले तो पन्द्रह दिन के बाद सिद्ध-वेषधारी दूष्य पुरुष संघमुख्यों के पास आकर शोर मचाता हुआ इस प्रकार कहे 'यह संघमुख्य मेरी पत्नी या पुत्रवधू या बहिन या लड़की को बलात् उपभोग करता है।' इस बात को सुनकर संघ के लोग यदि उस संघमुख्य को गिरफ्तार कर लें तो विजिगीषु राजा उस गिरफ्तार व्यक्ति को अपनी ओर मिलाकर, विरोधी संघों के साथ उसको युद्ध करने के लिए खड़ा कर दे। यदि उसको गिरफ्तार न किया जाय तो सिद्ध के वेष में आये हुए उस दूष्य पुरुष को तीक्ष्ण गुप्तचर रात में मार डालें। उसके बाद वही तीक्ष्ण गुप्तचर सिद्ध का वेष धारण कर यह शोर मचाये कि 'अमुक संघमुख्य ब्रह्म-हत्यारा है। यह ब्राह्मणी का बलात् उपभोग करता है और इसी ने ब्राह्मण को भी मार डाला है।'

( १ ) ज्योतिषी के वेष में रहने वाले सभी गुप्तचर किसी दूसरे संघमुख्य द्वारा वरण की हुई कन्या को किसी दूसरे ही संघमुख्य के लिए बतलाकर उससे कहे कि 'अमुक व्यक्ति की कन्या से जो व्याह करेगा वह राजा होगा और उससे जो पुत्र होगा वह भी राजा बनेगा। इसलिए अपना सर्वस्व लगाकर अथवा बलात्कार द्वारा ही उसको अवश्य प्राप्त करो।' इसके बाद यत्न करने पर भी यदि वह संघमुख्य उस कन्या को प्राप्त न कर सके तो जिस घर में उस कन्या का विवाह हुआ है उन लोगों को इसके विरुद्ध उभाड़े। यदि वह कन्या को प्राप्त कर ले तब दोनों संघमुख्यों में झगड़ा होना निश्चित है।

( २ ) अथवा भिक्षुकी के वेष में रहने वाली गुप्तचर पर किसी ऐसे संघमुख्य के पास, जो कि अपनी स्त्री पर बुरी तरह आसक्त है, जाकर यह कहे 'अपने यौवन के अभिमान में अमुक संघमुख्य ने आपकी स्त्री के साथ समागम करने की इच्छा से दूती बनाकर मुझे भेजा है, भय से विवश होकर वह प्रेमपत्र और यह आभूषण

**निर्दोषा ते भार्या; गूढमस्मिन् प्रतिकर्तव्यम् । अहमपि तावत्प्रतिपत्स्यामि' इति । एवमादिषु कलहस्थानेषु स्वयमुत्पन्ने वा कलहे तीक्ष्णैरुत्पादिते वा हीनपक्षं राजा कोशदण्डाभ्यामुपगृह्य विगुणेषु विक्रमयेदपवाहयेद् वा ।**

**(१) सङ्घेष्वेवमेकराजो वर्तेत । सङ्घाश्चाप्येवमेकराजादेतेभ्योऽतिसन्धानेभ्यो रक्षयेयुः ।**

**(२) सङ्घमुख्यश्च सङ्घेषु न्यायवृत्तिहितः प्रियः ।**
**दान्तो युक्तजनस्तिष्ठेत्सर्वचित्तानुवर्तकः ॥**

इति संघवृत्ते एकादशेऽधिकरणे भेदोपादानानि उपांशुदण्डश्चेति प्रथमोऽध्यायः; आदितश्चतुस्त्रिंशदधिकशततमः ।

समाप्तमिदं संघवृत्तं नाम एकादशमधिकरणम् ।

—: ० :—

---

आदि उपहार लेकर मुझे यहाँ आना पड़ा है। आपकी पत्नी सर्वथा निर्दोष है। इसलिए आप चुपचाप ही उस संघमुख्य का वध कर डालें। जब तक उसकी हत्या नहीं की जायगी तव तक डर के मारे मैं भी यहाँ से नहीं जा सकती हूँ।' इस प्रकार कलह के कारणों के उत्पन्न होने पर अथवा तीक्ष्ण आदि गुप्तचरों द्वारा उत्पन्न किये जाने पर कमजोर संघमुख्य को विजिगीषु कोष तथा सेना की यथोचित सहायता देकर अपने वश में कर ले और अवसर आने पर उसे विरोधी संघमुख्यों के मुकाबले में युद्ध के लिए तैयार कर दे। यदि वह युद्ध करने में असमर्थ हो तो उसे अपने देश से बाहर कर दे।

( १ ) इस प्रकार विजिगीषु उन संघमुख्यों पर अपना आधिपत्य जमाये रखे और संघों को भी उचित है कि वे इस प्रकार की चेष्टा करने वालों तथा उनके द्वारा फैलाये गये षड्यन्त्रों से अपनी रक्षा करते रहें।

( २ ) अतः संघमुख्य को चाहिए कि वह संघों के बीच में न्यायपूर्ण हितकारी और प्रिय व्यवहार करे। कभी भी उद्धत होकर बर्ताव न करे और अपने अनुकूल व्यक्तियों को सदा अपने समीप रखे तथा सब संघों के व्यक्तियों की राय से राज-व्यवहार चलाये।

संघवृत्त नामक ग्यारहवें अधिकरण में भेदोपादान-उपांशुदण्ड नामक पहला अध्याय समाप्त।

—: ० :—

## बारहवाँ अधिकरण

•

# आबलीयस

प्रकरण १६२

अध्याय १

# दूतकर्माणि

(१) बलीयसाऽभियुक्तो दुर्बलः सर्वत्रानुप्रणतो वेतसधर्मा तिष्ठेत्। 'इन्द्रस्य हि स प्रणमति यो बलीयसो नमति' इति भारद्वाजः।

(२) 'सर्वसन्दोहेन बलानां युध्येत, पराक्रमो हि व्यसनमपहन्ति। स्वधर्मश्चैष क्षत्रियस्य, युद्धे जयः पराजयो वा' इति विशालाक्षः।

(३) नेति कौटिल्यः। सर्वत्रानुप्रणतः कुलैडक इव निराशो जीविते वसति। युध्यमानश्चाल्पसैन्यः समुद्रमिवाप्लवोऽवगाहमानः सीदति। तद्विशिष्टं तु राजानमाश्रितो दुर्गमविषह्यं वा चेष्टेत।

## दूतकर्म

( १ ) 'जब किसी दुर्बल राजा पर कोई बलवान् राजा आक्रमण करे तो उसे चाहिए कि वह हर प्रकार का अपमान सहन करता हुआ उसके सामने बेत की तरह झुक जाय। जो अपने से बलवान् राजा के सामने झुकता है, वह दंड के सामने झुकता है'—यह आचार्य भारद्वाज का मत है।

( २ ) किन्तु इसके विरुद्ध आचार्य विशालाक्ष की राय है कि 'दुर्बल राजा को चाहिए कि वह अपनी सारी सैन्य-शक्ति को लगाकर बलवान् राजा के साथ युद्ध करे; क्योंकि पराक्रम ही आपत्तियों को नष्ट करता है और पराक्रम तो क्षत्रिय का धर्म है। युद्ध में विजय हो या पराजय, क्षत्रिय को अपने क्षात्रधर्म का पालन करना चाहिए; शत्रु के आगे कदापि न झुकना चाहिए।'

( ३ ) किन्तु आचार्य कौटिल्य उक्त दोनों मतों से सहमत नहीं है। उसका कहना है कि 'जो दुर्बल राजा हर तरह का अपमान होने पर भी नम्र ही बना रहता है उसका जीवन वैसा ही दूभर हो जाता है, जैसा कि अपने समूह से अलग हुए मेंढे का। इसी प्रकार थोड़ी सेना को लेकर जो युद्ध में जाता है उसकी वही स्थिति है; जो तैरने के साधनों को साथ लिये बिना ही समुद्र में कूद पड़ता है। इसलिए दुर्बल राजा को चाहिए कि वह अपने प्रतिद्वंद्वी राजा के सामने या उससे भी अधिक शक्तिशाली किसी दूसरे राजा का आश्रय प्राप्त करे। अथवा ऐसे दुर्ग में जाकर शत्रु का मुकाबला करे, जो कि अभेद्य हो।

**(१) त्रयोऽभियोक्तारो धर्मलोभासुरविजयिन इति। तेषामभ्यवपत्त्या धर्मविजयी तुष्यति; तमभ्यवपद्येत परेषामपि भयात्। भूमिद्रव्यहरणेन लोभविजयी तुष्यति; तमर्थेनाभ्यवपद्येत। भूमिद्रव्यपुत्रदारप्राणहरणेन असुरविजयी, तं भूमिद्रव्याभ्यामुपगृह्याग्राह्यः प्रतिकुर्वीत।**

**(२) तेषामुत्तिष्ठमानं सन्धिना मंत्रयुद्धेन कूटयुद्धेन वा प्रतिव्यूहेत। शत्रुपक्षमस्य सामदानाभ्यां, स्वपक्षं भेददण्डाभ्याम्। दुर्गं राष्ट्रं स्कन्धावारं वास्य गूढाः शस्त्ररसाग्निभिः साधयेयुः।**

**(३) सर्वतः पार्ष्णिमस्य ग्राहयेत्, अटवीभिर्वा राज्यं घातयेत्, तत्कुलीनावरुद्धाभ्यां वा हारयेत्।**

**(४) अपकारान्तेषु चास्य दूतं प्रेषयेत्। अनपकृत्य वा सन्धानम्। तथाप्यभिप्रयान्तं कोशदण्डयोः पादोत्तरमहोरात्रोत्तरं वा सन्धिं याचेत।**

---

(१) दुर्बल राजा पर आक्रमण करने वाला बलवान् राजा तीन प्रकार का होता है: १. धर्मविजयी २. लोभविजयी और ३. असुरविजयी। उनमें धर्मविजयी तो आत्मसमर्पण करने से संतुष्ट हो जाता है। उस धर्मविजयी राजा की शाखा में जाने से दुर्बल राजा अपने वर्तमान संकट को तो दूर कर ही लेता है, वरन् दूसरे बलवान् राजाओं से भी वह अपनी रक्षा कर लेता है लोभविजयी राजा भूमि और धन देने से संतुष्ट हो जाता है। इसलिए दुर्बल राजा धनादि देकर उसको संतुष्ट करे। किन्तु असुरविजयी राजा तो भूमि, द्रव्य, स्त्री, पुत्र और प्राणों तक ले लेने के बाद ही सूझता है। इसलिए उससे दूर रहकर ही उसको भूमि आदि देकर अपने अनुकूल बनाना चाहिए या संधि आदि के द्वारा उसका प्रतीकार करना चाहिए।

(२) यदि उक्त राजाओं में से कोई राजा दुर्बल राजा पर आक्रमण करे तो संधि, मंत्र-युद्ध अथवा कूट-युद्ध के द्वारा उसका मुकाबला करना चाहिए। उस बलवान् अभियोक्ता के शत्रुपक्ष को साम तथा दाम द्वारा अपने अनुकूल बनाना चाहिए और अपने प्रकृतिवर्ग को भेद तथा दण्ड द्वारा अपने वश में रखना चाहिए। उस प्रबल राजा के दुर्ग, राष्ट्र तथा छावनियों को अपने गुप्तपुरुषों द्वारा शस्त्र, विष तथा अग्नि आदि से नष्ट कर देना चाहिए।

(३) यथावसर उसके आगे-पीछे, अगल-बगल से छापा मारना चाहिये; अथवा आटविक पुरुषों द्वारा उसके दुर्ग, जनपद को नष्ट करवा देना चाहिए; अथवा उसके द्वारा अवरुद्ध उसके किसी बंधु-बांधव द्वारा ही उसके राज्य का अपहरण करवा देना चाहिए।

(४) इस प्रकार उसका अनिष्ट कर देने के बाद संधि के लिए उसके पास अपना दूत भेजना चाहिए। अथवा यदि उसका अनिष्ट न किया जा सके तो उससे

**(१) स चेद्दण्डसंधिं याचेत, कुण्ठमस्मै हस्त्यश्वं दद्यात्। उत्साहितं वा गरयुक्तम्।**

**(२) पुरुषसंधिं याचेत, दूष्यामित्राटवीबलमस्मै दद्याद्योगपुरुषाधिष्ठितम्। तथा कुर्याद्यथोभयविनाशः स्यात्। तीक्ष्णबलं वाऽस्मै दद्यात्, यदवमानितं विकुर्वीत। मौलमनुरक्तं वा, यदस्य व्यसनेऽपकुर्यात्।**

**(३) कोशसंधिं याचेत, सारमस्मै दद्यात्। यस्य क्रेतारं नाधिगच्छेत्; कुप्यमयुद्धयोग्यं वा।**

**(४) भूमिसंधिं याचेत, प्रत्यादेयां नित्यामित्रामनपाश्रयां महाक्षयव्ययनिवेशां वास्मै भूमिं दद्यात्।**

**(५) सर्वस्वेन वा राजधानीवर्जेन संधिं याचेत बलीयसः।**

---

संधि की याचना करनी चाहिए। यदि वह इतने पर भी रजामंद न हो और चढ़ाई करने पर ही आमादा हो तो पूर्वप्रतिज्ञात धन में अपने कोष तथा सेना का चौथाई भाग अधिक बढ़ाकर उससे संधि के लिए याचना करनी चाहिए।

( १ ) यदि वह बलवान् अभियोक्ता संधि की शर्तों में केवल सेना को ही लेना चाहे तो सर्वथा अशक्त हाथी, घोड़े अथवा विष खिलाकर सशक्त हाथी, घोड़े देकर संधि कर लेनी चाहिए।

( २ ) यदि वह संधि की शर्तों में पैदल सेना की माँग करे तो अपने गुप्तचरों को साथ मिलाकर दूष्यबल, शत्रुबल तथा आटविकबल शर्तनामा में देने चाहिए और इस प्रकार का प्रबंध करे कि अपनी वे दूष्य आदि सेनायें तथा शत्रु की सेनायें नष्ट हो जायँ। अथवा ऐसे तीक्ष्ण बल को देना चाहिए जो थोड़ी सी बात पर बिगड़ उठे और शत्रु का अपकार करने के लिए तैयार हो जाय। अथवा वंशपरंपरा से चली आती अनुरक्त तथा विश्वासी सेना को संधि में देना चाहिए, जो आपत्ति के समय शत्रु का अपकार कर सके।

( ३ ) यदि अभियोक्ता संधि के बदले में धन लेना पसंद करे तो ऐसे बहुमूल्य रत्न आदि दिये जायँ, जिन्हें कोई न खरीद सके अथवा ऐसा सामान दिया जाय जो युद्ध में काम न आ सके।

( ४ ) यदि अभियोक्ता भूमिसंधि की माँग करे तो उसको ऐसी भूमि दी जाय, जिसको आसानी से वापस लिया जा सके अथवा जिसके स्थायी शत्रु हों या जिसमें कोई दुर्ग न हो और जिसमें अधिक क्षय-व्यय की आशंका हो।

( ५ ) अथवा जो अत्यंत बलवान् अभियोक्ता हो उसको राजधानी के अलावा अपना सर्वस्व देकर, उससे संधि कर लेनी चाहिए।

(१) यत्प्रसह्य हरेदन्यस्तत्प्रयच्छेदुपायतः।
रक्षेत्स्वदेहं न धनं का ह्यनित्ये धने दया ॥

इति आबलीयसनाम्नि द्वादशेऽधिकरणे दूतकर्मणि सन्धियाचनं नाम
प्रथमोऽध्यायः; आदितः पञ्चत्रिंशदधिकशततमः ।

—: ० :—

---

( १ ) यदि कोई बलवान् अभियोक्ता किसी दुर्बल राजा से बलात् धन आदि का अपहरण करे तो वह धन संधि आदि के बहाने उसी को दे देना चाहिए। धन की की अपेक्षा अपने प्राणों की अधिक रक्षा करनी चाहिए, क्योंकि अनित्य धन पर अधिक मोह करना ठीक नहीं है। यदि जीवन रहेगा तो नष्ट हुआ धन फिर से पैदा किया जा सकता है।

आबलीयस नामक बारहवें अधिकरण में दूतकर्म नामक
पहला अध्याय समाप्त ।

—: ० :—

# मन्त्रयुद्धम्

(१) स चेत्सन्धौ नावतिष्ठेत, ब्रूयादेनम्—'इमे षड्वर्गवशगा राजानो विनष्टाः, तेषामनात्मवतां नार्हसि मार्गमनुगन्तुम्, धर्ममर्थं चावेक्षस्व, मित्रमुखा ह्यमित्रास्ते ये त्वां साहसधर्ममर्थातिक्रमं व ग्राहयन्ति, शूरैस्त्यक्तात्मभिः सह योद्धुं साहसं जनक्षयमुभयतः कर्तुमधर्मः; दृष्टमर्थं मित्रमदुष्टं च त्यक्तुमर्थातिक्रमः। मित्रवांश्च स राजा भूयश्चैतेन अर्थेन मित्राण्युद्योजयिष्यति, यानि त्वा सर्वतोऽभियास्यन्ति। न च मध्यमोदासीनयोर्मण्डलस्य वा परित्यक्तः, भवांस्तु परित्यक्तो ये त्वां समुद्युक्तमुपप्रेक्षन्ते—'भूयः क्षयव्ययाभ्यां युज्यतां, मित्राच्च भिद्यताम्, अथैनं परित्यक्तमूलं सुखेनोच्छेत्स्याम' इति। स भवान नार्हति मित्रमुखानाममित्राणां श्रोतुं मित्राण्युद्वेज-

## मंत्रयुद्ध

(१) यदि प्रबल अभियोक्ता संधि के लिए राजी न हो तो उससे कहा जाय कि 'देखिए; काम, क्रोधादि अरि षड्वर्ग के चंगुल में फँस कर इन विनष्ट हुए राजाओं का उदाहरण आपके सामने प्रत्यक्ष है, आपको ऐसे नीच-राजाओं का अनुसरण करना शोभा नहीं देता है, अपने धर्म और अर्थ की ओर तो देखिए। आपके ये ऊपरी मित्र वस्तुतः आपके भीतरी शत्रु हैं, जो आपको युद्ध, अधर्म और अपव्यय की ओर प्रेरित कर रहे हैं, अपने प्राणों को हथेली पर रखकर दूसरे बलवान् राजा के साथ युद्ध करना ही तो साहस है, उसमें दोनों ओर के आदमियों का नाश होता है, यही तो अधर्म है; विद्यमान धन और अत्यन्त सज्जन मित्र को छोड़ने के लिए आपको जो प्रोत्साहित किया जा रहा है, वही तो धन का अपव्यय है; उस राजा के और भी मित्र हैं, इसी धन से वह अपने उन मित्रों को साथ लेकर आप पर ही आक्रमण कर देगा; मध्यम और उदासीन राजा भी उसकी मदद के लिए तैयार बैठे हैं; लेकिन आपको तो उन्होंने त्याग दिया है, युद्ध के लिए तैयार आपको वे लोग चुपचाप देख रहे हैं कि आपके प्रभूत जन-धन का नाश हो जाय और आपका अपने मित्र के साथ मतभेद हो जाय, इस प्रकार जब आपकी सारी शक्ति क्षीण हो जायेगी और जब आप अपनी राजधानी को छोड़कर युद्ध में चले जायँगे तो वे बड़ी सरलता से आपका उच्छेद कर देंगे, इसलिए आपके लिए यही उचित है कि ऊपर से मित्र बने

**यितुम्, अमित्रांश्च श्रेयसा योक्तुम्, प्राणसंशयमनर्थं चोपगन्तुम्' इति। यच्छेत्।**

**(१) तथापि प्रतिष्ठमानस्य प्रकृतिकोपमस्य कारयेद् यथा संघवृत्ते व्याख्यातं, योगवामने च। तीक्ष्णरसदप्रयोगं च। यदुक्तमात्मरक्षितके रक्ष्यं, तत्र तीक्ष्णान् रसदांश्च प्रयुञ्जीत।**

**(२) बन्धकीपोषकाः परमरूपयौवनाभिः स्त्रीभिः सेनामुख्यानुन्मादयेयुः। बहूनामेकस्यां द्वयोर्वा मुख्ययोः कामे जाते तीक्ष्णाः कलहानुत्पादयेयुः। कलहे पराजितपक्षं परत्रापगमने यात्रासाहाय्यदाने वा भर्तुर्योजयेयुः।**

**(३) कामवशान् वा सिद्धव्यञ्जनाः सांवननिकीभिरोषधिभिरतिसन्धानाय मुख्येषु रसं दापयेयुः।**

**(४) वैदेहकव्यञ्जनो वा राजमहिष्याः सुभगायाः प्रेष्यामासन्नां काम-**

---

उन भीतरी शत्रुओं का आप विश्वास न करें, अपने मित्रों को खिन्न कर शत्रुओं के कल्याण-साधन मत बनायें, अपने प्राणों को विपत्ति में डालकर अपने धन का इस प्रकार अपव्यय न कीजिए।' इस प्रकार समझाये गये राजा को जिस शर्त पर संधि के लिए तैयार किया जाय, उस शर्त को पूरा करके संधि को पक्की बनाने के लिए यत्न किया जाना चाहिए।

( १ ) यदि इस प्रकार समझाने-बुझाने पर भी वह राजी न हो और युद्ध के लिए तैयार हो तो **संघवृत्त** तथा **योगवृत्त** अधिकरणों में निर्दिष्ट उपायों के द्वारा उसके प्रकृतिमंडल को कुपित कर देना चाहिए। उस आक्रमणकारी को मारने के लिए तीक्ष्ण तथा रसद गुप्तचर नियुक्त किये जाँय। **आत्मरक्षित** प्रकरण में जिन रक्षायोग्य स्थानों का निरूपण किया गया है वहाँ पर तीक्ष्ण तथा रसद आदि गुप्तचरों को नियुक्त कर उस राजा का काम तमाम कर देना चाहिए।

( २ ) कुलटा स्त्रियों का पालन-पोषण करने वाले गुप्तचरों को चाहिए कि वे सुन्दर रूपवती युवती स्त्रियों के द्वारा सेना के प्रमुख व्यक्तियों को प्रमादी बनवा दें, जब बहुत सारे अथवा दो सेनामुख्यों को एक ही स्त्री में कामासक्ति हो जाय तब तीक्ष्ण गुप्तचर उनमें परस्पर कलह पैदा कर दें। आपसी झगड़े में जो हार जाय उसको विजिगीषु के पक्ष में भेज दिया जाय और जब विजिगीषु आक्रमण करने लगे तब सहायतार्थ उसको नियुक्त किया जाय।

( ३ ) अथवा जो सेना मुख्य कामासक्त हों, उन्हें सिद्ध के वेश में रहने वाले गुप्तचर वशीकरण द्वारा उस सुन्दरी युवती को वश में करने के उपायों का बहाना करके विषमिश्रित औषधि खिलाकर मार डालें।

( ४ ) व्यापारी के वेश में रहने वाला गुप्तचर अति सुन्दरी पटरानी की अंतरंग

**निमित्तमर्थेनाभिवृष्य परित्यजेत्। तस्यैव परिचारकव्यञ्जनोपदिष्टः सिद्धव्यञ्जनः सांवननिकीमोषधिं दद्याद्, वैदेहकशरीरेऽवघातव्येति। सिद्धे सुभगाया अप्येनं योगमुपदिशेद्—राजशरीरेऽवघातव्या इति। ततो रसेनातिसन्दध्यात्।**

**(१) कार्तान्तिकव्यञ्जनो वा महामात्रं राजलक्षणसम्पन्नं क्रमाभिनीतं ब्रूयात्। भार्यामस्य भिक्षुकी—'राजपत्नी राजप्रसविनी वा भविष्यसि' इति।**

**(२) भार्याव्यञ्जना वा महामात्रं ब्रूयात्—'राजा किल मामवरोधयिष्यति, तवान्तिकाय पत्रलेख्यमाभरणं चेदं परिव्राजिकयाऽऽहृतम्' इति।**

**(३) सूदारालिकव्यञ्जनो वा रसप्रयोगार्थं राजवचनामर्थं चास्य**

---

सेविका को प्रचुर धन दे कर अपने उपभोग के लिए उसे फुसलाये और एक बार उसका भोग कर दुबारा उसके पास न जाये। फिर उसी गुप्तचर से प्रेरित होकर दूसरा सिद्ध वेषधारी उस पटरानी की सेविका को वशीकरण औषधि देकर उससे कहे कि 'इस औषधी को अपने व्यापारी प्रेमी के शरीर पर छिड़क देना, वह तुम्हारे वश में हो जायेगा।' जव दिखावा मात्र के लिए वह व्यापारी वेषधारी गुप्तचर उस सेविका के वश में हो जाय तव उस सुन्दरी पटरानी को भी वशीकरण के प्रयोग का उपदेश दिया जाय। उससे कहा जाय कि 'इस औषधि को राजा के शरीर पर छिड़क देने से वह तुम्हारे कावू में हो जायेगा।' उस वशीकरण योग में विष मिलाकर इस प्रकार राजा का वध कर दिया जाय।

( १ ) अथवा ज्योतिषी ( कार्तान्तिक ) के वेश में रहने वाला गुप्तचर, विश्वासी राजलक्षण-संपन्न महामात्र को यह कहकर फुसलाये कि 'तुम अवश्य ही राजा बनोगे।' और भिक्षुकी गुप्तचर स्त्री द्वारा उस महामात्र की पत्नी को कहला दिया जाय कि 'तुम पटरानी बनोगी और तुम राजा होने योग्य पुत्र को पैदा करोगी।' इस प्रकार राजा बनने की इच्छा रखने वाले महामात्र का राजा से विरोध हो जायेगा।

( २ ) अथवा महामात्र की स्त्री बनकर रहने वाली छद्मवेश स्त्री उससे कहे कि 'राजा मुझे अवश्य ही अपने अंतःपुर में रोक लेगा। दूती द्वारा लाये गये तुम्हारे नाम के इस पत्र और इन आभरणों से यह साफ जाहिर होता है।' ऐसा करने से भी महामात्र का राजा के साथ विरोध हो जायेगा।

( ३ ) अथवा रसोइया ( सूद ) और मांस बनाने वालों ( आरालिक ) के वेष में रहने वाले गुप्तचर विष का प्रयोग करने के लिए राजा के गुप्त कथन को तथा इस लोभ में डालने के लिए दिये हुए राजा के धन को कि, महामात्र को मारना है,

**लोभनीयमभिनयेत् ; तदस्य वैदेहकव्यञ्जनः प्रतिसन्दध्यात्, कार्यसिद्धिं च ब्रूयात् । एवमेकेन द्वाभ्यां त्रिभिरित्युपायैरेकैकमस्य महामात्रं विक्रमायापगमनाय वा योजयेदिति ।**

**(१) दुर्गेषु चास्य शून्यपालासन्नाः सत्रिणः पौरजानपदेषु मैत्रीनिमित्तमावेदयेयुः—'शून्यपालेनोक्ता योधाश्च अधिकरणस्थाश्च—'कृच्छ्रगतो राजा जीवन्नागमिष्यति न वा; प्रसह्य वित्तमार्जयध्वममित्रांश्च हत' इति । बहुलीभूते तीक्ष्णाः पौरान् निशास्वाहारयेयुः, मुख्यांश्चाभिहन्युः—'एवं क्रियन्ते, ये शून्यपालस्य न शुश्रूषन्ते' इति । शून्यपालस्थानेषु च सशोणितानि 'शस्त्रवित्तबन्धनान्युत्सृजेयुः । ततः सत्रिणः—'शून्यपालो घातयति विलोपयति च' इत्यावेदयेयुः ।**

**(२) एवं जानपदान्समाहर्तुर्भेदयेयुः ।**

---

महामात्र के सामने प्रकट कर दें । ठीक उसी समय व्यापारी के वेष में रहने वाला गुप्तचर महामात्र के पास आकर साक्षी रूप में कहे कि 'राजा के कहने से मैंने तुम्हारे सूद और आरालिक को विष दिया था; मैं नहीं जानता कि वे किस उद्देश्य के लिए ले गये थे ।' और यह भी बता दे कि इस विष से तत्काल ही मृत्यु हो सकती है ।' इस प्रकार विजिगीषु के गुप्तचर एक, दो या तीनों प्रयोगों से महामात्र को राजा के विरुद्ध बनाकर दोनों को युद्ध के लिए उभाड़ दें ।

( १ ) शत्रु के स्थानीय दुर्गों में रहने वाले शून्यपाल की ओर सभी गुप्तचर नगरवासियों तथा जनपदवासियों से कहे 'शून्यपाल ने सेनाओं और राजकर्मचारियों से कहा है कि राजा महान् विपत्ति में फँस गया है । कहा नहीं जा सकता कि वह जीवित लौट भी सकेगा या नहीं ! इसलिए बलपूर्वक आप यथेच्छया जनता से धन लूटें और जो बाधा डाले उसको मार डालें ।' जब शून्यपाल की यह आज्ञा सर्वत्र फैल जाय तब तीक्ष्ण गुप्तचर अपने आदमियों को रात में नगर की लूट-पाट करने के लिए प्रेरित करें और नगर के प्रमुख व्यक्तियों को मरवा डालें । सब जगह इस बात को फैला दें कि 'जो शून्यपाल का कहना न मानेंगे उनकी यही हालत की जायेगी ।' इसी बीच वे रक्त से भीगे अस्त्र-शस्त्र तथा रस्सी आदि को शून्यपाल के स्थान में रखवा दें । तदनन्तर सभी गुप्तचर इस बात का प्रचार करें कि 'यह शून्यपाल ही सब लोगों को मरवाता तथा लुटवाता है' इस तरीके से शून्यपाल तथा प्रजा में लड़ाई करा दी जाय ।

**( २ ) इसी प्रकार समाहर्त्ता ( टैक्स कलैक्टर ) और जनपदवासियों के बीच फूट डाली जाय ।**

**(१) समाहर्तृपुरुषांस्तु ग्राममध्येषु रात्रौ तीक्ष्णा हत्वा ब्रूयुः—'एवं क्रियन्ते, ये जनपदमधर्मेण बाधन्ते' इति ।**

**(२) समुत्पन्ने दोषे शून्यपालं समाहर्तारं वा प्रकृतिकोपेन घातयेयुः । तत्कुलीनमवरुद्धं वा प्रतिपादयेयुः ।**

**(३) अन्तःपुरपुरद्वारद्रव्यधान्यपरिग्रहान् ।**
**दहेयुस्तांश्च हन्युर्वा ब्रूयुरस्यार्तवादिनः ॥**

इति आबलीयसे द्वादशेऽधिकरणे मन्त्रयुद्धं नाम द्वितीयोऽध्यायः;
आदितः षड्त्रिंशदधिकशततमः ।

—: ० :—

---

( १ ) समाहर्ता के आदमियों को रात के समय गाँव के मध्य में मारकर तीक्ष्ण गुप्तचर यह प्रचार करें कि 'जो लोग अधर्मपूर्वक प्रजावर्ग को पीड़ित करते हैं उनकी यही दशा होती है ।'

( २ ) जब शून्यपाल और समाहर्ता, दोनों के ऐसे कुकर्म सर्वत्र फैल जायँ और उनसे प्रजाजन पूरी तरह कुपित हो जायँ, तब सभी गुप्तचर उनका भी वध कर डालें और उस शत्रु राजा के किसी बन्धु-बांधव को या नजरबन्द राजकुमार को सिंहासन पर बैठा दें ।

( ३ ) उसके बाद तीक्ष्ण गुप्तचर अंतःपुर, पुरद्वार ( नगर का प्रधान द्वार ), द्रव्य परिग्रह ( लकड़ी-वस्त्र के गोदाम ) और धान्य परिग्रह ( अन्नभंडार ) आदि को जला दें तथा उन स्थानों के रक्षकों को मार डालें । तदनन्तर स्वयं इस दुर्घटना के लिए हार्दिक दुःख प्रकट करते हुए, इस कार्य को नगर या गाँव के लोगों का किया हुआ बतायें ।

आबलीयस नामक बारहवें अधिकरण में मन्त्रयुद्ध नामक
दूसरा अध्याय समाप्त ।

—: ० :—

# सेनामुख्यवधः मण्डलप्रोत्साहनं च

**(१) राज्ञो राजवल्लभानां चासन्नाः सत्रिणः पत्त्यश्वरथद्विपमुख्यानां 'राजा क्रुद्धः' इति सुहृद्विश्वासेन मित्रस्थानीयेषु कथयेयुः। बहुलीभूते तीक्ष्णाः कृतरात्रिचारप्रतीकाराः गृहेषु 'स्वामिवचनेन आगम्यताम्' इति ब्रूयुः तान्निर्गच्छत एवाभिहन्युः। 'स्वामिसन्देशः' इति चासन्नान् ब्रूयुः। ये च प्रवासितास्तान् सत्रिणो ब्रूयुः—'एतत्तद् यदस्माभिः कथितं जीवितुकामेन अपक्रान्तव्यम्' इति।**

**(२) येभ्यश्च राजा याचितो न ददाति तान् सत्रिणो ब्रूयुः—'उक्तः शून्यपालो राज्ञा—अयाच्यमर्थमसौ चासौ मा याचते, मया प्रत्याख्याताः शत्रुसंहिताः, तेषामुद्धरणे प्रयतस्व' इति। ततः पूर्ववदाचरेत्।**

## सेनापतियों का वध और राजमण्डल की सहायता

(१) राजा तथा राजा के प्रियजनों के निकट मित्र बनकर रहने वाले सभी गुप्तचर : पैदल, घुड़सवार, रथसवार तथा हाथीसवार सेनाओं के अध्यक्षों और महामात्रों के मित्रों के यहाँ जाकर अत्यन्त विश्वासी मित्रों की तरह उससे कहें कि 'सेनाध्यक्ष आदि पर राजा कुपित हो गया है।' जब यह प्रवाद सर्वत्र फैल जाय तब, रात्रिभ्रमण की निषेधाज्ञा में भ्रमण करने की अनुमति प्राप्त कर सभी गुप्तचर घर-घर में जाकर सेनाध्यक्ष आदि से कहें कि 'स्वामी की आज्ञा से आप लोगों को तत्काल स्वामी के पास जाना चाहिए।' और जब वे बाहर निकलें तो उन्हें मरवा डालें। तदनन्तर मित्र के वेष में रहने वाले तीक्ष्ण गुप्तचर सभी गुप्तचरों से कहें कि हमने यह सब कार्य स्वामी की आज्ञा से किया है। जो सेनापति आदि पहिले ही राजा को छोड़ कर चले गये हैं उनसे सभी गुप्तचर कहें 'देखिए, जो हमने कहा था वही हुआ न, कि जो भी अपनी जान बचाना चाहे वह यहाँ से भाग जाय।'

(२) किसी के द्वारा कोई वस्तु माँगी जाने पर राजा जब उस वस्तु को न दे तो उस माँगने वाले से सभी गुप्तचर यों कहें 'राजा ने शून्यपाल से कह दिया है कि अमुक-अमुक व्यक्तियों ने मुझ से न माँगी जाने योग्य वस्तुएँ माँगी हैं। मैंने देने से इनकार कर दिया। इसलिए कि वे लोग शत्रु से मिल गये हैं। अतः उनको नष्ट करने के लिए प्रयत्नशील रहो।' ऐसा कहने के बाद पूर्ववत् सब कार्य किया जाय;

**(१) येभ्यश्च राजा याचितो ददाति, तान् सत्रिणो ब्रूयुः–'उक्तः शून्यपालो राज्ञा–अयाच्यमर्थमसौ चासौ च मा याचते, तेभ्यो मया सोऽर्थो विश्वासार्थं दत्तः, शत्रुसंहिताः। तेषामुद्धरणे प्रयतस्व' इति। ततः पूर्ववदाचरेत्।**

**(२) ये चैनं याच्यमर्थं न याचन्ते, तान् सत्रिणो ब्रूयुः–'उक्तः शून्यपालो राज्ञा–याच्यमर्थमसौ चासौ च मा न याचते; किमन्यत् स्वदोषशङ्कितत्वात्, तेषामुद्धरणे प्रयतस्व इति। ततः पूर्ववदाचरेत्।**

**(३) एतेन सर्वः कृत्यपक्षो व्याख्यातः।**

**(४) प्रत्यासन्नो वा राजानं सत्री ग्राहयेत् 'असौ चासौ च ते महामात्रः शत्रुपुरुषैः सम्भाषते' इति। प्रतिपन्ने दूष्यानस्य शासनहरान् दर्शयेत्–'एतत्तत्' इति।**

**(५) सेनामुख्यप्रकृतिपुरुषान् वा भूम्या हिरण्येन वा लोभयित्वा स्वेषु**

---

अर्थात् तीक्ष्ण गुप्तचर रात में कुछ आदमियों को मार दें; जिनको न मारें उनको वध का भय दिखाकर राजा से फोड़ दें।

(१) माँगने पर जिन्हें राजा कोई वस्तु दे दे उनसे सभी गुप्तचर कहें कि 'राजा ने शून्यपाल से कहा है कि अमुक-अमुक व्यक्तियों ने मुझसे न माँगने योग्य वस्तु माँगी है, मैंने उनको वह वस्तु इसलिए दे दी है कि उनका मुझ पर विश्वास बना रहे; किन्तु वे व्यक्ति शत्रु से मिले हैं, अतः उनका वध करने के लिए तुम्हें यत्नशील रहना चाहिए' ऐसा कहने के बाद पूर्ववत् सब कार्य किया जाय।

(२) जो महामात्र आदि माँगने योग्य वस्तु भी राजा से नहीं माँगते उनसे सभी गुप्तचर कहें 'राजा ने शून्यपाल को कह दिया है कि अमुक-अमुक व्यक्ति मुझसे माँगने योग्य वस्तुओं को भी नहीं माँगते। इसका कारण इसके सिवा दूसरा क्या हो सकता है कि वे अपने दोषों के कारण मुझसे शंकित रहते हैं और इसलिए मेरे पास नहीं आते हैं। तुम उनका वध करने के लिए यत्नशील रहो।' ऐसा कहने के बाद पूर्ववत् सब कार्य किया जाय।

(३) इसी प्रकार क्रुद्ध, लुब्ध, भीत आदि कृत्यपक्ष के सम्बन्ध में भी समझ लेना चाहिए।

(४) अथवा राजा के पास कपटपूर्वक रहने वाले सभी गुप्तचर राजा से कहें कि 'अमुक-अमुक महामात्र तुम्हारे शत्रुओं के साथ मिले हुए हैं।' जब राजा को इस बात पर विश्वास हो जाय तो सभी राजद्रोहियों द्वारा महामात्र का सन्देश ले जाते हुए दिखा दे और कहे 'देखिए, वही बात हुई, जो मैंने आपसे कही थी।'

(५) अथवा सेना के अध्यक्षों, अमात्य आदि प्रकृतियों और अन्य राजकर्मचारियों को सभी गुप्तचर धन तथा भूमि आदि के लोभ में फँसाकर उनके अपने ही

**विक्रमयेदपवाहयेद्वा । योऽस्य पुत्रः समीपे दुर्गे वा प्रतिवसति, तं सत्रिणोपजापयेत्–'आत्मसम्पन्नतरस्त्वं पुत्रः तथाप्यन्तर्हितः, तत् किमुपेक्षसे । विक्रम्य गृहाण, पुरा त्वा युवराजो विनाशयति' इति ।**

**(१) तत्कुलीनमवरुद्धं वा हिरण्येन प्रतिलोभ्य ब्रूयात्-'अन्तर्बलं प्रत्यन्तस्कन्धमन्यं वास्य प्रमृद्नीहि' इति ।**

**(२) आटविकानर्थमानाभ्यामुपगृह्य राज्यमस्य घातयेत् ।**

**(३) पार्ष्णिग्राहं वास्य ब्रूयाद्–'एष खलु राजा मामुच्छिद्य त्वामुच्छेत्स्यति; पार्ष्णिमस्य गृहाण; त्वयि निवृत्तस्याहं पार्ष्णि ग्रहीष्यामि' इति । मित्राणि वास्य ब्रूयात्–'अहं वः सेतुः, मयि विभिन्ने सर्वानेष वो राजाप्लायिष्यति' इति । 'सम्भूय वास्य यात्रां विहनाम' इति । तत्संहतानां च प्रेष-**

---

आदमियों पर उनके द्वारा चढ़ाई करा दे; या उनको राजा के यहाँ से कहीं दूसरी जगह भगा दें । तदनन्तर सभी गुप्तचर राजधानी में या अन्तपाल के पास दुर्ग में रहने वाले राजकुमार को इस प्रकार फुसलाएँ 'राजा ने जिस पुत्र को युवराज बनाया है, तुम्हारी योग्यता उससे किसी कदर कम नहीं है; फिर भी राजा ने तुम्हें नियन्त्रित कर रखा है । अब तुम इस बात की लापरवाही न करके राजा पर धावा बोल दो और राज्य को अपने अधीन कर लो । अन्यथा बहुत सम्भव है कि युवराज तुम्हें ही मार डाले ।'

( १ ) अथवा शत्रु के किसी बन्धु-बांधव को या नजरबन्द राजकुमार को धन का प्रलोभन देकर सभी गुप्तचर इस प्रकार फुसलाएँ 'तुम राजा के मौलबल को या सीमा पर नियुक्त सेना को अथवा दूसरी किसी सेना को नष्ट कर डालो और आटविकों को धन तथा सत्कार से वश में करके उन्हीं के द्वारा शत्रु के राज्य पर चढ़ाई करा दो ।'

( २ ) आटविकों को धन तथा सत्कार से वश में करके शत्रु के राज्य को उन्हीं के द्वारा नष्ट करवा दे । यहाँ तक सेनामुख्यों को वश में करने की युक्तियों का निरूपण किया गया है ।

( ३ ) विजिगीषु राजा शत्रु राजा के पार्ष्णिग्राह से कहे—'देखो, यह राजा मेरा उच्छेद करके फिर तुम्हारा भी अवश्यमेव उच्छेद करेगा । अतः तुम इसके पार्ष्णिग्राह बनकर पीछे से इस पर आक्रमण करो । जब वह तुम पर आक्रमण करेगा तब मैं उसकी पार्ष्णि ग्रहण कर उस पर आक्रमण कर दूँगा ।' अथवा विजिगीषु शत्रु के मित्रों से कहे 'मैं ही तुम्हारा पुल हूँ । मेरे नष्ट हो जाने पर यह राजा तुमको भी नष्ट कर डालेगा । इसलिए हम सब मिलकर इसके आक्रमण का मुकाबला करें ।' तदनन्तर विजिगीषु राजा अपने शत्रु के मित्रों तथा शत्रुओं को यह सन्देश भेजे कि 'निश्चित

**येत्–'एष खलु राजा मामुत्पाटच भवत्सु कर्म करिष्यति । बुध्यध्वम्, अहं वः श्रेयानभ्यवपत्तुम्' इति ।**

**(१) मध्यमस्य प्रहिणुयादुदासीनस्य वा पुनः ।**
**यथासन्नस्य मोक्षार्थं सर्वस्वेन तदर्पणम् ।।**

इति आबलीयसे द्वादशेऽधिकरणे सेनामुख्यवधः मण्डलप्रोत्साहनं चेति
तृतीयोऽध्यायः; आदितोः सप्तत्रिंशदुत्तरशततमः ।

—: ० :—

---

ही यह राजा मेरा उच्छेद कर के तुम्हारा भी उच्छेद कर डालेगा । अतः आप लोग विचार करें और समझें कि इस आपत्ति में आपको मेरी रक्षा करनी चाहिए या नहीं ।'

( १ ) दुर्बल राजा को चाहिए कि बलवान् शत्रु से अपनी रक्षा के लिए वह मध्यम, उदासीन और अपने समीपस्थ सभी राजाओं को यह संदेश भेजे कि 'सर्वस्व देकर मैं आप लोगों के सामने आत्मसमर्पण कर चुका हूँ । मैं आप लोगों के आश्रय से अलग नहीं हो सकता हूँ । अतः यथाशक्ति आप लोगों को मेरी रक्षा करनी चाहिए ।'

आबलीयस नामक बारहवें अधिकरण में सेनामुख्यवध-मण्डलप्रोत्साहन नामक
तीसरा अध्याय समाप्त ।

—: ० :—

# शस्त्राग्निरसप्रणिधयः, वीवधासार-प्रसारवधश्च

(१) ये चास्य दुर्गेषु वैदेहकव्यञ्जनाः, ग्रामेषु गृहपतिकव्यञ्जनाः, जनपदसन्धिषु गोरक्षकतापसव्यञ्जनाः, ते सामन्ताटविकतत्कुलीनावरुद्धानां पण्यागारपूर्वं प्रेषयेयुः—'अयं देशो हार्य' इति। आगतांश्चैषां दुर्गे गूढपुरुषानर्थमानाभ्याम् अभिसत्कृत्य प्रकृतिच्छिद्राणि प्रदर्शयेयुः। तेषु तैः सह प्रहरेयुः।

(२) स्कन्धावारे वास्य शौण्डिकव्यञ्जनः पुत्रमभित्यक्तं स्थापयित्वा अवस्कन्दकाले रसेन प्रवासयित्वा 'नैषेचनिकम्' इति मदनरसयुक्तान् मद्यकुम्भाञ्छतशः प्रयच्छेत्। शुद्धं वा मद्यं पाद्यं वा मद्यं दद्यादेकमहः, उत्तरं रससिद्धं प्रयच्छेत्। शुद्धं वा मद्यं दण्डमुख्येभ्यः प्रदाय मदकाले रससिद्धं प्रयच्छेत्।

---

## शस्त्र, अग्नि तथा रसों का गूढ प्रयोग, और वीवध, आसार तथा प्रसार का नाश

(१) शत्रु राजा के दुर्गों में जो वैदेहक, गाँवों में जो गृहपतिक, सरहदी इलाकों में जो ग्वाले और तापस आदि के वेष विजिगीषु के गुप्तचर नियुक्त हों, उन्हें चाहिए कि वे शत्रु के साथ स्वभावतः ही बैर रखने वाले सामंत, आटविक, शत्रु के बन्धु-बान्धव और नजरबंद राजकुमार आदि हों, कुछ भेंट सामग्री रख कर, उनके पास यह संदेश भेजें कि 'शत्रु के अमुक दुर्बल प्रदेश का आप लोग सहज ही में अपहरण कर सकते हैं।' इस बात के लिए उद्यत होकर जब उन सामंत आदि के गुप्तचर आ जायँ तो उनका धन-मान से सत्कार करके तब उनके सामने शत्रु राजा के प्रकृतिवर्ग के समस्त दोषों को खोल कर रखा जाय। जब शत्रु के सभी दोष उनको ज्ञात हो जायँ तो उनकी सहायता प्राप्त कर शत्रु पर आक्रमण किया जाय।

(२) अथवा शत्रु की छावनी में शराब वेंचने वाले सभी गुप्तचर किसी वध्य पुरुष को अपना पुत्र बताकर रात्रि के अंतिम प्रहर में विष देकर उसकी हत्या कर डालें और तब अपने मृतक पुत्र के निमित्त 'यह नैषेचनिक द्रव्य है' ऐसा कह कर विषमिश्रित शराब के सैकड़ों घड़े फौजियों को पिला दे, अथवा विश्वास के लिए पहिले दिन विषरहित ही शराब दे, अथवा पहिले दिन चौथाई हिस्सा विषमिश्रित शराब दे और बाद में पर्याप्त विषमिश्रित शराब पिलाये अथवा सेना के अध्यक्षों

**(१) दण्डमुख्यव्यञ्जनो वा 'पुत्रमभित्यक्तम्' इति–समानम् ।**

**(२) पक्वमांसिकौदनिकशौण्डिकापूपिकव्यञ्जना वा पण्यविशेषमवघोषयित्वा परस्परसङ्घर्षेण कालिकं समर्घतरमिति वा परानाहूय रसेन स्वपण्यान्यपचारयेयुः ।**

**(३) सुराक्षीरदधिसर्पिस्तैलानि वा तद्व्यवहर्तृहस्तेषु गृहीत्वा स्त्रियो बालाश्च रसयुक्तेषु स्वभाजनेषु परिकिरेयुः, 'अनेनार्घेण विशिष्टं वा भूयो दीयताम्' इति तत्रैवावकिरेयुः ।**

**(४) एतान्येव वैदेहकव्यञ्जनाः पण्यविक्रयेणाहर्तारो वा हस्त्यश्वानां विधायवसेषु रसमासन्ना दद्युः ।**

**(५) कर्मकरव्यञ्जना वा रसाक्तं यवसमुदकं वा विक्रीणीरन् । चिरसंसृष्टा वा गोवाणिजका गवामजावीनां वा यूथान्यवस्कन्दकालेषु परेषां मोहस्थानेषु प्रमुञ्चेयुः । अश्वखरोष्ट्रमहिषादीनां दुष्टांश्च तद्व्यञ्जना वा**

---

को पहिले विषरहित शराब दे और बाद में जब वे बेहोश हो जायँ तब उन्हें विषमिश्रित शराब दे ।

( १ ) अथवा सेनामुख्य के वेष में सभी गुप्तचर किसी वध्य पुरुष को अपना पुत्र बताकर बाकी कार्य उपर्युक्त विधि से संपन्न करे ।

( २ ) अथवा पका मांस, पका अन्न, शराब तथा विविध व्यंजन और मालपुआ या पकौड़े आदि बेचने के वेष में सभी गुप्तचर एक-दूसरे से होड़ लगाकर अपनी-अपनी दूकानों की खूब तारीफ कर कम-ज्यादे मूल्य पर अथवा उधार ही शत्रु के आदमियों को विष मिले पदार्थ खिला दें ।

( ३ ) स्त्री तथा बालक शराब, दूध, घी, दही तथा तेल आदि का व्यवहार करने वाले लोगों के हाथ से लेकर इन वस्तुओं को अपने जहरीले वर्तनों में डलवा दें और बाद में उनके साथ यह झगड़ा करें कि 'अमुक वस्तु हमें इतने मूल्य पर दो, नहीं तो हम खरीदा हुआ सामान भी लौटा देंगे ।' जब दुकानदार इस बात पर राजी न हों तो उन, शराब, दूध आदि वस्तुओं को उन्हीं दूकानदारों के वर्तनों में उलट दें, ऐसा करने से सभी चीजें जहरीली हो जायँगी ।

( ४ ) फिर छावनी के साथ व्यापारी वेष में रहने वाले गुप्तचर या शराब बेचने के बहाने दूसरे लोग इन्हीं सब जहरीली वस्तुओं को हाथी घोड़ों के राशन में मिलाकर उन्हें खिला दें ।

( ५ ) अथवा मजदूर के वेष में रहने वाले गुप्तचर विषमिश्रित घास अथवा जल बेचें, अथवा बहुत समय से मित्र बनकर रहने वाले गुप्तचर अपने गाय, बकरी के समूहों को मध्य रात्रि में मोहग्रस्त ( निद्राग्रस्त ) शत्रुओं को व्याकुल करने के लिए छोड़ दें । इसी प्रकार व्यापारी वेष में रहने वाले गुप्तचर अपने घोड़ा, गधा, ऊँट

**चुचुन्दरीशोणिताक्ताक्षान्, लुब्धकव्यञ्जना वा व्यालमृगान् पञ्जरेभ्यः प्रमुञ्चेयुः, सर्पग्राहा वा सर्पानुग्रविषान्, हस्तिजीविनो वा हस्तिनः ।**

**(१) अग्निजीविनो वा अग्निमवसृजेयुः ।**

**(२) गूढपुरुषा वा विमुखान् पत्त्यश्वरथद्विपमुख्यानभिहन्युः, आदीपयेयुर्वा मुख्यावासान् । दूष्यामित्राटविकव्यञ्जनाः प्रणिहिताः पृष्ठाभिघातमवस्कन्दप्रतिग्रहं वा कुर्युः । वनगूढा वा प्रत्यन्तस्कन्धमुपनिष्कृष्याभिहन्युः ।**

**(३) एकायने वीवधासारप्रसारान् वा । ससङ्केतं वा रात्रियुद्धे भूरितूर्यमाहत्य ब्रूयुः–'अनुप्रविष्टाः स्मो, लब्धं राज्यम्' इति । राजावासमनुप्रविष्टा वा सङ्कुलेषु राजानं हन्युः ।**

**(४) सर्वतो वा प्रयातमेनं म्लेच्छाटविकदण्डचारिणः सत्रापाश्रयाः स्तम्भवाटापाश्रया वा हन्युः । लुब्धकव्यञ्जना वावस्कन्दसङ्कुलेषु गूढयुद्धहेतुभिरभिहन्युः ।**

---

तथा गाय, भैंस आदि चौंकने वाले जानवरों की आँखों में छछून्दर के खून का अञ्जन लगाकर छोड़ दें; इसी प्रकार शिकारी के वेष में रहने वाले गुप्तचर अपने हिंसक जानवरों को छोड़ दें; संपेरों के वेष में रहने वाले गुप्तचर अपने जहरीले साँपों को; और हाथियों के व्यापारी गुप्तचर अपने हाथियों को छोड़ दें ।

( १ ) इसी प्रकार रसोइये, लुहार आदि, जो गुप्तचर आग से अपनी जीविका चलाते हों, वे शत्रु की छावनी में आग लगा दें ।

( २ ) गुप्तचरों को चाहिए कि वे युद्ध से विमुख हुए पैदल, घुड़सवार, रथसवार तथा हाथीसवार सेनाओं के अध्यक्षों को मार डालें; अथवा उनके घरों में आग लगा दें; अथवा दूष्य, शत्रु या आटविक के वेष में रहने वाले गुप्तचर युद्ध से लौटी हुई सेना के पीछे से धावा बोल दें; अथवा सोते समय उसको नष्ट कर दें; अथवा उसका मुकाबला करें; अथवा बन में छिप कर रहने वाले गुप्तचर सरहदी इलाकों की सुरक्षा के लिए नियुक्त सेना को किसी बहाने अपनी ओर खींच कर मार डालें ।

( ३ ) जिस समय वीवध ( धान्य ), आसार ( मित्रसेना ) और प्रसार ( लकड़ी घास ) आदि को किसी तंग रास्ते से ले जाया जा रहा हो उस समय उसे नष्ट कर दिया जाय; अथवा रात्रि युद्ध में विशेष संकेतों के साथ बाजों को खूब जोर से बजाते हुए इस प्रकार की घोषणा की जाय कि 'हम लोग शत्रु दल को चीर कर भीतर प्रविष्ट हो गये हैं; हमने राज्य को प्राप्त कर लिया है' इत्यादि । अथवा राजा के घर में प्रविष्ट होकर उसको मार दिया जाय ।

( ४ ) जिस ओर से भी राजा भागे, वहीं से सत्र तथा स्तम्भवाट को लेकर सैनिक के वेष में घूमने वाले म्लेच्छ और आटविक उसको मार डालें, अथवा शिकारी

**(१) एकायने वा शैलस्तम्भवाटखञ्जनान्तरुदके वा स्वभूमिबलेनाभिहन्युः। नदीसरस्तटाकसेतुबन्धभेदवेगेन वाप्लावयेयुः। धान्वनवननिम्नदुर्गस्थं वा योगाग्निधूमाभ्यां नाशयेयुः।**

**(२) सङ्कटगतमग्निना, धान्वनगतं धूमेन, निधानगतं रसेन, तोयावगाढं दुष्टग्राहैरुदकचरणैर्वा तीक्ष्णाः साधयेयुः।**

**(३) आदीप्तावासात् निष्पतन्तं वा—**

**योगवामनयोगाभ्यां योगेनान्यतमेन वा।**
**अमित्रमतिसन्दध्यात् सक्तमुक्तासु भूमिषु ॥**

इति आबलीयसे द्वादशेऽधिकरणे शस्त्राग्निरसप्रणिधयो वीवधासारप्रसारवधश्चेति चतुर्थोऽध्यायः, आदितोऽष्टत्रिंशदधिकशततमः।

—: ० :—

---

के वेष में रहने वाले गुप्तचर रात में इकट्ठा सोते समय **कूटयुद्ध** प्रकरण में निर्दिष्ट उपायों से शत्रुओं को मार डालें।

( १ ) अथवा पहाड़ी रास्ते से या ऊबड़-खाबड़, दलदल तथा जल से गुजरती हुई शत्रुसेना को नष्ट किया जाय; अथवा यथावसर नदी, भील तथा बड़े-बड़े तालाबों के बाँधों को तोड़ कर शत्रुसेना को उसमें बहा दिया जाय, अथवा धान्वनदुर्ग, वनदुर्ग तथा निम्नदुर्ग में ठहरे हुए शत्रुदल को योगाग्नि ( विशेष द्रव्यों के योग से उत्पन्न कपट अग्नि ) और योगधूम ( विषैली गैस ) के द्वारा नष्ट किया जाय।

( २ ) कंटकाकीर्ण तथा दुर्गम प्रदेश में प्रविष्ट हुई शत्रुसेना को अग्नि के द्वारा, धान्वन दुर्ग में ठहरे शत्रुदल को विशेष गैस द्वारा; गुप्तप्रदेश में छिपे हुए शत्रुओं को विष के द्वारा; जल के भीतर छिपे हुए शत्रु को भयंकर मगरमच्छ आदि जल-जन्तुओं के द्वारा अथवा जल में जाने योग्य अन्य साधनों के द्वारा तीक्ष्ण गुप्तचर उनको कैद कर लें या नष्ट कर दें।

( ३ ) अथवा आग लगे हुए घर से भागते हुए राजा को तथा अपनी रक्षा के लिए धान्वन आदि स्थानों में ठहरे हुए शत्रु को योगवामन और योग के द्वारा अथवा केवल योग के द्वारा वश में किया जाय।

आबलीयस नामक बारहवें अधिकरण में शस्त्राग्निरसप्रणिधि-

वीवधासारप्रसारवध नामक चौथा अध्याय समाप्त।

—: ० :—

# योगातिसन्धानं दण्डातिसन्धानम्, एकविजयश्च

(१) दैवतेज्यायां यात्रायाममित्रस्य बहूनि पूज्यागमस्थानानि भक्तितः। तत्रास्य योगमुञ्जयेत्।

(२) देवतागृहप्रविष्टस्योपरि यन्त्रमोक्षणेन गूढभित्तिं शिलां वा पातयेत्। शिलाशस्त्रवर्षमुत्तमागारात्कपाटमवपातितं वा भित्तिप्रणिहितमेकदेशबन्धं वा परिघं मोक्षयेत्। देवतादेहस्थप्रहरणानि वास्योपरिष्टात्पातयेत्। स्थानासनगमनभूमिषु वास्य गोमयप्रदेहेन गन्धोदकावसेकेन वा रसमतिचारयेत् पुष्पचूर्णोपहारेण वा। गन्धप्रतिच्छन्नं वास्य तीक्ष्णं धूममतिनयेत्। शूलकूपमवपातनं वा शयनासनस्याधस्ताद् यन्त्रबद्धतलमेनं कील-

## कपट उपायों या दण्ड प्रयोगों द्वारा और आक्रमण के द्वारा विजयोपलब्धि

( १ ) देवपूजन अथवा देवयात्रा के ऐसे अनेक अवसर आते हैं, जब कि शत्रु राजा अपनी भक्ति के अनुसार पूजा के लिए वहाँ आता-जाता है; ऐसे ही अवसरों पर कूट उपायों द्वारा उसके विनाश का यत्न करना चाहिए।

( २ ) जब शत्रुराजा देवगृह के अन्दर प्रविष्ट हो तब उसके ऊपर यन्त्र को छोड़ कर गूढभित्ति और शिला को गिरा दिया जाय; अथवा मकान की छत से उसके ऊपर पत्थरों तथा हथियारों की वर्षा की जाय; या किवाड़ों को उखाड़ कर उस पर फेंक दिया जाय; अथवा दीवार से छिपे हुए तथा एक ओर से बँधे हुए अर्गला को ही उस पर गिराया जाय; या देवता की देह पर बँधे हुए हथियार उस पर गिरा दिये जायँ; अथवा उसके ठहरने, उठने तथा बैठने के स्थानों में विषमिश्रित गोबर का लेप किया जाय; या देवता के प्रसाद के रूप में उसे विष मिली फूलों की बुकनी दी जाय; अथवा विष की गन्ध को मारने वाली तीव्र गैस उसको सुँघायी जाय; अथवा उसके सोने या बैठने के स्थान के नीचे एक छिपे हुए गढे में तेज शलाकाएें गाड़कर उसके ऊपर शत्रु राजा की चारपाई या कुर्सी आदि को यन्त्र के द्वारा अधर पर बाँध दिया जाय और जब वह उस पर सोये या बैठे तब उस यन्त्रकील को खींच कर चारपाई या कुर्सी समेत उसको गढे में डाल दिया जाय; अथवा यदि शत्रु अपने निकटस्थ देश का हो तो अपने कार्य में बाधा डालने वाले उसके जनपदवासियों को

**मोक्षणेन प्रवेशयेत् । प्रत्यासन्ने वामित्रे जनपदाज्जनमवरोधक्षममतिनयेत् । दुर्गाच्चानवरोधक्षममपनयेत् । प्रत्यादेयमरिविषयं वा प्रेषयेत् । जनपदं चैकस्थं शैलवननदीदुर्गेष्वटवीव्यवहितेषु वा पुत्रभ्रातृपरिगृहीतं स्थापयेत् ।**

**(१) उपरोधहेतवो दण्डोपनतवृत्ते व्याख्याताः ।**

**(२) तृणकाष्ठम् आ योजनाद् दाहयेत् । उदकानि च दूषयेद्; अवास्रावयेच्च । कूटकूपावपातकण्टकिनीश्च बहिरुब्जयेत् ।**

**(३) सुरुङ्गाममित्रस्थाने बहुमुखीं कृत्वा विचयमुख्यानभिहारयेद्, अमित्रं वा । परप्रयुक्तायां वा सुरुङ्गायां परिखामुदकान्तिकीं खानयेत्, कूपशालामनुसालं वा । अतोयकुम्भान् कांस्यभाण्डानि वा शङ्कास्थानेषु स्थापयेत् खाताभिज्ञानार्थम् । ज्ञाते सुरुङ्गापथे प्रतिसुरुङ्गां कारयेत् । मध्ये भित्त्वा धूममुदकं वा प्रयच्छेत् ।**

---

पकड़ कर जेल में बन्द कर दिया जाय; और बाधा पहुँचाने में असमर्थ शत्रु की जेल में बन्द हुए व्यक्तियों को छुड़ा दिया जाय । शत्रुदेश के ऐसे व्यक्ति को, जिसे अवश्यमेव लौटाना पड़े, स्वयं ही शत्रु देश को भेज दिया जाय । जिन जनपदों पर शत्रु राजा का एकच्छत्र राज्य हो वहाँ के पर्वतदुर्गों, नदीदुर्गों और वनदुर्गों को तथा घने जंगलों से घिरे दूसरे प्रदेशों को शत्रु राजा के पुत्र या बन्धुओं के अधिकार में करा देना चाहिए ।

( १ ) उपरोध ( घेरा डालना ) के उपायों का निरूपण दण्डोपनत नामक प्रकरण में यथास्थान किया जा चुका है ।

( २ ) शत्रु के सैनिक पड़ाव के चारों ओर चार कोस तक की सब घास, लकड़ी आदि जला देनी चाहिए और पानी को विष मिला कर दूषित कर देना चाहिए । उस स्थान के आस-पास के जितने तालाब या बाँध हैं उनको तोड़कर सब पानी बाहर बहा देना चाहिए और शत्रु सेना के मार्ग में अँधेरे कुँए, घास-फूस से ढके गड्ढे तथा जगह-जगह काँटेदार लोहे के जाल बिछा देने चाहिए ।

( ३ ) शत्रु के सैन्य शिविर में एक बहुमुखी सुरंग बनाकर शत्रु के प्रधान व्यक्तियों को उसमें फँसा देना चाहिए; अथवा अवसर आने पर शत्रु राजा को भी उसी में फँसा देना चाहिए । यदि विजिगीषु के दुर्ग में आने के लिए शत्रु सुरंग बनाये तो दुर्ग के चारों ओर इतनी गहरी खाई खुदवानी चाहिए कि नीचे का पानी निकल आवे । यदि ऐसा करने में अधिक असुविधा हो तो परकोटे के चारों ओर गहरे-गहरे कुएँ खुदवाये जायँ । अथवा जिन स्थानों में सुरंग बनाये जाने की आशंका हो वहाँ खाली घड़ों को या काँसे के छोटे-छोटे खंभों या काँसे के टुकड़ों को रख दिया जाय; जिससे कि सुरंग खोदने का पता लग जाय । शत्रु की सुरंग का पता लग जाने पर दूसरी

**(१) प्रतिविहितदुर्गो वा मूले दायादं कृत्वा प्रतिलोमामस्य दिशं गच्छेत्–यतो वा मित्रैर्बन्धुभिराटविकैर्वा संसृज्येत, परस्यामित्रैर्दूष्यैर्वा महद्भिः; यतो वा गतोऽस्य मित्रैर्वियोगं कुर्यात्, पार्ष्णिं वा गृह्णीयात्, राज्यं वास्य हारयेत्, वीवधासारप्रसारान् वा वारयेत्; यतो वा शक्नुयाद् आक्षिकवदपक्षेपेणास्य प्रहर्तुं; यतो वा स्वं राज्यं त्रायेत, मूलस्योपचयं वा कुर्यात्। यतः सन्धिमभिप्रेतं लभते, ततो वा गच्छेत् ।**

**(२) सहप्रस्थायिनो वास्य प्रेषयेयुः–'अयं ते शत्रुरस्माकं हस्तगतः; पण्यं विप्रकारं वापदिश्य हिरण्यमन्तस्सारबलं प्रेषयस्व, एनमर्पयेम बद्धं प्रवासितं वा' इति । प्रतिपन्ने हिरण्यं सारबलं चाददीत ।**

**(३) अन्तपालो वा दुर्गसम्प्रदानेन बलैकदेशमतिनीय विश्वस्तं घातयेत्।**

---

सुरंग खुदवा देनी चाहिए अथवा उसको बीच ही में तोड़ कर उसमें विषैला धुआँ या पानी भर देना चाहिए ।

( १ ) अथवा पूरी शक्ति लगा देने पर भी यदि दुर्ग की रक्षा असम्भव जान पड़े तो दुर्बल राजा को चाहिए कि राजधानी में अपने पुत्र को नियुक्त करके वह शत्रु की ऐसी प्रतिकूल दिशा में चला जाय, जहाँ से वह शत्रु का अपकार कर सके; अथवा जिस दिशा में जाकर वह अपने मित्रों, बन्धु-बांधवों और आटविकों की सहायता लेकर शत्रु की हानि कर सके, अथवा शत्रु के शत्रु और अत्यन्त बलवान् उसके दूष्य पुरुषों से मिलकर शत्रु का नुकसान कर सके; अथवा जहाँ जाकर शत्रु के मित्रों को उससे अलग करवा सके; अथवा शत्रु पर पीछे से आक्रमण कर सके; अथवा शत्रु के राज्य का अपहरण कर सके; अथवा जहाँ जाकर शत्रु के वीवध, आसार और प्रसार को शत्रु के पास तक न पहुँचने दे; अथवा जिस दिशा से वह जुआरी की तरह कपट प्रयोगों के द्वारा शत्रु पर प्रहार कर सके; अथवा जहाँ जाकर वह अपने राज्य की सुरक्षा का प्रबन्ध कर सके; अथवा अपनी राजधानी को समृद्ध बना सके; अथवा जहाँ से उसको इच्छानुसार सन्धि करने का अवसर मिल सके, उस दिशा में चला जाय ।

( २ ) अथवा दुर्बल राजा के साथ-साथ जाने वाले गुप्तचर शत्रु के पास इस प्रकार का संदेश भेजें : 'यह तुम्हारा शत्रु इस समय हमारे कब्जे में है, इसलिए तुम किसी सौदे के बहाने धन भेजकर और किसी अपकार के बहाने अन्तःसार सेना को हमारे पास भेज दो । उसके बाद कैद किये या मारे गये इस शत्रु को हम तुम्हारे हवाले कर देंगे ।' जब शत्रु राजा इस बात पर राजी होकर धन और सेना भेज दें तो दुर्बल राजा उसको अपने अधीन कर ले ।

( ३ ) अथवा अन्तपाल को चाहिए कि वह अपना दुर्ग शत्रु के सुपुर्द करके उसकी

**(१) जनपदमेकस्थं वा घातयितुममित्रानीकमावाहयेत्; तदवरुद्धदेश-मतिनीय विश्वस्तं घातयेत् ।**

**(२) मित्रव्यञ्जनो वा बाह्यस्य प्रेषयेत्—'क्षीणमस्मिन्दुर्गे धान्यं स्नेहाः क्षारो लवणं वा; तदमुष्मिन्देशे काले च प्रवेक्ष्यति, तदुपगृहाण' इति । ततो रसविद्धं धान्यं स्नेहं क्षीरं लवणं वा दूष्यामित्राटविकाः प्रवेशयेयुः, अन्ये वा अभित्यक्ताः ।**

**(३) तेन सर्वभाण्डवीवधग्रहणं व्याख्यातम् ।**

**(४) सन्धिं वा कृत्वा हिरण्यैकदेशमस्मै दद्यात् । विलम्बमानः शेषम् । ततो रक्षाविधानान्यवस्रावयेत्, अग्निरसशस्त्रैर्वा प्रहरेत्, हिरण्यप्रतिग्राहिणो वास्य वल्लभाननुगृह्णीयात् ।**

**(५) परिक्षीणो वास्मै दुर्गं दत्त्वा निर्गच्छेत्सुरुङ्गया । कुक्षिप्रदरेण वा प्राकारभेदेन निर्गच्छेत् ।**

---

सेना के कुछ भाग को ऐसी जगह ले जाय, जहाँ से उसका लौटना असम्भव हो और विश्वासघात कर उसे वहीं मरवा डाले ।

( १ ) अथवा किसी एकत्र हुए उच्छृङ्खल जनपद को काबू में करने के लिए अन्तपाल शत्रुसेना को बुलाये और उसके बाद उस सेना को ऐसे देश में ले जाय, जहाँ से वह वापस न लौट सके; वहाँ ले जाकर उसको मरवा डाले ।

( २ ) अथवा मित्र के वेष में रहने वाले सभी गुप्तचर शत्रुराजा के पास इस प्रकार का सन्देश भिजवायें : शत्रु के इस दुर्ग में अन्न, घी, तेल, गुड़ तथा नमक आदि सब पदार्थ समाप्त हो चुके हैं। यह सब सामान अमुक स्थान से अमुक समय में ले जाया जायेगा । तुम उसको रास्ते में ही लूट लेना ।' तदनन्तर विजिगीषु के दूष्य, शत्रु तथा आटविक विषमिश्रित उक्त सामान को उसी समय उन्हीं मार्गों से लेकर गुजरें अथवा दूसरे वध्य पुरुष उस सामान को ले जायँ ।

( ३ ) इसी प्रकार दूसरे विषयुक्त खाद्यपदार्थों को शत्रु राजा तक पहुँचाने के सम्बन्ध में भी समझ लेना चाहिए ।

( ४ ) अथवा दुर्बल राजा, शत्रु राजा के साथ सन्धि करके प्रतिज्ञात धन का कुछ हिस्सा तत्काल ही उसे दे दे और शेष भाग को विलम्ब से देने का वादा कर, उसे भी ठीक समय पर अदा कर दे । इस प्रकार जब शत्रु का उस पर विश्वास हो जाय तो अपनी रक्षा के लिए चारों ओर तैनात शत्रुसेना को वह हटा ले और स्वतन्त्र होकर विष, अग्नि तथा शस्त्रों द्वारा शत्रु पर प्रहार करे; अथवा काबू में आने वाले शत्रु के अवरुद्ध बन्धु-बांधवों को धन देकर उन्हीं के द्वारा शत्रु को मरवा दे ।

( ५ ) अथवा यदि दुर्बल राजा शत्रु का प्रतीकार करने में सर्वथा असमर्थ हो तो

**(१) रात्रावर्वस्कन्दं दत्त्वा सिद्धस्तिष्ठेत्, असिद्धः पार्श्वेनापगच्छेत्, पाषण्डच्छद्मना मन्दपरिवारो निर्गच्छेत्, प्रेतव्यञ्जनो वा गूढैर्निर्ह्रियेत, स्त्रीवेषधारी वा प्रेतमनुगच्छेत् ।**

**(२) दैवतोपहारश्राद्धप्रवहणेषु वा रसविद्धमन्नपानमवसृज्य कृतोपजापो दूष्यव्यञ्जनैर्निष्पत्य गूढसैन्योऽभिहन्यात् ।**

**(३) एवं गृहीतदुर्गो वा प्राश्यप्राशं चैत्यमुपस्थाप्य दैवतप्रतिमाच्छिद्रं प्रविश्यासीत, गूढभित्तिं वा दैवतप्रतिमायुक्तं भूमिगृहम् । विस्मृते सुरुङ्गया रात्रौ राजावासमनुप्रविश्य सुप्तममित्रं हन्यात् । यन्त्रविश्लेषणं वा विश्लेष्याधस्तादवपातयेत् । रसाग्नियोगेनावलिप्तं गृहं जतुगृहं वाधिशयानममित्रमादीपयेत् ।**

**(४) प्रमदवनविहाराणामन्यतमे वा विहारस्थाने प्रमत्तं भूमिगृहसुरुङ्गागूढभित्तिप्रविष्टास्तीक्ष्णा हन्युः, गूढप्रणिहिता वा रसेन । स्वपतो वा निरुद्धे देशे गूढाः स्त्रियः सर्परसाग्निधूमानुपरि मुञ्चेयुः ।**

---

अपना दुर्ग वह शत्रु को देकर सुरंग के रास्ते बाहर निकल जाय; अथवा सुरंग न होने पर जहाँ से परकोटे की दीवार कच्ची हो उसको तोड़ कर बाहर निकल जाय ।

( १ ) रात में सोते समय शत्रु के ऊपर छापा मारने में यदि कार्यसिद्धि सम्भव हो तो दुर्बल राजा अपने दुर्ग में डटा रहे और यदि ऐसी आशा न हो तो पास से होकर निकल भागे । बाहर निकलने के लिए उसको चाहिए कि पाषण्डी का वेष बनाकर थोड़ा-सा परिवार साथ लेकर अथवा अर्थी पर रखकर गुप्तचरों के द्वारा या स्त्री का वेष धारण कर किसी मृतक की अर्थी के पीछे—इन तरीकों से वह बाहर निकल जाय ।

( २ ) देवबलि ( दैवतोपहार ), श्राद्ध तथा पार्टियों (प्रवहण) आदि के अवसरों पर शत्रु को विषाक्त अन्नादि देकर; या दूष्य गुप्तचरों द्वारा शत्रुपक्ष का उपजाप करके छिपी हुई सेना को लेकर दुर्बल राजा अपने शत्रु पर धावा बोल दे ।

( ३ ) इस प्रकार शत्रु के द्वारा अपना दुर्ग ले लिये जाने पर विजिगीषु राजा को चाहिए कि वह पर्याप्त खाद्यसामग्री रखकर किसी देवालय की प्रतिमा में छेद करके उसके भीतर घुस कर बैठ जाय; अथवा किसी दीवार पर छेद करके वहाँ बैठ जाय; या किसी देवप्रतिमा से युक्त तहखाने ( भूमिगृह ) में बैठ जाय । जब शत्रु राजा, विजिगीषु को सर्वथा नष्ट हुआ जानकर सर्वथा भुला दे तब सुरंग के द्वारा रात में राजा के शयनागार में प्रविष्ट होकर वह राजा को मार डाले; अथवा शयनागार में लगे यन्त्र को ढीला करके उसको राजा के ऊपर गिरा दे; अथवा अग्निरक्षित घर में या लाख के घर में सोते हुए शत्रु राजा को मार डाले ।

( ४ ) अथवा प्रमदवन और विहार में या केवल विहार में मदविह्वल शत्रु राजा

**(१) प्रत्युत्पन्ने वा कारणे यद्यदुपपद्येत तत्तदमित्रेऽन्तःपुरगते गूढ-सञ्चारः प्रयुञ्जीत, ततो गूढमेवापगच्छेत्, स्वजनसंज्ञां च प्ररूपयेत् ।**

**(२) द्वाःस्थान् वर्षवरांश्चान्यान् निगूढोपहितान् परे ।**
**तूर्यसंज्ञाभिराहूय द्विषच्छेषाणि घातयेत् ॥**

इति आबलीयसे द्वादशेऽधिकरणे योगातिसन्धानं दण्डातिसन्धानम्
एकविजयश्चेति पञ्चमोऽध्यायः, आदित एकोनचत्वारिं-
शदधिकशततमोऽध्यायः ।

**समाप्तमिदमाबलीयसं नाम द्वादशमधिकरणम् ।**

—: ० :—

---

को सुरंगों या तहखानों में छिपे हुए गुप्तचर मार डालें; अथवा छिपकर रहने वाले रसोइया तथा मांस बनाने वाले गुप्तचर विष देकर शत्रु को मार डालें; या किसी निषिद्ध एकान्त में सोते हुए राजा के ऊपर गुप्त वेषधारी स्त्री, सर्प, विष या अग्नि का प्रयोग कर उसको मार डाले ।

( १ ) अथवा समयानुसार जैसे कारण उपस्थित हों उन्हीं के अनुकूल उपायों द्वारा विजिगीषु अन्तःपुर में गये हुए शत्रु राजा को छिपकर मार डाले और छिपकर ही बाहर निकल आवे । अपने छिपे हुए व्यक्तियों को वह इशारों से उक्त अभिप्राय को समझा दे ।

( २ ) द्वारपाल, नपुंसक तथा अन्तःपुर आदि के अन्य गुप्तचर वेषधारी कर्मचारियों को तथा शत्रु के ऊपर छिपे तौर पर नियुक्त दूसरे गुप्तचरों को बाजे आदि के विशेष संकेतों द्वारा बुलाकर शत्रु के बाकी आदमियों को भी मार डाला जाय ।

आबलीयस नामक बारहवें अधिकरण में योगातिसन्धान-
दण्डातिसन्धान-एकविजय नामक
पाँचवाँ अध्याय समाप्त ।

—: ० :—

तेरहवाँ अधिकरण

# दुर्गलम्भोपाय

प्रकरण १७१

अध्याय १

# उपजापः

(१) विजिगीषु परग्राममवाप्तुकामः सर्वज्ञदैवतसंयोगख्यापनाभ्यां स्वपक्षमुद्घर्षयेत्, परपक्षं चोद्वेजयेत्।

(२) सर्वज्ञख्यापनं तु—गृहगुह्यप्रवृत्तिज्ञानेन प्रत्यादेशो मुख्यानां, कण्टकशोधनापसर्पागमेन प्रकाशनं राजद्विष्टकारिणां, विज्ञाप्योपायनख्यापनमदृष्टसंसर्गविद्यासंज्ञादिभिः, विदेशप्रवृत्तिज्ञानं तदहरेव गृहकपोतेन मुद्रासंयुक्तेन।

(३) दैवतसंयोगख्यापनं तु—सुरुङ्गामुखेनाग्निचैत्यदैवतप्रतिमाच्छिद्रानुप्रविष्टैरग्निचैत्यदैवतव्यञ्जनैः सम्भाषणं पूजनं च, उदकादुत्थितैर्वा नागवरुणव्यञ्जनैः सम्भाषा पूजनं च, रात्रावन्तरुदके समुद्रवालुकाकोशं प्रणि-

---

## उपजाप

(१) यदि विजिगीषु राजा अपने शत्रु के गाँव या शहर पर अधिकार करने का इच्छुक हो तो उसे चाहिए कि वह स्वयं को सर्वज्ञ तथा देवता का साक्षात्कार करने वाला प्रसिद्ध करके अपने पक्ष को उत्साहित करे और शत्रुपक्ष में बेचैनी फैला दे।

(२) **सर्वज्ञता की प्रसिद्धि के तरीके** : अपनी सर्वज्ञता का प्रचार-प्रसार करने के लिये विजिगीषु को चाहिए कि वह अपने गुप्तचरों द्वारा, प्रमुख व्यक्तियों के घरों में छिपे तौर पर होने वाले बुरे कार्यों का पता लगाकर, उन प्रमुख व्यक्तियों को ऐसे कार्य करने से वर्जित करे। **कण्टक शोधन** अधिकरण में निर्दिष्ट अपसर्पोपदेश के द्वारा अपने शत्रुओं के गुप्त-भेदों को जानकर उन्हें उनके सामने प्रकट करे और ऐसा करने से उन लोगों को रोके। दूसरे लोगों से अज्ञात संसर्ग विद्या ( नाचना, गाना ) के संकेतों द्वारा अथवा गुप्तचरों से पता लगाकर राजा के लिए भेंटस्वरूप आने वाली वस्तुओं को वह पहिले ही बतला दे। विदेश में घटित होने वाली घटना को वह मुद्रायुक्त कपोत के द्वारा अपने घर पर बैठा ही बतला दे।

(३) **दैवसाक्षात्कार की प्रसिद्धि के तरीके** : अपने दैव-साक्षात्कार के प्रचार-प्रसार के लिए विजिगीषु को चाहिए कि सुरंग के द्वारा आग के बीच में तथा देवताओं की पोली प्रतिमाओं के बीच में और समाधि ( चैत्य ) के बीच में गुप्तचरों को भेजकर राजा उनसे बातचीत करे एवं उनका पूजन करे; अथवा पानी से निकले

**धायाग्निमालादर्शनम्, शिलाशिक्यावगृहीते प्लवके स्थानम्, उदकवस्तिना जरायुणा वा शिरोऽवगूढनासः पृषतान्त्रकुलीरनक्रशिशुमारोद्रवसाभिर्वा शतपाक्यं तैलं नस्तः प्रयोगः तेन रात्रिगणश्चरति इत्युदकचरणानि, तैर्वरुणनागकन्यावाक्यक्रिया सम्भाषणं च, कोपस्थानेषु मुखादग्निधूमोत्सर्गः।**

**(१) तदस्य स्वविषये कार्तान्तिकनैमित्तिकमौहूर्तिकपौराणिकेक्षणिकगूढपुरुषाः साचिव्यकरास्तद्दर्शिनश्च प्रकाशयेयुः। परस्य विषये दैवतदर्शनं दिव्यकोशदण्डोत्पत्तिं च अस्य ब्रूयुः। दैवतप्रश्ननिमित्तवायसाङ्गविद्यास्वप्नमृगपक्षिव्याहारेषु चास्य विजयं ब्रूयुः, विपरीतममित्रस्य सदुन्दुभिमुल्कां च परस्य नक्षत्रे दर्शयेयुः।**

---

नागदेव तथा वरुण के वेष में रहने वाले गुप्तचर से बातचीत करे और उनकी पूजा भी करे। रात में मजबूत एवं जिनके भीतर पानी प्रवेश न कर सके, ऐसी पेटियों में रेता भर कर उनको पानी में छिपा दिया जाय और फिर उसके द्वारा पानी में आग लगाकर दिखाया जाय। रस्सियों में पत्थर बाँध कर उनको नाव के नीचे से पानी में लटका दिया जाय, जिससे कि तेज धारा में नाव स्थिर खड़ी रह जाय। उदकवस्ती ( वाटरप्रूफ कपड़ा ) अथवा जरायु ( गर्भाशय के समान बनी हुई चमड़े की थैली ) से शिर और नासिका ढककर, साँभर की आँत ( पृषतातन्त्र ), केंकडा ( कुलीर ), मगर ( नक्र ), शिरस नामक मछली ( शिशुमार ) और हूद ( उद्र ) नाम की मछली की चर्बी के साथ तेल को सौ बार पका कर उसका जो घोल तैयार हो उसको नाक में डाल दिया जाय। ऐसा करने से रात में झुंढ के झुंड पुरुष जल में संतरण कर सकते हैं। जल में तैरते हुए वे पुरुष वरुण या नाग की कन्याओं जैसी आवाज निकालें और राजा उनके साथ बातचीत करे। क्रोधावेश प्रकट करते समय राजा औषधियों के द्वारा अपने मुँह से आग और धुआँ उगले।

( १ ) राजा की उक्त आश्चर्यमयी बातों को उसके सहायक तथा दैवज्ञ ( कार्तातिक ), शुभाशुभ फल को बताने वाले ( नैमित्तिक ), ज्योतिषी ( मौहूर्त्तिक ), कथावाचक ( पौराणिक ), प्रश्नवक्ता ( ईक्षणिक ) और गुप्तपुरुष सर्वत्र प्रचारित करें। शत्रुदेश में भी ये लोग राजा के दैव-साक्षात्कार तथा स्वेच्छया दिव्यकोष एवं दिव्य सेना को पैदा कर देने की सनसनीपूर्ण खबर फैला दें। दैवतप्रश्न ( भाग्यप्रश्न ), शकुन ( निमित्त ), काकविद्या ( वायसविद्या ), अंग को देखकर फलाफल का निर्देश ( अंगविद्या ), स्वप्न, पशु-पक्षी आदि सभी निमित्तों से राजा की विजय को सूचित किया जाय और उल्कापात आदि को दिखाकर यह प्रसिद्धि करें कि शत्रु का कोई बड़ा अनिष्ट होने वाला है।

**(१) परस्य मुख्यान्मित्रत्वेनापदिशन्तो दूतव्यञ्जनाः स्वामिसत्कारं ब्रूयुः। स्वपक्षबलाधानं परपक्षप्रतिघातं च तुल्ययोगक्षेमममात्यानामायुधीयानां च कथयेयुः। येषु व्यसनाभ्युदयावेक्षणमपत्यपूजनं प्रयुञ्जीत।**

**(२) तेन परपक्षमुत्साहयेद्यथोक्तं पुरस्तात्। भूयश्च वक्ष्यामः—साधारणगर्दभेन दक्षान्, लकुटशाखाहननाभ्यां दण्डचारिणः, कुलैडकेन चोद्विग्नान् अशनिवर्षेण विमानितान्, विदुलेनावकेशिना वायसपिण्डेन कैतवजमेघेन वा विहताशान्, दुर्भगालङ्कारेण द्वेषिणीति पूजाफलान्, व्याघ्रचर्मणा मृत्युकूटेन चोपहितान्, पीलुविखादनेन करकयोष्ट्र्या गर्दभीक्षीराभिमन्थनेनेति ध्रुवापकारिण इति।**

---

( १ ) शत्रुमुख्यों के साथ मित्ररूप में रहने वाले गुप्तचर उनके सामने अपने स्वामी के द्वारा प्राप्त अपने आदर-सत्कार की खूब बड़ाई करें। शत्रु-प्रकृति तथा शत्रु-सेना के सामने वे गुप्तचर अपने पक्ष की सेना की उन्नति और शत्रुपक्ष की सेना के ह्रास अथवा दोनों के समान योगक्षेम की चर्चा करें। अमात्यों और सैनिकों के सामने वे कहें कि उनका राजा विपति के समय अपने अनुचरों की पूरी सहायता करता है तथा अभ्युदय के समय दान, मान, संमान से सबको खुश करता है। किसी भी अधीनस्थ कर्मचारी के मर जाने पर उसके पुत्रों को सत्कृत करता है।

( २ ) उक्त सभी कारणों का बखान कर शत्रु के अधीनस्थ कर्मचारियों को उससे भिन्न कर दिया जाय। शत्रुपक्ष में भेद डालने के लिए कुछ उपायों का वर्णन पीछे कर दिया गया है और कुछ विशेष उपाय इस प्रकार हैं: कार्यपटु एवं कर्मठ व्यक्तियों से यह कह दिया जाय कि राजा ने तुमको बिल्कुल गधा बना दिया है। इसी प्रकार सैनिकों से कहा जाय कि राजा ने उन्हें लठैत बना रखा है। शत्रु राजा से भयभीत कर्मचारियों को कहा जाय कि उन्हें झुंड से बिछड़े हुए या जीवन से निराश एक मेंढे या बकरे की तरह बना दिया है। तिरस्कृत व्यक्तियों को कहा जाय कि किस प्रकार उन्होंने इतने वज्रपात के समान अपमान को चुपचाप पी लिया है। सर्वथा निराश व्यक्तियों को फलहीन बेंत, अखाद्य अन्नपिण्ड या न बरसने वाले बादल की उपमा देकर स्वामी राजा के विरोध में उकसाया जाय। ससंमान आभूषण आदि देकर पुरस्कृत व्यक्तियों से कहा जाय कि व्यभिचारिणी स्त्री को गहना पहनाने से क्या लाभ? शत्रु द्वारा ठगे गये व्यक्तियों को मृत्यु स्थान; बनावटी व्याघ्र जैसे राजा का उदाहरण दिया जाय। शत्रु के निकटवर्ती सदा ही अपकार करने वाले व्यक्तियों को कहा जाय कि उन्हें तो पीलु वृक्ष का फल खिलाकर, ओले दिखाकर, ऊँटनी तथा गदही का दूध मथने का काम दिया गया है।

**(१) प्रतिपन्नान् अर्थमानाभ्यां योजयेत्। द्रव्यभक्तच्छिद्रेषु चैनान् द्रव्यभक्तदानैरनुगृह्णीयात्। अप्रतिगृह्णतां स्त्रीकुमारालङ्कारानभिहरेयुः।**

**(२) दुर्भिक्षस्तेनाटव्युपघातेषु च पौरजानपदानुत्साहयन्तः सत्रिणो ब्रूयुः–'राजानमनुग्रहं याचामहे, निरनुग्रहाः परत्र गच्छामः' इति।**

**(३) तथेति प्रतिपन्नेषु द्रव्यधान्यपरिग्रहैः।**
**साचिव्यं कार्यमित्येतदुपजापाद्भुतं महत्॥**

इति दुर्गलम्भोपाये त्रयोदशेऽधिकरणे उपजापो नाम प्रथमोऽध्यायः;
आदितश्चत्वारिंशदुत्तरशततमः।

—: ० :—

---

( १ ) जो लोग उकसाने में आकर शत्रु राजा का विरोध करने लगें उन्हें अच्छी तरह सत्कृत किया जाय और उन पर धन-अन्न का संकट आने पर उनकी पूरी सहायता की जाय। यदि वे लोग गौरव नष्ट होने के विचार से इस प्रकार अन्न-धन की सहायता लेना मंजूर न करें तो उनके स्त्री-पुत्रों के लिए आभूषण बना कर भेज दिये जायँ।

( २ ) दुर्भिक्ष के समय चोर और आटविकों की लूट-मार की दशा में गुप्तचर शत्रु राजा के ग्रामवासियों; नगरवासियों तथा जनपदवासियों को उत्साहित करते हुए कहें कि 'हम लोग राजा से सहायता की याचना करें। यदि राजा हमारी सहायता नहीं करता है तो हम लोगों को दूसरे राजा के आश्रय में चला जाना चाहिए।' इस प्रकार शत्रु देश की प्रजा को राजा से भिन्न किया जाय।

( ३ ) जब शत्रु देश की प्रजा गुप्तचरों की बात से राजी हो जाय तो विजिगीषु राजा को चाहिये कि धन, धान्य और निवास की सुविधा देकर उनकी सहायता करें। शत्रुपक्ष को शत्रु से भिन्न करने का यह अद्भुत उपाय है।

दुर्गलम्भोपाय नामक तेरहवें अधिकरण में उपजाप नामक
प्रथम अध्याय समाप्त।

—: ० :—

# योगवामनम्

(१) मुण्डो जटिलो वा पर्वतगुहावासी चतुर्वर्षशतायुर्ब्रुवाणः प्रभूतजटिलान्तेवासी नगराभ्याशे तिष्ठेत्। शिष्याश्चास्य मूलफलोपगमनैरमात्यान् राजानं च भगवद्दर्शनाय योजयेयुः। समागतश्च राज्ञा पूर्वराजदेशाभिज्ञानानि कथयेत्–'शते शते च वर्षाणां पूर्णेऽहमग्निं प्रविश्य पुनर्बालो भवामि, तदिह भवत्समीपे चतुर्थमग्निं प्रवेक्ष्यामि। अवश्यं मे भवान्मानयितव्यः, त्रीन् वरान् वृणीष्व' इति। प्रतिपन्नं ब्रूयात्–'सप्तरात्रमिह सपुत्रदारेण प्रेक्षाप्रहवणपूर्वं वस्तव्यम्' इति। वसन्तमवस्कन्देत।

(२) मुण्डो वा जटिलो वा स्थानिकव्यञ्जनः प्रभूतजटिलान्तेवासी बस्तशोणितदिग्धां वेणुशलाकां सुवर्णचूर्णेनावलिप्य वल्मीके निदध्यादुपजिह्विकानुसरणार्थं, स्वर्णनालिकां वा। ततः सत्री राज्ञः कथयेत्–'असौ सिद्धः

## कपट उपायों द्वारा राजा को लुभाना

( १ ) मुण्डित या जटाधारी साधु के वेश में पहाड़ की गुफा में अपने अनेक शिष्यों सहित रहने वाले गुप्तचर अपनी आयु को चार सौ वर्ष की बताकर नगर के समीप डेरा डालें। वे शिष्य लोग राजा तथा उसके अमात्यों को कन्द, मूल, फल लेकर उस भगवत्स्वरूप सिद्ध पुरुष के दर्शन करने के लिए उत्साहित करें। जब राजा उसके दर्शनार्थ जाये तब वह साधुवेशधारी गुप्तचर प्राचीन राजाओं और देशों के संबंध में अनेक बातें बताये तथा कहे 'मैं सौ वर्ष बीत जाने पर अग्नि में प्रवेश करके फिर बालक बन जाता हूँ। अब यहाँ पर आपके सामने चौथी बार अग्नि में प्रवेश करूँगा। कुछ वरदान देकर मैं आपको संमानित करना चाहता हूँ। अपने इच्छानुसार आप मुझसे तीन वर माँग सकते हैं।' यदि राजा इन बातों को मान ले तो आगे कहे 'आप अपने स्त्री-पुत्रों सहित सात रात्रि तक खेल-तमाशा कराते हुए तथा उत्सव मनाते हुए यहाँ मेरे आश्रम पर निवास करें।' जब वह राजा सपरिवार वहाँ रहने लगे तो सोते समय चुपके से उसको मार दिया जाय।

( २ ) अथवा मुंडित या जटाधारी के वेश में अनेक शिष्यों सहित किसी स्थान में रहने वाला मठाधीश गुप्तचर बकरे के खून से सनी तथा स्वर्ण चूर्ण से लिपटी, या सुवर्ण युक्त एक बाँस की नली को जंगल में जाकर पहिचान के लिए किसी बाँबी में रख दे। वह बाँस की नली ऐसे स्थान पर रख दी जाय जिससे साँप आसानी से

**पुष्पितं निधिं जानाति' इति । स राज्ञा पृष्टः 'तथा' इति ब्रूयात् । तच्चाभिज्ञानं दर्शयेत् । भूयो वा हिरण्यमन्तराधाय ब्रूयाच्चैनम्–'नागरक्षितोऽयं निधिः प्रणिपातसाध्यः इति । प्रतिपन्नं ब्रूयात्–'सप्तरात्रम्' इति समानम् ।**

**(१) स्थानिकव्यञ्जनं वा रात्रौ तेजनाग्नियुक्तमेकान्ते तिष्ठन्तं सत्रिणः क्रमाभिनीतं राज्ञः कथयेयुः–'असौ सिद्धः सामेधिकः' इति । तं राजा यमर्थं याचेत, तमस्य करिष्यमाणः 'सप्तरात्रम्' इति समानम् ।**

**(२) सिद्धव्यञ्जनो वा राजानं जम्भकविद्याभिः प्रलोभयेत् । 'तं राजा' इति समानम् ।**

**(३) सिद्धव्यञ्जनो वा देशदेवतामभ्यर्हितामाश्रित्य प्रहवणैरभीक्ष्णं प्रकृतिमुख्यानभिसंवास्य क्रमेण राजानमतिसन्दध्यात् ।**

**(४) जटिलव्यञ्जनमन्तरुदकवासिनं वा सर्वश्वेतं तटसुरुङ्गाभूमिगृहापसरणं वरुणं नागराजं वा सत्रिणः क्रमाभिनीतं राज्ञः कथयेयुः । 'तं राजा' इति समानम् ।**

---

भीतर-बाहर आ-जा सके । तदनंतर सत्री गुप्तचर राजा से जाकर कहे 'अमुक सिद्ध पुरुष जमीन में गड़े हुए खजाने को बता सकता है ।' राजा के पूछने पर अपनी अभिज्ञता को स्वीकार कर ले और तत्संबंधी कुछ चिह्न भी बताये । अथवा वहाँ और भी धन गाड़कर राजा से कहे कि 'यह खजाना साँपों से सुरक्षित है । इसलिए इसको बड़ी तजबीज से ही प्राप्त किया जा सकता है ।' जब राजा, सिद्ध को बातों को मान ले तब उससे कहे 'आपको सात रात तक सपरिवार मेरे समीप रहना होगा ।' तदनन्तर सोते समय रात में उसको मार डाला जाय ।

( १ ) अथवा रात्रि के एकांत में अपने शरीर को अग्नि के समान प्रज्वलित कर बैठे हुए उस सिद्ध महात्मा को सत्री गुप्तचर राजा को दिखायें तथा राजा से कहें कि 'यह सिद्ध पुरुष भावी समृद्धि को बता सकता है ।' तदनंतर राजा उस सिद्ध पुरुष से जिस समृद्धि की याचना करे उसको भविष्य में पूरा कर देने का वायदा कर राजा को सात रात्रि तक सपरिवार आश्रम में रहने के लिए कहा जाय और फिर पूर्ववत् उसको मार डाला जाय ।

( २ ) अथवा सिद्ध के वेष में रहने वाला गुप्तचर राजा को कपट विद्याओं से प्रलोभन में फँसाकर पूर्ववत् मार डाले ।

( ३ ) अथवा सिद्ध के वेश में रहने वाला गुप्तचर किसी प्रसिद्ध देवता के मंदिर में रहकर निरंतर सहभोज और उत्सव के द्वारा राजा की अमात्यप्रकृति को अपने वश में करके उस प्रकृतिवर्ग के ही द्वारा राजा को मरवा डाले ।

( ४ ) इसी प्रकार मुण्डित या जटाधारी गुप्तचर उदकचरी विद्याओं के

**(१) जनपदान्तेवासी सिद्धव्यञ्जनो वा राजानं शत्रुदर्शनाय योजयेत्। प्रतिपन्नं बिम्बं कृत्वा शत्रुमावाहयित्वा निरुद्धे देशे घातयेत्।**

**(२) अश्वपण्योपयाता वैदेहकव्यञ्जनाः पण्योपायननिमित्तमाहूय राजानं पण्यपरीक्षायामासक्तमश्वव्यतिकीर्णं वा हन्युः, अश्वैश्च प्रहरेयुः।**

**(३) नगराभ्याशे वा चैत्यमारुह्य रात्रौ तीक्ष्णाः कुम्भेषु नालीन् वा विदलानि धमन्तः–'स्वामिनो मुख्यानां वा मांसानि भक्षयिष्यामः, पूजा नो वर्तताम्' इत्यव्यक्तं ब्रूयुः। तदेषां नैमित्तिकमौहूर्तिकव्यञ्जनाः ख्यापयेयुः।**

**(४) मङ्गल्ये वा ह्रदे तटाकमध्ये वा रात्रौ तेजनतैलाभ्यक्ता नागरूपिणः शक्तिमुसलान्ययोमयानि निष्पेषयन्तस्तथैव ब्रूयुः। ऋक्षचर्मकञ्चुकिनो वा अग्निधूमोत्सर्गयुक्ता रक्षोरूपं वहन्तस्त्रिरपसव्यं नगरं कुर्वाणाः श्वशृगाल-**

---

द्वारा अपने आप को जल के भीतर छिपा कर अपने स्वरूप को स्वच्छ, श्वेत एवं दिव्य, देवता के रूप की तरह बना लें। फिर सत्री गुप्तचर उसको वरुण देवता या नागराज कहकर उसका प्रचार करे। जब राजा उस पर विश्वास कर अपनी मनो-कामना पूर्ण करने की याचना करे तो उसे पूर्ववत् मार डाला जाय।

( १ ) अथवा जनपद की सीमा में रहने वाला सिद्धवेष गुप्तचर वहाँ के राजा को शत्रु राजा से मिला देने का प्रपंच रचे। जब राजा इस पर राजी हो जाय तो पूर्व निर्धारित सांकेतिक चिह्नों के द्वारा शत्रु राजा को वहाँ बुलाकर फिर उस फँसाये गये राजा को एकांत में मार दिया जाय।

( २ ) घोड़ों के व्यापारी गुप्तचर अच्छे-अच्छे घोड़ों को लेकर शत्रु राज्य में जायें और सौदे के बहाने शत्रु को अपने पास बुलायें। जब राजा घोड़ों की परीक्षा कर ले या घोड़ों से घिर जाय तब उसको मार दिया जाय और उन्हीं घोड़ों पर सवार होकर उसकी राजधानी पर हमला बोल दिया जाय।

( ३ ) अथवा नगर के समीपस्थ किसी समाधि या श्मशान में खड़े वृक्ष पर चढ़ कर सत्री गुप्तचर रात में अव्यक्त रूप से इस प्रकार बोलें 'हम इस राजा के या इसकी मुख्य प्रकृतियों के मांस को अवश्य खायेंगे, हमारी पूजा होनी चाहिए।' इस इस बात को शकुनवक्ता ( नैमित्तिक ) तथा ज्योतिषी ( मौहूर्त्तिक ) के वेष में रहने वाले गुप्तचर सर्वत्र प्रकाशित कर दें।

( ४ ) अथवा किसी मांगलिक गहरे जलाशय में रात के समय वे गुप्तचर नाग का रूप बनाकर तथा शरीर में जलने वाले तेल की मालिश कर हाथ में लोहे की बनी हुई शक्ति और मूसल लेकर उन्हें परस्पर रगड़ते हुए चिल्लायें कि हम राजा और उसके मंत्रियों का मांस खायेंगे; हमारी पूजा होनी चाहिए'। अथवा रीछ की खाल को ओढ़ कर राक्षसों का वेष बनाये मुँह से आग-धुआँ उगलते हुए, नगर के

**वाशितान्तरेषु तथैव ब्रूयुः। चैत्यदैवप्रतिमां वा तेजनतैलेनाभ्रपटलच्छन्नेनाग्निना वा रात्रौ प्रज्वाल्य तथैव ब्रूयुः। तदन्ये ख्यापयेयुः।**

**(१) दैवतप्रतिमानामभ्यर्हितानां वा शोणितेन प्रस्रावमतिमात्रं कुर्युः। तदन्ये देवरुधिरसंस्रावे संग्रामे पराजयं ब्रूयुः।**

**(२) सन्धिरात्रिषु श्मशानप्रमुखे वा चैत्यमूर्ध्वभक्षितैर्मनुष्यैः प्ररूपयेयुः। ततो रक्षोरूपी मनुष्यकं याचेत। यश्चात्र शूरवादिकोऽन्यतमो वा द्रष्टुमागच्छेत् तमन्ये लोहमुसलैर्हन्युः, यथा रक्षोभिर्हत इति ज्ञायेत। तदद्भुतं राज्ञस्तद्दर्शिनः सत्रिणश्च कथयेयुः। ततो नैमित्तिकमौहूर्तिकव्यञ्जनाः शान्तिं प्रायश्चित्तं ब्रूयुः—'अन्यथा महदकुशलं राज्ञो देशस्य च' इति। प्रतिपन्नम्—'एतेषु सप्तरात्रमेकैकमन्त्रबलिहोम स्वयं राज्ञा कर्तव्यम्' इति ब्रूयुः। ततः समानम्।**

---

चारों ओर बाँई ओर से तीन परिक्रमा करते हुए वे गुप्तचर कुत्तों तथा सियारों की भाषा में ऊपर की तरह आवाज लगायें। अथवा जलने वाले तेल ( तेजनतैल ) में अभ्रक मिलाकर उसके बीच में श्मशान के देवता की ढकी हुई मूर्ति को रात में जलाकर वे गुप्त पुरुष राजा तथा उसके मंत्रियों को खा जाने की बात कहें। दूसरे सभी गुप्तचर इन बातों को नगर भर में फैला दें।

( १ ) अथवा गुप्तचर देवप्रतिमाओं के भीतर से बकरे आदि के खून को इस प्रकार बहाये कि देखने वालों को ऐसा प्रतीत हो कि देवप्रतिमाएँ स्वयं ही खून उगल रही हैं। तदनन्तर गुप्तचर इस अपशकुन को नगर भर में यह कह कर प्रचारित करे कि संग्राम में अवश्य ही राजा की पराजय होगी।

( २ ) अथवा पूर्णिमा या अमावस की रातों में ऊपर के भाग जिनके खाये गये हैं ऐसे मनुष्यों द्वारा चिता के चिह्नों को दिखाया जाय। तदनन्तर राक्षस बना हुआ कोई गुप्तचर वहीं प्रकट होकर अपने भोजन के लिए एक पुरुष को माँगे। अपने आप को बहादुर कहने वाला जो-कोई भी व्यक्ति वहाँ देखने के लिए आया हो उसको दूसरे सभी गुप्तचर लोहे के मूसलों से मार डालें, जिससे सब लोगों को यही मालूम हो कि अमुक व्यक्ति को राक्षसों ने मार डाला है। इस अद्भुत घटना को देखने वाले लोग तथा गुप्तचर इस बात को राजा तक पहुँचायें। तदनन्तर गुप्तचरों के वेष में रहने वाले नैमित्तिक तथा मौहूर्त्तिक लोग राजा से शान्ति और प्रायश्चित्त के लिए कहें कि यदि ऐसा न किया गया तो राजा-प्रजा का बड़ा अनिष्ट होगा। जब राजा इस बात को स्वीकार कर ले तो उस दुर्निमित्त शान्ति के लिए राजा को सात रात्रि तक बलि, मंत्र तथा होम करने को राजी कर पूर्ववत् उसका वध किया जाय।

**(१) एतान् वा योगानात्मनि दर्शयित्वा प्रतिकुर्वीत, परेषामुपदेशार्थम्। ततः प्रयोजयेद्योगान्। योगदर्शनप्रतीकारेण वा कोशाभिसंहरणं कुर्यात्।**

**(२) हस्तिकामं वा नागवनपाला हस्तिना लक्षण्येन प्रलोभयेयुः, प्रतिपन्नं गहनमेकायनं वाऽतिनीय घातयेयुः, बद्ध्वा वापहरेयुः।**

**(३) तेन मृगयाकामो व्याख्यातः।**

**(४) द्रव्यस्त्रीलोलुपमाढ्यविधवाभिर्वा परमरूपयौवनाभिः स्त्रीभिर्दायादनिक्षेपार्थमुपनीताभिः सत्रिणः प्रलोभयेयुः। प्रतिपन्नं रात्रौ सत्रिच्छन्नाः समागमे शस्त्ररसाभ्यां घातयेयुः।**

**(५) सिद्धप्रव्रजितचैत्यस्तूपदैवतप्रतिमानामभीक्ष्णाभिगमनेषु वा भूमिगृहसुरुङ्गागूढभित्तिप्रविष्टास्तीक्ष्णाः परमभिहन्युः।**

**(६) येषु देशेषु याः प्रेक्षाः प्रेक्षते पार्थिवः स्वयम्।**
**यात्राविहारे रमते यत्र क्रीडति वाम्भसि॥**

---

( १ ) विजिगीषु राजा को चाहिए कि उक्त सभी योगों को वह स्वयं तथा अपने गुप्तचरों, अपने सहायकों को सिखलाये और तब अपने ऊपर किये जाने वाले इस प्रकार के योगों का प्रतीकार कराये। यथावसर उन प्रयोगों द्वारा शत्रु को अपने वश में करे। अथवा इन्हीं प्रयोगों के द्वारा अपना कोष बढाये।

( २ ) अथवा विजिगीषु के हस्तिवनों के रक्षक पुरुष अच्छे हाथियों को दिखाकर, हाथी की इच्छा रखने वाले शत्रु राजा को, प्रलोभन दें। जब वह इस बात पर राजी हो जाय तो घने जंगल में ले जाकर उसको मार दिया जाय; अथवा गिरफ्तार कर अपने राजा के पास ले आवें।

( ३ ) इसी प्रकार शिकार की इच्छा रखने वाले शत्रुराजा के संबंध में भी समझना चाहिए।

( ४ ) अथवा जो राजा धन तथा स्त्रियों की कामना करता हो उसको सत्री गुप्तचर धनसंपन्न विधवा स्त्रियों के द्वारा या दायभाग तथा अमानत के मुकदमों के बहाने वहाँ लायी गयी अत्यंत रूपवती जवान स्त्रियों के जाल में फँसा दिया जाय। जब राजा उनके काबू में हो जाय तब संयोग के लिए किसी एकांत स्थान को नियुक्त कर, वहाँ रात के समय शस्त्र या विष के द्वारा उस राजा को मार दिया जाय।

( ५ ) अथवा ऐसे अवसरों पर जबकि राजा किसी सिद्ध पुरुष, किसी उच्च भिक्षु या श्मशान के स्तूप, या देवताओं के दर्शनार्थ बार-बार आये-जाये उस समय सुरंग, भूमिगृह तथा गूढभित्तियों में छिपे हुए गुप्तचर उसको मार डालें।

( ६ ) शत्रुराजा जिन देशों में नाच, गाना, या तमाशा आदि को देखने जाता हो तथा उत्सवों में शामिल होता हो अथवा जहाँ जलक्रीडा करता हो; अथवा जहाँ

चाट्क्त्यादिषु कृत्येषु यज्ञप्रहवणेषु वा ।
सूतिकाप्रेतरोगेषु प्रीतिशोकभयेषु वा ॥
प्रमादं याति यस्मिन्वा विश्वासात्स्वजनोत्सवे ।
यत्रास्यारक्षिसञ्चारो दुर्दिने सङ्कुलेषु वा ॥
विप्रस्थाने प्रदीप्ते वा प्रविष्टे निर्जनेऽपि वा ।
वस्त्राभरणमाल्यानां फेलाभिः शयनासनैः ॥
मद्यभोजनफेलाभिस्तूर्यैर्वाभिहतैः सह ।
प्रहरेयुररींस्तीक्ष्णाः पूर्वप्रणिहितैः सह ॥
(१) यथैव प्रविशेयुश्च द्विषतः सत्रहेतुभिः ।
तथैव चापगच्छेयुरित्युक्तं योगवामनम् ॥

इति दुर्गलम्भोपाये त्रयोदशेऽधिकरणे योगवामनं नाम द्वितीयोऽध्यायः;
आदित एचत्वारिंशदुत्तरशततमः ।

—: ० :—

---

पर धिक्कार के योग्य कार्य करता हो, या यज्ञ, उत्सव, सूतिका, मृत्यु, रोग, प्रीति, शोक, भय आदि में प्रसन्न, दुःखी और भयभीत होता हो; अथवा जब किसी सगे-संबंधी के यहाँ उत्सव में सम्मिलित होकर प्रमत्त हो जाता हो, अथवा जहाँ रक्षित पुरुषों के बिना ही जाता-आता हो, अथवा किसी दुर्दिन या भीड़-भिड़ाके के अवसरों पर, अथवा निर्जन स्थान में, अथवा नगर में आग लग जाने पर, या नीरव घने जंगल में शत्रु के प्रविष्ट हो जाने पर— ऐसी स्थितियों में पहिले ही से छिपे हुए गुप्तचर, ज्यों ही इशारे के लिए वस्त्र, आभरण, माला, शयन, आसन, मद्य, भोजन आदि अवसरों पर तूर्यघोष हो, वैसे ही वे धावा बोल दें।

( १ ) जिस प्रकार सत्री आदि गुप्तचर शत्रुओं के बीच में प्रविष्ट हुए हों, उसी छल से वे बाहर निकल आवें, अन्यथा उनके पकड़े जाने की संभावना हो सकती है। यहाँ तक योगवामन ( कपट उपायों द्वारा राजा को लुभाना ) का निरूपण किया गया।

दुर्गलम्भोपाय नामक तेरहवें अधिकरण में योगवामन नामक
दूसरा अध्याय समाप्त

—: ० :—

# अपसर्पप्रणिधिः

(१) श्रेणीमुख्यमाप्तं निष्पातयेत् । स परमाश्रित्य पक्षापदेशेन स्वविषयात् साचिव्यकरणसहायोपादानं कुर्वीत । कृतापसर्पोपचयो वा परमनुमान्य स्वामिनो दूष्यग्रामं वीतहस्त्यश्वं दूष्यामात्यं दण्डमाक्रन्दं वा हत्वा परस्य प्रेषयेत् । जनपदैकदेशं श्रेणीमटवीं वा सहायोपादानार्थं संश्रयेत । विश्वासमुपगतः स्वामिनः प्रेषयेत् । ततः स्वामी हस्तिबन्धनमटवीघातं वापदिश्य गूढमेव प्रहरेत् ।

(२) एतेनामात्याटविका व्याख्याताः ।

(३) शत्रुणा मैत्रीं कृत्वा अमात्यानवक्षिपेत् । ते तच्छत्रोः प्रेषयेयुः—'भर्तारं नः प्रसादय' इति । स यं दूतं प्रेषयेत् । तमुपालभेत—'भर्ता ते माम-

## गुप्तचरों का शत्रु देश में निवास

( १ ) विजिगीषु राजा को चाहिए कि वह अपने किसी अत्यन्त विश्वस्त श्रेणी-मुख्य को बनावटी शत्रुतावश अपने राज्य से निकाल दे । वह शत्रु-राजा की शरण में जाकर उसका विश्वास प्राप्त करे और उसके कार्य का बहाना बनाकर छिपे तौर से अपने देश की युद्धोपयोगी सहायक वस्तुओं का संग्रह करे । सहायतार्थ जब उसके पास पर्याप्त गुप्तचर एकत्र हो जायँ तब वह शत्रु-राजा की अनुमति से अपने राजा के किसी दूष्यवर्ग या मित्र पर आक्रमण कर वहाँ से विजित हाथी, घोड़े, राजद्रोही अमात्य, सैनिक और मित्र आदि को गिरफ्तार कर शत्रु-राजा के पास भेज दे । विजिगीषु के उस विश्वस्त व्यक्ति को चाहिए कि वह जनपद के किसी एक देश, संघ या आटविक पुरुषों को अपने उस बनावटी स्वामी की सहायता के लिए तैयार करके फिर उनके साथ गुप्त-मंत्रणा करे । जब गुप्त-मंत्रणा द्वारा वे लोग वस्तुस्थिति को जानकर पूरी तरह सहमत हो जाँय तो उन्हें अपने असली स्वामी के सहायतार्थ उसके पास भेज दे । तदनन्तर हाथियों को पकड़ने या जंगल को नष्ट करने का बहाना बनाकर विजिगीषु राजा अपने असावधान शत्रु पर आक्रमण कर दे ।

( २ ) इसी प्रकार अमात्य तथा आटविक को गुप्तचर बनाकर शत्रु-देश में भेज देने की रीति को भी समझ लेना चाहिए ।

( ३ ) विजिगीषु राजा को चाहिए कि वह अपने शत्रु राजा के साथ बनावटी मित्रता करके अपने अमात्यों का तिरस्कार कर दे, वे अमात्य उस शत्रु-राजा के

**मात्यैर्भेदयति, न च पुनरिहागन्तव्यम्' इति। अथैकममात्यं निष्पातयेत्। स परमाश्रित्य योगापसर्पारक्तदूष्यानशक्तिमतः स्तेनाटविकानुभयोपघातकान् वा परस्योपहरेत्। आप्तभावोपगतः प्रवीरपुरुषोपघातमस्योपहरेत्। अन्तपालमाटविकं दण्डचारिणं वा—'दृढमसौ चासौ च ते शत्रुणा सन्धत्ते' इति। अथ पश्चादभित्यक्तशासनैरेनान्घातयेत्।**

**(१) दण्डबलव्यवहारेण वा शत्रुमुद्योज्य घातयेत्।**

**(२) कृत्यपक्षोपग्रहेण वा परस्यामित्रं राजानमात्मन्यपकारयित्वाभियुञ्जीत। ततः परस्य प्रेषयेत्। 'असौ ते वैरी ममापकरोति, तमेहि सम्भूय हनिष्यावः। भूमौ हिरण्ये वा ते परिग्रहः' इति। प्रतिपन्नमभिसत्कृत्यागत-**

---

पास अपने दूत को इस प्रकार का संदेश लेकर भेजें कि 'आप हमारे स्वामी को प्रसन्न करा दीजिए।' उसके बाद जब शत्रु-राजा अपने जिस दूत को विजिगीषु राजा के पास भेजे, उसको विजिगीषु राजा यह कह कर धमका दे कि 'तुम्हारा राजा, हमारे अमात्यों को हमसे अलग करना चाहता है। खबरदार! ऐसा संदेश लेकर मेरे पास फिर कभी न आना'। इसके बाद विजिगीषु राजा उन अमात्यों में से एक अमात्य को अपने यहाँ से निकाल दे। वह अमात्य शत्रु-राजा की शरण में जाकर अपने राजा के गुप्तचर, गूढ़-पुरुष, दूष्य-पुरुष, चोर तथा 'आटविक आदि को साथ ले जाकर शत्रु-राजा के पास जाये और उससे कहे कि, 'मैंने आपके लिए इतने सहायक तैयार कर दिये हैं' जब शत्रु-राजा उस अमात्य पर पूरा विश्वास करने लगे तो वह अमात्य शत्रु-राजा के शक्तिशाली पुरुषों को मरवा डाले। वह अमात्य शत्रु-राजा से कहे कि 'आपके ये आटविक और सैनिक लोग बड़े दुष्ट हो गए हैं। मैं निश्चयपूर्वक कह सकता हूँ कि अमुक आटविक या अमुक सैनिक आपके शत्रु-राजा के साथ संधि कर रहे हैं।' तदनन्तर वह अमात्य वध्य पुरुषों के पास आटविक और विजिगीषु की पारस्परिक मित्रता को प्रकट करने वाले कपट लेखों को उस शत्रु-राजा को दिखाकर उन अन्तःपाल आदि को मरवा डाले।

( १ ) अथवा वह अमात्य शत्रु को सैनिक सहायता देने का वायदा कर उसको उसके शत्रु से भिड़ा दे और बाद में उसकी सहायता न कर उसके शत्रु द्वारा ही उसको मरवा डाले।

( २ ) अथवा विजिगीषु को चाहिए कि वह शत्रु के क्रुद्ध, लुब्ध तथा भीत आदि प्रतिपक्ष को अपने अनुकूल बनाकर शत्रु के शत्रु राजा द्वारा अपना कुछ अपकार कराये और फिर उस पर चढ़ाई कर दे। उसके बाद विजिगीषु शत्रु-राजा के पास अपने दूत द्वारा यह संदेश भेजे कि 'यह तुम्हारा शत्रु-राजा बराबर मेरा अपकार कर रहा है, आओ, हम दोनों मिलकर उस पर चढ़ाई कर दें। इस विजय में जो

**मवस्कन्देन प्रकाशयुद्धेन वा शत्रुणा घातयेत् । अभिविश्वासनार्थं भूमिदान-पुत्राभिषेकरक्षापदेशेन वा ग्राहयेत् । अविषह्यमुपांशुदण्डेन वा घातयेत् । स चेद्दण्डं दद्यात् न स्वयमागच्छेत्' तमस्य वैरिणा घातयेत् । दण्डेन वा प्रयातुमिच्छेत् न विजिगीषुणा' तथाप्येनमुभयतः संपीडनेन घातयेत् ।**

**(१) अविश्वस्तो वा प्रत्येकशो यातुमिच्छेत्, राज्यैकदेशं वा यातव्यस्य आदातुकामः, तथाप्येनं वैरिणा सर्वसन्दोहेन वा घातयेत् । वैरिणा वा सक्तस्य दण्डोपनयेन मूलमन्यतो हारयेत् ।**

**(२) शत्रुभूम्या वा मित्रं पणेत मित्रभूम्या वा शत्रुम् । ततः शत्रुभूमि-लिप्सायां मित्रेणात्मन्यपकारयित्वाभियुञ्जीत । इति समानाः पूर्वेण सर्व एव योगाः ।**

---

भूमि और हिरण्य प्राप्त होगा उसमें तुम्हें भी हिस्सा दिया जायेगा । जब शत्रु-राजा इस बात को स्वीकार कर विजिगीषु राजा के पास आ जाय तो पहले उसका अच्छा स्वागत-सत्कार किया जाय और बाद में सोते समय छिपकर उसका वध कर दिया जाय, अथवा प्रकाशयुद्ध के समय शत्रु के द्वारा ही उसको मरवा दिया जाय । यदि विजिगीषु की विजय हो जाय तो अपनी पूर्व प्रतिज्ञा के अनुसार जीते हुए हिरण्य तथा भूमि देने या पुत्र के राज्याभिषेक करने अथवा अपनी रक्षा करने के बहाने उस सहयोगी शत्रु-राजा को बुलाकर उसे कैद कर ले । यदि शत्रु इस प्रकार भी काबू में न आये तो उपांशु दंड द्वारा उसका वध करा दिया जाय । यदि विजिगीषु की सहायता के लिए शत्रु-राजा स्वयं न आकर अपनी सेना को ही भेज दे तो उस सेना को मुकाबले में लड़ाकर मरवा दिया जाय । यदि विजिगीषु के सहायतार्थ आया हुआ शत्रु-राजा अपनी सेना के साथ ही युद्ध-भूमि में आना चाहे, तब भी दोनों ओर से घेरा डालकर उसको मरवा दिया जाय ।

( १ ) यदि विजिगीषु के अविश्वास के कारण सहायतार्थ आया हुआ वह शत्रु-राजा इस नीयत से युद्ध में जाये कि अमुक हिस्से को जीत कर मैं अपने वश में कर लूंगा तब भी विजिगीषु उस शत्रु-राजा को उसके शत्रु-राजा द्वारा अपनी सम्पूर्ण सैनिक शक्ति के द्वारा अवश्यमेव मरवा डाले; अथवा लड़ाई में व्यस्त उस शत्रु-राजा की राजधानी में भेजकर विजिगीषु उसका अपहरण करवा डाले ।

( २ ) अथवा विजिगीषु राजा को चाहिए कि वह अपने मित्र के साथ छिपे तौर पर यह कह कर संधि कर ले कि 'यदि हम दोनों ने मिलकर शत्रु पर विजय प्राप्त कर ली तो उसकी भूमि को हम आपस में आधा-आधा बाँट लेंगे ।' इसी प्रकार विजिगीषु शत्रु-राजा के साथ भी छिपे तौर पर यह संधि कर ले कि 'हम दोनों मिल कर तुम्हारे अमुक शत्रु पर विजय प्राप्त करके उसकी भूमि को आपस में बराबर बाँट

**(१) शत्रुं वा मित्रभूमिलिप्सायां प्रतिपन्नं दण्डेनानुगृह्णीयात्, ततो मित्रगतमतिसन्दध्यात्। कृतप्रतिविधानो वा व्यसनमात्मनो दर्शयित्वा मित्रेणामित्रमुत्साहयित्वा आत्मानमभियोजयेत्। ततः संपीडनेन घातयेत्, जीवग्राहेण वा राज्यविनिमयं कारयेत्। मित्रेणाहूतश्चेच्छत्रुरगाह्यो स्थातुमिच्छेत्, सामन्तादिभिर्मूलमस्य हारयेत्, दण्डेन वा त्रातुमिच्छेत्, तमस्य घातयेत्।**

**(२) तौ चेन्न भिद्येयातां प्रकाशमेवान्योन्यस्य भूम्या पणेत, ततः परस्परं मित्रव्यञ्जनोभयवेतना वा दूतान् प्रेषयेयुः—'अयं ते राजा भूमि लिप्सते शत्रुसंहितः' इति। तयोरन्यतरो जाताशङ्कारोषः पूर्ववच्चेष्टेत।**

**(३) दुर्गराष्ट्रदण्डमुख्यान् वा कृत्यपक्षहेतुभिरभिविख्याप्य प्रव्राजयेत्,**

---

लेंगे' इसी प्रकार विजिगीषु राजा जब शत्रु को जीतने की इच्छा करे तो मित्र के द्वारा अपना कुछ अपकार कराके इसी बहाने से उसके ऊपर आक्रमण कर दे। इसके बाद आगे का कार्य पूर्ववत् किया जाय।

( १ ) अथवा जब शत्रु-राजा विजिगीषु के मित्र राजा पर आक्रमण करने की इच्छा करे तो विजिगीषु अपनी ओर से सैनिक सहायता देने की प्रतिज्ञा कर उसको युद्ध में भिड़ा दे। जब सेनाएँ मित्र देश में युद्ध के लिए चली जायँ तो वहाँ मित्र से मिलकर उस आक्रमणकारी शत्रु को ही मरवा दिया जाय। अथवा उसके ऊपर कोई बनावटी विपत्ति दिखाकर अपने मित्र के द्वारा शत्रु को उत्साहित करके विजिगीषु अपने ऊपर चढ़ाई करा दे। जब शत्रु-राजा विजिगीषु राजा पर चढ़ाई कर दे तो विजिगीषु और उसका मित्र दोनों ही उस आक्रमणकारी शत्रु को बीच में घेरकर मार डालें। अथवा उसको कैद में डालकर उसकी जगह अपने आज्ञाकारी उसके पुत्र या अन्य किसी सम्बन्धी का राज्याभिषेक कर दें। यदि विजिगीषु के मित्र द्वारा बुलाया हुआ वह शत्रु अलग रहकर ही विजिगीषु पर आक्रमण करना चाहे तो जिस समय वह शत्रु-राजा विजिगीषु के साथ युद्ध में फँसा हो, उस समय सामन्त राजा के द्वारा उसकी राजधानी को लुटवा दिया जाय। यदि सेना के द्वारा वह अपनी रक्षा करना चाहे तो उस सेना को ही मरवा दिया जाय।

( २ ) यदि शत्रु और उसका मित्र आपस में मिले रहें तो उन्हें प्रकट रूप में भूमि तथा राज्य देने का प्रलोभन दिया जाय। तदनन्तर विजिगीषु और मित्र के उभय-वेतनभोगी मध्यस्थ दूतों के द्वारा यह सन्देश भेजा जाय कि 'यह राजा शत्रु से मिलकर तुम्हारे राज्य को लेना चाहता है।' इस तरह दोनों में फूट और संदेह पैदा कर विजिगीषु राजा आक्रमणकारी शत्रु को मार डाले।

**( ३ ) अथवा विजिगीषु अपने दुर्ग, राष्ट्र और सेना के मुख्य पुरुषों को यह**

**ते युद्धावस्कन्दावरोधव्यसनेषु शत्रुमतिसन्दध्युः, भेदं वास्य स्ववर्गेभ्यः कुर्युः, अभित्यक्तशासनैः प्रतिसमानयेयुः ।**

**(१) लुब्धकव्यञ्जना वा मांसविक्रयेण द्वाःस्था दौवारिकापाश्रयाश्चोराभ्यागमं परस्य द्विस्त्रिरिति निवेद्य लब्धप्रत्यया भर्तुरनीकं द्विधा निवेश्य ग्रामवधेऽवस्कन्दे च द्विषतो ब्रूयुः—'आसन्नश्चोरगणः, महांश्चाक्रन्दः, प्रभूतं सैन्यमागच्छतु' इति । तदर्पयित्वा ग्रामघातदण्डस्य सैन्यमितरदादाय रात्रौ दुर्गद्वारेषु ब्रूयुः—'हतश्चोरगणः, सिद्धयात्रमिदं सैन्यमागतं, द्वारमपाव्रियताम्' इति पूर्वप्रणिहिता वा द्वाराणि दद्युः, तैः सह प्रहरेयुः ।**

**(२) कारुशिल्पिपाषण्डकुशीलववैदेहकव्यञ्जनानायुधीयान् वा परदुर्गे प्रणिदध्यात् । तेषां गृहपतिकव्यञ्जनाः काष्ठतृणधान्यपण्यशकटैः प्रहरणा-**

---

बहाना कर अपने यहाँ से निकाल दे कि वे लोग विजिगीषु के कृत्य पक्ष की सहायता करते हैं । निकाले हुए वे लोग शत्रु की शरण में जाकर युद्ध के समय, सोते समय, अन्तःपुर में रहते समय या किसी आपत्ति के समय मौका पाकर शत्रु को मार डालें । अथवा शत्रु-राजा और उसके अमात्यों के बीच फूट पैदा कर दें और वध्य पुरुषों के द्वारा लाये गये कपट लेखों के प्रमाण से शत्रु-राजा तथा उसके अमात्यों की फूट को अधिक बढ़ा दें ।

( १ ) अथवा शिकारी के वेश में रहने वाले गुप्तचर मांस बेचने के बहाने दरवाजे पर ठहर कर पहरेदारों से मित्रता करके दो तीन बार चिल्लाकर कहें कि 'शत्रु के गाँव में चोर आते हैं' । जब शत्रु राजा को उनकी बातों पर विश्वास हो जाय तो वे गुप्तचर अपने राजा की सेना को ग्रामवध और लूटमार करने ( अवस्कंद ) के लिए दो भागों में बाँट कर शत्रु-राजा से कहें कि 'चोरों का समूह बिलकुल नजदीक आ गया है, उनकी संख्या बहुत है, अतः मुकाबले के लिए आपकी बहुत-सी सेना हमारे साथ जानी चाहिए ।' जब शत्रु-राजा चोरों को दण्ड देने के लिए अपनी सेना भेज दे तो वे ही गुप्तचर अपने राजा की सेना के दूसरे हिस्से को लेकर रात के समय दुर्ग के दरवाजों पर आकर चिल्ला-चिल्ला कर कहें कि 'हमने चोरों के समूह को मार डाला है, यह सेना अपने कार्य को सफल करके यहाँ पहुँच गयी है, इसलिए दुर्ग के दरवाजों को खोल दिया जाय' । अथवा पहिले नियुक्त हुए गुप्तचर ही इशारा पाकर दरवाजे खोल दें और उस सेना के सहित वे गुप्तचर दुर्ग पर हमला बोल दें ।

( २ ) अथवा कारु, शिल्पी, पाखण्डी, कुशीलव और वैदेहक आदि के वेष में रहने वाले या आयुधजीवियों के वेष में रहने वाले गुप्तचरों को भेदिया बनाकर दुर्ग में बसा देना चाहिए । उनमें से गृहस्थ के वेष में रहने वाले गुप्तचर दूसरे गुप्तचरों को लकड़ी, घास, अनाज आदि की गाड़ियों में हथियार तथा कवच आदि पहुँचाते रहें ।

**वरणान्यभिहरेयुः, देवध्वजप्रतिमाभिर्वा। ततस्तद्व्यञ्जनाः प्रमत्तवधमवस्कन्दप्रतिग्रहमभिप्रहरणं पृष्ठतः शङ्खदुन्दुभिशब्देन वा प्रविष्टमित्यावेदयेयुः। प्राकारद्वाराट्टालकदानमनीकभेदं घातं वा कुर्युः।**

**(१) सार्थगणवासिभिरातिवाहिकैः कन्यावाहिकैरश्वपण्यव्यवहारिभिरुपकरणहारकैर्धान्यक्रेतृविक्रेतृभिर्वा प्रव्रजितलिङ्गिभिर्दूतैश्चदण्डातिनयनं सन्धिकर्म विश्वासनार्थम्।**

**(२) इति राजापसर्पाः।**

**(३) एत एवाटवीनामपसर्पाः कण्टकशोधनोक्ताश्च। व्रजमटव्यासन्नमपसर्पाः सार्थं वा चोरैर्घातयेयुः। कृतसङ्केतमन्नपानं चात्र मदनरसविद्धं वा कृत्वाऽपगच्छेयुः। गोपालकवैदेहकाश्च ततश्चोरान् गृहीतलोप्त्रभाराः मदनरसविकारकालेऽवस्कन्दयेयुः। सङ्कर्षणदैवतीयो वा मुण्डजटिलव्यञ्जनः**

---

अथवा देवताओं की ध्वजाओं तथा प्रतिमाओं के साथ वे हथियार वहाँ पहुँचाये जायँ। उसके बाद कारु आदि के वेष में रहने वाले गुप्तचर प्रमादी पुरुषों के वध, बलात्कार, लूट-मार और चारों ओर के आक्रमण के सम्बन्ध में शंख तथा नगाड़े आदि बजाकर पीछे की ओर से हमला हो जाने की सूचना दें। जब शत्रु उनका प्रतीकार करने के लिए सेना लेकर पीछे की ओर से जाय तो इधर से वे गुप्तचर परकोटा प्रधान दरवाजा तथा उसके ऊपर की अटारी तोड़ने के साथ ही शत्रु ही सेना को पूर्ववत् विभक्त कर यथावसर उसको नष्ट कर दें।

( १ ) उन्हीं गुप्तचरों को चाहिए कि दुर्गम मार्गों से पार करने वाले व्यापारियों के झुंड में रहते हुए, कन्याओं को ले जाते हुए, घोड़ों का व्यापार करते हुए, तत्सम्बन्धी दूसरे सौदों को बेचते हुए, सामान को इधर-उधर ढोते हुए, अनाज आदि की खरीद-फरोख्त करते हुए और संन्यासियों के वेष में रहते हुए अपनी सेनाओं को दुर्गम रास्तों से निकालकर बाहर ले आवें तथा शत्रु के विश्वास के लिए सन्धि की शर्तों का पूरा-पूरा ध्यान रखें।

( २ ) इस प्रकार यहाँ तक राजाओं के गुप्त-पुरुषों का निरूपण किया गया।

( ३ ) **कण्टकशोधन** अधिकरण में और इस अध्याय में कहे गए गुप्तचर ही आटविकों के भी समझने चाहिए। अर्थात् आवश्यकता होने पर आटविकों में भी वही गुप्तचर कार्य करें। आटविकों के बीच में रहने वाले गुप्तचरों को चाहिए कि वे जंगल के पास की गोशालाओं तथा राहगीरों को आटविकों के साथ मिलकर लूट डालें या नष्ट कर डालें, उसके बाद संकेत पाते ही उनके खाने-पीने की वस्तुओं में विष मिलाकर वहाँ से भाग निकलें। फिर ग्वालों और व्यापारियों के वेश में रहने वाले गुप्तचर चोरों द्वारा चुराये गये उस माल को स्वयं लेकर विष खाने से बेहोश

**प्रहवणकर्मणा मदनरसयोगाभ्यामतिसन्दध्यात् । अथावस्कन्दं दद्यात् । शौण्डिकव्यञ्जनो वा दैवतप्रेतकार्योत्सवसमाजेष्वाटविकान् सुराविक्रयोपायननिमित्तं मदनरसयोगाभ्यामतिसन्दध्यात् । अथावस्कन्दं दद्यात् ।**

**(१)　ग्रामघातप्रविष्टां वा विक्षिप्य बहुधाऽटवीम् ।**
**घातयेदिति चोराणामपसर्पाः प्रकीर्तिताः ॥**

इति दुर्गलम्भोपाये त्रयोदशेऽधिकरणे अपसर्पप्रणिधिर्नाम तृतीयोऽध्यायः;

आदितो द्विचत्वारिंशदुत्तरशततमः ।

—: ० :—

---

उन आटविकों को गिरफ्तार कर ले, अथवा संकर्षण देवता के मानने वाले (मदिराप्रियों) मुण्डित तथा जटाधारियों के वेष में रहने वाले गुप्तचर उत्सव या सहभोज आदि के बहाने विष देकर या दूसरे तरीकों से उन आटविकों को अपने वश में कर लें, उसके बाद जब वे बेहोश हो जायँ तो उन्हें गिरफ्तार कर लें, अथवा शराब विक्रेताओं के वेष में रहने वाले गुप्तचर किसी देवकार्य, प्रेतकार्य, उत्सव तथा अन्य सामाजिक भोजों के अवसर पर अपनी विक्रयार्थ शराब में विषैले रसों का प्रयोग कर आटविकों को अपने वश में करें और जब वे बेहोश हो जायँ तो उन्हें गिरफ्तार कर लें ।

( १ ) गाँव को नष्ट करने की नियत से गाँव में प्रविष्ट हुए आटविकों के हृदय में विभिन्न प्रकार के विकार उत्पन्न कर उन्हें नष्ट कर दिया जाय । यहाँ तक आटविकों ( चोरों ) के सम्बन्ध में गुप्तचरों के कार्यों का निरूपण किया गया ।

दुर्गलम्भोपाय नामक तेरहवें अधिकरण में अपसर्पप्रणिधि नामक

तीसरा अध्याय समाप्त हुआ ।

—: ० :—

# पर्युपासनकर्म, अवमर्दश्च

(१) कर्शनपूर्वं पर्युपासनकर्म। जनपदं यथानिविष्टमभये स्थापयेत्। उत्थितमनुग्रहपरिहाराभ्यां निवेशयेदन्यत्रापसरतः, समग्रमन्यस्यां भूमौ निवेशयेदेकस्यां वा वासयेत्। न ह्यजनो जनपदो राज्यमजनपदं वा भवतीति कौटिल्यः।

(२) विषमस्थस्य मुष्टिं सस्यं वा हन्याद्वीवधप्रसारौ च।

(३) प्रसारवीवधच्छेदान्मुष्टिसस्यवधादपि।
वमनाद् गूढघाताच्च जायते प्रकृतिक्षयः॥

(४) 'प्रभूतगुणवद्धान्यकुप्ययन्त्रशस्त्रावरणविष्टिरश्मिसमग्रं मे सैन्य-

---

## शत्रु के दुर्ग को घेर कर अपने अधिकार में करना

(१) विजिगीषु को चाहिए कि वह शत्रु के कोष, सैन्य और अमात्य आदि का नाश करने के साथ ही उसके दुर्ग को चारों ओर से घेर दे। किन्तु ऐसी स्थिति में विजिगीषु को ध्यान रखना चाहिए कि जनपद को किसी प्रकार का कष्ट न होने पावे, वरन्, उसकी रक्षा का सुप्रबंध करे। यदि जनपद विजिगीषु के विरुद्ध आंदोलन करे तो उसे धन देकर या कर माफ करके शांत किया जाय। किन्तु ऐसा यत्न उसी दशा में करना चाहिए जब जनपद अपने स्थान पर बना रहे; अन्यथा उसकी कुछ भी सहायता न की जाय। उस जनपद के विभिन्न भागों में अधिकाधिक आदमियों को बसाया जाय अथवा एक ही भाग में अधिक आदमियों को बसाया जाय; क्योंकि मनुष्यों से रहित प्रदेश जनपद नहीं कहला सकता और जनपदरहित भूमि राज्य नहीं कहला सकती। इसीलिए कौटिल्य का कहना है कि 'यदि जनपद न होगा तो राज्य किस पर किया जायगा ?'

(२) विजिगीषु को चाहिए कि वह विपत्तिग्रस्त शत्रु के अन्न, फसल, वीवध और प्रसार आदि सबको नष्ट कर दे।

(३) वीवध, प्रसार आदि का उच्छेद कर देने से तथा फसल, अनाज, व्यापार आदि को नष्ट कर देने से और अमात्य आदि प्रकृतिवर्ग कहीं दूसरी जगह ले जाने से या चुपचाप उन्हें मार देने से राजा का अपने आप क्षय हो जाता है।

(४) जब विजिगीषु यह समझे कि 'प्रभूत गुणों से संपन्न धान्य, लोहा, ताँबा,

मृतुश्च पुरस्तात्, अपर्तुः परस्य व्याधिदुर्भिक्षनिचयरक्षाक्षयः क्रीतबलनिर्वेदो मित्रबलनिर्वेदश्च' इति पर्युपासीत ।

(१) कृत्वा स्कन्धावारस्य रक्षां वीवधासारयोः पथश्च, परिक्षिप्य दुर्गं खातसालाभ्यां, दूषयित्वोदकमवस्राव्य परिखाः सम्पूरयित्वा वा, सुरुङ्गा-बलकुटिकाभ्यां वप्रप्राकारौ हारयेत् ।

(२) दारं च गुलेन निम्नं वा पांसुमालयाऽऽच्छादयेत् । बहुलारक्षं यन्त्रै-र्घातयेत् । निष्करादुपनिष्कृष्याश्वैश्च प्रहरेयुः । विक्रमान्तरेषु च नियोग-विकल्पसमुच्चयैश्चोपायानां सिद्धिं लिप्सेत । दुर्गवासिनः ।

(३) श्येनकाकनप्तृभासशुकशारिकोलूककपोतान् ग्राहयित्वा पुच्छेष्व-ग्नियोगयुक्तान् परदुर्गे विसृजेयुः ।

---

वस्त्र, मशीन, हथियार, कवच, श्रमिक और रस्सी आदि सभी उपयोगी सामग्री से अपनी सेना युक्त है और ऋतु भी अपने अनुकूल है; किन्तु शत्रु का देश बीमारी, दुर्भिक्ष से अभिभूत, धन-धान्य तथा रक्षक पुरुषों से अभावग्रस्त है, उसको वेतनभोगी सेना सहायता देने से इनकार करती हो, मित्रसेना भी खिन्न हो चुकी हो और ऋतु भी उसके प्रतिकूल हो, ऐसी अवस्था में वह शत्रु के दुर्ग पर घेरा डाल दे ।

( १ ) शत्रु-दुर्ग पर घेरा डालने के लिए विजिगीषु को चाहिए कि पहिले वह अपनी छावनी, वीवध, असार और अपने मार्ग की रक्षा करे, फिर खाई तथा पर-कोटे के अनुसार दुर्ग को चारों ओर से घेरा डाल दे, तदनन्तर शत्रु के पानी में विष मिला दे या बांध तोड़ कर उसे बहा दे, और अन्त में खाइयों को मिट्टी से पाट कर या किले की दीवारों तथा अटारियों पर सुरंग बनाकर दुर्ग पर आक्रमण कर दे ।

( २ ) दुर्ग की दरारों को कंकरीट से तथा नीची-गहरी जगहों को मिट्टी से पाट दिया जाय । दुर्ग के जिस भाग में रक्षा का अधिक प्रबन्ध हो उसे मशीनों द्वारा नष्ट कर दिया जाय । कपट से रक्षक पुरुषों को बाहर निकाल कर घोड़ों तथा हाथियों द्वारा उन पर हमला बोल दिया जाय । जब युद्धक्षेत्र में शत्रु की सेना अधिक पराक्रम-शाली जान पड़े तो साम, दान आदि उपायों के द्वारा या अवसर के अनुसार वैसा ही उपाय का प्रयोग करे या एक उपाय की जगह दूसरे उपाय को काम में लाकर अथवा अनेक उपायों को एक साथ उपयोगमें लाकर दुर्गवासी शत्रु पर विजय-लाभ की चेष्टा करनी चाहिए ।

( ३ ) बाज, कौवा, नप्ता ( मुर्गे के समान ); गिद्ध, तोता, मैना, उल्लू और कबूतर आदि पक्षियों को पकड़ करउनकी पूंछ में आग लगाने वाली औषधियों को मल कर उन्हें शत्रु के दुर्ग में छोड़ दिया जाय, जिससे कि वहाँ आग लग जाय ।

**(१) अपकृष्टस्कन्धावारादुच्छ्रितध्वजधन्वारक्षा वा मानुषेणाग्निना परदुर्गमादीपयेत् ।**

**(२) गूढपुरुषाश्चान्तदुर्गपालका नकुलवानरबिडालशुनां पुच्छेष्वग्नियोगमाधाय काण्डनिचयरक्षाविधानवेश्मसु विसृजेयुः ।**

**(३) शुष्कमत्स्यानामुदरेष्वग्निमाधाय वल्लूरे वा वायसोपहारेण वयोभिर्हारयेयुः ।**

**(४) सरलदेवदारुपूतितृणगुग्गुलश्रीवेष्टकसर्जरसलाक्षागुलिकाः खरोष्ट्राजावीनां लण्डं चाग्निधारणम् ।**

**(५) प्रियालचूर्णमवल्गुजमषीमधूच्छिष्टमश्वखरोष्ट्रगोलण्डमित्येष क्षेप्योऽग्नियोगः ।**

**(६) सर्वलोहचूर्णमग्निवर्णं वा कुम्भीसीसत्रपुचूर्णं वा पारिभद्रक-**

---

( १ ) शत्रु-दुर्ग के बाहर नीचे की ओर खड़ी विजिगीषु की सेना को चाहिए कि वह अपनी छावनी से शत्रु के दुर्ग पर आग फेंकने के लिए ध्वज, धनुष-बाण उठाये हुये सैनिक मानुष-अग्नि ( मारे हुए आदमी की हड्डी की चितकबरे बाँस के साथ रगड़ने से उत्पन्न हुई आग ) के द्वारा शत्रु-दुर्ग में आग लगा दें या पहरेदार ही इस कार्य को करें ।

( २ ) किले के अन्दर अन्तपाल या दुर्गपाल के वेश में रहने वाले गुप्तचरों को चाहिए कि नेवला, बन्दर, बिल्ली और कुत्ते की पूंछ में वे आग लगा देने वाली औषधियों को लगा कर उन्हें शत्रु के उन घरों में छोड़ दें, जहाँ दुर्गरक्षा संबंधी सामग्री रखी हो ।

( ३ ) सूखी मछली के पेट में या सूखे मांस के अन्दर आग लगा देने वाली औषधियाँ ( अग्नियोग ) रखकर उसको पक्षियों को खिलाने के बहाने या पक्षियों के द्वारा शत्रु-दुर्ग में पहुँचा कर वहाँ आग लगा दी जाय ।

( ४ ) सरई ( सरल ), देवदारु, गुलवनफशा ( पूतितृण ), गूगल, तारपीन ( श्रीवेष्टक ), कुल्लू की गोंद ( सर्जरस ) और लाख इन सब चीजों की गोलियाँ; तथा गधा, ऊँट, बकरा और मेढ़ा, इनकी लीद इनके द्वारा आसानी से आग लगाई जा सकती है ।

( ५ ) चिरौंजी ( प्रियाल ) का चूर्ण, बागुची ( अवल्गु ) का दरदरा चूर्ण, शहद तथा घोड़ा, गधा, ऊँट और बैल की लीद, इन सबको मिलाकर बनाया गया अग्नियोग आग लगाने के लिए उपयोगी है ।

( ६ ) अथवा अग्निवर्ण लोहे का चूर्ण, नीम कुंभी, जस्ता, सीसा और राँगा का चूर्ण नीम तथा पलाशपुष्प का चूर्ण, तेल, शहद, तारपीन आदि वस्तुओं को एक साथ

**पलाशपुष्पकेशमषीतैलमधूच्छिष्टकश्रीवेष्टकयुक्तोऽग्नियोगो विश्वासघाती वा। तेनावलिप्तः शणत्रपुसवल्कवेष्टितो बाण इत्यग्नियोगः।**

**(१) नत्वेव विद्यमाने पराक्रमेऽग्निमवसृजेत्। अविश्वास्यो ह्यग्निः दैवपीडनं च, अप्रतिसंख्यातप्राणिधान्यपशुहिरण्यकुप्यद्रव्यक्षयकरः। क्षीणनिचयं चावाप्तमपि राज्यं क्षयायैव भवति।**

**(२) इति पर्युपासनकर्म।**

**(३) 'सर्वारम्भोपकरणविष्टिसम्पन्नोऽस्मि, व्याधितः पर उपधाविरुद्धप्रकृतिरकृतदुर्गकर्मनिचयो वा निरासारः सासारो वा पुरा मित्रैः सन्धत्ते' इत्यवमर्दकालः।**

**(४) स्वयमग्नौ जाते समुत्थापिते वा प्रहवणे प्रेक्षानीकदर्शनसङ्गसौरिककलहेषु नित्ययुद्धश्रान्तबले बहुलयुद्धप्रतिविद्धप्रेतपुरुषे जागरणक्लान्तसुप्तजने दुर्दिने नदीवेगे वा नीहारसम्प्लवे वानमृद्नीयात्।**

---

मिलाकर बनाया गया अग्नियोग निश्चय ही विश्वासघाती होता है। (अर्थात् जहाँ आग लगने की कतई भी संभवना न हो, वहाँ भी इसका प्रयोग करने पर आग लग जाती है। अचूक अग्नियोग होने के कारण ही इसको विश्वासघात कहा गया है।) उक्त सभी वस्तुओं के योग से सना हुआ और सन तथा ककड़ी की बेल की छाल से लपेटा हुआ बाण भी अग्नियोग होता है, अर्थात् जहाँ मारा जाता है वहीं आग लगा देता है।

(१) युद्ध के प्रारम्भ में इन अग्नियों को नहीं छोड़ना चाहिए, क्योंकि अग्नि का कोई विश्वास नहीं है और फेर उसे दैवपीड़न कहा गया है। अग्निदाह से असंख्य प्राणियों, धन, धान्य, पशु एवं अनेक प्रकार के द्रव्यों का नाश हो जाता है। ऐसा नष्ट-भ्रष्ट राज्य अपने हाथ में आ जाने पर भी क्षय का ही कारण होता है।

(२) यहाँ तक शत्रु-दुर्ग के घेरने के संबंध में निरूपण किया गया।

(३) जब विजिगीषु वह समझ ले कि 'वह सब प्रकार की युद्धोपयोगी सामग्री से संपन्न है, सभी तरह के कार्य करने वाले आदमी उसके पास मौजूद हैं; उधर शत्रु व्याधिग्रस्त है, उसकी प्रकृतियाँ धोखा देने वाली हैं, दुर्ग आदि की मरम्मत तथा धान्य आदि का संग्रह भी उसने नहीं किया है, मित्र की सहायता की भी संभावना नहीं है, अथवा सहायता सम्भव होने पर भी अभी तक वह संधि करने में ही फंसा हुआ है'—ऐसे शत्रु पर फौरन चढ़ाई कर देनी चाहिए।

(४) अथवा विजिगीषु जब देखे कि 'शत्रु के दुर्ग में अपने-आप आग लग गई है, या सब लोग पार्टियों तथा उत्सवों में व्यस्त हैं या खेल-तमाशों तथा चाँदमारी में आसक्त हैं या शराबियों ने कोई उपद्रव खड़ा कर दिया है या लगातार के युद्ध में शत्रु

**(१) स्कन्धावारमुत्सृज्य वा वनगूढः शत्रुः सत्रान्निष्क्रान्तं घातयेत् ।**

**(२) मित्रासारमुख्यव्यञ्जनो वा संरुद्धेन मैत्रीं कृत्वा दूतमभित्यक्तं प्रेषयेत्—'इदं ते छिद्रम्, इमे दूष्याः, संरोद्धुर्वा छिद्रमयं ते कृत्यपक्षः' इति। तं प्रतिदूतमादाय निर्गच्छन्तं विजिगीषुर्गृहीत्वा दोषमभिविख्याप्य प्रवास्यापगच्छेत् ततः। मित्रासारव्यञ्जनो वा संरुद्धं ब्रूयात्—'मां त्रातुमुपनिर्गच्छ, मया वा सह संरोद्धारं जहि' इति। प्रतिपन्नमुभयतः संपीडनेन घातयेत्, जीवग्राहेण वा राज्यविनिमयं कारयेत्, नगरं वास्य प्रमृद्नीयात्, सारबलं वास्य वमयित्वाऽभिहन्यात् ।**

---

सेना थक गई है, या लंबे युद्ध के कारण शत्रु के बहुत से आदमी जख्मी हो गये हैं या मर गये हैं, या रातभर जागने तथा थक जाने के कारण लोग सोये हैं, या आकाश में दुर्दिन छाया है, या नदी में बाढ़ आ गई है, या भीषण तुषारापात हुआ है'—ऐसी अवस्था में शत्रु पर एकदम धावा बोल देना चाहिए ।

( १ ) अथवा छावनी या पड़ाव न डाल कर जंगल में जाकर छिपा जाय और जैसे ही शत्रुदल जंगल से निकलने लगे कि उसके ऊपर विजिगीषु की सेना एकदम बरस पड़े ।

( २ ) मित्र के वेष में रहने वाला या मित्र की सेना में मुखिया के वेष में रहने वाले विजिगीषु के गुप्तचर को चाहिए कि वह घिरे हुए शत्रु-राजा के साथ मित्रता करके अपने किसी वध्य पुरुष के द्वारा उसके लिए इस आशय का एक संदेश भेजे कि 'तुम्हारे अंदर अमुक-अमुक दोष हैं, अमुक-अमुक व्यक्ति तुम्हारे द्रोही हैं, घेरा डालने वाले विजिगीषु की अमुक-अमुक कमजोरियाँ हैं, और विजिगीषु के लुब्ध, क्रुद्ध, भीत आदि अमुक-अमुक लोग तुम्हारे मित्र हैं।' जब वह दूत शत्रु-राजा का उत्तर लेकर लौट रहा हो तो विजिगीषु उसको रास्ते में ही पकड़ कर उस पर अपकारी होने का दोष लगावे और इसी अपराध में उसको मार कर वहाँ से ( उस उत्तर लेखपत्र को साथ लेकर ) चला जाय। अथवा मित्र के वेष में या मित्र सेना के प्रमुख के वेष में रहने वाला वह गुप्तचर उस घिरे हुए राजा से कहे कि 'मेरी रक्षा के लिए तुम्हें तैयार हो जाना चाहिए, अथवा हम दोनों मिल कर तुमको रोकने वाले विजिगीषु को मार डालें।' जब वह इस प्रस्ताव को स्वीकार कर ले तो दोनों ओर से घेर कर उसको मार दिया जाय अथवा उसको गिरफ्तार कर उसकी जगह उसके किसी पुत्र बांधव को अभिषिक्त किया जाय या उसकी राजधानी को बरबाद कर दिया जाय। अथवा उसके सारबल को दुर्ग से बाहर निकाल कर उसको मार दिया जाय ।

**(१) तेन दण्डोपनताटविका व्याख्याताः ।**

**(२) दण्डोपनताटविकयोरन्यतरो वा संरुद्धस्य प्रेषयेत्–'अयं संरोद्धा व्याधितः, पार्ष्णिग्राहेणाऽभियुक्तः, छिद्रमन्यदुत्थितम्, अन्यस्यां भूमावपयातुकामः' इति। प्रतिपन्ने संरोद्धा स्कन्धावारमादीप्यापयायात्। ततः पूर्ववदाचरेत् ।**

**(३) पण्यसम्पातं वा कृत्वा पण्येनैनं रसविद्धेनातिसन्दध्यात् ।**

**(४) आसारव्यञ्जनो वा संरुद्धस्य दूतं प्रेषयेत्—'मया बाह्यमभिहतमुपनिर्गच्छाभिहन्तुम्' इति । प्रतिपन्नं पूर्ववदाचरेत् ।**

**(५) मित्रं बन्धुं वापदिश्य योगपुरुषाः शासनमुद्राहस्ताः प्रविश्य दुर्गं ग्राहयेयुः ।**

**(६) आसारव्यञ्जनो वा संरुद्धस्य प्रेषयेत्–'अमुष्मिन् देशे काले च**

---

( १ ) इसी प्रकार दण्डोपनत और आटविकों के सम्बन्ध में भी समझ लेना चाहिए ।

( २ ) अथवा उन दण्डोपनत ( बलपूर्वक वश में किये गये राजा ) और आटविक ( जंगली राजा ) दोनों में से किसी एक द्वारा उस घिरे हुए शत्रु-राजा के पास यह संदेश भेजा जाय कि 'यह घेरा डालने वाला विजिगीषु आजकल व्याधिग्रस्त है, पार्ष्णिग्राह ने भी उस पर हमला कर दिया है, ऐसी स्थिति में वह यहाँ से अन्यत्र भाग जाने को तैयार है ।' जब घिरा हुआ शत्रु-राजा इन बातों से सहमत हो जाय तब विजिगीषु अपनी छावनी में आग लगाकर वहाँ से चला जाय । उसके बाद पूर्ववत् शत्रु-राजा को बीच में घेर कर समाप्त कर दिया जाय ।

( ३ ) अथवा व्यापारियों के संघ द्वारा उपहारस्वरूप भेजे गये द्रव्यों में विष मिला कर उन्हें किले में पहुँचा दिया जाय ।

( ४ ) अथवा मित्र की सेना में प्रमुख अधिकारी के वेष में रहने वाला गुप्तचर घिरे हुए शत्रु-राजा के पास इस प्रकार का संदेश लेकर दूत को भेजे कि 'मैंने तुम्हारे इस बाह्य शत्रु को एकदम शक्तिहीन बना दिया है । अब इसको सर्वथा नष्ट करने के लिए तुम दुर्ग से बाहर निकल आओ ।' जब शत्रु इस विश्वास पर बाहर निकल आवे तो उसे दोनों ओर से घेर कर पूर्ववत् मार दिया जाय ।

( ५ ) अथवा अपने-आपको मित्र का बंधु बताकर मुहर लगे बनावटी लेखपत्र को हाथ में लेकर गुप्तचर दुर्ग के भीतर प्रवेश कर दें और वहाँ किसी उपाय से फाटक आदि खोलकर उस दुर्ग को विजिगीषु के अधिकार में कर दें ।

( ६ ) अथवा मित्र सेना के प्रमुख अधिकारी के वेष में रहने वाला गुप्तचर उस घिरे हुए शत्रुराजा के पास यह संदेश भेजे कि 'मैं अमुक समय और अमुक स्थान में

**स्कन्धावारमभिहनिष्यामि, युष्माभिरपि योद्धव्यम्' इति। प्रतिपन्नं यथोक्तमभ्याघातसंकुलं दर्शयित्वा रात्रौ दुर्गान्निष्क्रान्तं घातयेत् ।**

**(१) यद्वा मित्रमावाहयेदाटविकं वा, तमुत्साहयेत्–'विक्रम्य संरुद्धे भूमिमस्य प्रतिपद्यस्व' इति । विक्रान्तं प्रकृतिभिर्दूष्यमुख्यावग्रहेण वा घातयेत्, स्वयं वा रसेन । 'मित्रघातकोऽयम्' इत्यवाप्तार्थः ।**

**(२) विक्रमितुकामं वा मित्रव्यञ्जनः परस्याभिशंसेत् । आप्तभावोपगतः प्रवीरपुरुषानस्योपघातयेत् ।**

**(३) सन्धिं वा कृत्वा जनपदमेनं निवेशयेत्, निविष्टमन्यजनपदमविज्ञातो हन्यात् ।**

**(४) अपकारयित्वा दूष्याटविकेषु वा बलैकदेशमतिनीय दुर्गमवस्कन्देन हारयेत् ।**

---

शत्रु की छावनी पर हमला करूँगा । तुमको उस समय मेरी सहायता करनी होगी ।' शत्रु जब इस बात को स्वीकार कर ले तो ठीक इसी समय और उसी स्थान पर विजिगीषु की छावनी में घमासान युद्ध छेड़ दिया जाय । उसे देखकर जब शत्रु रात में बाहर निकल आवे तो उसे बीच में ही घेर कर मार दिया जाय ।

( १ ) अथवा विजिगीषु अपने मित्र या आटविक को वहाँ बुलाकर उसको इस प्रकार उकसाये कि 'देखो, अच्छा मौका है, तुम इस घिरे शत्रु पर आक्रमण करके उसके राज्य को हथिया लो !' जब वह ऐसा करने के लिए राजी हो जाय तो युद्ध में उसके प्रकृतिवर्ग को या दूष्यवर्ग को अपने अधीन कर उसको मरवा दिया जाय; या स्वयं ही विष आदि देकर उसको मार डाले । बाद में 'इस शत्रु ने मेरे मित्र या आटविक को मार डाला है', ऐसी अफवाह फैलाकर अपनी कार्यसिद्ध करे ।

( २ ) अथवा मित्र के वेष में रहने वाला गुप्तचर शत्रु राजा से जाकर कहे कि 'तुम्हारे ऊपर विजिगीषु आक्रमण करने वाला है' । ऐसी बातें बताकर जब वह शत्रु राजा को अपने प्रति निश्चिन्त कर दे तब उसके प्रमुख बहादुर सैनिकों को मरवा डाले ।

( ३ ) अथवा शत्रु के साथ सन्धि करके उसे उसी जनपद में रहने दिया जाय, या उसके द्वारा दूसरे जनपद को आबाद कराया जाय और बाद में उस आबाद हुए जनपद को विजिगीषु छिपकर बरबाद कर दे ।

( ४ ) अथवा अपने दूष्य या आटविकों द्वारा अपना कुछ अपकार करा कर उन पर आक्रमण करने के बहाने शत्रु की सेना के कुछ भाग को बहुत दूर ले जाया जाय और फिर अल्प सैन्ययुक्त शत्रु के दुर्ग पर हमला कर जबरदस्ती उसको छीन लिया जाय ।

**(१) दूष्यामित्राटविकद्वेष्यप्रत्यपसृताश्च कृतार्थमानसंज्ञाचिह्नाः परदुर्गमवस्कन्देयुः ।**

**(२) परदुर्गमवस्कन्द्य स्कन्धावारं वा पतितपराङ्मुखाभिपन्नमुक्तकेशशस्त्रभयविरूपेभ्यश्चाभयमयुध्यमानेभ्यश्च दद्युः । परदुर्गमवाप्य विशुद्धशत्रुपक्षः कृतोपांशुदण्डप्रतीकारमन्तर्बहिश्च प्रविशेत् ।**

**(३) एवं विजिगीषुरमित्रभूमिं लब्ध्वा मध्यमं लिप्सेत । तत्सिद्धावुदासीनम् । एष प्रथमो मार्गः पृथिवीं जेतुम् ।**

**(४) मध्यमोदासीनयोरभावे गुणातिशयेनारिप्रकृतीः साधयेत् । तत उत्तराः प्रकृतीः । एष द्वितीयो मार्गः ।**

**(५) मण्डलस्याभावे शत्रुणा मित्रं मित्रेण वा शत्रुमुभयतः सम्पीडनेन साधयेत् । एष तृतीयो मार्गः ।**

---

( १ ) शत्रु के दुर्ग का अपहरण करते समय शत्रु के राजद्रोही, शत्रु, आटविक, शत्रु के पास से एक बार जाकर फिर वापिस आने वाले, विजिगीषु द्वारा धन-मान से सम्मानित और आक्रमण के समय तथा स्थान से परिचित आदि बड़े सहायक होते हैं।

( २ ) विजिगीषु को चाहिए कि जब शत्रु की छावनी पर अधिकार कर ले तो ऐसे सैनिकों को अभयदान दे दे, जो युद्धक्षेत्र में जख्मी पड़े हों, जो युद्ध से भाग गए हों, जो अधिक विपद्ग्रस्त हों, जिनके बाल-शस्त्र अस्त-व्यस्त हों, जिनके मुख भय से विकृत हो गये हों और जो युद्ध में शामिल न हुए हों। शत्रु के दुर्ग को प्राप्त करके और वहाँ से शत्रुपक्ष के सभी व्यक्तियों की सफाई करने के बाद विजिगीषु को चाहिए कि वह अपना विरोध करने वाले व्यक्तियों का उपांशु वध करके दुर्ग के बाहर और भीतर प्रवेश करे।

( ३ ) इस प्रकार शत्रु राज्य जो स्वायत्त करने के बाद विजिगीषु, मध्यम राजा को जीतने की कोशिश करे और उसको स्वायत्त कर लेने के बाद वह उदासीन राजा पर विजय प्राप्त करे। पृथिवी का साम्राज्य प्राप्त करने का यह पहिला मार्ग है।

( ४ ) मध्यम और उदासीन राजाओं के न होने पर विजिगीषु अपने गुण-बाहुल्य के द्वारा शत्रु के प्रकृतिवर्ग को अपने अनुकूल बनाये और उसके बाद शत्रु की सेना तथा कोष को अपने अधिकार में करे। पृथ्वी का आधिपत्य प्राप्त करने का यह दूसरा मार्ग है।

( ५ ) यदि राजमण्डल का अभाव हो तो शत्रु के द्वारा मित्र को और मित्र के द्वारा शत्रु को दोनों ओर से घेर कर या दबा कर उन्हें विजिगीषु अपने वश में करे। पृथिवी को विजय करने का यह तीसरा मार्ग है।

(१) शक्यमेकं वा सामन्तं साधयेत्, तेन द्विगुणो द्वितीयं, त्रिगुणस्तृतीयम्। एष चतुर्थो मार्गः पृथिवीं जेतुम्।

(२) जित्वा च पृथिवीं विभक्तवर्णाश्रमां स्वधर्मेण भुञ्जीत।

(३) उपजापोऽपसर्पो वा वामनं पर्युपासनम्।
अवमर्दश्च पञ्चैते दुर्गलम्भस्य हेतवः।

इति दुर्गलम्भोपाये त्रयोदशेऽधिकरणे पर्युपासनकर्म अवमर्दश्चेति चतुर्थोऽध्यायः,
आदितस्त्रिचत्वारिंशदुत्तरशततमः।

—: ० :—

---

( १ ) अथवा जीतने योग्य समीपस्थ सामन्त को ही पहिले अपने अनुकूल बनाया जाय। उसको मिलाकर जब अपनी शक्ति दुगुनी हो जाय तब दूसरे सामन्त को अपने अनुकूल बनाने का यत्न किया जाय। उसको भी मिलाकर जब अपनी शक्ति तिगुनी हो जाय तब विजिगीषु तीसरे सामन्त को अपने वश में करने का यत्न करे। पृथ्वी को विजय करने का यह चौथा मार्ग है।

( २ ) इस प्रकार सारी पृथ्वी का साम्राज्य प्राप्त कर उस शक्तिशाली सम्राट् को चाहिए कि वह अपने साम्राज्य में वर्णों और आश्रमों की यथोचित व्यवस्था कर धर्मपूर्वक पृथिवी के राज्य का उपभोग करे।

( ३ ) उपजाप ( बहकाना ), अपसर्प ( गुप्तचरों द्वारा शत्रुनाश ), वामन ( विष प्रयोग ), पर्युपासन ( घेरा डालना ) और अवमर्द ( विध्वंस ), ये पाँच उपाय हैं, जिनके द्वारा शत्रु के दुर्ग को जीता जा सकता है।

दुर्गलम्भोपाय नामक तेरहवें अधिकरण में पर्युपासनकर्म-अवमर्द नामक
चौथा अध्याय समाप्त।

—: ० :—

| प्रकरण १७६ | |
| --- | --- |
| अध्याय ५ | |

# लब्धप्रशमनम्

(१) द्विविधं विजिगीषोः समुत्थानम्, अटव्यादिकमेकग्रामादिकं च।

(२) त्रिविधश्चास्य लम्भः—नवो, भूतपूर्वः, पित्र्य इति।

(३) नवमवाप्य लम्भं परदोषान् स्वगुणैश्छादयेत् गुणान् गुणद्वैगुण्येन। स्वधर्मकर्मानुग्रहपरिहारदानमानकर्मभिश्च प्रकृतिप्रियहितान्यनुवर्तेत। यथासम्भाषितं च कृत्यपक्षमुपग्राहयेत्। भूयश्च कृतप्रयासम्। अविश्वास्यो हि विसंवादकः स्वेषां परेषां च भवति। प्रकृतिविरुद्धाचारश्च। तस्मात्समानशीलवेषभाषाचारतामुपगच्छेत्। देशदैवतसमाजोत्सवविहारेषु च भक्तिमनुवर्तेत।

## विजित देश में शान्ति की स्थापना

( १ ) विजिगीषु का उद्योग ( समुत्थान ) दो रूपों में फलित होता है। एक जंगल आदि के रूप में और दूसरा गाँव आदि के रूप में।

( २ ) विजिगीषु का लाभ तीन प्रकार का होता है। १. नव २. भूतपूर्व और ३. पित्र्य।

( ३ ) **नवलाभ** : विजिगीषु को चाहिए कि नए राज्य को प्राप्त कर वह शत्रु के दोषों को अपने गुणों से ढक दे और शत्रु के गुणों को अपने दुगुने गुणों से पराभूत कर दे। विजिगीषु सदा अपने धर्म, कर्म, अनुग्रह, परिहार ( करमाफी ), दान और सम्मान आदि श्रेष्ठ कार्यों के द्वारा प्रजा के अनुकूल कल्याणकारी कार्यों के करने में लगा रहे। अपनी पूर्व प्रतिज्ञा के अनुसार अपने कृत्यपक्ष को धन आदि देकर वह सदा प्रसन्न बनाये रखे और जिस प्रजाजन या मित्र ने उसके अभ्युदय में अधिक परिश्रम किया हो उसे विपुल धन देकर खूब प्रसन्न कर दे क्योंकि पहिले प्रतिज्ञा कर बाद में उससे मुकर जाने वाला अपने प्रजावर्ग के विरुद्ध आचरण करने वाला राजा अपने तथा पराये सभी का विश्वास खो बैठता है। इसलिए राजा को उचित है कि वह अपने प्रजाजनों के समान ही शील, वेष, भाषा तथा आचरण का व्यवहार करे और प्रजा के विश्वासों की तरह राष्ट्रदेवता, समाजोत्सव तथा विहारों में अपनी भक्तिभावना रखे।

**(१) देशग्रामजातिसङ्घमुख्येषु चाभीक्ष्णं सत्रिणः परस्यापचारं दर्शयेयुः। माहाभाग्यं भक्ति च तेषु स्वामिनः स्वामिसत्कारं च विद्यमानम्। उचितैश्चैनान् भोगपरिहाररक्षावेक्षणैर्भुञ्जीत। सर्वदेवताश्रमपूजनं च विद्यावाक्यधर्मशूरपुरुषाणां च भूमिद्रव्यदानपरिहारान् कारयेत्। सर्वबन्धनमोक्षणमनुग्रहं दीनानाथव्याधितानां च। चातुर्मास्येष्वर्धमासिकमघातं, पौर्णमासीषु च चातूरात्रिकं राजदेशनक्षत्रेष्वेकरात्रिकम्। योनिबालवधं पुंस्त्वोपघातं च प्रतिषेधयेत्। यच्च कोशदण्डोपघातिकमधर्मिष्ठं वा चरित्रं मन्येत, तदपनीय धर्म्यव्यवहारं स्थापयेत्। चोरप्रकृतीनां म्लेच्छजातीनां च स्थानविपर्यासमनेकस्थं कारयेद् दुर्गराष्ट्रदण्डमुख्यानां च। परोपगृहीतानां च मन्त्रिपुरोहितादीनां परस्य प्रत्यन्तेष्वनेकस्थं वासं कारयेत्। अप-**

---

( १ ) विजिगीषु के गुप्तचरों को चाहिए कि वे देश, ग्राम, जाति, संघ और संघ-मुख्यों के पास जाकर प्रजा के प्रति किये गये शत्रु के अपकारों को बराबर दिखायें, और साथ ही देश आदि के प्रति किये गये नये विजिगीषु के उदारता, प्रेम तथा सत्कार आदि कार्यों को अच्छी तरह खोलकर रखें। विजिगीषु राजा, समुचित राज-भाग, करमाफी ( परिहार ) और सुख-सुविधायें ( रक्षाक्षण ) देकर प्रजा की रक्षा करे। विजिगीषु को चाहिए कि वह सभी धर्मों के देवताओं तथा आश्रमों की पूजा कराये और विद्वानों, वक्ताओं एवं धर्मप्राण व्यक्तियों को भूमि तथा द्रव्य देकर उनसे किसी प्रकार का राजकर वसूल न करे। जो दीन, अनाथ तथा व्याधिग्रस्त प्रजाजन हैं उनकी हर तरह से सहायता करे और कारागार में बन्द सभी अपराधियों को मुक्त कर दे। चार-चार महीने में पंद्रह दिन ऐसे रखे, जिनमें किसी को प्राणदण्ड न दिया जाय। इसी प्रकार वर्ष भर में चार पूर्णमासियाँ ऐसी छाँट ले, जिनमें किसी का वध न किया जाय। राज्याभिषेक और राज्यविजय के नक्षत्रों में किसी का वध न किया जाय। बच्चे पैदा करने वाले मादा जानवरों तथा शिशु जानवरों के वध का सर्वथा निषेध किया जाय; और नर जानवरों को वधिया ( पुंस्त्वहीन ) न बनाये जाने की भी निषेधाज्ञा कर दी जाय। जिस आचरण को विजिगीषु राजा कोष और सेना के लिए हानिकर तथा धर्माचरण विरुद्ध समझे उसको दूर कर धर्मयुक्त सदाचार की स्थापना करे। चोर प्रकृति म्लेच्छ जातियों तथा दुर्ग, राष्ट्र और सेना के मुख्य अधिकारियों को परस्पर दूर-दूर स्थानों में नियुक्त करके उनको स्थानान्तरित कर दिया जाय। शत्रु का उपकार करने वाले मंत्री, पुरोहित आदि को शत्रु के सीमा-प्रदेशों के भिन्न-भिन्न स्थानों में नियुक्त किया जाय, जिससे कि वे परस्पर न मिलने पायें। जो व्यक्ति विजिगीषु का अपकार करने में समर्थ हों अथवा विजिगीषु का विनाश करने

**कारसमर्थाननु क्षियतो वा भर्तृविनाशमुपांशुदण्डेन प्रशमयेत् । स्वदेशीयान् वा परेण वावरुद्धानपवाहितस्थानेषु स्थापयेत् ।**

**(१) यश्च तत्कुलीनः प्रत्यादेयमादातुं शक्तः प्रत्यन्ताटवीस्थो वा प्रबाधितुमभिजातः, तस्मै विगुणां प्रयच्छेत्; गुणवत्याश्चतुर्भागं वा कोशदण्डदानमवस्थाप्य, यदुपकुर्वाणः पौरजानपदान् कोपयेत् । कुपितैस्तैरेनं घातयेत्, प्रकृतिभिरुपक्रुष्टमपनयेदौपघातिके वा देशे निवेशयेदिति ।**

**(२) भूतपूर्वे येन दोषेणापवृत्तः, तं प्रकृतिदोषं छादयेत् । येन च गुणेनोपावृत्तः, तं तीव्रीकुर्यादिति ।**

**(३) पित्र्ये पितृदोषाञ् छादयेत् । गुणांश्च प्रकाशयेदिति ।**

---

की प्रवृति से उसके यहाँ रहते हों उन्हें उपांशुदण्ड देकर समाप्त कर दिया जाय । अपने देश के तथा शत्रु द्वारा बन्दी बनाये गये लोगों को विजयी राजा उन अधिकार-पदों पर नियुक्त करे, जो शत्रु पक्ष के पुरुषों को पदच्युत करने से रिक्त हुए हों ।

( १ ) शत्रु से छीने हुए राज्य को यदि कोई शत्रुवंशज वापिस लेने में समर्थ हो, अथवा सीमांत प्रदेश के सामन्त या आटविक के द्वारा उस राज्य पर बाधा पहुँचाये जाने की संभावना हो तो विजिगीषु राजा उन्हें किसी गुणहीन ( ऊसर ) भूमि का कुछ हिस्सा दे दे, अथवा उन्हें गुणवती (उर्वर) भूमि का चौथा हिस्सा इस शर्त पर दे कि वह सामंत विजिगीषु का अधिकाधिक कोष और सेना देता रहेगा। ऐसा कराने का यह परिणाम होगा कि धन तथा सेना को इकट्ठा करने में सामंत अपनी प्रजा को कुपित कर देगा । इस प्रकार प्रजाजनों के कुपित हो जाने पर बाद में इन्हीं के द्वारा उस सामंत का वध कराया जाय । अथवा अमात्य आदि प्रकृतियों के द्वारा निन्दा की जाने पर उस सामंत को वहाँ से हटा दिया जाय । या उसको ऐसे प्रदेश में भेज दिया जाय, जहाँ उसके विनाश के अनेक साधन विद्यमान हों ।

( २ ) **भूतपूर्व लाभ :** अपने अपहृत भूतपूर्व राज्य को पुनः प्राप्त कर विजिगीषु राजा को चाहिए कि अपने उस दोष का वह परित्याग कर दे, जिसके कारण उसका राज्य उसके हाथ से निकल गया था और अपने जिन गुणों के कारण उसने शत्रु के हाथ से अपना राज्य पुनः प्राप्त किया हो, उनको अधिक बढ़ाये ।

( ३ ) **पित्र्य लाभ :** यदि पिता के दोषों के कारण राज्य शत्रु के कब्जे में गया हो तो विजिगीषु को उचित है कि पिता के उन दोषों को छिपा दे, जिनके कारण राज्य पर शत्रु ने अधिकार कर लिया था और पिता के जो अच्छे गुण रहे हों, उनको प्रकट करता रहे ।

**(१) चरित्रमकृतं धर्म्यं कृतं चान्यैः प्रवर्तयेत् ।**
**प्रवर्तयेन्न चाधर्म्यं कृतं चान्यैर्निवर्तयेत् ॥**

इति दुर्गलम्भोपाये त्रयोदशेऽधिकरणे लब्धप्रशमनं नाम पञ्चमोऽध्यायः;

आदितश्चतुश्चत्वारिंशदुत्तरशततमः ।

**समाप्तमिदं दुर्गलम्भोपायनामकं त्रयोदशमधिकरणम् ।**

—: ० :—

---

( १ ) विजिगीषु राजा को चाहिए कि विजित राज्य में वह उन धर्मयुक्त आचार-व्यवहारों का प्रचलन करे, जिसका अब तक वहाँ अभाव था, तथा जो धर्मप्रवृत्त लोग रहे हों उन्हें प्रोत्साहित करे । अधर्मयुक्त आचार-व्यवहारों को वह कतई न पनपने दे तथा जो लोग अधर्मप्रवृत्त रहे हों उन्हें यत्नपूर्वक रोके ।

दुर्गलम्भोपाय नामक तेरहवें अधिकरण में लब्धप्रशमन नामक

पाँचवाँ अध्याय समाप्त ।

—: ० :—

चौदहवाँ अधिकरण

•

# औपनिषदिक

# परघातप्रयोगः

(१) चातुर्वर्ण्यरक्षार्थमौपनिषदिकमधर्मिष्ठेषु प्रयुञ्जीत।

(२) कालकूटादिर्विषवर्गः श्रद्धेयदेशवेषशिल्पभाजनापदेशैः कुब्जवामनकिरातमूकबधिरजडान्धच्छद्मभिः म्लेच्छजातीयैरभिप्रेतैः स्त्रीभिः पुम्भिश्च परशरीरोपभोगेष्वाधातव्यः।

(३) राजक्रीडाभाण्डनिधानद्रव्योपभोगेषु गूढाः शस्त्रनिधानं कुर्युः, सत्राजीविनश्च रात्रिचारिणोऽग्निजीविनश्चाग्निनिधानम्।

(४) चित्रभेककौण्डिन्यककृकणपञ्चकुष्ठशतपदीचूर्णमुच्चिदिङ्गकम्बलिशतकन्देध्मकृकलासचूर्णं गृहगौलिकान्धाहिककृकणकपूतिकीटगोमारिकाचूर्णं भल्लातकावल्गुकारसंयुक्तं सद्यःप्राणहरमेतेषां वा धूमः।

---

## शत्रुवध का प्रयोग

( १ ) विजिगीषु राजा को चाहिए कि चारों वर्णों की रक्षा के लिए वह अधार्मिक व्यक्तियों पर औपनिषदिक प्रयोग करे।

( २ ) वत्सनाभ, हलाहल ( कालकूट ) आदि जो भयंकर विष हैं उनको, अपने विश्वसनीय देश, वेष, शिल्प और योग्यता को प्रकट करने वाले कुबड़े, बौने, ठिगने, गूंगे, बहरे, मूर्ख तथा अंधे आदि अनेक वेषों में रहने वाले म्लेच्छजाति के प्रिय पुरुषों तथा स्त्रियों द्वारा शत्रु के शरीर पर धारण किये जाने योग्य वस्त्रों में किसी प्रकार छिड़क दिया जाय।

( ३ ) जहाँ शत्रु राजा का क्रीड़ा संबंधी सामान रखा जाता है वहाँ एवं गहने रखने के स्थान में या सुगन्धित पदार्थों को रखने की जगह में गुप्तचर पुरुष हथियार छिपा कर रख दें। इसी प्रकार रात में इधर-उधर घूमने वाले गुप्तचर या लुहार आदि अग्निजीवी पुरुष शत्रु के स्थान में अग्नि का प्रयोग करें।

( ४ ) भिलावा ( भल्लातक ) तथा बकुची ( बल्गुक ) के रस में चितकबरा मेंढक, कौण्डिन्यक ( जिसका पेशाब तथा पाखाना विषयुक्त होता है ), जंगली तीतर ( कृकण ), कूट के पाँचों अंग ( पंचकुष्ठ ) और कानखजुरा ( शतपदी ) इन सब चीजों का चूर्ण; अथवा उच्चिदिंग नामक कीड़ा ( बिच्छू ? ), कंबली कीडा ( जो एक इंच लंबा होता है; शरीर को सिकोड़ कर चलता है तथा शरीर में गड़ जाने से जिसके रोएँ खुजली पैदा करते हैं ), शतावर ( शत ), जिमीकंद, पलाश की लकड़ी

(१) कीटो वान्यतमस्तप्तः कृष्णसर्पप्रियङ्गुभिः ।
शोषयेदेष संयोगः सद्यः प्राणहरो मतः ॥

(२) धामार्गवयातुधानमूलं भल्लातकपुष्पचूर्णयुक्तमार्धमासिकः ।

(३) व्याघातकमूलं भल्लातकपुष्पचूर्णयुक्तं कीटयोगो मासिकः । कलामात्रं पुरुषाणां द्विगुणं खराश्वानां चतुर्गुणं हस्त्युष्ट्राणाम् ।

(४) शतकर्दमोच्चिदिङ्गकरवीरकटुतुम्बीमत्स्यधूमो मदनकोद्रवपलालेन हस्तिकर्णपलाशपलालेन वा प्रवातानुवाते प्रणीतो यावच्चरति तावन्मारयति ।

(५) पूतिकीटमत्स्यकटुतुम्बीशतकर्दमेध्मेन्द्रगोपचूर्णं पूतिकीपक्षुद्राराला हेमविदारीचूर्णं वा बस्तशृङ्गखुरचूर्णयुक्तमन्धीकरो धूमः ।

---

(इध्म), गिरगिट ( कृकलास ), छिपकली ( गृहगोधिका ), अंधा या विषरहित साँप ( अंधाहिक ), जंगली तीतर ( कृकण ), पूतिकीट नामक कीड़ा तथा गोमारिका नामक औषधि, इन सब का चूर्ण मिलाया जाय तो उसका धुआँ तत्काल ही प्राणान्त कर देता है ।

( १ ) उक्त कीड़ों में से किसी भी एक को यदि आग में तपाकर सूंघ लिया जाय तो उससे शरीर सूख जाता है । यदि काले साँप को कागुन के साथ मिलाकर उसका धुआँ किया जाय तो वह भी तत्काल प्राणांत कर डालता है ।

( २ ) यदि कड़वी तोरई और यातुधान नामक औषधि की जड़ों को भिलावा के फूलों के चूर्ण के साथ मिला लिया जाय तो वह योग पंद्रह दिन में ही प्राण ले लेता है ।

( ३ ) यदि अमलतास की जड़ को भिलावे के पुष्पचूर्ण के साथ मिलाकर उसमें पूर्वोक्त किसी तपे हुए कीड़े का योग कर दिया जाय तो उसका प्रयोग एक मास में प्राण हर लेता है । इस कीटयोग की मात्रा मनुष्य को एक कला, गधे को उससे दुगुना और हाथी-ऊटों को उसका चौगुना देना चाहिए ।

( ४ ) शतावरी, कर्दम ( अगर, तगर, केसर, कस्तूरी, कुंकुम और कपूर का पीसा हुआ लेप ), उच्चिदिंग ( बिच्छू ? ), कनेर, कडवी तुंबी और मछली, इसका धुआँ; अथवा धतूरा, कोदो और धान के पुआल के साथ, अथवा धनिया, ढाक तथा पुआल के साथ धुआँ किया जाय और उसको तेज हवा में रख दिया जाय तो जहाँ तक वह जायगा वहाँ तक के प्राणियों को मार डालेगा ।

( ५ ) पूतिकीट ( पात बिच्छी ), मछली, कड़वी तूंबी, शतावरी, कर्दम, ढाक की लकड़ी और इंद्रगोप ( बीर बहूटी ), इन सबका चूर्ण; अथवा पूतिकीट, कटेरी, राल, धतूरा और विदारी कंद इन सबका चूर्ण यदि बकरे के सींग और खुर के चूर्ण के साथ मिला दिया जाय तो उनका धुआँ अंधा बना देता है ।

**(१) पूतिकरञ्जपत्रहरितालमनःशिलागुञ्जारक्तकार्पासपलालान्यास्फोटकाचगोशकृद्रसपिष्टमन्धीकरो धूमः ।**

**(२) सर्पनिर्मोकं गोश्वपुरीषमन्धाहिकशिरश्चान्धीकरो धूमः ।**

**(३) पारावतप्लवकक्रव्यादानां हस्तिनरवराहाणां च मूत्रपुरीषं कासीसहिङ्गुयवतुषकणतण्डुलाः कार्पासकुटजकोशातकीनां च बीजानि गोमूत्रिकाभाण्डीमूलं निम्बशिग्रुफणिज्जकाक्षीबपीलुकभङ्गः सर्पशफरीचर्म हस्तिनखशृङ्गचूर्णमित्येष धूमो मदनकोद्रवपलालेन हस्तिकर्णपलाशपलालेन वा प्रणीतः प्रत्येकशो यावच्चरति तावन्मारयति ।**

**(४) कालीकुष्ठनडशतावरीमूलं सर्पप्रचलाककृकणपञ्चकुष्ठचूर्णं वा धूमः पूर्वकल्पेनार्द्रे शुष्कपलाले वा प्रणीतः संग्रामावतरणावस्कन्दनसंकुलेषु कृततेजनोदकाक्षिप्रतीकारैः प्रणीतः सर्वप्राणिनां नेत्रघ्नः ।**

---

( १ ) काँटेदार कंजा के पत्ते ( पूतिकरंजपत्र ), हरताल, मनसिल, लाल घुंघची ( गुंजा रक्त ), कपास और पुआल ( पलल ), इन सबको मदार ( आस्फोट ), काँच तथा गोबर के रस में पीसा जाय और फिर उसका धुआँ कर दिया जाय तो वह अंधा कर देता है ।

( २ ) सर्प की केंचुल, गाय का गोबर, घोड़े की लीद और दो मुँहे सर्प का मस्तक इनका योग भी लोगों को अंधा कर देता है ।

( ३ ) कबूतर ( पारावत ), बत्तख ( प्लवक ), गीध ( क्रव्य ), हाथी, मनुष्य और सूअर का पेशाब तथा पाखाना; या कासीस ( काशीस ), हींग, जौ का छिलका ( यवतुष ), दाना ( कण ) और कपास, केसरैया ( कुटक ), कड़वी लौकी के बीज या गोमूत्रिका ( गाय के मूत्र की तरह जमीन पर टेढ़ी-मेढ़ी फैलने वाली घास ), और मंजीठ की जड़ ( भांडी मूल ); या नीम, सेंहजन, नागफनी (फणिज), जंभीरी नीबू ( काक्षीब ) और पीलु; इन पाँचों पेड़ों का छिलका; या साँप और मछली की खाल; या हाथी के दाँतों और मारतून का चूरा; इन सब चीजों का धुआँ, यदि धतूरा, कोदो और पुआल के साथ; या धनिया, पलाश और पुआल के साथ किया जाय तो जितनी दूर तक वह धुआँ फैलेगा वहाँ तक के सब प्राणी मर जाते हैं ।

( ४ ) चकोतरा ( काली ), कूट, नरसल और शतावरी, इन चीजों की जड़ का या साँप, मोर की पूंछ, जंगली तीतर और कूट नामक वृक्ष के पाँचों अंग को पहिले बताये गये योग के साथ मिला कर जो धुआँ बनाया जाता है वह अंधा कर देता है; या अधसूखे पुआल के साथ जो धुआँ बनाया जाता है, वह भी अंधा कर देता है । इसलिए युद्ध करते समय या किला घेरते समय ऐसा धुआँ करने से पूर्व पिछले प्रकरण में बताये गये अंजन जल से अपनी आँखों को बचाने का प्रबंध किया जाय, अन्यथा वे भी अंधे हो जायेंगे ।

(१) शारिकाकपोतबकबलाकालण्डमर्काक्षिपीलुकस्नुहिक्षीरपिष्टमन्धीकरणमञ्जनमुदकदूषणं च ।

(२) यवकशालिमूलमदनफलजातीपत्रनरमूत्रयोगाः प्लक्षविदारीमूलयुक्तो मूकोदुम्बरमदनकोद्रवक्वाथयुक्तो हस्तिकर्णपलाशक्वाथयुक्तो वा मदनयोगः । शृङ्गिगौतमवृक्षकण्टकारमयूरपदीयोगो गुञ्जालाङ्गलीविषमूलिकेङ्गुदीयोगः करवीराक्षिपीलुकार्कमृगमारणीयोगो मदनकोद्रवक्वाथयुक्तो हस्तिकर्णपलाशक्वाथयुक्तो वा मदनयोगः । समस्ता वा यवसेन्धनोदकदूषणाः ।

(३) कृतकण्डलकृकलासगृहगौलिकान्धाहिकधूमो नेत्रवधमुन्मादं च करोति ।

(४) कृकलासगृहगौलिकायोगः कुष्ठकरः ।

(५) स एव चित्रभेकान्त्रमधुयुक्तः प्रमेहमापादयति, मनुष्यलोहितयुक्तः शोषम् ।

---

( १ ) मैना, कबूतर, बगला और बगली इन पक्षियों की विष्टा को आक, अक्षी पीलु तथा सेंहुड़ ( स्नुही ) के दूध में मिला कर जो अंजन बनाया जाता है वह प्राणियों को अंधा करने वाला तथा जल को विषाक्त कर देने वाला होता है ।

( २ ) जौ ( यव ), धान ( शाली ), इन दोनों की जड़, तथा मैनफल, चमेली, जावित्री और आदमी का पेशाब, इन सब चीजों को मिलाकर फिर उनमें पिलखन या लाख देने वाले पीपल तथा बिदारी की जड़ों का योग कर दिया जाय, अथवा गंदे पानी में बने हुए गूलर, धतूरा और कोदों के क्वाथ का योग कर दिया जाय; या धनियाँ तथा पलाश के क्वाथ का योग कर दिया जाय तो **मदनरस** तैयार हो जाता है, जो कि आदमी को पागल या बेहोश बना देता है । शृंगी नामक मछली का पित्त ( शृंगिगौतम ), लोध, सेंमल तथा अजमोदा का योग; अथवा रत्ती, जल पीपल या नारियल, कालकूट आदि विष, तथा इंगुदी का योग; अथवा कनेर ( करवीर ), अक्षी ( बहेड़े के जैसा पेड़ ), पीलु, आक तथा मृगमारिणी औषधि का योग; धतूरा और कोदो के क्वाथ के साथ; या धनिया और पलाश के क्वाथ के साथ मिलाकर मदनयोग तैयार होता है । इस प्रकार के मदनयोग उन्माद पैदा करते हैं तथा घास, लकड़ी और पानी को विषयुक्त बना देते हैं ।

( ३ ) पकायी गयी नस-नाडियों वाले गिरगिट, छिपकली और अंधअहिक का धुआँ अंधा तथा पागल बना देता है ।

( ४ ) गिरगिट और छिपकली का मिश्रित धुआँ कोढ पैदा कर देता है ।

( ५ ) यदि गिरगिट और छिपकली का उक्त योग चितकबरे मेढ़क तथा शहद में मिला दिया जाय तो उससे प्रमेह पैदा हो जाता है । यदि इसी योग में मनुष्य का खून मिला दिया जाय तो उससे क्षयरोग पैदा हो जाता है ।

(१) दूषीविषं मदनकोद्रवचूर्णमुपजिह्विकायोगः मातृवाहकाञ्जलिकारप्रचलाकभेकाक्षिपीलुकयोगो विषूचिकाकरः ।

(२) पञ्चकुष्ठककौण्डिन्यकराजवृक्षपुष्पमधुयोगो ज्वरकरः ।

(३) भासनकुलजिह्वाग्रन्थिकायोगः खरीक्षीरपिष्टो मूकबधिरकरो मासार्धमासिकः । कलामात्रं पुरुषाणामिति समानं पूर्वेण ।

(४) भङ्गक्वाथोपनयनमौषधानां चूर्णं प्राणभृताम् । सर्वेषां वा क्वाथोपनयनम्, एवं वीर्यवत्तरं भवति । इति योगसम्पत् ।

(५) शाल्मलीविदारीधान्यसिद्धो मूलवत्सनाभसंयुक्तश्चुचुन्दरीशोणितप्रलेपेन दिग्धो बाणो यं विध्यति, स विद्धोऽन्यान् दश पुरुषान् दशति, ते दष्टा दशान्यान् दशन्ति पुरुषान् ।

(६) भल्लातकयातुधानापामार्गबाणानां पुष्पैरेलकाक्षिगुग्गुलुहालाहलानां च कषायं बस्तनरशोणितयुक्तं दंशयोगः । ततोऽर्धधरणिको योगः

---

( १ ) औषधियों से शुद्ध किया हुआ विष, धतूरा और कोदो का चूर्ण दीमक ( उपजिह्विका ) के साथ मिलाकर फिर मातृवाह पक्षी, अंजलिकार औषधि, मोरपंच ( प्रचालक ), मेंढ़क, सहिजन और पीलु के साथ तैयार किया हुआ योग हैजा पैदा कर देता है ।

( २ ) कूट वृक्ष के पाँचों अंग, कौंडिन्य नामक कीड़ा, अमलतास ( राजवृक्ष ), शहद और महुआ ( पुष्पमधु ), इन सब चीजों का योग ज्वर उत्पन्न कर देता है ।

( ३ ) यदि गिद्ध, नेवला और मजीठ का योग गधी के दूध में पीसा जाय तो वह योग महीने या पन्द्रह दिन के भीतर मनुष्य को गूंगा और बहिरा बना देता है । इन सभी योगों की मात्रा मनुष्य के लिए एक कला, घोड़े, गधे के लिए उससे दुगुनी और हाथी, ऊँट आदि के लिए उससे चौगुनी होनी चाहिए ।

( ४ ) ऊपर बताये गये सभी योगों में जो औषधियाँ हैं कूट-कूट कर उनका क्वाथ बनाना चाहिए । प्राणियों के उपयोग के लिए उसका चूर्ण या क्वाथ बनाकर उपयोग में लाना चाहिए, क्योंकि ऐसा करने से औषधि अधिक प्रभावकारी हो जाती है । यहाँ तक विशेष-विशेष योगों का निरूपण किया गया ।

( ५ ) सेमर, बिदारी और धनियाँ की भावना देकर तथा पिप्पलीमूल एवं वत्सनाभ से युक्त और छछून्दर के रक्त से लेप किया हुआ बाण जिसको लगता है वह व्यक्ति दूसरे दस व्यक्तियों को काट लेता है; और वे दस व्यक्ति दूसरे दस-व्यक्तियों को काट खाते हैं । इस प्रकार विष के फैल जाने से सारी शत्रु सेना नष्ट हो जाती है ।

( ६ ) भिलावा, यातुधान, अपामार्ग और अर्जुन वृक्ष ( बाण ), इन सब चीजों के फूलों से सिद्ध किया हुआ; इलायची, अक्षी, गूगल तथा हलाहल को मिलाकर बनाया हुआ काढ़ा यदि बकरे और मनुष्य के रक्त में मिला दिया जाय तो वह दंश-

सक्तुपिण्याकाभ्यामुदके प्रणीतो धनुःशतायाममुदकाशयं दूषयति, मत्स्य-परम्परा ह्येतेन दष्टाऽभिमृष्टा वा विषीभवति, यश्चैतदुदकं पिबति स्पृशति वा।

(१) रक्तश्वेतसर्षपैर्गोधा त्रिपक्षमुष्ट्रिकायां भूमौ निखातायां निहिता वध्येनोद्धृता यावत्पश्यति, तावन्मारयति। कृष्णः सर्पो वा।

(२) विद्युत्प्रदग्धोऽङ्गारोऽज्वालो वा विद्युत्प्रदग्धैः काष्ठैर्गृहीतश्चानु-वासितः कृत्तिकासु भरणीषु वा रौद्रेण कर्मणाभिहुतोऽग्निः प्रणीतश्च निष्प्र-तीकारो दहति।

(३) कर्मारादग्निमाहृत्य क्षौद्रेण जुहुयात् पृथक्।
सुरया शौण्डिकादग्निं भार्ग्यायोग्निं घृतेन च॥

(४) माल्येन चैकपत्न्यग्निं पुंश्चल्यग्निं च सर्षपैः।
दध्ना च सूतिकास्वग्निमाहिताग्निं च तण्डुलैः॥

---

योग अर्थात् काटने के लिए उपयोग में लाया जाने वाला योग है। यह काढा जिसके भी शरीर में चला जाय, वह भी दूसरे अनेक व्यक्तियों को काट कर विषमय बना देता है। उस काढ़े से आधा धरणिक प्रमाण ( एक तोला ) सत्तू और तिलकुट को जल में मिलाकर बनाया हुआ योग सौ धनुष परिमाण लम्बे चौड़े जलाशय को विष-मय बना देता है। वहाँ की रहने वाली मछलियाँ एक-दूसरे को स्पर्श करने या काटने से विषैली हो जाती हैं; और जो भी उस जल को पीता, स्पर्श करता या उसमें स्नान करता है वह भी विषमय बन जाता है।

( १ ) लाल तथा सफेद सरसों के साथ एक गोह को घड़े में करके जहाँ ऊँट बाँधे जाते हों उस जगह गढ़ा खोदकर पैंतालीस दिन तक गाड़ा जाय और उसके बाद किसी वध्य-पुरुष से वह गढ़ा खुदवा कर उस घड़े को निकलवा दिया जाय। निकालते ही वह गोह तत्काल निकालने वाले व्यक्ति को मार देती है। उसी तरह यदि काले साँप को भी गाड़ा जाय तो वह भी आदमी को मार डालता है।

( २ ) अथवा विद्युत् से जले हुए लपट रहित अंगारे की आग को यदि बिजली से ही जली हुई लकड़ियों के द्वारा सुलगाया जाय; और कृत्तिका अथवा भरणी नक्षत्र में रुद्र देवता के पूजनार्थ उस अग्नि में हवन किया जाय तो इस प्रकार बनायी गयी अग्नि को किसी भी प्रकार बुझाया नहीं जा सकता है।

( ३ ) कुम्हार के यहाँ से आग लेकर, आगे बतायी जाने वाली अग्नियों को छोड़ कर उस में शहद से हवन किया जाय; इसी प्रकार शराब बेचने वाले के घर से आग लेकर उस में शराब से हवन किया जाय और लुहार के यहाँ से आग लेकर उसमें भारंगी नामक औषधि का हवन किया जाय।

( ४ ) पतिव्रता स्त्री के घर से लायी गयी अग्नि में फूलों की माला से हवन

**(१) चण्डालाग्नि च मांसेन चिताग्निं मानुषेण च।**
**समस्तान् बस्तवसया मानुषेण ध्रुवेण च॥**
**जुहुयादग्निमन्त्रेण राजवृक्षकदारुभिः।**
**एष निष्प्रतिकारोऽग्निर्द्विषतां नेत्रमोहनः॥**

**(२) अदिते! नमस्ते, अनुमते! नमस्ते, सरस्वति! नमस्ते, देव! सवितर्नमस्ते। अग्नये स्वाहा, सोमाय स्वाहा, भूः स्वाहा, भुवः स्वाहा।**

इति औपनिषदिके चतुर्दशाऽधिकरणे परघातप्रयोगो नाम प्रथमोऽध्यायः;
आदितः पञ्चचत्वारिंशदुत्तरशततमः।

—: ० :—

---

किया जाय, व्यभिचारिणी स्त्री के घर से लायी गयी अग्नि में सरसों से हवन किया जाय; सूतिका गृह से लायी गयी अग्नि में दही से हवन किया जाय; अग्निहोत्री के घर से लायी गयी अग्नि में चावलों से हवन किया जाय।

(१) चांडाल के यहाँ से लायी गयी अग्नि में मांस से हवन किया जाय; चिता से लायी गयी अग्नि में मनुष्य से हवन किया जाय; और तदनंतर इन सब अग्नियों को एकत्र करके उनमें बकरी की चर्बी से सूखी बरगद की लकड़ी से हवन किया जाय; तदनन्तर अग्नि के स्तुतिवाचक मंत्रों द्वारा अमलतास की लकड़ियों द्वारा हवन किया जाय। इस प्रकार की अग्नि का फिर कोई प्रतीकार नहीं है। यह अग्नि केवल दुर्ग आदि को ही नहीं जलाती, वरन् उसको देखने मात्र से ही शत्रुओं की बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है।

(२) इन मंत्रों से हवन किया जाय—आदिते! नमस्ते। अनुमते! नमस्ते। सरस्वति! नमस्ते। देव! सवितर्नमस्ते। अग्नये स्वाहा। सोमाय स्वाहा। भूः स्वाहा। भुवः स्वाहा।

औपनिषदिक नामक चौदहवें अधिकरण में परघातप्रयोग नामक
पहला अध्याय समाप्त

—: ० :—

# प्रलम्भने अद्भुतोत्पादनम्

(१) शिरीषोदुम्बरशमीचूर्णं सर्पिषा संहृत्यार्धमासिकक्षुद्योगः ।

(२) कशेरुकोत्पलकन्देक्षुमूलबिसदूर्वाक्षीरघृतमण्डसिद्धो मासिकः ।

(३) माषयवकुलत्थदर्भमूलचूर्णं वा क्षीरघृताभ्यां, वल्लीक्षीरघृतं वा समसिद्धं सालपृश्निपर्णीमूलकल्कं पयसा पीत्वा, पयो वा तत्सिद्धं मधुघृताभ्यामशित्वा, मासमुपवसति ।

(४) श्वेतबस्तमूत्रे सप्तरात्रोषितैः सिद्धार्थकैः सिद्धं तैलं कटुकालाबौ मासार्धमासस्थितं चतुष्पदद्विपदानां विरूपकरणम् ।

(५) तक्रयवभक्षस्य सप्तरात्रादूर्ध्वं श्वेतगर्दभस्य लण्डयवैः सिद्धं गौरसर्षपतैलं विरूपकरणम् ।

## प्रलम्भन योग में अद्भुत उत्पादन

( १ ) सिरण ( शिरीष ), गूलर और शमी इन तीनों के चूर्ण को घी के साथ मिलाकर खाने से पन्द्रह दिन तक भूख नहीं लगती है ।

( २ ) कसेरु, कमल की जड़, गन्ने की जड़, कमल डंडी, दूब, दूध, घी और मांड, इन सबको एक साथ मिलाकर खाने से एक महीने तक भूखे नहीं लगती है ।

( ३ ) उड़द, जौ, कुलथी और कुशा की जड़ इन सब को दूध-घी के साथ मिलाकर पीने से एक मास तक भूखा रहा जा सकता है; अथवा अजमोद, दूध और घी को बराबर मिलाकर पी लेने पर भी एक महीने तक भूख नहीं लगती है । इसी प्रकार शालपर्णी ( सालवन ) और पृश्निपर्णी ( पिठवन ) की जड़ों के कल्क को दूध के साथ पीने से या शालपर्णी और पृश्निपर्णी के साथ दूध को पकाकर उसे शहद के साथ खाने से भी एक मास तक भूख नहीं लगती है ।

( ४ ) यदि सफेद बकरे के पेशाब में सात रात तक रखी हुई सरसों से निकाला हुआ तेल एक मास या पंद्रह दिन तक तूंबी में रखा जाय तो उसके बाद जिन चौपायों या दुपायों पर वह तेल लगाया जायेगा, उनका रूप बदल जायेगा; इसको विरूपकरण ( दूसरा रूप बनाना ) योग कहते हैं ।

( ५ ) इसी तरह किसी आदमी को यदि सात दिन तक मट्ठा और जौ खिलाकर सफेद गधे की लीद तथा जौ के साथ पकाये हुये सफेद सरसों के तेल को लगाने या खाने को दिया जाय तो उसकी शक्ल बदल जाती है ।

**(१) एतयोरन्यतरस्य मूत्रलण्डरससिद्धं सिद्धार्थकतैलमर्कतूलपतङ्ग-चूर्णप्रतिवापं श्वेतीकरणम् ।**

**(२) श्वेतकुक्कुटाजगरलण्डयोगः श्वेतीकरणम् ।**

**(३) श्वेतबस्तमूत्रे श्वेतसर्षपाः सप्तरात्रोषितास्तक्रमर्कक्षीरमर्कतूल-कटुकमत्स्यविलङ्गाश्च । एष पक्षस्थितो योगः श्वेतीकरणम् ।**

**(४) समुद्रमण्डूकीशङ्खसुधाकदलीक्षारतक्रयोगः श्वेतीकरणम् ।**

**(५) कदल्यवल्गुजक्षाररसशुक्ताः सुरायुक्तास्तक्रार्कतूलस्नुहिलवणं धान्याम्लं च पक्षस्थितो योगः श्वेतीकरणम् ।**

**(६) कटुकालाबौ वल्लीगते नगरमर्धमासस्थितं गौरसर्षपपिष्टं रोम्णां श्वेतीकरणम् ।**

**(७) अर्कतूलोऽर्जुने कीटः श्वेता च गृहगौलिका ।**
**एतेन पिष्टेनाभ्यक्ताः केशाः स्युः शङ्खपाण्डराः ।।**

---

( १ ) सफेद गधा या सफेद बकरे के पेशाब तथा लीद के रस के साथ पकाये हुए सरसों के तेल को आक, पलास, पीपल और धान के चूर्ण के साथ मिलाकर श्वेतीकरण योग बनाया जाता है, इसके लगाने या खाने से शक्ल-सूरत सफेद हो जाती है ।

( २ ) सफेद मुर्गा और अजगर साँप, इन दोनों की विष्ठा को मिलाकर तैयार किया हुआ योग भी सफेद बना देता है ।

( ३ ) यदि सफेद बकरे के पेशाब में सात रात तक सफेद सरसों को रखा जाय और तदनन्तर पन्द्रह दिन तक उस सरसों को मठा, आक का दूध, आक, पारस पीपल, कड़वा परवल ( पटोल ), मछली तथा वायबिडंग के चूर्ण के साथ मिलाकर बनाया जाय तो वह भी आकृति को सफेद बना देता है ।

( ४ ) समुद्री मेढकी, शंख, सुधा, केला, जवाखार और मठा, इन सब चीजों का योग भी सफेद कर देता है ।

( ५ ) केला, बकुची, जवाखार, पारा, और कोई खट्टा फल, इन सबको शराब में भिगो दिया जाय, तदनन्तर छाछ, आक, पारसपीपल, सेंहुड़, नमक और कंजा को उसमें मिलाकर पंद्रह दिन तक रखा रहने दिया जाय । इस तरह का योग भी सफेद बना देता है ।

( ६ ) वेल में लगी हुई कड़वी तूम्बी में सोंठ भरकर उसे पंद्रह दिन तक रख दिया जाय और बाद में उसको बंगा सरसों के साथ पीस लिया जाय, यह भी श्वेतीकरण योग है ।

( ७ ) आक, पारसपीपल, अर्जुन कीट और सफेद छिपकली, इन सबको एक साथ पीस कर यदि बालों में लगाया जाय तो बाल शंख के समान श्वेत हो जाते हैं ।

(१) गोमयेन तिन्दुकारिष्टकल्केन मर्दिताङ्गस्य भल्लातकरसानुलिप्तस्य मासिकः कुष्ठयोगः।

(२) कृष्णसर्पमुखे गृहगौलिकामुखे वा सप्तरात्रोषिता गुञ्जाः कुष्ठयोगः।

(३) शुकपित्ताण्डरसाभ्यङ्गः कुष्ठयोगः।

(४) कुष्ठस्य प्रियालकल्ककषायः प्रतीकारः।

(५) कुक्कुटीकोशातकीशतावरीमूलयुक्तमाहारयमाणो मासेन गौरो भवति।

(६) वटकषायस्नातः सहचरकल्कदिग्धः कृष्णो भवति।

(७) शकुनकङ्गुतैलयुक्ता हरितालमनःशिलाः श्यामीकरणम्।

(८) खद्योतचूर्णं सर्षपतैलयुक्तं रात्रौ ज्वलति।

(९) खद्योतगण्डूपदचूर्णं समुद्रजन्तूनां भृङ्गकपालानां खदिरकर्णिकाराणां पुष्पचूर्णं वा शकुनकङ्गुतैलयुक्तं तेजनचूर्णं पारिभद्रकत्वङ्मषी मण्डूकवसया युक्ता गात्रप्रज्वालनमग्निना।

---

( १ ) गोबर, छोटा तेंदुआ और नीम के कल्क से शरीर पर मालिश करने के बाद, यदि भिलावा और पारा मिला कर शरीर में लगा दिया जाय तो एक महीने के अन्दर कोढ़ उपज आता है।

( २ ) काले सांप के या छिपकली के मुँह में सात रात तक रखी हुई रत्ती को यदि देह पर रगड़ा जाय तो कोढ़ हो जाता है।

( ३ ) तोते के पित्ते तथा अंडे के रस से शरीर पर मालिश करने से कोढ़ हो जाता है।

( ४ ) चिरौंजी के कल्क से बनाया हुआ काढ़ा कुष्ठ रोग का प्रतीकार है।

( ५ ) मुर्गी, कड़वी तोरई, परवल और शतावरी की जड़ को एक मास तक खाने से शरीर गौरवर्ण हो जाता है।

( ६ ) यदि बरगद के काढ़े से स्नान कर फिर पियाबांस के कल्क की मालिश की जाय तो शरीर काला पड़ जाता है।

( ७ ) गिद्ध और काँगनी के तेल में हड़ताल तथा मैनसिल मिलाकर मालिश करने से भी शरीर सांवला हो जाता है।

( ८ ) यदि जुगनू का चूर्ण सरसों के तेल के साथ मिला दिया जाय तो वह रात में जलने लगता है।

( ९ ) जुगनू और गेंडुए का चूर्ण तथा इसी प्रकार के छोटे-छोटे समुद्री जानवरों का चूर्ण भृंग नामक पक्षी के सिर की हड्डियों का चूर्ण, खैर तथा कनेर के फूलों का चूर्ण, गिद्ध तथा काँगनी के तेल में मिला बाँस का चूर्ण और मेढ़क की चर्बी से मिली

**(१) पारिभद्रकत्वग्वज्रकदलीतिलकल्कप्रदिग्धं शरीरमग्निना ज्वलति।**

**(२) पीलुत्वङ्मषीमयः पिण्डो हस्ते ज्वलति। मण्डूकवसादिग्धोऽग्निना ज्वलति।**

**(३) तेन प्रदिग्धमङ्गं कुशाम्रफलतैलसिक्तं समुद्रमण्डूकीफेनकसर्जरसचूर्णयुक्तं वा ज्वलति।**

**(४) मण्डूकवसासिद्धेन पयसा कुलीरादीनां वसया समभागं तैलं सिद्धमभ्यङ्गो गात्राणामग्निप्रज्वालनम्। मण्डूकवसादिग्धोऽग्निना ज्वलति।**

**(५) वेणुमूलशैवललिप्तमङ्गं मण्डूकवसादिग्धमग्निना ज्वलति।**

**(६) पारिभद्रकप्रतिबलावञ्जुलवज्रकदलीमूलकल्केन मण्डूकवसादिग्धेन तैलेनाभ्यक्तपादोऽङ्गारेषु गच्छति।**

**(७) उपोदका प्रतिबला वञ्जुलः पारिभद्रकः।**
**एतेषां मूलकल्केन मण्डूकवसया सह॥**

---

नीम की छाल की स्याही, इनमें से प्रत्येक चूर्ण को देह पर मलने से बिना किसी पीड़ा या जलन के शरीर पर आग जलने लगती है।

( १ ) नीम की छाल, थूहर, केला और तिल के कल्क से पोते हुए शरीर पर बिना किसी पीड़ा के अग्नि जलने लगती है।

( २ ) पीलु वृक्ष की छाल की स्याही का बना हुआ गोला, बिना अग्नि-संसर्ग के ही, हाथ में जलने लगता है। मेढक की चर्बी से सना हुआ वही गोला आग के संसर्ग से जलने लगता है।

( ३ ) उस गोले को अंग में लपेट कर कुशा के तेल और आम की गुठली के तेल से शरीर में चुपड़े अथवा समुद्री मेढ़की, समुद्रफेन और राल, इन सब के चूर्ण को देह में लगाया जाय तो अग्नि का संसर्ग होते ही देह जलने लगती है।

( ४ ) मेढ़क की चर्बी के साथ पके हुए दूध तथा केंकड़े की चर्बी में उतना ही तेल मिलाकर यदि उससे मालिश की जाय तो शरीर में अग्नि की लपटें उठने लगती हैं। मेढ़क की चर्बी से सना हुआ व्यक्ति अग्नि का संसर्ग पाते ही जल उठता है।

( ५ ) बाँस की जड़ और सेंवार से लिपा हुआ अंग तथा मेढक की चर्बी से लिपा हुआ अंग अग्नि के संसर्ग से जलने लगता है।

( ६ ) नीम ( पारिभद्रक ), खरेंटी ( प्रतिबला ), वंजुल ( तेंदुआ, बेत, अशोक ) थूहर और केला, इन सब पेड़ों की जड़ों का कल्क बनाकर तथा उसमें मेढक की चर्बी एवं तेल मिला लिया जाय और तब उस योग की पैरों में मालिस की जाय तो अंगारों के ऊपर चला जा सकता है।

( ७ ) पोदीना ( उपोदका ), खरेंटी, वंजुल और नीम, इनके पेड़ों की जड़ों का कल्क बनाकर उसमें मेढक की चर्बी मिला दी जाय तो उस तेल का साफ पैरों

साधयेत्तैलमेतेन पादावभ्यज्य निर्मलौ ।
अङ्गारराशौ विचरेद्यथा कुसुमसञ्चये ।।

(१) हंसक्रौञ्चमयूराणामन्येषां वा महाशकुनीनामुदकप्लवानां पुच्छेषु बद्धा नलदीपिका रात्रावुल्कादर्शनम् ।

(२) वैद्युतं भस्माग्निशमनम् ।

(३) स्त्रीपुष्पपायिता माषा व्रजकुलीमूलं मण्डूकवसामिश्रं चुल्ल्यां दीप्तायामपाचनम् । चुल्लीशोधनं प्रतीकारः ।

(४) पीलुमयो मणिरग्निगर्भः सुवर्चलामूलग्रन्थिः सूत्रग्रन्थिर्वा पिचुपरिवेष्टितो मुखादग्निधूमोत्सर्गः ।

(५) कुशाम्रफलतैलसिक्तोऽग्निर्वर्षप्रवातेषु ज्वलति ।

(६) समुद्रफेनकस्तैलयुक्तोऽम्भसि प्लवमानो ज्वलति ।

(७) प्लवङ्गमानामस्थिषु कल्माषवेणुना निर्मथितोऽग्निर्नोदकेन शाम्यति, उदकेन च ज्वलति ।

---

में मालिश करने से धधकते अंगारों के ढेर में वैसे ही घूमा जा सकता है, जैसे कि फूलों के ढेर में ।

( १ ) यदि हंस, क्रौंच, मयूर और अन्य वत्तख आदि जलचर पक्षियों की पूँछों पर नलदीपिका ( नरकट पर रखी हुई छोटी-सी जलती हुई बत्ती ) लगायी जाय तो वह रात में दूर से भयप्रद उल्का के समान दिखाई देती है ।

( २ ) बिजली गिरने से जली हुई लकड़ी की राख अग्नि को शांत कर देती है ।

( ३ ) स्त्री के रज से मिले हुए उड़द और मेढक की चर्बी से मिली हुई गोष्ठ ( गायों की जगह ) में पैदा होने वाली बड़े कटहल की जड़, इन दोनों को आग पर चढ़ाकर कितना भी पकाया जाय, पर नहीं पकती । चूल्हे से उतार कर इनको साफ कर देना ही इनका प्रतीकार है ।

( ४ ) पीलु की लकड़ी से बना हुआ मटका अग्निगर्भ ( तत्काल ही अग्नि को खींचने वाला ) होता है । अलसी की जड़ की गाँठ या अलसी के सूतों की गाँठ रुई से लपेट देने पर मुँह से आग और धुआँ छोड़ने का साधन है ।

( ५ ) कुश, आम और तेल के सहारे जलायी हुयी आग आँधी और वर्षा में भी जलती रहती ।

( ६ ) पानी में तैरते हुए समुद्र झाग में यदि तेल मिला दिया जाय तो वह जलते हुए तैरता रहेगा ।

( ७ ) बंदर की हड्डियों में विचित्र बाँस के मंथन से पैदा की गई अग्नि जल से नहीं बुझ सकती है, बल्कि जल के संसर्ग से वह और भी धधकने लगती है ।

(१) शस्त्रहतस्य शूलप्रोतस्य वा पुरुषस्य वामपार्श्वपर्शुकास्थिषु कल्माषवेणुना निर्मथितोऽग्निः, स्त्रियाः पुरुषस्य वास्थिषु मनुष्यपर्शुकया निर्मथितोऽग्निर्यत्र त्रिरपसव्यं गच्छति, न चात्रान्योऽग्निर्ज्वलति ।

(२) चुचुन्दरी खञ्जरीटः खारकीटश्च पिष्यते ।
अश्वमूत्रेण संसृष्टा निगलानां तु भञ्जनम् ।।

(३) अयस्कान्तो वा पाषाणः ।

(४) कुलीराण्डदर्दुरखारकीटसाप्रदेहेन द्विगुणो दारकगर्भः कङ्कभासपार्श्वोत्पलोदकपिष्टश्चतुष्पदद्विपदानां पादलेपः, उलूकगृध्रवसाभ्यामुष्ट्रचर्मोपानहावभ्यज्य वटपत्रैः प्रतिच्छाद्य पञ्चाशद्योजनान्यश्रान्तो गच्छति । श्येनकङ्ककाकगृध्रहंसक्रौञ्चवीचिरल्लानां मज्जानो रेतांसि वा योजनशताय । सिंहव्याघ्रद्वीपिकाकोलूकानां मज्जानो रेतांसि वा, सार्ववर्णिकानि गर्भपतनान्युष्ट्रिकायामभिषूय श्मशाने प्रेतशिशून् वा तत्समुत्थितं मेदो योजनशताय ।

---

( १ ) तलवार, भाला या त्रिशूल आदि से मारे हुए पुरुष की बाईं पसली की हड्डियों में विचित्र बाँस के मंथन से पैदा की गई अग्नि, या स्त्री अथवा पुरुष की हड्डियों में मनुष्यों की पसली से मंथन कर पैदा हुई अग्नि, इन दोनों अग्नियों को जहाँ पर तीन बार बाईं ओर से घुमा दिया जाय, वहाँ पर कोई आग नहीं जल सकती है ।

( २ ) छछून्दर, खंजन और खारकीट, इन तीनों को घोड़े के पेशाब के साथ अलग-अलग पीस कर फिर एक साथ मिला दिया जाय तो वह मिश्रण बेड़ी, हथकड़ी, आदि तोड़ने के काम में आ सकता है ।

( ३ ) अथवा अयस्कांत नामक मणि से भी लोहे की जंजीरें तोड़ी जा सकती हैं ।

( ४ ) केंकड़े के अंडे, मेढक, खारकीट की चर्बी से बढ़ाये हुए सूकरगर्भ को कंक पक्षी, गिद्ध की पसलियों तथा कमल के जल से पीस कर, उस औषधि को चौपायों या दुपायों के पैरों में लेप कर दिया जाय तो बिना थकावट के पचास योजन तक चला जा सकता है, उल्लू, तथा गिद्ध की चर्बी को ऊँट के चमड़े से बने जूतों पर चुपड़ कर और बरगद के पत्तों से ढँककर फिर उन्हीं जूतों को पहिन कर पचास योजन तक बिना थकावट के सफर किया जा सकता है; बाज, सफेद चील ( कंक ), कौआ, गीध, हंस, क्रौंच और वीचिरल्ल की चर्बी और वीर्य को मिलाकर पूर्वोक्त ढंग से पैरों तथा जूतों में लेप किया जाय तो बिना थके-अलसाये सौ योजन सफर किया जा सकता है; शेर, बाघ, भेड़िया, कौआ और उल्लू, इन सबकी चर्बी तथा वीर्य, अथवा सभी वर्णों के गिरे हुए गर्भों को मिट्टी के किसी बर्तन में अथवा

**(१) अनिष्टैरद्भुतोत्पातैः परस्योद्वेगमाचरेत् ।**
**आराज्यायेति निर्वादः समानः कोप उच्यते ।।**

इति औपनिषदिके चतुर्दशेऽधिकरणे प्रलम्भनेऽद्भुतोत्पादनं नाम द्वितीयोऽध्यायः;
आदितः षट्चत्वारिंशदधिकशततमः ।

—: ० :—

---

मरे हुए छोटे बच्चों को श्मशान भूमि में ही अभिषव करके उनके शरीर से निकली हुई चर्बी को पैर, जूते आदि में लेप करके बिना थकावट ही सौ योजन तक जाया जा सकता है ।

( १ ) इस प्रकार विजिगीषु राजा को चाहिए कि इन आश्चर्यजनक अद्भुत तथा अनिष्टकारक उत्पातों से वह अपने शत्रु को अच्छी तरह बेचैन करे । यद्यपि इस प्रकार का व्यापार अनिष्टकारी, और कलंकित कर देने वाला होता है, फिर भी पारस्परिक वैमनस्य बढ़ जाने के कारण, उसको उपयोग में लाना ही पड़ता है । इसलिए यहाँ पर इसका निरूपण किया गया ।

औपनिषदिक नामक चौदहवें अधिकरण में अद्भुतोत्पादन नामक
दूसरा अध्याय समाप्त ।

—: ० :—

# प्रलम्भने भैषज्यमन्त्रप्रयोगः

(१) मार्जारोष्ट्रवृकवराहश्वाविद्वागुलीनप्तृकाकोलूकानामन्येषां वा निशाचराणां सत्त्वानामेकस्य द्वयोर्बहूनां वा दक्षिणानि वामानि वाक्षीणि गृहीत्वा द्विधा चूर्णं कारयेत्। ततो दक्षिणं वामेन वामं दक्षिणेन समभ्यज्य रात्रौ तमसि च पश्यति।

(२) एकाम्लकं वराहाक्षि खद्योतः कालशारिबा।
एतेनाभ्यक्तनयनो रात्रौ रूपाणि पश्यति॥

(३) त्रिरात्रोपोषितः पुष्ये शस्त्रहतस्य शूलप्रोतस्य वा पुंसः शिरः-कपाले मृत्तिकायां यवानावास्याविक्षीरेण सेचयेत्, ततो यवविरूढमालामाबध्य नष्टच्छायारूपश्चरति।

(४) त्रिरात्रोपोषितः पुष्येण श्वमार्जारोलूकवागुलीनां दक्षिणानि वामानि चाक्षीणि द्विधा चूर्णं कारयेत्। ततो यथास्वमभ्यक्ताक्षो नष्टच्छायारूपश्चरति।

---

## प्रलम्भन योग में औषधि तथा मंत्र का प्रयोग

( १ ) रात में घूमनेवाले : बिल्ली, ऊँट, भेड़िया, सूअर, साही, बागुली, नप्ता, कौआ और उल्लू अथवा रात्रि में विचरण करने वाले इसी प्रकार के दूसरे प्राणी, इनमें से एक, दो या अनेकों की दोनों आँखों को निकाल कर उनका अलग-अलग चूर्ण बनाया जाय। तदनन्तर बाईं आँखों से बना चूर्ण दाईं आँख पर और दाईं आँख से बना चूर्ण बाईं आँख पर अञ्जन कर देने से मनुष्य भी रात के समय घोर अंधकार में प्रत्येक वस्तु को देख सकता है।

( २ ) एक बड़हल ( अम्लक ), सूअर की आँख, जुगनू और काली शारिवा नामक औषधि को एक साथ मिलाकर आँख में लगाने से रात में सभी चीजें दिखाई देती हैं।

( ३ ) तीन रात तक उपवास करने वाला व्यक्ति पुष्य नक्षत्र में हथियार से मारे हुए अथवा फाँसी पर चढ़ाये गये आदमी की खोपड़ी में मिट्टी भर कर उसमें जौ बो दे और उसको भेंड़ के दूध से सींचता जाय। जब वे जौ उग आते हैं तब उनकी माला पहिन कर चलने वाले व्यक्ति की न तो छाया दिखाई देती है और न रूप ही।

( ४ ) अथवा तीन रात तक उपवास करने वाला व्यक्ति पुष्य नक्षत्र में कुत्ता,

**(१) त्रिरात्रोपोषितः पुष्येण पुरुषघातिनः काण्डकस्य शलाकामञ्जनीं च कारयेत्, ततोऽन्यतमेनाक्षिचूर्णेनाभ्यक्ताक्षो नष्टच्छायारूपश्चरति ।**

**(२) त्रिरात्रोपोषितः पुष्येण कालायसीमाञ्जनीं शलाकां च कारयेत्; ततो निशाचराणां सत्त्वानामन्यतमस्य शिरःकपालमञ्जनेन पूरयित्वा मृतायाः स्त्रिया योनौ प्रवेश्य दाहयेत्; तदञ्जनं पुष्येणोद्धृत्य तस्यामञ्जन्यां निदध्यात् । तेनाभ्यक्ताक्षो नष्टच्छायारूपश्चरति ।**

**(३) यत्र ब्राह्मणमाहिताग्निं दग्धं दह्यमानं वा पश्येत्, तत्र त्रिरात्रोपोषितः पुष्येण स्वयंमृतस्य वाससा प्रसेवं कृत्वा चिताभस्मना पूरयित्वा तमाबध्य नष्टच्छायारूपश्चरति ।**

**(४) ब्राह्मणस्य प्रेतकार्ये या गौर्मार्यते, तस्या अस्थिमज्जाचूर्णपूर्णाहिभस्त्रा पशूनामन्तर्धानम् ।**

---

बिल्ली, उल्लू और बागुली इन चारों जानवरों की दोनों आँखों का अलग-अलग चूर्ण बनाये । तदनन्तर दाईं आँखों से बने चूर्ण को दाईं आँख पर और बाईं आँखों से बने चूर्ण को बाईं आँख पर लगाने वाले व्यक्ति की छाया और काया नहीं दिखाई देती है ।

( १ ) अथवा तीन रात तक उपवास करने के बाद पुष्य नक्षत्र में जिस बाण से कोई व्यक्ति मारा गया हो उसी बाण के लोहे की एक सलाई और सुरमादानी बनवा कर कुत्ता, बिल्ली, उल्लू और बागुली इनमें से किसी की भी दाईं-बाईं आँख का अलग-अलग चूर्ण बनाकर उसी सलाई तथा सुरमादानी के द्वारा आँखों में लगाने वाला पुरुष रूप तथा छाया से रहित होकर विचरण कर सकता है ।

( २ ) अथवा तीन रात तक उपवास करने के बाद पुष्य नक्षत्र में फौलाद के लोहे की सुरमादानी-सलाई बना दी जाय और रात में घूमने वाले किसी भी जानवर की खोपड़ी को अञ्जन से भरकर उसे किसी मरी हुई स्त्री की योनि में डाल कर जला दिया जाय । तदनन्तर पुष्य नक्षत्र में उस अञ्जन को उक्त लोहे की सुरमादानी में भर दिया जाय और उसी सलाई से उस अंजन को आँखों में लगाने से भी रूप तथा छाया से रहित होकर विचरण किया जा सकता है ।

( ३ ) अथवा जहाँ पर कोई अग्निहोत्री ब्राह्मण जलाया गया हो या जलाया जा रहा हो, उस स्थान पर तीन रात तक उपवास करने के बाद पुष्य नक्षत्र में अपनी मृत्यु से मरे हुए किसी व्यक्ति के वस्त्र से एक थैली बनाकर उसमें उसी मनुष्य की चिता की राख भर दी जाय और उस पोटली को अपने किसी अंग पर बाँध दिया जाय, ऐसा करने से वह पुरुष छाया-रूप से रहित यथेच्छ कहीं भी विचरण कर सकता है ।

( ४ ) ब्राह्मण के श्राद्धकार्य में जो गाय मारी जाय उसकी हड्डी और मज्जा

(१) सर्पदष्टस्य भस्मना पूर्णा प्रचलाकभस्त्रा मृगाणामन्तर्धानम्।

(२) उलूकबागुलीपुच्छपुरीषजान्वस्थिचूर्णपूर्णाहिभस्त्रा पक्षिणामन्तर्धानम्।

(३) इत्यष्टावन्तर्धानयोगाः।

(४) वलिं वैरोचनं वन्दे शतमायं च शम्बरम्।
भण्डीरपाकं नरकं निकुम्भं कुम्भमेव च॥
देवलं नारदं वन्दे वन्दे सावर्णिगालवम्।
एतेषामनुयोगेन कृतं ते स्वापनं महत्॥
यथा स्वपन्त्यजगराः स्वपन्त्यपि चमूखलाः।
तथा स्वपन्तु पुरुषा ये च ग्रामे कुतूहलाः॥
भण्डकानां सहस्रेण रथनेमिशतेन च।
इमं गृहं प्रवेक्ष्यामि तूष्णीमासन्तु भाण्डकाः॥
नमस्कृत्वा च मनवे बद्ध्वा शुनकफेलकाः।
ये देवा देवलोकेषु मानुषेषु च ब्राह्मणाः॥
अध्ययनपारगाः सिद्धा ये च कैलासतापसाः।
एते च सर्वसिद्धेभ्यः कृतं ते स्वापनं महत्॥
अतिगच्छति च मय्यपगच्छन्तु संहताः।
अलिते वलिते मनवे स्वाहा॥

(५) एतस्य प्रयोगः—त्रिरात्रोपोषितः कृष्णचतुर्दश्यां पुष्ययोगिन्यां

---

के चूर्ण से भरी हुई साँप की केंचुल को यदि किसी पशु पर बाँध दिया जाय तो उसको भी कोई नहीं देख पाता है।

( १ ) यदि सर्प से कटे हुए किसी जानवर की राख को मोरपंख की बनी हुई थैली में भर दिया जाय और वह थैली किसी जंगली जानवर के अङ्ग पर बाँध दी जाय तो वह जानवर दृष्टि से अन्तर्धान हो जाता है।

( २ ) यदि उल्लू तथा बागुली दोनों की पूँछ, विष्ठा, टाँग और हड्डियों के चूर्ण को साँप की केंचुल में भर दिया जाय तो वह सभी पक्षियों के अंतर्धान का योग है।

( ३ ) यहाँ तक अंतर्धान होने के संबंध में आठ प्रकार के योगों का निरूपण किया गया है।

( ४ ) **प्रस्वापन मंत्र :** ( 'बलिं वैरोचनम्' आदि ये जो मंत्र दिये गये हैं इनका संबंध आगे बताये गये चार प्रकार के प्रस्वापन ( सबको सुला देने वाले ) योगों से है। अर्थ की दृष्टि से ये मंत्र सर्वथा सुबोध हैं और अर्थ की अपेक्षा उनका उपयोग उनके मूलपाठ में ही है।

( ५ ) **उक्त मंत्रों के प्रयोग का प्रकार :** तीन रात तक उपवास करने के

श्वपाकीहस्ताद्बिलखावलेखनं क्रीणीयात् । तन्माषैः सह कण्डोलिकायां कृत्वा असङ्कीर्ण आदहने निखानयेत् । द्वितीयस्यां चतुर्दश्यामुद्धृत्य कुमार्या पेषयित्वा गुलिकाः कारयेत् । तत एकां गुलिकामभिमन्त्रयित्वा यत्रैतेन मन्त्रेण क्षिपति, तत्सर्वं प्रस्वापयति ।

(१) एतेनैव कल्पेन श्वाविधः शल्यकं त्रिकालं त्रिश्वेतमसङ्कीर्ण आदहने निखानयेत् । द्वितीयस्यां चतुर्दश्यामुद्धृत्यादहनभस्मना सह यत्रैतेन मन्त्रेण क्षिपति, तत्सर्वं प्रस्वापयति ।

सुवर्णपुष्पीं ब्रह्माणीं ब्रह्माणं च कुशध्वजम् ।
सर्वाश्च देवता वन्दे वन्दे सर्वांश्च तापसान् ।।
वशं मे ब्राह्मणा यान्तु भूमिपालाश्च क्षत्रियाः ।
वशं वैश्याश्च शूद्राश्च वशतां यान्तु मे सदा ।

स्वाहा । अमिले किमिले वसुजारे प्रयोगे फक्के वयुह्वे विहाले दन्तकटके स्वाहा ।

सुखं स्वपन्तु शुनका ये च ग्रामे कुतूहलाः ।
श्वाविधः शल्यकं चैतत्त्रिश्वेतं ब्रह्मनिर्मितम् ।।
प्रसुप्ताः सर्वसिद्धा हि एतत्ते स्वापनं कृतम् ।
यावद् ग्रामस्य सीमान्तः सूर्यस्योद्गमनादिति ।। स्वाहा ।

(२) एतस्य प्रयोगः—श्वाविधः शल्यकानि त्रिश्वेतानि । सप्तरात्रोपोषितः कृष्णचतुर्दश्यां खादिराभिः समिधाभिरग्निमेतेन मन्त्रेणाष्टशत-

---

बाद कृष्ण पक्ष के पुष्य नक्षत्र में किसी चण्डाल की स्त्री के हाथ से चूहे का एक टुकड़ा खरीद लिया जाय । उसको उड़दों के साथ एक डिब्बे में बन्द कर किसी खुले श्मशान में गढ़ा खोदकर उसमें गाड़ दिया जाय । अगली चतुर्दशी को उस डिब्बे को गढ़े से निकाल कर किसी कुमारी के द्वारा उसको पिसवा दिया जाय और उस चूर्ण की गोलियाँ बना दी जाँय । उसके बाद एक-एक गोली को उक्त मंत्रों से अभिमंत्रित कर जिस स्थान पर फेंक दिया जाय उस स्थान के सभी प्राणी सो जाते हैं । यह पहिला योग है ।

( १ ) ऊपर बताये नियम के अनुसार किसी चाण्डालिनी के हाथ से साही के ऐसे काँटे खरीदे जाँय, जो तीन जगह से सफेद और तीन जगह से काले हों । उन काँटों को पूर्ववत् किसी खुले श्मशान में गाड़ दिया जाय । १५ दिन के बाद अगली चतुर्दशी को उसे उखाड़ कर श्मशान की राख के साथ उपर्युक्त मंत्रों से अभिमंत्रित करके जिस स्थान पर वह काँटा फेंका जायेगा वहाँ के सभी प्राणी सो जायेंगे । यह दूसरा योग है । तीसरे प्रस्वापन योग के लिए 'सुवर्णपुष्पीं' आदि मंत्रों का विधान है—

( २ ) **प्रयोग-विधि** : पूर्वोक्त विधि के अनुसार तीन स्थानों से सफेद साही के

सम्पातं कृत्वा मधुघृताभ्यामभिजुहुयात् । तत एकमेतेन मन्त्रेण ग्रामद्वारि गृहद्वारि वा यत्र निखन्यते, तत्सर्वं प्रस्वापयति ।

बलिं वैरोचनं वन्दे शतमायं च शम्बरम् ।
निकुम्भं नरकं कुम्भं तन्तुकच्छं महासुरम् ॥
अर्मालवं प्रमीलं च मण्डोलूकं घटोबलम् ।
कृष्णकंसोपचारं च पौलोमीं च यशस्विनीम् ॥
अभिमन्त्रयित्वा गृह्णामि सिद्धार्थं शवशारिकाम् ।
जयतु जयति च नमः शलकभूतेभ्यः स्वाहा ।
सुखं स्वपन्तु शुनका ये च ग्रामे कुतूहलाः ।
सुखं स्वपन्तु सिद्धार्था यमर्थं मार्गयामहे ॥
यावदस्तमयादुदयो यावदर्थं फलं मम ॥ इति स्वाहा ।

(१) एतस्य प्रयोगः—चतुर्भक्तोपवासी कृष्णचतुर्दश्यामसङ्कीर्ण आदहने बलिं कृत्वा एतेन मन्त्रेण शवशारिकां गृहीत्वा पोत्रीपोट्टलिकां बध्नीयात् । तन्मध्ये श्वाविधः शल्यकेन विद्ध्वा यत्रैतेन मन्त्रेण निखन्यते, तत्सर्वं प्रस्वापयति ।

(२) उपैमि शरणं चाग्निं दैवतानि दिशो दश ।
अपयान्तु च सर्वाणि वशतां यान्तु मे सदा ॥ स्वाहा ।

(३) एतस्य प्रयोगः—त्रिरात्रोपोषितः पुष्येण शर्करा एकविंशति-

---

काँटों को श्मशान भूमि में गाड़ दिया जाय । तदनन्तर सात रात्रि तक उपवास रखने के बाद कृष्णपक्ष की चतुर्दशी को खैर आदि की समिधाओं से उक्त मंत्रों द्वारा शहद तथा घी मिलाकर उससे १०८ बार अग्नि में हवन किया जाय । उसके बाद श्मशान में गड़े हुए उन काँटों को उखाड़ कर उनको उक्त मंत्रों द्वारा अभिमंत्रित कर घर, गाँव या दरवाजा, जहाँ पर भी गाड़ दिया जाता है वहाँ के सब लोग निद्राग्रस्त हो जाते हैं । यह तीसरा योग है । चौथे प्रस्वापन योग के लिए 'बलि वैरोचनम्' आदि मंत्रों का उपयोग किया जाय ।

(१) **प्रयोग-विधि :** चार रात तक उपवास करने के बाद कृष्णपक्ष की चतुर्दशी को खुले हुए श्मशान के मैदान में पशुबलि देकर एक मरी हुई मैना को कपड़े की पोटली में बाँध लिया जाय । उसके बीच में साही का एक काँटा छेद कर उपर्युक्त मंत्र को पढ़ते हुए उस पोटली को जिस स्थान में भी गाड़ दिया जाय वहीं के सब प्राणी सो जायँगे । यह चौथा योग है ।

( २ ) **द्वार खोलने का मंत्र :** बंद दरवाजा खोलने के लिए 'उपैमि शरणम्' आदि मंत्र का प्रयोग किया जाय ।

( ३ ) **प्रयोग-विधि :** तीन रात तक उपवास करने के बाद पुष्य नक्षत्र काल

(१) पुनर्नवमवाचीनं निम्बः काकमधुश्च यः।
कपिरोम मनुष्यास्थि बद्ध्वा मृतकवाससा ॥
निखन्यते गृहे यस्य पिष्ट्वा वा यं प्रपाययेत्।
सपुत्रदारः सधनस्त्रीन्पक्षान्नातिवर्तते।
(२) पुनर्नवमवाचीनं निम्बः काकमधुश्च यः।
स्वयंगुप्ता मनुष्यास्थि पदे यस्य निखन्यते ॥
द्वारे गृहस्य सेनाया ग्रामस्य नगरस्य वा।
सपुत्रदारः सधनस्त्रीन् पक्षान्नातिवर्तते ॥
(३) अजमर्कटरोमाणि मार्जारनकुलस्य च।
ब्राह्मणानां श्वपाकानां काकोलूकस्य चाहरेत् ॥
एतेन विष्ठावक्षुण्णा सद्य उत्सादकारिका।
(४) प्रेतनिर्मालिका किण्वं रोमाणि नकुलस्य च ॥
वृश्चिकाल्यहिकृत्तिश्च पदे यस्य निखन्यते।
भवत्यपुरुषः सद्यो यावत्तन्नापनीयते ॥
(५) त्रिरात्रोपोषितः पुष्येण शस्त्रहतस्य शूलप्रोतस्य वा पुंसः शिरः-कपाले मृत्तिकायां गुञ्जा आवास्योदकेन च सेचयेत्। जातानाममावास्यायां

---

( १ ) दक्षिण की ओर पैदा होने वाला पुनर्नवा तथा जिसका फल कौओं के लिए स्वादुकर होता है, ऐसा काकमधु, नीम, बन्दर के बाल और मनुष्य की हड्डी, इन सबको मरे हुए आदमी के कपड़े में बाँध कर जिसके घर में गाड़ दिया जाता है अथवा जिसको पीस कर पिला दिया जाता है वह पुरुष डेढ़ मास के भीतर ही समस्त धन-जन के सहित विनष्ट हो जाता है।

( २ ) दक्षिण की ओर पैदा होने वाला पुनर्नवा, काकमधु, नीम, धमासा ( स्वयं-गुप्ता ) और मनुष्य की हड्डी, इन सबको जिसके घर, सेना, गाँव, नगर या दरवाजे पर गाड़ दिया जाता है वह व्यक्ति डेढ़ मास के भीतर समस्त जन-धन के सहित विनष्ट हो जाता है।

( ३ ) बकरा, बन्दर, बिल्ली, नेवला, ब्राह्मण, चाण्डाल, कौआ और उल्लू, इन सबके बालों को इकट्ठा करके तथा जिसको मारना हो उसका पाखाना इन बालों के साथ मिलाकर उसका स्पर्श कराते ही उस व्यक्ति की तत्काल मृत्यु हो जाती है।

( ४ ) मुर्दे पर डाली गई माला, सुराबीज और नेवले के बाल इन सबको यदि बिच्छू, भौंरा और साँप, इन तीनों की खाल के साथ मिलाकर किसी के स्थान पर गाड़ दिया जाय तो वह पुरुष तब तक नपुंसक बना रहता है, जब तक कि उसके स्थान से उन गड़ी हुई चीजों को न निकाला जाय।

( ५ ) तीन रात तक उपवास करने के बाद पुष्य नक्षत्र में हथियार से मारे हुए

**पौर्णमास्यां वा पुष्ययोगिन्यां गुञ्जावल्लीर्ग्राहयित्वा मण्डलिकानि कारयेत् । तेष्वन्नपानभाजनानि न्यस्तानि न क्षीयन्ते ।**

**(१) रात्रिप्रेक्षायां प्रवृत्तायां प्रदीपाग्निषु मृतधेनोः स्तनानुत्कृत्य दाहयेत् । दग्धान् वृषमूत्रेण पेषयित्वा नवकुम्भमन्तर्लेपयेत्; तं ग्राममपसव्यं परिणीय तत्र न्यस्तं नवनीतमेषां तत्सर्वमागच्छतीति ।**

**(२) कृष्णचतुर्दश्यां पुष्ययोगिन्यां शुनो लग्नकस्य योनौ कालायसीं मुद्रिकां प्रेषयेत्; तां स्वयं पतितां गृह्णीयात्; तया वृक्षफलान्याकारितान्यागच्छन्ति ।**

**(३) मन्त्रभैषज्यसंयुक्ता योगा मायाकृताश्च ये ।**
**उपहन्यादमित्रांस्तैः स्वजनं चाभिपालयेत् ।।**

इति औपनिषदिके चतुर्दशेऽधिकरणे प्रलम्भने भैषज्यमन्त्रप्रयोगो नाम तृतीतोऽध्यायः; आदितः सप्तचत्वारिंशदधिकशततमः ।

—: ० :—

---

या फाँसी लगे व्यक्ति की खोपड़ी में मिट्टी भर कर उसमें रत्ती ( गुंजा ) बो दिये जाँय और उन्हें निरंतर सींचा जाय । जब उसमें लताएँ निकल आवें तब पुष्य नक्षत्र की अमावस्या या पूर्णमासी को उन गुंजा की बेलों को उखाड़ कर उनका गोल घेरा बना दिया जाय । उस घेरे के बीच में रखी हुई खाने-पीने की सामग्री कभी खतम ही नहीं होती है ।

( १ ) रात में जिस समय कोई तमाशा हो रहा हो तब, मशाल की आग से मरी हुई गाय के झुलसे हुए थनों को काट कर उन्हें बैल के पेशाब के साथ पीसने के बाद एक कोरे घड़े के भीतर चारों ओर लीप दिया जाय । उस घड़े को बाईं ओर से गाँव की परिक्रमा करा के जिस जगह पर रखा जाय, गाँव भर का सारा मक्खन उस घड़े में खिचा चला आता है ।

( २ ) पुष्य नक्षत्र की कृष्ण चतुर्दशी में किसी कामासक्त कुतिया की योनि में लोहे की एक अंगूठी लगा दी जाय और जब वह अंगूठी अपने आप गिर पड़े तो उसे ले लिया जाय । उसके बाद उस अंगूठी के द्वारा जिस पेड़ का फल बुलाना हो फौरन अपने पास चला आता है ।

( ३ ) मंत्र, औषधि और माया से युक्त ऊपर जिन योगों का निरूपण किया गया है, उनसे शत्रु का नाश और स्वजनों का उपकार करना चाहिए ।

औपनिषदिक नामक चौदहवें अधिकरण में भैषज्यमन्त्रप्रयोग नामक तीसरा अध्याय समाप्त ।

—: ० :—

# स्वबलोपघातप्रतीकारः

(१) स्वपक्षे परप्रयुक्तानां दूषिविषगराणां प्रतीकारे श्लेष्मातककपित्थदन्तिदन्तशठगोजीशिरीषपाटलीबलास्योनाकपुनर्नवाश्वेतावरणक्वाथयुक्तं चन्दनसालावृकीलोहितयुक्तं तेजनोदकं राजोपभोग्यानां गुह्यप्रक्षालनं स्त्रीणां सेनायाश्च विषप्रतीकारः।

(२) पृषतनकुलनीलकण्ठगोधापित्तयुक्तं मषीराजिचूर्णं सिन्दुवारितवरणवारुणीतण्डुलीयकशतपर्वाग्रपिण्डीतकयोगो मदनदोषहरः।

(३) सृगालविन्नामदनसिन्दुवारितवरणवारणवल्लीमूलकषायाणामन्यतमस्य समस्तानां वा क्षीरयुक्तं पानं मदनदोषहरम्।

---

## शत्रु द्वारा किये गये घातक प्रयोगों का प्रतीकार

( १ ) शत्रु द्वारा किये गये दूषक तथा विष आदि के घातक प्रयोगों का प्रतीकार इस प्रकार करना चाहिए : लहसोड़ा ( श्लेष्मातक ), कैथा ( कपित्थ ), जमालघोटा ( दंती ); जम्भीरी नीबू ( दंतशठ ), गोभी ( गोजी ); सिरस ( सिरीष ), काली पाढरी या पाटल ( पाटली ), खरैंटी ( बला ), सोनापाठा ( स्योनाक ); पुनर्नवा, शराब और वरनावृक्ष का काढ़ा बना कर चंदन, सालावृकी ( बंदरिया या सियारिन या कुतिया ) के खून से सानकर बाँस के पानी ( तेजनोदक ) से राजा के उपयोग में आने वाली स्त्रियों की योनि, स्तन आदि गुप्तांगों को साफ कराया जाय और सेना में प्रयुक्त विष का प्रतीकार किया जाय।

( २ ) दागीमृग ( पृषतन ), नेवला, मोर और गोह के पित्ते को काले संभालू ( भषी ) तथा राई के चूर्ण में मिलाकर बनाये गये योग से पागल बना देने वाले विषों का प्रतीकार किया जाय। संभालू, बरना, दूब ( वारुणी ), चौलाई, बाँस का अग्रभाग ( शतपर्वाग्र ) और मैनफल, इन सब चीजों का योग भी उन्मादजन्य दोषों का उपशमन करने वाला होता है।

( ३ ) श्रृगालविन्ना औषधि, धतूरा ( मदन ), संभालू ( सिंधुवारित ), बरना ( वरण ) और गजपीपल ( वारणवल्लीमूल ) इन सबकी जड़ों को मिलाकर अथवा उनका अलग-अलग काढा, दूध के साथ पीने से उन्माद पैदा करने वाले विषयोगों को शांत कर देता है।

(१) कैंडर्यपूतितिलतैलमुन्मादहरं नस्तःकर्म ।

(२) प्रियङ्गुनक्तमालयोगः कुष्ठहरः ।

(३) कुष्ठलोध्रयोगः पाकशोषघ्नः ।

(४) कट्फलद्रवन्तीविलङ्गचूर्णं नस्तःकर्म शिरोरोगहरम् ।

(५) प्रियङ्गुमञ्जिष्ठातगरलाक्षारसमधुकहरिद्राक्षौद्रयोगो रज्जूदक-विषप्रहारपतननिःसंज्ञानां पुनःप्रत्यानयनाय ।

(६) मनुष्याणामक्षमात्रं, गवाश्वानां द्विगुणं, चतुर्गुणं हस्त्युष्ट्राणाम् ।

(७) रुक्मगर्भश्चैषां मणिः सर्वविषहरः ।

(८) जीवन्तीश्वेतामुष्ककपुष्पवन्दाकानामक्षीबे जातस्य अश्वत्थस्य मणिः सर्वविषहरः ।

---

( १ ) कायफल ( कैंडर्य ), कांटेदार कंजरुआ ( पूति ) और तिल इन तीनों के तेल को नासिका में डालने से उन्माद शांत हो जाता है ।

( २ ) मेंहदी या कांगनी ( प्रियंगु ) और करंज ( नक्तमाल ), इन दोनों का योग कुष्ठ-रोग को दूर कर देता है ।

( ३ ) कूट और लोध से बनाया गया योग पाकरोग ( बाल आदि का पकना ) और क्षयरोग को दूर कर देता है ।

( ४ ) कायफल ( कट्फल ), मूषकपर्णी ( द्रवंती ) और बायविडंग ( विलंग ), इन तीनों के चूर्ण को नासिका में डालने से शिर के समस्त रोग दूर हो जाते हैं ।

( ५ ) प्रियंगु, मजीठ, तगर; लाख, महुआ, हल्दी और शहद इन सब चीजों का चूर्णयोग रस्सी, दूषित जल, विष, चोट तथा गिर जाने से हुई बेहोशी को दूर करने में लाभदायक है ।

( ६ ) प्रतीकार के लिए दी जाने वाली उक्त औषधियों की मात्रा मनुष्यों के लिए एक अक्ष ( सोलह माष ), गाय तथा घोड़ों को उससे दुगुनी और हाथी तथा ऊँटों को उससे चौगुनी देनी चाहिए ।

( ७ ) बेहोशी को दूर करने वाला जो योग ऊपर बताया गया है उसको यदि सोने के पत्तर में रखकर उसका तावीज बनाकर धारण किया जाय तो किसी भी प्रकार का विष असर नहीं करने पाता है ।

( ८ ) गिलोय ( जीवन्ती ), सफेद संभालू, काली पाढ़री, पुष्प ( औषधि ) और अमरबेल ( बन्दा ), इन सब को मणि ( ताबीज ); अथवा सहिजन या नीम के पेड़ में पैदा हुए पीपल के पत्ते को ताबीज में रख कर बाँध दिया जाय तो सभी प्रकार के विष शांत हो जाते हैं ।

(१) तूर्याणां तैः प्रलिप्तानां शब्दो विषविनाशनः।
लिप्तध्वजं पताकां वा दृष्ट्वा भवति निर्विषः॥
(२) एतैः कृत्वा प्रतीकारं स्वसैन्यानामथात्मनः।
अमित्रेषु प्रयुञ्जीत विषधूमाम्बुदूषणान्॥

इति औपनिषदिके चतुर्दशेऽधिकरणे स्वबलोपघातप्रतीकारो नाम चतुर्थोऽध्यायः; आदितोऽष्टचत्वारिंशदुत्तरशततमः।

समाप्तमिदमौपनिषदिकं चतुर्दशमधिकरणम्।

—:०:—

(१) गिलोय आदि औषधियों से चुपड़े गये वाद्यों का शब्द विष को नष्ट करने वाला होता है। इसी प्रकार इन्हीं औषधियों से लिप्त ध्वजाओं को देखकर भी विष का प्रभाव जाता रहता है।

(२) विजिगीषु राजा को चाहिए कि उक्त सभी प्रकार की औषधियों द्वारा वह अपनी सेना की तथा अपनी रक्षा करके विषैले धुंए का और विषाक्त पानी का प्रयोग सदा अपने शत्रुओं पर करता रहे।

औपनिषदिक नामक चौदहवें अधिकरण में स्वबलोपघातप्रतीकार नामक चौथा अध्याय समाप्त

—:०:—

पन्द्रहवाँ अधिकरण

# तन्त्रयुक्ति

# तन्त्रयुक्तयः

(१) मनुष्याणां वृत्तिरर्थः, मनुष्यवती भूमिरित्यर्थः, तस्याः पृथिव्या लाभपालनोपायः शास्त्रमर्थशास्त्रमिति ।

(२) तद् द्वात्रिंशद्युक्तियुक्तम्—अधिकरणं, विधानं, योगः, पदार्थः, हेत्वर्थः, उद्देशः, निर्देशः, उपदेशः, अपदेशः, अतिदेशः, प्रदेशः, उपमानम्, अर्थापत्तिः, संशयः, प्रसङ्गः, विपर्ययः, वाक्यशेषः, अनुमतम्, व्याख्यानम्, निर्वचनं, निदर्शनम्, अपवर्गः, स्वसंज्ञा, पूर्वपक्षः, उत्तरपक्षः, एकान्तः, अनागतावेक्षणम्, अतिक्रान्तावेक्षणम्, नियोगः, विकल्पः, समुच्चयः, ऊह्यमिति ।

(३) यमर्थमधिकृत्योच्यते तदधिकरणम्—'पृथिव्या लाभे पालने च यावन्त्यर्थशास्त्राणि पूर्वाचार्यैः प्रस्थापितानि प्रायशस्तानि संहृत्यैकमिदमर्थशास्त्रं कृतम्' ( अधि० १. अध्या० १ ) इति ।

---

## अर्थशास्त्र की युक्तियाँ

( १ ) मनुष्यों की जीविका को अर्थ कहते हैं। मनुष्यों से युक्त भूमि को भी अर्थ कहते हैं। इस प्रकार की भूमि को प्राप्त करने और उसकी रक्षा करने वाले उपायों का निरूपण करने वाला शास्त्र अर्थशास्त्र कहलाता है।

( २ ) वह अर्थशास्त्र बत्तीस प्रकार की युक्तियों से समन्वित है; जिनकी नामावली इस प्रकार है : १. अधिकरण २. विधान ३. योग ४. पदार्थ ५. हेत्वर्थ ६. उद्देश्य ७. निर्देश ८. उपदेश ९. अपदेश १०. अतिदेश ११. प्रदेश १२ उपमान १३. अर्थापत्ति १४. संशय १५. प्रसंग १६. विपर्यय १७. वाक्यशेष १८. अनुमत १९. व्याख्यान २०. निर्वचन २१. निदर्शन २२. अपवर्ग २३. स्वसंज्ञा २४. पूर्वपक्ष २५. उत्तरपक्ष २६. एकांत २७. अनागतावेक्षण २८. अतिक्रांतावेक्षण २९. नियोग ३०. विकल्प ३१. समुच्चय और ३२. ऊह्य ।

( ३ ) अधिकारपूर्वक कहे गये अर्थ का नाम **अधिकरण** है, ग्रन्थारंभ में जैसे सम्पूर्ण पृथिवी को प्राप्त करने तथा पालन करने का कथन कर संपूर्ण शास्त्र को एक अधिकरण बताया गया है। इसी प्रकार अपने-अपने अर्थों को अधिकारपूर्वक निरूपण करने वाले **विनयाधिकारिकः अध्यक्षप्रचार** आदि अधिकरण हैं।

(१) शास्त्रस्य प्रकरणानुपूर्वी विधानम्–'विद्यासमुद्देशः, वृद्धसंयोगः, इन्द्रियजयः, अमात्योत्पत्तिः' (अधि० १. अध्या० १) इत्येवमादिकमिति।

(२) वाक्ययोजना योगः—'चतुर्वर्णाश्रमो लोकः' (अधि० १. अध्या० ४) इति ।

(३) पदावधिकः पदार्थः–'मूलहरः' इति पदम् । 'यः पितृपैतामहमर्थमन्यायेन भक्षयति स मूलहरः' ( अधि० २. अध्या० ९ ) इत्यर्थः ।

(४) हेतुरर्थसाधको हेत्वर्थः–'अर्थमूलौ हि धर्मकामौ' ( अधि० १. अध्या० ७ ) इति ।

(५) समासवाक्यमुद्देशः–विद्याविनयहेतुरिन्द्रियजयः' ( अधि० १. अध्या० ६ ) इति ।

(६) व्यासवाक्यं निर्देशः–'कर्णत्वगक्षिजिह्वाघ्राणेन्द्रियाणां शब्दस्पर्शरूपरसगन्धेष्वविप्रतिपत्तिरिन्द्रियजयः' (अधि० १ अध्या० ६) इति ।

(७) एवं वर्तितव्यमित्युपदेशः–'धर्मार्थाविरोधेन कामं सेवेत न निःसुखः स्यात्' (अधि० १, अध्या० ७ ) इति ।

---

( १ ) प्रकरण के अनुसार शास्त्र की आनुपूर्वी का कथन करना **विधान** कहलाता है, जैसे : विद्यासमुद्देश, वृद्धसंयोग, इन्द्रियजय और अमात्योत्पत्ति आदि ।

( २ ) वाक्य-योजना को **योग** कहते हैं, जैसे : 'चतुर्वर्णाश्रमो लोकः' चारों वर्णाश्रम के लोग ।

( ३ ) केवल पद के अर्थ को **पदार्थ** कहते हैं, जैसे : 'मूलहर' यह एक पद है उसका यह अर्थ कि 'पैतृक सम्पत्ति को अन्याय से नष्ट कर दे या अपहरण कर ले' । यह 'मूलहर' पद का अर्थ है ।

( ४ ) अर्थ को सिद्ध करने वाला हेतु **हेत्वर्थ** कहलाता है, जैसे धर्म और काम अर्थ पर ही निर्भर है ।

( ५ ) संक्षिप्त वाक्य का कथन **उद्देश** कहलाता है, जैसे विद्या और विनय इन्द्रियजय पर निर्भर है ।

( ६ ) विस्तृत वाक्य का कथन करना **निर्देश** कहलाता है, जैसे : नाक, त्वचा, आँख, जीभ, कान को शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध आदि की ओर से बचाना ही इन्द्रियजय है ।

( ७ ) 'इस प्रकार का व्यवहार करना चाहिए' ऐसा कहना **उपदेश** कहलाता है, जैसे : धर्म और अर्थ के अनुसार ही कार्य करना चाहिए, इसके प्रतिकूल चलने वाला सुखी नहीं रहता है ।

**(१) एवमसावाहेत्यपदेशः—'मन्त्रिपरिषदं द्वादशामात्यान् कुर्वीतेति मानवाः, षोडशेति बार्हस्पत्याः, विंशतिमित्यौशनसाः, यथासामर्थ्यमिति कौटिल्यः' (अधि० १. अध्या० १५)।**

**(२) उक्तेन साधनमतिदेशः—'दत्तस्याप्रदानमृणादानेन व्याख्यातम्' (अधि० ३. अध्या० १६) इति।**

**(३) वक्तव्येन साधनं प्रदेशः—'सामदानभेददण्डैर्वा यथापत्सु व्याख्यास्यामः' (अधि० ७. अध्या० १४) इति।**

**(४) दृष्टेनादृष्टस्य साधनमुपमानम्—'निवृत्तपरिहारान् पितेवानुगृह्णीयात्' (अधि० २. अध्या० १) इति।**

**(५) यदनुक्तमर्थादापद्यते सार्थापत्तिः—'लोकयात्राविद् राजानमात्मद्रव्यप्रकृतिसम्पन्नं प्रियहितद्वारेणाश्रयेत' (अधि० ५. अध्या० ४) नाप्रियहितद्वारेणाश्रयेतेत्यर्थादापन्नं भवतीति।**

---

( १ ) 'अमुक व्यक्ति ने इस विषय में ऐसा कहा है' इस प्रकार दूसरे के मत को प्रकट करना **अपदेश** कहलाता है; जैसे : मनु के अनुयायी विद्वानों का कहना है कि मंत्रि-परिषद् में बारह अमात्य होने चाहिए। बृहस्पति के अनुयायियों के मत से उनकी संख्या सोलह, उशना के अनुयायियों के मत से बीस और कौटिल्य के मत से सामर्थ्य के अनुसार अमात्यों की संख्या होनी चाहिए।

( २ ) कही हुई बात से, न कही हुई बात को सिद्ध कर देना **अतिदेश** कहलाता है जैसे; दी गई वस्तुओं को न लौटाने पर ऋणदान-विषयक नियमों को समझ लेना चाहिए।

( ३ ) आगे कही जाने वाली बात से न कही गई बात को सिद्ध कर देना **प्रदेश** कहलाता है; जैसे : साम, दान, भेद और दण्ड के द्वारा वैसा ही करना चाहिए, जैसे **आपत्प्रकरण** अध्याय में आगे कहा जायेगा।

( ४ ) देखी हुई वस्तु से न देखी हुई वस्तु को सिद्ध करना **उपमान** कहलाता है; जैसे : यदि पुरवासी उस परिहार द्रव्य को चुकता कर दें तो राजा को पिता के समान उन पर अनुग्रह करना चाहिए।

( ५ ) न कही हुई जो बात अर्थ से ही प्राप्त हो जाय उसे **अर्थापत्ति** कहते हैं, जैसे लोक व्यवहार में पटु व्यक्तियों को चाहिए कि वे आत्मद्रव्य-प्रकृतिसंपन्न राजा का आश्रय उसके प्रिय और हितैषी लोगों के द्वारा प्राप्त करने की चेष्टा करें। अर्थात् 'अप्रिय और अहितकर लोगों के द्वारा आश्रय न लें', यह आशय उक्त सूत्र में अर्थापत्ति के द्वारा ही जाना जा सकता है।

**(१) उभयतो हेतुमानर्थः संशयः—क्षीणलुब्धप्रकृतिमपचरितप्रकृतिं वा' (अधि० ७. अध्या० ५) इति ।**

**(२) प्रकरणान्तरेण समानोऽर्थः प्रसङ्गः—'कृषिकर्मप्रदिष्टायां भूमाविति समानं पूर्वेण' ( अधि १. अध्या० ११ ) इति ।**

**(३) प्रतिलोमेन साधनं विपर्ययः—'विपरीतमतुष्टस्य' ( अधि० १. अ० १६ ) इति ।**

**(४) येन वाक्यं समाप्यते, स वाक्यशेषः—'छिन्नपक्षस्येव राज्ञश्चेष्टानाशश्चेति' (अधि० ८. अध्या० १) । तत्र शकुनेरिति वाक्यशेषः ।**

**(५) परवाक्यमप्रतिषिद्धमनुमतम्—'पक्षावुरस्यं प्रतिग्रह इत्यौशनसो व्यूहविभागः' (अधि० १०. अध्या० ६) इति ।**

**(६) अतिशयवर्णना व्याख्यानम्—'विशेषतश्च सङ्घानां सङ्घधर्मिणां च राजकुलानां द्यूतनिमित्तो भेदः तन्निमित्तो विनाश इत्यसत्प्रग्रहः पापिष्ठतमो व्यसनानां तन्त्रदौर्बल्यात्' (अधि० ८. अध्या० ३) इति ।**

**(७) गुणतः शब्दनिष्पत्तिर्निर्वचनम्—'व्यस्यत्येनं श्रेयस इति व्यसनम्' (अधि० ८. अध्या० १) इति ।**

---

( १ ) एक ही बात जब दोनों विरोधी पक्षों की ओर से समान लगे तो उसे **संशय** कहते हैं; जैसे : क्षीण-क्षुब्ध-प्रकृति और अपचरित प्रकृति, इन दोनों राजाओं में से पहिले किस राजा पर आक्रमण करना चाहिए ?

( २ ) दूसरे प्रकरण के साथ अर्थ की समानता होना **प्रसंग** कहलाता है, जैसे : खेती के लिए निर्दिष्ट भूमि के संबंध में पूर्ववत् नियम समझना चाहिए ।

( ३ ) विपरीत बातों से किसी वस्तु का निर्देश करना **विपर्यय** कहलाता है, जैसे : इससे विपरीत भाव होने पर उसको अपने से प्रसन्न समझे ।

( ४ ) जिससे वाक्य की समाप्ति हो उसे **वाक्यशेष** कहते हैं; जैसे : पंख-कटे पक्षी की तरह राजा की समस्त चेष्टायें नष्ट हो जाती हैं । यहाँ पर 'पक्षी' ( शकुनि ) पद वाक्यशेष है ।

( ५ ) प्रतिषेध न किया हुआ दूसरे का वाक्य **अनुमत** कहलाता है, जैसे : पक्ष, उरस्य और प्रतिग्रह इस प्रकार का व्यूह-विभाग उशना आचार्य ने किया है ।

( ६ ) सिद्ध अर्थ का अनेक युक्तियों के द्वारा समर्थन करना **व्याख्यान** कहलाता है, जैसे : और विशेषतः एकमत होकर एक साथ रहने वाले राजकुलों का द्यूत के कारण मतभेद हो जाने से दोनों का नाश हो जाता है । दुर्जन लोगों का साथ या सत्कार तथा मद्यपान अन्य सभी व्यसनों से बड़ा व्यसन है; क्योंकि उससे राजा का सारा शासनतन्त्र दुर्बल हो जाता है ।

( ७ ) अर्थान्वयपूर्वक किसी शब्द की सिद्धि करना **निर्वचन** कहलाता है; जैसे :

(१) दृष्टान्तो दृष्टान्तयुक्तो निदर्शनम्—'विगृहीतो हि ज्यायसा हस्तिना पादयुद्धमिवाभ्युपैति' (अधि० ७. अध्या० ३) इति।

(२) अभिप्लुतव्यपकर्षणमपवर्गः—'नित्यमासन्नमरिबलं वासयेदन्यत्राभ्यन्तरकोपशङ्कायाः' ( अधि० ९. अध्या० २) इति।

(३) परैरसंमितः शब्दः स्वसंज्ञा—प्रथमा प्रकृतिस्तस्य भूम्यनन्तरा द्वितीया भूम्येकान्तरा तृतीया (अधि० ६. अध्या० २) इति।

(४) प्रतिषेद्धव्यं वाक्यं पूर्वपक्षः—'स्वाम्यमात्यव्यसनयोरमात्यव्यसनं गरीयः' (अधि० ८. अध्या० १) इति।

(५) तस्य निर्णयनवाक्यमुत्तरपक्षः—'तदायत्तत्वात्, तत्कूटस्थानीयो हि स्वामी' (अधि० ८. अध्या० १)।

(६) सर्वत्रायत्तमेकान्तः—'तस्मादुत्थानमात्मनः कुर्वीत' (अधि० १. अध्या १९) इति।

---

व्यसन शब्द का अर्थ ही यह है कि जो कल्याण मार्ग से भ्रष्ट कर दे—व्यस्यति एनं श्रेयसः इति व्यसनम्।

( १ ) दृष्टांत देकर किसी बात का स्पष्टीकरण करना **निदर्शन** कहलाता है। जैसे : किसी शक्तिशाली से लड़ना ऐसा ही है, जैसे हाथी पर चढे हुए व्यक्ति से जमीन पर खड़े होकर युद्ध करना।

( २ ) किसी नियम का सामान्यतया व्यापक निरूपण करते हुए उसके विषय को संकुचित बना देना **अपवर्ग** कहलाता है, जैसे अपने राज्य के सीमांत प्रदेश में शत्रु-सेना को रहने दिया जाय, किन्तु यदि राज्य-क्रांति होने की संभावना हो तो उसको कदापि न टिकने दिया जाय।

( ३ ) दूसरों के द्वारा संकेत न किये गये शब्द-प्रयोग को **स्वसंज्ञा** कहते हैं, जैसे : विजिगीषु के राष्ट्र के समीप जो राष्ट्र हो उसे **प्रथमा प्रकृति**, उसके बाद जो राष्ट्र हो उसे **द्वितीया प्रकृति** और उसके बाद भी जो राष्ट्र हो उसे **तृतीया प्रकृति** कहते हैं।

( ४ ) प्रतिषेध किया जाने वाला वाक्य **पूर्वपक्ष** कहलाता है, जैसे : स्वामी और अमात्य-संबंधी विपत्ति में अमात्य संबंधी विपत्ति अधिक अनिष्टकर है।

( ५ ) पूर्वपक्ष का निषेध करने वाला वाक्य **उत्तरपक्ष** कहलाता है, जैसे : अमात्य आदि प्रकृतियों का उत्थान-पतन राजा पर ही निर्भर होता है, क्योंकि सातों प्रकार की प्रकृतियों में राजा ही प्रधान ( कूटस्थानीय ) होता है।

( ६ ) जो अर्थ किसी भी देश-काल में न छोड़ा जा सके उसको **एकांत** कहते हैं, जैसे राजा को चाहिए कि वह सदा अपने को उन्नतिशील बनाने का यत्न करता रहे।

**(१) पश्चादेवं विहितमित्यनागतावेक्षणम्–'तुलाप्रतिमानं पौतवाध्यक्षे वक्ष्यामः' (अधि० २. अध्या० १३) इति।**

**(२) पुरस्तादेवं विहितमित्यतिक्रान्तावेक्षणम्–'अमात्यसम्पदुक्ता पुरस्तात्' (अधि० ६. अध्या० १) इति।**

**(३) एवं नान्यथेति नियोगः–'तस्माद् धर्ममर्थं चास्योपदिशेन्नाधर्ममनर्थं च' (अधि० १. अध्या० १७) इति।**

**(४) अनेन वानेन वेति विकल्पः–'दुहितरो वा धर्मिष्ठेषु विवाहेषु जाताः' (अधि० ३. अध्या० ५) इति।**

**(५) अनेन चानेन चेति समुच्चयः–'स्वसञ्जातः पितृबन्धूनां च दायादः' (अधि० ३. अध्या० ७) इति।**

**(६) अनुक्तकरणमूह्यम्–'यथावद् दाता प्रतिग्रहीता च नोपहतौ स्यातां, तथानुशयं कुशलाः कल्पयेयुः' (अधि० ३. अध्या० १६) इति।**

**(७) एवं शास्त्रमिदं युक्तमेताभिस्तन्त्रयुक्तिभिः।**
**अवाप्तौ पालने चोक्तं लोकस्यास्य परस्य च॥**

---

( १ ) 'पीछे से इस प्रकार का विधान किया जायेगा', इस प्रकार कहना **अनागतावेक्षण** कहलाता है; जैसे तौलने के तरीकों का निरूपण आगे **पौतवाध्यक्ष** प्रकरण में किया जायेगा।

( २ ) 'इस का निरूपण पहिले किया जा चुका है' ऐसा कहना **अतिक्रांतावेक्षण** कहलाता है; जैसे : अमात्यों के गुणों का निरूपण पहिले किया जा चुका है।

( ३ ) 'अमुक कार्य इस ढंग से करना चाहिये, अन्यथा नहीं' ऐसा कहना **नियोग** कहलाता है; जैसे : इसलिये सरल बुद्धि बालकों को सदा धर्म और अर्थ का ही उपदेश करना चाहिए; अधर्म और अनर्थ का कदापि नहीं।

( ४ ) 'अमुक कार्य इस तरह से किया जाना चाहिए अथवा इस तरह से?,' ऐसा कहना **विकल्प** कहलाता है; जैसे : उस सम्पत्ति के अधिकारी उसके पुत्र हों अथवा वे लड़कियाँ, जो धार्मिक विवाहों से पैदा हुई हैं?

( ५ ) 'अमुक कार्य इस तरह भी हो सकता है, और इस तरह भी' ऐसा कहना **समुच्चय** कहलाता है; जैसे : पिता या उसके बान्धवों से उत्पन्न किया हुआ बालक उन दोनों की सम्पत्ति का दायभागी होता है।

( ६ ) न कही हुई बात को कर लेना **ऊह्य** कहलाता है; जैसे : निपुण धर्मस्थ व्यक्तियों को उचित है कि वे अनुरूप ( दान ) का इस प्रकार निर्णय करें, जिससे देने और लेने वाले, दोनों को कोई हानि न पहुँचे।

( ७ ) इस प्रकार इस शास्त्र में बत्तीस तन्त्र–युक्तियों का निरूपण किया गया

**(१) धर्ममर्थं च कामं च प्रवर्तयति पाति च।**
**अधर्मानर्थं विद्वेषानिदं शास्त्रं निहन्ति च॥**
**(२) येन शास्त्रं च शस्त्रं च नन्दराजगता च भूः।**
**अमर्षेणोद्धृतान्याशु तेन शास्त्रमिदं कृतम्॥**
**(३) दृष्ट्वा विप्रतिपत्तिं बहुधा शास्त्रेषु भाष्यकाराणाम्।**
**स्वयमेव विष्णुगुप्तश्चकार सूत्रं च भाष्यं च॥**

इति कौटिलीये अर्थशास्त्रे तन्त्रयुक्तौ पञ्चदशाधिकरणे तन्त्रयुक्तिर्नाम
प्रथमोऽध्यायः; आदितश्चतुःशदुत्तरशततमः।

—: ० :—

## एतावता कौटिलीयस्यार्थशास्त्रस्य तन्त्रयुक्तिः पञ्चदशमधिकरणं समाप्तम्

—: ० :—

---

है। इस लोक और परलोक की प्राप्ति तथा रक्षा करने में यही शास्त्र सहायक बताया गया है।

(१) यही अर्थशास्त्र धर्म, अर्थ तथा काम में प्रवृत्त करता है, उनकी रक्षा करता है और अर्थ के विरोधी अधर्मों को नष्ट करता है।

(२) जिसने शास्त्र, शस्त्र और नन्दराजा के अधीनस्थ भूमि का शीघ्र उद्धार अपने क्रोध किया है, उसी विष्णुगुप्त कौटिल्य ने इस अर्थशास्त्र-विषयक ग्रन्थ की रचना की है।

(३) प्राचीन अर्थ-शास्त्रों में बहुधा भाष्यकारों के मतभेदों को देखकर स्वयं ही विष्णुगुप्त कौटिल्य ने इस अर्थशास्त्र के सूत्रों और उनके भाष्य का निर्माण किया है।

तन्त्रयुक्ति नामक पन्द्रहवें अधिकरण में तन्त्रयुक्ति नामक
पहला अध्याय समाप्त

—: ० :—

# चाणक्य-प्रणीत सूत्र

# चाणक्य-प्रणीत सूत्र

सुखस्य मूलं धर्मः ॥ १ ॥ धर्मस्य मूलमर्थः ॥ २ ॥ अर्थस्य मूलं राज्यम् ॥ ३ ॥ राज्यमूलमिन्द्रियजयः ॥ ४ ॥ इन्द्रियजयस्य मूलं विनयः ॥ ५ ॥ विनयस्य मूलं वृद्धोपसेवा ॥ ६ ॥ वृद्धसेवाया विज्ञानम् ॥ ७ ॥ विज्ञानेनात्मानं सम्पादयेत् ॥ ८ ॥ सम्पादितात्मा जितात्मा भवति ॥ ९ ॥ जितात्मा सर्वार्थैः संयुज्येत ॥ १० ॥ अर्थसम्पत्प्रकृतिसम्पदं करोति ॥११॥ प्रकृतिसम्पदा ह्यनायकमपि राज्यं नीयते ॥ १२ ॥ प्रकृतिकोपः सर्वकोपेभ्यो गरीयान् ॥ १३ ॥

अविनीतस्वामिलाभादस्वामिलाभः श्रेयान् ॥ १४ ॥ सम्पाद्यात्मानमन्विच्छेत् सहायवान् ॥ १५ ॥ नासहायस्य मन्त्रनिश्चयः ॥ १६ ॥ नैकं चक्रं परिभ्रमयति ॥ १७ ॥ सहायः समसुखदुःखः ॥ १८ ॥

मानी प्रतिमानिनमात्मनि द्वितीयं मन्त्रमुत्पादयेत् ॥ १९ ॥ अविनीतं स्नेहमात्रेण न मन्त्रे कुर्वीत ॥ २० ॥ श्रुतवन्तमुपधाशुद्धं मन्त्रिणं कुर्वीत ॥ २१ ॥ मन्त्रमूलाः सर्वारम्भाः ॥ २२ ॥ मन्त्ररक्षणे कार्यसिद्धिर्भवति

---

सुख का मूल धर्म है ॥ १ ॥ धर्म का मूल अर्थ है ॥ २ ॥ अर्थ का मूल राज्य है ॥ ३ ॥ राज्य का मूल इन्द्रियजय है ॥ ४ ॥ इन्द्रियजय का मूल विनय ( नम्रता ) है ॥ ५ ॥ विनय का मूल वृद्धों की सेवा है ॥ ६ ॥ वृद्धों की सेवा का मूल विज्ञान है ॥ ७ ॥ इसलिए मनुष्य को चाहिए कि वह अपने आप को विज्ञान से सम्पन्न बनाए ( आत्मोन्नति करे ) ॥ ८ ॥ जो पुरुष विज्ञान से सम्पन्न होता है वह स्वयं को भी जीत सकता है ॥ ९ ॥ अपने ऊपर काबू पाने वाला मनुष्य समस्त अर्थों से सम्पन्न होता है ॥ १० ॥ अर्थ-सम्पत्ति अमात्य आदि प्रकृति सम्पत्ति को देने वाली होती है ॥ ११ ॥ प्रकृति-सम्पत्ति, के द्वारा नेता-रहित राज्य का भी संचालन किया जा सकता है ॥ १२ ॥ अमात्य आदि का कोप सब कोपों में बड़ा होता है ॥ १३ ॥

अविनीत स्वामी के प्राप्त होने की अपेक्षा, स्वामी का न मिलना श्रेयस्कर है ॥ १४ ॥ अपने आपको सर्व-सम्पन्न बना लेने के बाद ही सहायकों की इच्छा करनी चाहिए ॥ १५ ॥ सहायकहीन व्यक्ति के विचार अनिश्चित होते हैं ॥ १६ ॥ एक पहिये से गाड़ी को नहीं चलाया जा सकता ॥ १७ ॥ सहायक वही है, जो अपने सुख-दुःख में सदा साथ रहे ॥ १८ ॥

मनस्वी राजा को चाहिए कि वह, अपने समान दूसरे मनस्वी व्यक्ति को ही अपना सलाहकार नियुक्त करे ॥ १९ ॥ विनयहीन व्यक्ति को, एकमात्र स्नेह के कारण, कभी भी सलाह के समय सम्मिलित नहीं करना चाहिए ॥ २० ॥ बहुश्रुत एवं सब तरह से परीक्षित व्यक्ति को ही मन्त्री नियुक्त करना चाहिए ॥ २१ ॥ समस्त

॥ २३ ॥ मन्त्रविस्रावी कार्यं नाशयति ॥ २४ ॥ प्रमादाद् द्विषतां वशमुपयास्यति ॥ २५ ॥ सर्वद्वारेभ्यो मन्त्रो रक्षितव्यः ॥ २६ ॥ मन्त्रसम्पदा राज्यं वर्धते ॥ २७ ॥ श्रेष्ठतमां मन्त्रगुप्तिमाहुः ॥ २८ ॥ कार्यान्धस्य प्रदीपो मन्त्रः ॥ २९ ॥ मन्त्रचक्षुषा परच्छिद्राण्यवलोकयन्ति ॥ ३० ॥

मन्त्रकाले न मत्सरः कर्तव्यः ॥ ३१ ॥ त्रयाणामेकवाक्ये सम्प्रत्ययः ॥ ३२ ॥ कार्याकार्यतत्त्वार्थदर्शिनो मन्त्रिणः ॥ ३३ ॥ षट्कर्णाद् भिद्यते मन्त्रः ॥ ३४ ॥

आपत्सु स्नेहसंयुक्तं मित्रम् ॥ ३५ ॥ मित्रसंग्रहणे बलं संपद्यते ॥३६॥

बलवानलब्धलाभे प्रयतते ॥ ३७ ॥ अलब्धलाभो नालसस्य ॥ ३८ ॥ अलसस्य लब्धमपि रक्षितुं न शक्यते ॥ ३९ ॥ न चालसस्य रक्षितं विवर्धते ॥ ४० ॥ न भृत्यान् प्रेषयति ॥ ४१ ॥

अलब्धलाभादिचतुष्टयं राज्यतन्त्रम् ॥ ४२ ॥ राज्यतन्त्रायत्तं नीतिशास्त्रम् ॥ ४३ ॥ राज्यतन्त्रेष्वायत्तौ तन्त्रावापौ ॥ ४४ ॥ तन्त्रं स्वविषयकृत्येष्वायत्तम् ॥ ४५ ॥ आवापो मण्डलनिविष्टः ॥ ४६ ॥ सन्धिविग्रह-

---

कार्य-व्यापार मन्त्र पर ही निर्भर है ॥ २२ ॥ मन्त्र की रक्षा करने से ही कार्य की सिद्धि होती है ॥ २३ ॥ मन्त्र का भेद खोल देने वाला व्यक्ति कार्य को नष्ट कर देता है ॥ २४ ॥ प्रमाद करने से ( व्यक्ति ) शत्रु के वश में चला जाता है ॥ २५ ॥ इसलिए सभी प्रकार से मन्त्र की रक्षा करनी चाहिए ॥ २६ ॥ मन्त्र की सुरक्षा से राज्य की संवृद्धि होती है ॥ २७ ॥ मन्त्र को गुप्त रखना बड़े महत्त्व की बात है ॥ २८ ॥ कर्तव्याकर्तव्य के ज्ञान से रहित राजा के लिए मन्त्र दीपक के तुल्य है ॥ २९ ॥ मन्त्ररूपी आँखों से राजा अपने शत्रु के दोषों को देख लेता है ॥ ३० ॥

मन्त्र के समय ईर्ष्या नहीं करनी चाहिए ॥ ३१ ॥ तीन व्यक्तियों की एक राय होने पर किसी विषय का निश्चय किया जा सकता है ॥ ३२ ॥ कार्य और अकार्य की वास्तविकता को देखने वाले मन्त्री होते हैं ॥ ३३ ॥ छह कानों में जाते ही मन्त्र का भेद प्रकट हो जाता है ॥ ३४ ॥

जो व्यक्ति आपत्ति के समय, स्नेह से अपने साथ बना रहे, वही मित्र है ॥ ३५ ॥ अधिक मित्रों के बना लेने से अपना बल बढ़ जाता है ॥ ३६ ॥

बलवान् व्यक्ति अप्राप्त वस्तु की प्राप्ति के लिए यत्न करता है ॥ ३७ ॥ आलसी व्यक्ति अप्राप्त वस्तु को प्राप्त नहीं कर सकता है ॥ ३८ ॥ यदि कदाचित् उसको प्राप्त हो जाये तो वह उसकी रक्षा नहीं कर पाता ॥ ३९ ॥ उसके द्वारा रक्षित वस्तु बढ़ती नहीं है ॥ ४० ॥ न वह अपने भृत्यवर्ग को ही वितरित करता है ॥ ४१ ॥

अप्राप्त की प्राप्त, प्राप्ति का संरक्षण, संरक्षित का संवर्द्धन और संवर्द्धित का वितरण—ये चार ही राज्य के सर्वस्व हैं ॥ ४२ ॥ राज्यतन्त्र ( राजस्थिति ) का आधार नीतिशास्त्र है ॥ ४३ ॥ तन्त्र और आवाप राज्यतन्त्र के अधीन होते हैं

**योनिर्मण्डलः ॥ ४७ ॥ नीतिशास्त्रानुगो राजा ॥४८॥ अनन्तरप्रकृतिः शत्रुः ॥ ४९ ॥ एकान्तरितं मित्रमिष्यते ॥ ५० ॥ हेतुतः शत्रुमित्रे भविष्यतः ॥ ५१ ॥ हीयमानः सन्धि कुर्वीत ॥ ५२ ॥ तेजो हि सन्धानहेतुस्तदर्थानाम् ॥ ५३ ॥ नातप्तलोहो लोहेन संधीयते ॥ ५४ ॥**

**बलवान् हीनेन विगृह्णीयात् ॥ ५५ ॥ न ज्यायसा समेन वा ॥ ५६ ॥ गजपादयुद्धमिव बलवद्विग्रहः ॥ ५७ ॥ आमपात्रमामेन सह विनश्यति ॥ ५८ ॥ अरिप्रयत्नमभिसमीक्षेत ॥ ५९ ॥ सन्धायैकतो वा ॥ ६० ॥**

**अमित्रविरोधादात्मरक्षामावसेत् ॥ ६१ ॥**

**शक्तिहीनो बलवन्तमाश्रयेत् ॥ ६२ ॥ दुर्बलाश्रयो दुःखमावहति ॥६३॥ अग्निवद्राजानमाश्रयेत् ॥ ६४ ॥ राज्ञः प्रतिकूलं नाचरेत् ॥ ६५ ॥ उद्धत-वेषधरो न भवेत् ॥ ६६ ॥ न देवचरितं चरेत् ॥ ६७ ॥**

---

॥ ४४ ॥ अपने देश में सामदामादि उपायों का प्रयोग ही 'आयत्त' कहलाता है ॥ ४५ ॥ बाहरी राज्यमण्डल में प्रयुक्त सामदामादि उपायों को ही 'आवाप' कहते हैं ॥ ४६ ॥ सन्धि और विग्रह का निर्णय मण्डल पर निर्भर होता है ॥ ४७ ॥ राजा उसको कहते हैं, जो नीति शास्त्र के अनुसार राज्य का संचालन करे ॥ ४८ ॥ अपने देश से जुड़ी हुई राज्य-सीमा का राजा अपना शत्रु है ॥ ४९ ॥ एक राज्य के बाद अगला राजा अपना मित्र है ॥ ५० ॥ किसी कारणवश ही कोई राजा शत्रु या मित्र बनता है ॥ ५१ ॥ कमजोर को सन्धि कर लेनी चाहिए ॥ ५२ ॥ तेज से ही कार्य-सिद्धि होती है ॥ ५३ ॥ ठंडा लोहा गरम लोहे से नहीं जुड़ता है ॥ ५४ ॥

बलवान् राजा को चाहिए कि वह दुर्बल राजा से झगड़ा कर ले ॥ ५५ ॥ अपने से बड़े या बराबर वाले के साथ झगड़ा न करे ॥ ५६ ॥ बलवान् के साथ किया गया विग्रह वैसा ही होता है, जैसे गज-सैन्य से पदाति-सैन्य का मुकाबला ॥ ५७ ॥ कच्चा वर्तन, कच्चे वर्तन के साथ भिड़कर टूट जाता है। इसलिए बराबर वाले के साथ भी लड़ाई नहीं करनी चाहिए ॥ ५८ ॥ शत्रु के प्रयत्न का सदा भलीभाँति निरीक्षण करते रहना चाहिए ॥ ५९ ॥ अनेक शत्रु होने पर एक शत्रु से संधि कर लेनी चाहिए ॥ ६० ॥

शत्रु के विरोध को भली प्रकार तजबीजना चाहिए; या तो अनेक शत्रु होने पर, एक शत्रु से सन्धि कर लेनी चाहिए। शत्रु के द्वारा किये जाने वाले विरोध से अपनी रक्षा करनी चाहिए ॥ ६१ ॥

शक्तिहीन राजा को चाहिये कि वह बलवान् का आश्रय ले ले ॥ ६२ ॥ दुर्बल का आश्रय लेने वाला राजा सदा दुःख उठाता है ॥ ६३ ॥ आश्रयी राजा के समीप उसी प्रकार रहना चाहिए, जैसे आग के समीप रहा जाता है ॥ ६४ ॥ राजा के प्रतिकूल कभी भी आचरण न करे ॥ ६५ ॥ उद्धत वेश धारण न करे ॥ ६६ ॥ देवताओं के चरित्र की नकल न करे ॥ ६७ ॥

द्वयोरपीर्ष्यतोर्द्वैधीभावं कुर्वीत ॥ ६८ ॥

न व्यसनपरस्य कार्यावाप्तिः ॥ ६९ ॥ इन्द्रियवशवर्ती चतुरङ्गवानपि विनश्यति ॥ ७० ॥ नास्ति कार्यं द्यूतप्रवृत्तस्य ॥७१॥ मृगयापरस्य धर्मार्थौ विनश्यतः ॥ ७२ ॥ अर्थेषणा न व्यसनेषु गण्यते ॥ ७३ ॥ न कामासक्तस्य कार्यानुष्ठानम् ॥ ७४ ॥ अग्निदाहादपि विशिष्टं वाक्पारुष्यम् ॥ ७५ ॥ दण्डपारुष्यात् सर्वजनद्वेष्यो भवति ॥ ७६ ॥ अर्थतोषिणं श्रीः परित्यजति ॥ ७७ ॥

अमित्रो दण्डनीत्यामायत्तः ॥ ७८ ॥ दण्डनीतिमधितिष्ठन् प्रजाः संरक्षति ॥ ७९ ॥ दण्डः सम्पदा योजयति ॥ ८० ॥ दण्डाभावे मन्त्रिवर्गाभावः ॥ ८१ ॥ न दण्डादकार्याणि कुर्वन्ति ॥८२॥ दण्डनीत्यामायत्तमात्मरक्षणम् ॥ ८३ ॥ आत्मनि रक्षिते सर्वं रक्षितं भवति ॥ ८४ ॥ आत्मायत्तौ वृद्धिविनाशौ ॥ ८५ ॥ दण्डो हि विज्ञाने प्रणीयते ॥ ८६ ॥ दुर्बलोऽपि राजा नावमन्तव्यः ॥ ८७ ॥ नास्त्यग्नेर्दौर्बल्यम् ॥ ८८ ॥

दण्डे प्रतीयते वृत्तिः ॥ ८९ ॥ वृत्तिमूलमर्थलाभः ॥ ९० ॥ अर्थमूलौ

---

अपने से वैर रखने वाले दो राजाओं के बीच फूट डाल दे ॥ ६८ ॥

व्यसनों के चंगुल में पड़े हुए राजा की कभी भी कार्यसिद्धि नहीं होती ॥ ६९ ॥ इन्द्रयों के वश में पड़ा हुआ राजा, चतुरंग सेना के होने पर भी, विनष्ट हो जाता है ॥ ७० ॥ जुये में फँसे हुए राजा की कार्यसिद्धि नहीं होती ॥ ७१ ॥ शिकार में व्यसन रखने वाले राजा के धर्म और अर्थ दोनों नष्ट हो जाते है ॥ ७२ ॥ अर्थ की अभिलाषा को व्यसन में नहीं गिना जाता ॥ ७३ ॥ कामासक्त राजा का कोई कार्य नहीं बन पाता ॥ ७४ ॥ वाणी की कठोरता अग्निदाह से भी बढ़ कर होती है ॥ ७५ ॥ कठोर दण्ड वाला राजा समस्त प्रजा का शत्रु हो जाता है ॥ ७६ ॥ अर्थतोषी राजा को लक्ष्मी छोड़ देती है ॥ ७७ ॥

शत्रु को वश में करना दण्डनीति पर निर्भर है ॥ ७८ ॥ दण्डनीति का आश्रय लेता हुआ राजा समस्त प्रजा की रक्षा करता है ॥ ७९ ॥ दण्ड से सम्पत्ति बढ़ती है ॥ ८० ॥ दण्डशक्ति के अभाव में मन्त्रिसमूह विच्छिन्न हो जाता है ॥८१॥ दण्डशक्ति के कारण वे लोग न करने योग्य कार्यों को नहीं करते हैं ॥ ८२ ॥ अपनी सुरक्षा भी दण्डनीति पर निर्भर है ॥ ८३ ॥ अपनी सुरक्षा किये जाने के बाद ही दूसरे की रक्षा की जा सकती है ॥ ८४ ॥ उत्थान और विनाश, दोनों अपने ही हाथों में हैं ॥ ८५ ॥ भली-भाँति सोच-विचार करके दण्ड का प्रयोग किया जाना चाहिए ॥ ८६ ॥ किसी राजा को दुर्बल समझ कर उसकी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए ॥ ८७ ॥ अग्नि को कौन दुर्बल कह सकता है ॥ ८८ ॥

दण्ड के आधार पर ही व्यवहार का ज्ञान होता है ॥ ८९ ॥ अर्थ की प्राप्ति

**धर्मकामौ ।। ९१ ।। अर्थमूलं कार्यम् ।। ९२ ।। यदल्पप्रयत्नात् कार्यसिद्धिर्भवति ।। ९३ ।। उपायपूर्वं न दुष्करं स्यात् ।। ९४ ।। अनुपायपूर्वं कार्यं कृतमपि नश्यति ।। ९५ ।। कार्यार्थिनामुपाय एव सहायः ।। ९६ ।। कार्यं पुरुषकारेण लक्ष्यं सम्पद्यते ।। ९७ ।। पुरुषकारमनुवर्तते दैवम् ।। ९८ ।। दैवं विनाऽतिप्रयत्नं करोति यत् तद् विफलम् ।। ९९ ।। असमाहितस्य वृत्तिर्न विद्यते ।। १०० ।।**

**पूर्वं निश्चित्य पश्चात् कार्यमारभेत ।। १०१ ।। कार्यान्तरे दीर्घसूत्रता न कर्तव्या ।। १०२ ।। न चलचित्तस्य कार्यावाप्तिः ।। १०३ ।। हस्तगतावमाननात् कार्यव्यतिक्रमो भवति ।। १०४ ।। दोषवर्जितानि कार्याणि दुर्लभानि ।। १०५ ।। दुरनुबन्धं कार्यं नारभेत ।। १०६ ।।**

**कालवित् कार्यं साधयेत् ।। १०७ ।। कालातिक्रमात् काल एव फलं पिबति ।। १०८ ।। क्षणं प्रति कालविक्षेपं न कुर्यात् सर्वकृत्येषु ।। १०९ ।। देशफलविभागौ ज्ञात्वा कार्यमारभेत ।। ११० ।। दैवहीनं कार्यं सुसाधमपि दुःसाधं भवति ।। १११ ।।**

**नीतिज्ञो देशकालौ परीक्षेत ।। ११२ ।। परीक्ष्यकारिणि श्रीश्चिरं**

---

व्यवहारमूलक है ।। ९० ।। धर्म और काम अर्थमूलक होते हैं ।। ९१ ।। कार्य ही अर्थ का मूल है ।। ९२ ।। इसी से थोड़ा भी प्रयत्न करने पर कार्य की सिद्धि हो जाती है ।। ९३ ।। उपाय से किया जाने वाला कोई भी कार्य कठिन नहीं होता ।।९४।। जो कार्य उपाय से नहीं किया जाता वह किया कराया भी नष्ट हो जाता है ।। ९५ ।। कार्य-सिद्धि चाहने वाले लोगों के लिए उपाय ही परम सहायक है ।।९६।। पुरुषार्थ से कार्य को लक्ष्य बनाया जा सकता है ।। ९७ ।। भाग्य भी पुरुषार्थ का अनुगमन करता है ।। ९८ ।। भाग्य के बिना, बड़े प्रयत्न से किया गया कार्य भी विफल हो जाता है ।। ९९ ।। असावधान व्यक्ति में व्यवहारकुशलता नहीं होती ।। १०० ।।

निश्चय करने के बाद ही कार्य को आरम्भ करे ।। १०१ ।। एक के बाद दूसरे कार्य को करने में विलम्ब नहीं करना चाहिए ।। १०२ ।। चंचल चित्त वाले व्यक्ति की कार्यसिद्धि नहीं होती ।। १०३ ।। हाथ में आयी हुई वस्तु का तिरस्कार कर देने पर काम बिगड़ जाता है ।।१०४।। विरले ही ऐसे कार्य हैं, जो दोषरहित हों ।।१०५।। दुःखपूर्ण तथा कष्टसाध्य कार्यों को आरम्भ ही नहीं करना चाहिए ।। १०६ ।।

समय की गति-विधि जानने वाला व्यक्ति कार्य को सिद्ध करे ।। १०७ ।। कार्य की अवधि बीत जाने पर काल ही उस कार्य के फल को पी जाता है ।। १०८ ।। अतः किसी भी कार्य में क्षण-भर का विलम्ब न करे ।। १०९ ।। देश और फल का विवेचन करके ही कार्य का आरंभ करे ।। ११० ।। दैव के विपरीत होने पर सरल कार्य भी कठिन हो जाता है ।। १११ ।।

नीतिज्ञ व्यक्ति को चाहिये कि वह देश-काल का भलीभाँति विचार कर

**तिष्ठति ॥ ११३ ॥ सर्वाश्च सम्पदः सर्वोपायेन परिग्रहेत् ॥ ११४ ॥ भाग्यवन्तमपरीक्ष्यकारिणं श्रीः परित्यजति ॥ ११५ ॥ ज्ञानानुमानैश्च परीक्षा कर्तव्या ॥ ११६ ॥**

**यो यस्मिन् कर्मणि कुशलस्तं तस्मिन्नेव योजयेत् ॥ ११७ ॥ दुःसाधमपि सुसाधं करोत्युपायज्ञः ॥ ११८ ॥ अज्ञानिना कृतमपि न बहु मन्तव्यम् ॥ ११९ ॥ यादृच्छिकत्वात् कृमिरपि रूपान्तराणि करोति ॥१२०॥ सिद्धस्यैव कार्यस्य प्रकाशनं कर्तव्यम् ॥ १२१ ॥**

**ज्ञानवतामपि दैवमानुषदोषात् कार्याणि दुष्यन्ति ॥ १२२ ॥ दैवं शान्तिकर्मणा प्रतिषेद्धव्यम् ॥ १२३ ॥ मानुषीं कार्यविपत्तिं कौशलेन विनिवारयेत् ॥ १२४ ॥ कार्यविपत्तौ दोषान् वर्णयन्ति बालिशाः ॥ १२५ ॥**

**कार्यार्थिना दाक्षिण्यं न कर्तव्यम् ॥ १२६ ॥ क्षीरार्थी वत्सो मातुरूधः प्रतिहन्ति ॥ १२७ ॥ अप्रयत्नात् कार्यविपत्तिर्भवेत् ॥ १२८ ॥ न दैवप्रमाणानां कार्यसिद्धिः ॥ १२९ ॥ कार्यबाह्यो न पोषयत्याश्रितान् ॥१३०॥ यः कार्यं न पश्यति सोऽन्धः ॥ १३१ ॥ प्रत्यक्षपरोक्षानुमानैः कार्याणि परीक्षेत ॥ १३२ ॥ अपरीक्ष्यकारिणं श्रीः परित्यजति ॥ १३३ ॥ परीक्ष्य**

---

ले ॥ ११२ ॥ विचारशील व्यक्ति के पास लक्ष्मी चिरकाल तक बनी रहती है ॥११३॥ सामदामादि सब उपायों के द्वारा सभी प्रकार की सम्पत्ति का संचय करे ॥ ११४ ॥ भाग्यशाली होने पर भी अविचारशील व्यक्ति को लक्ष्मी छोड़ देती है ॥ ११५ ॥ प्रत्यक्ष और अनुमान के द्वारा प्रत्येक वस्तु की परीक्षा करनी चाहिए ॥ ११६ ॥

जो जिस कार्य को करने में निपुण हो उसको उसी कार्य में नियुक्त करना चाहिए ॥ ११७ ॥ उपायों को जानने वाला व्यक्ति कठिन कार्य को भी सहज बना देता है ॥ ११८ ॥ अज्ञानी व्यक्ति के द्वारा किये गये कार्य को अधिक महत्त्व नहीं देना चाहिए ॥११९॥ कभी-कभी एक साधारण कीड़ा भी रूप बदल लेता है ॥१२०॥ जो कार्य संपन्न हो गया हो उसको ही प्रमाणित किया जाना चाहिए ॥ १२१ ॥

विज्ञ पुरुषों के भी कार्य दैवदोष तथा मानुषदोषों से दूषित ( असफल ) हो जाते हैं ॥१२२॥ शांति-कर्मों के अनुष्ठान द्वारा दैव का प्रतीकार करना चाहिए ॥१२३॥ मानुष-विपत्तियों का निवारण अपने कौशल से करना चाहिए ॥ १२४ ॥ किसी कार्य में विपत्ति के आ जाने पर मूर्ख व्यक्ति उसमें दोष दिखाते हैं ॥ १२५ ॥

कार्यसिद्धि के आकांक्षी व्यक्ति को चाहिए कि वह भोला भाला न बना रहे ॥ १२६ ॥ बछड़ा भी दूध के लिए माता के अयनों ( दूध ) पर आघात करता है ॥ १२७ ॥ प्रयत्न न करने पर निश्चित ही कार्यों में विपत्ति आ जाती है ॥ १२८ ॥ दैव को प्रमाण मानने वाले की कभी भी कार्यसिद्धि नहीं होती ॥ १२९ ॥ कार्य से पृथक् रहने वाला व्यक्ति अपने आश्रितों का पोषण नहीं कर सकता ॥ १३० ॥ जो जो अपने कार्यों को नहीं देखता वह अंधा है ॥ १३१ ॥ प्रत्यक्ष, परोक्ष और अनुमान

तार्यां विपत्तिः ॥ १३४ ॥ स्वशक्तिं ज्ञात्वा कार्यमारभेत ॥ १३५ ॥ स्वजनं तर्पयित्वा यः शेषभोजी सोऽमृतभोजी ॥ १३६ ॥ सर्वानुष्ठानादायमुखानि वर्धन्ते ॥ १३७ ॥

नास्ति भीरोः कार्यचिन्ता ॥ १३८ ॥

स्वामिनः शीलं ज्ञात्वा कार्यार्थी कार्यं साधयेत् ॥१३९॥ धेनोः शीलज्ञः क्षीरं भुङ्क्ते ॥ १४० ॥

क्षुद्रे गुह्यप्रकाशनमात्मवान् न कुर्यात् ॥ १४१ ॥ आश्रितैरप्यवमन्यते मृदुस्वभावः ॥ १४२ ॥ तीक्ष्णदण्डः सर्वैरुद्वेजनीयो भवति ॥ १४३ ॥ यथार्हदण्डकारी स्यात् ॥ १४४ ॥ अल्पसारं श्रुतवन्तमपि न बहु मन्यते लोकः ॥ १४५ ॥ अतिभारः पुरुषमवसादयति ॥ १४६ ॥

यः संसदि परदोषं शंसति स स्वदोषं प्रख्यापयति ॥ १४७ ॥ आत्मानमेव नाशयत्यनात्मवतां कोपः ॥ १४८ ॥

नास्त्यप्राप्यं सत्यवताम् ॥ १४९ ॥ साहसेन न कार्यसिद्धिर्भवति

---

प्रमाणों से कार्यों की परीक्षा करनी चाहिए ॥ १३२ ॥ बिना विचारे कार्य करने वाले पुरुष को लक्ष्मी छोड़ देती है ॥ १३३ ॥ भली-भाँति विचार करके विपत्ति को दूर करना चाहिए ॥ १३४ ॥ अपनी शक्ति का अन्दाजा लगा कर ही किसी कार्य को आरम्भ करना चाहिए ॥ १३५ ॥ स्वजनों ( पारिवारिक तथा भृत्य ) को भर पेट भोजन कराके जो अवशिष्ट अन्न को खाता है वह अमृत को खाता है ॥ १३६ ॥ सब तरह के कार्यों को करने से आमदनी के रास्ते खुल जाते हैं ॥ १३७ ॥

कामचोर या अनुद्यमी व्यक्ति को अपने कार्यों की कोई चिन्ता नहीं होती ॥१३८॥

कार्यार्थी को चाहिए कि वह अपने स्वामी के स्वभाव को जान कर ही कार्य को सफल बनाये ॥ १३९ ॥ जो व्यक्ति गाय के स्वभाव से परिचित होता है, वही उसके दूध का उपभोग करता है ॥ १४० ॥

विचारवान् व्यक्ति को चाहिए कि वह क्षुद्र विचार के व्यक्तियों पर अपनी गुह्य बातों को प्रकट न करे ॥ १४१ ॥ सरल स्वभाव के राजा का उसके आश्रित व्यक्ति ही तिरस्कार कर देते हैं ॥ १४२ ॥ तीव्र स्वभाव के राजा से सभी व्यक्ति बेचैन रहते हैं ॥ १४३ ॥ अतः राजा ऐसा होना चाहिए, जो उचित दण्ड का निर्धारण करे ॥ १४४ ॥ शास्त्रज्ञ, किन्तु दुर्बल राजा का प्रजा अधिक सम्मान नहीं करती ॥ १४५ ॥ अधिक भार पुरुष को खिन्न कर देता है ॥ १४६ ॥

जो व्यक्ति सभास्थल पर किसी दूसरे व्यक्ति के अवगुणों का प्रख्यापन करने की चेष्टा करता है वह प्रकारान्तर से अपनी ही अयोग्यता का परिचय देता है ॥१४७॥ स्वयं को वश में न रखने वाले क्रोधी पुरुष को उसका क्रोध ही नष्ट कर डालता है ॥ १४८ ॥

सत्य का आचरण करने वाले व्यक्ति के लिए दुर्लभ कुछ नहीं है ॥ १४९ ॥

**॥ १५० ॥ व्यसनार्तो विस्मरत्यप्रवेशेन ॥ १५१ ॥ नास्त्यनन्तरायः कालविक्षेपे ॥ १५२ ॥ असंशयविनाशात् संशयविनाशः श्रेयान् ॥ १५३ ॥**

**परधनानि निक्षेप्तुः केवलं स्वार्थम् ॥ १५४ ॥**

**दानं धर्मः ॥ १५५ ॥ नार्यागतोऽर्थवद् विपरीतोऽनर्थभावः ॥ १५६ ॥ यो धर्मार्थौ न विवर्धयति स कामः ॥१५७॥ तद्विपरीतोऽनर्थसेवी ॥१५८॥**

**ऋजुस्वभावपरो जनेषु दुर्लभः ॥ १५९ ॥ अवमानेनागतमैश्वर्यमवमन्यते साधुः ॥ १६० ॥ बहूनपि गुणानेको दोषो ग्रसति ॥ १६१ ॥ महात्मना परेण साहसं न कर्तव्यम् ॥ १६२ ॥ कदाचिदपि चरित्रं न लङ्घयेत् ॥ १६३ ॥ क्षुधार्तो न तृणं चरति सिंहः ॥ १६४ ॥ प्राणादपि प्रत्ययो रक्षितव्यः ॥ १६५ ॥ पिशुनः श्रोता पुत्रदारैरपि त्यज्यते ॥ १६६ ॥**

**बालादप्यर्थजातं शृणुयात् ॥१६७॥ सत्यमप्यश्रद्धेयं न वदेत् ॥१६८॥ नाल्पदोषाद् बहुगुणास्त्यज्यन्ते ॥ १६९ ॥ विपश्चित्स्वपि सुलभा दोषाः ॥ १७० ॥ नास्ति रत्नमखण्डितम् ॥ १७१ ॥ मर्यादातीतं न कदाचिदपि**

---

केवल साहस से कार्य सिद्ध नहीं होते ॥ १५० ॥ विपत्तियों के टल जाने पर विपद्ग्रस्त पुरुष विपत्तियों को भूल जाता है ॥ १५१ ॥ अवसर चूक जाने पर कार्यों में अवश्य ही बाधा उपस्थित हो जाती है ॥ १५२ ॥ अवश्यंभावी ( असंशय ) विनाश की अपेक्षा संदिग्ध ( संशययुक्त ) विनाश अच्छा है ॥ १५३ ॥

किसी स्वार्थवश ही दूसरे के धन को अमानत पर रखा जाता है ॥ १५४ ॥

दान करना धर्म है ॥ १५५ ॥ वैश्य वृत्ति से किया हुआ यह धर्म ( दान देना ) सफल नहीं होता। मनुष्य के लिए दान धर्म का न करना सर्वथा अनर्थकारी है ॥ १५६ ॥ जो, धर्म और अर्थ का अपकर्ष नहीं करता उसी को 'काम' कहा जाता है ॥ १५७ ॥ धर्म और अर्थ के अपकर्षक काम के आसेवन से निश्चित ही अनर्थ होता है ॥ १५८ ॥

मनुष्यों में ऐसा पुरुष दुर्लभ होता है, जो सर्वथा सरल स्वभाव का हो ॥१५९॥ तिरस्कार से उपलब्ध ऐश्वर्य को, सत्पुरुष, ठुकरा देते हैं ॥ १६० ॥ अनेक गुणों को एक ही दोष ग्रसित कर लेता है ॥ १६१ ॥ श्रेष्ठ धर्मात्मा शत्रु के साथ युद्ध नहीं करना चाहिए ॥ १६२ ॥ सदाचार का उल्लंघन न करना चाहिए ॥ १६३ ॥ यद्यपि सिंह भूखा हो तब भी तिनके नहीं खाता ॥ १६४ ॥ प्राणों की बलि देकर भी अपने विश्वास की रक्षा करनी चाहिए ॥ १६५ ॥ चुगली करने और सुनने वाले पुरुष को उसके स्त्री-पुत्र भी छोड़ देते हैं ॥ १६६ ॥

बालक की भी उचित बात को ग्रहण करना चाहिए ॥ १६७ ॥ ऐसी सच्चाई नहीं बरतनी चाहिए, जिसका विश्वास ही न किया जा सके ॥ १६८ ॥ थोड़े से दोष से बहुत सारे गुणों को नहीं छोड़ा जा सकता ॥ १६९ ॥ विद्वान् पुरुषों में भी दोष का हो जाना संभव है ॥ १७० ॥ ( उसी प्रकार जैसे ) कोई भी रत्न समूचा नहीं

**विश्वसेत् ॥ १७२ ॥ अप्रिये कृतं प्रियमपि द्वेष्यं भवति ॥ १७३ ॥ नमन्त्यपि तुलाकोटिः कूपोदकक्षयं करोति ॥ १७४ ॥**

**सतां मतं नातिक्रमेत् ॥ १७५ ॥ गुणवदाश्रयान्निर्गुणोऽपि गुणी भवति ॥१७६॥ क्षीराश्रितं जलं क्षीरमेव भवति ॥१७७॥ मृत्पिण्डोऽपि पाटलिगन्धमुत्पादयति ॥ १७८ ॥ रजतं कनकसङ्गात् कनकं भवति ॥ १७९ ॥**

**उपकर्तर्यपकर्तुमिच्छत्यबुधः ॥ १८० ॥ न पापकर्मणामाक्रोशभयम् ॥ १८१ ॥ उत्साहवतां शत्रवोऽपि वशीभवन्ति ॥ १८२ ॥ विक्रमधना राजानः ॥ १८३ ॥ नास्त्यलसस्यैहिकामुष्मिकम् ॥ १८४ ॥ निरुत्साहाद् दैवं पतति ॥ १८५ ॥ मत्स्यार्थीव जलमुपयुज्यार्थं गृह्णीयात् ॥ १८६ ॥ अविश्वस्तेषु विश्वासो न कर्तव्यः ॥ १८७ ॥ विषं विषमेव सर्वकालम् ॥ १८८ ॥**

**अर्थसमादाने वैरिणां सङ्ग एव न कर्तव्यः ॥ १८९ ॥ अर्थसिद्धौ वैरिणं न विश्वसेत् ॥ १९० ॥ अर्थाधीन एव नियतसम्बन्धः ॥ १९१ ॥ शत्रोरपि सुतः सखा रक्षितव्यः ॥ १९२ ॥**

---

होता ॥ १७१ ॥ मर्यादा से अधिक विश्वास कभी न करना चाहिए ॥ १७२ ॥ शत्रु संबंध में किया गया अच्छा कार्य, बुरा ही समझा जाता है ॥ १७३ ॥ झुकती हुई भी ढींकली की बल्ली कुएँ के जल को उलीच देती है ॥ १७४ ॥

श्रेष्ठ पुरुषों के अभिमत का अतिक्रमण न करना चाहिए ॥ १७५ ॥ गुणी पुरुष के आश्रय से गुणहीन भी गुणी हो जाता है ॥ १७६ ॥ दूध में मिला हुआ जल भी दूध ही हो जाता है ॥ १७७ ॥ मिट्टी का ढेला पाटलि पुष्प के संसर्ग से उसकी गंध को उत्पन्न करता है ॥ १७८ ॥ चाँदी भी, सोने के साथ मिलकर सोना ही हो जाती है ॥ १७९ ॥

मूर्ख व्यक्ति उपकारक व्यक्ति का भी अपकार करना चाहता है ॥ १८० ॥ पापकर्म करने वाले को निन्दा-भय नहीं होता ॥ १८१ ॥ उत्साही पुरुषों के शत्रु भी वश में हो जाते हैं ॥ १८२ ॥ राजाओं का मुख्य धन है विक्रम ( बल ) ॥ १८३ ॥ आलसी व्यक्ति को न ऐहिक सुख प्राप्त होता है और न पारलौकिक ॥ १८४ ॥ उत्साहहीन होने पर भाग्य भी साथ नहीं देता ॥ १८५ ॥ उपयोग में आने योग्य अर्थ को उसी प्रकार ग्रहण करना चाहिए, जैसे मछियारा मछली को ॥१८६॥ अविश्वस्त पुरुष पर कभी विश्वास न करना चाहिए ॥ १८७ ॥ विष तो प्रत्येक अवस्था में विष ही रहता है ॥ १८८ ॥

अर्थ-संग्रह करते समय शत्रु को कदापि भी साथ न रखना चाहिए ॥ १८९ ॥ अर्थसिद्ध हो जाने पर भी शत्रु का विश्वास न करना चाहिए ॥ १९० ॥ नियत सम्बन्ध अर्थ के ही अधीन होता है ॥ १९१ ॥ यदि शत्रु का भी पुत्र अपना मित्र हो तो उसकी रक्षा करनी चाहिए ॥ १९२ ॥

**यावच्छत्रोश्छिद्रं पश्यति तावद्धस्तेन वा स्कन्धेन वा बाह्यः ॥ १९३ ॥**
**शत्रुं छिद्रे प्रहरेत् ॥ १९४ ॥ आत्मच्छिद्रं न प्रकाशयेत् ॥ १९५ ॥ छिद्रप्रहारिणः शत्रवः ॥ १९६ ॥ हस्तगतमपि शत्रुं न विश्वसेत् ॥१९७॥ स्वजनस्य दुर्वृत्तं निवारयेत् ॥ १९८ ॥ स्वजनावमानोऽपि मनस्विनां दुःखमावहति ॥ १९९ ॥ एकाङ्गदोषः पुरुषमवसादयति ॥ २०० ॥**
**शत्रुं जयति सुवृत्तता ॥ २०१ ॥ निकृतिप्रिया नीचाः ॥ २०२ ॥ नीचस्य मतिर्न दातव्या ॥ २०३ ॥ तेषु विश्वासो न कर्तव्यः ॥ २०४ ॥ सुपूजितोऽपि दुर्जनः पीडयत्येव ॥ २०५ ॥ चन्दनादीनपि दावोऽग्निर्दहत्येव ॥ २०६ ॥**
**कदाऽपि पुरुषं नावमन्येत ॥ २०७ ॥ क्षन्तव्यमिति पुरुषं न बाधेत ॥ २०८ ॥**
**भर्त्राधिकं रहस्युक्तं वक्तुमिच्छन्त्यबुद्धयः ॥ २०९ ॥ अनुरागस्तु फलेन सूच्यते ॥ २१० ॥ आज्ञाफलमैश्वर्यम् ॥ २११ ॥ दातव्यमपि बालिशः परिक्लेशेन दास्यति ॥ २१२ ॥ महदैश्वर्यं प्राप्याप्यधृतिमान् विनश्यति ॥ २१३ ॥ नास्त्यधृतेरैहिकामुष्मिकम् ॥ २१४ ॥**

---

जब तक शत्रु के दोष या निर्बलता ( छिद्र ) का पता नहीं लग जाता ततक उसको हाथ-कंधों पर रखना चाहिए ॥ १९३ ॥
जहाँ भी शत्रु की दुर्बलता दिखायी दे वहीं उस पर प्रहार करना चाहिये ॥ १९४ ॥ अपने दोष या अपनी दुर्बलता को कभी भी प्रकट नहीं करना चाहिए ॥ ॥१९५॥ जो दोष या दुर्बलता पर प्रहार करते हैं उन्हें शत्र समझना चाहिए ॥१९६॥ अपनी मुट्ठी में भी आये हुए शत्रु का विश्वास न करना चाहिए ॥ १९७ ॥ स्वजनों के दुर्व्यवहार को रोकना चाहिए ॥१९८॥ स्वजनों का अपमान भी श्रेष्ठ पुरुषों के लिए दुःखदायी होता है ॥ १९९ ॥ एक साधारण दोष भी पुरुष को नष्ट कर देता है ॥ २०० ॥
सद्व्यवहार से शत्रु को भी जीता जा सकता है ॥ २०१ ॥ नीच पुरुषों को अपमानित होना ही भला लगता है ॥ २०२ ॥ नीच पुरुष को कभी भी सुमति न देनी चाहिए ॥ २०३ ॥ उन पर विश्वास भी न करना चाहिए ॥ २०४ ॥ सत्कार किये जाने पर भी दुर्जन पीड़ा ही पहुँचाता है ॥ २०५ ॥ जंगल में लगी आग चन्दन आदि को भी जला ही लेती है ॥ २०६ ॥
किसी भी पुरुष का कभी भी तिरस्कार न करना चाहिए ॥ २०७ ॥ किसी भी पुरुष को कभी भी बाधित न करके क्षमा कर देना चाहिए ॥ २०८ ॥
एकान्त में कही गयी अपने मालिक की बात को, मूर्ख व्यक्ति, बढ़ा-चढ़ा कर कहता है ॥ २०९ ॥ प्रेम का परिचय उसके फल से सूचित होता है ॥ २१० ॥ बुद्धि का ही फल ऐश्वर्य है ॥ २११ ॥ देने योग्य वस्तु को भी मूर्ख पुरुष बड़े कष्ट से दे

**न दुर्जनैः सह संसर्गः कर्तव्यः ॥ २१५ ॥ शौण्डहस्तगतं पयोऽप्यवमन्येत ॥ २१६ ॥ कार्यसंकटेष्वर्थव्यवसायिनी बुद्धिः ॥ २१७ ॥**

**मितभोजनं स्वास्थ्यम् ॥ २१८ ॥ पथ्यमपथ्यं वाऽजीर्णे नाश्नीयात् ॥ २१९ ॥ जीर्णभोजिनं व्याधिर्नोपसर्पति ॥ २२० ॥ जीर्णशरीरे वर्धमानं व्याधिं नोपेक्षेत ॥ २२१ ॥ अजीर्णे भोजनं दुःखम् ॥ २२२ ॥ शत्रोरपि विशिष्यते व्याधिः ॥ २२३ ॥**

**दानं निधानमनुगामि ॥ २२४ ॥ पटुतरे तृष्णापरे सुलभमतिसन्धानम् ॥ २२५ ॥ तृष्णया मतिश्छाद्यते ॥ २२६ ॥ कार्यबहुत्वे बहुफलमायतिकं कुर्यात् ॥ २२७ ॥ स्वयमेवावस्कन्नं कार्यं निरीक्षेत ॥ २२८ ॥**

**मूर्खेषु साहसं नियतम् ॥ २२९ ॥ मूर्खेषु विवादो न कर्तव्यः ॥२३०॥ मूर्खेषु मूर्खवत्कथयेत् ॥ २३१ ॥ आयसैरायसं छेद्यम् ॥ २३२ ॥ नास्त्यधीमतः सखा ॥ २३३ ॥**

---

पाता है ॥ २१२ ॥ धैर्यहीन व्यक्ति महान् ऐश्वर्य को प्राप्त करने पर भी नष्ट हो जाता है ॥ २१३ ॥ धैर्यहीन पुरुष को न तो ऐहिक सुख प्राप्त होता है और न पारलौकिक ॥ २१४ ॥

दुर्जन की संगति न करनी चाहिए ॥ २१५ ॥ कलाल के हाथ में यदि दूध भी हो तो उसकी कद्र नहीं होती ॥ २१६ ॥ कार्यों में संकट उपस्थित हो जाने पर जो बुद्धि अर्थ का निश्चय करती है, वही वास्तविक बुद्धि है ॥ २१७ ॥

परिमित भोजन करना ही स्वास्थ्य का लक्षण है ॥ २१८ ॥ अजीर्ण (बदहजमी) होने पर पथ्य या अपथ्य कुछ भी न खाना चाहिए ॥ २१९ ॥ एक बार का भोजन पच जाने के बाद जो भोजन करता है उसको कोई भी व्याधि नहीं लगती ॥ २२० ॥ वृद्ध शरीर में बढ़ती हुई व्याधि की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए ॥ २२१ ॥ अजीर्णावस्था में भोजन करना दुःखदायी होता है ॥ २२२ ॥ व्याधि शत्रु से भी बढ़कर कष्टकर होती है ॥ २२३ ॥

जैसा कोष हो वैसा ही दान दिया जाना चाहिए ॥ २२४ ॥ अति तृष्णा वाले व्यक्ति को वश में कर लेना आसान होता है॥२२५॥ तृष्णा, बुद्धि को ढक लेती है ॥ २२६ ॥ अनेक कार्यों के उपस्थित हो जाने पर उसी कार्य को पहले करना चाहिए, जो भविष्य में अधिक फल देने वाला है ॥ २२७ ॥ आक्रमण आदि के कार्य का राजा को स्वयमेव निरीक्षण करना चाहिए ॥ २२८ ॥

मूर्खों में लड़ाई-झगड़ा करने का माद्दा ( साहस ) अवश्य होता है ॥ २२९ ॥ मूर्खों से विवाद न करना चाहिए ॥ २३० ॥ मूर्खों के साथ मूर्ख की तरह कहना चाहिए ॥ २३१ ॥ लोहे को लोहे से ही काटा जा सकता है ॥ २३२ ॥ बुद्धिहीन व्यक्ति का कोई मित्र नहीं होता ॥ २३३ ॥

**धर्मेण धार्यते लोकः ॥ २३४ ॥ प्रेतमपि धर्माधर्मावनुगच्छतः ॥२३५॥ दया धर्मस्य जन्मभूमिः ॥ २३६ ॥ धर्ममूले सत्यदाने ॥ २३७ ॥ धर्मेण जयति लोकान् ॥ २३८ ॥ मृत्युरपि धर्मिष्ठं रक्षति ॥ २३९ ॥ धर्माद्विपरीतं पापं यत्र प्रसज्यते तत्र धर्मावमतिर्महती प्रसज्यते ॥ २४० ॥ उपस्थितविनाशानां प्रकृत्या कारेण कार्येण लक्ष्यते ॥ २४१ ॥ आत्मविनाशं सूचयत्यधर्मबुद्धिः ॥ २४२ ॥ पिशुनवादिनो न रहस्यम् ॥ २४३ ॥ परहस्यं नैव श्रोतव्यम् ॥ २४४ ॥ वल्लभस्य कारकत्वमधर्मयुक्तम् ॥२४५॥**

**स्वजनेष्वतिक्रमो न कर्तव्यः ॥ २४६ ॥ माताऽपि दुष्टा त्याज्या ॥ २४७ ॥ स्वहस्तोऽपि विषदिग्धश्छेद्यः ॥ २४८ ॥ परोऽपि च हितो बन्धुः ॥ २४९ ॥ कक्षादप्यौषधं गृह्यते ॥ २५० ॥ नास्ति चौरेषु विश्वासः ॥ २५१ ॥ अप्रतीकारेष्वनादरो न कर्तव्यः ॥ २५२ ॥ व्यसनं मनागपि बाधते ॥ २५३ ॥**

**अमरवदर्थजातमर्जयेत् ॥ २५४ ॥ अर्थवान् सर्वलोकस्य बहुमतः ॥ २५५ ॥ महेन्द्रमप्यर्थहीनं न बहु मन्यते लोकः ॥ २५६ ॥ दारिद्र्यं खलु पुरुषस्य जीवितं मरणम् ॥ २५७ ॥ विरूपोऽर्थवान् सुरूपः ॥ २५८ ॥ अदातारमप्यर्थवन्तमर्थिनो न त्यजन्ति ॥ २५९ ॥ अकुलीनोऽपि धनी**

---

धर्म ही संसार को धारण किये हुए है ॥ २३४ ॥ धर्म और अधर्म दोनों मृत पुरुष के साथ जाते हैं ॥ २३५ ॥ दया ही धर्म की जन्मभूमि है ॥ २३६ ॥ राज्य और दान धर्ममूलक होते हैं ॥ २३७ ॥ धर्म के द्वारा प्राणियों को जीता जा सकता है ॥ २३८ ॥ मृत्यु भी धर्मात्मा पुरुष की रक्षा करती है ॥ २३९ ॥ जहाँ-जहाँ धर्म के विरुद्ध पाप का प्रसार होता है वहाँ-वहाँ धर्म का बड़ा अपकार होता है ॥ २४० ॥ स्वभाव या कार्य से आसन्न विनाश की परिस्थिति को जाना जाता है ॥ २४१ ॥ अधर्मबुद्धि ही अधर्मात्मा के विनाश की सूचना दे देती है ॥२४२॥ चुगलखोर व्यक्ति की बात छिपी नहीं रहती ॥ २४३ ॥ दूसरे की गुप्त बात को न सुनना चाहिए ॥२४४॥ स्वामी का कठोर होना अधर्मयुक्त है ॥ २४५ ॥

स्वजनों का अतिक्रमण न करना चाहिए ॥ २४६ ॥ माता भी यदि दुष्ट हो तो उसको छोड़ देना चाहिए ॥ २४७ ॥ विष से भरा हुआ यदि अपना हाथ भी हो तो उसे काट देना चाहिए ॥ २४८ ॥ हित करने वाला बाहरी व्यक्ति भी अपना भाई है ॥ २४९ ॥ सूखे जंगल से भी औषधि को प्राप्त किया जा सकता है ॥ २५० ॥ चोरों पर विश्वास नहीं करना चाहिए ॥ २५१ ॥ बाधारहित कर्म के करने में उपेक्षा न करनी चाहिए ॥ २५२ ॥ थोड़ा भी व्यसन बड़ा कष्टकर होता है ॥ २५३ ॥

स्वयं को अमर समझ कर अर्थों का अर्जन करना चाहिए ॥ २५४ ॥ धनवान् व्यक्ति सबका मान्य होता है ॥ २५५ ॥ अर्थहीन इन्द्र को भी संसार बड़ा नहीं समझता ॥ २५६ ॥ पुरुष की दरिद्रता, जीवितावस्था में ही मृत्यु है ॥ २५७ ॥ कुरूप

**कुलीनाद्विशिष्टः ।। २६० ।। नास्त्यवमानभयमनार्यस्य ।। २६१ ।। न चेतनवतां वृत्तिभयम् ।। २६२ ।। न जितेन्द्रियाणां विषयभयम् ।। २६३ ।। न कृतार्थानां मरणभयम् ।। २६४ ।।**

**कस्यचिदर्थं स्वमिव मन्यते साधुः ।। २६५ ।। परविभवेश्वादरो न कर्तव्यः ।। २६६ ।। परविभवेष्वादरोऽपि नाशमूलम् ।। २६७ ।। पलालमपि परद्रव्यं न हर्तव्यम् ।। २६८ ।। परद्रव्यापहरणमात्मद्रव्यनाशहेतुः ।।२६९।। न चौर्यात्परं मृत्युपाशः ।। २७० ।। यवागूरपि प्राणधारणं करोति काले ।। २७१ ।। न मृतस्यौषधं प्रयोजनम् ।। २७२ ।। समकाले स्वयमपि प्रभुत्वस्य प्रयोजनं भवति ।। २७३ ।।**

**नीचस्य विद्याः पापकर्मणि योजयन्ति ।। २७४ ।। पयःपानमपि विषवर्धनं भुजङ्गस्य नामृतं स्यात् ।। २७५ ।। न हि धान्यसमो ह्यर्थः ।। २७६ ।। न क्षुधासमः शत्रुः ।। २७७ ।। अकृतेर्नियता क्षुत् ।। २७८ ।। नास्त्यभक्ष्यं क्षुधितस्य ।। २७९ ।।**

**इन्द्रियाणि जरावशं कुर्वन्ति ।। २८० ।। सानुक्रोशं भर्तारमाजीवेत्**

---

धनवान् भी रूपवान् समझा जाता है ।। २५८ ।। न देने वाले धनवान् को भी याचक लोग नहीं छोड़ते ।। २५९ ।। निम्नकुल में पैदा हुआ भी धनी पुरुष उच्चकुलोत्पन्न पुरुष से बड़ा समझा जाता है ।। २६० ।। नीच पुरुष को अपने तिरस्कार का भय नहीं होता ।। २६१ ।। चतुर पुरुष को जीविका का भय नहीं होता ।। २६२ ।। जितेन्द्रिय पुरुष को विषयों का भय नहीं होता ।। २६३ ।। आत्मदर्शी पुरुष को मृत्यु का भय नहीं होता ।। २६४ ।।

जो सज्जन पुरुष होता है वह पराये अर्थ को अपने ही अर्थ की भाँति मानता है ।। २६५ ।। दूसरे के वैभव की लिप्सा न करनी चाहिए ।। २६६ ।। दूसरे के वैभव की लिप्सा करना भी नाश का कारण होता है ।। २६७ ।। पलालमात्र भी ( थोड़ा भी ) दूसरे के द्रव्य का अपहरण न करना चाहिए ।। २६८ ।। दूसरे के द्रव्य का अपहरण करना अपने द्रव्य का नाश करना है ।। २६९ ।। चोरी से बढ़कर कोई भी दुखदायी बन्धन नहीं है ।। २७० ।। उचित समय पर प्राप्त लपसी ( यवागू ) भी प्राणरक्षक होती है ।। २७१ ।। मृतक व्यक्ति का औषधि से कोई प्रयोजन नहीं होता ।। २७२ ।। समय आने पर ऐश्वर्य की आवश्यकता होती है ।। २७३ ।।

नीच पुरुष की विद्यायें उसे पापकर्म में प्रवृत्त करती हैं ।। २७४ ।। सर्प को दूध पिलाने पर उसका विष ही बढ़ता है, वह अमृत नहीं बनता ।। २७५ ।। अन्न से बढ़कर दूसरा धन नहीं है ।। २७६ ।। भूख से बढ़कर दूसरा शत्रु नहीं है ।। २७७ ।। अकर्मण्य व्यक्ति को कभी-न-कभी भूख का कष्ट भोगना ही पड़ता है ।। २७८ ।। भूखे मनुष्य के लिए कुछ भी अभक्ष्य नहीं है ।। २७९ ।।

इन्द्रियाँ मनुष्य को वृद्धावस्था में अपने वश में कर लेती हैं ।। २८० ।। कृपालु

**॥ २८१ ॥ लुब्धसेवी पावकेच्छया खद्योतं धमति ॥ २८२ ॥ विशेषज्ञं स्वामिनमाश्रयेत् ॥ २८३ ॥**

**पुरुषस्य मैथुनं जरा ॥२८४॥ स्त्रीणाममैथुनं जरा ॥२८५॥ न नीचोत्तमयोर्वैवाहः ॥ २८६ ॥ अगम्यागमनादायुर्यशःपुण्यानि क्षीयन्ते ॥२८७॥**

**नास्त्यहंकारसमः शत्रुः ॥ २८८ ॥ संसदि शत्रुं न परिक्रोशेत् ॥२८९॥ शत्रुव्यसनं श्रवणसुखम् ॥ २९० ॥ अधनस्य बुद्धिर्न विद्यते ॥ २९१ ॥ हितमप्यधनस्य वाक्यं न गृह्यते ॥ २९२ ॥ अधनः स्वभार्ययाऽप्यवमन्यते ॥ २९३ ॥ पुष्पहीनं सहकारमपि नोपासते भ्रमराः ॥ २९४ ॥ विद्याधनमधनानाम् ॥ २९५ ॥ विद्या चौरैरपि न ग्राह्या ॥ २९६ ॥ विद्यया ख्यापिता ख्यातिः ॥ २९७ ॥ यशःशरीरं न विनश्यति ॥ २९८ ॥**

**यः परार्थमुपसर्पति स सत्पुरुषः ॥ २९९ ॥ इन्द्रियाणां प्रशमं शास्त्रम् ॥ ३०० ॥ अशास्त्रकार्यवृत्तौ शास्त्रांकुशं निवारयति ॥ ३०१ ॥ नीचस्य विद्या नोपेतव्या ॥ ३०२ ॥ म्लेच्छभाषणं न शिक्षेत ॥ ३०३ ॥ म्लेच्छानामपि सुवृत्तं ग्राह्यम् ॥३०४॥ गुणे न मत्सरः कर्तव्यः ॥३०५॥ शत्रोरपि सुगुणो ग्राह्यः ॥ ३०६ ॥ विषादप्यमृतं ग्राह्यम् ॥ ३०७ ॥**

---

स्वामी की सेवा करके जीविकोपार्जन करना चाहिए ॥ २८१ ॥ कृपण स्वामी के सेवक की वही दशा होती है जो आग प्राप्त करने के लिए जुगनू को पंखे से झलने वाले की होती है ॥२८२॥ विद्वान् (विशेषज्ञ) स्वामी का आश्रय प्राप्त करना चाहिए ॥२८३॥

अधिक मैथुन से पुरुष शीघ्र ही वृद्ध हो जाता है ॥२८४॥ मैथुन न करने से स्त्री शीघ्र वृद्ध हो जाती है ॥ २८५ ॥ नीच और उच्च व्यक्तियों में परस्पर विवाह-संबंध नहीं हो सकता ॥ २८६ ॥ वेश्या आदि ( अगम्य ) स्त्रियों के साथ सहवास करने से आयु, यश और पुण्य नष्ट हो जाते हैं ॥ २८७ ॥

अहंकार से बढ़कर दूसरा शत्रु नहीं है ॥ २८८ ॥ सभा में शत्रु की निन्दा न करनी चाहिए ॥ २८९ ॥ शत्रु का दुःख सुनकर कानों को आनन्द मिलता है ॥२९०॥ निर्धन पुरुष को बुद्धि नहीं होती ॥ २९१ ॥ धनहीन व्यक्ति की हितकर बात को भी नहीं सुना जाता ॥ २९२ ॥ निर्धन व्यक्ति की स्त्री भी पति का अपमान कर बैठती है ॥ २९३ ॥ पुष्परहित आम के पास भौंरे नहीं जाते ॥ २९४ ॥ निर्धन के लिए विद्या ही एकमात्र धन है ॥ २९५ ॥ विद्याधन को चोर भी नहीं चुरा सकता ॥ २९६ ॥ विद्या के द्वारा ही ख्याति प्राप्त होती है ॥ २९७ ॥ यशरूपी शरीर का कभी नाश नहीं होता ॥ २९८ ॥

जो मनुष्य परोपकार के लिए आगे बढ़ता है, वही सत्पुरुष है ॥ २९९ ॥ शास्त्र-ज्ञान से इन्द्रियाँ शान्त होती हैं ॥ ३०० ॥ अयुक्त कार्यों में प्रवृत्त व्यक्ति को शास्त्र का अंकुश ही संयम में लगाता है ॥ ३०१ ॥ नीच पुरुष की विद्या की अवहेलना नहीं करनी चाहिए ॥ ३०२ ॥ म्लेच्छ भाषा का प्रयोग नहीं करना चाहिए ॥ ३०३ ॥

**अवस्थया पुरुषः सम्मान्यते ॥३०८॥ स्थान एव नराः पूज्यन्ते ॥०९॥ आर्यवृत्तमनुतिष्ठेत् ॥ ३१० ॥ कदापि मर्यादां नातिक्रमेत् ॥ ३११ ॥ नास्त्यर्घः पुरुषरत्नस्य ॥ ३१२ ॥ न स्त्रीरत्नसमं रत्नम् ॥ ३१३ ॥ सुदुर्लभं रत्नम् ॥ ३१४ ॥**

**अयशोभयं भयेषु ॥ ३१५ ॥ नास्त्यलसस्य शास्त्रागमः ॥ ३१६ ॥ न स्त्रैणस्य स्वर्गाप्तिर्धर्मकृत्यं च ॥ ३१७ ॥**

**स्त्रियोऽपि स्त्रैणमवमन्यते ॥ ३१८ ॥ न पुष्पार्थी सिंचति शुष्कतरुम् ॥ ३१९ ॥ अद्रव्यप्रयत्नो बालुकाक्वथनादनन्यः ॥ ३२० ॥ न महाजन-हासः कर्तव्यः ॥ ३२१ ॥ कार्यसम्पदं निमित्तानि सूचयन्ति ॥ ३२२ ॥ नक्षत्रादपि निमित्तानि विशेषयन्ति ॥ ३२३ ॥ न त्वरितस्य नक्षत्रपरीक्षा ॥ ३२४ ॥**

**परिचये दोषा न छाद्यन्ते ॥३२५॥ स्वयमशुद्धः परानाशङ्कते ॥३२६॥ स्वभावो दुरतिक्रमः ॥ ३२७ ॥**

---

म्लेच्छ व्यक्ति की भी अच्छी बात को अपना लेना चाहिए ॥ ३०४ ॥ दूसरे के अच्छे गुणों से ईर्ष्या नहीं करनी चाहिए ॥ ३०५ ॥ शत्रु में भी यदि अच्छे गुण दिखायी दें तो उन्हें ग्रहण कर लेना चाहिए ॥ ३०६ ॥ विष में यदि अमृत हो तो उसे भी ले लेना चाहिए ॥ ३०७ ॥

अवस्था के अनुसार ही पुरुष को सम्मान प्राप्त होता है ॥ ३०८ ॥ अपने स्थान पर बने रहने से ही व्यक्ति को सम्मान मिलता है ॥ ३०९ ॥ मनुष्य को चाहिए कि वह सदा श्रेष्ठ पुरुषों के आचरण का अनुसरण करे ॥ ३१० ॥ मर्यादा का कभी भी उल्लंघन न करना चाहिए ॥ ३११ ॥ पुरुषरत्न का कोई मूल्य नहीं है ॥ ३१२ ॥ स्त्रीरत्न से बढ़कर दूसरा रत्न नहीं है ॥ ३१३ ॥ रत्न का मिलना बड़ा कठिन होता है ॥ ३१४ ॥

समस्त भयों में अपयश का भय बड़ा है ॥ ३१५ ॥ आलसी पुरुष को कभी शास्त्र की प्राप्ति नहीं होती ॥ ३१६ ॥ स्त्री में आसक्त पुरुष को न तो स्वर्ग मिलता है और न उसके द्वारा कोई धर्मकार्य हो पाता है ॥ ३१७ ॥

स्त्रियाँ भी स्त्रैण पुरुष का अपमान कर देती हैं ॥ ३१८ ॥ फूलों का इच्छुक व्यक्ति सूखे पेड़ को नहीं सींचता ॥ ३१९ ॥ धन के बिना किसी कार्य का उद्योग करना बालू से तेल निकालने के समान है ॥ ३२० ॥ महापुरुषों का उपहास नहीं करना चाहिए ॥ ३२१ ॥ किसी कार्य के लक्षण ही उसकी सिद्धि या असिद्धि की सूचना दे देते हैं ॥ ३२२ ॥ इसी प्रकार नक्षत्रों से भी भावी सिद्धि या असिद्धि की सूचना मिल जाती है ॥ ३२३ ॥ अपने कार्य की सिद्धि शीघ्र चाहने वाला व्यक्ति नक्षत्रगणना पर अपने भाग्य की परीक्षा नहीं करता ॥ ३२४ ॥

परिचय हो जाने पर दोष छिपे नहीं रह सकते ॥ ३२५ ॥ अशुद्ध विचारों का

**अपराधानुरूपो दण्डः ॥ ३२८ ॥ कथानुरूपं प्रतिवचनम् ॥ ३२९ ॥ विभवानुरूपमाभरणम् ॥३३०॥ कुलानुरूपं वृत्तम् ॥ ३३१ ॥ कार्यानुरूपः प्रयत्नः ॥३३२॥ पात्रानुरूपं दानम् ॥३३३॥ वयोऽनुरूपो वेषः ॥३३४॥ स्वाम्यनुकूलो भृत्यः ॥ ३३५ ॥**

**भर्तृवशवर्तिनी भार्या ॥ ३३६ ॥ गुरुवशानुवर्ती शिष्यः ॥ ३३७ ॥ पितृवशानुवर्ती पुत्रः ॥ ३३८ ॥ अत्युपचारः शङ्कितव्यः ॥३३९॥ स्वामिनमेवानुवर्तेत ॥ ३४० ॥**

**मातृताडितो वत्सो मातरमेवानुरोदिति ॥ ३४१ ॥**

**स्नेहवतः स्वल्पो हि रोषः ॥ ३४२ ॥ आत्मच्छिद्रं न पश्यति परच्छिद्रमेव पश्यति बालिशः ॥ ३४३ ॥**

**सोपचारः कैतवः ॥ ३४४ ॥ काम्यैर्विशेषैरुपचरणमुपचारः ॥३४५॥ चिरपरिचतानामत्युपचारः शङ्कितव्यः ॥ ३४६ ॥ गौर्दुष्कराश्वसहस्रादेकाकिनी श्रेयसी ॥ ३४७ ॥ श्वो मयूरादद्य कपोतो वरः ॥ ३४८ ॥**

---

व्यक्ति दूसरों पर भी सन्देह करता है ॥ ३२६ ॥ स्वभाव को बदलना बड़ा कठिन है ॥ ३२७ ॥

अपराध के अनुसार ही दण्ड देना चाहिए ॥ ३२८ ॥ प्रश्न के अनुसार ही उत्तर देना चाहिए ॥३२९॥ संपत्ति के अनुसार ही आभूषण धारण करने चाहिए ॥३३०॥ अपने कुल की मर्यादा के अनुसार ही कार्य करना चाहिए ॥ ३३१ ॥ कार्य के अनुसार ही प्रयत्न करना चाहिए ॥ ३३२ ॥ पात्र के अनुसार ही दान देना चाहिए ॥३३३॥ अवस्था के अनुसार ही वेष धारण करना चाहिए ॥ ३३४ ॥ स्वामी के अनुसार ही सेवक को कार्य करना चाहिए ॥ ३३५ ॥

पति के वश में रहने वाली पत्नी ही भार्या ( भरण-पोषण की अधिकारिणी ) होती है ॥ ३३६ ॥ शिष्य को सदा गुरु के अधीन रहना चाहिए ॥ ३३७ ॥ पुत्र को सदा पिता के अधीन रहना चाहिए ॥ ३३८ ॥ अत्यधिक आदर शंका का कारण होता है ॥ ३३९ ॥ सेवक को सदा स्वामी की आज्ञा का अनुगमन करना चाहिए ॥ ३४० ॥

माता के द्वारा ताड़ित बच्चा, माता के ही आगे रोता है ॥ ३४१ ॥

स्नेही व्यक्ति का कोप क्षणिक होता है ॥ ३४२ ॥ मूर्ख व्यक्ति अपने दोषों को नहीं, दूसरों के ही दोषों को देखता है ॥ ३४३ ॥

उपचार के साथ छल होता है ॥ ३४४ ॥ किसी विशेष अभिलाषा की पूर्ति के लिए की जाने वाली सेवा को 'उपचार' कहते हैं ॥ ३४५ ॥ सुपरिचित व्यक्ति का अतिशय आदर-दर्शन संशयकारी होता है ॥ ३४६ ॥ एक साधारण गाय भी सौ कुत्तों से बढ़कर होती है ॥ ३४७ ॥ कल मिलने वाले मोर की अपेक्षा आज मिलने वाला कबूतर ही अच्छा है ॥ ३४८ ॥

**अतिसंगो दोषमुत्पादयति ।। ३४९ ।। सर्वं जयत्यक्रोधः ।। ३५० ।। यद्यपकारिणि कोपः कोपे कोप एव कर्तव्यः ।। ३५१ ।। मतिमत्सु मूर्खमित्र-गुरुवल्लभेषु विवादो न कर्तव्यः ।। ३५२ ।।**

**नास्त्यपिशाचमैश्वर्यम् ।। ३५३ ।। नास्ति धनवतां शुभकर्मसु श्रमः ।। ३५४ ।। नास्ति गतिश्रमो यानवताम् ।। ३५५ ।। अलौहमयं निगडं कल-त्रम् ।। ३५६ ।। यो यस्मिन् कुशलः स तस्मिन् योक्तव्यः ।। ३५७ ।। दुष्क-लत्रं मनस्विनां शरीरकर्शनम् ।। ३५८ ।। अप्रमत्तो दारान्निरीक्षेत ।।३५९।। स्त्रीषु किञ्चिदपि न विश्वसेत् ।। ३६० ।। न समाधिः स्त्रीषु लोकज्ञता च ।। ३६१ ।। गुरूणां माता गरीयसी ।। ३६२ ।। सर्वावस्थासु माता भर्तव्या ।। ३६३ ।।**

**वैदुष्यमलंकारेणाच्छाद्यते ।। ३६४ ।। स्त्रीणां भूषणं लज्जा ।। ३६५ ।। विप्राणां भूषणं वेदः ।। ३६६ ।। सर्वेषां भूषणं धर्मः ।। ३६७ ।। भूषणानां भूषणं सविनया विद्या ।। ३६८ ।।**

**अनुपद्रवं देशमावसेत् ।। ३६९ ।। साधुजनबहुलो देशः ।। ३७० ।। राज्ञो भेतव्यं सार्वकालम् ।। ३७१ ।। न राज्ञः परं दैवतम् ।। ३७२ ।। सूदूरमपि**

---

अत्यधिक साथ से बुराई पैदा हो जाती है ।। ३४९ ।। क्रोध न करने वाले व्यक्ति की सर्वत्र विजय होती है ।। ३५० ।। यदि अपकारी व्यक्ति पर क्रोध करना हो तो पहले क्रोध पर ही क्रोध करना चाहिए ।। ३५१ ।। बुद्धिमान् मनुष्य, मूर्ख, मित्र, गुरु और प्रियजनों के साथ व्यर्थ का विवाद न करें ।। ३५२ ।।

ऐश्वर्य में पैशाचिकता होती है ।। ३५३ ।। धनिकों को शुभकार्य करने में श्रम नहीं करना पड़ता ।। ३५४ ।। सवारी पर चलने वाले को थकावट का अनुभव नहीं होता ।। ३५५ ।। स्त्री बिना लोहे की बेड़ी है ।। ३५६ ।।

जो मनुष्य जिस कार्य में निपुण हो, उसको उसी काम में नियुक्त करना चाहिए ।। ३५७ ।। दुष्ट स्त्री मनस्वी पुरुष के शरीर को कृश बना देती है ।। ३५८ ।। अप्रमत्त होकर सदा स्त्री का निरीक्षण करना चाहिए ।। ३५९ ।। स्त्रियों पर जरा भी विश्वास न करना चाहिए ।। ३६० ।। स्त्रियों में न विवेक होता है और न लोक-व्यवहार का ज्ञान ।। ३६१ ।। गुरुजनों में माता का स्थान सर्वोच्च होता है ।।३६२।। अतएव प्रत्येक अवस्था में माता का भरण-पोषण करना चाहिए ।। ३६३ ।।

अलंकार ( बनावटीपन ), पाण्डित्य को ढाँप देता है ।। ३६४ ।। स्त्री का आभूषण लज्जा है ।। ३६५ ।। ब्राह्मणों का आभूषण वेद ( ज्ञान ) है ।। ३६६ ।। सब लोगों का आभूषण धर्म है ।। ३६७ ।। समस्त आभूषणों का आभूषण विनयसंपन्न विद्या है ।। ३६८ ।।

जिस देश में उपद्रव न हो, वहाँ बसना चाहिए ।। ३६९ ।। जिस देश में सज्जन पुरुषों का निवास हो वहीं बसना चाहिए ।। ३७० ।। राजा से सदा डरना चाहिए

**दहति राजवह्निः ॥ ३७३ ॥ रिक्तहस्तो न राजानमभिगच्छेत् ॥ ३७४ ॥ गुरुं च दैवं च ॥ ३७५ ॥ कटुम्बिनो भेतव्यम् ॥ ३७६ ॥ गन्तव्यं च सदा राजकुलम् ॥ ३७७ ॥ राजपुरुषैः सम्बन्धं कुर्यात् ॥ ३७८ ॥ राजदासी न सेवितव्या ॥ ३७९ ॥ न चक्षुषाऽपि राजानं निरीक्षेत् ॥ ३८० ॥**

**पुत्रे गुणवति कुटुम्बिनः स्वर्गः ॥ ३८१ ॥ पुत्रा विद्यानां पारं गमयितव्याः ॥ ३८२ ॥ जनपदार्थं ग्रामं त्यजेत् ॥ ३८३ ॥ ग्रामार्थं कुटुम्बस्त्यज्यते ॥ ३८४ ॥ अतिलाभः पुत्रलाभः ॥ ३८५ ॥ दुर्गतेः पितरौ रक्षति स पुत्रः ॥३८६॥ कुलं प्रख्यापयति पुत्रः ॥३८७॥ नानपत्यस्य स्वर्गः ॥३८८॥**

**या प्रसूते सा भार्या ॥३८९॥ तीर्थसमवाये पुत्रवतीमनुगच्छेत् ॥३९०॥ सतीर्थागमनाद् ब्रह्मचर्यं नश्यति ॥ ३९१ ॥ न परक्षेत्रे बीजं विनिक्षिपेत् ॥ ३९२ ॥ पुत्रार्था हि स्त्रियः ॥ ३९३ ॥ स्वदासीपरिग्रहो हि दासभावः ॥ ३९४ ॥**

**उपस्थितविनाशः पथ्यवाक्यं न शृणोति ॥ ३९५ ॥ नास्ति देहिनां सुखदुःखाभावः ॥ ३९६ ॥ मातरमिव वत्साः सुखदुःखानि कर्तारमेवानुगच्छन्ति ॥ ३९७ ॥**

---

॥ ३७१ ॥ राजा से बड़ा कोई देवता नहीं है ॥ ३७२ ॥ राजवह्नि दूर से ही भस्म कर डालती है ॥ ३७३ ॥ राजा, देवता और गुरु के पास खाली हाथ न जाना चाहिए ॥ ३७४-३७५ ॥ कुटुम्ब के व्यक्ति से सदा डरना चाहिए ॥ ३७६ ॥ राजदरबार में हमेशा जाना चाहिए ॥ ३७७ ॥ राजपुरुषों से सम्बन्ध बनाये रखना चाहिए ॥ ३७८ ॥ राजदासी से किसी तरह का सम्बन्ध न रखना चाहिए ॥३७९॥ राजा की ओर आँख उठाकर न देखना चाहिए ॥ ३८० ॥

गुणवान् पुत्र से परिवार स्वर्ग बन जाता है ॥ ३८१ ॥ पुत्र को सब विद्याओं में पारंगत बनाना चाहिए ॥ ३८२ ॥ जनपद के हित के आगे ग्रामहित को त्याग देना चाहिए ॥ ३८३ ॥ ग्रामहित के लिए परिवार-हित की उपेक्षा कर देनी चाहिए ॥ ३८४ ॥ पुत्रलाभ सर्वोच्च लाभ है ॥ ३८५ ॥ दुर्गति से माता-पिता की रक्षा करने वाला पुत्र ही होता है ॥३८६॥ सुपुत्र से ही कुल की ख्याति होती है ॥३८७॥ पुत्रहीन व्यक्ति को स्वर्ग नहीं मिलता ॥ ३८८ ॥

सन्तान को जन्म देने वाली स्त्री ही भार्या है ॥ ३८९ ॥ अनेक स्त्रियों के एक साथ ऋतुमती होने पर उस स्त्री के पास जाना चाहिए, जो पहले पुत्रवती हो ॥३९०॥ रजस्वला स्त्री के साथ संभोग करने से ब्रह्मचर्य नष्ट होता है ॥ ३९१ ॥ परस्त्री के गर्भ में वीर्य का निक्षेप नहीं करना चाहिए ॥ ३९२ ॥ पुत्र-प्राप्ति के लिए ही स्त्रियों का वरण किया जाता है ॥ ३९३ ॥ अपनी दासी के साथ परिग्रह करना अपने को दास बना लेना है ॥ ३९४ ॥

जिसका विनाश निकट होता है, वह हित की बात को नहीं सुनता ॥ ३९५ ॥

**तिलमात्रमप्युपकारं शैलवन्मन्यते साधुः ॥ ३९८ ॥ उपकारोऽनार्येष्वकर्तव्यः ॥ ३९९ ॥ प्रत्युपकारभयादनार्यः शत्रुर्भवति ॥ ४०० ॥ स्वल्पमप्युपकारकृते प्रत्युपकारं कर्तुमार्यो न स्वपिति ॥ ४०१ ॥ न कदाऽपि देवताऽवमन्तव्या ॥ ४०२ ॥**

**न चक्षुषः समं ज्योतिरस्ति ॥४०३॥ चक्षुर्हि शरीरिणां नेता ॥४०४॥ अपचक्षुषः किं शरीरेण ॥ ४०५ ॥**

**नाप्सु मूत्रं कुर्यात् ॥ ४०६ ॥ न नग्नो जलं प्रविशेत् ॥ ४०७ ॥ यथा शरीरं तथा ज्ञानम् ॥ ४०८ ॥ यथा बुद्धिस्तथा विभवः ॥ ४०९ ॥ अग्नावग्निं न निक्षिपेत् ॥ ४१० ॥ तपस्विनः पूजनीयाः ॥ ४११ ॥ परदारान्न गच्छेत् ॥ ४१२ ॥ अन्नदानं भ्रूणहत्यामपि मार्ष्टि ॥ ४१३ ॥ न वेदबाह्यो धर्मः ॥ ४१४ ॥ कदाचिदपि धर्मं निषेवेत् ॥ ४१५ ॥**

**स्वर्गं नयति सूनृतम् ॥ ४१६ ॥ नास्ति सत्यात् परं तपः ॥ ४१७ ॥ सत्यं स्वर्गस्य साधनम् ॥ ४१८ ॥ सत्येन धार्यते लोकः ॥ ४१९ ॥ सत्याद् देवो वर्षति ॥ ४२० ॥**

---

प्रत्येक देहधारी व्यक्ति के लिए सुख और दुःख लगे रहते हैं ॥ ३९६ ॥ जैसे बछड़ा माता के पास जा पहुँचता है वैसे ही सुख और दुःख अपने कर्ता के पास जा पहुँचते हैं ॥ ३९७ ॥

सज्जन पुरुष तिलतुल्य उपकार को पहाड़ जैसा मानता है ॥ ३९८ ॥ दुष्ट पुरुष का उपकार न करना चाहिए ॥ ३९९ ॥ क्योंकि प्रत्युपकारभय से दुष्ट पुरुष शत्रु बन जाता है ॥ ४०० ॥ सज्जन पुरुष थोड़े भी उपकार का महान् प्रत्युपकार करने के लिए उद्यत रहता है ॥ ४०१ ॥ देवता का कभी भी अपमान न करना चाहिए ॥ ४०२ ॥

आँख के समान दूसरी ज्योति नहीं है ॥ ४०३ ॥ नेत्र, देहधारियों का नेता है ॥ ४०४ ॥ नेत्रहीन व्यक्ति का शरीर धारण करना व्यर्थ है ॥ ४०५ ॥

जल में मूत्रत्याग नहीं करना चाहिए ॥ ४०६ ॥ नग्न होकर पानी में न उतरना चाहिए ॥ ४०७ ॥ जैसा शरीर होता है, उसमें वैसा ही ज्ञान रहता है ॥ ४०८ ॥ जैसी बुद्धि होती है, वैसा ही वैभव प्राप्त होता है ॥ ४०९ ॥ आग में आग न डालनी चाहिए ( तेजस्वी पर क्रोध न करना चाहिए ) ॥ ४१० ॥ तपस्वियों की सदा पूजा करनी चाहिए ॥ ४११ ॥ पराई स्त्री के साथ समागम न करना चाहिए ॥ ४१२ ॥ अन्नदान से भ्रूण ( गर्भस्थ शिशु ) हत्या का भी पाप मिट जाता है ॥ ४१३ ॥ वेद-स्वीकृत धर्म ही वास्तविक धर्म है ॥ ४१४ ॥ जिस तरह भी हो, धर्म का आचरण करना चाहिए ॥ ४१५ ॥

मीठी और सच्ची वाणी मनुष्य को स्वर्ग ले जाती है ॥ ४१६ ॥ सत्य से बढ़कर कोई तप नहीं है ॥ ४१७ ॥ सत्य ही स्वर्ग का साधन है ॥ ४१८ ॥ सत्य पर ही संसार टिका है ॥ ४१९ ॥ सत्य से ही इन्द्र जल बरसाता है ॥ ४२० ॥

**नानृतात् पातकं परम् ॥ ४२१ ॥ न मीमांस्या गुरवः ॥४२२॥ खलत्वं नोपेयात् ॥ ४२३ ॥ नास्ति खलस्य मित्रम् ॥ ४२४ ॥ लोकयात्रा दरिद्रं बाधते ॥ ४२५ ॥**

**अतिशूरो दानशूरः ॥ ४२६ ॥ गुरुदेवब्राह्मणेषु भक्तिर्भूषणम् ॥४२७॥ सर्वस्य भूषणं विनयः ॥ ४२८ ॥ अकुलीनोऽपि विनीतः कुलीनाद् विशिष्टः ॥ ४२९ ॥**

**आचारादायुर्वर्धते कीर्तिश्च ॥ ४३० ॥ प्रियमप्यहितं न वक्तव्यम् ॥ ४३१ ॥ बहुजनविरुद्धमेकं नानुवर्तेत ॥ ४३२ ॥ न दुर्जनेषु भागधेयः कर्तव्यः ॥ ४३३ ॥ न कृतार्थेषु नीचेषु सम्बन्धः ॥ ४३४ ॥ ऋणशत्रुव्याधिष्वशेषः कर्तव्यः ॥ ४३५ ॥ भूत्यानुवर्तनं पुरुषस्य रसायनम् ॥ ४३६ ॥**

**नार्थिष्ववज्ञा कार्या ॥ ४३७ ॥ दुष्करं कर्म कारयित्वा कर्तारमवमन्यते नीचः ॥ ४३८ ॥ नाकृतज्ञस्य नरकान्निवर्तनम् ॥ ४३९ ॥**

**जिह्वायत्तौ वृद्धिविनाशौ ॥ ४४० ॥ विषामृतयोराकरी जिह्वा ॥ ४४१ ॥ प्रियवादिनो न शत्रुः ॥ ४४२ ॥ स्तुता अपि देवतास्तुष्यन्ति ॥ ४४३ ॥ अनृतमपि दुर्वचनं चिरं तिष्ठति ॥ ४४४ ॥ राजद्विष्टं न च वक्तव्यम् ॥ ४४५ ॥ श्रुतिसुखात्कोकिलालापात् तुष्यन्ति ॥ ४४६ ॥**

---

झूठ से बढ़कर कोई पाप नहीं है ॥ ४२१ ॥ गुरूजनों की आलोचना नहीं करनी चाहिए ॥ ४२२ ॥ दुष्टता को अंगीकार न करना चाहिए ॥ ४२३ ॥ दुष्ट मनुष्य का कोई मित्र नहीं होता ॥ ४२४ ॥ दरिद्र मनुष्य को जीवन-निर्वाह करना कठिन होता है ॥ ४२५ ॥

दानवीर ही सबसे बड़ा वीर है ॥ ४२६ ॥ गुरु, देवता और ब्राह्मणों में भक्ति रखना मानवता का आभूषण है ॥ ४२७ ॥ विनय सबका आभूषण है ॥ ४२८ ॥ जो कुलीन न होता हुआ भी विनीत हो वह अविनीत कुलीन की अपेक्षा बड़ा है ॥ ४२९ ॥

सदाचार से आयु और यश दोनों की वृद्धि होती है ॥ ४३० ॥ प्रिय होने पर भी अहितकर वाणी को न बोलना चाहिए ॥ ४३१ ॥ अनेक लोगों के विरोधी एक व्यक्ति का अनुगमन नहीं करना चाहिए ॥ ४३२ ॥ दुर्जन व्यक्तियों के साथ अपना भाग्य नहीं जोड़ना चाहिए ॥ ४३३ ॥ कृतार्थ (सफल) नीच पुरुष से सम्बन्ध न करना चाहिए ॥ ४३४ ॥ ऋण, शत्रु और रोग को सर्वथा समाप्त कर देना चाहिए ॥ ४३५ ॥ कल्याण मार्ग पर चलना ही मनुष्य के लिए उत्तम रसायन है ॥ ४३६ ॥

याचक से घृणा न करनी चाहिए ॥ ४३७ ॥ नीच मनुष्य दुष्कर्म कराके, कर्ता को अपमानित करता है ॥ ४३८ ॥ कृतघ्न मनुष्य के लिए नरक के अतिरिक्त कोई गति नहीं है ॥ ४३९ ॥

अपनी उन्नति और अवनति अपनी वाणी के अधीन है ॥ ४४० ॥ वाणी ही विष तथा अमृत की खान है ॥ ४४१ ॥ प्रिय वचन बोलने वाले का कोई शत्रु नहीं है

**स्वधर्महेतुः सत्पुरुषः ।। ४४७ ।। नास्त्यर्थिनो गौरवम् ।। ४४८ ।। स्त्रीणां भूषणं सौभाग्यम् ।। ४४९ ।। शत्रोरपि न पातनीया वृत्तिः ।।४५०।। अप्रयत्नोदकं क्षेत्रम् ।। ४५१ ।। एरण्डमवलम्ब्य कुञ्जरं न कोपयेत् ।।४५२।। अतिप्रवृद्धा शाल्मली वारणस्तम्भो न भवति ।। ४५३ ।। अतिदीर्घोऽपि कर्णिकारो न मुसली ।। ४५४ ।। अतिदीप्तोऽपि खद्योतो न पावकः ।।४५५।। न प्रवृद्धत्वं गुणहेतुः ।। ४५६ ।।**

**सुजीर्णोऽपि पिचुमन्दो न शङ्कुलायते ।। ४५७ ।। यथा बीजं तथा निष्पत्तिः ।। ४५८ ।। यथा श्रुतं तथा बुद्धिः ।। ४५९ ।। यथा कुलं तथाऽऽ-चारः ।। ४६० ।। संस्कृतः पिचुमन्दः सहकारो न भवति ।। ४६१ ।। न चागतं सुखं त्यजेत् ।। ४६२ ।। स्वयमेव दुःखमधिगच्छति ।। ४६३ ।।**

**रात्रिचारणं न कुर्यात् ।। ४६४ ।। न चार्धरात्रं स्वपेत् ।। ४६५ ।। तद् विद्वद्भिः परीक्षेत ।। ४६६ ।। परगृहमकारणतो न प्रविशेत् ।। ४६७ ।। ज्ञात्वाऽपि दोषमेव करोति लोकः ।। ४६८ ।।**

---

।। ४४२ ।। स्तुति से देवता भी प्रसन्न हो जाते हैं ।। ४४३ ।। असत्य दुर्वचन चिर-काल तक स्मरण होता रहता है ।। ४४४ ।। राजा से द्वेष करने वाली बात न बोलनी चाहिए ।। ४४५ ।। काली कोयल के भी, कानों को सुख देने वाले वचन सबको भाते हैं ( कोयल के समान, कानों को सुख देने वाली वाणी का प्रयोग करना चाहिए ) ।। ४४६ ।।

स्वधर्म पर अवस्थित रहने के कारण पुरुष भी सत्यपुरुष हो जाता है ।। ४४७ ।। याचक का कोई गौरव नहीं होता ।। ४४८ ।। सुहाग स्त्री का आभूषण है ।। ४४९ ।। शत्रु की भी जीविका को नष्ट न करना चाहिए ।। ४५० ।। जहाँ बिना प्रयत्न के जल सुलभ हो वही अपना खेत है ।। ४५१ ।। एरण्ड वृक्ष के सहारे पर हाथी को कुपित करना उचित नहीं है ।। ४५२ ।। बहुत बड़ा होने पर भी सेमल के वृक्ष से हाथी को नहीं बाँधा जा सकता ।। ४५३ ।। बहुत बड़ा हुआ भी कनेर का वृक्ष मूसल बनाने के काम में नहीं आता ।। ४५४ ।। जुगुनू कितना भी अधिक चमकीला क्यों न हो, आग का काम नहीं दे सकता ।। ४५५ ।। बहुत बड़ा समृद्धिशाली हो जाने पर भी कोई गुणवान् नहीं हो पाता ।। ४५६ ।।

बहुत पुराना होने पर भी नीम के वृक्ष का सरोता नहीं बन सकता ।। ४५७ ।। जैसा बीज होता है वैसा ही उससे फल उत्पन्न होता है ।। ४५८ ।। योग्यता के ही अनुरूप बुद्धि होती है ।। ४५९ ।। जैसा कुल होता है वैसा ही आचार होता है ।। ४६० ।। कितना ही संस्कार क्यों न किया जाय, नीम आम नहीं बन सकता ।। ४६१ ।। जो सुख प्राप्त हो उसको न छोड़ना चाहिए ।। ४६२ ।। कर्मानुसार ही मनुष्य को दुःख मिलता है ।। ४६३ ।।

रात के समय व्यर्थ न घूमना चाहिए ।। ४६४ ।। आधी रात को शयन न करना

**शास्त्रप्रधाना लोकवृत्तिः ॥ ४६९ ॥ शास्त्राभावे शिष्टाचारमनुगच्छेत् ॥ ४७० ॥ नाचरिताच्छास्त्रं गरीयः ॥ ४७१ ॥**

**दूरस्थमपि चारचक्षुः पश्यति राजा ॥ ४७२ ॥ गतानुगतिको लोकः ॥ ४७३ ॥**

**यमनुजीवेत् तं नापवदेत् ॥ ४७४ ॥ तपःसार इन्द्रियनिग्रहः ॥४७५॥**

**दुर्लभः स्त्रीबन्धनान्मोक्षः ॥ ४७६ ॥ स्त्री नाम सर्वाशुभानां क्षेत्रम् ॥ ४७७ ॥**

**न च स्त्रीणां पुरुषपरीक्षा ॥ ४७८ ॥ स्त्रीणां मनः क्षणिकम् ॥४७९॥ अशुभद्वेषिणः स्त्रीषु न प्रसक्ताः ॥ ४८० ॥**

**यज्ञफलज्ञास्त्रिवेदविदः ॥ ४८१ ॥ स्वर्गस्थानं न शाश्वतं यावत् पुण्यफलम् ॥ ४८२ ॥ न च स्वर्गपतनात् परं दुःखम् ॥ ४८३ ॥ देही देहं त्यक्त्वा ऐन्द्रं पदं न वाञ्छति ॥ ४८४ ॥ दुःखानामौषधं निर्वाणम् ॥४८५॥**

**अनार्यसम्बन्धाद्वरमार्यशत्रुता ॥४८६॥ निहन्ति दुर्वचनं कुलम् ॥४८७॥ न पुत्रसंस्पर्शात् परं सुखम् ॥ ४८८ ॥**

---

चाहिए ॥ ४६५ ॥ विद्वानों के सामने ब्रह्म की चर्चा करनी चाहिए ॥ ४६६ ॥ अकारण दूसरे के घर में न जाना चाहिए ॥ ४६७ ॥ जान-बूझकर भी लोग अपराध ही करते हैं ॥ ४६८ ॥

लोकव्यवहार शास्त्रानुकूल होना चाहिए ॥ ४६९ ॥ शास्त्रज्ञान न होने पर श्रेष्ठ पुरुषों के आचरण का अनुगमन करना चाहिए ॥ ४७० ॥ सदाचार से बड़कर कोई शास्त्र नहीं है ॥ ४७१ ॥

गुप्तचरों के द्वारा राजा दूर की वस्तु को देख लेता है ॥ ४७२ ॥ लोक, परम्परा का अनुगमन करता है ॥ ४७३ ॥

जिसके द्वारा जीविकोपार्जन होता है उसकी निन्दा न करनी चाहिए ॥ ४७४ ॥ इन्द्रियनिग्रह तप का सार है ॥ ४७५ ॥

स्त्री के बन्धन से छुटना बड़ा दुष्कर है ॥ ४७६ ॥ स्त्री समस्त अशुभों की जन्मदात्री है ॥ ४७७ ॥

स्त्री, पुरुष की परीक्षा नहीं कर सकती ॥ ४७८ ॥ स्त्री का मन क्षण-क्षण बदलता रहता है ॥ ४७९ ॥ अशुभ कर्मों को न चाहने वाले लोग स्त्रियों में आसक्त नहीं होते ॥ ४८० ॥

वेदत्रयी ( ऋक्, यजु, साम ) को जानने वाला ही यज्ञ के फल को जानता है ॥ ४८१ ॥ स्वर्गप्राप्ति स्थायी नहीं होती, क्योंकि उसकी अवधि तब तक होती है, जब तक पुण्य का फल शेष रहता है ॥ ४८२ ॥ स्वर्गपतन से बढ़कर दुःख नहीं है ॥ ४८३ ॥ शरीर त्याग करके जीव इन्द्रासन को नहीं चाहता ॥ ४८४ ॥ समस्त दुःखों की औषधि मोक्ष है ॥ ४८५ ॥

**विवादे धर्ममनुस्मरेत् ।। ४८९ ।। निशान्ते कार्यं चिन्तयेत् ।। ४९० ।। प्रदोषे न संयोगः कर्तव्यः ।। ४९१ ।। उपस्थितविनाशो दुर्नयं मन्यते ।। ४९२ ।। क्षीरार्थिनः किं करिण्या ।। ४९३ ।। न दानसमं वश्यम् ।।४९४।। परायत्तेषूत्कण्ठां न कुर्यात् ।। ४९५ ।। असत्समृद्धिरसद्भिरेव भुज्यते ।। ४९६ ।। निम्बफलं काकैरेव भुज्यते ।। ४९७ ।। नाम्भोधिस्तृष्णामपोहति ।। ४९८ ।।**

**बालुका अपि स्वगुणमाश्रयन्ते ।।४९९।। सन्तोऽसत्सु न रमन्ते ।।५००।। हंसः प्रेतवने न रमते ।। ५०१ ।।**

**अर्थार्थं प्रवर्तते लोकः ।। ५०२ ।। आशया बध्यते लोकः ।। ५०३ ।। न चाशापरैः श्रीः सह तिष्ठति ।। ५०४ ।। आशापरे न धैर्यम् ।। ५०५ ।।**

**दैन्यान्मरणमुत्तमम् ।। ५०६ ।। आशा लज्जां व्यपोहति ।। ५०७ ।।**

**न मात्रा सह वासः कर्तव्यः ।। ५०८ ।। आत्मा न स्तोतव्यः ।। ५०९ ।। न दिवा स्वप्नं कुर्यात् ।। ५१० ।। न चासन्नमपि पश्यत्यैश्वर्यान्धो न शृणोतीष्टं वाक्यम् ।। ५११ ।।**

---

अनार्य व्यक्ति की मित्रता से आर्यव्यक्ति की शत्रुता अच्छी है ।। ४८६ ।। दुर्वाणि सारे कुल को नष्ट कर देती है ।। ४८७ ।। पुत्र के आलिंगन से बढ़कर कोई सुख नहीं है ।। ४८८ ।।

विवाद के समय धर्म के अनुसार कार्य करना चाहिए ।। ४८९ ।। नित्य प्रातः-काल अपने ( दिन के ) कार्यों पर विचार करना चाहिए ।। ४९० ।। संध्याकाल में संभोग वर्जित है ।। ४९१ ।। जिसका विनाशकाल निकट होता है वह अन्याय पर उतर आता है ।। ४९२ ।। दूध चाहने वाले को हथिनी की आवश्यकता नहीं होती ।। ४९३ ।। दान के समान कोई वशीकरण नहीं ।। ४९४ ।। परायी वस्तु की इच्छा न करनी चाहिए ।। ४९५ ।। दुर्जनों की समृद्धि को दुर्जन ही भोगते हैं ।। ४९६ ।। नीम के फल को कौवे ही खाते हैं ।। ४९७ ।। समुद्र प्यास नहीं बुझाता ।। ४९८ ।।

बालू भी अपने गुण का अनुसरण करती है ।। ४९९ ।। भले लोग बुरे लोगों से आनन्दित नहीं होते ।। ५०० ।। हंस श्मशान में रहना पसन्द नहीं करते ।। ५०१ ।।

सारा संसार धन के पीछे दौड़ता है ।। ५०२ ।। सभी सांसारिक प्राणी आशा के बन्धन से बँधे है ।। ५०३ ।। आशा में निमग्न पुरुष को लक्ष्मी नहीं मिलती ।। ५०४ ।। आशावान् मनुष्य धैर्यशाली नहीं होता ।। ५०५ ।।

दरिद्र होकर जीवित रहने की अपेक्षा मर जाना ही अच्छा है ।। ५०६ ।। आशा, लज्जा को मिटा देती है ।। ५०७ ।।

एकान्त में माता के भी साथ न रहे ।। ५०८ ।। अपने मुख से अपनी प्रशंसा न करनी चाहिए ।। ५०९ ।। दिन में सोना न चाहिए ।। ५१० ।। ऐश्वर्य में अन्धा मनुष्य न तो अपने समीप की वस्तु को देखता है और न हितकारी बात को सुनता है ।। ५११ ।।

**स्त्रीणां न भर्तुः परं दैवतम् ॥ ५१२ ॥ तदनुवर्तनमुभयसुखम् ॥५१३॥ अतिथिमभ्यागतं पूजयेद् यथाविधिः ॥ ५१४ ॥ नास्ति हव्यस्य व्याघातः ॥ ५१५ ॥ शत्रुर्मित्रवत् प्रतिभाति ॥ ५१६ ॥ मृगतृष्णा जलवद् भाति ॥ ५१७ ॥ दुर्मेधसामसच्छास्त्रं मोहयति ॥ ५१८ ॥ सत्संगः स्वर्गवासः ॥ ५१९ ॥ आर्यः स्वमिव परं मन्यते ॥ ५२० ॥ रूपानुवर्ती गुणः ॥५२१॥ यत्र सुखेन वर्तते तदेव स्थानम् ॥ ५२२ ॥**

**विश्वासघातिनो न निष्कृतिः ॥ ५२३ ॥ दैवायत्तं न शोचेत् ॥ ५२४ ॥ आश्रितदुःखमात्मन इव मन्यते साधुः ॥ ५२५ ॥ हृद्गतमाच्छाद्यान्यद् वदत्यनार्यः ॥ ५२६ ॥ बुद्धिहीनः पिशाचतुल्यः ॥ ५२७ ॥ असहायः पथि न गच्छेत् ॥ ५२८ ॥ पुत्रो न स्तोतव्यः ॥ ५२९ ॥**

**स्वामी स्तोतव्योऽनुजीविभिः ॥ ५३० ॥ धर्मकृत्येष्वपि स्वामिन एव घोषयेत् ॥ ५३१ ॥ राजाज्ञां नातिलङ्घयेत् ॥ ५३२ ॥ यथाऽऽज्ञप्तं तथा कुर्यात् ॥ ५३३ ॥**

**नास्ति बुद्धिमतां शत्रुः ॥ ५३४ ॥ आत्मच्छिद्रं न प्रकाशयेत् ॥५३५॥**

---

स्त्री के लिए पति बढ़कर कोई देवता नहीं है ॥ ५१२ ॥ पति के इच्छानुसार चलने वाली स्त्री को इहलोक और परलोक, दोनों का सुख प्राप्त होता है ॥ ५१३ ॥ अपने यहाँ आये हुए अतिथि का विधिवत् सत्कार करना चाहिए ॥ ५१४ ॥ देवताओं के निमित्त से दिया हुआ द्रव्य कभी भी नष्ट नहीं होता ॥ ५१५ ॥ शत्रु भी कभी मित्र के समान दिखायी देता है ॥ ५१६ ॥ तृष्णा के कारण मृग चमकती हुई बालू को जल समझ बैठता है ॥ ५१७ ॥ दुर्बुद्धि मनुष्य को असत् शास्त्र मोह लेते हैं ॥ ५१८ ॥ सत्संग ही स्वर्गवास है ॥ ५१९ ॥ श्रेष्ठ व्यक्ति सबको अपने ही समान समझता है ॥ ५२० ॥ रूप के अनुसार ही मनुष्य में गुण होता है ॥ ५२१ ॥ जहाँ सुख से रहा जा सके, वही उत्तम स्थान है ॥ ५२२ ॥

विश्वासघाती मनुष्य के उद्धार के लिए कोई प्रायश्चित नहीं ॥ ५२३ ॥ जो बात दैव के अधीन है उसके सम्बन्ध में सोच-विचार न करना चाहिए ॥ ५२४ ॥ सज्जन व्यक्ति आश्रितों के दुःख को अपना ही दुःख समझते हैं ॥ ५२५ ॥ हृदय की बात को छिपाकर बनावटी बातें करने वाला अनार्य है ॥ ५२६ ॥ बुद्धिहीन मनुष्य पिशाच के समान है ॥ ५२७ ॥ बिना साथ के यात्रा न करनी चाहिए ॥ ५२८ ॥ अपने पुत्र की प्रशंसा न करनी चाहिए ॥ ५२९ ॥

सेवक लोगों को चाहिए कि वे अपने स्वामी का गुणगान करते रहें ॥ ५३० ॥ अपने धर्मकार्यों में भी वे स्वामी का गुणगान करते रहें ॥५३१॥ राजा की आज्ञा का कभी भी उल्लंघन न करना चाहिए ॥ ५३२ ॥ उसकी जैसी आज्ञा हो तदनुसार करना चाहिए ॥ ५३३ ॥

बुद्धिमान् मनुष्य का कोई शत्रु नहीं है ॥ ५३४ ॥ अपनी गुप्त बात किसी पर

**क्षमावानेव सर्वं साधयति ॥ ५३६ ॥ आपदर्थं धनं रक्षेत् ॥५३७॥ साहसवतां प्रियं कर्तव्यम् ॥ ५३८ ॥**

**श्वः कार्यमद्य कुर्वीत ॥ ५३९ ॥ आपराह्णिकं पूर्वाह्ण एव कर्तव्यम् ॥ ५४० ॥**

**व्यवहारानुलोमो धर्मः ॥५४१॥ सर्वज्ञता लोकज्ञता ॥ ५४२ ॥ शास्त्रज्ञोऽप्यलोकज्ञो मूर्खतुल्यः ॥ ५४३ ॥ शास्त्रप्रयोजनं तत्त्वदर्शनम् ॥ ५४४ ॥ तत्त्वज्ञानं कार्यमेव प्रकाशयति ॥ ५४५ ॥**

**व्यवहारे पक्षपातो न कार्यः ॥ ५४६ ॥ धर्मादपि व्यवहारो गरीयान् ॥ ५४७ ॥ आत्मा हि व्यवहारस्य साक्षी ॥ ५४८ ॥ सर्वसाक्षी ह्यात्मा ॥ ५४९ ॥ न स्यात् कूटसाक्षी ॥ ५५० ॥ कूटसाक्षिणो नरके पतन्ति ॥ ५५१ ॥ प्रच्छन्नपापानां साक्षिणो महाभूतानि ॥ ५५२ ॥ आत्मनः पापमात्मैव प्रकाशयति ॥ ५५३ ॥ व्यवहारेऽन्तर्गतमाचारः सूचयति ॥ ५५४ ॥**

**आकारसंवरणं देवानामशक्यम् ॥ ५५५ ॥**

**चोरराजपुरुषेभ्यो वित्तं रक्षेत् ॥ ५५६ ॥ दुर्दर्शना हि राजानः प्रजाः नाशयन्ति ॥ ५५७ ॥**

---

प्रकट न करनी चाहिए ॥ ५३५ ॥ क्षमाशील मनुष्य अपना सब कार्य साध लेता है ॥ ५३६ ॥ आपत्काल के लिए धन की रक्षा करनी चाहिए ॥ ५३७ ॥ साहसी पुरुष कर्तव्यप्रिय होता है ॥ ५३८ ॥

जो कार्य कल करना है, उसको आज ही कर लेना चाहिए ॥ ५३९ ॥ जो कार्य दोपहर के बाद करना है उसको दोपहर के पहले ही कर लेना चाहिए ॥ ५४० ॥

व्यवहार के अनुसार ही धर्म होता है ॥ ५४१ ॥ सांसारिक बातों का ज्ञाता ही सर्वज्ञ कहलाता है ॥ ५४२ ॥ शास्त्रज्ञ होता हुआ भी जो लोकज्ञ न हो, वह मूर्ख के समान है ॥ ५४३ ॥ यथार्थ ज्ञान की प्राप्ति ही शास्त्र का प्रयोजन है ॥ ५४४ ॥ कार्य ही यथार्थ ज्ञान के प्रकाशक हैं ॥ ५४५ ॥

व्यवहार ( न्याय ) में पक्षपात न करना चाहिए ॥ ५४६ ॥ व्यवहार धर्म से भी बड़ा होता है ॥५४७॥ व्यवहार का साक्षी आत्मा है ॥ ५४८ ॥ समस्त प्राणियों में आत्मा साक्षीरूप में विद्यमान रहता है ॥ ५४९ ॥ कपट-साक्षी न होना चाहिए ॥ ५५० ॥ झूठे साक्षी नरक में जाते हैं ॥ ५५१ ॥ छिपकर किये गये पापों के साक्षी पंच महाभूत ( पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश ) हैं ॥ ५५२ ॥ अपने पापों को पापी स्वयमेव प्रकट करता है ॥ ५५३ ॥ व्यवहार के समय मन की बात को आकृति ही प्रकट कर देती है ॥ ५५४ ॥

मनोगत भावों की अभिसूचक आकृति को देवता भी नहीं छिपा सकते ॥५५५॥

चोरों और राजपुरुषों से अपने धन की रक्षा करनी चाहिए ॥ ५५६ ॥ जिन

सुदर्शना हि राजानः प्रजा रञ्जयन्ति ॥ ५५८ ॥ न्याययुक्तं राजानं मातरं मन्यन्ते प्रजाः ॥ ५५९ ॥ तादृशः स राजा इह सुखं ततः स्वर्गमाप्नोति ॥ ५६० ॥

अहिंसालक्षणो धर्मः ॥ ५६१ ॥ स्वशरीरमपि परशरीरं मन्यते साधुः ॥ ५६२ ॥ मांसभक्षणमयुक्तं सर्वेषाम् ॥ ५६३ ॥

न संसारभयं ज्ञानवताम् ॥ ५६४ ॥ विज्ञानदीपेन संसारभयं निवर्तते ॥ ५६५ ॥

सर्वमनित्यं भवति ॥ ५६६ ॥ कृमिशकृन्मूत्रभाजनं शरीरं पुण्यपापजन्महेतुः ॥ ५६७ ॥ जन्ममरणादिषु दुःखमेव ॥ ५६८ ॥

तेभ्यस्ततुं प्रयतेत ॥ ५६९ ॥ तपसा स्वर्गमाप्नोति ॥ ५७० ॥ क्षमायुक्तस्य तपो विवर्धते ॥५७१॥ तस्मात् सर्वेषां कार्यसिद्धिर्भवति ॥५७२॥

इति चाणक्यसूत्राणि

—: ० :—

---

राजाओं के दर्शन, प्रजा को कठिनाई से प्राप्त होते हैं उसकी प्रजा नष्ट हो जाती है ॥ ५५७ ॥

जो राजा बराबर प्रजा के सुख-दुःख को सुनते हैं उनसे प्रजा प्रसन्न रहती है ॥ ५५८ ॥ न्यायपरायण राजा को, प्रजा माता के समान मानती है ॥ ५५९ ॥ इस प्रकार का प्रजाप्रिय राजा ऐहिक सुख और पारलौकिक स्वर्ग को प्राप्त करता है ॥ ५६० ॥

अहिंसा ही धर्म है ॥ ५६१ ॥ सज्जन पुरुष अपने शरीर को भी पराया ही मानते हैं ॥ ५६२ ॥ मांस-भक्षण सबके लिए अनुचित है ॥ ५६३ ॥ ज्ञानी पुरुषों को संसार का भय नहीं होता ॥ ५६४ ॥ विज्ञान ( ब्रह्मज्ञान ) के दीपक से संसार-भय भाग जाता है ॥ ५६५ ॥

यह दिखायी देने वाला सब कुछ अनित्य है ॥ ५६६ ॥ कृमि-कीट तथा मल-मूत्र का घर शरीर पुण्य-पाप का जन्मस्थल है ॥ ५६७ ॥ यह जन्म-मरण आदि दुःख ही दुःख है ॥ ५६८ ॥

इस जन्म-मरणादि से छुटकारा पाने का उपाय करना चाहिए ॥ ५६९ ॥ सब से स्वर्ग की प्राप्ति होती है ॥ ५७० ॥ क्षमाशील पुरुष का तप बढ़ता रहता है ॥ ५७१ ॥ तपश्चर्या से सबके कार्य सिद्ध होते हैं ॥ ५७२ ॥

चाणक्यसूत्र समाप्त

—: ० :—

# पारिभाषिक शब्दावली

प्राचीन भारत की राजनीति और शासन के क्षेत्र में आचार्य कौटिल्य का **अर्थशास्त्र** एक विश्वकोश जितना महत्त्व रखता है। उसमें धर्म, कर्म, शिक्षा, नीति, समाज, विज्ञान, कृषि, चिकित्सा और यहाँ तक कि मन्त्र-तन्त्र आदि जितने भी विषय हैं उन सभी का समावेश है। इस सर्वांगीण और सर्वतोमुखी विशिष्टता के कारण **अर्थशास्त्र** की शब्दावली में अनेकता के दर्शन होते हैं।

अर्थशास्त्र-विषयक पुरातन उद्देश्य को दृष्टि में रख कर यहाँ लगभग पौने आठ सौ शब्दों की एक सूची इस हेतु दी जा रही है कि शासन के विभिन्न क्षेत्रों में अंग्रेजी शब्दों के स्थान पर जो भारतीय भाषाओं और विशेषतया संस्कृत भाषा के शब्दों का नवीनीकरण हुआ है, **अर्थशास्त्र** के पाठकों को उसकी जानकारी प्राप्त हो सके।

प्राचीन अर्थशास्त्र का महत्त्व वर्त्तमान शासन-संबंधी सभी कार्यक्षेत्रों में व्याप्त है। इस दृष्टि से और आचार्य कौटिल्य की सर्वथा वैयक्तिक विचारधारा को समझने के लिए भी यह पारिभाषिक शब्दावली उपयोगी सिद्ध होगी।

यह शब्दावली सरकार के शिक्षा-विभाग से तैयार की गयी पारिभाषिक शब्द-सूचियों, श्री मोनियर विलियम्स, श्री वामन शिवराम आप्टे, श्री लक्ष्मण शास्त्री, राहुलजी तथा डा० रघुवीर के शब्दकोशों, डा० शामशास्त्री, एवं महामहोपाध्याय गणपति शास्त्री कृत **अर्थशास्त्र** के अंग्रेजी, संस्कृत अनुवादों और डा० जायसवाल की पुस्तक **हिन्दू पॉलिटी** पर आधारित है।

## अ

**अंकनी**—लेखनी–पेंसिल

**अंकयमित**—मुहर लगा पत्र–स्टांप्ड

**अंकेक्षित लेखा**—लेखा-परीक्षक द्वारा जाँच किया हुआ हिसाब–ऑडिटेड एकाउंट

**अंगरक्षक**—शरीररक्षक–बॉडीगार्ड

**अंतग्रस्त**—विपत्तिग्रस्त–इंवाल्व्ड

**अंतपाल राज्य**—दो देशों की सीमाओं के बीच स्थित राज्य–बफर स्टेट

**अंतरंग सचिव**—निजी सचिव–प्राइवेट सेक्रेटरी

**अंतर्वाणिज्य**—आभ्यंतर व्यापार–इंटरनल ट्रेड

**अंतिमेत्थम्**—अंतिम चेतावनी–अल्टिमेटम

**अंशधर**—हिस्सेदार–शेयर होल्डर

**अकृतक्षेत्र**—कृषि के अयोग्य भूमि

**अकृषित**—जो भूमि जोती-बोई न गई हो–अनकल्टिवेटेड

**अक्ष**—धुरी–एक्सिस

**अक्षपटल**—आय-व्यय के लेखे का प्रधान, विभाग या कर्मचारी

( **पटल**—अधिदेवन )

**अक्षपटलाध्यक्ष**—महागणक, महागणनिक–एकाउंटेंट जनरल

**अक्षशाला**—सुवर्ण आदि का शोधन करने एवं गणना करने वालों का स्थान

**अग्निवारक**—अग्नि का प्रभाव रोकने वाला—फायरप्रूफ

**अग्निशामक**—अग्नि को शांत करने वाला—फायरब्रिगेड

**अग्रदाय**—इम्प्रेस्ड

**अग्रदाय धन**--इस्प्रेस्ड मनी

**अग्रसर**—आगे बढ़ा हुआ—फारवर्ड

**अग्रसारित**—आगे बढ़ा दिया गया पत्र आदि—फॉरवर्डेड

**अटवीबल**—कोल-भील लोगों की सेना

**अणुदर्शी**—सूक्ष्मदर्शी—माइक्रोस्कोप

**अति उत्पादन**—खपत या माँग से अधिक मात्रा में पण्य वस्तुओं का उत्पादन —ओवर प्रॉडक्शन

**अतिचरण**—सीमा का उल्लंघन—टांसग्रेसन

**अत्यय**—वैध अर्थदण्ड

**अद्यावधिक**—आज तक का—अप-टु-डेट

**अधमर्ण**—जिसने किसी से ऋण लिया हो, कर्जदार—डेटर

**अधिकर**—अतिरिक्त कर-सुपर टैक्स

**अधिकरण**—आधार विषय

**अधिकर्ता**—निदेशक; संचालक—डाइरेक्टर

**अधिकर्मी**—अधिकारी—ओवरसीयर

**अधिकार**—कार्यभार—सर चार्ज

**अधिकारपत्र**—शासत द्वारा प्राप्त पत्र—चार्टर

**अधिकारिक सेना**—विजित देश पर तब तक अधिकार बनाये रखनेवाली सेना, जब तक कि नियमित शासन व्यवस्था कायम नहीं हो जाती—आरमी आफ आकुपेशन

**अधिकारी**—पदाधिकारी—अफसर

**अधिकारी राज्य**—कर्मचारी तन्त्र—ब्यूरोक्रेसी

**अधिकोष**—रुपया जमा करने और माँगने पर व्याज सहित लौटा देने वाली संस्था—बैंक

**अधिग्रहण**—अधिकार या अभियाचन द्वारा किसी की संपत्ति आदि को ले लेना—ऐक्विजिशन

**अधिदेय**—भत्ता—अलाउन्स

**अधिनायक**—तानाशाह—डिक्टेटर

**अधिनियम**—पारित विधि—ऐक्ट

**अधिपत्र**—लिखित आदेश—वारंट

**अधिप्रभार**-निर्धारित परिणाम से अधिक शुल्क—ओवरचार्ज

**अधिभार**—अधिक कर—सरचार्ज

**अधिमास**—मलमास—लीप-ईयर

**अधियुक्त**—नियोजित—एम्प्लॉयड

**अधिराज्य**—स्वतंत्र उपनिवेश—डोमीनियन

**अधिवक्ता**—वकील—एडवोकेट

**अधिवारन**—डामिसियल

**अधिविन्ना**—प्रथम विवाहिता पत्नी

**अधिशिक्षक**—मुख्य अधिष्ठाता—रेक्टर

**अधिशेष**—बचत—सरप्लस

**अधिष्ठाता**—नियामक अधिकारी—प्रसाइडिंग आफिसर

**असूधिचना**—अधिकृत सूचना—नोटिफिकेशन

**अधीक्षक**—कार्यालय या विभाग का अधिकारी—सुपरिंटेंडेंट

**अध्यक्ष**—प्रमुख—चेयरमैन

**अध्यर्थित**—क्लेम्ड

**अध्यर्थी**—दावेदार—क्लेमेंट

**अध्यादेश**—विशेष स्थिति में लागू किया गया आदेश–आर्डिनेंस

**अध्यारोप**—इम्त्यूटेशन

**अनय**—दुष्टनीति

**अनर्हता**—अयोग्यता–डिस्क्वालिफिकेशन

**अनारूढ**—पैदल–डिस्माउण्टेड

**अनावर्त्तक**—जो (अनुदान) एक ही बार दिया जाय–नॉन-रेकरिंग

**अनावर्ती**–फिर न लौटनेवाला–एपीरिओ-डिक

**अनीकस्थ**—निपुण हस्तिशिक्षक

**अनीकिनी**—सेना का सबसे बड़ा भाग, जिसमें १०-१५ हजार सैनिक हों –डिवीजन

**अनुग्रह**—राजा के द्वारा प्रजा को प्रदत्त उपकार

**अनुग्रह परिहार**—आर्थिक रियायतें

**अनुग्रहधन**—सेवा का उपहार–ग्रेचुइटी

**अनुच्छेद**—संविदा आदि का वह विशिष्ट अंश, जिसमें एक विषय और उसके प्रतिबंधों आदि का उल्लेख हो–पैराग्राफ

**अनुज्ञप्ति**—अनुज्ञापत्र–लाइसेंस

**अनुज्ञाधारी**—लाइसेंसदार

**अनुदेश**—हिदायत–इंस्ट्रक्शन

**अनुपूरक**—छूट या कमी को पूरा करने के लिए बाद में बढ़ाया हुआ–सप्लि-मेंटरी

**अनुबन्ध**--बंधान–क्रॉन्ट्रक्ट

**अनुबन्ध पत्र**—करारनामा–इंडेंचर

**अनुबल**—पृष्ठरक्षक सेना–रेयरगार्ड

**अनुभाजन**—ऐपोर्शन

**अनुरक्षक**—एस्कोर्ट

**अनुवेशपत्र**—परीक्षित पारपत्र–वीजा

**अनुशय**—क्रय-विक्रय–संबंधी विवाद

**अनूप**—जलमय प्रदेश

**अनैतिक**—इम्मोरल

**अनौपचारिक**—इनफारमल

**अन्तपाल**—सीमान्त अधिकारी

**अन्तर्वंशिक**–अन्त:पुर का प्रमुख अधिकारी

**अन्तर्धि**—शत्रु तथा विजिगीषु के बीच का राज्य

**अपचारक**—दूसरे की सीमा में अनधि-कार प्रवेश–ट्रेसपासर

**अपर न्यायाधीश**—अतिरिक्त न्यायाधीश –एडीशनल जज

**अपर सचिव**—अतिरिक्त सचिव–एडिश-नल सेक्रेटरी

**अपराधी**—दोषी–गिल्टी

**अपरिदेय**—जिसकी अदला-बदली न की जा सके–नॉन-ट्रांसफरेबल

**अपलाभ**—अनुचित लाभ–प्रोफिटियरिङ्ग

**अपहार**–प्राप्त आय को खाते में न चढ़ाना निर्धारित धन का व्यय न करना और बचत धन का अपव्यय करना

**अपेक्षाभूमि**—परती भूमि–फालोलैंड

**अप्रतिभाव्य**—वह अपराध, जिसमें किसी के जामिन बनने या जमानत देने को तैयार होने पर भी अपराधी को अस्थायी रूप से रिहा कर देने की गुञ्जायश न हो–नॉन-बेलेबिल

**अप्रत्यक्षकर**—जो कर विक्रेय वस्तुओं की बढ़ी हुई कीमत के रूप में उप भोक्ताओं से लिया जाता है–इण्डाइ-रेक्ट टैक्स

**अप्रत्यादेय**—जो फिर प्राप्त या वसूल न किया जा सके–ईरिकव्हरेबिल

**अप्राप्तव्यवहार**—नाबालिग
**अभक्ति**—अश्रद्धा–डिस्लोयल्टी
**अभिकथन**—अप्रमाणित आरोप–एलेगेशन
**अभिकरण**—अभिकर्ता के कार्य करने का स्थान–एजेंसी
**अभिकर्ता**—कार्यवाहक, घटक–एजेंट
**अभिग्रहण**—अपना कहकर स्वीकार करना–एक्वीजीशन
**अभिज्ञा**—मान्यता–रेकॉगनिशन, आइडेण्टिटी
**अभिज्ञात**—मान्यता प्राप्त–रेकॉगनाइज्ड
**अभिज्ञान**—पहिचान–आइडेण्टिफिकेशन
**अभिज्ञापक**—उद्घोषक–एनाउंसर
**अभिज्ञापत्र**–पहचान पत्र–आइडेण्टिटी-कार्ड
**अभिधान**—कथन–एपीलेशन्स
**अभिनिर्णय**—अन्तिम निर्णय–वर्डिक्ट
**अभिन्यास**—किसी योजना के अनुसार गृह, उद्यान आदि का निर्माण करना–ले-आउट
**अभिभावक**—संरक्षक–गार्जियन
**अभियन्ता**—यन्त्रविद–इंजीनियर
**अभियान**—आक्रमण करने की क्रिया
**अभियोक्ता**—वादी–कॉम्प्लिनेण्ट
**अभियोग**—दोषारोपण–ऐक्यूजेशन
**अभिवक्ता**—वकील–प्लीडर
**अभिरक्षक**—सुरक्षा की दृष्टि से किसी वस्तु या व्यक्ति को अपने संरक्षण में रखने वाला–कस्टोडियन
**अभिरक्षा**—हिरासत–कस्टोडी
**अभिलेख**—रिकार्ड
**अभिलेख कार्यालय**—रिकार्ड आफिस
**अभिलेखपाल**—कीपर आफ रिकार्ड्स
**अभिषद्**—सीनेट की प्रबन्ध समिति –सिण्डिकेट
**अभिसूचना**—हिदायत–इंस्ट्रक्शन
**अभिस्रावणी**—भट्ठी–डिस्टलरी
**अभुक्त**—जिसका उपभोग या भुगतान न किया गया हो–अनकैश्ड
**अभ्यंश**—नियतांश–कोटा
**अभ्यस्त अपराधी**—आदतन दोषी –हैबिचुअल ऑफेण्डर
**अभ्युक्ति**—टीका–रिमार्क
**अभ्युद्देश**—रिफ्रेन्स
**अम्ल**—तेजाब–एसिड
**अमित्रसंपत्**—शत्रु के प्रमुख दोष
**अय**—अभीष्ट फल की प्राप्ति
**अराजक**—बिना शासक वाली आदर्शवादियों की शासन-प्रणाली
**अर्थदूषण**—आर्थिक क्षति
**अर्थशास्त्र**—पृथिवी की प्राप्ति और पालन का प्रतिपादन करने वाली विद्या
**अर्थापन**—व्याख्या–इण्टरप्रेटेशन
**अर्हता**—योग्यता–क्वालिफिकेशन
**अवकाशग्रहण**–विश्राम लेना–रिटायरमेंट
**अवज्ञा**—अवहेलना–डिस्-ओविडिएंस
**अवधाता**—वह व्यक्ति जो असली मालिक की अविद्यमानता में मकान आदि की निगरानी करे–केयरटेकर
**अवधायी सरकार**—अवधायक सरकार वह सरकार, जो निर्वाचन होने के बाद नई सरकार के कार्यभार ग्रहण कर लेने तक शासन-व्यवस्था की निगरानी करती है–केयरटेकर गवर्नमेंट
**अवधान**—देखभाल–केयर

**अवधायक अधिकारी**—किसी कार्य या कार्यालय का अधिकारी–आफिस इनचार्ज

**अवमान**—अवज्ञा–कंटेम्प्ट

**अवमूल्यन**—किसी सरकार द्वारा अन्य देशों की मुद्राओं की तुलना में अपने देश की मुद्रा का मूल्य घटा दिया जाना–डीवेलुएशन

**अवयस्क**—नाबालिग (१८ वर्ष से कम) –माइनर

**अवर**—जूनियर

**अवरागार**—लोकसभा–लोअर हाउस

**अवरुद्ध**—नजरबन्द

**अवरोधन भत्ता**—रूकोनी भत्ता–डिटेंशन अलाउंस

**अवशेष**—बचा हुआ–बैलेंस ओपनिंग

**अवेक्षण**—लुक आउट

**अवैतनिक**—ऑनरेरी

**अवैध**—नियमविरुद्ध–इल्लीगल

**अवसर ग्रहण**—अवसर प्राप्त-रिटायरमेंट

**अवस्थान प्रक्रम**—ठहरने का स्थान –स्टेशन

**अवहार**—छूट ( कर )–रिबेट

**अव्ययित शेष**—किसी काम के लिए निर्धारित या जमा किये हुए धन का वह अंश, जो व्यय न किये जाने के कारण बच गया हो–अनस्पेंट बैलेंस

**अशोधित शेष**—किसी ऋण आदि का वह बचा हुआ अंश जिसका भुगतान या अदायगी न हुई हो–अनरिडीम्ड बैलेंस

**अष्टकुल**—आठ सदस्यों की न्यायकारी काउंसिल

**असैनिक**—सिविल

**असैनिकीकरण**—किसी स्थान या क्षेत्र को सैन्यविहीन कर देना–डीमिलिटैरिजेशन

**अस्थायी संधि**—आर्मिस्टिस

## आ

**आकाशी**—एरियल

**आक्रय**—फेरीवाला–हॉकर

**आख्यापक**—अनाउंसर

**आख्यापना**—अनाउंसमेंट

**आज्ञप्ति**—दीवानी मुकदमे में न्यायालय द्वारा दिया गया निर्णय–डिग्री

**आतिथ्य शुल्क**—आयात माल पर कर

**आतंक युद्ध**—प्रचार आदि के द्वारा ऐसा आतंक उत्पन्न कर देना कि जिससे शत्रु का साहस और युद्ध-क्षमता क्षीण पड़ जाय–वार ऑफ नर्व्ज

**आदेय**—वह धन, जो दूसरों से मिलना हो या जो अपनी संपत्ति बेच कर प्राप्त किया जाय–असेट्स

**आधि**—धरोहर–पॉन

**आधिकारिक**—सरकारी–ऑफिसियल

**आन्वीक्षकी**—आत्मविद्या

**आपत्सहायकार्य**—दुष्काल या बाढ़, भूकंप आदि के संकट-काल में, आर्त तथा असहाय जनता की सहायता के लिए आरंभ किया गया सार्वजनिक निर्माण कार्य–रिलीफ वर्क

**आपात**—आकस्मिक संकट–इमर्जेंसी

**आपृच्छा**—रेफरेंडम

**आबकारी**—एक्साइज

**आभारोक्ति**—एक्नॉलेजमेंट

**आयकर**—इनकम टैक्स

**आयकर अधिकारी**—इनकम टैक्स आफिसर
**आयात शुल्क**—इम्पोर्ट ड्यूटी
**आयात**—इम्पोर्ट
**आयाम**—माप—डाइमेन्शन्स
**आयव्ययक**—किसी निश्चित अवधि के आय-व्यय का लेखा—बजट
**आयुक्त**—कमिश्नरी का प्रधान अधिकारी —कमिश्नर
**आयोग**—किसी विशेष कार्य को संपन्न करने के लिए नियुक्त व्यक्तियों का मंडल—कमीशन
**आयोजना**—प्लानिंग
**आरक्षक**—आरक्षी—पुलिस
**आरक्षण**—रिजर्वेशन
**आरक्षित शायिका**—रिजर्व्ड बर्थ
**आलोचना**—गुण-दोष विवेचन—कॉमेंट
**आवक**—इनवार्ड
**आवर्त्त**—रिवोलूशन
**आवर्त्तक**—आवर्ती, बार-बार दिया जाने वाला ( अनुदान )—रेकरिंग
**आविस पत्र**—मैनिफेस्टो
**आशुपत्र**—एक्सप्रेस लेटर
**आशुलिपिक**—स्टेनोग्राफर
**आहर्त्ता**—ड्रावर
**आसेध**—कुर्की—अटैचमेंट
**आहार्यी**—ड्रावी
**आह्वान पत्र**—समन—समंस

**इ**

**इतिवृत्त पत्रक**—हिस्ट्री शीट
**इतिशेष**—बैलेंस क्लोजिंग

**उ**

**उच्च न्यायालय**—हाईकोर्ट
**उच्चाधिकारी**—हाई कमान
**उच्चायुक्त**—हाई कमिश्नर
**उत्कोच**—रिश्वत—ब्राइड
**उत्तमर्ण**—महाजन—क्रेडिटर
**उत्तराधिकारी**—हेयर
**उत्तोलक**—ऊपर उठाकर तौलने वाला यन्त्र—लीवर
**उत्थानक**—ऊपर-नीचे चढ़ाने-उतारने वाला विजली का आसन—लिफ्ट
**उद्ग्रहण**—उगाहना—लेवी
**उद्योगशाला**—कारखाना-फैक्ट्री
**उन्मोचन**—बन्धनमुक्त या ऋणमुक्त —डिसचार्ज
**उप**—डिप्टी
**उप उच्चायुक्त**—डिप्टी हाई कमिश्नर
**उपकर**—एक तरह का छोटा कर, जो विविध वस्तुओं पर विभिन्न स्थितियों में लगाया जाता है—सेस
**उपकुलपति**—कुलपति के मातहत—प्रो-वाइसचांसलर
**उपजीव**—मानना या धर्म आदि का पालन करना (राज शब्दोपजीवी = राजा की उपाधि धारण करने वाला संघ, शस्त्रोपजीवी = जो संघ अस्त्र-शस्त्रों का व्यवहार करता था अथवा युद्धकला में निपुण होता था)
**उपनिदेशक**—डिप्टी डाइरेक्टर
**उपनिवेश**—दूसरे देशों में अपनी बस्ती वसाना या नई बस्ती वसाना—कॉलोनिजेशन
**उपनौबलाध्यक्ष**—वाइस एडमिरल
**उपपंजीयक**—सब रजिस्ट्रार
**उपपत्ति**—थ्योरी

**उपप्रस्ताव**—मोशन
**उपमुख्य**—डिप्टी चीफ
**उपमुख्य लेखा-अधिकारी**—डिप्टी चीफ अकाउण्ट आफिसर
**उपबन्ध**—शर्तक-कांडिशन
**उपयोजक**—एडाप्टर
**उपशुल्क**—उपकर-रेण्ट
**उपसञ्चालक**—डिप्टी डायरेक्टर
**उपसंहरण**—घटाना, कम करना-आबेट
**उपस्कर**—मसाला-इक्युप्मेंट

ऋ

**ऋणबन्धनपत्र**—रुक्का-प्रो-नोट

औ

**औपचारिक**—दिखाऊ-फारमल
**औरस**—विवाहिता पत्नी से उत्पन्न पुत्र

क

**कक्ष**—सेना के पश्चाद् भाग के दोनों पार्श्व
**कण्टकशोधन**—समाज-अहितकारी लोगों का दमन
**कण्टिका**—आलपीन-पिन
**कण्टिकाधार**—पिनकुशन
**कर**—चुङ्गी-इम्पोस्ट
**करण**—न्यायालय में बयान लिखने वाला-क्लर्क
**करणिक**—क्लर्क
**करणिक प्रधान**—हेडक्लर्क
**करणिक मुख्य**—चीफ क्लर्क
**करणिक सहायक**—असिस्टेण्ट क्लर्क
**कर निर्धारक**—असेसर
**कर्णपाल**—क्वाटर मास्टर
**कर्मक**—पर्सनल (वर्ग)
**कर्मकार**—वर्कमैन
**कर्मशाला**—वर्कशाप
**कर्मान्त**—कारखाना
**कल्पना**—दन्तकथा पुराणकथा-मेथ
**कारागारिक**—कारापाल-जेलर
**कार्तान्तिक**—यमपट दिखाकर जीविकोपार्जन करने वाला ज्योतिषी
**कार्मिक**—गणना विभाग का कर्मचारी
**कार्यकारी अभिकर्ता**—ऐक्टिङ्ग एजेण्ट
**कार्यनायक**—चार्ज डी-एफेयर्स
**कार्य-परिषद्**—काउन्सिल आफ ऐक्शन
**कार्यपुस्तक**—काल बुक
**कार्यभारी**—इञ्चार्ज
**कार्यवाहक**—ऐक्टिङ्ग
**कार्यवाहक प्रभारी**—इञ्चार्ज
**कुटीर शिल्प**—छोटा उद्योग-काटेज इंडस्ट्री
**कुलपति**—वाइसचांसलर
**कुलिक**—पौर का न्यायाधीश, गणराज्य में निर्णय करने वाली संस्था
**कूटरूप**—जाली सिक्का
**कूटशासन**—कपट लेख या जाली दस्तावेज
**कूटसाक्षी**—झूठा गवाह
**कृतिस्वामित्व**—सर्वाधिकार-कॉपीराइट
**कृष्य**—जो भूमि जोती-बोई जा सके-कल्टिवेटेबिल
**केन्द्र निदेशक**—स्टेशन डाइरेक्टर
**कोशसंपत**—राजकोश के उत्कृष्ट गुण
**कोष्ठागार**—सरकारी अन्नसंग्रह का स्थान
**क्षति सर्वेक्षण**—डेमेज सर्वे
**क्षय**—अल्प आय और अधिक व्यय
**क्षेत्रीय न्यायालय**—रीजनल कोर्ट

ख

**खण्ड निरीक्षक**—ब्लाक इन्सपेक्टर

**ख्यापना**—ऐलान-अनाउंसमेंट

**ग**

**गण**— संस्था, सिनेट, कंपनी

**गणक, गाणनिक**—आय-व्यय लेखक-एकाउण्टेण्ट

**गणना**—लेखा-अकाउण्ट

**गणनाफलक**—खिड़की-काउण्टर

**गणिकाध्यक्ष**—वेश्याओं पर अनुशासन रखने वाला अधिकारी

**गति निदेशक**—मूवमेंट डाइरेक्टर

**गुटिकाधार**—बाल बेयरिंग

**गुणांकन**—स्कोरिंग

**गुल्म**—रक्षकदल-प्लाटून

**गृहपति**—छात्राभिरक्षक-वार्डन

**गृहरक्षक**—होमगार्ड

**ग्रन्थागारिक**—पुस्तकालय का अध्यक्ष —लाइब्रेरियन

**ग्रन्थि**—गिल्टी-ग्लैंड

**ग्रामकूट**—गाँव का मुखिया

**ग्राम गामणिक**—किसी गाँव या नगर का निर्वाचित राजा या सभापति

**ग्रामणी**—गाँव का मुखिया

**ग्रामिक**—ग्रामपाल

**घ**

**घट्टकर**—नावकर-फेरी टॉल

**च**

**चमू**—मण्डल-डिवीजन

**चारक**—हवालात

**चालक**—ड्राइवर

**चिकित्सा अधिकारी**—मेडिकल आफिसर

**चित्राधार**—अलबम

**छ**

**छंद**—मत-वोट

**छंदक**—संमति-रेफरेन्डम (Referedum)

**छंदाधिकार**—मताधिकार

**छद्मनाम**—कपटनाम-प्यूडोनिक

**छद्मयुद्ध**—कपट युद्ध-शैम फाइट

**ज**

**जनित्र**—जेनेरेटर

**जनन**—उत्पादन-रिप्रोडक्शन

**जनसम्पर्काधिकार**—जनता से सम्पर्क बनाये रखनेवाला सरकारी अधिकारी-पब्लिक रिलेशन आफिसर

**जल परिवहन विधि**—एडमिरेलिटी ला

**जानपद**—देशसंघ

**जानपद सैन्य**—देशरक्षक सेना-मिलीशिया

**जीवनरक्षक पेटी**—डूबने से बचने के लिए बाँधी जाने वाली ऐसी पेटी जिसमें हवा भरी रहती है या बड़ा सा कार्क लटकता रहता है-लाइफ बेल्ट

**ज्ञप्ति, प्रज्ञप्ति**—सूचना

**ज्ञात कुल**— डिस्क्रिप्ट

**ज्वलनांक**—फायर पोइंट

**ज्वालक**—बर्नर

**ट**

**टंकशाला**—टकसाल-मिंट

**ड**

**डमर**—विप्लव

**डिम्ब**—प्रजा-विप्लव

**त**

**तर्जनी**—देशिनी प्रदेशिनी-इण्डैक्स फिंगर

**तीर्थ**—विभागीय अध्यक्ष

**तुन्नवाय**—दर्जी

**तुलनपत्र**—बैलेंस शीट

द

**दण्डपाल**—सेनाध्यक्ष

**दण्डाधीश**—दण्डाधिकारी–मजिस्ट्रेट

**दशकुली**—दस परिवारों का संघ

**दशग्रामी**—दस गाँवों का समुदाय

**दाति**—वितरण–डेलीवरी

**दाय**—रिक्थ–इन्हेरिटेंस

**दायाद**–पिता की संपत्ति का उत्तराधिकारी

**दिक्सूचक**—कुतुबनुमा–कम्पास

**दिविर**—मुंशी–रजिस्ट्रार-एक्चुअरी

**दुरभियोजन**—किसी को हानि पहुँचाने के लिये की जाने वाली गुप्त कार्यवाही–प्लाट

**दुर्ग रक्षक सेना**—दुर्गनिवेश–गारिजन

**दूरमुद्रक**—टेलिप्रिंटर

**दूष्य**—राजद्रोही

**द्रावक**—फ्लस्क

**द्विनेत्री**—दूरबीन–बाइनोकुलर

**द्वैराज्य**—दो शासकों वाला राज

ध

**धनादेश**—चेक

**धरण**—सहारा–गर्डर

**धर्मस्थ**—दीवानी कचहरी का न्यायाधीश

**धर्मस्व**—प्राभृत–इन्डोमेंट

**धारक**—कीपर

**धारणिक**—कर्जदार

**धारा**—दफा–सेक्शन

**धारिता**—मता–कैपेसिटी

**धारुक**—बियरिंग

**धात्री**—दायी–मिडवाइफ

**ध्वजदंड**—फ्लेग स्टाफ

**ध्वजपति**—फ्लेग अफसर

**ध्वजपोत**—फ्लेगशिप

न

**नगरपाल**—सिटी फादर

**नगररक्षक**—सिविल गार्ड

**नामन्**—आख्य–नॉमिनेशन

**नामपत्र**—लेबल

**नामिका**—पेनल

**नायक**—दलनेता–कैप्टिन

**नाविक**—पोतारोही–डेक हैंड

**निकाय**—वर्ग–बॉडी

**निगम**—पौर संघ–कॉर्पोरेशन

**निचयकर्ता**—समासक, संक्षेपकर्ता –अब्रेविएटर

**निजी सचीव**—निजी कामों की देखभाल करने वाला सचिव–प्राइवेट सेक्रेटरी

**निदेश**—हिदायत–डाइरेक्शन

**निदेशक**—डाइरेक्टर ( प्रशासन )

**निबंधक**—पंजीयक–रजिस्ट्रार

**निबंधन**—पंजीयन–रजिस्ट्रेशन

**नियंत्रक**—कंट्रोलिंग–आफिसर

**नियामक**—अवरोधक–रेगुलेटर

**नियोक्ता**—नियोजिता–एम्प्लायर

**निरंकुश राजतंत्र**—अवसोल्यूट-मोनार्की

**निरसन**—किसी विधि आदि को अधिकारपूर्वक या वैधरीति से रद्द कर देना–रिपील्ड

**निरीक्षक**—इंसपेक्टर

**निर्देशक**—डाइरेक्टर ( प्रोग्राम )

**निर्माता**—प्रॉजक्टर

**निर्वात**—वेक्यूम

**निलंबित**—मुअत्तिल–सस्पेंडिड

**निबन्धक**—मुनीम

**निशान्त**—राजभवन

**निष्कासिका**—आउटलेट

**निष्क्रांत**—इवेक्यूई
**निष्क्रिय लेखा**—डेड अकाउंट
**निष्पादक**—एक्जिक्यूटिव
**निसृष्टि**—राज्य का प्रमाण पत्र
**निस्तारण**—काम पूरा करने की क्रिया —डिसपोजल
**निस्यंदक**—फिल्टर
**निःस्वामिक भूमि**—वह परती भूमि जो किसी के अधिकार में न हो—नो मेंस लैंड
**नीवी**—आय-व्यय के बाद का बचा हुआ धन
**नैगम**—नगर-व्यापारियों की सभा
**नैमित्तिक**—असाधारण—काजल
**नौतरण**—वहन जलयात्रा—नैविगेशन
**नौबलाध्यक्ष**—नौसेना का प्रधान सेनापति—एडमिरल
**नौभार**—कारगो
**न्यायसभ्य**—जूरी
**न्यायिक**—जुडिसियल
**न्यास**—निगम—ट्रस्ट
**न्यासधन**—ट्रस्टमनी

**प**

**पंजी**—रजिस्टर
**पंजीयन**—दर्ज करना—रजिस्ट्रेशन
**पक्ष**—सेना के अग्रभाग के दोनों पार्श्व
**पञ्चगामी**—पाँच गाँवों का कर-संग्रह करने वाला अधिकारी
**पण**—शर्त, राज्याभिषेक के समय राजा से इस बात की शपथ करायी जाती थी कि वह धर्म या कानून के अनुसार शासन करेगा
**पण्य**—व्यवहार योग्य—कॉमोडिटी
**पण्यक्षेत्र**—पण्यभूमि, बाजार—मारकेट
**पण्यगृह**—गोदामघर
**पण्यशाला**—भंडार—इम्पोरियम
**पत्तनपति**—हार्बर मास्टर
**पत्ती**—पार्टी
**पत्रवाहक पंजी**—पियन बुक
**पथकर**—मार्गकर—टॉल
**पदक्रम**—ग्रेड
**पदक्षेप**—मार्क टाइम
**पदाति**—पैदल सेना—इन्फैन्ट्री
**परजीवी**—पैरासाइटिक
**परराष्ट्र मंत्री**—फारेन मिनिस्टर
**परिचर**—सेवक—अटेंडेंट
**परिचायक**—डिटेक्टर
**परिचालक**—आपरेटर
**परिदर्शन**—इन्सपेक्शन ( चिकित्सा )
**परिधि**—सरकल
**परिपथ**—सरक्यूट
**परिपृच्छा**—पूछ-ताछ—इनक्वाइरी
**परिभाव्य धन**—काउशन मनी
**परिरक्षक**—परजरवेटिव ( चिकित्सा )
**परिवर्त्तक**—कॉन्वर्टर
**परिवहन**—ट्रांसपोर्ट
**परिवाद**—शिकायत—कॉम्प्लैण्ट
**परिवीक्षा**—परख—प्रोवेशन
**परिव्यय**—लागत—कॉस्ट
**परिषद्**—काउन्सिल
**परिष्ठा**—हैसियत—स्टेट्स
**परिसंपति**—असेसमेण्ट
**परीक्षक**—टेस्टर
**परीक्षण**—टेस्ट
**परीहार**—करमुक्ति से सम्बद्ध राजाज्ञा-पत्र
**पर्णिका**—कूपन

**पर्यवेक्षक**—सुपरवाइजर
**पलायी**—फरार–एब्स्कोण्डर
**पशु-चिकित्सा-निरीक्षक**—वेटरनरी-इंस्पेक्टर
**पारणक**—अनुमतिपत्र–पास
**पारपत्र**—अनुज्ञापत्र–पासपोर्ट
**पारित**—स्वीकृत–पास्ड
**पारिषद्**—काउन्सलर
**पार्श्व**—बैक ग्राउण्ड
**पार्श्वरक्षक सेना**—फ्लैंकगार्ड
**पावती पत्र**—रसीद–एकनॉलेजमेण्ट
**पीठस्थविर**—कुलसचिव–रजिस्ट्रार
**पुनर्वास**—फिर से बसाना–रिहैबिलिटेशन
**पुस्त**—बहीखाता
**पूग**—श्रमिक संघ
**पूगग्रामणिक**—शिल्प-सम्बन्धी किसी गण या संघ के सभापति
**पूर्त्यधिकारी**—वितरण का व्यवस्थापक सप्लाई आफिसर
**पूर्वेक्षण**—पर्व्यू
**पौर**—नगर-निवासियों की सभा या संस्था; राजधानी के निवासियों की सभा या संस्था–म्युनिसिपल-व्यवस्था
**पौर मुख्य**—नगर मजिस्ट्रेट
**प्रकाश स्तम्भ**—रात में विमानों का पथ-प्रदर्शन करने के लिए हवाई अड्डे पर दायें-बायें घूमने वाला प्रकाश-लाइट हाउस या सर्चलाइट
**प्रकोष्ठ**—सभाकक्ष–लॉबी
**प्रणिधि**—गुप्तचर–सीक्रेट एजेण्ट
**प्रतिकर**—मुआवजा–कम्पेनसेशन
**प्रतिजीवाणुक**—ऐण्टीसेप्टिक
**प्रतिज्ञा**—राज्याभिषेक के समय की शपथ
**प्रतिनिधि**—डेलिगेट
**प्रतिपत्रक**—रसीद
**प्रतिभाव्य**—जमानत–बेलेबिल
**प्रतिभू**—जामिन
**प्रतिभू**—जमानत देने वाला–श्यूरटी
**प्रतिभूति**—गारण्टी
**प्रतिरक्षा**—इमुनिटी
**प्रतिलोम**—कन्वर्स
**प्रतिवर्णक**—नमूना
**प्रतिवर्त्त**—रिफ्लैक्स
**प्रतिवेदन**—आख्या–रिपोर्ट
**प्रति श्रवण**—प्लेबैक
**प्रतिष्ठाता**—प्रवर्तक संस्थापक–फाउण्डर
**प्रतीक्षालय**—वेटिंग रूम
**प्रत्यक्ष प्रभार**—डाइरेक्ट चार्ज
**प्रत्यय**—साख–क्रेडिट
**प्रत्ययपत्र**—क्रिडेंशियल्स
**प्रत्याय**—प्रतिफल–रिटर्न
**प्रत्यायित**—संवाददाता–एक्रिडिटेड
**प्रत्यावर्तक**—अल्टरनेटर
**प्रत्यावर्ती**—लूप ( आकाशी )
**प्रदर्शक**—एक्जिबिटर
**प्रदर्शिका**—गाइडबुक
**प्रदेष्टा**—फौजदारी कचहरी का न्यायाधीश
**प्रधान**—मुख्य–चीफ
**प्रधान निदेशक**—डाइरेक्टर जनरल
**प्रधान नियामक**—हेड रेगुलेटर
**प्रधान मन्त्री**—प्राइम मिनिस्टर
**प्रधान संकेतक**—हेड सिग्नलर
**प्रधान सचिव**—महासचिव–सेक्रेटरी जनरल
**प्रधान सैनिक केन्द्र**—जेनरल हेडक्वार्टर्स
**प्रपत्र**—फार्म

**प्रबंधक**—मैनेजर
**प्रभार**—चार्ज (कार्यभार)-चार्ज (भाड़ा)
**प्रभारी**—उत्तरदायी–इन्चार्ज
**प्रभुसत्ता**—पूर्णसत्ता–साव्हरेनटी
**प्रमण्डल**—संघ-कंपनी
**प्रयोजना**—प्रोजक्ट
**प्रयोज्य**—लागू ऐप्लिकेबुल
**प्रलेख**—डाकूमेंट
**प्रवक्ता**—अधिकार प्राप्त बोलने वाला प्रतिनिधि–स्पोक्समैन
**प्रवर**—उच्च–सीनियर
**प्रवर समिति**—सेलेक्ट कमेटी
**प्रवर्तक**—ओरिजिनेटर
**प्रवर्धक**—एम्प्लिफायर
**प्रवाहिका**—डिसेंटरी
**प्रविधि**—विशेष ढंग–टेकनीक
**प्रशास्ता**—कारागार अधिकारी
**प्रशीतन**—रेफ्रिजीरेशन
**प्रशीतित्र**—रेफ्रिजिरेटर
**प्रशुल्क**—आयात-निर्यात की वस्तुओं पर लगने वाला कर–टैरिफ
**प्रसंवादी**—हारमोनिक
**प्रस्तुति**—प्रजेंटेशन
**प्रवृत्त**—लागू–इनफोर्स
**प्रशासक**—शासन या भू-संपत्ति का प्रबंध करने वाला अधिकारी–ऐडमिनिस्ट्रेटर
**प्रशासन**—ऐडमिनिस्ट्रेशन
**प्रहरक**—वाचमैन
**प्रांतपति**—राज्यपाल–गवर्नर
**प्राक्कलन**—संभावित व्यय का अनुमान –एस्टिमेट
**प्रातराश**—नाश्ता–ब्रेकफास्ट
**प्राधिकार**—प्रिभिलेज
**प्राधिकारी**—अथॉर्टी
**प्राप्तव्यवहार**—वयस्क
**प्राप्ताधिकार**—विशेषाधिकार–प्रिभिलेज
**प्राप्तानुज्ञ**—आज्ञापत्र–लाइसेंस
**प्राप्ति और दाति**—रिसीप्ट एंड डेलीवरी
**प्राभिकर्ता**—अटॉर्नी
**प्राभियोग**—महाभियोग–इम्पीचमेंट
**प्रारक्षण**—रिजर्व
**प्रारूप**—मसौदा–ड्राफ्ट
**प्राविधिक**—किसी कला, शिल्प आदि की विशेष कार्यविधि–टेक्निकल
**पृतना**—ब्रिगेड
**पृतनापति**—ब्रिगेडियर
**प्रेक्षण**—ऑबजर्व
**प्रेषी**—पानेवाला–ऐड्रेसी

**ब**

**बाहिनी**—बटालियन

**भ**

**भंडार नियंत्रक**—कंट्रोल आफ स्टोर्स
**भयद**—खतरा–डेंजरस
**भलक**—भत्ता–अलाउंस
**भांडागार**—गोदाम–गुडोन
**भांडारिक**—एकाधिक बिक्री के लिए बहुत सी चीजें अपनी दूकान या गोदाम में रखने वाला-स्टाकिस्ट
**भाग्यदा**—लाटरी
**भारतीय दण्ड संहिता**—इण्डियन पेनल कोड
**भारिक**—पोर्टर
**भूयोजन**—अर्थ
**भृति**—मजदूरी–वेज
**भृति भोगी**—रुपये के लालच से किसी की सेवा करने वाला–मर्सीनरी

### म

**मण्डल**—डिवीजन

**मण्डल अधीक्षक**—डिवीजनल-सुप्रिंटेंडेंट

**मण्डल मुख्यालय**—डिविजन हेड क्वार्टर्स

**मन्त्रणा**—कौंसल

**मन्त्रणाकार**—सलाहकार-ऐडवाइजर

**मन्त्रालय**—मिनिस्ट्री

**मन्त्रिपरिषद्**—मंत्रियों की गोपनीय सभा

**मन्त्रि-परिषद्**—राष्ट्र के कार्यों का विवेचन करनेवाली परिषद्

**मन्त्री**—अमात्य ( एक साथ रहनेवाला )

**मत्स्यन्याय**—आततायियों का उपद्रव

**महागणनाध्यक्ष**—महालेखपाल-अकाउण्टेण्ट जनरल

**महाधिवक्ता**—एडवोकेट जनरल

**महानिरीक्षक**—इन्सपेक्टर जनरल

**महान्यायवादी, महाप्राभिकर्ता**—ऐटर्नी जनरल

**महापत्रपाल**—पोस्ट मास्टर जनरल

**महापरिषद्**—जनरल कौंसिल

**महाबलाधिकृत**—फील्ड मार्शल

**महामहिम**—हिज एक्सेलेंसी

**महामात्य**—प्रधानमन्त्री

**महामान्य**—हिज मैजिस्टी

**महालेखापरीक्षक**—आडिटर जनरल

**मानक**—स्टैंडर्ड

**माननीय**—ऑनरेबुल

**मार्गपथ**—रोड-वे

**मार्गाधिकार**—राइट-आफ-वे

**मित्र शक्ति**—मित्रराष्ट्र एलाइड पावर

**मुख्यकरणिक**—हेड क्लर्क

**मुख्य न्यायाधिपति**—चीफ जस्टिस

**मुख्य न्यायाधीश**—चीफ जज

### य

**यंत्र**—मशीन

**यंत्रजात**—मशीनरी

**यंत्रशाला**—मशीनघर

**यांत्रिक**—मिस्त्री-मिकेनिक

**यान पथ**—कैरेज-वे

**युक्त**—आयकारी या अफसर

**युक्त कर्म चायुक्तस्य**—जो व्यक्ति अफसर या अधिकारी नहीं है, उसका किया हुआ ऐसा कार्य जो किसी अधिकारी या अफसर को करना चाहिए।

**युक्ताहार**—बैलेंस्ड डाइट

**युग्मन**—संयुजन-कॉन्जुगेशन

**योजक**—आँकड़ा-कपलर

### र

**रक्षित**—वार्ड

**रक्षी**—करद

**राजक**—संयुक्त कौंसिल

**राजतन्त्र**—मोनार्की

**राजदया**—क्लेमेंसी

**राजदूत**—अम्बेसेडर

**राजनयिक**—डिप्लोमेसी

**राजनयिक संवाददाता**—डिप्लोमेटिक कॉरेसपोंडेंट

**राजपत्र**—गजट

**राजपथ**—राजमार्ग-हाई-वे

**राजशब्दिन् संघ**—वह प्रजातन्त्र जिसमें राजन् या राजा की उपाधि धारण की जाती है

**राजशासन**—राजाज्ञा

**राष्ट्रमुख्य**—जनपद के प्रमुख पुरुष

**राजस्व**—रेवेन्यू

**राजा**—शासक, राजा को शासक इसलिए

कहा गया है उसका कर्तव्य अच्छे शासन के द्वारा अपनी प्रजा का रंजन करना अथवा उसे प्रसन्न करना होता है

**राज्य परिषद्**—कौंसिल ऑफ स्टेट

**राष्ट्रपति, अध्यस्ता**—प्रजातंत्री राष्ट्र द्वारा चुना हुआ प्रधान शासक–प्रेसिडेण्ट

**राष्ट्रमण्डल**—कॉमनवेल्थ

**राष्ट्रसंघ**—लीग आफ नेशन्स

**रिक्ति**—वेकेंसी

**रिक्थ**—सम्पदा–इस्टेट

**रोधक**—ब्रेक

**ल**

**लक्षण**—राजकीय चिह्न

**लक्षणाध्यक्ष**—सिक्के ढालने वाला प्रधान अधिकारी

**लाभांश**—बोनस

**लेखा**—हिसाब–अकाउण्ट

**लेखा करणिक**—एकाउण्ट क्लर्क

**लेखा पुस्ती**—बहीखाता–एकाउण्ट बुक

**व**

**वनरक्षक**—फारेस्ट रेञ्जर

**वन्धपत्र**—प्रतिज्ञापत्र–बौण्ड

**वर्णन**—हुलिया–डिस्क्रिप्शन

**वर्त्तिग्रह**—बर्नर

**वलय मार्ग**—रिङ्ग रोड

**वहन अभिकर्ता**—केरिङ्ग एजेण्ट

**वातानुकूलित**—एयरकण्डीशण्ड

**वाष्पित्र**—बॉयलर

**वाहक**—बेयरर ( चेक )

**वाहिनी**—सेना–ब्रिगेड

**वाहिनीपति**—सेनापति–ब्रिगेडियर

**विगोपन**—एक्सपोजर

**विज्ञप्ति**—कॉम्युनिक

**वित्त विधेयक**—फाइनेन्स बिल

**विद्युत आवेश**—इलेक्ट्रिक चार्ज

**विधिक**—कानूनन–लीगल

**विधेयक**—बिल

**विपण्य**—मार्किटेबल

**वियोजन**—फैलाव–डिस्प्रेशन

**विलम्ब शुल्क**—डेमरेज

**विलय**—मर्ज

**विवरण**—कॉमेण्ट्री

**विशाखन**—डिवर्सन

**विष्कम्भक**—इण्टरल्यूड

**विष्टि**—श्रमिक संघ

**विवीत**—गोचर

**वेदक**—अभियोक्ता या फरियादी

**वृत्तक**—हैंड आउट

**वृत्त रूपक**—न्यूज फीचर

**वृत्तपत्र**—न्यूज लेटर

**वेधक**—बोरर

**वैध**—वैलिड

**वैमानिक**—हवाई

**वैराज्य शासन-प्रणाली**—बिना राजा की अथवा राजारहित शासन–प्रणाली

**व्यक्तिगत**—पर्सनल

**व्यवहार निरीक्षक**—कोर्ट इंस्पेक्टर

**व्यवहारपटल**—कांउटर

**व्युत्थान**—बगावत–रिवोल्ट

**श**

**शलक**—फायर ( आग )

**शलक नियन्त्रण केन्द्र**—फायर कण्ट्रोल

**शलककार**–गोलावारी करने वाला फायर

**शलाका**—मतपत्र

**शलाकाग्रहण**—एक प्रकार के रंगे हुए टिकटों द्वारा मत (छंद) एकत्र करना

**शायिका**—बर्थ
**शालाकी**—सर्जन
**शासन**—राज-लेख
**शिल्पज्ञ**—टेक्निशियन
**शिल्पविद्या**—टेक्नोलॉजी
**शिल्पसंघ**—श्रमिक निकाय—गिल्ड
**शिष्टमण्डल**—डेलिगेशन
**शूक**—पिन
**शूकधानी**—पिनकुशा
**शून्यपाल**—प्रांतीय शासक
**शैल्पिक प्रशिक्षण केन्द्र**—टेक्निकल ट्रेनिंग सेंटर
**श्रमसंघ**—श्रमिकों का संघ—लेबर यूनियन
**श्रेष्ठिन्**—प्रधान—मेयर
**श्रेणी**—शिल्पियों और व्यावसायिकों का संघ
**श्रोणि**—हिप

**स**

**संकलन अधिकारी**-कॉम्पिलेशन अधिकारी
**संकलनकर्त्ता**—कॉम्पिलर
**संकेतक**—सिगनल
**संक्रमण**—इन्फेक्शन
**संगणित**—कल्कुलेटेड
**संगलक**—इलेक्ट्रिक फ्यूज
**संग्राहक**—रिसीप्टर
**संग्राही**—रिसीवर ( आकाशी )
**संघ**—बहुत से लोगों की मिलकर बनाई समिति, सभा या संस्था—फेडरेशन
**संघ**—वैश्यों तथा क्षत्रियों का विशेष समुदाय
**संघनक**—संधारित्र संघनित्र—कॉन्डेन्सर
**संचालक**—ऑपरेटर, कंडक्टर, डाइरेक्टर
**संज्ञापन**—सलाह—ऐड्वाइज
**संदेशहर**—संदेशवाहक—मेसेंजर
**संभाग**—पोर्टफोलियो
**संयामक**—गवर्नर ( आकाशी )
**संवर्ग**—ब्लाक
**संवातन**—वेंटिलेटर
**संवाती**—वेंटिलेटर
**संवादनियंत्रक**—सेंसर
**संविद्**—करार करके बनाये हुए नियम
**संविदा**—समझौता—कंट्रैक्ट
**संविधान**—कांस्टिटयूशन
**संविधान सभा**—कांस्टिटयूएण्ट ऐसेम्बली
**संविधि**—विधान सभा द्वारा स्वीकृत वह लिखित विधान जो स्थायी कानून के रूप में हो—स्टैटयूट
**संवेष्टिका**—पैकेट
**संसर्गज**—सांसर्गिक-कॉन्टेगियस
**संहिता**—कोड
**सदाशय**—बोनाफाइड
**सन्न**—सहायक कृषि-अधिकारी
**सन्निधाता**—राजकोष का संग्राहक एवं संरक्षक
**सन्निधातृ**—संग्रहित, राजकोष का अध्यक्ष
**समक्ष नियोक्ता**—एम्लायमेंट आफिसर
**समय**—सामूहिक संस्थाएँ ( अर्थात् ऐसे नियम या निश्चय जो सब लोगों के समूह में स्वीकृत हुआ करते थे )
**समय सारिणी**—टाइम टेबुल
**समरणनिधि**—सुविधायक कोष—प्रॉविडेंट फंड
**समवरोधक**—नाकाबंदी—ब्लोकेड
**समवाय**—कंपनी
**समादेश**—कमांड
**समालाप**—इन्टरव्यू

**समाहर्ता**—दुर्ग-राष्ट्र की राजकीय आय को एकत्र करने वाला मुख्य अधिकारी
**समाहर्ता, समाहर्तृ**—भागदुह, राजकर का संग्रह करने वाला—कलेक्टर
**समुदाय**—मेस
**समूह**—संघटित सभा या संस्था
**सर्वेक्षण**—सर्वे
**सर्वोच्च न्यायालय**—सुप्रीम कोर्ट
**सहायक उच्चायुक्त**—असिस्टेंट हाई-कमिश्नर
**सहायक निदेशक**—असिस्टेंट डाइरेक्टर
**सहायक लेखा परीक्षक**—असिस्टेंट ऑडीटर
**सहायक सचिव**—असिस्टेंट सेक्रेटरी
**सहायक सूचना अधिकारी**—असिस्टेंट इन्फारमेशन आफिसर
**सांघातिक**—फेटल
**साधारणीकरण**—जेनरेलिसेशन
**सार्थ**—व्यापारियों का संघ
**सार्थ**—सेना—कॉन्वाय
**सीमांत**—फ्रांटियर
**सीमागुल्म**—सीमा पर स्थित चौकी—बरियर
**सीमा शुल्क**—कस्टमड्यूटी
**सुश्रावक**—माइक्रोफोन
**सूचक**—अलार्म
**सूचना सहायक**—इन्फारमेशन असिस्टेंट
**सूत्र**—फारमूला
**सेनानायक**—कॉमांडेंट कॉमांडर
**सेनामुख**—सेक्शन
**सैनिक न्यायालय**—कोर्ट मार्शल
**सैन्यदल**—रेजिमेंट
**सैन्यनायक**—जनरल
**स्कंध**—गोदाम, दाल का भंडार-स्टाक
**स्कंधावार**—शिविर—कैंप
**स्कंधिक**—स्टाकिस्ट
**स्तंभ**—राज्यधन का गबन
**स्तंभ**—कॉलम
**स्थानिक**—समाहर्ता का अधीनस्थ अधिकारी एवं जनपद तथा नगर के चतुर्थांश का शासक
**स्त्रीधन**—ज्वाइंचर
**स्थायिवत्**—क्वासी परमानेंट
**स्थायवित्ता**—क्वासी परमानेंसी
**स्फटिक**—क्रेस्टल
**स्फुरण**—फ्लटर
**स्वचल**—आटोमेटिक
**स्वयंतथ्य**—एक्सियन
**स्वामिभू**—जागीर—मैनर
**स्वायत्तशासन**—ऑटोनोमी

### ह

**हस्तक**—हैंडिल
**हीनमुद्रा**—खोटा सिक्का—कोइन वेस

# शब्दानुक्रमणिका

Kautilya — Arthaśāstra

[illegible] — Kautilya